वैद्यक-शिक्षा।

अर्थात्

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, हारीत, भावप्रकाश, चक्रदत्त
शार्ङ्गधर, रसेन्द्रसार-संग्रह, रसेन्द्र-चिन्तामणि,
तथा भैषज्य-रत्नावली, आदि आयुर्वेद-
ग्रन्थोंके अवलम्बन से बनाई

**आयुर्वेद-शास्त्रके यावतीय जानने लायक
विषयों की सचित्र पुस्तक।**

द्वितीय संस्करण।

गवर्णमेण्ट मेडिकेल डिप्लोमाप्राप्त, पैरिस केमिकल सोसाइटी,
लण्डन सर्जिकेल एड् सोसाइटी और लण्डन केमिकल
इण्डष्ट्री के मेम्बर तथा दिल्ली [illegible]
आयुर्वेदीय विद्यालय के परीक्षक
श्रीनगेन्द्रनाथ सेन वैद्यशास्त्री सङ्कलित।

नगेन्द्र-ष्टीम्-प्रिण्टिङ्ग-वर्क्स- कलकत्ता।

सम्वत् १९६३।

दाम २) दो रुपये।

वैद्यक-शिक्षा।

अर्थात्

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, हारीत, भावप्रकाश, चक्रदत्त,
शार्ङ्गधर, रसेन्द्रसार-संग्रह, रसेन्द्र-चिन्तामणि,
तथा भैषज्य-रत्नावली, आदि आयुर्व्वेद-
ग्रन्थोंके अवलम्बन से बनाई

**आयुर्व्वेद-शास्त्रके यावतीय जानने लायक
विषयों की सचित्र पुस्तक।**

द्वितीय संस्करण।

गभर्णमेण्ट मिडिकेल डिप्लोमाप्राप्त, पैरिस केमिकल सोसाइटी,
लण्डन मेडिकेल एण्ड सोसाइटी और लण्डन केमिकल
इण्डष्ट्री के मेम्बर तथा दिल्ली बनवारीलाल
आयुर्व्वेदीय विद्यालय के परीक्षक

श्रीनगेन्द्रनाथ सेन वैद्यशास्त्री सङ्कलित।

नगेन्द्र-ष्टीम्-प्रिण्टिं-वर्कस्—कलकत्ता।

सम्वत् १९६३।

दाम २) दो रुपये।

कलकत्ता.

१७ नं० लोवार चितपुर रोड,

नगेन्द्र-ष्टीम्-प्रिण्टिं वार्कस् में

श्रीकैवल्यराम चटर्जी द्वारा मुद्रित

तथा

१८।१ व १९ नं० लोवार चितपुर रोड, कलकत्ता में

श्रीनगेन्द्रनाथ सेन वैद्यशास्त्री. द्वारा प्रकाशित।

Kaviraj Nogendra nath Sen.

आयुर्व्वेदीय औषधोंके हिन्दी और वङ्गला भाषा का

निर्घण्ट।

अ

अक्ष तैल—हि० बहेड़का तैल।

अक्षोट—हि० अखरोट। बं० आखरोट।

अगरु—हि० अगर।

अग्निदमनी—हि० आगी, धमामा।

अग्निजार—हि० अग्निजार।

अग्निमन्थ—हि० अरनी, अगेथु, गणियारी।

अजगन्धा—हि० हुरहुर, हुलहुल।

अजमोदा—हि० अजमोदा बं०। वनजमानी।

अजकर्ण—हि० बड़ाशाल। बं० भाजीशाल।

अर्जक—हि० अजबला।

अर्ज्जुन—हि० कोहा, कोह। बं० अर्जुन।

अतसी—हि० अलसी।

अतसी तैल—हि० अलसीका तैल।

अतिबला—हि० कांगई, कांघई, ककहिया, पेटारी। बं० पीतबेड़ेला।

अतिविषा—हि० अतीस। बं० आतइच।

अतिमुक्ता—हि० रायनेवारी, रायबेल।

अपवर्दण्ड—हि० रामशर।

अपामार्ग—हि० ओंगा, चिरचिरा। बं० अपांग।

अभ्रक—हि० अभ्रक, अबरख।

अम्बष्ठा—हि० अमारी, मोइआ। बं० मोचिका।

अमरवल्लरी—हि० अमरबेल, आकाशबवरी।

अमृतस्रवा—(चित्रकूट देशमें प्रसिद्ध है।

अम्लपर्णी—हि० रामचना।

अम्लवेतस—हिं० अम्लवेत, थैंकल।

अम्लदाड़िम्ब—हि० खट्टा अनार।

अरण्यकुसुम—हि० कुसुम, खश, दाना।

अरण्यकार्पासी—हि० बनकपास।

अरण्यकुलत्थिका—हि० बनकुरथी। बं० बनकुलत्थ।

अरण्यजीरक—हि० बनजीरा।

अरण्यसूरण—हि० जङ्गली सूरण।

अरिमेद—हि० हिंवर।

अर्क—हि० आक, मदार, आकड़ा। बं० आकन्द।

अर्द्रक—हि० आदी, अदरक। बं० आदा।

अशोक—हि० अशोक। बं० अशोक।

अश्मन्तक—हि० मिरचटा, असिमिलोरा।

अश्वखुरा—हि० सफेद गोकर्णी, सफेद कोयल। बं० श्वेतअपराजिता। माली। श्वेतअपराजिता।

अश्वगन्धा—हि० असगन्ध। बं० अश्वगन्धा।

अश्वकाघरिका—हि० घोड़ेका घरा।

अश्वकर्ण—हि० छोटाशाल। बं० साज, शाल।

अश्वत्थ—हि० पीपरवृक्ष।

अश्वत्थी—हि० छोटा पीपल।

असन—हि० असन।

असितवल्लूक—हि० काली दुपहरिया।

अक्षोट—हि० ढेरा, टेरा। बं० वन आँकड़ा।

अहिफेन—हि० अफीम, अमलआफू। बं० अहिफेन।

आ

आकाशमांसी—हि० आकाशजटामांसी।

आखुकर्णी—हि० मूसाकर्णी। बं० इंदूरकाणिपाना, कालीदूली।

आखुपाषाण—हि० मोमल।

आढ़की—हि० अरहर, रहरी।

आदित्यपत्र—हि० आदित्यपत्र।

आदित्यभक्ता—हि० सोचली, हुरहुज।

आमलकी—हि० आमला, आमरा। बं० आमलकी।

आम्र—हि० आम।

आम्रातक—हि॰ अंबाड़ा। (कोकण देशमें प्रसिद्ध)।

आम्रनिशा—हि॰ आंबाहल्दी।

आरग्वध—हि॰ बड़ा अमलतास।

आरामशीतलिका—हि॰ लोनीशाक भेद।

आरामशीतला—हि॰ आरामशीतला।

आरि—हि॰ वन्निखदिर, मट्टिकफल।

आरुक—हि॰ आलूबुखारा।

आवर्तकी—हि॰ बड़ी उ.म्म, बक आकुली।

आसुरी—हि॰ राई। बं॰ सरिषा।

आर्द्रको—हि॰ रस।

इ

इक्षु—हि॰ गांड़ा, पौंड़ा, ईख।

इक्षुदर्भा—हि॰ इक्षुदर्भ।

इंगुदी—हि॰ हिंगोट, गोंदी।

इंगुदी तैल—हि॰ हिंगोटका तेल।

इन्दीवरा—हि॰ उनरग।

इन्द्रजव—हि॰ इन्द्रजव।

ईश्वरलिङ्गिका—हि॰ शिवलिङ्गी।

उ

उत्पल—हि॰ नील कमल।

उत्पलिनी—हि॰ चन्द्रविकाशी, कमलिनी।

उदुम्बर—हि॰ गूलर। बं॰ यज्ञडुमुर।

उपकुञ्चिका—हि॰ कलौजी, मगरैला। बं॰ कलौजी।

उपोदकी—हि॰ बड़ी पोई। बं॰ पुइशाक।

उशीर—हि॰ खस, कालावाला। बं॰ व्याणारमूल।

उष्ट्रकांडी—हि॰ उतांटी।

ऊ

ऊखल—हि॰ ऊखलतृण।

ऋ

ऋषभक—गौड़ वो काश्मीरमें प्रसिद्ध।

ऋद्धि—गौड़ देशमें प्रसिद्ध।

ए

एकवीर—हि॰ एकवीर।

एरण्ड तैल—हि॰ अंडीका तेल।

एला—हि॰ इलायची, छोटी लायची। बं॰ छोट इलाइच।

एलावालुक—हि० एलवा। बं० लालु।
एर्वारु—हि० बड़ी ककड़ी।

ऐ

ऐन्द्री—हि० इन्द्रायन। बं० राखालशशा।

औ

औखर—हि० खारी नोन।
औद्भिद—हि० सूर्याखार, रेहगवा, रेहगमानोन, रेहका निमक।

क

कटभी—हि० कालो कटभी, करही।
कट्फल—हि० कायफर। बं० कट्फल।
कटुतुम्बी—हि० कडुई तोरई तितलौकी। बं० तितलाऊ।
कटुका—हि० कुटकी। बं० कटकी।
कटुतुण्डिका—हि० कडुई कंदूरी, कडुई गुलकांख। बं० बनकुंदरकी।
कटुदुचो—हि० काडवंची।
कटुनिष्पाव—हि० कड़वा निष्पाव।
कट्फल—हि० काय फर। बं कट्फल, कायफाल।
कणगुग्गुल—हि० कणगूगल।
कतक—हि० निर्मली। बं० निर्मला।
कतृण—हि० रोहिस, सौधिया, गन्धेज घांस। बं० रामकर्पूर।
कदली—हि० केला, केरा।
कदम्ब—हि० कदम्ब, कदम।
कपर्दक—हि० कौड़ी।
कपिलशिंशपा—हि० पीला सिसव।
कपित्थ—हि० कैथ। कयेथवेल।
कमल—हि० कमल। बं० पद्म।
करमर्द—हि० करौंदा, करौंदी। बं करमचा।
करञ्ज—हि० कञ्जा, कटकरञ्जा।
करञ्ज तैल—हि० करञ्जका तेल।
करीर—हि० करील करेल, करेल।
करुणी—हि० करवीरणी (कोकण देशमें प्रसिद्ध है।)

कर्कट—हि० काकड़।
कर्कटी—हि०—ककड़ी, काकड़ी। बं० कांकुड़।
कर्कोटकी—हि० खेकसा, ककोड़ा। बं कांकरोल।
कर्चूर—हि० कचूर। बं० शठी।
कर्णस्फोटा—हि० कानफोड़ा।
कर्णिकार—हि० छोटा अमलतास, धनबहेरा, सोनालु, किरवारो। बं० छोटा सोंदाल।
कर्पूर—हि० कपूर। बं० कर्पूर।
कर्पूर तैल—हि० कपूरका तेल।
कर्पूरमणि—हि० करपुरनिया।
कलाय—हि० मटर केराव।
कलिकारी—हि० कलिहारी, करिहारी, कलहिंस। बं० ईशलांगला।
कलिङ्ग—हि० तरबूज। बं० तरमूज।
कल्हार—हि० सफेद कमल चन्द्रविकाशी।
कस्तूरी—हि० कस्तूरी। बं० मृगनाभि।
कस्तूरीमल्लिका—हि० कस्तूरी मोतिया।

काकनासा—हि० कौआठोंठी। बं० काकठूंडी।
काकमाचिका—हि० मकोय, कवैया। बं० काकमाची, गुड़कामाई।
काकजंघा—हि० काकजम्घा, मसी। बं० काकजंघा।
काकजम्बू—हि० नदी जामुन। बं० नदी जाम।
काकतिन्दुक—हि० काकतेंदू।
काकलोद्राक्षा—हि० किसमिस।
काकादनी—हि० काकमारी। काकफल।
काकोली—हि० काकोली।
कामवृद्धि—हि० कामजल्प।
कारवल्ली—हि० करैला। बं० करोला।
कारस्कार—हि० कुचला।
कासमर्द—हि० कसौदी, अगोय।
कारी—हि० कारी।
कालाञ्जनी—हि० कालीकपास।
कार्पासी—हि० लाल कपास।
काश्मरी—हि० गभारी, कभारी, खुमेर। बं० गाम्भारी।
काष्ठकदली—हि० काठकेला।

काष्ठधात्री—हि० छोटा आमला।
काष्ठदारु—हि० काष्ठ देवदार।
काष्ठागरु—हि० काष्ठागर।
कासालु—हि० कासालु।
कासीस—हि० कसीस।
कुटज—हि० कूड। बं कुड़ची।
कुटुम्बिनी—हि० ऊंधा होली।
कुणञ्जर—हि० लेसूवा।
कुद्दाल—हि० बनकी कोदो।
बं० बनकोद्रव।
कुब्जक—हि० कुजा।
कुमुद—हि० सफेद कमल चन्द्र-
विकाशी।
कुरी—हि० कुरीधान्य।
कुलत्थिका—हि० बनकुरथी।
कुलित्थ—हि० कुलथी। बं०
कुलत्थकलाई।
कुलञ्जन—हि० कुलिजन।
कुष्ठ—हि० कूठ। बं० कुड़।
कुसुम्भ तैल—हि० कुसुमकी बी-
जका तैल।
कूष्माण्डी—हि० कुम्हड़ा, को-
हड़ा, पेठा। बं० साचि-
कुमुड़ा।
क्षमीशङ्ख—हि० क्षमीशङ्ख।
कृष्णजीरा—हि० शाहजीरा।
कृष्णत्रिवृत्—हि० काली नि-
सोथ। बं० श्यामतेउड़ी।
कृष्णकुटज—हि० कालाकूड़ा।
कृष्णकरवीर—हि० काली क-
नेर। बं० कृष्णकरवी।
कृष्णधत्तूर—हि० काला धतूरा।
बं० कृष्णधुतूरा।
कृष्णतुलसी—हि० कालीतुलसी।
कृष्णमरुवक—हि० कालामरुआ।
कृष्णसारिवा—हि० कालीसर,
करिआसाठ। बं० श्यामालता।
कृष्णागरु—हि० काला अगर।
कृष्णार्जक—हि० काला अज-
वला।
कृष्णोदुम्बरिका—हि० कठूमर,
कटूम्बर। बं० डुमूर।
केकती—हि० कवेड़ा, गगनधूल।
केना—हि० केना।
केविका—हि० केवा।
कैडर्य—हि० कृष्णनिंब, वरसंग,
महारुख। बं० कार्याफली।
कोकनद—हि० लाल कमल।
कोकिलाक्ष—हि० तालमखाना।
बं० कुलेखाड़ा।

कोद्रव—हि० कोदो, कोदव। बं० गोम।

कोलकन्द—हि० जङ्गली प्याज, कोलिकांदा।

कोविदार—हि० पीला कचनार। बं० पीत काञ्चन।

कोशातकी—हि० झिमनीलता, जङ्गली (गरका) तोरई, कड़वी तोरई।

कोशाम्र—हि० कोशाम। बं० कवड़ाफल।

कोशाम तैल—हि० कोशमका तैल।

कौसुम्भशाक—हि० कुसूमशाक।

कङ्कुष्ठ हि० कङ्कुष्ठ, ताड़िका कङ्कुष्ठ।

कङ्कोल—हि० कबाबचीनी, शीतलचीनी, चीनीकवाब। बं० कांकला।

कङ्गुल—हि० कांगनी। बं० कांगनी धान्य।

कण्ठकशरपुङ्खा—हि० कण्टपुङ्खा।

कण्टकारी—हि० कटेरी, लघुकटाई, भटकटैया, रगनी कटाली। बं० कण्टकारी।

कंथारी—हि० नागफनी, थुहर।

कन्दगुड़ची—हि० कन्दगिलोय।

कांचलवण—हि० कचलोन, कचिया लवण।

काण्डीर—हि० चिरचिरा, कांडवेल।

काण्डेक्षु—हि० कांस। बं० केरी।

कान्तलौह—हि० कान्तलोह।

काम्भोजी—हि० सफेद घुंगुची, चिरमिटीगुञ्ज, छोटली। बं० श्वेतकूँच।

कांस्य—हि० कांसा।

किञ्जल्क, हि० कमलकेसर।

कुङ्कुम—हि० केसर। बं० कुङ्कुम।

कुन्द—हि० कुन्द।

कुन्दरु—हि० सालईका गोंद, कुन्दरु। बं० कुदरुखोटी।

कुम्भी—कोकणदेशमें प्रसिद्ध।

ख

खटिका—हि० खड़िया।

खड्गशिङ्गी—हि० गोदजियासेव, सेम। बं० श्वेतसिम, मोगलाइसिम।

खदिर—हि० खैर।

खदिरसार—हि० खैरसार, कत्था।

खर्परी—हि० खापरिया।

खर्जूरी—हि० जंगली खजूर।

खसखस—हि० खसखस। वं० पोस्तदाना।

खण्ड—हि० वं० चीनी, शक्कर।

ग

गणिकारी—हि० मदनमादनी।

गर्भोटिका—हि० जरणी तृण।

गार्जर—हि० गाजर।

गारुत्मज हि० पन्ना।

गिरिकदली हि० जंगली केला।

गुग्गुल हि० गूगल, गूगर। वं० गुग्गुलू।

गुच्छकन्द—हि० गुच्छकन्द।

गुच्छकरञ्ज—हि० गुच्छकरञ्ज।

गुड़—हि० गुड़।

गुड़कन्द—हि० कसेरु, कंचुक, चिचोड़। वं० केसुर।

गुड़ची—हि० गिलोय। वं० गुलञ्च।

गुड़ासिनी—हि० गोदपटेर।

गुण्डाला—हि० गोंडाला।

गृहकन्या—हि० घीकुवार, ग्वारपाठा। वं० घृतकुमारी।

गैरिक—हि० गेरु।

गोक्षुरक—हि० गोखरू। वं० गोक्षुरी।

गोजिह्वा—हि० गोभी। वं० गोजिया, दानाशाक।

गोधापदी—हि० गोहालिया।

गोधूम—हि० गेहूं।

गोपालकर्कटी—हि० गोपालकांकड़ी।

गोमय—हि० गोबर।

गोमूत्र—हि० गोमूत्र।

गोमूत्रिका—हि० गोमूत्रतृण।

गोमेद—हि० गोमेद।

गोरक्षतुम्बी—हि० गोलतुम्बी।

गोरक्षदुग्धी—हि० गोरक्षदूधी।

गोरक्षी—हि० गोरख इमली।

गोरोचन—हि० गोलोचन। वं० गोरोचना।

गोलोभी—हि० गोलोभो। वं० भुंईकेश।

गोस्तनी—हि० कालीदाख।

गौरसुवर्णशाक—चित्रकूट देशमें प्रसिद्ध।

गङ्गापत्री—हि० गङ्गावती।

गण्डपूर्वा—हि० गांडरदूब।

गन्धक—हि० गन्धक।

गन्धपत्रा—हि० कपूरकचरी, गन्धपलाशी।

गन्धनाकुली—हि० सरहटी, गंडिनी, सुगन्ध नकुलकन्द। बं० सर्पकङ्कालिका।

गन्धमांसी—हि० गन्धमांसी।

गुण्डाला—हि० गोंड़ाला।

ग्रञ्जन—हि० लालमुरा।

ग्रन्थिपर्णी—हि० गठिवन, गठोना। बं० गेंठेला।

घ

घृत—हि० घी।

घृतकाञ्च—हि० घीयकाञ्च, घीकाञ्च।

घोटो—हि० घोटी।

घोली—हि० नोनिया शाक, लोनी।

च

चणक—हि० चना, छोला। बं० छोला।

चणिका—हि० चणाटण।

चतुष्फला—हि० गुलशकरी, गंगेरन, गांगेरुमा। बं० गोरक्षचाकुले।

चक्रमर्द—हि० पवाड़र, पमाड़र, चकवड़। बं० चाकुच, चाकुन्दे।

चव्य—हि० चाभ। बं० चव्य।

चाणाक्यमूलक—हि० बड़ीमूली

चार—हि० चिरौंजी।

चित्रक, हि० चीता, चितरक। बं० चिता।

चित्रवल्ली—हि०, बड़ी इन्द्रकला।

चिर्भिटा—हि० गोरख काकड़ी।

चिल्लिका—हि० चिल्ली, बड़ा बथुआ।

चिविल्लिका—हि० छोटी लोनी।

चीड़ा—हि० चीढ़ देवदार।

चीनकपूर—हि० चीनीकपूर।

चुक्र—हि० बड़ा चुका। बं० चुका पालंग।

चूर्ण—हि० चूना।

चोरक—हि० भटेउर।

चञ्चु—हि० चञ्चु, चेबुना।

चञ्चुक—हि० चञ्चु।

चन्दन—हि० सफेद चन्दन।

चन्द्रकान्त—हि० चन्द्रकान्तमणि।

चम्पक—हि० चम्पा।

चण्डालकन्द—हि० चण्डालकन्द।

चाङ्गेरी—हि० अंरुल, भालिलोवा।

चिञ्चा—हि० इमली, अम्बली। वं० आमरुल, तेंतुल।

ज

जपा—हि० ओड़हुल, गुड़हर।

जन्तुका—हि० पपरी, पनड़ी, पद्मावती, नाड़ीहिंग, लाख।

जलमधुक—हि० जलमहुवा। वं० जलमौत।

जलब्राह्मी—हि० बाब।

जलवेतस—हि० जलबेत।

जलशुक्ति—हि० नदीके सीप।

जवादि—हि० जवादी कस्तूरी।

जातिपत्री—हि० जावित्री। वं० जईत्री।

जाती—हि० चमेली।

जातीफल—हि० वं० जायफल।

जालवब्बूलिका—हि० लालबब्बूल।

जीवनी—हि० डोडीशाक।

जीरक—हि० जीरा। वं० जीरा।

जीर्णफञ्जी—हि० फांजी।

जीवक—गौड़ देशमें प्रसिद्ध है।

जीवन्ती—हि० वं० लघुजीवन्ती।

जीवशाक—हि० जीवशक।

जेपाल—हि० अजेपाल, जमालगोटा। वं० जयपाल।

जन्तुका—हि० पपरी, पनड़ी, पद्मावती, नाड़ीहिंग, लाख।

जम्बीर—हि० जम्भीरी। वं० गोंड़ालेबू।

जम्बू—हि० जामुन, जामन। वं० जाम।

ज्योतिष्मती—हि० मालकांगुनी। वं० लताफट्की।

ज्योतिष्मती तैल—हि० मालकांगनी तैल।

झ

झिंझरीटा—हि० छिरछिटा, झिंझरीटा।

झिण्टूक—हि० झिण्टू।

ट

टङ्कण—हि० सोहागा।

ड

डोडी—हि० डोडी।

डङ्गरी—हि० सफरिकुमरा, लालपेठा।

त

तक्र—हि० छांछ।

तक्राह्वा—हि० ताका।

तमाल—हि० बं० तमाल।

तमालपत्र—हि० पत्रज, तेजपात। बं तेजपत्र।

तरटी—हि० तरंटी।

तर्कारी—हि० अरनी। (कोकण देशमें प्रसिद्ध।)

तरुणी—हि० शेवती गुलाब।

तवक्षीर—हि० तवाखीर।

ताम्र—हि० तांबा, तामा।

तारमाक्षिका—हि० रूपामक्खी।

ताल—हि० ताड़।

तालीसपत्र—हि० तालीसपत्र।

तिनिश—हि० तिरिच्छ, तिनसुना। बं० तिलिश।

तिल—हि० तिल।

तिलक—हि० बं० तिलक।

तिल तैल—हि० तिलका तेल।

तूल—हि० पारस पीपल, गजदण्ड।

तीक्ष्णफला—हि० काली राई।

तुत्थ—हि० नीला थोथा, नीला तूतिया।

तुरुष्क—हि० शिलारस।

तुलसी—हि० बं० तुलसी।

तृणकुङ्कुम—हि० तृणकेसर।

तृणधान्य—हि० तृणधान्य।

तेजफल—हि० तिरफल।

तेजोवती—हि० बड़ी मालकांगनी।

तेरणी—हि० तेरडा।

तैलकन्द—हि० तैलकन्द।

तुण्डिका—हि० कन्दूरी, कुलकांख। बं० कुन्दरकी।

तण्डुलीयदल—हि० चौलाई।

तण्डुलीयक—हि० चौलाई, चौराई, बं० नटेशाक, चांपातूतिया।

तिंदुक—हि० तेन्दू।

तुम्बरु—हि० बं० तुम्बरुफल।

त्रपु—हि० रांगा, रागा।

त्रपुसैर्वारुकचारक कूष्माण्ड प्रभृति बीज तैल—हि० त्रपुसी, काकड़ी, चारोली, कोहड़ीके बीजका तेल।

त्रपुसी—हि० खीरा, काकड़ी।

त्रायमाणा—हि० त्रायमाणा।

त्रिधार—हि० तिधारा थूहर।

त्रिपर्णीकन्द—हि० त्रिपर्णीकंद।

त्रिवृत—हि॰ निसोय सफेद श्वेत पनिलर। बं॰ श्वेत-तेउड़ी।

त्रिसन्धि—हि॰ सांझी।

त्वच—हि॰ तज, दालचीनी। बं॰ दारुचिनी।

द

दग्धरुहा—कोकण देशमें प्रसिद्ध।

दधि—हिं॰ दही।

दधिपुष्पी—हि॰ सुअरासेम, करियेसेम।

दमनक—हि॰ दौना, दवना।

दारुहरिद्रा—हि॰ दारुहल्दी। बं॰ दारुहरिद्रा।

दाहागरु—हि॰ दाहागरु।

दीर्घरोहिषक—हि॰ बड़ा रोहिषक।

दुग्ध—हि॰ दूध।

दुग्धपाषाण—हि॰ शिरगोला।

दुग्धफेनी—हि॰ दुधफेनी।

दुग्धतुम्बी—हि॰ मीठी तूम्बी। बं॰ लाऊ।

दुरालभा—हि॰ धमासा। बं॰ दुराला।

देवदारु—हि॰ देवदारु।

देवदाली—हि॰ सोनेदा, बंदाल, घघरबेल, देवदाली, विदाल, बिंदाली।

द्रवन्ती—हि॰ छोटी मूसाकर्णी। बं॰ इंदूरकाणिपाना।

द्राक्षा—हि॰ दाख।

द्रोणपुष्पी—हि॰ गोमा, गुमा, दणहुली। बं॰ कलघसिया।

द्रौणेय—हि॰ द्रोणीलवण, बरतनका नमक।

ध

धन्वन—हि॰ धामिन। बं॰ धामनि।

धरणीकन्द—अनूप देशमें होता है

धव—हि॰ धौ, धावा। बं॰ धाओया।

धातकी—हि॰ धावई, धाय। बं॰ धाई।

धान्य—हि॰ धान्य।

धान्यक—हि॰ धनिया। बं॰ धनिया।

धान्यतैल—हि॰ धान्य तैल।

धाराकदम्ब—हि॰ धाराकदम्ब।

धाराकोशातकी—हि॰ तारई, तुरैया। बं॰ झिंगा।

धूम्रपत्रा—हि० कीड़ामार।
धूलिकदम्ब—हि० धूलिकदम्ब।
ध्वांक्षनाशिनी—हि० छोटो छाउबेर।

न

नख—हि० नख।
नखनिष्पाविका—हि० छोटी सेंबी।
नदीवट—हि० नदीबड़।
नद्योदुम्बरिका—हि० नदी गूलर।
नल—हि० नरसल। बं० नल, काची-आंची।
नलिका—हि० पनारी।
नवनीत—हि० मखन।
नवमल्लिका—हि० नेवारी।
नाकुली—हि० नकुलचन्द।
नागकेसर—हि० नागकेसर।
नागचम्पक—हि० नागचम्पा।
नागदन्ती—हि० नागासी। बं० नागदन्ती।
नागदमनी—हि० नागदौन। बं० नागदना।
नागबला—हि० गुलसकरी, गगेरन, गागेरुआ। बं० गोरक्षचाकुले।
नागरमुस्ता—हि० नागरमोथा।
नागवल्ली—हि० नागरवेल।
नाड़ीहिङ्गु—हि० डिकामाली।
नारिकेल—हि० नारियल।
नारङ्ग—हि० नारङ्गी।
निकुञ्चिका—हि० सीकाकाई भेद।
निर्विषा—हि० निर्विषी।
निष्पाव—हि० भटवासु, निष्पाव।
निष्पावी—हि० सेंवी।
निःश्रेणिका—हि० निश्रेणीतृण।
नील—हि० नीलम।
नीलदूर्वा—हि० नीली दूब।
नीलधत्तूर—हि० नीला धत्तूरा। बं० नील धुतूरा।
नील पलाश—हि० नीलपलास। बं० नील पलाश।
नीलबीज—हि० काला आसन। बं० नील आसन।
नीलवृक्ष—हि० नील वृक्ष।
नीलमार्कव—हि० पीला भांगरा।
नील यूथिका—हि० नीलीजूही।
नीलसिन्दुक—हि० नीलसम्भालू।
नीलागस्त्य—हि० नीलपलास। बं० नील पलाश।

नीलागिरिकर्णिका—हि० काली गोकर्णी, नीली कोयल। बं० नील अपराजिता।

नीलापुनर्नवा—हि० नीलीसांठ।

नीलाम्लान—हि० नीला कटसरैया।

नीलाम्ली—हि० काली पिठौंडी।

नीलालु—हि० कालाआलु, काला धोपा, भाड़ा चिमकुरा।

नीली—हि० नील, लील। बं० नील।

नीलोत्पल—हि० नील कमल, चन्द्रविकाशी।

नीवार—हि० तीनी। बं० उड़ीधान।

नैपाल—हि० नैपालनिव, चिरायता।

नन्दीवृक्ष—हि० नन्दीवृक्ष।

निम्ब तैल—हि० नीमके बीजका तेल।

निम्बूक—हि० नींबू। बं पातिलेंबू।

प

पखोड़—हि० पखोड़।

पटोल—हि० पड़वल, पटोल।

पताङ्ग—हि० पतङ्ग।

पद्मा—हि० भारङ्गी।

पद्मक—हि० पद्माख। बं० पद्मकाष्ठ।

पद्मकन्द—हि० कमलकन्द।

पद्माक्ष—हि० कमलगट्टा।

पद्मिनी—हि० पद्मनी।

पनस—हि० कटहर, कटैर, पनस। बं० कांठाल।

पर्पट—हि० पीत पापड़ा, दवन पापड़ा। बं० चेत पापड़ा।

परिपेल—हि० कैवटी मोथा। बं० केउटमुथा।

परूषक—हि० फालसे। बं० फलसा।

पलांडु—हि० प्याज। बं० पेयाज।

पाची—हि० पाच।

पाठा—हि० पाठ, पाढ़। बं० आकनादि।

पाणियालु—हि० पानीका आलु।

पानीय—हि० पानी।

पारद—हि० पारा।

पारिभद्र—हि० फरहद, जलनीम। बं० पालिदामादार।

पालक्य—हि० पालक। बं० पालेक।

पाषाणभेदी—हि० पाषाणभेदी।

पित्तल—हि० पीतल।

पिप्पली—हि० पीपर, पीपल। बं० पीपुल।

पिप्पलीमूल—हि० पीपरामूल। बं० पीपुलमूल।

पीतकरवीर—हि० पीलोकनेर। बं० पीत करवी।

पीतचन्दन—हि० पीला चन्दन।

पीततण्डुला—हि० मोतरंगनी, वृहतीभेद।

पीतधत्तूर—हि० पीला धतूरा। बं० पीत धुतुरा।

पीत पलाश—हि० पीला पलाश। बं० पीतपलाश।

पीत पुष्पी—हि० सहदेई। बं० पीतपुष्प, दण्डोत्पल।

पीत बन्धूक—हि० पीली दुपहरिया।

पीतमार्कव—हि० पीला भांगरा।

पीतागस्त्य—हि० पीला अगस्तिया। बं० पीत बक।

पीता जगंधा—हि० पीली हुरहुर।

पीताम्लान—हि० पीला कटसरैया।

पुत्रजीव—हि० जीयापोता, पुनजीया। बं० पुतञ्जिया।

पुत्रदा—हि० पुत्रदाई, गर्भदात्री।

पुन्नाग—हि० पुन्नाग, पुलाक। बं पुन्नाग।

पुष्करमूल—हि० गांठदार, पुष्करमूल।

पुष्पकासीस—हि० पुष्पकासीस।

पुष्पद्रव—हि० पुष्पद्रव।

पुष्पराज—हि० पुखराज।

पुष्पाञ्जन—हि० पुष्पाञ्जन।

पूग—हि० सुपारी। बं० सुपारी।

पूतिकरञ्ज—हि० दुर्गन्धकरञ्ज। बं० लाटा करञ्ज।

पृष्ठिपर्णी—हि० पिठवन, पिठौनी। बं० चाकुले, चाकोलिया, शङ्करजटा।

पेऊ—हि० जंगली आदा।

पेरोज—हि० फिरोजा।

पोतास—हि० भीमसेन कापूर।

पाण्डुफली—हि० पाटली।

पिण्डखर्जूरी—हि० पिण्डखजूर, छुहारा। बं० सोहारा।

पिण्डमूलक—हि॰ गोलमूली।
पिण्डालु—हि॰ पेंड़ालु।
पिण्डोतगर—हि॰ पिण्डोतगर।
पुण्डरोक—हि॰ सफेदकमल।
प्रपौण्डरोक—हि॰ पुण्डरिया।
प्रभद्र—हि॰ नोम। बं॰ निम।
प्रवाल—हि॰ मंगा।
प्रसारिणी—हि॰ गन्धप्रसारिणी, पसरन। बं॰ गन्धभादुलिया।
प्रियङ्गु—हि॰ फूलप्रियङ्गु। बं॰ प्रियङ्गु।
प्लक्ष—हि॰ पाकर, पाकर-खर। बं॰ पाकुड़।

फ

फञ्जिका—हि॰ फांजी।
फोंड़ालु—कोकण देशमें प्रसिद्ध।

ब

बक—हि॰ बड़ी बोलसिरी। बं॰ पद्मबक।
बकुल—हि॰ मोलसरी, बनफुला। बं॰ बकुल।
बटलोह—हि॰ बटलोहा, निखु।
बदरी—हि॰ बेर। बं॰ कुल।
बदरसाम्र—हि॰ बडा रसाल आम।
बनबर्बरिका—हि॰ सुगन्ध अजबला।
बनपिप्पली—हि॰ बनपीपल।
बब्बुल—हि॰ बबूर, कीकर। बं॰ बाबला।
बर्बर—हि॰ बाबरी, बनतुलसी।
बर्हिचूड़ा—हि॰ मोरशिखा।
बला—हि॰ बरियारा। बं॰ बेड़ेला।
बलोत्तरा—हि॰ खिरेटी, खरहटी। बं॰ श्वेतबेड़ेला।
बल्वज—हि॰ नाई, माबेबागे।
बस्तांत्री—हि॰ बोकड़ी।
बहुदल—हि॰ नाचनी।
बाकुची—हि॰ बावची। बं॰ सोमराज।
बालक—हि॰ सफेद बाला।
बिड़लवण—हि॰ बिरिया नमक कटिलानोन। बं॰ बिटलवण।
बिभीतक—हि॰ बहेड़ा। बं॰ बहेड़ा।
बिल्व—हि॰ बेलगाछ।
बिसग्रन्थि—हि॰ सांझी।
बीजपूर—हि॰ बिजौरा। बं॰ टावालेंबु।

बृहच्चञ्चु—हि० बड़ी चञ्चु।
बृहज्जीवन्तिका—हि० बड़ी जीवन्ती।
बृहत्पीलु—हि० बड़ा पीलु।
बृहती—हि० बड़ी कटाई, बरकटा। बं० बृहती, व्याकुड़।
बृहल्लजालु—हि० बड़ी लजालु।
वेणुबीज—हि० वेणुयव।
बोल—हि० बोल।
बन्धूक—हि० दुपहरिया, गजुनिया।
बन्ध्याककोंटका—हि० बांजककोड़ा, बांजखखसा।
वंशयव—हि० वंशयव।
ब्रह्मदण्डी—हि० उटकटारा।
ब्राह्मी—हि० ब्रह्मी, बरम्भी। बं० ब्राह्मी।

भ

भव—हि० रोमफल।
भद्रदन्तिका—हि० बड़ा दन्ती, मुगलाई अरंड।
भद्रमुस्ता—हि० भद्रमोथा। बं० भद्रमुथा।
भल्लातक—हि० भिलावा, भिलाए। बं० भेलां।
भार्गी—हि० भारङ्गी, भांडगी, ब्रह्मनेटी। बं० वामुनहाटी।
भूखर्जूरी—हि० छोटी जङ्गली खजूर।
भूतसार—हि० पीला सोनापाठा।
भूताङ्कुश—हि० भूतकेशी।
भूतुम्बी—हि० पातालतुम्बी।
भूतृण—हि० सुगन्ध रोहिष।
भूनाग—हि० केंचवे।
भूनिम्ब—हि० भूचिरायता, चिरैता। बं० भूचिराता।
भूपाटली—हि० भुंईपाडरी।
भूबदरी—हि० झरबेर।
भूमिज गुग्गुल—हि० भूमिगूगल।
भूमिजम्बू—हि० बनजामुन।
भूम्यामलकी—हि० भूंय आंवला, जरआंवला। बं० भूंइ आंवला।
भूम्याहुली—हि० सोनमक्खी।
भूर्जपत्र—हि० भोजपत्र। बं० भूर्जपत्र।
भृङ्गमारी—हि० भृङ्गमारी। (मालवामें प्रसिद्ध।
भृङ्गाह्वा—हि० भ्रमरच्छली।
भेंडा—हि० रामतोरई।

म

मदन—हि० मैनफल। बं० मयना फल।

मध—हि० दारु, यूनानी शराब।

मधु—हि० शहद।

मधुक—हि० महुआ। बं० मौल, महुवा।

मधुककर्कटी—हि० पपई, अण्ड-काकड़ी। बं० वाताबिलेबू।

मधुखर्जूरिका—हि० मीठी जङ्गली खजूर।

मधुजम्बीर—हि० मीठा नेबू। बं० कमलालेबु।

मधुनारिकेल—हि० मधुनारियल।

मधुरदाड़िम—हि०—अनार।

मधुवल्ली—हि० मुलहटी भेद।

मज्वर—हि० मज्वरतृण।

मल्लिका—हि० वेल मोतिया।

मसूर—हि० मसूर।

मरिच—हि० काली मिरिच।

महाकरञ्ज—हि० करञ्जी, अरारि, बड़ा करञ्ज।

महाकन्द—हि० लाल लहसन।

महाजम्बू—हि० राजजामन, फरेंद। बं० गोलापजाम।

महाद्रोण—हि० बड़ा गोमा।

महानिम्ब—हि० बकास। बं० घोड़ानिम।

महापारेवत—हि० बड़ो द्वीपान्तर खजूरी।

महापिण्डीतक—हि० बड़ा मैनफल।

महापिण्डीतरु—पण्डिरा वृक्ष।

महामेदा—गौड़ देशमें प्रसिद्ध है।

महानीली—हि० बड़ी नील।

महाराजाम्र—हि० महाराज आम्र।

महाराष्ट्री—हि० मरेटी पनिसंगा।

महावला—हि० सहदेई। बं० पीतपुष्प, दण्डोत्पल।

महाशतावरी—हि० बड़ी सतावर।

महाश्रावणी—हि० बड़ी मूंडी।

महिषीकंद—हि० भैंसाकंद।

मनःशिला—हि० मनसिल।

मत्स्याक्षी—हि० मछेछी, मछेद्री, जलपीपर। बं० कांचड़ाशाप।

माकन्दी—हि० मायमूड़।

माड़—हि० माड़ा।

माधवी—हि० माधवी।

माणिक्य—हि॰ मानिकलाल।
माष—हि॰ उरद।
मायाफल—हि॰ माजूफल।
मार्कव—हि॰ भांगरो। बं॰ भीमराज।
मालाकन्द—हि॰ मालाकन्द।
माषपर्णी—हि॰ मषवन, मश-वन, बनउर्दी। बं॰ माखानी, बनमाष।
मिश्रीमोश्री—हि॰ छोटा कांस।
मिश्रेया—हि॰ सौंफ, बड़ी सौंफ। बं॰ मौरी।
मीनाण्डी—हि॰ मिसरी, खड़ी-शक्कर।
मुकष्टक—हि॰ मठ, मोठ।
मुक्ताशुक्ति—हि॰ मोतीके सीप।
मुखालु—हि॰ मुखालु, कन्द-विशेष।
मुचकुन्द—हि॰ मुचकुन्द।
मुद्ग—हि॰ मूंग।
मुद्गपर्णी—हि॰ मुगौन, मुगवन। बं॰ मुगानि।
मुद्गर—हि॰ मोतिया।
मुरा—हि॰ एकाङ्गीमुरा। बं॰ मुरामांसी।
मुष्कक—हि॰ मोखा, फरवाह।
मुसलीकन्द—हि॰ काली मु-सली।
मूर्वा—हि॰ चूरौनहार, चूरन-हार, मरोरफली। बं॰ मूर्वा।
मूलपाती—हि॰ पोई भेद।
मूलक—हि॰ मूली।
मूषकमारी—हि॰ उंदिरमारी।
मृगाक्षी—हि॰ सम्भिनी।
मृणाल—हि॰ कमलकी दण्डी।
मेचकयूथिका—हि॰ मेचक जूही।
मेथिका—हि॰ बं॰ मेथी।
मेदा—गोड़ देशमें प्रसिद्ध है।
मेषशृङ्गी—हि॰ मेढ़ाशिङ्गी। बं॰ मेढ़ाशिंगा।
मोचरस—हि॰ मोचरस। बं॰ मोचरस।
मोरटा—हि॰ क्षीर चूरौनि न-हार, मुर्हरी।
मौक्तिक—हि॰ मोती।
मङ्गल्यागरु—हि॰ मङ्गलागरु।
मञ्जिष्ठा—हि॰ मजीठ। बं॰ मञ्जिष्ठा।
मांसरोहिणी—हि॰ मांसरोहि-णी। बं॰ चमारकषा।

मांसी—हि॰ छड़, जटामासी। बं॰ जटामासी।

मुञ्ज—हि॰ मूंज।

य

यव—हि॰ जौ।

यवचिंची तैल—हि॰ मत्यानाशी के बीजका तेल।

यवक्षार—हि॰ जवाखार।

यवानी—हि॰ अजवान। बं॰ यमानी, यौयन।

यवासा—हि॰ जवासा। बं॰ यवासा।

यष्टीमधु—हि॰ मुलहटी। बं॰ यष्टीमधु।

यावनल—हि॰ ज्वार, जोधरी, पोनरी।

यावनालशर—हि॰ रामशरभेद।

यूथिका—हि॰ जूही।

र

रक्त एरण्ड—हि॰ लाल अरण्ड। बं॰ लोहित एरण्ड।

रक्तकरवीर—हि॰ लाल कनेर। बं॰ रक्तकरवी।

रक्तखदिर—हि॰ लाल खैर।

रक्तगुंजा—हि॰ लाल घुंगची, चिरीमटी गुंज, चोटली। बं॰ लालकुंच।

रक्तचन्दन—हि॰ लालचन्दन।

रक्तचित्रक—हि॰ लालचिता।

रक्तधत्तूर—हि॰ लालधतूरा। बं॰ रक्त धुतुरा।

रक्तपलाश—हि॰ लालपलाश, ढाक, केसु, खाकरिया। बं॰ रक्तपलाश।

रक्त पाटली—हि॰ लाल पाडरि। बं॰ रक्त पारुल।

रक्तपादी—हि॰ लजालू, लज्जा-वन्ती।

रक्त पिण्डालू—हि॰ रतालू, रतगडा, टमणिया।

रक्तबन्धूक—हि॰ लाल दुपह-रिया।

रक्तबीज—हि॰ बीजेमार।

रक्तरोहितक—हि॰ रोहिडा रोहेरा।

रक्तशिग्रु—हि॰ लाल सहजना।

रक्तत्रिवृत—हि॰ लाल निसोथ।

रक्तागस्त्य—हि॰ लाल अग-स्तिया। बं॰ रक्तबक।

रक्तापामार्ग—हि० लाल ओंगा, चिरचिरा। बं० लाल आपांग।

रक्तापुनर्नवा—हि० सांठ, गदह-पूर्णा। बं० लाल पुनर्नवा।

रक्ताम्लान—हि० लाल कटसरैया, पोयाबांसा। बं० रक्तझिंटो, झांटी।

रक्तावसु—हि० लाल वसु।

रक्तोत्पल—हि० लाल कमल, चन्द्रविकाशी।

रसाञ्जन—हि० रसाञ्जन, रसौत।

रसोन—हि० लहसन, कांदा। बं० रसुन।

राजखर्जूरी—हि० राजपिण्ड-खजूर।

राजगिरा—हि० कलकाघास।

राजतरुणी—हि० बड़ा शेवती गुलाब।

राजधत्तूर—हि० राजधत्तूरा। बं राजधुतुरा।

राजपलाण्डु—हि० लाल प्याज।

राजबदर—हि० रायबेर।

राजमाष—हि० खेसारी भेद।

राजरीति—हि० सोन पितल।

राजादनी—हि० खिरनी। बं० कशिरनि, क्षीरखेजूर।

राजाम्र—हि० कलमी आम। बं० लता आम।

राजार्क—हि० लाल मन्दार। बं० रक्त मंदार।

राजावर्त—हि० रेवटी।

राजिका तैल—हि० राईका तेल।

राजिका पत्र—हि० राईकी शाक।

राल—हि० रार, राल। बं० धुना।

रास्ना—हि० रासना, रायसन। बं० रास्ना।

रीठाकरञ्ज—हि० रीठा।

रुद्रदन्ती—हि० रुद्रवन्ती।

रुद्रजटा—हि० ईश्वरमूल।

रुद्राक्ष—हि० बं० रुद्राक्ष।

रेणुका—हि० बं० रेणुका।

रोमक—हि० सूर्य्यखार, रेह-गवा, रेहगमानोन, रेहका नमक।

रोहिणी—हि० रोहिणी।

रौप्य—हि० रुपा, चांदी।

रन्ध्रवंश—हि० पोलेबास।

ल

लकुच—हि० बड़हर। बं० मादर।
लघुदन्ती—हि० दंती। बं० दन्ती।
लघुपीलु—हि० छोटा पीलू।
लघुवदरी—हि० छोटी बेर।
लघुशमी—हि० छोटा समी।
लघुशणपुष्पी—हि० छोटी शण-पुष्पी।
लघुलेष्मातक—हि० गुंदनी, लभेरा।
लताकरञ्ज—हि० कटूकरञ्जा, कारञ्जरा।
लवणक्षार—हि० लोणखार।
लवङ्ग—हि० लौंग। बं० लवङ्ग।
लक्ष्मणा—हि० सफेद कटेरी, श्वेतभटकटैया।
लक्ष्मणाकन्द—हि० लक्ष्मणाकंद।
लामज्जक—हि० पीलावाला।
लाक्षा—हि० लाख। बं० लाहा।
लोहकिट्ट—हि० मण्डूर, लोह-सिंहानिका, किट्टी, सिहान।
लोध्र—हि० लोध।
लांका—हि० खिसारी, कसूर।

व

वचा—हि० वच। बं० वच।
वज्रक्षार—हि० नोसादर।
वट—हि० बड़, बर। बं० वट।
वटपत्री पाषाणभेदी—हि० बड़-पत्ती पाषाणभेदी।
वत्सनाभ—हि० बचनाग, तिलि-याविष।
वत्सादनी—हि० छिरेटा, छिर-हटा। बं० पातालगरुड़ी।
वनज्या उपोदकी—हि० जङ्गली पोई।
वनबीजपूर—हि० जङ्गली बि-जोरा।
वनशृङ्गाटक—हि० छोटा गो-खरू।
वन्यदमनक—हि० जंगली दवना।
वरक—हि० पटी।
वरुण—हि० बरना। बं० वरुण।
वर्वरक—हि० वर्बर चन्दन।
वर्षिदूर्वा—हि० वर्षीदूब।
वर्षामूपाक—हि० विषखोपरा।
वसपत्र—हि० सफेद वसु।
वानीर—हि० जलवेत।

वार्ताकी—हि॰ बैगन, भंटा। बं॰ बेगुन।

वाराही—हि॰ गेंठी, मिर्बाली कंद।

वार्षिकी—हि॰ बेल।

वालुकी—हि॰ वालुकी ककड़ी।

वासक—हि॰ अरूसा, अडूसा, बं॰ वासक।

वासन्ती—हि॰ मधुमाधवी।

वास्तुक—हि॰ बथुवा। बं॰ बेतुया।

व्याघ्रनख—हि॰ व्याघ्रनख।

विकण्टक—हि॰ हरिया।

विकङ्कत—हि॰ कटाई, किङ्किणी। बं॰ बंइची।

विटखदिर—हि॰ दुर्गन्ध खैर।

विड़ङ्ग—हि॰ वायविड़ङ्ग।

विदारीकन्द—हि॰ विदारीकंद, दोनो विलियाकन्द।

विमला—हि॰ विमला।

विष—हि॰ बं॰ विष।

विषमुष्टि—हि॰ विषडोड़ी, करेरुआ।

विष्णुकन्द—कोकण देशमें प्रसिद्ध है।

विष्णुक्रान्ता——हि॰ विष्णुक्रान्ता।

वृक्षाम्ल—हि॰ विषाविल महादा। बं॰ महादा।

वृत्तमल्लिका—हि॰ बुधरू मोतिया।

वृद्धदारु—हि॰ विधारा। बं॰ वृद्धदारुक।

वृद्धि—गौड़ देशमें प्रसिद्ध।

वृश्चिका—हि॰ विछुवा।

वृश्चिकाली—हि॰ वृश्चिकाली।

वेतस—हि॰ बेंत।

वेत्र—हि॰ बड़ाबेत। बं॰ बेत्र।

वेल्लतर—हि॰ वबेल।

वैक्रान्त—हि॰ वैक्रान्त।

वैडूर्य—हि॰ वैडूर्य।

वैपरित्या लज्जालू—हि॰ बड़ी लजालू।

वन्दाक—हि॰ वंदा, वंदाक। बं॰ परगाछातादरा।

वंश—हि॰ बांस। बं॰—वंश।

वंशाङ्कुर—हि॰ बांसके अङ्कुर।

वंशपत्री—हि॰ वंशपत्री तृण।

वंशरोचना—हि॰ वंसलोचन।

श

शण—हि० सन।

शणपुष्पी—हि० शणहुली, शणई, घुंगरू। बं० वाणशणई।

शतपत्री—हि० शेवती, गुलदावरी।

शतपुष्पादल—हि० सोआ।

शतावरी—हि० छोटी सतावर। बं० शतमूली।

शताह्वा—हि० सोआ। बं० शुल्फा।

शबरचन्दन—हि० शबरचन्दन।

शमी—हि० समी, छेकरा सफेद कीकर। बं० शांइवावला।

शर—हि० सरपना।

शरपुङ्खा—हि० सरफोका।

शशाण्डुली—हि० एक प्रकारकी ककड़ी।

शाक—हि० सागवन। बं० शेगुन।

शाखोट—हि० सिहोड़ा। बं० श्याओड़ा।

शालि—हि० शालि।

शालिपर्णी—हि० सरिवन, शालवन। बं० शालपानि।

शाल्मली—हि० सेमर। बं० सिमुल।

शाल्मलीकन्द—हि० सेमलका कन्द।

शिनिवार—हि० शिरिआरी, सिलवारी। बं० शुनिशाक, शेमोला।

शिग्रु—हि० पीला सहजना। बं० पीत सजिना।

शिग्रु तैल—हि० सहजनेका तैल।

शिग्रुपत्रशाक—हि० सहजनेके पत्तेका शाक।

शिरीष—हि० शिरस, भिंझणी। बं० शिरीष।

शिल्पिका—हि० शिल्पिकतृण।

शिलाजतु—हि० शिलाजीत।

शुनक चिल्ली—हि० कुत्तेचील।

शूकधान्य—हि० शूकधान्य।

शेफालिका—हि० बन निर्गुण्डी।

शैलेय—हि० पत्थरफूल, छलीरा, भूरिछरीला। बं० शैलज।

शैवाल—हि० काई, बनकुम्भी। बं० पाना।

शोभाञ्जन—हि० काला सहजना।

शोली—हि० सोलीनामक जंगली हल्दी।

शङ्ख—हि॰ शङ्ख।

शङ्खपुष्पी—हि॰ सङ्खाहुली, कौड़ीयाला। बं॰ चोरकांचकी।

शङ्खिनी—हि॰ शङ्खवेल।

शिंशपा—हि॰ शीशम, सिसव। बं॰ शिशु।

शिम्बीधान्य—हि॰ शिम्बीधान्य।

शुण्ठी—हि॰ सोंठ, सूंठ। बं॰ सुंठ।

शृङ्गाटक—हि॰ सिङ्घाड़ा।

शृङ्गी—हि॰ कांकड़ासिङ्गी। बं॰ काकड़ाशृङ्गी।

श्यामाक—हि॰ सांवा, समा। बं॰ श्यामाघास।

श्योनाक—हि॰ सोनापाठा, अरलू, टेंटू। बं॰ सोना।

श्रावणी—हि॰ छोटी मुण्डी। बं॰ कुकुरी, भुंईकदम, भुनकुड़ी।

श्रीताल—हि॰ श्रीताड़।

श्रीवल्ली—हि॰ मांकाकाई।

श्रीवेष्ट—हि॰ विरोषधूप।

श्लेष्मातक—हि॰ जिहतोड़ा, निसोरे, बहुआर।

श्वेत अगस्त्य—हि॰ सफेद अगस्तिया, हथिया। बं॰ श्वेत बक।

श्वेत एरण्ड—हि॰ सफेद एरंड, अण्डीआ।

श्वेत करवीर—हि॰ सफेद कनेर। बं॰ श्वेत करवी।

श्वेत खदिर—हि॰ सफेद खैर।

श्वेत चित्री—हि॰ श्वेतचित्री।

श्वेत जीरक—हि॰ सफेद जीरा। बं॰ शुक्लजीरा।

श्वेत टङ्कण—हि॰ सफेद सोहागा।

श्वेत तुलसी—हि॰ सफेद तुलसी।

श्वेतदूर्वा—हि॰ सफेद दूब।

श्वेत धत्तूर—हि॰ सफेद धतूरा। बं॰ श्वेत धुतुरा।

श्वेत पाटली—हि॰ सफेद पाडरि। बं॰ श्वेतपारुल।

श्वेतपाषाणभेद—सफेद पाषाणभेद।

श्वेतबृहती—हि॰ सफेद बड़ी कटाई।

श्वेत बन्धूक—हि॰ सफेद दुपहरिया।

श्वेत मरिच—हि॰ सफेदमिरची।

श्वेत मरुवक—हि० सफेद मरुआ।

श्वेत मन्दार—हि० सफेद मंदार। बं० श्वेतमंदार।

श्वेत रोहितक—हि० सफेद रोहिड़ा।

श्वेत लोध्र—हि० पठानी लोध।

श्वेत वचा—हि० सफेद वच।

श्वेत शणपुष्पी—हि० सफेद शणपुष्पी।

श्वेत शरपुङ्खा—हि० सफेद सरफोंका।

श्वेत शिग्रु—हि० सफेद सहजना।

श्वेतशिंशपा—हि० पीला सिमव।

श्वेतकटभी—हि० सफेद कटभी, करही।

श्वेतपुनर्नवा—हि० विषखोपड़ा। बं० श्वेतपुनर्नवा।

श्वेताक्षी—हि० पनमींखा, पटकोना।

श्वेतार्क—हि० सफद आक। बं० श्वेत आकन्द।

श्वेतार्जक—हि० सफेद अजवला।

श्वेतावसु—हि० सफेद वसु।

श्वेतोत्पल—हि० सफेद कमल, चन्द्रविकाशी।

ष

षड्भुजा—हि० खरबूजा। बं० खरमूंजा।

षाड़्वत—हि० वालिवत।

स

सप्तपर्ण—हि० छितवन, सतवन, बं० छातिम।

सप्तच्छिला—हि० नद्याम्र, केचुआवृक्ष।

समुद्रफल—हि० कैथफल।

समुद्रफेन—हि० बं० समुद्रफेन।

समुद्रलवण—हि० नमक, सामुद्रनोन। बं० करकचलवण।

सरल—हि० धूप सरल। बं० सरल काष्ठ।

सर्ज—हि० बड़ा शाल। बं० झाजी शाल।

सर्पाक्षी—हि० सरहटी गन्धिनी, सुगन्ध नकुलकन्द। बं सर्पकङ्कालिका।

सर्पिणी—हि० सर्पिणी।

सर्वक्षार—हि० साबु।

सल्लकी—हि॰ शालई।

सली (सलेही) पिप्पली—हि॰ सिंहली पिप्पली।

सहचर—हि॰ सफेद कटसरैया।

सहदेवी—हि॰ सहदेई। बं॰ पीतपुष्प, दण्डोत्पल।

साखकंड—हि॰ पड़वास, बड़ी माई, छोटी माई।

सातला—हि॰ शातला, थूहरका भेद। बं॰ सिजविशेष।

सारिवा—हि॰ गौरीसर, गौरिआसाऊ। बं॰ अनन्तमूल।

सार्षपपत्र—हि॰ सरसों का शाक।

सार्षप तैल—हि॰ सरसोंका तैल।

सिकता—हि॰ बालू रेती।

सक्थक—हि॰ मोम।

सिग्रुडी—हि॰ शग्रुडी।

सितदर्भ—हि॰ कुसदाभ—डाभ, दाभवड़ी।

सितपलाश—हि॰ सफेद पलास। बं॰ श्वेत पलाश।

सिद्धार्थ—हि॰ सफेद सरसों।

सीसक—हि॰ सीसा।

सुगन्धभूस्तृण—हि॰ सुगन्धतृण।

सुरपुन्नाग—हि॰ सुरपुन्नाग, कमल। बं॰ छवियामाफुल।

सुवर्णकदली—हि॰ सोनकेला।

सुवर्णकेतकी—हि॰ सुवर्णकेतकी।

सुवर्णगैरिक—हि॰ सुवर्ण गेरु।

सुवर्णमाक्षिक—हि॰ सोनामाखी।

सूक्ष्मशोलिका—हि॰ छोटीलोनी।

सूरण—हि॰ सूरन, जमीकन्द। बं॰ श्रोल।

सूर्य्यकान्त—हि॰ आगियो काच।

सौराष्ट्री—हि॰ गोपीचन्दन।

सौवर्चल—हि॰ सोचर, नोन, काला नमक, चोहा रकोड़ा। बं॰—सचल लवण।

सौवीर—हि॰ काला सुरमा।

साम्भर—हि॰ साम्भरलोण।

सिन्दूर—हि॰ सिन्दूर।

सिन्दूरी—हि॰ सिन्दुरिया, जाफर लटकाघ।

सिन्दुवार—हि॰ श्वेत सम्भालु, निर्गुण्डी, मेउडी, मेंदुआरि। बं॰ निसिन्दा।

सैन्धव—हि॰ सैन्धानिमक, लाहौरी निमक।

स्थलपद्मिनी—हि॰ स्थल कमलिनी।

स्थूलैरण्ड—हि॰ बड़ा अण्ड।

स्थूलैला—हि॰ बड़ी लायची। बं॰ बड़ इलायची।

स्थूलशर—हि॰ बड़ा सरपता।

स्थौणेयक—हि॰ थुनेर।

स्निग्धदारु—हि॰ तेलिया देवदारु।

स्नुही—हि॰ थेहुर, सेहुड। बं॰ सिजवृक्ष।

स्पृक्का—हि॰ असवरग, लङ्कोदकपुरी। बं॰ स्पृक्काशाक।

स्फटिक—हि॰ स्फटिक।

स्फटिकी—हि॰ फिटकिरी।

स्रोतोञ्जन—हि॰ लाल सूरमा।

स्वयंगुप्ता—हि॰ कौंछ, किवांच। बं॰ आलकुसी।

स्वर्जिक्षार—हि॰ सज्जी।

स्वर्ण—हि॰ सोना।

स्वर्णक्षीरी—हि॰ चोक, सत्यानासी। बं॰ चोक सियालकांटा।

स्वर्णुली—हि॰ सनाय।

स्वादुपटोली—हि॰ मोठापटोल।

ह

हपुषा—हि॰ बड़ी हाउबेर।

हारक—हि॰ हारा।

हरिचन्दन—हि॰ कुङ्कुमागुरुचन्दन।

हरिताल—हि॰ हरिताल।

हरिद्रा—हि॰ हल्दी। बं॰ हरिद्रा।

हरिद्रु—हि॰ हर्दिदा।

हरिद्दर्भ—हि॰ बड़ा दाभ।

हरीतकी—हि॰ हरड, हर्ड, हरे। बं॰ हरीतकी।

हरीतकीतैल—हि॰ हरड का तेल।

हस्तजोड़िका—हि॰ हातजोड़।

हस्तिकोशतकी—हि॰ नेनुआ, गलका तोरई, घीया तोरई। बं॰ धुधुल।

हस्तिमद—हि॰ हस्तिमद।

हस्तिकन्द—हि॰ हाथी चिंघारी। बं॰ कातु।

हस्तिशुण्डी—हि॰ हाथीशुण्डा।

हिंतावली—हि॰ हिंतावली।

हिज्जल—हि॰ जलजमेर।

हेमजीवन्तिका—हि॰ स्वर्ण जीवन्ती।

हेमयूथिका—हि० पोली जूही।

हंसपादो—हि० गोहालिया।

हिङ्गु—हि० होंग। बं० होंग।

हिङ्गुपत्री—हि० बाफली। बं० ग्रं दुनी।

हिङ्गुल—हि० सिंगरख।

हिन्ताल—हि० बड़ा ताड़।

ह्रस्वालव—हि० छोटो पाखर।

क्ष

क्षव—हि० चवरा, चोरा, रत्तरा, वीड़ा, लोनिया।

क्षीरकाकोली—हि० क्षीरकाकोली।

क्षीरणी—हि० पिसोरा।

क्षीरविदारी—हि० दूधविदारी।

क्षुद्रकारलीकन्द—हि० कड़वीकन्द।

क्षुद्रचञ्चु—हि० छोटो चञ्चु।

क्षुद्रदुरालभा—हि० छोटा धमासा।

क्षुद्रपाषाणभेद—हि० क्षुद्रपाषाणभेद।

क्षुद्रशङ्ख—हि० छोटा शङ्ख।

क्षुद्रा उपोदकी—हि० छोटो पोई।

क्षुद्राग्निमन्थ—हि० छोटो अरनी।

श्रीगणेशायनमः

वैद्यक-शिक्षा।

प्रथम खण्ड।

स्वास्थ्यविधि।

"स्वस्थवृत्तं यथोद्दिष्टं यः सम्यगनुतिष्ठति।
स समाः शतमव्याधि रायुषा न वियुज्यते।"

चरकसंहिता।

स्वास्थ्य सम्पादन करनाही चिकित्सा शास्त्रका मुख्य उद्देश्य है। रोग उत्पन्न होनेसे चिकित्सा द्वारा उसका निवारण करना जैसा आवश्यक है, वैसही रोग आक्रमणके पहिले जो सब उपायों के अवलम्बन करने से रोग उत्पन्न न हो, उसका प्रतिपालन करना उससेभी अधिक आवश्यक है। स्वास्थ्य रक्षाही रोगोत्पत्तिके निवारण का एकमात्र उपाय है। यथोपयुक्त बल वर्णादि सम्पन्न नीरोग शरीर से निर्दिष्ट आयुके उपभोगका नाम स्वास्थ्य है। तथा जिस रीति के आहार विहारादि से स्वास्थ्यकी रक्षा होती है उसको स्वास्थ्यविधि कहते हैं।

चिकित्सा शास्त्रका उद्देश्य।

शरीरीमात्रको स्वास्थ्य एकान्त प्रार्थनीयहै, कारण, ऐहिक पारत्रिक जितने कामहैं सबका मूल स्वास्थ्यहीहै। शरीर नीरोग न रहनेसे ऐहिक सुखजनक विद्या, धन, यश, अभीष्टलाभ, अथवा व्रत यज्ञादि पारलौकिक धर्म्ममूलक कार्य्य सम्पादन, ये दोमें कोई कार्य्यभी सम्पन्न नहीं हो सक्ता। वस्तुतः एक मनुष्य सब गुण-युक्त अनुकूल पुत्र कलत्रादि परिवार परिवृत नष्ट स्वास्थ्य होनेसे

जैसा दुःखित होताहै, दूसरा मनुष्य सम्पूर्ण नीरोग पर थे सब सुखोंसे वंचित रहने परभी वैसा दुःखित नहीं होता। यही सब कारणोंको विचार करके आर्य्य मनीषि गणोंने जो सब उपायोंके अवलम्बन करनेसे, मनुष्यगण जराव्याधि प्रभृतिसे अव्याहति पा सके वही सब उपदेशोंका उल्लेख चिकित्सा शास्त्रमें पहिले कियाहै। हमभी उसी रीतिके अनुसार इस पुस्तकके आरम्भमें प्रथम स्वास्थ्यरक्षाहीके विषयमें कई एक संक्षिप्त नियम यहां सन्निवेशित करतेहैं।

शारीरिक स्वास्थ्य लक्षण।

स्वस्थ व्यक्ति अर्थात् जिनके शरीरमें वात, पित्त और कफ यह तीन दोष; रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि मज्जा, शुक्र और ओज यह अष्टधातु और मूत्र, पुरीष, स्वेदादि मल समूह उपयुक्त मात्रासे है, उनको ब्राह्म मुहूर्त्तमें अर्थात् चार दंड रात रहते बिछौनेसे उठ कर मल मूत्रादि त्याग कर दतुवनसे मुख धोना चाहिये। पूर्व या उत्तर मुख बैठकर करंज, करवीर, अकवन, मालती, अर्ज्जुन, खैर अथवा कटुतिक्त और कषाय रसयुक्त कोई काठको कूंचो बनाकर दांतके मसूड़ोंको छोड़कर दांतको साफ करना; तथा सोना, चांदी, ताम्बा, सीसा या पीतलकी बनाई जीभीसे जिह्वा साफ करना, इस रीतिसे दन्त प्रभृति साफ और मुखकी दुर्गन्धि नाश होनेसे अन्नादिमें रुचि होतीहै। अजीर्ण, वमन, श्वास, कास, ज्वर, तृष्णा, मुखपाक और हृद्रोग, नेत्ररोग, शिरोरोग तथा कर्णरोगसे पीड़ित मनुष्योंको दतुवनसे दांत साफ करना उचित नहीहै; सफेद मिट्टी, कोयलेकी बुकनी, कंडेकी राख आदिसे उनको दन्त मार्ज्जन करना चाहिये। प्रातःकालकी तरह तीसरे पहरको भी दतुवनसे मुख साफ करना उचित है।

इसके बाद व्यायाम (कसरत) करना। अर्द्ध श्रान्ति बोध व्यायामकी मात्रा निर्द्दिष्ट है; अर्थात् ललाटमें पसीना आना और ईषत् दीर्घ निःश्वासादि लक्षणसे अर्द्धश्रान्ति अनुभव कर व्यायाम बंद करना।

व्यायाम।

शीत और वसन्तके सिवाय और ऋतुओंमें व्यायाम कुछ कम करना चाहिये। कारण, अधिक व्यायाम इन ऋतुओंमें करनेसे, तृष्णा, क्षय, प्रमतक (श्वास विशेष) रक्तपित्त, कास, ज्वर और वमन प्रभृति उत्कट रोग होनेका डरहै। उचित मात्रामें व्यायाम करनेसे, शरीरको लघुता, कष्ट सहिष्णुता, अग्निकी दीप्ति, मेदक्षय और अंगका सुगठन आदि उपकार होताहै। बालक वृद्ध और वात पित्त तथा अजीर्ण रोगीको व्यायाम निषेध है।

व्यायामके बाद सब शरीर थोड़ी देरतक मर्द्दन करना आवश्यक है, इससे व्यायाम जनित श्रान्ति दूरहो शरीर फुरतीला होताहै। सम्पूर्ण थकावट दूर होने पर सर्व्वाङ्गमें विशेषकर मस्तक, पैरके तलवे और कानके छेदोंमें तेल मर्द्दनकर स्नान करना। शरीरमें तेल मर्द्दन करनेसे शरीर दृढ़, पुष्ट, क्लेशसह, सुखस्पर्श, और सुन्दर त्वक-युक्त होताहै; तथा इससे जरा, श्रान्ति और विकृत वायु दूरहो आयुकी वृद्धि होतीहै। मस्तकमें तेलमर्द्दन करनेसे, खालित्य (टाक), केशकी अकाल पक्कता और केशका झड़ना आदि रोग दूरहो मस्तक और कपालके बलकी वृद्धि, केशके मूलकी दृढ़ता, दीर्घत्व और कृष्णत्व, इन्द्रिय समूहोंकी प्रसन्नता और सुनिद्रा होतीहै। पैरके तलवोंमें तेल मालिश करनेसे पदद्वयकी कर्कशता, रूक्षता और स्पर्श अभिज्ञता आदि दोष दूर हो, स्थैर्य्य और बलवृद्धि, सुकुमारता और आंखकी ज्योति बढ़तीहै। औरभी पैरका फटना, गृध्रसी वात

तैलाभ्यङ्ग।

और स्नायु संकोचको आशङ्का नहो रहतोहै। कानके छेदोंमें तेल डालनेसे ऊंची आवाजका सुनना और बहिरापन आदि वायुजनित कर्णरोग तथा मन्यास्तम्भ और हनुग्रह प्रभृति वातज पीड़ा उत्पन्न नहीं होती। वस्तुत: तैलाभ्यङ्ग सर्व्वतोभावसे करना उचितहै। चर्म्म, कलस और गाड़ीके चक्रमें तेल देनेसे जैसे बहुत दिन तक स्थायी रहताहै, मनुष्य शरीरभी वैसही तैलाभ्यङ्गसे बहुत दिन तक सबल और कार्य्यक्षम बना रहताहै। वमन विरेचनादिके बाद, कफ रोगी और अजीर्ण रोगीको तैलाभ्यंग करना उचित नहीहै।

स्नानविधि।

तैल मर्द्दनके बाद साफ और बहते पानीसे स्नान करना, अभाव में साफ पानी गरम कर ठंढा होने पर स्नान करना चाहिये। गरम पानीसे स्नान करना हो तो, मस्तकमें गरम पानी न देकर ठंढा पानी देना चाहिये, कारण गरम पानी शारीरिक बलप्रद होने परभी मस्तकमें देनेसे केश और चक्षुके बलको नष्ट करताहै। स्नान करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध, मैल, दाह, पसीना, वीभत्सता, भारीपन, तन्द्रा, और खुजली आदिका नाश होताहै तथा शारीरिक बलवृद्धि, आयुर्वृद्धि और अग्निकी दीप्ति होतीहै। स्नानके बाद पहिले गीले अंगोछेसे बदन पोछना, फिर सूखे वस्त्रसे बदन पोछकर, साफ सूखा वस्त्र पहिरना और चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यका अनुलेपन करना चाहिये। अर्द्दित रोग, नेत्र, कर्ण और मुख रोगमें, अतिसार रोगमें, पीनस रोगमें, अजीर्ण रोगमें और आहारके बाद स्नान करनेसे अनिष्ट होताहै।

आहार।

स्नानके बाद साफ जगह में स्थिर भावसे बैठकर उपयुक्त मात्रासे थोड़ा गरम, स्निग्ध मधुरादि छ रस सम्पन्न, बलकर रुचि जनक, और बिशुद्ध

प्रियजनका दिया भोज्य पदार्थ बहुत जलदी और न बहुत देरसे मौनावलम्बन पूर्व्वक भोजन करना। जितना भोजन करनेसे कुक्षि, हृदय या पार्श्वद्वयमें दर्द और शरीर भारी मालूम न हो अथवा उदर और इन्द्रिय समूहोंकी प्रसन्नता मालूम हो, क्षुधा पिपासाकी शान्ति हो और शयन, उपवेशन, गमन, निश्वास, प्रश्वास और कथोपकथनमें कष्ट न हो वही आहारकी मात्रा है। किन्तु भोज्यवस्तुकी गुरुता और लघुतासे उसकी मात्रा स्थिर करना उचित है;—गुरुपाक अर्थात् देरसे हजम होनेवाला पदार्थ अर्द्ध तृप्ति अर्थात् आधा पेट और लघुपाक द्रव्य पेटभर खाना उचित है। उपयुक्त मात्रा आहार न कर अल्प मात्रा या अधिक मात्रा भोजन करनेसे विशेष अनिष्ट होनेकी आशंका है। अल्पाहारसे तृप्ति नहीं होती, उदावर्त्त रोग उत्पन्न होताहै, बल, वर्ण, आयु, रस रक्तादि धातु समूह और ओज क्षीण होता है; तथा मन, बुद्धि और इन्द्रिय सब उपतप्त और यावतीय वायु रोग उत्पन्न होतेहै। अधिक मात्रा आहार करनेसे उगपत् समुदाय दोष कुपित हो अजीर्ण, अग्निमान्द्य, विसूचिका (हैजा) अलसक प्रभृति दुरारोग्य रोग समूह उत्पन्न होतेहै। अपरीष्कृत स्थान, शून्यगृह, नीच जातिका गृह, प्रातःसन्ध्या और सायंसन्ध्या प्रभृति समयमें उत्तर मुख बैठकर, पहिलेका आहार अच्छी तरह जीर्ण न होनेपर, अन्यमनस्क भावमें अथवा ज्वरादि आहार निषिद्ध रोगसे पीड़ित होनेपर आहार करना उचित नहीं है। इसके सिवाय शोणित द्रव्य, पर्य्युषित और सूखी वस्तु, विरुद्ध वीर्य्य और क्षीर मत्स्यादिके तरह संयोग विरुद्ध द्रव्यभी आहार करना भी अनुचित है।

भोजनके बाद जायफल लताकस्तुरीका फल, कंकोल फल,

आहारान्ते कर्त्तव्य। लौंग, छोटी एलायची, कपुर, और सुपारी आदि मसालायुक्त पान खाना चाहिये, इससे खायाहुआ द्रव्य समस्त क्षारसे मिलकर हजम होताहै; और मुखको विरसता दूरहो सुगन्धयुक्त होताहै। इसके बाद थोड़ी देर बायें तरफ लेटना चाहिये। दिनको भोजनके बाद सोना उचित नही है। कारण दिनको सोनेसे कफ पित्त प्रकुपित हो हलीमक, शिर:शूल, स्तैमित्य, गात्रगौरव, अङ्गमर्द, अग्नि-मान्द्य, हृदय उपलेप, शोथ, अरोचक, हृल्लास, पीनस, अर्द्धाव भेदक, कोठ, व्रणपीड़िका, कण्डु, तन्द्रा, कास, गलरोग प्रभृति और बुद्धि-नाश, स्रोतो रोध, और इन्द्रिय समूहोका दुर्व्वल होना आदि रोग होने-कीआशंका रहतीहै। पर जिनको संगीत अध्ययन, मद्यपान, अधिक रात्रि जागरण, मैथुन, भारवहन, पथ पर्य्यटन आदि कामोंसे क्लान्ति हुईहै और अजीर्ण, क्षत, तृष्णा, अतिसार, शूल, श्वास, हिक्का, उन्माद, पतन या आघातादिसे पीड़ित तथा क्रोधी, शोकार्त्त भीरु, वृद्ध, बालक, क्षय या दुर्व्वल है उनके हकमे दिवा निद्रा उपकारीहै। साधारणत: दिवा निद्रा मना रहने परभी ग्रीष्म ऋतुमें स्वभावत: रुक्ष और इस ऋतुमें सूर्य्यकिरण तेज और रात्रि मान अति अल्प होनेके कारण दिवा निद्रा अनिष्टजनक नही है। किन्तु मेदस्वी, कफ प्रकृति या कफ रोग पीड़ित और दूषित विषादिसे पीड़ित ऐसे मनुष्यको ग्रीष्म ऋतुमेंभी दिवा निद्रा अनिष्ट कारक है।

भोजनके बाद शारीरिक परि म जनक कार्य्य, तेज चलनेवाली सवारीमें चढ़ना और आंचके सामने या धूपमे बैठना उचित नही है। दो पहरके पहिले या तीसरे पहर को भोजन करना अनुचित है।

तीसरे पहरको जब सूर्य्यकी किरण ठंढी हो तब थोड़ी देर

बगीचा आदि खुले स्थानमें टहलना उचितहै, इससे अग्निकी दीप्ति, शारिरीक फूर्ती और मन प्रफुल्ल होताहै। टहलती वक्त जुता पैरमें रहना चाहिये, इससे पदद्वयमें किसी तरहका कष्ट नही होता और आंखके हकमें उपकारीहै। धूप, वृष्टि या शिशिरके समय कही जाना होतो छाता सिरपर लगाना अवश्य उचितहै।

रातको एक पहरके भीतर उपर कहे अनुसार उपयुक्त मात्रासे आहार करना चाहिये। रातको दधि भोजन करना कदापि उचित नहीहै। आहारके बाद सुखा-साफ और हवादार घरमें अवस्थानुसार पलंग, चौकी, चारपाई आदि पर ऋतु भेदानुसार कोमल सुखस्पर्श बिछौनेपर सोना चाहिये। रातको ६ घंटे ८ आठ घंटे तक सोना उचितहै। इससे कम या अधिक देर तक सोनेसे शारीरिक क्षयता, दौर्ब्बल्य, और कई कठिन रोग अथवा मृत्यु तक होनेका डरहै। इससे मनुष्य मात्रको स्वास्थ्य रक्षाके विषयमें आहारादिके भांति उपयुक्त मात्रा निद्रा करनाभी एकान्त आवश्यक है।

सहवास।

शरीर रक्षाके लिये सहवास अर्थात् मैथुनभी नितान्त उपयोगी है। ऋतु भेदसे उपयुक्त कालमें अनुरागिनी और अनुकूला स्त्रीसे उपगत होना चाहिये। रजस्वला, कुष्ठादि रोग पीड़िता, स्वकीय अनभिमत रूप या अनाचार विशिष्टा, अनासक्ता या अन्यासक्ता स्त्री, परस्त्री, दुष्टयोनि, पश्वादि योनि, योनि भिन्न गुह्यद्वारादि अन्य छिद्रमें अथवा हस्तमैथुन नही करना। तथा प्रातःसन्ध्या या सायंसन्ध्या, पूर्णिमा, अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, संक्रान्ति और श्राद्ध दिन प्रभृति निषिद्ध दिनको; देवालय, चतुष्पथ, श्मशान, जलाशय तीर, गुरु ब्राह्मण आदिका मकान, शराबकी दुकान आदि स्थानोमें अथवा

जहां बहुत मनुष्य रहे ऐसे स्थानमें मैथुन करना उचित नही है। ज्वरादि यावतीय रोग पीड़ित मनुष्यको मैथुन करना नही चाहिये।

यह सब निर्द्दिष्ट नित्य कर्मके सिवाय ऋतुभेदानुसार कई विशेष नियम प्रतिपालन करना चाहिये।

ऋतुचर्य्या शीत और हेमन्तमें।

हेमन्त और शीत ऋतुमें शीतल वायु स्पर्शादिसे पेटके भीतरकी अग्नि रुद्ध होतीहै, इससे अग्नि बल उसवक्त बढ़ताहै तथा उपयुक्त मात्रा आहार न मिलनेसे रसादि धातु समूहोको परिपाक करता है, इससे इस ऋतुमें अधिक गोधूमादि निर्म्मित अन्न और लवण रसयुक्त स्निग्ध पिष्टकादि भोज्य, जलज और आनूप प्रभृति मांस अभ्यास रहनेसे मद्य, दूध, और दूधकी बनाई वस्तु और मिष्टान्न प्रभृति खाना चाहिये। स्नान, पान, आचमन, और शौचादि कार्य्यमें गरम पानी व्यवहार करना। रेशम, कपास, और पशुलोम निर्म्मित वस्त्रसे बदन ढाकना, उष्णगृह और उष्ण शय्यामें शयन करना, इस ऋतुमें रोज मैथुन करनेसेभी शरीरमें किसी प्रकारके हानिकी आशंका नहीहै। कटुतिक्त और कषाय रसयुक्त द्रव्य, लघु द्रव्य, और वायुवर्द्धक द्रव्य भोजन, वायु सेवन, और दिवा निद्रा आदि हेमन्त और शीतमें परित्याग करना चाहिये। हेमन्त और शीतके आचरण प्राय एकही तरहहै; इसलिये दोनोकी ऋतु चर्य्या एक साथ लिखी गयीहै, पर शीतके न्युनाधिक्यमें पूर्व्वोक्त आचरण समूहोंमें किंचित हेर फेर करना आवश्यकहै।

हेमन्तका संचित कफ वसन्त कालके सूर्य्यके प्रखर किरण से कुपित हो पाचकाग्निको दुषित करताहै, इससे बहुतेरे रोग होनेकी सम्भावनाहै।

वसन्तमें

अतएव वसन्त ऋतुमें वमनादिसे कफको निकालना उचित है। इस ऋतुमें लघुपाक, उष्णवीर्य्य, कटु, तिक्त, कषाय और लवणयुक्त अन्नादि, हरिण, शशक, आदिका मांस आहार तथा स्नान पान आचमन और शौचादि कार्य्योंमें थोड़ा गरम पानी लेना चाहिये। पोशाक और बिछौना हेमन्त ऋतुके तरह व्यवहार करना। युवती स्त्रीका संग प्रशस्त है। गुरु, स्निग्ध द्रव्य, और अम्ल, मधुर रस भोजन, दिवा निद्रा आदि वसन्त कालमें अनिष्ट कारक है।

ग्रीष्मकालमें मधुर रसयुक्त शीतल और स्निग्ध द्रव्य आहार और पान करना चाहिये। इस ऋतुमें जांगल पशु पक्षीका मांस, घृत, दूध, शालि-धान्यका भात आदि भोजन, शीतल गृहमें अल्प दिवानिद्रा, रातको शीतल गृह और शीतल बिछौने पर शयन, सुशीतल उपवन और जलाशयके तीर आदि स्थानोंमें विचरण हितकर है। कपास निर्म्मित हलका पोशाक इस समयमें व्यवहार करना। लवण, अम्ल और कटुरसयुक्त तथा उष्ण वीर्य्य द्रव्य भोजन, मैथुन और मद्यपान ग्रीष्म ऋतुमें निषिद्ध है। मद्यपानका विशेष अभ्यास हो तो अधिक पानी मिलाकर थोड़ा मद्यपान करसकते हैं।

ग्रीष्ममें।

वर्षामें ग्रीष्मसंचित वायु कुपित होता है, इससे अनुवासन कर्म्म (स्नेहपिचकारी) से वायुको शान्त करना चाहिये। इस ऋतुमें अग्निबल क्षीण होनेके कारण आहार हलका करना चाहिये। वर्षा ऋतुमें पानी बरसनेसे किसीवक्त शीतकालकी तरह, किसी वक्त पानी न बरसनेसे ग्रीष्मकालकी तरह अनुभव होता है। इससे इस ऋतुका पान, आहार, शय्या, और पोशाक आदि विचार

वर्षामें।

कर शीत, ग्रीष्म, वसन्त आदिके भांति समय समय पर बदलना आवश्यक है। स्नाने पीनेकी वस्तुमें थोड़ा सहत मिलाकर खाना पीना चाहिये। जांगल मांस, पुराना यव, गेहूं वा धान्यादि अन्न और अधिक खट्टा, लवण और स्निग्ध द्रव्य भोजन करना उचित है। वृष्टि, कूप या सरोवरका पानी गरम कर ठंढा होने पर पान और स्नान करना चाहिये। मद्यपान करना हो तो ग्रीष्मकालके तरह पुराना मद्य बहुत पानी तथा थोड़ा सहत मिलाकर पीना। इस्वंश रूईका साफ कपड़ा पहिरना उचितहै। वृष्टि और वृष्टिजन्य भूवाष्प (जमीनके भीतरसे एक प्रकारका गैस उठताहै उसको भूवाष्प कहतेहै) शरीरमें न लगने पावे। दिनको सोना, ओस, धूप आदिमें फिरना, नदीके पानीमें स्नान, व्यायाम और मैथुन इस समय में बहुत अनिष्टकारक है।

शरत कालमें वर्षा ऋतुका संचित पित्त सहसा अधिकतर सूर्य्य किरण प्राप्त हो कुपित हो उठताहै।

शरतमें।

इससे इसवक्त विरेचनसे पित्तको शान्त और जलौकादिसे रक्त मोक्षन करनेकी विधिहै। लघुपाक, शीतल, मधुर और तिक्तरस संयुक्त अन्नपान हितकारी है; यव, गोधूम और धान्यादिका अन्न, बटेर, चटक, हरिण, शशक, मेष प्रभृतिके मांस ; नदीके जलसे स्नान और पान ; निर्म्मल और हलका वस्त्र पहिरना, सुकोमल और सुखस्पर्श शय्या तथा चन्द्रकिरण शरत् ऋतुमें सेवन करना उचित है। क्षार द्रव्य, दही, जलज और आनूप मांस भोजन, तैल मर्द्दन शिशिर और पूर्व्वदिशको वायु स्पर्श शरत्कालमें अनिष्ट कारक है।

साधारणत: वसन्तकालमें वमन, शरत कालमें विरेचन और वर्षाकालमें अनुवासन विधिका उपदेश रहनेपरभी मास भेदसे

इसको विशेष विधि कहते हैं ; जैसे—चैत्रमासमें वमन, श्रावणमें अनुवासन और अगहनमें विरेचन कराना उचित है।

ऋतु भेदसे जो सब खास्थ विधि ऊपर कह आए हैं, अपने अपने प्रकृति अनुसार उसका थोड़ा हेरफेर भी कर सकते हैं। वायु प्रकृतिके मनुष्यका वायु

ऋतुभेदसे ऋतु चर्य्या।

जिसमें शान्त रहे, वैसाही आहार विहारादिका आचरण सब ऋतुमें करना। ऐसही पित्त प्रकृतिके मनुष्य को पित्तनाशक और श्लेष्म प्रकृतिवालेका श्लेष्म नाशक आहारादि कराना चाहिये। स्निग्ध, उष्ण मधुर, अम्ल और लवण रसयुक्त द्रव्य भोजन, शीतल पानीसे स्नान, शीतल जल पान, सम्वाहन (हाथ पैर दबाना) सर्व्वदा सुखजनक कार्य्य, घृत तैलादि स्नेह द्रव्य व्यवहार, अनुवासन (स्नेह पिचकारी) अग्निदीपक और पाचक औषधादि सेवनसे वात प्रकृतिके व्यक्तिका वायु शान्त होता है। मधुर तिक्त और कषाय रस संयुक्त शीतल द्रव्य पान भोजन, घृत पान, सुगन्धि द्रव्य सूंघना, मोती हीरा और पुष्पादिको माला धारण, गीत बाद्य आदि श्रुति सुखकर शब्द सुनना, प्रियजनोंके साथ बात चीत, ठंढी हवा और चन्द्रकिरणमें फिरना ; मनोरम उपवन, नदीतीर या पर्व्वतशिखर प्रभृति मनोहर स्थानोंमें विचरण और विरेचन तथा तिक्त घृतादि औषध सेवनसे पित्त प्रकृति मनुष्यका पित्त शान्त रहता है। कटु तिक्त और कषाय रसयुक्त तथा तीक्ष्ण उष्णवीर्य्य द्रव्य पान भोजन, सन्तरण, अश्वारोहण, व्यायाम, रात्रि जागरण, रूक्ष द्रव्यसमूह द्वारा गात्र मर्द्दन, धूमपान, उपवास, उष्ण वस्त्र परिधान, और वमनादि क्रियासे श्लेष्म प्रकृति के मनुष्य का श्लेष्म प्रशमित होता है। अतएव अपनी अपनी प्रकृतिका विचार कर ऊपर लिखे उपदेशोंको जहांतक बनें पालन करना चाहिये।

स्वास्थ्यान्वेषीका कर्त्तव्य।

यह सब दैनिक कार्य्य और ऋतु चर्य्याके सिवाय औरभी कई एक सदाचार स्वास्थ्यान्वेषी मनुष्यमात्रोंको अवश्य पालन करना उचितहै। इससे संक्षेपमें उसकोभी यहां लिखतेहैं। सवेरे स्नानके बाद और शामको ईश्वर चिन्ता प्रभृति धर्म्म-कार्य्यका अनुष्ठान करना। देवता ब्राह्मण गुरु और पूज्योंको सर्व्वदा भक्ति करना। यथासाध्य गरीबकी खबर लेना और अतिथिकी सेवा करना। जितेन्द्रिय निश्चिन्त, अनुद्धत, निर्भीक, लज्जाशील, क्षमाशील, प्रियभाषी, धार्म्मिक अध्यवसायी और विनयी होना। सर्व्वदा परिष्कार वस्त्रादि परिधान और भद्रजनोचित वेश रखना। सब प्राणियोंपर आत्मीयता प्रकाश करना। परस्त्री और पर सम्पत्ति पर लोभ कदापि नहीं करना। कभीभी किसी तरहके पापका अनुष्ठान या पापीके संगमें नहीं रहना, दूसरेका दोष और गुप्त बात किसीके पास प्रकाश नहीं करना। बड़े आदमी या भले आदमीसे विरोध कभी नहीं करना। किसी तरह की खराब सवारी, वृक्ष या पर्व्वत शिखर पर चढ़ना, जोरसे हंसना, विकट भावसे बैठना, असम स्थान या संकीर्ण स्थानमें सोना; मुंह बन्दकर जम्हाई लेना, हंसना या छींकना, बिना कारण नासिका मर्द्दन, दांत कटकटाना, नाखून घिसना, हाड़से हाड़पर मारना, ज्योतिष्क पदार्थ देखना, अकेला शून्य घरमें रहना, जंगलमें फिरना, स्नान करने पर पहिरे हुए वस्त्रसे बदन पोछना, मलमूत्रका वेग रोकना, शामको आहार निद्रा और मैथुन, रातको अपरिचित स्थानमें जाना आदि कामोंको त्यागना उचितहै। रातको किसी जगह जानेकी आवश्यकता होने पर सिरमें पगड़ी, पैरमें जूता, हाथमें छड़ी और संगमें आदमी तथा रोशनी अवश्य लेना चाहिये। रातको

अपरिचित स्थानमें जाना उचित नहीहै। स्वास्थ्यविधि सम्बन्धमें इतनाही कहना यथेष्ट होगा कि जिस कामसे शारीरिक या मानसिक किसी प्रकारके अनिष्टको सम्भावना हो वैसा काम कभी नही करना चाहिये।

नियम पालनका फल।

उपरोक्त स्वास्थ्यविधि पालन करनेसे मनुष्य सर्व्वदा नीरोगी रह कर निर्दिष्ट आयु उपभोग करसकता है, सुतरां ऐहिक तथा पारत्रिक सब कार्य्य निर्विघ्नसम्पादन कर इहकालमें सुखी और परकालमें उत्तम गति पानेको समर्थ होता है। अतएव मनुष्यमात्रको स्वास्थ्य रक्षाके विषयमें यत्नवान होना उचित है।

नियम अपालनका फल।

स्वास्थ्यविधि पालन न करनेसे शरीरमें नानाप्रकारके रोगोंका प्रादुर्भाव होताहै। कभी सम्पूर्ण रूपसे स्वास्थ्यरक्षा करने परभी अभिघातादि आकस्मिक कारणोंसे भीपीड़ा होतीहै। चाहे जिस कारणसे हो, रोग उपस्थित होतेंही उसके उपशमका उपाय करना चाहिये। किसी रोगको सामान्य समझकर छोड़ना नही चाहिये, कारण सामान्य रोगभी प्रथम अवस्थामें उपेक्षित होनेसे वही क्रमशः असाध्य हो जानेसे जानका गाहकहो जाताहै। अतएव रोग होतेंही चिकित्सकसे परामर्श लेकर उसका प्रतिकार करना चाहिये। कोई रोग असाध्य होने परभी चिकित्सामें त्रुटि नही करना, कारण बहुतेरे असाध्य रोगभी आराम होते देखा गयाहै। रोग होनेपर डरना नही, तथा उसका पूरा वृत्तान्त चिकित्सकसे कहना और चिकित्सकके परामर्श अनुसार सब काम करना। रोग असाध्य या उत्कट होनेसे, चिकित्सक या आत्मीयगण रोगीसे न कह कर रोगीको सर्वदा सामान्य रोग कहकर भरोसा देना चाहिये;

कारण रोगी हताश वा असन्तुष्ट होनेसे साध्य रोगभी असाध्य हो जाताहै। रोगीके अनुगत, विश्वस्त और प्रिय २।१ आदमी सर्व्वदा पासमें रहकर आश्वासपूर्ण प्रिय वाक्योंसे उसको सन्तुष्ट रखें। रोगीके पास बहुत आदमीका रहना अच्छा नहीहै, कारण बहुत आदमीके निश्वासादिसे गृहकी वायु दूषित होकर रोगीका अनिष्ट होनेका डरहै। जो घर सूखा, परीष्कृत और प्रवात अर्थात् जिसमें वायु अच्छी तरह खेलती रहै ऐसे सुन्दर घरमें रोगीको रखना। रोगीके पहिरनेका कपड़ा सूखा और साफ होना चाहिये, दिनभरमें कमसे कम दोबार पहिरनेका कपड़ा बदलना तथा उसका बिछौना सूखा, नरम और साफ रखना चाहिये। किसी कारणसे बिछौना खराब होतेही अथवा साधारणत: दो तीन दिन पर बदलना उचितहै। सेवाकरनेवाले सर्व्वदा सतर्क रहकर चिकित्सकके आदेशानुसार काम करें और आहार विहारादि कार्य्योंमें रोगी किसीतरहका कु-नियम न करने पावे इस विषयमें विशेष सावधान रहें। चिकित्साके लिये उपयुक्त चिकित्सक निर्व्वाचन करना चाहिये। चिकित्सा शास्त्रमें व्युत्पन्न, दृढ़कर्म्मा और कृतकर्म्मा, औषधादि सब उपकरण विशिष्ट और दयावान, इन सब गुणोंसेयुक्त चिकित्सकको चिकित्साका भार देना चाहिये। अज्ञ चिकित्सकसे कभी चिकित्सा नही कराना। उपयुक्त, चिकित्सकके चिकित्सासे मृत्यु भी अच्छीहै तथापि अज्ञ चिकित्सकसे आरोग्य लाभकी आशा करना उचित नहीहै। आयुर्व्वेदका प्रधान ग्रंथ चरकसंहितामें इस विषयमें बहुत दोष लिखाहै ;

"कुर्य्यान्निपतितो मूर्ध्नि सशेषं वासवाशनि:।
सशेषमातुरं कुर्य्यान्नत्वज्ञमतमौषधम्॥"

मस्तकमें वज्राघात होनेसे कदाचित् जीनेकी आशा कर सकते

हैं पर अब चिकित्सककी दी हुई औषधसे जीवन रक्षाकी आशा नहीं करना।

जो सब स्वास्थ्य विधि प्रतिदिन आवश्यकहै, वही सब यहां लिखीगयीहै। अत:पर रोग परीक्षा विषयके कतिपय नियमोंका लिखना आवश्यक है।

रोग-परीक्षा।

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्।
ततः कर्म्म भिषक्पश्चात् ज्ञानपूर्व्वं समाचरेत्॥
चरकसंहिता।

पहिले रोगकी परीक्षाकर, फिर उसका औषध विचार कर चिकित्सा करना; यही चिकित्सा शास्त्रका उद्देश्यहै।

वस्तुत: चिकित्साका प्रधान अंग रोग परीक्षा होहै। उचित रीतिसे रोग निश्चय न होने पर उसका औषधभी निश्चय नहीं हो सकता। कारण जिसका जो नामहै उस नामसे न पुकारनेसे जैसे जवाब नहीं मिलताहै तथा किसी समय वही आहूत व्यक्ति क्रुद्ध होजाताहै वैसही अनिश्चित रोगमें किसी प्रकारके औषधसे प्रतिकारकी आशाभी दुआहै उससे अकसर रोग वृद्धि और जीवन नाश होते देखा गया है। अतएव पहिले रोगकी परीक्षा करना आवश्यकहै।

रोग परीक्षाकी आवश्यकता।

संक्षेपमें रोगपरीक्षाका तीन उपायहै;—शास्त्रोपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान। प्रथमत: रोगीसे सब अवस्था अवगत हो, शास्त्रोपदिष्ट लक्षणोंसे मिलाना, फिर अनुमानसे रोगका आरम्भ या दोष और बलाबल

परीक्षाका उपाय

निश्चय करना। रोगोंसे अवस्था अवगत होते समय सब इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष करना आवश्यक है। रोगीका वर्ण, आकृति, परिमाण, (क्षीणता और पुष्टता) और कान्ति, तथा, मल मूत्र, नेत्र प्रभृति यावतीय देखनेके विषयको देखकर ; रोगीके मुखसे उसकी सब अवस्था श्रवण, अंगकूजन, संधिस्थान या अंगुली पर्व समूहोंका स्फुटन आदि शरीरके सब लक्षण सुनकर, शारीरिक गंध प्रकृत है या विकृत हुआहै उसकी परीक्षाके लिये सब शरीरगत गंध मल मूत्र शुक्र और वान्त पदार्थ आदि सूंघकर तथा सन्ताप और नाड़ीकी गति आदि स्पर्शकर मालूम करना। केवल अपने रसनेन्द्रियसे कोई विषय जानना असम्भवहै ; इससे मधु मेहादिमें मूत्रादिकी मिष्टता, रोग विशेषमें सब शरीरकी विरसता और रक्त पित्तमें रक्तका स्वाद जानना हो तो दूसरे जीवसे परीक्षा कराना। शरीरमें कीड़े उत्पन्न होनेसे शरीरकी विरसता और मक्खी बैठनेसे मिष्टता अनुमान करना चाहिये। मूत्र मिठा होनेसे उसमें चींटी लगतीहैं। रक्त पित्तमें प्राय रक्त वमन हुआहै वा नहीं सन्देह होनेसे, काक कुक्कुर आदि जन्तुको चटाना यदि वे चाट जांय तो प्राण रक्त और न चाटेतो रक्त पित्तका रक्त निश्चय करना। अग्निबल, शारीरिक बल, ज्ञान और स्वभाव प्रभृति विषयोंको कार्य्य विशेषसे अनुमान कर लेना। भूख, प्यास, रुचि अरुचि, सुख, ग्लानि, और सपना देखना प्रभृति रोगीको पूछकर मालूम करना। अति सामान्य भेदके दो तीन रोगोंमें किसो रोगका निर्णय न होनेसे साधारण कोई औषध देकर उसके उपकार और अनुपकारसे रोगका निश्चय करना। लक्षण विशेषसे रोगकी साध्यता, कष्टता और असाध्यता जानना। अरिष्ट लक्षणसे रोगीका मृत्यु स्थिर करना।

उक्त विषयोंमें नाड़ी परीक्षा, मूत्र परीक्षा, नेत्र परीक्षा, जिह्वा परीक्षा प्रभृति और अरिष्ट लक्षण सहजमें मालूम नहीं होताहै, इससे क्रमशः प्रत्येक विषयोंका विवरण लिखतेहैं।

नाड़ी-परीक्षा।

नाड़ीपरीक्षा।

हाथका मणिबन्ध (पहुंचा) और अंगुलीके जड़में एक गांठहै; उस गांठ को अंगुलीसे दबाकर नाड़ीकी गति मालूम करनेको नाड़ी परीक्षा कहते हैं। नाड़ी परीक्षामें पुरुषका दक्षिण हाथ और स्त्रीके बांये हाथके नाड़ीकी परीक्षा करना, कारण स्त्री पुरुषके शरीर भेदके साथ साथ नाड़ी आदिकाभी मूल विपरीतहै, सुतरां पुरुषके दक्षिण हाथसे जो नाड़ी मालूम होतीहै वही नाड़ी स्त्रीके बायें हाथसे अनुभूत होतीहै। इसके सिवाय दोनो पैरके गुल्फ ग्रंथिके नीचे, कंठ, नासिका और उपस्थमेंभी नाड़ी मालूम होतीहै। मुमुर्षु अवस्थामें जब हाथकी नाड़ी साफ मालम न हो तब उक्त नाड़ियोंसे परीक्षा करनेकी विधिहै।

परीक्षाके नियम।

रोगीके नाड़ीके ऊपर परीक्षा करनेवालेके दक्षिण हाथकी तर्ज्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुली स्थापन पूर्व्वक बायें हाथसे रोगीका वही हाथ थोड़ा टेढ़ाकर केहुनीमें जो नाड़ी है उसको थोड़ा दबाना चाहिये, मणिबंधमें तर्ज्जनी अंगुलीके नीचेवाली नाड़ी वायु, दूसरी पित्त और तीसरी कफकी जानना। किसी किसीका मतहै, कि

तर्ज्जनीके नीचे वायु, मध्यमाके नीचे पित्त और अनामिकाके नीचे कफको नाड़ी अनुमान करना चाहिये।

परीक्षाका निषिद्धकाल।

तैल मर्द्दनके बाद, निद्रित अवस्थामें, भोजनके वक्त या भोजनके बाद, भूख प्यास लगी रहने पर, आग या धूपसे गरम रहने पर और व्यायामादि श्रमजनक कार्य्यके बाद नाड़ी परीक्षा करना उचित नहीं है, कारण उस वक्त नाड़ीकी गति विकृत रहतीहै, इससे परीक्षणीय विषयका अच्छी तरह अनुभव नहीं होताहै।

स्वस्थ मनुष्यके नाड़ीकी गति।

स्वस्थ मनुष्यकी नाड़ी केंचुएके गतिकी तरह, अर्थात् धीरे धीरे चलतीहै अथच उसमें किसी तरहका भारीपन मालूम नहीं होता। किन्तु किसी किसी वक्त स्वस्थ मनुष्यकीभी नाड़ी अन्य रूप हो जाया करतीहै; जैसे;—सवेरे नाड़ी स्निग्ध, दोपहरको गरम और तिसरे पहरको तेज अनुभूत होतीहै।

अस्वस्थ व्यक्तिके नाड़ीकी गति में प्रकोप भेद जानना।

अस्वस्थ अवस्थामें वायुके आधिक्यसे टेढ़ी, पित्तके आधिक्यसे चंचल और कफके आधिक्यसे नाड़ी स्थिर चलतीहै। साधारणतः इसी गतिसे औरभी कई प्रकार विशेष गतिकी कल्पना करना चाहिये जैसे वायुमें टेढ़ीयाने सर्प, जलौका (जोंक) आदिके गतिकी तरह। पित्तमें चंचल गति काक, बटेर और भेक आदिके तरह और कफके आधिक्यमें स्थिर भाव राजहंस, मोर, कबूतर, घुघु, और मूर्गा आदिके गतिकी तरह अनुमान करना। दो दोषके आधिक्य में, वायु और पित्त यह दो दोष प्रबल रहनेसे नाड़ीकी गति कभी सर्पकी तरह कभी भेककी तरह लक्षित होतीहै; वायु और कफ यह दो दोष प्रबल रहनेसे नाड़ीकी गति कभी सर्पकी तरह कभी

राजहंसके तरह होतीहै, पित्त और कफ यह दो दोषके प्रबलतामें नाड़ीकी गति कभी भेकके तरह और कभी मोर आदिके तरह मालूम होतीहै। तीन दोषके आधिक्यमें, पृथक पृथक दोष भेदसे सर्प, बटेर, हंस आदि जीवोंकी गति लक्षित होतीहै। यही त्रिविध गति अनुभवमें यदि पहिलेही वायु लक्षण सर्पादिकी गति फिर पित्त लक्षण बटेर प्रभृति और उसके बाद कफ लक्षण हंस आदिकी गति मालूम हो तो पीड़ा साध्य जानना, और इसके विपरीत होनेसे अर्थात् सर्प गतिके बाद हंसगति अथवा हंसगतिके बाद बटेर गति ऐसा अनुभव होनेसे रोग असाध्य जानना।

ज्वरके पहिले नाड़ीकी गति।

साधारण ज्वरके पूर्वावस्थामें अर्थात् ज्वरका वेग होनेके पहिले नाड़ीकी गति दो तीन बार भेक आदि जीवके गतिकी तरह मंथर होतीहै। पर वह धारावाहिक रूपसे रहने पर दाह ज्वर होताहै। सन्निपात ज्वरके पहिले नाड़ीकी गति पहिले बटेर पक्षीकी तरह टेढ़ी, फिर तित्तिर पक्षीकी तरह ऊंची और अन्तमें वार्तीक पक्षीकी तरह मंथर भावसे चलतीहै।

ज्वरमें नाड़ीकी गति।

ज्वरमें नाड़ी उष्ण स्पर्श और वेग गामी होती है। अतिशय अन्न भोजन करने पर, मैथुनके बाद अर्थात् जिस रातको मैथुन हो उस रातको अथवा उसके दूसरे दिन सवेरेभी नाड़ी गरम रहतीहै, किन्तु तेज नहीं रहताहै; इसी लक्षणसे ज्वरके नाड़ीकी गतिकी विभिन्नता अनुमान करना चाहिये।

वात ज्वर।

साधारणत: वात ज्वरमें वायुके आधिक्यसे नाड़ीके गतिका लक्षण जो कह आएहै वही मालूम होताहै, वायु संचित होनेके समय अर्थात् ग्रीष्म

ऋतुमें आहार परिपाकके समय और दोपहर तथा मध्य रात्रिको वात ज्वर होनेसे नाड़ी मृदु, क्षय और धीमी चलतीहै। वायुका प्रकोप अर्थात् वर्षा ऋतुमें आहार परिपाकके बाद और शेष रातको वात ज्वर होनेसे नाड़ी भारी, कठिन और शीघ्र गति होतीहै।

पित्त ज्वर।

पित्त ज्वरकी नाड़ीमें ग्रंथिलता (गठैलापन) और जड़ता मालूम नहीं होताहै पर तर्जनी, मध्यमा और अनामिका यह तीन अंगुलीके नीचे स्पष्ट मालूम होतीहै और गतिका वेगभी अधिक होता है। पित्तका संचयकाल अर्थात् वर्षा ऋतुमें आहारके बाद, सबेरे और शामको पित्तज्वर होनेसे वही सब लक्षणके सिवाय दूसरा कोई लक्षण दिखाई नहीं देता। पित्तके प्रकोपमें अर्थात् शरत् ऋतुमें आहार परिपाकके समय और दोपहर तथा मध्य रात्रिको पित्त ज्वर होनेसे, नाड़ी कठिन हो इतनी तेज चलतीहै कि मानो नाड़ी मांसको भेद कर बाहर निकल आवेगी।

कफ ज्वर।

कफके आधिक्यमें नाड़ीकी गति जैसी निर्दिष्ट है, साधारण कफ ज्वरमें वैसही गतिके सिवाय और कोई लक्षण नहीं मालूम होता। कफका संचयकाल अर्थात् हेमन्त और शीत ऋतुमें भोजनके समय शामको और शेष रातको अथवा कफका प्रकोप काल अर्थात् वसन्त ऋतुमें आहारके बाद सबेरे और शामको कफ ज्वर होनेसे नाड़ी तन्तुकी तरह क्षय और गरम पानीमें भिंगी रस्सीमें जैसी शीतलता मालूम होती है वैसही शीतल अनुभव होती है। कफका संचय और प्रकोप कालमें कफकी नाड़ीकी गतिमें कोई विभिन्नता अनुमान नहीं होताहै।

वायु पित्त यह दो दोषज ज्वरमें नाड़ी चंचल, स्थूल और कठिन होतीहै मानो झूम झूम कर चलना मालूम होताहै। वात कफ ज्वरमें नाड़ी मन्द और थोड़ी गरम मालूम होतीहै। इस ज्वरमें कफका भाग कम और वायुका अधिक रहनेसे नाड़ी वक्र और धारावाहिक अर्थात् लगातार तेज चलती रहतीहै।

द्विदोषमें।

पित्त कफमें नाड़ी क्रश, कभी अधिक शीतल, कभी थोड़ी शीतल और मृदुगामी होतीहै।

त्रिदोषके आधिक्यमें नाड़ीकी गति जैसी उपर कह आएहै, त्रिदोष सन्निपात् ज्वरमेंभी वैसही गति मालूम होतीहै। इसके सिवाय, औरभी इसके नियम निर्दिष्टहै उसी नियमोंके अनुसार इस ज्वरकी साध्यता आदिका ज्ञान होताहै।

त्रिदोषमें।

त्रिदोष जन्य प्राय सभी रोग भयानक होतेहै, विशेषत: ज्वर रोग त्रिदोष जन्य होनेसे, अति अल्पकालमें उसमे मृत्युके लक्षण दिखाई देने लगतेहै। इस'से सन्निपात ज्वरमें औरभी कई प्रकार नाड़ी परीक्षा सम्बन्धीय उपदेश जानना आवश्यक है। त्रिदोषज ज्वरके नाड़ीमें तीन दोषोंके लक्षण अच्छी तरह मालूम होने परभी यदि तीसरे पहर नाड़ीकी परीक्षामें पहिले वायुकी स्वाभाविक वक्र गति फिर पित्तकी स्वाभाविक चंचल गति और उसके बाद कफकी स्वाभाविक स्थिर गति मालूम हो तो रोग साध्य है; इससे विपरीत भाव अनुभूत होनेसे रोग कष्टसाध्य या असाध्य जानना। इसके सिवाय सन्निपात ज्वरकी असाध्यता जाननेके लिये औरभी कई विशेष नियम निर्दिष्टहै; जैसे—नाड़ीकी गति कभी धीर,

कई विशेष लक्षण।

कभी शिथिल, कभी स्खलित, कभी व्याकुल अर्थात् व्यस्तव्यक्तिकी तरह इधर उधर घूमना, कभी सूक्ष्म, कभी बेमालूम होना अथवा अंगुष्ठ मूलसे विच्युत होना अर्थात् अंगुष्ठके नीचे नाड़ीकी गति मालूम न होना फिर थोड़ेही देर बाद गति मालूम होनेहीसे असाध्य लक्षण जानना। किन्तु भारवहन, मूर्च्छा, भय और शोक आदि में नाड़ीकी गति ऐसेही लक्षणयुक्त होतीहै, वह असाध्य लक्षण नहीहै। फलत: यावतीय असाध्य लक्षण प्रकाश होने परभी जबतक नाड़ी अंगुष्ठ मूलसे विच्युत न हो तबतक वह असाध्यका परीचायक नहीहै। ऐसही सब रोगोंमे अंगुष्ठ मूलसे नाड़ी विच्युत न होने तक उसको असाध्य नही कहना।

ऐकाहिक विषम ज्वरकी नाड़ी कभी अंगुष्ठ मूलके पास कभी अंगुष्ठ मूलमें रहतीहै। तृतीयक (तिजारी) और चतुर्थक (चौथइया) ज्वरमें नाड़ी उष्ण स्पर्श और घूमते हुए पानीकी तरह गति अवलम्बन कर क्रमश: दूर होती रहतीहै। अन्यान्य पीड़ाके असाध्य अवस्थामेंभी नाड़ीकी गति ऐसही मालूम होतीहै, पर उसमें सन्ताप नही रहता।

ऐकाहिक विषम ज्वर।

भूतज ज्वरकी नाड़ी अत्यन्त वेगवती और उष्णस्पर्श होती हैं। क्रोधज ज्वरकी नाड़ी मानो दूसरी नाड़ीको अवलम्बन कर थोड़ी टेढी चलती है। कारण ज्वरकी नाड़ीमानो दूसरी नाड़ीके साथ मिलकर चलती है; पर इसमें ज्वरका प्रकोप अधिक होनेसे उष्ण स्पर्श और द्रुतगति होतीहै।

भूतज ज्वरमें।

मनुष्य इच्छित वस्तु न पानेसे जैसे इधर उधर घूमताहै; वैसही ज्वरमें कामातुर होनेसे नाड़ीकी गतिभी चंचल होताहै। ज्वरमें स्त्रीसंग

कामज ज्वरमें।

कारनेसे नाड़ी क्षीण और धीमी चलतीहै। ज्वरमें दही खानेसे ज्वर का वेग और गरमी अधिक होताहै।

अधिक खट्टा खानेसे, ज्वर किम्बा दूसरे रोग उत्पन्न होनेसे नाड़ी अधिकतर सन्तप्त होतीहै। कांजी पीनेसे ज्वरादि पीड़ाकी नाड़ीकी गतिकी तरह धीमी चलतीहै।

अम्ल भोजनके ज्वरमें।

अजीर्ण रोगकी नाड़ी कठिन और उभय पार्श्वमें जड़ित भाव से मन्द मन्द चलती है, इसमें आमाजीर्ण की नाड़ी स्थूल, भारी और थोड़ी कठिन; पक्क जीर्ण में नाड़ी दुर्व्वल, मन्दगामी और वाताजीर्ण में नाड़ी अधिक चलती है।

अजीर्णमें।

विसुचिका (हैजा) रोग में नाड़ीकी गति भेकके गतिकी तरह, और किसी किसी वक्त इस रोगमें नाड़ी का चलना मालूम नहीं होता तथापि अंगुष्ठ मूलमें विच्युत न होनेतक इस रोगको असाध्य नहीं जानना। विलम्बिका रोगमें भी नाड़ी भेकके गतिकी तरह चलती है। अग्निमान्द्य और धातुक्षीण रोगमें नाड़ी क्षीण, शीतल और अतयन्त मृदु होती है। अग्निप्रदीप्त रहनेसे नाड़ी लघु और वलवती होती है।

विसुचिकामें।

अतिसार रोगमें भेद (दस्त) के बाद नाड़ी वेदम होजाती है, आमातिसार में नाड़ी स्थूल और जड़वत् होती है। ग्रहणी रोगमें हाथकी नाड़ी की गति भेकके गतिकी तरह और पैरकी नाड़ी हंसगतिसे चलती है।

अतिसारमें।

मलमूत्र दोनोका एक सङ्ग अवरोध अथवा दोनोका पृथक

मलमूत्रके रोध में। भावसे अवरोध होनेपर, मलमूत्रका वेग धारण से और विसूचिका, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र तथा ज्वर प्रभृति रोगमें मलमूत्र बन्द होकर नाड़ी सुक्ष्म भेकगतिकी तरह स्पन्दित होती है। साधारणतः आनाह और मूत्रकृच्छ्र रोगमें नाड़ी कठिन और भारी चलती है।

शूलरोग में। शूलरोग समूहोंमें वायुजन्य शूलरोग में नाड़ी सर्व्वदा वक्रगति, पित्तजन्य शूलमें नाड़ीकी गति अतिशय उष्ण और आमशूल अथवा क्रिमिशूलमें नाड़ी पुष्ट मालूम होती है।

प्रमेह में। प्रमेह की नाड़ी बीच बीच में ग्रन्थिविशिष्ट बोध होती है। इसके साथ आमदोष रहनेसे नाड़ी उष्ण होती है।

विष्टम्भ और गुल्म में। विष्टम्भ और गुल्म रोगमें नाड़ी वक्रगति होती है। किन्तु यह रोग सम्पूर्ण रूपसे प्रकाश पानेके पहिलेही नाड़ी लताकी तरह उपर को चढ़ती है। विशेषतः गुल्म रोगमें नाड़ी चञ्चल और पारावत की तरह प्रबल वेगसे घूमती हुई मालूम होती है। उन्माद प्रभृतिकी नाड़ी भी वैसही चलती है।

व्रणादि रोग में। व्रणादि रोगमें व्रणके अपक्क अवस्था में नाड़ी की गति पित्त-प्रकोप के नाड़ी की तरह होती है। भगंन्दर और नाड़ी व्रण रोगमें नाड़ी वायु-प्रकोप के नाड़ी की तरह और अतिशय उष्ण चलती है।

विषभक्ष में। विष खानेसे, अथवा सर्पादि विषैले प्राणीके काटनेसे, शरीर में जब विष फैल जाता है, तब नाड़ी अत्यन्त अस्थिर भावसे चलती है।

रोग परीक्षा के सिवाय नाड़ी की गतिसे रोगी के मृत्युका काल भी जाना जाता है, यह भी नाड़ी परिक्षा के अन्तर्गत है, सुतरां वह सब उपदेश भी यहां लिखते है।

मृत्यु नाड़ी का लक्षण।

जिस रोगीकी नाड़ी थोड़ीदेर तेज चलकर फिर धीमी हो, तथा शरीर में शोथ नहो, तो उस रोगीकी मृत्यु सातवें या आठवें दिन जानना।

जिसकी नाड़ी कभी केंचुवेकी तरह पतली और चिकनी हो और केंचुवेकी तरह टेढ़ी गति हो; कभी अतिशय किम्वा एकाएकी बेमालूम हो; अथवा शारीरिक कृशता और शोथादिसे नाड़ी भी कृश और स्थूल हो तो उसकी मृत्यु एक महीने के बाद होती है।

जिसकी नाड़ी स्वस्थान (अंगुष्ठमूल) से अन्यत्र स्थान स्खलित हो, तो उसकी मृत्यु तीन दिनमें निश्चय जानना।

यदि किसीकी मध्यमा और अनामिका अंगुली के नीचे नाड़ी मालूम न होकर, केवल तर्ज्जनी के नीचे मालूम हो तो जानना कि उसकी आयु चारदिन और है।

सन्निपात ज्वरमें जिसका शरीर बहुत गरम पर नाड़ी अत्यन्त शीतल हो तो उसकी मृत्यु तीन दिन बाद होगी।

भ्रमर की तरह नाड़ी की गति होनेसे अर्थात् अतिद्रुत गतिसे दो तीन बार चलकर फिर थोड़ी देर अदृश्य और फिर वैसही चलकर अदृश्य, ऐसही बार बार मालूम होनेसे एक दिन में मृत्यु जानना। यदि किसी की नाड़ी तर्ज्जनी अंगुली के नीचे मालूम नहो, तथा कभी कभी मालूम हो, तो उसकी मृत्यु १२ पहरमें निश्चय होगी।

जिसकी नाड़ी तर्ज्जनीके ऊपर बिजलीके चमककी तरह थोड़ी थोड़ी देरपर चलती हो तो उसका जीवन एक दिन और है,

अर्थात् ऐसो चालके आरम्भसे लेकर २४ घंटेके भीतर मृत्यु होती है।

जिसकी नाड़ी स्वस्थान (अंगुष्ठ मूल) से स्खलित होकर थोड़ी थोड़ी देर पर चलतीहो तथा उसके हृदयमे यदि जलन अधिक हो तो उस जलनके शान्ति तक उसका जीवनहै, अर्थात् जलन शान्तिके साथ साथ उसका प्राण वायुभी निकल जाताहै।

नाड़ी स्पन्दन परीक्षा।

नाड़ीकी गति मालूम कर उसका भेद जानना, अथवा उससे रोगका निश्चय करना और रोगकी साध्यासाध्य अवस्था जानना अतिशय कष्टसाध्य है। केवल शास्त्रोपदेशसे उसका अनुभव नही हो सकताहै; अकसर रोगीके नाड़ीकी गति देखते देखते रोगका ज्ञान क्रमश: उत्पन्न होताहै। इसीसे आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकगणोंने घडोके मिनिटसे मिलाकर एक प्रकारके नाड़ीका ज्ञान आविष्कार किया है। अल्पबुद्धि या साधारण चिकित्सकोंके हकमें यह उपदेश विशेष आवश्यक जानकर, इस ग्रन्थमें उसकोभी लिखतेहै।

वयोभेदसे स्पन्दन विभिन्नता।

अधिकांश स्वस्थ व्यक्तिकी नाड़ो हरेक मिनिटमें ६०से ७५ बार तक चलतीहै। किसी किसीकी नाड़ी न्यून संख्या ५० और उर्द्ध संख्या ९० बार तक एक मिनिटमे चलतीहै। उमरके तारतम्यसे नाड़ीकी गतिभी विभिन्न है। पेटके भीतरके बच्चोकी नाड़ो हरेक मिनिटमें १६० बार, भूमिष्ठ होनेसे १४० से १३० बार, एक वर्षके उमरतक १३०से ११५ बार, दो वर्षके उमर तक ११५से १००, तीन वर्षके उमरमें १००से ९८ बार, फिर सात वर्षके उमर तक ९०से ८५ बार सातसे चौदह वर्षकी उमर तक ८५से ८० बार, यौवन और प्रौढ़ा वस्थामें ८० बार, बुढ़ापेमें ६५से ५० बार तक नाड़ी चलतीहै।

विभिन्न अवस्थामें स्पन्दनगति।

पानाहारके समय हृत्पिण्डको क्रिया वृद्धि होतीहै, इससे नाड़ीका वेगभी उसवक्त बढ़ताहै। स्वभावत: स्त्री जातिकी नाड़ी पुरुषकी अपेक्षा १०।१५ बार अधिक चलतीहै। नाड़ीकी गति स्वाभाविकके अपेक्षा मन्दगति होनेसे, दुर्व्वलता या मस्तिष्कमें रक्तका आधिक्य हुआहै समझना। ज्वरमें नाड़ीकी गति स्वाभाविक गतिकी अपेक्षा तेज और उष्ण स्पर्श होतीहै; स्नायविक दौर्व्वल्यमें नाड़ी मृदुगति और पुष्ट मालूम होतीहै; ज्वर संयुक्त सब रोगोंमें नाड़ीकी गति द्रुत और ज्वरके ह्रास वृद्धिमें न्यूनाधिक्य होतीहै। पूरी उमरमें और प्रदाह जनित रोगमें नाड़ी एक मिनिटमें १२० बारसेभी अधिक नहीं चलतीहै, इससे अधिक गति होनेसे रोग क्रमश: कठिन और १५० बारसे अधिक चलनेसे उसी रोगमें रोगीके मृत्युकी आशङ्काहै।

———

तापमान यंत्र।

(थर्मा मिटर।)

नाड़ोज्ञानसे रोग परोक्षा करना साधारण चिकित्सकगणोंके लिये दुःसाध्य है, इससे पाश्चात्य चिकित्सकोंने शरीरके गरमोको परोक्षा कर रोग निर्णय करनेका एक यन्त्र आविष्कार कियाहै। इस यन्त्रको अङ्गरेजोमें "थर्मामिटर" कहतेहैं। इससे शरीरके गरमीका परिमाण जाना जाताहै, इसको हिन्दीमें तापमान यन्त्र कहतेहैं। इस यन्त्रसे गरमोको परोक्षा करना हो तो, रोगीको करवट सुलाओ तथा नीचेके बगल मे यन्त्रका मूलभाग अर्थात् जिस तरफ पारा रहता है उस भागको बगलमें दबाकर रखना। यन्त्र लगानेके पहिले बगलमे पसोना हो तो सूखे कपड़ेसे पोछकर यन्त्र लगाना। यंत्र दबातो वक्त पारेका भाग बाहर न निकला रहे इसका

थर्मामिटर या तापमान यन्त्र।

...... १०७ महाग्रन्ट

तेज ज्वर

१०२ अधिक ताप

१०० ज्वर

९८ स्वाभाविक ज्वर

तापकी कमी

९५ मन्द

कोलाप्स

ख्याल रखना चाहिये। शारीरिक सन्तापके गरमीसे यंत्रका पारा क्रमशः उपरको उठताहै। यंत्रके उपरी भागमें कई अङ्क और दाग है ; उस दाग और अङ्क चिह्नके प्रत्येक को डिग्री कहतेहै। पारा जितनी डिग्री उपरको उठे, उसी हिसाबसे शरीरका सन्ताप निश्चय करना। तापमान यंत्र बगलमें रखकर परीक्षा करनाही साधारण नियमहै। इसके सिवाय, उरु, मुख, सरलयंत्रमेंभी तापमान यंत्र देकर परीक्षा करनेकी रीतिहै। सरलयंत्रमें ताप निर्णय करना हो तो रोगीको बायें बगल सुलाकर यंत्र लगाना, मुखमें व्यवहार करना हो तो यंत्र जीभके नीचे रख मुह बन्द करना। अत्यन्त शीर्ण, अचैतन्य या अस्थिर शिशु रोगीका ताप निर्णय करनेमें सुबीताके अनुसार उक्त स्थानोमें तापमान यंत्र व्यवहार करना। तापमान यंत्र व्यवहार करती वक्त ५से १० मिनिट तक रखना। पारा उपरको कैसे उठताहै अर्थात् द्रुतगति या मृदुगतिसे उठताहै यहभी ख्याल रखना। अधिकांश रोगमें सवेरे और शामको तापका निर्णय करना चाहिये। ताप निर्णय करनेके एक घण्टा पहिलेसे रोगीको स्थिर भावसे रहना उचितहै। कठिन रोग समूहोमें दो दो घण्टेके अन्तरमें ताप निर्णय करना चाहिये।

स्वस्थ शरीरमें स्वाभाविक सन्ताप ९८ डिग्री दशमल् ४ फारन् होट, २६ वर्षसे कम उमर वालेका स्वाभाविक सन्ताप ९९ डिग्री दशमल् ४ फारन् होट होता है। व्यायामादि कार्य्यके अङ्ग चालनासे आग या धूपका बाहरी उत्ताप लगनेसे, ग्रीष्म प्रधान देशमें वास करनेसे और आहारके बाद, सन्ताप इससेभी अधिक होता है। दिवा निद्राके बाद, विश्राममें, परिश्रम करनेसे स्वाभाविक सन्तापके अपेक्षा डेढ़ फारन् डिग्री सन्ताप कम होताहै। अच्छे शरीर-

में स्वाभाविक सन्ताप रात दोपहरको सबसे कम और प्रातःकालसे क्रमशः बढ़ते बढ़ते दिनके दोपहरको सबसे अधिक होताहै।

साधारण ज्वरमें शरीरका सन्ताप १०१॥ डिग्री फारन् हीटसे अधिक नहीं होता। प्रबल ज्वरमें १०४ डिग्रीसे अधिक सन्ताप नहीं होता। १०६॥ डिग्री होनेसे ज्वर सांघातिक और १०८॥ डिग्री होनेसे रोगीको मृत्यु होतीहै। ज्वर या और कोई प्रदाहयुक्त पोड़ा में कोई उपसर्ग उपस्थित होनेसे, निर्द्दिष्ट उत्ताप परिमाणसे उत्ताप अधिक होताहै। मुखमण्डलका विसर्प, मस्तिष्क आवरक झिल्लीमें दाह, फुसफुस दाह, अभिन्यास ज्वर, और वसन्त रोगका सन्ताप १०६ या १०७ डिग्री फारन् हीट तक होताहै। इससे सिवाय दूसरे ज्वरयुक्त रोगमें, कदाचित् १०४ या १०१ डिग्री हो तो रोग सामान्य किन्तु यदि १०० या १०५ डिग्री हो और यह सन्ताप सर्व्वदा रहे, तब रोग कष्टसाध्य समझना। १०६ या १०७ डिग्री तक सन्ताप भयजनक, और १०८ या ११० डिग्री सन्तापमें मृत्यु निश्चय जानना। उरःक्षत या राजयक्ष्मा रोगमें फुस फुस या शरीरके भीतरके और किसी यंत्रमें घाव होनेसे सन्ताप १०२।१०३ डिग्री और कभी कभी इससेभी अधिक होताहै। जैसे जैसे घाव बढ़ता है वैसही सन्तापभी बढ़ता रहताहै। घाव पककर सामान्य पीप होनेसे शारीरिक सन्ताप १०१ डिग्री होताहै। भीतरके घावका अन्यान्य लक्षण प्रकाश होनेके बहुत पहिलेसे शारीरिक सन्ताप क्रमशः वृद्धि होताहै।

अन्यान्य रक्तस्राव, अनाहार, पुराना रोग, मस्तिष्क और मज्जामें आघात अथवा हृदय, फुस फुस या मूल यंत्रमें कोई पुराना रोग होनेसे शारीरिक सन्ताप दिनको जितना रहताहै रातको उससे कम देखा गयाहै।

यावतीय रोगोंमें शारीरिक सन्ताप १०४ से १०५ डिग्री होकर लगातार एक अवस्थामें रहे तो उससे कोई दूसरा उपसर्ग होनेको सम्भावना है। रोग उपशमके समय शरीरका सन्तापभी क्रमशः कम होने लगे तो फिर रोगके आक्रमणका डर नहीं रहता है। विषम ज्वरमें पुराना क्षयकारक रोग और तरुण ज्वरमें मृत्यु पास आनेसे, शरीरका सन्ताप स्वाभाविक उत्तापसे कम होता है। विसूचिका रोगमें मृत्यु उपस्थित होनेसे सन्ताप ७७से ७८ डिग्री फारन हिट तक कम होते देखा गया है।

मूत्र-परीक्षा।

रोग समूहोंका या वातादि दोषोंके निरूपण करनेमें मूत्र-परीक्षाभी विशेष उपयोगी है। निर्दिष्ट लक्षणानुसार मूत्रका वर्ण और अन्यान्य विकृति दोषोंके निश्चय करनेको मूत्र परीक्षा कहते हैं। चार दण्ड रात रहते बिछौनेसे उठकर मूत्रत्याग करते वक्त प्रथम मूत्र-धार छोड़कर मध्यकी मूत्रधार एक कांचके पात्रमें धर रखना, यही मूत्र परीक्षाके लायक है। मूत्रपरीक्षाके समय उसको बार बार हिलाकर बिन्दु बिन्दु तेल डालना।

परीक्षाका उपयुक्त मूत्र।

वात प्रकृति मनुष्यका स्वाभाविक मूत्र श्वेतवर्ण, पित्त प्रकृति और पित्तश्लेष्म प्रकृतिका तैलके तरह, कफ प्रकृतिका आविल अर्थात् गदला, वात कफ प्रकृतिका गाढ़ा और सफेद रङ्ग, रक्त वात प्रकृतिका लाल और

प्रकृतिभेदसे मूत्रवर्ण।

रक्तपित्त प्रकृतिका कुसुम फूलके तरह मूत्र होताहै। रोग विशेष का अनन्यान्य लक्षण न होनेसे केवल इसी प्रकारके मूत्र परीक्षासे कोई पीड़ाकी आशंका नहीहै।

दूषित मूत्रके लक्षण।

वायुसे विगड़ा मूत्र-चिकना, पीला, किम्बा काला अर्थात् कृष्णपीत वर्ण अथवा अरुण वर्ण होता है। इस मूत्रमें तेल डालनेसे तेल मिला बिन्दु बिन्दु मूत्रबिम्ब उपरको उठता है। पित्तसे विगड़ा मूत्र लाल तेलबिन्दु डालनेसे उससे बुद बुद उत्पन्न होताहै। कफसे विगड़ा मूत्र फेनिला और क्षुद्र जलाशयके तरह गदला होताहै। आमपित्त दूषित मूत्र सफेद सरसोंके तेलके तरह मालूम होताहै। वात पित्तके मूत्रमें तेल डालनेसे उसमें काले रंगका बुद बुद उत्पन्न होताहै। वायु और कफ दूषित मूत्रमें तेल डालनेसे मूत्र तेलके साथ मिलकर कांजीके तरह दिखाई देताहै। कफ और पित्तका मूत्र पांडु वर्ण होताहै। सान्निपातिक दोष अर्थात् वात पित्त और कफ ये तीन दोषका मूत्र रक्त या कृष्णवर्ण होताहैं। पित्त प्रधान सन्निपात रोगीका मूत्र रख छोड़नेसे उपरका हिस्सा पीला और नीचेका हिस्सा लाल मालूम होताहै। ऐसही वात प्रधान सन्निपातमें मध्यभाग काला और कफाधिक्य सन्निपातमें मध्यभाग सपेद मालूम होताहै।

विशेष लक्षण।

प्राय सब रोगोंमें यही सब लक्षणोंका विचार कर रोगीके दोषका भेद अनुमान करना चाहिये। कई एक रोगमें मूत्र लक्षणका किंचित विशेष लक्षण निर्दिष्टहै। जैसे—ज्वरादि रोगोंमें रस अधिक रहने से मूत्र उखके रसके तरह। जीर्ण ज्वरमें मूत्र छाग मूत्रके तरह। जलोदर रोगमें घीके दानेकी तरह मूत्रमें एक पदार्थ दिखाई देता

है। मूत्रातिसार रोगमें मूत्र अधिक परिमाण और रक्त छोड़नेसे नीचे लाल रंग मालूम होताहै। आहार जीर्ण होनेसे मूत्र चिकना और तेलके तरह आभायुक्त होताहै सुतरां अजीर्ण रोगमें मूत्र विपरीत लक्षणयुक्त होताहै क्षय रोगमें मूत्र कृष्णवर्ण, और इसी रोगमें मूत्र सफेद होनेसे रोग असाध्य जानना।

इसके सिवाय प्रमेह रोगमें जैसा मूत्रभेद होताहै, वह प्रमेह रोगमें विस्तृत रूपमें लिखा गयाहै।

नेत्र-परीक्षा।

वायु प्रकोपमें दोनो आंखे तीव्र, रुक्ष, धुंवाके आभाकी तरह मध्यभाग पीला या अरुण वर्ण और पुतली चंचल होतीहै, अर्थात् दोनो पुतली सर्व्वदा घुमती रहतीहै। पित्त प्रकोपमें आंखे उष्ण और पीत, लाल, या हरे रंगकी होतीहै। इसमें चक्षुदाह और रोगी दियेकी रोशनी सह नहीं सकताहै। कफ प्रकोपमें दोनो आखें चिकनी अश्रुपूर्ण पीतवर्ण, ज्योतिहीन, भारी और स्थिर दृष्टियुक्त होतीहैं। दो दोषके आधिक्यमें दोनो दोषके लक्षण मालूम होतेहै। त्रिदोषके प्रकोपमें, अर्थात् सन्निपात रोगमें आखें काली या लाल रंग, टेढ़ी दृष्टि, भीतरको धसी, विकृत और तीव्र पुतली, तंद्राच्छन्न, और थोड़ी थोड़ी देरमें बंद और खुलती रहतीहै। तथा इस रोगमें आंख कभी अदृश्य और कभी कई प्रकारके वर्णकी होतीहै।

प्रकोपभेदसे भिन्न २ लक्षण।

रोग आराम होने पर आंखमें क्रमशः स्वाभाविक सौन्दर्य्ययुक्त, प्रसन्न और शान्त दृष्टि प्रभृति लक्षण दिखाई देने लगतेहैं।

जिह्वा-परीक्षा।

वायुके आधिक्यमें जिह्वा शाक पत्रके वर्णको तरह या पीली, रुक्ष, गोजिह्वाके तरह कर्कश और फटी होतीहै। पित्ताधिक्यमें जिह्वा लाल या काली, कफाधिक्यमें सफेद, रसीली, घनी और लिप्त ; दो दोषके आधिक्यमें दो लक्षणयुक्त और सन्निपात अर्थात् तीन दोषके आधिक्यमें काली, कर्कश, सूखी, स्फोटकयुक्त और दग्धवत् होतीहै।

रक्तका आधिक्य और दाह रहनेसे जिह्वा उष्ण स्पर्श और लाल। ज्वर और दाह रोगमें नीरस। नये ज्वरमें, प्रबल दाह, आमाजीर्ण और आमवातके प्रथम अवस्थामें जिह्वा सफेद, और चटचटी मालूम होतीहै। सान्निपातिक ज्वरमें जिह्वा स्थूल, शुष्क, चटचटी, रुक्ष और निर्व्वापित अंगारके तरह काली होतीहै। यकृत क्रियाके वैषम्यमें और मल या पित्तके अवरुद्ध होनेसे, जिह्वा पांडुवर्ण और मलसे लिपटी रहतीहै। यकृत प्लीहा आदि पीड़ाकी शेष अवस्था और क्षय रोगके बाद जिह्वामें घाव होताहै। हैजा, मूर्च्छा, और श्वासमें जिह्वा शीतल स्पर्श होतीहै। अत्यन्त दौर्बल्य और दाहमें जिह्वा बड़ी होतीहै। निरोग मनुष्यकी जिह्वा सर्व्वदा आर्द्र और मद्यपाईकी जिह्वा फटी होतीहै।

मुखरस-परीक्षा।

वायु प्रकोपमें मुखरस लवण, पित्त प्रकोपको तिक्त, कफ प्रकोपमें मधुर, कोई दो दोषके प्रकोपमें दो रसयुक्त और सन्निपात अर्थात् त्रिदोषके प्रकोपमें तीन रसयुक्त होताहै।

अरिष्ट-लक्षण।

> क्रियापथमतिक्रान्ताः केवलं देहमाप्लुताः।
> दोषा यत् कुर्व्वन्ति चिह्नं तदरिष्टं निरुच्यते॥

अरिष्ट लक्षण और चिह्न।

रोगोत्पादक दोष सब शरीरमें व्याप्त होनेसे जो सब मृत्युके लक्षण प्रकाश होतेहै उसको अरिष्ट लक्षण कहते है। वस्तुतः जिस लक्षणसे भावी मृत्यु अनुभव हो उसीका नाम "अरिष्ट चिह्न" है। चिकित्सा कार्य्यमें अरिष्ट लक्षण पर विशेष लक्ष रखना आवश्यकहै, नहीतो किसी वक्त अरिष्ट लक्षणयुक्त रोगीकी चिकित्सा कर वैद्यको अपदस्थ होना पड़ताहै अथवा रोगीकी एकाएकी मृत्युसे उसके आत्मीय स्वजनोंको अतिशय दुःख और कष्ट होताहै। चाहे जिस कारणसे मृत्युहो, मृत्युके पहिले अरिष्ट लक्षण निश्चय प्रकाश होताहै, पर किसी वक्त अच्छी तरह विचार न करनेसे अरिष्ट लक्षण स्पष्ट अनुभव नही होताहै। पृथक पृथक रोग भेदसे जो सब अरिष्ट लक्षण प्रकाश होतेहै वह प्रत्येक रोग निर्देशके समय लिखूंगा। यहां केवल कई साधारण अरिष्ट लक्षण संक्षेपमें लिखतेहैं।

कोई स्वाभाविक विषयका सहसा अस्वाभाविक परिवर्त्तनको अरिष्ट लक्षण कहतेहैं ; जैसे शारीरिक

प्रकार भेद।

कोई शुक्लवर्णको, कृष्णता, कृष्णवर्णको शुक्लता, रक्तवर्णको अन्य वर्णता, कठिनावयवमें कोमलत्व, कोमल स्थानमें मृदुता, चंचल स्थानको निश्चलता, अचंचल स्थानको चंचलता, विस्तृत स्थानको संकीर्णता, संकीर्णको विस्तृति, दीर्घको सूक्ष्मता, सूक्ष्मको दीर्घता, पतन शीलका अपतन, अपतन शीलका पतन, उष्णका शीतल, शीतलका उष्ण, स्निग्धको रूक्षता, रूक्षको स्निग्धता आदि अनुभव होता है। ऐसही भौं आदि स्थान नीचेको तरह झुक जाना अथवा उपरको चढ़ना, आंखें घूमना, मस्तक और ग्रीवा आदि अंगोंका गिरना, बोली बदलना, सिरसे सूखे गोबरके चूर्णकी तरह पदार्थका निकलना, सबेरे ललाटमें पसीना दिखाई देना, नाकके छेदका लाल होना और फुनसी दिखाई देना, अथवा सर्व्वांगमें फुसरी या तिलका एकाएकी पैदा होनेमेंभी अरिष्ट लक्षण समझना। जिनके शरीरका आधा भाग अथवा केवल मुखमंडलके अर्धभागमें एक रंग और दूसरे भागमें दूसरा रंग मालूम हो तो अरिष्ट लक्षण जानना। रोगीका दोनो ओष्ठ पक्के जामुनकी तरह काला होनेसे, दांत काला, लाल या नीला अथवा मैला होनेसे रोगीको मृत्यु स्थिरहै। जिह्वा फूली, काली और कर्कश होनाभी अरिष्ट लक्षणहै। दोनो आंखोंका संकोच, परस्पर असमान, स्तब्ध, शिथिल, लाल और आंसू जानाभी अरिष्ट लक्षणहै। पर किसीको नेत्ररोगके सबब आसु जानेसे उसको अरिष्ट नही कहना। सिरके बाल औरभौं कंघीसे झाड़नेके तरह मालूम होना अथवा तेल न लगाने परभी चिकना मालूम होना ; आंखके दोनो पलकोंके बालका गिरना, अथवा एकसे एक मिल जाना,

नाकका छेद मोटा होना, शोथ रोग न रहने परभी शोथ रोगके तरह, मलीन, टेढ़ा, सूखा, फटा और छेद बड़ा होनेसेभी अरिष्ट लक्षण जानना। रोगीका हाथ पैर और सांस ठंढी हो और जो रोगी मुख पसार कर निश्वास त्याग करे अथवा टूटी सांस ले, कोई बात कहते कहते बेहोश हो पड़े और अकसर चित्त सोकर दोनो पैर इधर उधर पटके तो मृत्यु पासही बैठीहै जानना।

इसके सिवाय औरभी बहुतसे अरिष्ट लक्षण आयुर्वेद शास्त्रमें लिखेहै यहां उसका उल्लेख करना अनावश्यक जान नही किया गया।

रोग-विज्ञान।

निदानं पूर्व्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा।
सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पंचधा स्मृतम्॥

निदान।

निदान, पूर्व्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति यही पांच रोगके ज्ञानका उपायहै। जिससे दोष कुपित हो रोग उत्पन्न होताहै उसको निदान कहतेहै। विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट भेदसे निदान दो प्रकारका है; विरूद्ध आहार विहारादिको विप्रकृष्ट अर्थात् दूरका निदान, और कुपित वातादि दोषको सन्निकृष्ट अर्थात् पासका निदान कहते है। रोग होनेसे पहिले जो सब लक्षणोंसे भावी रोगका अनुमान होता है उसको पूर्व्वरूप कहतेहै। पूर्व्वरूप दो प्रकार, सामान्य और विशेष। जिस पूर्व्वरूपमें वायु पित्त या कफ ये तीन दोषोंके कोई लक्षण मालूम न होकर केवल भावी रोगका अनुमान हो,

उसको सामान्य पूर्व्वरूप कहते है; और जिस पूर्व्वरूपसे भावी रोगका दोष भेदतक अनुमान हो उसको विशेष पूर्व्वरूप कहते है। यही विशेष पूर्व्वरूप स्पष्ट मालूम होनेसे उसको रूप कहते है, वस्तुत: जिन सब लक्षणोंसे उत्पन्न रोग मालूम हो उसको रूप कहते है। निदान विपरीत या रोग विपरीत अथवा दोनोंके विपरीत अव स्थामें औषध सेवन और ऐसही आहार विहारादिसे रोग उपशम होनेसे उसको उपशय कहते है इसके विपरीतका नाम अनुपशय है। यही उपशय और अनुपशयसे रोगका गूढ़ लक्षण निश्चय करना चाहिये। दोष समूह कुपित होकर शारीरिक अवयवोंमें अवस्थान या विचरण कर रोग उत्पन्न करता है उसको सम्प्राप्ति कहते है। संख्या, विकल्प प्राधान्य, वल, अवल और कालानुसारसे संप्राप्तिके कई प्रकार है। आठ प्रकारका ज्वर, पांच प्रकारका गुल्म और अट्ठारह प्रकारका कुष्ठ प्रभृतिके भेदको संख्या कहते है। दो दोष या तीन दोषके रोगके कुपित दोष समूहोंमें कौन दोष कितना कुपित हुआ है जाननेके लिये प्रत्येक दोषका लक्षण विचार कर जिस अंशांशसे विभाग किया जाता है उसको विकल्प कहते है। ऐसही रोगसे मिलित दोष समूहोंमें जो दोष अपने निदानसे दूषित हो वही प्रधान और उसी कुपित दोषके संग बाकी दो दोष कुपित होनेसे उसको अप्रधान कहते है। जो रोग निदानसे उत्पन्न होता है और उसका पूर्व्वरूप और रूप सम्पूर्ण प्रकाशित हो वही रोग वलवान, और जो अल्प निदानसे उत्पन्न होकर अल्प पूर्व्वरूप और रूपसे प्रकाश हो उस रोगका हीनवल जानना। नाड़ी परीक्षा प्रसंगमें कफादि दोष त्रयका प्रकोप काल लिखा गया; वही काल उन सब रोगोंके आक्रमण और प्रकोपका है।

रोग दो प्रकार, दोषज और आगन्तुक। जिस रोगमें वात

दोषज और आगन्तुक रोग।

पित्त और कफ ये तीन दोष, एक एक कर या दो तीन दोष एक साथ मिलकर उत्पन्न हो उसको दोषज कहते है। एक दोष कुपित होनेसे बाकी दो दोषकोभी कुपित करताहै इसीसे कोई रोग एक दोषसे नही होता यही साधारण नियमहै। पर रोग उत्पादक जो एक दो या तीन दोष होताहै वैसही नामभी एक दोषज द्विदोषज या त्रिदोषज होताहै। जो सब रोग अभिघात अभिचार, अभिशाप, और भूतावेश प्रभृति कारणोंसे उत्पन्न होताहै उसको आगन्तुक कहतेहै। अपने अपने निदानके अनुसार दोष कुपित न होनेसे रोग उत्पन्न नही होता, किन्तु आगन्तुक रोगमें पहिले यातना प्रकाशहो फिर दोष कुपित होताहै यही दोनोमे प्रभेदहै।

प्रकुपित वायु, पित्त और कफ यह त्रिदोष रोगोत्पत्तिका सन्निकृष्ट निदानहै; विविध अहित कारक आहार विहारादिके निदानसे तीन दोष कुपित हो रोग उत्पन्न होताहै। इसके सिवाय कई रोगका आरम्भभी रोग विशेषका निदानहै। जैसे ज्वर सन्तापसे रक्तपित्त, रक्तपित्तसे ज्वर, ज्वर और रक्तपित्त यह दो रोगसे राजयक्ष्मा, प्लीहा वृद्धिसे उदर रोग, उदर रोगसे शोथ, अर्शसे उदर रोग या गुल्म, प्रतिश्यायसे खांसी, खांसीसे क्षयरोग और क्षयरोगसे धातुशोष प्रभृति उत्पन्न होते देखा गयाहै। उक्त रोगोत्पादक रोगोमें कोई कोई अन्य रोग उत्पादन कर आपभी रहताहै।

यही पांच निदान यावतीय रोगोके ज्ञानका उपायहै। यहां केवल संक्षेप मात्र लिखा गयाहै। अतःपर प्रत्येक रोगका पृथक पृथक निदानादिके लक्षण लिखतेहैं।

ज्वर।

जीवमात्रके जन्म और मृत्युके समय ज्वर होना नियत नियम है। शरीरके उत्पत्ति कालहीसे ज्वर होता है इससे पहिले ज्वरहीका उल्लेख करतेहैं। तथा अन्यान्य रोगोंकी अपेक्षा ज्वर अधिक भयंकर और ज्वरहीसे यावतीय रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना आदि विचार करने परभी ज्वर सब रोगोमें श्रेष्ठ लक्षित होताहै। सुतरां पुराने जमानेसे रोगाध्यायोंमें पहिले ज्वरहीके विषयमें लिखनेकी रीति चली आतीहै इससे हमभी यहा पहिले ज्वरके विषयमें लिखतेहै।

ज्वरका प्राधान्य।

ज्वरका साधारण लक्षण शारीरिक और मानसिक सन्ताप; कारण सन्ताप लक्षण भिन्न ज्वर देखनेमें नही आताहै। इसके सिवाय पसीना वंद होना और सर्वांगमें पीड़ा आदि और कई एक ज्वरके साधारण लक्षणहै। वस्तुतः जिस रोगमें सन्ताप, पसीना बंद हो और सर्वाङ्गमें दर्द लक्षित हो उसीको ज्वर कहतेहै। पर पसीना न आना यह नियत नियम नहीहै, कारण पित्त ज्वरमें कभी कभी पसीना होतेभी देखा गयाहै। लक्षण भेदसे ज्वर बहुत प्रकारका है, पर चिकित्सा कार्य्यके सुबीतेके लिये शास्त्रमें ज्वर केवल आठ प्रकारमें विभक्तहै, हमभी उसीको यहां लिखतेहै। ज्वर आठ प्रकार जैसे—वातज, पित्तज, श्लेष्मज, वातपित्तज, वातश्लेष्मज, पित्त श्लेष्मज, सन्निपातज और आगन्तुक, क्रमशः इसी आठ प्रकारके ज्वरके लक्षणादि कहतेहै।

ज्वरका साधारण लक्षण।

प्राय: सब ज्वरमें साधारण पूर्व्वरूप एकही प्रकारका होताहै—

साधारण पूर्व्वरूप।

जैसे मुखकी विरसता, शरीरका भारीपन, पान भोजनकी अनिच्छा, चक्षुद्वयकी आकुलता और अश्रुपूर्णता; अधिक निद्रा, अनवस्थित चित्तता, जृम्भा अर्थात् जम्हाई आना, शरीर संकुचित करनेकी इच्छा, कम्प, श्रान्तिबोध, भ्रान्ति, प्रलाप, रातको नींद न आना, लोमहर्ष, दांतका घिसना, वायु प्रभृति शीतल द्रव्यपर और आतपादि उष्ण द्रव्य पर थोड़ी थोड़ी देरपर इच्छा और अनिच्छा, अरुचि, अजीर्ण, दुर्व्वलता, शरीरमें दर्द, शारीरिक अवसन्नता, दीर्घसूत्रता, अर्थात् प्रत्येक काममें देर लगना, आलस्य, हितकी बात कहनेसेभी बुरा लगना, तथा उष्ण, लवण, कटु और अम्ल वस्तु खानेकी इच्छा। यही सब पूर्व्वरूपको सामान्य पूर्व्वरूप कहतेहै। इसके सिवाय वातादि दोष भेदसे औरभी कई विशेष पूर्व्वरूप लक्षित होतेहै;— वातज ज्वरके पहिले बार बार जम्हाई आना, पित्तज ज्वरके पहिले दोनो आखोंका जलना और कफ ज्वरके पहिले अतिशय अरुचि होतीहै। द्विदोषज ज्वरमें पूर्व्वोक्त सामान्य पूर्व्वरूपके साथ कोई दो दोष विशिष्ट पूर्व्वरूप और त्रिदोषज ज्वरमें वैसही तीन दोष विशिष्ट पूर्व्वरूप प्रकाश होताहै। यही सब पूर्व्वरूप सभी ज्वरमें प्रकाश होगे यह निर्दिष्ट नियम नहीहै। दोष प्रकोपके न्यूनाधिक्यसे पूर्वरूप लक्षणभी कभी कम और कभी अधिक प्रकाश होताहै।

साधारण सम्प्राप्ति।

अनियमित आहारादिसे वायु प्रभृति दोष कुपित हो आमाशयमें जाकर आमाशयको दूषित कर कोष्ठका सन्ताप बाहर निकाल कर ज्वर उत्पन्न करताहै। यही सन्ताप बाहर आनेसे सब शरीर

गरम होजाताहै, इसीको ज्वर रोगकी साधारण सम्प्राप्ति कहतेहैं।

वातज ज्वर लक्षण।

वातज ज्वर,—इस ज्वरमें कम्प, विषम वेग अर्थात् ज्वरागमन और ज्वरके वृद्धिमें विषमता, उष्मादिकका वैषम्य अर्थात् त्वक आदि कभी अधिक गरम कभी कम गरम, कंठ और ओठका सूखना, अनिद्रा, क्षवस्तम्भ (छींक न आना) शरीरकी रुक्षता, मलकी कठिनता, सब अङ्ग विशेष कर मस्तक और छातीमें दर्द, मुखकी विरसता, पेटमें शूलकी तरह दर्द, आध्मान अर्थात् पेट फूलना और जम्हाई आना आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं।

पित्तज ज्वर लक्षण।

पित्तज ज्वर,—इसमें ज्वरका तीक्ष्ण वेग, अतिसार रोगकी तरह पतला दस्त होना, अल्प निद्रा, वमन पसीना होना, प्रलापवाक्य, मुखकी तिक्तता, (कड़ुवा होना) मूर्च्छाकी तरह बेहोश होना, दाह, मत्तता, पिपासा, गात्र घूर्णन; कंठ, ओष्ठ, नासिका आदि स्थानोंका पाक अर्थात् इन सब स्थानोंमें घाव होना, तथा मल मूत्र और नेत्रादिका पीला होना आदि लक्षण दिखाई देतेहैं।

कफज ज्वर लक्षण।

कफज ज्वर,—इसमें ज्वरका वेग मन्द, आलस्य, मुखका स्वाद मिठा होना, शरीरमें स्तब्धता अर्थात् भार बोध, पान भोजनमें अनिच्छा, शीत बोध, हृल्लास अर्थात् जी मचलाना, रोमांच, अति निद्रा, प्रतिश्याय अर्थात् मुख नासिकासे पानी बहना, अरुचि, कास; मल मूत्र, नेत्रका सफेद होना, और स्तैमित्य अर्थात् शरीर गीले वस्त्रसे आच्छादितकी तरह मालूम होना आदि लक्षण लक्षित होतेहैं।

वातपित्तज ज्वर,—इस ज्वरमें तृष्णा, मूर्च्छा, गात्र घूर्णन, अनिद्रा, मस्तकमें दर्द कंठ और मुख सूखना

वातपित्तज ज्वर लक्षण।

वमन, अरुचि, रोमांच, जम्हाई आना, सब गाठोंमे दर्द और आंखके सामने अंधियारा मालुम आदि होताहै।

वातश्लेष्मज ज्वर, इस ज्वरमें स्तैमित्य अर्थात् सब शरीरमें भाद्र वस्त्र आच्छादनके तरह अनुभव, सब गांठों

वातश्लेष्मज ज्वर लक्षण।

मे दर्द, अधिक निद्रा, सिरमे दर्द, प्रतिश्याय अर्थात् मुख नाकसे पानी बहना, कास, सर्व्वाङ्गमें पसीना और सन्ताप आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं। इसमें ज्वरका वेग अधिक तीक्ष्ण या अधिक मृदु नही होता।

पित्तश्लेष्मज ज्वर, -इस ज्वरमें, मुख कफसे लिप्त और पित्तसे कडुवा रहताहै, तथा तंद्रा, मूर्च्छा, कास

पित्तश्लेष्मज ज्वर लक्षण।

अरुचि, तृष्णा और बारम्बार दाह और बारम्बार शीत आदिके लक्षण प्रकाश होतेहैं।

त्रिदोषज या सन्निपातज ज्वरको चलित भाषामें विकार कहते है। इसमें कभी दाह, फिर थोड़े

सन्निपात लक्षण।

ही देर बाद शीतबोध, अस्थि समूह, सन्धिस्थल और मस्तकमें दर्द, आखें डबडबी, मैली, लाल, विस्तारित या अतिकुटिल, कानमें कई प्रकारके शब्द सुनाई देना, कंठमानो धानके छिकलेसे भरा; तन्द्रा, मूर्च्छा, प्रलाप बकना, कास, श्वास, अरुचि, भ्रम, तृष्णा, निद्रा नाश, जीभ कोयलेकी तरह काली और गौकि जीभकी तरह कर्कश, सर्व्वाङ्गमें शिथिल भाव, कफमिश्रित रक्त वा पित्तका निकलना, सिरका इधर उधर फिराना, मल, मूत्र और पसीना बन्द होना, दोषके पूर्णताके सबब शरीरकी क्षमता, कंठसे बार बार अव्यक्त शब्द निकलना, मुख

और नासिका प्रभृति स्थानोंमें घाव होना, पेटका भारी होना, रस पूर्णताके सबब वातादि दोष समूहोंका देरसे परिपाक और शरीरमें काला तथा लाल कोठ अर्थात् बर्रे काटनेके तरह शोथकी उत्पत्ति आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं।

निउमोनिया ।

सन्निपात ज्वरकी अवस्था विशेषको "निउमोनिया" कहते है। सन्निपात ज्वरमें साधारण लक्षणके सिवाय औरभी कई विशेष लक्षण दिखाई देतेहैं। यह पीड़ा प्रकाश होनेके पहिले अत्यन्त दुर्व्वलता और क्षुधा मन्द होतीहै। पीड़ाकी प्रथम अवस्थामें कम्पज्वर, वमन, छातीमें दर्द, शिर:पीड़ा, प्रलाप, अस्थिरता, और आक्षेप अर्थात् हाथ पैरका पटकना आदि लक्षण दिखाई देताहै; सम्पूर्ण रूपसे पीड़ा प्रकाश होनेके बादभी यह सब लक्षण अधिक होनेके सिवाय औरभी कई लक्षण अधिक प्रकाश होतेहै। जैसे छाती छूनेसे दर्द मालूम होना, निश्वास प्रश्वासमें कष्टबोध, अत्यन्त कास, लोहेके मोरचेकी तरह मैला और गाढ़ा लसलसा कफ निकलना, वह कफ किसी बरतनमें रखनेसे फिर जलदी नहीं छूटता। कभी उसी कफके साथ थोड़ा खूनका निकलना। सातवें या आठवें दिन मूत्र और पसीना अधिक आना, प्रत्येक मिनिटमें ८० से १२० बार तक नाड़ीका चलना; शरीरका उत्ताप थर्म्मामिटरमें १०३से १०४ डिग्री होना। (किसी किसीको १०७ डिग्री तक उत्ताप होने परभी आराम होते देखा गयाहै) मुखमण्डल मलिन और चिन्तायुक्त होना, गाल लाल और काला होना और फटना, जीभ सूखी और मैली, क्षुधामन्द, आहारमें कष्ट, उदरामय, अनिद्रा उजियाला देखनेसे कष्टबोध और पीड़ा प्रकाशके दूसरे तीसरे दिन मुखमंडलमें छोटी२ फुड़ियोंका होना।

फुसफुसका दूषित होना इस पीड़ाका प्रधान लक्षण है, कहीं कहीं वह सड़भी जाताहै। फुस फुस दूषित होनेसे ईषत् लाल और मैला रंगका पतला कफ निकालता रहताहै। सड़ जानेपर दुर्गन्धयुक्त दूधकी मलाईकी तरह अथवा पीपकी तरह कफ निकलताहै। इस प्रकार फुस फुस दुर्षित होने पर पीड़ा अत्यन्त कष्टसाध्य होतीहै। फुस फुसमें दाह रहनेसे, वहभी एक कष्ट-साध्यका लक्षणहै। शिशु, वृद्ध, स्त्री, विशेषत: गर्भिणी स्त्री और मद्यपायी व्यक्तिको यह रोग होनेसे साधारणत: वह दुःसाध्य होजाताहै।

सन्निपातकी भोगका काल।

सन्निपात ज्वर कभीभी साध्य नहीं होता। यदि मल और वातादि दोष विरुद्ध होय, अग्नि नष्ट हो जाय और सब लक्षण सम्पूर्ण रूपसे प्रकाश होय तो असाध्य जानना। इसके विपरीत होनेसे कष्टसाध्य होता है। ७ दिन, ८ दिन, १० दिन, ११ दिन, १२ दिन, १४ दिन, १८ दिन, २२ दिन, या २४ दिन तक इस ज्वरसे मुक्ति पानेकी या मृत्यु होनेकी अवधि निर्द्दिष्टहै, अर्थात् इस ज्वरमें यदि क्रमश: ज्वर और वातादि त्रिदोषकी लघुता, इन्द्रिय समूहोंकी प्रसन्नता, सुनिद्रा, हृदय परिष्कार, उदर और शरीरकी लघुता, मनकी स्थिरता और वल लाभ प्रभृति लक्षण प्रकाश हो तथा उक्त अवधि यदि पूरीहो जाय तो वह रोगी आराम होताहै। और यदि दिन पर दिन निद्रानाश, हृदयकी स्तब्धता, पेट और देहका भारी होना, अरुचि, मनमे अस्थिरता और वलहानि आदि लक्षण प्रकाश होय, तो उसी निर्द्दिष्ट अवधिके भीतरही रोगीकी मृत्यु होतीहै। सन्निपात ज्वरके शेष अवस्थामें यदि कानके जड़में कष्टदायक शोथ हो तो ऐसही कोई रोगी बचताहै; पर वह शोथ

यदि प्रथम अवस्थामें हो तो साध्य और मध्य अवस्थामें होनेसे कष्टसाध्य होता है।

अभिन्यास ज्वर।

अभिन्यास ज्वरमें वातादि दोषत्रय थोड़ाभी कुपित होकर यदि वक्षःस्थलके स्रोतसमूहोंमें प्रविष्ट होय और आमरसके साथ मिलकर ज्ञानेन्द्रिय और मनको विकृत करे तो अति भयंकर कष्टसाध्य अभिन्यास नामक ज्वर उत्पन्न होताहै। इस ज्वरमें रोगी निश्चेष्ट और दर्शन, स्पर्शन, श्रवण और घ्राणशक्ति रहित हो जाताहै, पासके बैठने-वालोंको रोगी नहीं पहचान सकताहै, किसीको कोई बात या शब्द कुछ नहीं समझता, खानेको नहीं मांगता, निरन्तर सूचिका विद्धवत् (सूई गड़ानेकी तरह) यातना अनुभव करना, कोई बात न कहना, सर्व्वदा सिर इधर उधर फिराना, कांखना और करवट न लेना, ऐसा ज्वर सर्व्वदा असाध्यहै, पर कदाचित् कोई दैव अनु-ग्रहसे मुक्तिलाभभी पाते हैं; यहभी एक प्रकारका सन्निपात ज्वरहै।

आगन्तुकका कारण और लक्षण।

आगन्तुक ज्वर शस्त्र, ढेला या डंडा आदिसे आघात, अभि-चार अर्थात् निरपराध मनुष्यको मारनेके लिये मंत्रादि उच्चारण पूर्व्वक क्रियाविशेष, अभिसंग अर्थात् भूत प्रेतादि या कामादि रिपु सम्बन्ध और ब्राह्म-णादिका अभिशाप, यही सब कारणोंसे आगन्तुक ज्वर होताहै। अभिघातादि कारण विशेषमें वातादि जिस दोषके प्रकोपकी सम्भावना है, उन सब कारणोंसे आगन्तुक ज्वर उत्पन्न होनेसे, उसमें वही दोष अनुबन्ध रहताहै।

विषज लक्षण।

विषज ज्वरमें मुख काला होना, अतिसार, अरुचि, पिपासा, सूचीविद्धवत् वेदना और मूर्च्छा होतीहै।

औषधि विशेषके सूंघनेसे ज्वर होनेपर मूर्च्छा, सिरमें दर्द और वमन आदि लक्षण प्रकाशित होते है।

औषधि गन्धज ज्वर।

अभिलषित रमणी न मिलनेसे कामज ज्वर होताहै, इसमें मनकी अस्थिरता, तन्द्रा, आलस्य और अरुचि आदि लक्षण दिखाई देतेहैं। भय, शोक या क्रोधसे ज्वर उत्पन्न होनेसे उसमें भी प्रलाप और कम्प होता है।

कामज लक्षण।

अभिचार और अभिशाप जनित ज्वरमें मोह और तृष्णा तथा भूताभिषङ्ग ज्वरमें चित्तका उद्वेग, हास्य रोदन और कम्प प्रभृति लक्षण दिखाई देतेहैं।

अभिचारादि लक्षण।

कामज, शोकज, और भयज ज्वरमें वायुका प्रकोप, क्रोधज ज्वरमें पित्तका प्रकोप और भूताभिषङ्ग ज्वरमें वात पित्त और कफ यह तीन दोषका प्रकोप होताहै। और जो ज्वर भूतादिके संसर्गसे उत्पन्न होताहै उसमें भूतके आवेशकी तरह हसना रोना आदि रूप होताहै।

विषम ज्वर जिस ज्वरके आगमन या वृद्धिका नियम नहीहै और जिस ज्वरमें उष्णता या ज्वरके वेगकी भी समता नहीहै, उसको विषम ज्वर कहतेहै। इस ज्वरका प्रधान लक्षण मुक्तानुवन्धित्व, अर्थात् छूट छूट कर ज्वर आताहै।

विषम ज्वर।

नये ज्वरको यथाविधि चिकित्सा न कर, यदि उग्रवीर्य्य औषधादिसे निवृत्त किया जाय तो ज्वरोत्पादक कुपित वातादि दोष अच्छी तरह शान्त न हो हीनवल होताहै, और रस रक्तादि कोई

धातुके आश्रयसे विषम ज्वर उत्पन्न करताहै। इसके सिवाय कभी कभी पहिलेहीसे विषम ज्वर उत्पन्न होताहै।

अवस्था भेद।

विषम ज्वरके लक्षणके अनुसार सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थकादि नामसे अभिहित है। दोष रसस्थ होनेसे सन्तत, रक्तस्थ होनेसे सतत, मांसाश्रित होनेसे अन्येद्युष्क, मेदोगत होनेसे तृतीयक और अस्थि मज्जागत होनेसे चातुर्थक ज्वर उत्पन्न होता है। यह पांच प्रकारके ज्वरमें चातुर्थक ज्वरही अधिक भयंकरहै।

सन्तत ज्वर लक्षण।

सन्तत ज्वर लगातार सात दिन, दश दिन या द्वादश दिन तक बराबर भोगकर छूटजाताहै।

दोकालीन ज्वरमें।

जो ज्वर दिन रातमें दो या चार बार अर्थात् दिनको एकबार और रातको एकबार, अथवा दिनको दो बार या रातको दो बार हो उसको सततक या दोकालीन ज्वर कहतेहै।

अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थक लक्षण।

दिन रातमें एकबार ज्वर हो उसको अन्येद्युष्क कहतेहै। जो ज्वर तीसरे दिन अर्थात् एक दिन अन्तर देकर आताहै उसको तृतीयक (तिजारी) और जो चौथे दिन अर्थात् दो दिन अन्तर पर आताहै उसको चातुर्थक (चौथइया) ज्वर कहतेहै। तृतीयक (तिजारी) ज्वरमें पित्त और कफका आधिक्य रहनेसे ज्वरके आरम्भ होनेके वक्त त्रिक स्थान अर्थात् कमर पीठ मेरुदंडके सन्धिमें दर्द ; वायु और कफके आधिक्यसे पीठमें तथा वायु और पित्तके आधिक्यसे मस्तकमें दर्द होतीहै। चातुर्थक (चौथइया) ज्वरमें

कफके आधिक्यसे पहिले दोनो अंसोंमें और वायुके आधिक्यसे पहिले मस्तकमें दर्द होताहै; फिर सर्व्वांगमें ज्वर होताहै। जो ज्वर बीचका दो दिन नियत भोगकर आदि और अन्त यह दो दिन विरत रहताहै, उसको चातुर्थक विपर्य्यय कहतेहैं। यहभी एक प्रकारका विषम ज्वरहै। कोई कोई भूताभिषङ्गज ज्वरकोभी विषम ज्वर कहतेहैं।

वातवलासक और प्रलेपक ज्वर लक्षण।

जिस ज्वरमें कफका आधिक्य मालूम हो, तथा रोगीका शरीर रूखा, शोथ विशिष्ठ, अवसन्न, और जड़ पदार्थकी तरह हो, तथा जो ज्वर नित्य मन्द मन्द होता रहे उसको वातवलासक ज्वर कहतेहैं; और जिस ज्वरमें शरीर भार बोध, सर्व्वदा शरीर पसीनेसे लिप्त मालूम हो, उसको प्रलेपक ज्वर कहतेहैं, यह ज्वरभी मन्द मन्द भावसे होताहै। यक्ष्मा रोगमें प्रायः इसी तरहका ज्वर दिखाई देताहै।

दूषित रस परीक्षा।

यदि आहारका रस परिपाक न होकर दूषित हो और यदि दुष्ट पित्त और दुष्ट कफ शरीरके ऊर्द्ध, अधः अथवा वाम दक्षिण विभागके अनुसार अर्द्धांङ्ग भागमें अवस्थित करे, तो शरीरके जिस भागमें पित्त रहता है उस भागमें उष्ण और जिस भागमें कफ रहताहै वह भाग शीतल होताहै। इसके विपरीत होनेसे अर्थात् कोष्ठमें कफ और हाथ पैरमें पित्त रहनेसे शरीर शीतल और हात पैर गरम होताहै।

शीतपूर्व्व और दाहपूर्व्व लक्षण।

यदि दुष्ट कफ और दुष्ट वायु त्वकमें अथवा त्वक गत रसमें अवस्थित करे तो पहिले जाड़ा देकर ज्वर आताहै; फिर वायु और कफका वेग कम

हो जानेपर पित्त दाह उत्पादन करताहै। इसको शीतपूर्व्व ज्वर कहतेहै ; और यदि दुष्टपित्त त्वक गत हो, तो पहिले दाह होकर ज्वर होताहै, फिर पित्तका वेग कम होने पर कफ और वायु शीत उत्पादन करताहै, इसको दाह पूर्व्व ज्वर कहतेहै। यह दोनो ज्वर वातादि दो दोष या तीन दोषके संसर्गसे उत्पन्न होतेहै। इसमें दाहपूर्व्व ज्वर कष्टसाध्य और कष्टप्रद है।

ज्वर पूर्णरूपसे रसादि सात धातुओंमें से कोई एकका आश्रय ले तो उसको धातुगत ज्वर कहतेहैं।

रक्त और मांसगत ज्वर लक्षण।

रस धातुगत ज्वरमें शरीर भारबोध, वमनेच्छा, वमन, शारीरिक अवसन्नता, अरुचि, और चित्तमें क्लान्ति आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं। रक्तगत ज्वरमें अल्प रक्त वमन, दाह, मोह, वमन, भ्रान्ति, प्रलाप, पिड़िका अर्थात् व्रण विशेषकी उत्पत्ति और तृष्णा आदि लक्षण दिखाई देतेहै। मांसगत ज्वरमें जंघामें डंडा मारनेकी तरह दर्द, तृष्णा, अधिक परिमाण मलमूत्र निकलना, बाहर सन्ताप, भीतर दाह, हाथ पैरका पटकना, और शारीरिक ग्लानि आदि लक्षण होतेहै। मेदोगत ज्वरमें बहुत पसीना आना, पिपासा, मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, शरीरमें दुर्गन्ध, अरुचि, और ग्लानि तथा असहिष्णुता आदि लक्षण दिखाई देतेहै। अस्थिगत ज्वरमें अस्थि समूहोमें अस्थि भंगवत् दर्द, कुंथन, श्वास, अधिक मल निकलना, वमन और हाथ पैरका पटकना आदि लक्षण होतेहै। मज्जागत ज्वर में आंखके सामने अंधियाला होना, हुचकी, कास, शीत, वमन, भीतर दाह, महाश्वास और हृदय काटनेकी तरह दर्द आदि लक्षण दिखाई देतेहै। शुक्रगत ज्वरमें लिंग जड़वत् स्तब्ध होजाताहै तथापि शुक्र बराबर गिरता रहताहै। इस ज्वरमें रोगीकी मृत्यु निश्चय जानना।

अन्तर्वेग और बहिर्वेग लक्षण ।

जिस ज्वरमें अधिक अन्तर्दाह ; अधिक तृष्णा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, सन्धिस्थान अस्थि समूहोमें दर्द पसीना बन्द और वातादि दोष तथा मलकी बद्धता आदि लक्षण होतेहै उसको अन्तर्वेग ज्वर कहतेहै। और जिस ज्वरमें बाहर सन्ताप अधिक, किन्तु तृष्णा आदि उपद्रव अल्प रहताहै उसको बहिर्वेग ज्वर कहतेहै।

प्राकृत और वैकृत ।

वर्षा, शरत् और वसन्तकालमें क्रमशः वातादि दोषत्रयसे जो ज्वर उत्पन्न होताहै उसको प्राकृत ज्वर कहतेहै ; अर्थात् वर्षाकालमें वातिक शरत्में पैत्तिक वसन्तकालमें श्लैष्मिक ज्वर होनेसे उसको प्राकृत ज्वर कहतेहैं। इसके विपरीत होनेसे अर्थात् वर्षामें श्लैष्मिक या पैत्तिक, शरत्में वातिक अथवा श्लैष्मिक, वसन्तमें वातिक या पैत्तिक ज्वर होनेसे उसको वैकृत ज्वर कहतेहै। प्राकृत ज्वरमें वातिक ज्वरके सिवाय और सब ज्वर साध्यहै। वैकृत ज्वरमात्र दुःसाध्यहै। प्राकृत ज्वरमें ऋतु विशेषके अनुसार एक एक दोष आरम्भक होनेपरभी बाकी दो दोष अनुबन्ध रहताहै।

अपक्व ।

अपक्व या तरुण ज्वर—जिस ज्वरमें मुहसे लार बहे, वमनेच्छा हृदयकी अशुद्धि, अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, अपरिपाक, मुखकी विरसता, शरीरका भारी होना, स्तब्धता, क्षुधानाश, अधिक पिशाब होना और ज्वरके प्रबलताका लक्षण दिखाई दे तो उसको अपक्व या आम ज्वर कहतेहैं।

पच्यमान ज्वर,—ज्वरके वेगका आधिक्य, तृष्णा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, प्रभृति और वमनेच्छा आदि लक्षण समूह पच्यमान ज्वरमें अर्थात् ज्वरके परिपाक अवस्थामें प्रकाशित होतेहैं।

पक्वज्वर,— भूख लगना, देहकी लघुता, ज्वरकी न्यूनता,

वायु, पित्त, कफ और मलका निकलना, तथा इसी रीतिसे आठ दिन अतिवाहित होना, यही सब पक्व ज्वरके लक्षणहै।

ज्वरके उपद्रव।

ज्वरके उपद्रव,—कास, मूर्च्छा, अरुचि, के, तृष्णा, अतिसार, मलवद्धता, हिचकी, श्वास और अंगवेदना, इसी दश को उपद्रव कहतेहै।

साध्य और असाध्य ज्वर लक्षण।

साध्य ज्वर,—जो ज्वर अल्प दोषसे होताहै, तथा उपद्रव शून्य ज्वरसे यदि बलकी हानि न होयतो साध्य जानना।

असाध्य ज्वर,—जो ज्वर धातुगत पुराना अथवा अति बलवान और जिस ज्वरसे रोगी क्षीण हो शोथ उत्पन्न होताहै; तथा जिस ज्वरमें रोगीका केश आपसे आप साफ सुथरे हो जाना यह असाध्य ज्वर लक्षण है। कई प्रबल कारणोंसे ज्वर होकर कई लक्षणयुक्त हो और जिस ज्वरमें इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट हो जाय उस ज्वरको घातक जानना। अन्तर्दाह, तृष्णा, मल बद्धता, कास और श्वासयुक्त प्रबल ज्वरको गम्भीर ज्वर कहतेहैं। यह ज्वरभी असाध्यहै; विशेषत: गम्भीर ज्वर होकर रोगी क्षीण या कृश देह होनेसे उसका प्राण नाश होताहै। जो ज्वर पहिलेहीसे विषम या दीर्घकाल स्थायी हो, वहभी असाध्यहै। बाहर शीत और भीतर दाहयुक्त ज्वर प्राण नाशकहै। जिस ज्वरमें शरीर रोमांचित, आंखें लाल या चञ्चल, मूर्च्छा, तृष्णा, हिक्का, श्वास, छातीमें सांघातिक शूलकी तरह दर्द और केवल मुखसे श्वास, प्रश्वास निकलता रहेतो इससेभी रोगीकी मृत्यु होतीहै। जिस ज्वरमें रोगी की कान्ति और इन्द्रिय समूहोंकी शक्ति नष्ट हो जातीहै, बल और मांस क्षीण होजाताहै तथा अरुचि और ज्वर वेगका गाम्भीर्य्य अथवा तीक्ष्णता मालूम हो वहभी असाध्य है।

सान्निपातिक ज्वर, अन्तर्वेग ज्वर और धातुगत ज्वर परित्याग होनेसे पहिले दाह, पसीना, भ्रम, तृष्णा, कम्प, मलभेद, संज्ञानाश, कुन्थन और मुखमें दुर्गन्ध आदि लक्षण प्रकाश होते हैं।

त्याग लक्षण।

नये ज्वरमें पहिले उपवास देना आवश्यक है; इससे वात-पित्त कफका परिपाक, अग्निकी दीप्ति, शरीरकी लघुता, ज्वरका उपशम और भोजनकी इच्छा होती है। वातज ज्वरमें; भय, क्रोध, शोक, काम और परिश्रम जनित ज्वरमें; धातुक्षय जनित ज्वरमें और राज यक्ष्मा जनित ज्वरमें उपवास नहो कराना। तथा वायु प्रधान मनुष्य, क्षुधार्त, तृष्णार्त, मुखशोषयुक्त, या भ्रमयुक्त और बालक, वृद्ध, गर्भिणी या दुर्ब्बल इनकोभी उपवास विहित नहीहै। उपवास विहित ज्वरमें भो अधिक उपवास देकर रोगीको दुर्ब्बल करना उचित नहोहै। अधिक उपवास करानेसे अनिष्ट होताहै; इसमे सब गांठ और शरीरमें दर्द, कास, मुखशोष, क्षुधानाश, अरुचि, तृष्णा, श्रवणेन्द्रिय और दर्शनेन्द्रियकी दुर्ब्बलता, मनकी चंचलता या भ्रान्ति, अधिक उद्गार, मोह और अग्निमान्द्य होताहै। उपयुक्त परिमाणसे यथारीति उपवास करानेसे अच्छी तरह मल, मूत्र और वायुका निकलना, शरीरकी लघुता, पसीना आना, मुख और कंठ साफ, तन्द्रा और क्लान्ति नाश, आहारमें रुचि, एक साथ भूख प्यास लगना, अन्तःकरण प्रसन्न और साफ डकार आना आदि उपकार होताहै।

चिकित्सा।

ज्वर होनेके पहिले दिनसे आठ दिन तक अपक्वावस्था रहती है इतने दिन तक ज्वरनाशक कोई काढ़ा या औषध देना उचित नहीहै। पर अड़ू

दोष परिपाक व्यवस्था।

पानी या दोष परिपाकके लिये धनिया १ तोला और परवलका पत्ता १ तोलाका काढ़ा अथवा शोंठ, देवदारु, धनिया, बृहती और कटेली इन सबका काढ़ा दे सकतेहै। ८ दिनके बाद ज्वर नाशक काढ़ा और औषध देना चाहिये। पर आज कलके समयमें जैसे ज्वर आतेही भयानक होजाता है, उसमे ८ दिनकी प्रतीक्षा न कर विचार पूर्व्वक उक्त समयके भीतरही काढ़ा आदि औषध देना आवश्यक है।

अविच्छेद ज्वर।

अविच्छेद ज्वरमें इन्द्रयव, परवरका पत्ता और कुटकी यह तीन औषधिका काढ़ा पिलानेसे २।३ बार दस्त हो ज्वर छूट जाताहै। पित्तके आधिक्यमें इन्द्रयव के बदले धनिया या खेतपापड़ा देना उचित है। रोगी दुर्ब्बल हो तो यह दस्तावर काढ़ा न देकर ज्वरांकुश, स्वच्छन्द भैरव, हिंगुलेश्वर, अग्निकुमार और श्रीमृत्युञ्जय (लाल) आदि औषध सहतमें मिलाकर तुलसीके पत्तेका रस अथवा पानके रसके साथ देना। यह ज्वर विच्छेदके बादभी दिया जा सकताहै।

वातज ज्वर।

वातज ज्वरमें सतावर और गुरिचका रस गुड़ मिलाकर पिलाना और पिपला मूल, गुरिच और शोंठ, इस तीन द्रव्यका काढ़ा, अथवा विल्वादि पंचमूल; किरातादि, रास्नादि, पिप्पल्यादि, गुडुच्यादि और द्राक्षादि प्रभृति काढ़ा देना।

पित्तज।

पित्तज ज्वरमें खेतपापड़ाका काढ़ा अथवा खेतपापड़ा, बाला और लाल चन्दन यह तीन द्रव्यका काढ़ा पिलाना। इसके सिवाय कलिङ्गादि, लोध्रादि, पटोलादि, दुरालभादि और त्रायमाणादि काढ़ा देना आवश्यक है।

श्लेष्मज ज्वरमें निर्गुण्डी पत्रके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना। दशमूल और अड़ूसेकी जड़का काढ़ा अथवा पिप्पल्यादि गणका काढ़ा, कटुकादि और निम्बादि काढ़ाभी इस ज्वरमें उपकारीहै।

श्लेष्मज।

द्विदोषज ज्वरमें जो दो दोष ज्वरका आरम्भक हो, उसका उपशम कारक द्रव्य विचार कर काढ़ा स्थिर करना उचितहै। इसके सिवाय वातपित्त ज्वरमें नवाङ्ग, पञ्चभद्र, त्रिफलादि, निदिग्धिकादि और मधुकादि काढ़ा प्रयोग करना। वातश्लेष्मज ज्वरमें अड़ुसेका पत्ता और फूलके रसमें मधु और चिनी मिलाकर पिलाना; रक्तपित्त और कामला ज्वरमें भी यह विशेष उपकारीहै। गुड़ूच्यादि, मुस्तादि दार्व्यादि, चातुर्भद्रक, पाठासप्तक, और कण्ट कार्य्यादि काढ़ा वात श्लेष्म ज्वरमें देना। इसमें बालुका स्वेद विशेष उपकारीहै। मिट्टीके हाड़ीमें बालू गरम करना; फिर एक टुकड़ा कपड़ेमें रेंड़का पत्ता, अकवनका पत्ता, या पानका पत्ता रख उपर वही गरम बालू रखना, फिर उससे थोड़ी कांजी मिलाकर पोटली बाधना, इस पोटलीसे सर्व्वांग (छातीको छोड़कर) सेंकना। इसीको बालूका स्वेद कहतेहै, बालूके स्वेदसे वातश्लेष्म ज्वर और तज्जन्य शिरःशूल और अंग वेदना प्रभृति शान्त होताहै।

द्विदोषज।

पित्तश्लेष्म ज्वरमें पटोलादि, अमृताष्टक और पञ्चतिक्त प्रभृति काढ़ा देना।

पित्तश्लेष्मज।

उक्त नये ज्वरके मध्यावस्थामें सर्व्वज्वरांकुश वटी, चण्डेश्वर रस, चन्द्रशेखर रस, वैद्यनाथ वटी, नवज्वरेभसिंह, मृत्युञ्जय रस, (काला) प्रचण्डे-

मध्यावस्थामें औषध।

ज्वर, त्रिपुरभैरव रस, शीतारिरस, कफकेतु और प्रताप मार्त्तण्ड रस प्रभृति औषध दोषानुसार अनुपान विचार कर देना। अतीसका चूर्ण ६ रत्ती मात्रासे २।३ घंटेके अन्तरमें ३।४ बार सेवन कराना, अथवा २ रत्ती पीपलको चूर्ण साथ ४ रत्ती नाटा बीजको चूर्ण सेवन करानेसे विशेष उपकार होताहै।

सन्निपातमें प्रथम कर्त्तव्य।

सन्निपातमें पहिले आमदोष और कफकी चिकित्सा करना चाहिये, फिर पित्त और वायुका उपशम करना। आमदोषके शान्तिके लिये पंचकोल और आरग्वधादि काढ़ा सेवन कराना। कफ शान्तिके लिये सेंधानमक, शोंठ, पीपल और गोलमरिचका चूर्ण आदीके रसमें मिलाकर आकंठ मुहमें रखना तथा बार बार थूकना। दिन भरमें ऐसही ३।४ बार करनेसे हृदय, पार्श्व, मस्तक, और गलेका सूखा गाढ़ा कफ निकलताहै। बड़ा नीबूका रस और अदरखके रसके साथ सेंधा, काला और सौचल नमक मिलाकर बार बार नास लेनेसेभी कफ पतला हो निकलताहै। रोगी बेहोश हो तो पीपलामूल, सैन्धव, पीपल और महुये फूलका समान भाग चूर्ण करना, फिर उसके बराबर गोलमरिचका चूर्ण मिलाना, यह चूर्ण गरम पानीमें मिलाकर नास देनेसे रोगी चैतन्य होताहै और तन्द्रा, प्रलाप, मस्तक भार आदि दूर होतेहै। तन्द्रा दूर करनेके लिये सेंधा नमक, सैजनकी बीज, सफेद सरसो और कुड़ समान भाग बकरीके मूत्रमें पीसकर नास देना। शिरिष बीज, पीपल, गोलमरिच, सैन्धव, लहसुन, मैनसिल और वच, समान भाग गोमूत्रमें पीसकर आंखमें अंजन करनेसे चैतन्य होताहै। मस्तक अत्यन्त उष्ण, आंखे लाल और प्रबल शिरोवेदना होनेसे

आधा तोला सोरा और आधा तोला नौसादर एक सेर पानीमें भिगोना, यह गल जानेपर उस पानीमें कपड़ेका एक टुकड़ा भिगोकर कनपटी और तालुमें पट्टी रखना; शिरःपीड़ा आदि आराम न होने तक इस पट्टीको उसी पानीमें तर रखना। फिर रोगको तकलीफ शान्त होने पर पट्टी निकाल डालना। इस ज्वरमें क्षुद्रादि, चातुर्भद्रक, पंचमूल, दशमूल, नागरादि, चतुर्दशाङ्ग, त्रिविध अष्टादशाङ्ग, भार्ग्यादि, शठ्यादि, बृहत्यादि, व्योषादि और बिल्वत्यादि प्रभृति काढ़ा, स्वल्प और बृहत् कस्तुरीभैरव, श्लेष्म कालानल रस, कालानल रस, सन्निपातभैरव और वैताल रस आदि औषध देना।

नाड़ीकी क्षीणावस्थामें कर्त्तव्य।

सन्निपात ज्वरमें देह शीतल और नाड़ी क्षीण होने पर मकरध्वज १ रत्ती, कस्तुरी १ रत्ती और कपूर १ रत्ती एकत्र सहतमें मिलाना, फिर २ तोला पानका रस या २ तोला अदरखका रस मिलाकर लगातार ३।४ बार पिलावें। मृगमदासव, मृतसंजीवनी सुरा और हमारा "कस्तुरीकल्प रसायन" इस अवस्थामें विचार कर दिया जा सकताहै। और जब दर्शन, श्रवण और वाकशक्ति आदि क्रमशः लोप होते आवे, नाड़ी बैठ जाय तथा संज्ञानाश हो; तब सूचिकाभरण, घोर नृसिंह, चक्री और ब्रह्मरन्ध्र रस आदि उत्कट औषध प्रयोग करना चाहिये।

निउमोनियामें कर्त्तव्य।

सन्निपात ज्वरके जिस अवस्थाको डाक्टर लोग "निउमोनिया" कहतेहैं उसमें सन्निपात ज्वरोक्त काढ़ा, लक्ष्मीविलास, कस्तुरी भैरव, कफकेतु और कास रोगोक्त कई औषधि दोष आदि विचार कर देना चाहिये।

अभिन्यास ज्वरमें कारव्यादि और शृङ्गादि काढ़ा तथा स्वच्छन्द

नायक और पूर्व्वोक्त सन्निपात ज्वरको औषधोंमें विचार कर देना आवश्यक है।

उपद्रव चिकित्सा।

नये ज्वरमें विशेषतः सन्निपात ज्वरमें दोष समूहोंका आधिक्य और हठकारिताके लिये प्रायः नाना प्रकारके उपद्रव प्रकाश होतेहै। मूल रोगकी अपेक्षा यह सब उपद्रव अधिक भयंकरहै, कारण इससे हटात् प्राण नाशकी सम्भावना है, इस लिये वही सब उपद्रवके चिकित्सामें विशेष मनोयोग देना उचितहै।

सान्निपातिक शोथ चिकित्सा।

सान्निपातिक ज्वरमें किसो किसोके कर्णमूलमें शोथ होताहै; इस शोथसे अकसर मृत्युही होतोहै। पर सन्निपात ज्वरके प्रथम अवस्थाका शोथ साध्य और मध्य अवस्थाका कष्टसाध्य है। शोथके प्रथम अवस्थामें जोंक लगाना; गेरूमिट्टी, पांगा नमक, शोंठ, वच, और राई सम-भाग कांजीमें पीसना, अथवा कुरथी, कटफल, शांठ और काला जीरा समान भाग पानीमें पीसकर, गरमकर लेप करनेसे आराम होताहै। इससे यदि आराम न होकर क्रमशः बढ़ताही जायतो उसको पकाना चाहिये। पानीमें अलसीको पीस थोड़ा घी मिला गरम करना, यह गरम पट्टी बार बार लगानेसे शोथ पक जानेपर नस्तर करना। घाव सूखनेके लिये लहसूनका तेल अथवा हमारा "चतारि तेल" व्यवहार करना चाहिये।

ज्वरमें तृष्णा निवारण।

कफके ज्वरमें प्यास अधिक हो तो, बार बार पानी देना उचित नहीहै। गरम पानी ठंढा कर उसमें सफेद चन्दन घिसकर मिलाना फिर उसी पानीमें सौंफकी एक पोटली भिगोंना तथा वही पुटली बार बार चूसनेको देना अथवा थोड़ा बरफका पानी देना इससे प्यास

क्रमश: शान्त होताहै। षड़ंग पानी पान करनाही इस अवस्थामें अच्छाहै।

अत्यन्त दाह होय तो कुकुरसोंकाका रस वदनमें लगाना, अथवा सेहुंड़के रसेके रसमें अजवाईन पीसकर सर्व्वांगमें मालिश करना। कांजी में वस्त्र भिंगा नीचोड़ लेना तथा उसी वस्त्रसे थोड़ी देर वदन आच्छादन करना, वेरका पत्ता कांजीमें पीस थोड़ी कांजी मिलाकर आगपर रखना जब उसमेंसे फेन निकलने लगे तब वही फेन सर्व्वांगमें मालिश करना। इसी प्रकारसे नीमका फेनभी मालिश कर सकतेहैं। कालिया काष्ठ, लाल चन्दन, अनन्तमूल, जेठीमध, और वेरके बीजकी गूदी; समान भाग कांजीमें पीसकर सिरके तालूमें लेप करनेसे दाह, तृष्णा दोनोंकी शान्ति होतीहै।

ज्वरमें दाह निवारण।

अतिरिक्त पसीना हो तो भूंजी कुरथीका चूर्ण अथवा अबीर सर्व्वांगमें घिसना, चुल्हेकी जला हुई मिट्टीका चूर्णभी मालिश करनेसे पसीना बन्द होताहै।

घर्म्म निवारण।

ज्वरमें वमनका उपद्रव हो तो गुरिचका काढ़ा ठंढा कर उसमें सहत मिलाकर पिलाना। १ तोला खूब महीन पीसा खस तथा सफेद चन्दन घिसा आधा तोला, आध पाव वतासेके शर्व्वतमें मिलाकर, १ तोला मात्रा बार बार देना, अथवा खेतपापड़ा २ तोला आधा सेर पानीमें औटाना आधा पाव पानी रहे तब उतार कर २।३ बार थोड़ा थोड़ा कर यह काढ़ा पिलाना। सहत, चन्दन अथवा चीनीके साथ मक्खीकी विष्ठा चाटनेसे; किम्वा तेलचट्टाकी विष्ठा ३।४ दाना

वमन उपद्रव निवारण।

ठंढे पानीमें भिगोकर पीनेसे वमन दूर होताहै। बरफका टुकड़ा मुहमे रखनेसेभी वमन हिक्का दोनो आराम होतेहै। छर्दी रोगोक्त एलादिभी वमन हिक्का दोनोमें प्रयोग किया जाताहै। अतिसारका उपद्रव हो तो ज्वरातिसारकी तरह चिकित्सा करना चाहिये।

ज्वरमें मलबद्ध होनेसे कर्त्तव्य।

मलबद्ध होनेसे रेड़ीका तेल २ तोला २॥ तोला गरम पानी या गरम दूधमें मिलाकर पिलाना; अथवा पूर्व्वोक्त इन्द्रयव, पटोल पत्र और कुटकी यह तीन द्रव्यका काढ़ा पिलाना। इसके सिवाय ज्वरकेशरी, ज्वर मुरारि, इच्छाभेदी रसभी दे सकतेहै। हमारी बनाई "सरलभेदी वटिका" खिलानेसे सुन्दर मृदु विरेचन होताहै।

ज्वरके मूत्ररोधमे कर्त्तव्य।

मूत्र रोध होनेसे यवक्षार २ रत्तीसे ६ रत्ती तक ठंढे पानीसे दो दो घंटा अन्तर पर देना। यवक्षारके अभावमें सोराका चूर्णभी दे सकतेहै। खसकी जड़, गोखरू, अवासा, खीरेकी बीज, ककड़ीकी बीज, कवावचिनी, और वरुणछाल, प्रत्येक चार २ आने भर आधा पाव पानीमें २ घंटा भिगोना फिर वही पानी थोड़ा थोड़ाकर घंटे घंटके अन्तर पर पिलाना, इससे मूत्रका रोध और जलन दूर होताहै। आधा तोला सोरा एक पाव पानीमें भिंगोना फिर थोड़ी चीनी मिलाकर वही पानी थोड़ा २ पीनेको देना। इससे क्रमशः पिशाव साफ, नाड़ी स्वस्थ और शरीरकी गर्मी कम होकर ज्वरका ह्रास होताहै।

हिक्का निवारण।

हिचकीकी शान्तिके लिये निर्धूम अंगारे पर हींग, गोलमरिच, उरद, या घोड़ेकी सूखी लीद जलाकर धूंआ सूंघना। राईका चूर्ण आधा तोला, आधा सेर पानीमें मिलाकर थोड़ी देर रख छोड़ना,

फिर वह थिरा हुआ पानी आधी छटांक दो तीन घण्टेके अन्तर पर पिलाना। पेटके ऊपर तेल मर्द्दन कर गरम पानीसे सेंकना। पानीके साथ सेंधा निमक मिलाकर अथवा चीनीके साथ सोंठका चूर्ण मिलाकर नास लेना। पीपलकी सूखी छाल जलाकर पानीमें डुबोकर बुताना, फिर वही पानी छानकर पीनेसे हुचकी और कै दोनो बन्द होताहै। तैलचट्टा अर्द्धभाग और उसका आधा भाग गोलमरिच एकत्र पीसना, तथा चौथाई रत्ती ठंढे पानीके साथ २।३ बार सेवन करनेसे प्रबल हिक्काभी आराम होतीहै।

श्वास उपद्रव निवारण। श्वास उपद्रव शान्तिके लिये (बृहती) बनभंटा (कंटकारी) रेंगनी (दुरालभा) जवासा, पटोली, काकड़ाशिंगी, बमनेठी, कुड़, कुटकी और शटी इन सब द्रव्योंका काढ़ा देना। अथवा पीपल, कटफल, और काकड़ाशिंगी सहतमे मिलाकर सेवन कराना, अन्तर धूममें भस्म कियाहुआ मयूर पुच्छ २ रत्ती और पीपलकी बुकनी २ रत्ती अथवा बहेड़ाकी गूदी किम्वा बैरके बीजकी गूदी २ रत्ती सहतमे चाटें, बनकंडेकी आगमें कुल्हाड़ी गरम कर उसके अग्रभागसे पांजरमें दागनेसे अति उग्र श्वासभी आरोग्य होताहै।

कास उपद्रव निवारण। कास उपद्रवमें २।३ घंटा अन्तरसे पीपला मूल, बहेड़ा, खेत-पापड़ा और शोंठ इन सबका चूर्ण सहतके साथ चटाना। अडूसेके रसमें सहत मिलाकर पिलाना। बहेड़ेमें घी लगाकर गोबरके गोलेमें रख आगमें सिजालेना। यह मुखमें रखनेसे कास बहुत जल्दी आराम होताहै।

अरुचिमें सेंधा नमक और आदीका रस, सेंधा नमक बड़े

अरुचि।

नीबूका जीरा, घी, और सेंधा नमकके साथ बड़े नीबूका रस, अथवा आंवला और मुनक्काका कल्क मुखमें धारण करना।

साधारण जीर्ण ज्वर और विषम ज्वरमें हरसिंगारके पत्तेका रस सहतमें मिलाकर पिलाना। खेत-

जीर्ण, विषम ज्वरमें घुसडा प्रस्तुत विधि।

पापड़ा, हरसिंगारका पत्ता, और गुरिच, यह तीन द्रव्य अथवा गुरिच, खेतपापड़ा, भेकपर्णी, छिलमोचिका, (हुरहुर) और परवरका पत्ता; यह पांच द्रव्यका "घुसड़ा" बनाकर सेवन कराना। पांचों द्रव्य एक साथ थोड़ा कूटकर केलेके पत्तेसे लपेटना और माटीसे लेपकर आगमें उसको जलाकर रस निचोड़ कर निकालनेसे "घुसड़ा" कहतेहैं। झाड़कांकड़ाका मूल, छाल पत्ता, फूल और फल कूटकर वैसही जलाना, उसका रस २ तोला दो आने भर सोंठका चूर्णके साथ सेवन करानेसे जीर्ण ज्वर आराम होताहै। भंगरयाकी जड़का ७ टूकड़ा कर एक एक टूकड़ा अदरखके टूकड़के साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका जीर्ण ज्वर आराम होताहै। गुगगुलु, नीमका पत्ता, बच, कुड़, बड़ोहर, यव, सफेद सरसों, और घी एकमें मिलाना, फिर इसका धूंया रोगीके शरीरमें देनेसे विषम ज्वर प्रशमित होताहै, इसका नाम अष्टांग धूपहै। बिल्लीके बिष्टाका धूप देनेसे कम्प ज्वर दूर होताहै। गुगगुलु, गन्धा-तृण अभावमें खस, बच, धूना, नीमका पत्ता, अकवनकी जड़, अगरू, चन्दन और देवदारू; इन सब द्रव्योंका धूप देनेसे सब प्रकारका ज्वर दूर होताहै, इसको अपराजिता धूप कहतेहैं। निदिग्धिकादि, गुड़ुच्यादि, द्राक्षादि, महौषधादि, पटोलादि, विषम ज्वरघ्न, भार्ग्यादि, बृहत् भार्ग्यादि, मधुकादि, दार्व्यादि और

दुर्व्वादि प्रभृति काढ़ेको सब प्रकारके जीर्ण और विषम ज्वरमें दोष विचार कर देना। कारण विषम ज्वरमें तीनही दोष आरम्भकहै, इससे दोष विशेषको आधिक्यता और न्यूनता विचार कर औषध स्थिर करना चाहिये।

तृतीयक और चातुर्थक ज्वर चिकित्सा।

तृतीयक (तोजारो) ज्वरमें महौषधादि, उशीरादि, और पटोलादि ; तथा चातुर्थक (चौथइया) ज्वरमें वसादि, मुस्तादि और पथ्यादि काढ़ा देना उचितहै। काकजंघा, वरियारा, श्यामालता, बमनेठी, लज्जावती लता, चाकुला, चिरचिरो, या भंगरैया इसमें से कोई एक वृक्षका मूल पुष्य नक्षत्रमें उखाड़कर लाल सूतमें लपेट हाथमें बांधनेसे, किम्बा उल्लूके दहिने डैनेका एक पर सफेद सूतमें बांध बायें कानमें धारण करनेसे तृतीयक अर्थात् तिजारी ज्वर आराम होताहै। शिरीष फूलके रसमें हरिद्रा और दारु हरिद्रा पीसना फिर घी मिलाकर नास लेनेसे अथवा वकफूलके पत्तेके रसका नास लेनेसे चातुर्थक (चौथाईया) ज्वर दूर होताहै। अश्विनी नक्षत्रमें सफेद अकवन या कनेलको जड़ उखाड़ कर ६ रत्ती मात्रा अरवा चावलके धोवनमें पीसकर पीनेसे चातुर्थक ज्वर आराम होताहै।

रात्रिज्वर।

काकमाची (कवैया कवई) को जड़ कानमें बांधनेसे रात्रिज्वर दूर होताहै। निर्दिग्धिकादि काढ़ा शामको पिलानेसे रात्रि ज्वरमें विशेष उपकार होताहै।

शीतपूर्व्व ज्वर।

शीतपूर्व्व ज्वरमें भद्रादि और वनादि काढ़ा और दाह पूर्व्व ज्वरमें विभीतकादि और महाबलादि कषाय प्रयोग करना चाहिये।

उक्त जीर्ण और विषम ज्वरके दोष और बलाबल विचार कर अनुपान विशेषसे सुदर्शन चूर्ण, ज्वरभैरव चूर्ण, चन्दनादि लौह, सर्व्वज्वरहर लौह, वृहत् सर्व्वज्वरहर लौह, पंचानन रस, ज्वराशनि रस, ज्वरकुञ्जरपारीन्द्र रस, जयमङ्गल रस, विषम ज्वरान्तक लौह, पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह, कल्पतरु रस, आह्निकारी रस, चातुर्थकारी रस, मकरध्वज और अमृतारिष्ट आदि औषध देना।

जीर्ण और विषम ज्वरकी महौषध।

हमारी बनाई "पंचतिक्त वटिका" सब प्रकारके नये और पुराने ज्वरको अकसीर दवाहै।

जीर्ण ज्वरमें कफका संयोग न रहनेसे अंगारक तैल, वृहत् अंगारक तैल, लाक्षादि तैल, महा लाक्षादि तैल, किरातादि तैल, वृहत् किरातादि तैल सर्व्वांगमें मालिश करना। इस ज्वरमें दशमूल षटपलक घृत, वासादि घृत और पिप्पल्यादि घृत सेवन कर सकतेहैं।

ज्वरमें कई प्रकार संस्कृत दूधभी अमृतकी तरह उपकार करताहै। पर नये ज्वरमें वही दूध विषकी भांति अनिष्टकारक है।

ज्वरमें दूध पान।

सरिवन, पाकुला, वृहती, कटेली और गोक्षुर यह स्वल्प पंचमूलके साथ दूध पाक कर पीनेसे कास, श्वास, शिरःशूल और पीनस संयुक्त जीर्ण ज्वर आराम होताहै। गोक्षुर, वरियारा बेलकी छाल और शोंठ; यह सब द्रव्यके साथ दूध पाक कर पीनेसे मल और पिशाब साफ हो शोथसंयुक्त जीर्ण ज्वर आराम होताहै। सफेद गदहपुना, बेलकी छाल, और लाल गदहपुना दूधमें पाक कर पीनेसे सब प्रकारका जीर्ण ज्वर आराम होताहै।

ज्वर रोगीके गुदामें काटनेकी तरह पीड़ा हो तो एरण्ड मूलके साथ दूध पाक कर पिलाना।

उक्त दूध पाक करनेकी विधि ;—जितनी दवायोंके साथ दूध पाक करना हो, उन सबका समान भाग मिलाकर २ तोला होना चाहिये, मिली हुई दवायोंका आठ गूना अर्थात् १६ तोला दूध और पानी दूधका चौगूना अर्थात् ६४ तोला लेना चाहिये। सब दवा एकत्र कर आंच पर रखना, जब सब पानी जल कर केवल दूध रहजाय तब उतारकर थोड़ा गरम रहतेही सेवन कराना।

ज्वरमें दुग्ध पाक विधि।

आज कलके प्राय: सब रोगोके नये ज्वरको अपक्व अवस्थामें ज्वरको कुनैनसे बंद करनेको रीतिहै, इससे जीर्ण ज्वरमेंभी कफका संस्रव बना रहताहै ; इस लिये घृत या तैल प्रयोगका उपयुक्त अवसर नहो मिलताहै।

आगन्तुक ज्वरमें वातादि जिस दोषके लक्षण प्रकाश हो उसी दोषको चिकित्सा करना। इसके सिवाय औरभी कई विशेष नियमहै ; जैसे—अभिघातज आगन्तुक ज्वरमें उष्ण वर्ज्जित क्रिया और कषाय मधुर रसयुक्त स्निग्ध द्रव्यका पान भोजन करना चाहिये। अभिचार और अभिशाप जनित आगन्तुक ज्वरमें होम, पूजा और प्रायश्चित्त कराना। उत्पात और ग्रहवैगुण्य जनित आगन्तुक ज्वरमें दान, स्वस्त्ययन और अतिथि सत्कार करना चाहिये। औषधिगंध और विषभक्ष जनित आगन्तुक ज्वरमें विष तथा पित्तदोष नाशक औषधसे चिकित्सा करना और दालचिनी, इलायची, नागकेशर, तेजपत्ता, कपूर, शीतल चीनी, अगर, केशर, और लौंग इसका काढ़ा पिलाना ; इन सब द्रव्यको सर्व्वगंध कहतेहै। क्रोधज ज्वरमें अभिलषित

आगन्तुक ज्वरादि चिकित्सा।

द्रव्य देना और हितवाक्य कहना, तथा काम, शोक, और भय-जनित ज्वरमें आश्वास वाक्य, अभीष्ट वस्तु प्रदान, हर्षोत्पादन और वायुको शान्त करना चाहिये। तथा क्रोध उदय होनेसे काम ज्वर, और काम तथा क्रोध उदय होनेसे, भयज और शोकज ज्वर प्रशमित होताहै। भूतावेश जनित ज्वरमें बन्धन ताड़नादि और मानसिक ज्वरमें रोगीकामन प्रसन्न रखना चाहिये।

आरोग्यके बादकी अवस्था।

ऐसेही विविध चिकित्सासे ज्वर आरोग्य होने पर २।३ सप्ताह तक लोह भस्म २ रत्ती, बड़ीहरेका चूर्ण २ रत्ती, और शोंठका चूर्ण २ रत्ती चिरायता भिगोया पानीमें मिलाकर पिलानेसे शरीर सबल और रक्तकी वृद्धि होतीहै। इस अवस्थामें चिरायताके पानीके साथ मकरध्वज सेवन करनेसेभी उपकार होताहै।

नये ज्वरमें पथ्यापथ्य।

नये ज्वरमें दोषका परिपाक न होने तक उपवास, फिर दोषका परिपाक और क्षुधाका परिमाण विचार कर मिश्री, बतासा, अनार, कसेरू, मुनक्का, सिंघाड़ा, इक्षु, धानका लावा, धानके लावाका मंड, पानीका साबुदाना, अराकट और बार्लि आदि हलका भोजन कराना। पोनेको पानी गरम कर ठंढा होनेपर देना। कफज, वातश्लेषज, और सन्निपात ज्वरमें पानी ठंढा नही करना। ज्वर त्यागके दो तीन दिन बाद यदि शरीरमें ग्लानि न रहे, तो पुराने चावलका भात, मूंग मसूरको दाल, कटु तिक्त रसयुक्त तरकारी, छोटी मछली आदि भोजनको देना। नये ज्वरमें पेट साफ रखना नितान्त आवश्यकहै।

सन्निपात ज्वरमेंभी पथ्यादि ऐसही जानना ; पर रोगी अत्यन्त दुर्व्वल हो जाय तो, एक उफानका दूध और मूंग, मसूर या लघुपाक

मांस रसके साथ थोड़ी मृतसंजीवनी सुरा मिलाकर बार बार देना चाहिये।

उक्त ज्वरमें ज्वर त्यागके पहिले भात खाना, सब प्रकार गुरु-पाक और कफवर्द्धक द्रव्य भोजन, तैल मर्द्दन, व्यायाम, परिश्रम, मैथुन, स्नान, दिवानिद्रा, अति क्रोध, शीतल जल पान और हवामें फिरना आदि अनिष्टकारक है, अतएव इन सब कामोंको नहीं करना ।

जीर्ण और विषम ज्वरमें ।

जीर्ण और विषम ज्वरमें ज्वर अधिक रहनेसे धानके लावाका मंड, साबुदाना, बार्लि, अराकट, और रोटी आदि विचार कर देना। ज्वरका आधिक्य न रहनेसे दिनको पुराने चावलका भात, मूंग और मसूरकी दाल, परवर, बैगन, गुल्लर, अलवी, मूली आदिकी तरकारी; कवई, मागूर, शिंगी आदि छोटी मछलीका रसा और एक उफानका थोड़ा दूध आहार करना। गरम पानी ठंढा कर पीनेको देना। रोगी अधिक दुर्ब्बल हो तो कबूतर, मुरगा और खस्सीके मांसका रस देना चाहिये। रातको, क्षुधाके अवस्थानुसार साबुदाना आदि या रोटी खाना उचित है। खट्टेमें पाती या कागजी नीबूका रस थोड़ा देना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म ।

घृतपक्क आदि गुरुपाक द्रव्य भोजन, दिनको सोना, रातको जागना, अधिक परिश्रम, ठंढी हवामें फिरना, मैथुन और स्नान आदि अनिष्टकारक है। पर जिस रोगीको वाताधिक्य या पित्ताधिक्य का ज्वर हो और स्नान न करनेसे तकलीफ मालूम हो तो उसको गरम पानी ठंढा कर थोड़े पानीसे स्नान कराना; अथवा उसी पानीमें अंगोछा भिंगोकर बदन पोंछना चाहिये।

प्लीहा।

प्लीहाका कारण।

ज्वर अधिक दिन तक शरीरमें रहनेसे, मलेरिया ज्वरमें, अथवा मलेरिया दूषित स्थानमें वास करनेसे, किम्वा मधुर स्निग्धादि आहारसे रक्त बढ़कर प्लीहा बढ़ती होतीहै। इसके सिवाय अतिरिक्त भोजनके बाद तेज चलनेवाली सवारीमें चढ़ना या व्यायामादि श्रमजनक कार्य्य करनेसेभी प्लीहा स्वस्थानसे च्युत हो बढ़ जातीहै। पेटके बांये तरफ ऊपरका पिलहीका स्थानहै, अविकृत अवस्थामें हाथसे वह मालूम नहीं होती, पर, बड़ी होनेसे कुक्षिके बायें तरफ हाथ लगातेही मालूम होतीहै। इस रोगमें सर्व्वदा मृदु ज्वर रहताहै और रोज किसी न किसी वक्त ज्वर बढ़ताहै अथवा एक दिनका अन्तर देकर कम्पज्वर होताहै, तथा प्लीहा स्थानमें दर्द, जलन, कोष्ठ वद्धता, अल्प या लाल मूत्र, श्वास, कास, अग्निमांद्य, शरीरकी अवसन्नता, कृशता, दुर्व्वलता, विवर्णता, पिपासा, वमन, मुखका वेस्वाद, चक्षु और हाथके अंगुलियोंका पीला होना, आंखके सामने अंधियाला मालूम होना, मूर्च्छा प्रभृति लक्षण प्रकाश होतेहैं।

कष्टसाध्य प्लीहाके लक्षण।

प्लीहा अधिक बढ़नेसे रोग कष्टसाध्य होताहैं तथा नाक और दांतसे खून गिरताहै और रक्तवमन, रक्तभेद, उदरामय, दांतके जड़में घाव, पैर, आंख और सर्व्वाङ्गमें शोथ होताहै, तथा पांडु और कामला आदिके लक्षणभी दिखाई देतेहैं। यही सब लक्षण दिखाई देनेसे प्लीहा आराम होनेकी आशा नहीं रहती।

प्लीहा रोगमें मलबद्धता, वायुका ऊर्द्धगमन और दर्द, अधिक हो तो वायुका आधिक्य जानना; पिपासा ज्वर और मूर्च्छा हो तो पित्तका आधिक्य और प्लीहा अधिक कठिन, शरीर भारी और अरुचि हो तो कफका आधिक्य जानना। रक्तके आधिक्यमें पित्ताधिक्यकेही लक्षण मालूम होतेहैं; पर प्यास उससेभी अधिक होतीहै। तीन दोषके आधिक्य में उक्त लक्षण सब मिले हुए मालूम होतेहै।

प्लीहाका दोष निर्णय।

प्लीहा रोगमें रोगीका पेट जिससे साफ रहे पहिले इसका उपाय करना आवश्यकहै। पुराना गुड़ और बड़ी हर्रका चूर्ण समान भाग अथवा काला नमक और बड़ी हर्र चूर्ण समान भाग रोगी और रोगकी अवस्था विचार कर गरम पानीके साथ फांकनेसे प्लीहा और यकृत दोनो रोगकी शान्ति होतीहै। पीपल प्लीहा रोगकी एक उत्तम औषध है, २।३ पीपल पानीमें पीसकर पिलानेसे अथवा गुड़के साथ मिलाकर खानेसे प्लीहामें विशेष उपकार होताहै। तालकूट (ताड़की जटा) एक हांड़ीमें रख मुह बंद कर आगमें भस्म करना, यह भस्म पुराने गुड़के साथ उपयुक्त मात्रा सेवन करानेसे प्लीहा प्रशमित होतीहै। हींग, सोंठ, पीपल, गोलमरिच, कुड़, जवाखार और सेंधा नमक सबका सम भाग चूर्ण नीबूके रसमें खलकर दो आनेसे चार आने भर मात्रा रोज खिलाना। अजवाईन, चीतामूल, जवाखार, पीपला मूल, पीपल, और दन्ती सबका सम भाग चूर्ण आधा तोला मात्रा गरम पानी, दहीका पानी, सुरा या आसवके साथ पिलाना। चीतामूल पीसकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना तथा वही गोली तीन पके केलेमें भरकर खिलाना। चीतामूल, हरदी, अकवनका पका पत्ता, अथवा धाईफूलका चूर्णकर पुराने

चिकित्सा।

गुड़के साथ खिलाना। लहसन, पिपला मूल, और हर्रे खाने और गोमूत्र पीनेसे प्लीहा आराम होतीहै। शरफोंका पीसकर आधा तोला मात्रा दहीके माठेके साथ पीनेसे प्लीहा उपशम होतीहै। शंखनाभीका चूर्ण आधा तोला बड़े नीबूके रसमें मिलाकर चाटनेसे कछुवेके समान प्लीहाभी आराम होतीहै। समुद्रका साप भस्म प्लीहा नाशकहै। देवदारु, सैंधानमक और गन्धक का सम भाग भस्मकर सेवन करनेसे प्लीहा, यकृत् और अग्रमांस रोग आराम होताहै। रोहितक और बड़ी हर्रेके काढ़ेके साथ २ आनेभर पीपलकी चूर्ण मिलाकर पीना। सरिवन, पिठवन, बनभंटा, कटेली, गोखुर, हरीतकी, और रोहितककी छालका काढ़ा देना। निदिग्धिकादि काढ़ाभी इसमें देना चाहिये। इसके सिवाय माणिकादि गुड़िका, हनुमानकादि गुड़िका, गुड़पिप्पली, अभया लवण, महा मृत्युञ्जय लौह, हरलोकनाथ रस आदि औषध विचार कर प्रयोग करना। प्लीहाके साथ श्लेष्म संसृष्ट ज्वर न रहनेसे चित्रक घृत आदि सेवन करना चाहिये। रोहितकारिष्टभी प्लीहाका एक अकसीर दवाहै।

प्लीहा ज्वरमें हमारी पंचतिक्त वटिका।

ज्वर प्रबल रहे या अकस्मात् प्रबल होनेसे उक्त औषधोंमें जो औषध ज्वरमें भी उपकारी हो वही औषध तथा ज्वरकी औषध दोनों मिलाकर प्रयोग करना। आवश्यक होनेसे प्लीहाका औषध बंद कर केवल ज्वरहीकी चिकित्सा उस समय करना। हमारी "पंचतिक्त वटिका" प्लीहा ज्वरकी अति उत्कृष्ट औषधहै। चिकित्सासे ज्वर कम होनेपर फिर प्लीहाका औषध प्रयोग करना उचितहै।

जीर्ण प्लीहा रोगमें कर्तव्य।

पुराने प्लीहा रोगमें विरेचक औषध प्रयोग नहीं करना, कारण अकस्मात् उदरामय होनेसे उसका आराम होना कठिन होताहै, उदरामय हो तो

पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह आदि यही औषध देना। रक्तामाशय, शोथ या पांडु कामला आदि पीड़ा मिलित रहनेसे उन रोगोंकी औषधभी इसके साथ प्रयोग करना। प्लीहा रोग यकृती रोगके साथ मिला रहनेसे आराम होना कठिन है। इस अवस्थामें चित्रकादि घृत और यकृती रोगोक्त कनकारिष्ट और अभयारिष्ट प्रभृति औषध प्रयोग करना आवश्यकहै।

प्लीहामें मुखक्षत चिकित्सा।

मुखमें घाव होनेसे खदिरादि वटिका पानीमें घिसकर घावमें लगाना। बकुलकी छाल, जामुनकी छाल, गाबछाल और अमरूतका पत्ता पानीमें औटाकर थोड़ी फिटकिरीका चूर्ण मिलाकर गरम रहते कुल्ला करनेसे मुख क्षतमें विशेष उपकार होताहै।

वेदना चिकित्सा।

प्लीहामें दर्द होता तो वन आदा पीसकर प्रलेप अथवा गरम पानीका स्वेद देना। तथा कसकर फलालेन पटमें बांधनेसेभी उपकार होताहै।

पथ्यापथ्य।

जीर्ण ज्वरमें जो पथ्यापथ्य विधि लिखी गईहै, प्लीहा रोगमेंभी वही सब पालन करना उचितहै। इसमें साधारण दूध न देकर उसके साथ २।४ पीपल सिद्धकर वही दूध पान करनेको देना। इससे प्लीहाकी शान्ति होतीहै, सब प्रकारकी भुंजी वस्तु गुरुपाक वस्तु, तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य भोजन और परिश्रम, रातका जागना दिनका सोना और मैथुन आदि निषिद्धहै।

यकृत्।

प्लीहा रोगके कारण जो ऊपर कहे आयेहैं, यकृत् रोगभी वही सब कारणोंसे उत्पन्न होताहै। इसके सिवाय मद्यपान और अर्श आदि रोगोंमें रक्तस्राव बन्द होना आदि कारणोंमेंभी यकृत् वर्द्धित या संकुचित होनेसे यकृत् विकृत होताहै, अविकृत अवस्थामें हाथ लगानेसे मालूम नहीं होता, परन्तु वर्द्धित होनेसे दबाने पर मालूम होता है। विकृत अवस्थाके यकृतमें दर्द, मलरोध या कर्दमवत् अल्प मलस्राव, सब शरीर विशेष कर दोनों आंखें पीली, खांसी, दहिने तरफके अंगुलियोंके नीचेका भाग कसा मालूम होना और सूई गड़ानेकी तरह दर्द, दहिना कंधा या दहिने सब अंगमें दर्द, मुखका स्वाद तीता, जीमतलाना या कै होना, नाड़ी कठिन, सर्व्वदा ज्वरबोध, और प्लीहा रोगके अन्यान्य लक्षण समूहभी दिखाई देते हैं। इस रोगमें रोगी दहिने करवट सो नहीं सकताहै। प्लीहा रोगोक्त लक्षणोंकी तरह इसमेंभी वातादि दोषोंकी वृद्धिका अनुभव करना चाहिये। यकृत रोगभी बहुत दिन तक विना चिकित्साके रहने पर पांडु, कामला, शोथ, आदि अनेक उत्कट रोग उत्पन्न होतेहै।

निदान।

यकृत अधिक वर्द्धित हो उदर तक बढ़नेपर यकृदुदर रोग कहतेहैं। उदर रोगमें इसका लक्षण लिखेंगे।

यकृदुदर रोग।

यकृत रोगकी चिकित्सा प्लीहा रोगकी तरह करना, इसमें सर्व्वदा पेटसाफ रखना आवश्यकहै। प्लीहा रोगकी सब औषधें इस रोगमें प्रयोग कर सक्तेहैं। इसके सिवाय यकृदरि लौह, यकृत्प्लीहारिलौह, यकृत् प्लीहोदरहरलौह, वज्रक्षार, महाद्रावक, और महाशंखद्रावक आदि औषध विचार कर देना। यकृतमें दर्द हो तो तार्पिनका तेल मालिश कर गरम पानीसे सेंकना, अथवा गोमूत्र गरम कर बोतलमें भर किम्वा फलालैन भिंगोकर सेंकना चाहिये। राईका लेप चढ़ानेसेभी यकृतमें विशेष उपकार होताहै।

चिकित्सा।

पथ्यापथ्य प्लीहा रोगकी तरह पालन करना।

ज्वरातिसार।

ज्वर और अतिसार यह दोनो रोग एक साथ होनेसे उसको ज्वरातिसार कहतेहैं। यह एक स्वतन्त्र रोग नहीहै, पर इसकी चिकित्सा विधि स्वतन्त्रहै इससे अलग मालूम होताहै। ज्वर और अतिसारके जो सब उत्पत्ति कारण निर्दिष्ट है, वह सब कारण एक साथ संघटित होनेसे ज्वरातिसार उत्पन्न होताहै। ज्वरमें कुपथ्य करना, पित्तकारक द्रव्य भोजन, दूषित जल पान, दूषित वायु सेवन और तेज विरेचन आदि कारणोंसेभी ज्वरातिसार रोग उत्पन्न होता है। जिस ज्वरमें पित्तका प्रकोप अधिक रहताहै, उसमें ज्वराति-सार रोग होनेकी सम्भावना है।

संज्ञा और कारण।

ज्वर और अतिसार यह दो रोगकी चिकित्सा एक साथ

चिकित्सा।

होनेका उपाय नहीहै, कारण ज्वरकी प्राय: सब औषधें दस्तावर और अतिसारकी औषधें सब मलरोधकहै, इस लिये ज्वर नाशक औषध अतिसारका विरोधी और अतिसार निवारक औषध ज्वरका विरुद्धहै। इससे इसकी चिकित्साविधिभी स्वतन्त्र निर्दिष्टहै, इस रोगमें पहिले दस्त बंद करना उचित नहीहै, कारण इससे कोष्ठका संचित मल रुद्ध हो, अन्यान्य उत्कट रोग उत्पन्न होतेहै, पर जहां अतिशय अतिसारसे रोगीके अनिष्टकी सम्भावना मालूम हो वहां मल रोधक औषध प्रयोग करनाही उचितहै। साधारणत: इस रोगके प्रथम अवस्था में पाचक और अग्निदीपक औषध प्रयोग करना। धनिया १ तोला और शोंठ एक तोला, एकत्र ३२ तोला पानीमें औटाना ८ तोला पानी रहने पर छानकर दिनको २।३ बार पिलाना। अथवा ह्रीवेरादि, पाठादि, नागरादि, गुडूच्यादि, उशीरादि, पंचमूलादि, कलिङ्गादि, मुस्तकादि, धनादि, विल्वपंचक, और कुटजादि क्वाथ विचार कर व्यवस्था करना। इससेभी पीड़ाका उपशम नही हो, तो विचार कर अनुपान विशेषके साथ व्योषादि चूर्ण, कलिङ्गादि गुड़िका, मध्यम गङ्गाधर चूर्ण, वृहत् कुटजावलेह, मृतसञ्जीवनी वटी, सिद्ध प्राणेश्वर रस, कनकसुन्दर रस, गगन सुन्दर रस, आनन्द भैरव और मृतसंजीवन रस आदि औषध प्रयोग करना आवश्यक है।

पथ्यापथ्य।

रोगी सबल हो तो पहिले उपवास, फिर उत्पलषटकके साथ यवागू पाक कर थोड़ा अनारका रस मिलाकर पिलाना। अथवा धानके लावाका मंड, जौका मंड, सिंघाड़ेकी लपसी, एराकट और बार्लि खानेको देना, इस अवस्थामे हमारा सञ्जीवन खाद्य विशेष उपकारी पथ्यहै।

रोगी दुर्व्वल हो तो उपवास न देकर उस हलका भोजन देना। पीड़ाका ह्रास और रोगीके परिपाक शक्तिके अनुसार क्रमशः पुराने चावलका भात, मसूरकी दाल, बैगन, गुल्लर और केलेकी तरकारी, मागुर, सिंगी, कोई आदि छोटी मछलीका रसा; अवस्था विचार कर कोमल मांसका रस, बकरीका दूध, अनार और कच्चा बेल भूंज कर खानेको दे सकते हैं। गरम पानी ठंढा होनेपर पीनेको देना।

निषिद्ध कार्य्य।

गुरुपाक और नोस्रवीर्य्य द्रव्य, गेहूं, जौ, उरद, चना, अरहर, मूंग, शाक, इक्षु, गुड़, मुनक्का, दस्तावर द्रव्य मात्र, अधिक लवण, लाल मिरचा, अधिक पानी या अन्यान्य तरल द्रव्य पान, हिम, धूप, अग्निसन्ताप, तैल मर्द्दन, स्नान, व्यायाम, रात्रिजागरण और मैथुन आदि इस रोगमें अनिष्टकारक है।

अतिसार।

अतिसार संज्ञा।

जिस रोगमें शरीरका दूषित रस, रक्त, पानी, स्वेद, (पसीना) मेद, मूत्र, कफ, पित्त और रक्त आदि धातु समूह अग्निको मन्द और मलके साथ मिलकर तथा वायुसे अधोभागमें प्रेरित हो थोड़ा थोड़ा निकलताहै, उसको अतिसार कहतेहैं।

निदान।

गुरुपाक, अति स्निग्ध, अति रुक्ष, अति उष्ण, अति शीतल, अति तरल और अति कठिन द्रव्य भोजन, और मत्स्यादिकी तरह संयोग विरुद्ध भोजन, पहिलेका खाया हुआ अन्न न पचनेपर भोजन, कच्चा अन्न

भोजन, कोई दिन कम, कोई दिन अधिक या अनिर्दिष्ट समयमें भोजन, वमन, विरेचन, पिचकारी, निरूहण, या स्नेहादि क्रियाका अतियोग, अल्प योग, अथवा मिथ्या योग; स्थावर विष खाना, दुष्ट मद्य या दुष्ट पानीका अधिक पीना, बिना अभ्यास और अनिष्ट कारक आहार विहारादि; ऋतुका व्यतिक्रम करना, भय, शोक, अधिक जलक्रीड़ा, मल मूत्रका वेग रोकना और क्रिमिदोष; इन्हीं सब कारणोंसे अतिसार रोग उत्पन्न होताहै। यह रोग ६ भागमें विभक्त है; जैसे—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, शोकज और अपक्व रसजात; द्विदोषज अतिसारमें दो दोष मिलित लक्षणके सिवाय और कोई लक्षण मालूम होनेसे वह स्वतन्त्र रूप निर्दिष्ट नहीं होता।

सब प्रकारके अतिसारमें विशेष लक्षण प्रकाश होनेसे पहिले हृदय, नाभि, गुदा, उदर और कोखमें सुई गड़ानेकी तरह दर्द, शरीर अवसन्न, वायु और मलका रोध, पेटका फूलना और अपरिपाक आदि लक्षण पहिले मालूम होतेहैं।

प्रकाश पूर्व लक्षण।

वातज अतिसारमें लाल या काला फेनयुक्त, रूखा और कच्चा मल थोड़ा २ कर बार बार निकलताहै। और गुदामें दर्द मालूम होताहै।

वातज लक्षण।

पित्तज अतिसारमें मलपीला या हरा अथवा लाल रंगका होताहै, तथा इसमें तृष्णा, मूर्छा, दाह और गुदामें जलन और घाव होताहै।

पित्तज लक्षण।

कफज अतिसारमें सादा, गाढ़ा, कफ मिला, आमगन्धयुक्त शीतल मल निकलताहै। इस अतिसारमें रोगीका शरीर प्रायः रोमांचित होता रहताहै।

कफज लक्षण।

त्रिदोषज अर्थात् सन्निपातज अतिसारमें उक्त वातजादि त्रिविध अतिसारके लक्षण प्रकाशित होतेहैं; विशेष कर इसमें मल शुकरके चर्बी अथवा मांसधौत पानीकी तरह होताहै। यही त्रिदोषज अतिसार अत्यन्त कष्टसाध्य है।

सन्निपातज लक्षण।

कोई दुर्घटनाके कारण अत्यन्त शोक हो अल्पाहारी होनेसे शोकज वाष्प और उष्मा कोष्ठमें प्रवेश कर जब जठराग्निको मन्दकर रक्तको स्वस्थानसे हटा देताहै; तब शोकज अतिसार उत्पन्न होताहै। इसमें घुंघुचीकी तरह लाल रक्त मिश्रित मल अथवा खाली रक्त गुदासे निकलता है। मल मिश्रित होनेसे रक्त अतिशय दुर्गन्ध युक्त, और मल शून्य होनेसे निर्गन्ध होताहै। शोक त्याग न करदेनेसे यह अतिसारभी दुसाध्य और कष्टप्रद होते देखा गयाहै।

शोकज लक्षण।

भुक्त द्रव्य न पचनेसे वातादि दोषत्रय विपथगामी हो, मल और रक्तादि धातु समूहोंको दूषित कर नाना प्रकारके वर्णका मल बार बार निकलता रहताहै। इसीको आमातिसार अर्थात् अपक्व रसजात अतिसार कहतेहैं; इसमें पेट बहुत दर्द करताहै।

आमातिसार लक्षण।

सब प्रकारके अतिसारमें जबतक मल अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त और चिकना हो तथा पानीमें फेकनेसे डुब जाय; तब तक उसको आम अर्थात् अपक्व अतिसार कहतेहैं। और जब मल दुर्गन्धशून्य रुखा और पानीमें नही डुबे तो उसको पक्वातिसार कहतेहैं। इस अवस्थामें देह और शरीर हलका मालूम होताहै।

अतिसारके मलकी परीक्षा।

जिस अतिसारमें रोगीका मल स्निग्ध, काला अथवा यकृत्

असाध्य और सांघातिक लक्षण।

खंडकी तरह काला लाल रंग, साफ और घृत, तैल, चर्ब्बी, मज्जा, बिना हड्डीका मांस, दूध, दही अथवा मांस धौत पानीकी तरह, चास नामक पक्षीके पंखकी तरह नीलारुण वर्ण, अथवा ईषत् कृष्ण लालवर्ण, चिकना नानावर्णयुक्त, किम्बा मयूर-पुच्छकी तरह विविध वर्णयुक्त, तथा, शवगंधकी तरह दुर्गन्धयुक्त, मस्तिष्ककी तरह सुगन्ध अथवा सड़ी बदबू, अथवा परिमाणमें अधिक हो तो उस रोगीकी मृत्यु होतीहै। जिस अतिसार रोगमें तृष्णा, दाह, अन्धकार देखना, श्वास, हिक्का, पार्श्वशूल, अस्थिशूल, मूर्च्छा, चित्तकी अस्थिरता, गुह्यदेशके वलिमें घाव और प्रलाप आदि प्रकाशित होनेसे वहभी लक्षण असाध्यही जानना। अथवा जिस अतिसार रोगमें गुह्यद्वार संहृत (बंद) नहीं होता, रोगीका बल और मांस क्षीण हो जाय, और जिसके गुदामें घाव और शरीर शीतल रहताहो, वह अतिसार रोगभी असाध्य जानना। यही सब लक्षण प्रकाशित होनेसे बालक, वृद्ध, युवा, किसीकेभी जीनेकी आशा नहीं रहती।

उक्त अतिसारोंके सिवाय "रक्तातिसार" नामक एक प्रकारका

रक्तातिसार।

और अतिसार है। पित्तज अतिसार उत्पन्न होनेसे अथवा उत्पन्न होनेके थोड़े दिन पहिले यदि अधिक पित्तकर द्रव्य भोजन करनेमें आवे तो रक्तातिसार उत्पन्न होताहै। इसमें मलके साथ मिला हुआ रक्त अथवा केवल रक्तही निकलताहै। अन्यान्य अतिसारके प्राचीन अवस्थामेंभी कभी कभी मलके साथ थोड़ा रक्त दिखाई देताहै।

अतिसार अच्छी तरह आराम होनेसे मूत्र त्याग और अधो

आरोग्य लक्षण। वायु निकालनेके वक्त मल नही निकलता, अग्निकी दीप्ति और पेट हलका मालूम होना आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं।

अतिसारमें धारक औषध देनेका नियम। किसी अतिसारके अपक्कावस्थामें धारक औषध प्रयोग करना उचित नहीहै। कारण अपक्कावस्थामें धारक औषध देनेसे सब दोष बन्द हो शोथ, पांडु, प्लीहा, कुष्ठ, गुल्म, ज्वर, दण्डक ; अलसक, आध्मान, ग्रहणी, और अर्श आदि विविध रोग उत्पन्न होतेहै। इसीलिये आमातिसारकी चिकित्सा स्वतन्त्र निर्दिष्ट है। परन्तु जहां दोष अत्यन्त प्रबल हो बार बार दस्त हो, और उससे रोगीका धातु और बलादि क्रमशः क्षीण होने लगे, तब अपक्कावस्थामेंभी धारक औषध देना उचितहै। छोटे बच्चे, वृद्ध या दुर्बल मनुष्यकोभी अपक्कातिसारमें धारक औषध देना चाहिये।

चिकित्सा। आमातिसारमें अर्थात् अतिसारके अपक्क अवस्थामें आमशूल और मलको रोकना तथा दोष पाचन और अग्निदीप्तिके लिये धनिया, सोंठ, मोथा, बाला और बेलकी गूदी यह धान्य पंचकका काढ़ा पिलाना ; पर पित्तज अतिसारमें यह पांच द्रव्यमें सोंठ बाद कर बाकी चार द्रव्यका काढ़ा देना, पेटमे दर्द और प्यास रहनेसे सोंठ, अतीस और मोथा यह तीन द्रव्य अथवा धनिया और सोंठ यह दो द्रव्यका काढ़ा देना ; इससे कच्चे दोषका परिपाक और अग्निकी दीप्ति होतीहै। इस अवस्थामें छोटी छोटी गांठकी तरह दस्त हो और पेटमें दर्द हो तो बड़ी हर्र और पीपल पानीमें पीसकर थोड़ा गरम कर पिलाना, यह दस्तावर औषधहै। आकनादि, हींग, अजमोदा, बच, पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल, सोंठ, और

सेंधा नमक प्रत्येकका समान चूर्ण एकमें मिलाकर एक आना भर मात्रा गरम पानीके साथ पिलानेसे अथवा उसी मात्रासे शुंठ्यादि चूर्ण और हरीतकी चूर्ण देनेसेभी आमातिसार आराम होताहै। २० मोथा वजनमें जितना हो उसका अठगूना बकरीका दूध और बकरीके दूधका चौगुना पानी, एकमें औटाना दूध रहने पर छानकर वही दूध पीनेसे आमदोष और पेटकी दर्द आदि दूर होताहै। पिप्पल्यादि, वत्सकादि, पथ्यादि, यमान्यादि, कलिङ्गादि और धान्यकादिका काढ़ाभी इस अवस्थामें देना चाहिये।

अतिसारका आमदोष निवृत्त होनेपर पहिले उपर कहे हुए पक्कातिसारके लक्षण प्रकाशित हुयेहैं वा नहीं इस विषयमें लक्ष्य रखना चाहिये।

पक्कातिसारकी चिकित्सा।

पक्कातिसारके लक्षण प्रकाशित होतेही वातादि दोषानुसार भेदका अनुमान कर चिकित्सा करना।

वातज अतिसारमें पूतिकादि, पथ्यादि और वचादि काढ़ा देना। पित्तज अतिसारमें मधुकादि, बिल्वादि, कटफलादि, कंचटादि, किरात तिक्तादि, और अतिविषादि काढ़ा देना।

विभिन्न दोषज अतिसार चिकित्सा।

कफज अतिसारमें पथ्यादि, कृमिशत्र्वादि और चव्यादि काढ़ा तथा पाठादि चूर्ण, हिङ्ग्वादि चूर्ण, वव्वूलादि योग और पथ्यादि चूर्ण सेवन कराना। त्रिदोषज अतिसारमें समङ्गादि और पंचमूलीवलादि काढ़ा देना। शोकज और भयजनित अतिसारमें वातज अतिसारकी तरह चिकित्सा करना, इसके सिवाय पृश्निपर्ण्यादि काढ़ाभी शोकज अतिसारमें प्रयोग करना उचितहै। पित्त कफातिसारमे मुस्तादि, समङ्गादि और कुटजादि, वात कफातिसारमे चित्रकादि काढ़ा और वातपित्तातिसारमें कलिङ्गादि कल्क प्रयोग करना चाहिये।

रक्तातिसारमें आमशूल और मलमेद होनेसे भूंजा कच्चा बेल गुड़के साथ मिलाकर दो तोले मात्रा खानेको देना। अरलूकी मूलकी छाल, बेरकी छाल, जामुनकी छाल, पियाल छाल, आमकी छाल अथवा अर्जुनकी छाल पीसकर दूध और सहतके साथ सेवन कराना। नरम अनारके फलकी छाल, कुरैयाकी छाल प्रत्येक १ तोला, १२ तोले पानीमें औटाना ८ तोले रहने पर छानकर दो आने भर सहत मिलाकर पिलाना। आम, जामुन और आंवलेका नरम पत्ता कूटकर उसका रस दो तोले, सहत और बकरीके दूधके साथ पिलाना। जेठी मधु का मूल २ मासे, चावलके धोवनके साथ पीसना फिर उसमें चीनी और सहत मिलाकर पिलाना। काली तिल पीसकर उसके चार भागका एक भाग चीनी मिलाकर बकरीके दूधके साथ देना। बड़की सोर चावलके धोवनमें पीसकर माठेके साथ मिलाकर पिलाना।

रक्तातिसारकी चिकित्सा।

कुकुरसोंका के ३।४ पत्तेका काढ़ा पिलाना। कुरैयाकी छालके काढ़ेको फिर औटाकर गाढ़ा होनेपर अतीसका चूर्ण २ आने भर मिलाकर पिलानेसे प्रबल रक्तातिसार और अन्यान्य अतिसारभी आराम होताहै। कुरैयाकी छाल ८ तोले, ६४ तोले पानीमें औटाना ८ तोले रहते उतार कर छान लेना; ऐसही अनारके फलके छिकलेका काढ़ा तयार करना। फिर दोनो काढ़ा एकमें मिलाकर औटाना। गाढ़ा होनेपर १ तोला मात्रा दहीके माठेके साथ प्रयोग करना। गुदामें दर्द हो तो अफीम ४ रत्ती, खैर ४ रत्ती और मैदा ८ रत्ती एकमें मिलाकर घीसे बत्ती बनाना फिर वही बत्ती एक एक कर दो घंटेके अन्तर अंगुलीसे गुदामें प्रवेश करना। घोंघा घीमें भूनकर सेंकनेसेभी दर्द आराम होताहै।

जब अतिसारके जीर्ण अवस्थामें अर्थात् जब आमदोष परिपाक होकर दर्द आराम तथा जठराग्निकी दीप्ति होतीहै, तथा नानाप्रकारका मल निकलता रहताहै; उस वक्त वत्सादि काढ़ा, कुटज पुटपाक, कुटज लेह, कुटजाष्टक, और षड़ंगघृत आदि प्रयोग करना। इस अवस्थामें कुरैयाकी छाल, मोथा, सोंठ, बेलकी गूदी, गोंद, सोहागेका लावा, खैर और मोचरस प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, अफीम आधा तोला एकमें मिलाकर एक आना भर मात्रा, कुकुरसोंकेका काढ़ा या ठंढे पानीके साथ दिनको ३ बार सेवन करानेसे विशेष उपकार होताहै।

जीर्णावस्थाकी चिकित्सा।

प्रबल अतिसारमें मलभेद बन्द करनेके लिये आंवला पानीमें पीसकर नाभीके चारों तरफ गोल मेड़ी बनाना और बीचमें शुद्ध अदरखका रस भर देना; इसमें प्रबल अतिसारका वेग और दर्द शान्त होताहै। जायफल पीसकर उसका लेप अथवा आमकी छाल कांजीमें पीसकर लेप करनेसेभी वैसही उपकार होताहै। माजूफल चूर्ण ५ रत्ती, अफीम चौथाई रत्ती और गोंदका चूर्ण पांच रत्ती एकमें मिलाना, फिर प्रत्येक दस्तके बाद ठंढे पानीसे सेवन करना। दस्त बन्द होनेपर दिनको केवल एकबार सेवन कराना। अतिसारके साथ वमनका उपद्रव हो तो बिल्वादि और पटोलादि काढ़ा देना। वमन, तृष्णा और ज्वर आदि कई उपद्रवमें प्रियङ्ग्वादि, अम्बादि, ह्रीबेरादि और दशमूल शूण्ठी आदि व्यवस्था करना। गुदामें दाह या घाव होनेसे पटोलपत्र और जेठीमध औटाये पानीसे अथवा बकरीके गरम दूधसे गुदा सेंकना तथा पटोलपत्र और जेठीमध बकरीके दूधमें पीसकर गुदामें लेप करना।

प्रबल अतिसारमें मलभेद चिकित्सा।

ऊपर कहे सब अतिसारका दोष, रोगीका बल और अनुपान विचार कर नारायण चूर्ण, अतिसार वारण रस, जातीफलादि वटिका, प्राणेश्वर रस, अमृतार्णव, भुवनेश्वर रस, जातीफल रस, अभय नृसिंह, आनन्द-भैरव, कर्पूर रस, कुटजारिष्ट और अहिफेनासव आदि औषध प्रयोग करना। इसके सिवाय ग्रहणी रोगोक्त कई औषधभी विचार कर दे सकते हैं।

शास्त्रीय औषध।

अपक्व अतिसारमें उपवासही प्रशस्त है। अतिसार रोगी दुर्बल हो तो उपवास न देकर हलका पथ्य देना आवश्यक है। धानके लावाका सत्तू पानीमें पतलाकर, अथवा पानीका साबूदाना, एराहट, बार्लि, सिंघाड़ेके आटेकी लपसी, किम्बा भातका मंड, और यवका मंड देना, यह सब बहुत हलका पथ्य है। उक्त पथ्यके अपेक्षा औषधके साथ यवागू सिद्धकर पिलानेसे विशेष उपकार होता है। सरि-वन, पिठवन, बनभंटा, कटैली, बरियारा, गोखरू, बेलकी गूदी, आकनादि, सोंठ और धनिया, यह सब द्रव्यके काढ़ेके साथ यवागू बनाकर सब अतिसार रोगमें पथ्य दिया जा सकता है। इसके सिवाय पित्तश्लेष्मातिसारमें सरिवन, बरियारा, बेलकी गूदी, और पिठवनका काढ़ा; वातश्लेष्मातिसारमें धनिया, सोंठ, मोथा, बाला, और बेलकी गुदीका काढ़ा अथवा केवल धनिया और सोंठका काढ़ा; वातपित्तातिसारमें, बेल, अरलु, गाम्भारी, पाटला, गनि-यारीके जड़का काढ़ा; और कफातिसारमें पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल और सोंठके काढ़ेके साथ यवागू बनाकर पथ्य देना। गरम पानी ठंढा कर वही पानी पीनेको देना। प्यास अधिक होने पर बार बार पानी मांगेतो धनिया और बाला दोनोंको पानीमें

पथ्यापथ्य।

औटाकर वही पानी पीनेको देना, इससे प्यास, दाह और अति-सार शान्त होताहै। पक्कातिसारमें पुराने महीन चावलका भात, मसूरकी दाल, परवर, बैंगन, गुल्लर, केला आदिकी तरकारी, कोई, मागूर, सिंगी, आदि छोटी मछलीका रसा। चूनेके पानीके साथ मिलाकर अथवा अतिसार नाशक औषधके साथ औटाकर दूध आदि पथ्य चाहिये देना। अति जीर्ण अतिसारमें केवल दूधही उपकारी है। रक्तातिसारमें गो दूधके बदले बकरीका दूध विशेष उपकारीहै। भूंना कच्चा बेल या बेलका मुरब्बा, अनार, कसेरू और सिंघाड़ा आदि पुराने अतिसारमें खानेको देना चाहिये।

निषिद्ध।

ज्वरातिसारके पथ्यापथ्यमें जो सब आहार विहार मना किया गयाहै अतिसार रोगमेंभी वही सब मना है। पर रोगी बलवान हो तो २।३ दिन अन्तर पर गरम पानी ठंढाकर स्नान करा सकतेहैं।

प्रवाहिका आमाशय रोग।

निदान।

दूषित, शीतल, आर्द्र, वायु सेवन, आर्द्र स्थानमें वास, अपरिष्कृत जल पान; गुरुपाक, उग्रवीर्य्य और वायु जनक द्रव्य भोजन, अधिक भोजन, अति-रिक्त परिश्रम और अधिक मद्यपान आदि कारणोंसे प्रवाहिका रोग उत्पन्न होताहै। इस रोगमें कुपित वायुसे बार बार मलके साथ थोड़ा थोड़ा कफ निकलताहै। पहिले इसमें कफलिपटा अत्यन्त दुर्गन्ध और चिपकता हुआ मल निकलताहै, फिर उसके साथ रक्तभी जारी होताहै। तथा ज्वर, क्षुधामन्द्य, पिपासाधिक्य

पेटका ऐठना, जोभ मैलेसे लिपटी, औमचलाना, मूत्र थोड़ा और लाल, पिशाब करती वक्त दर्द, मुखमंडल मलीन और उदास, जोभ सूखी, लाल, पिंगल और काली, नाड़ोकी गति कभी तेज कभी क्षोण आदि लक्षणभी प्रकाशित होतेहैं। इसके वक्त प्रवाहन अर्थात् कांखना पड़ताहै इससे इसका नाम प्रवाहिकाहै। चलित भाषामें इसको "आमाशय" और रक्त मिला रहनेसे "आमरक्त" कहतेहैं।

विरुद्ध आहार विहारादिके पार्थक्यानुसार तोन दोष और रक्त कुपित हो यह रोग उत्पन्न होताहै।

दोषभेद लक्षण।

स्नेह पदार्थ सेवन करनेसे कफज, रूक्ष द्रव्य भोजन करनेसे वातज और उष्ण तीक्ष्ण द्रव्य सेवनसे पित्तज तथा रक्तज प्रवाहिका उत्पन्न होताहै। वायुजनित प्रवाहिकामें पेटमें अत्यन्त दर्द, पित्तजनितमें शरीर और गुदामें जलन, कफ जनितमें अधिक कफ मिश्रित मल आना और रक्तजनितमे रक्त मिला मल निकलताहै। पीड़ाके प्रवल अवस्थामें अतिसार के लक्षण समूहभी प्रकाश होतेहैं। इसको अपक्व और पक्वावस्था अतिसारोक्त लक्षणके अनुसार स्थिर करना।

चिकित्सा।

साधारणतः इस रोगकी चिकित्साविधि प्रायः अतिसार रोगको तरह जानना। विचार कर वही सब काढ़ा और औषध इस रोगमें भी देना, तथा औरभी कई विशेष औषध इसमें दे सकतेहैं। एक बरससे कम दिनके रोगीको इमलीके पौदेकी जड़ दो आनेसे चार आनेभर आधा दहीके माठेमें पोसकर दिनको ३।४ बार पिलाना। इमलीके पौदेका नरम पत्ता २ तोले ३२ तोले पानीमें औटाना ८ तोले रहते छानकर पिलाना। अनारका कचा फल या पत्तेका रस और कुरैयाके छालका रस या काढ़ा इस रोगमें विशेष उपकारी

है। किन्तु रोगके प्रथम अवस्थामें कुरैयाकी छाल देना उचित नहीं है। पीपलका चूर्ण आधा तोला अथवा गोलमरिचका चूर्ण चार आने भर आधा पाव दूधके साथ पीनेसे पुराना प्रवाहिका रोगभी आराम होताहै। बहुत छोटा कच्चा बेल भूनेकी गूदी और सफेद तिल सम भाग दहीके साथ सेवन कराना, कच्चा बेल भूनेकी गूदी २ तोले, उखका गुड़ एक तोला, पीपल और सोंठका चूर्ण चार आनेभर थोड़े तिलके तेलके साथ मिलाकर सेवन कराना। अकवनके जड़की छालका चूर्ण ५।६ रत्ती मात्रा सेवन करानेसे विशेष उपकार होताहै। कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, मोथा, बाला, मोचरस, बेलकी गूदी, अतीस और अनारकी छाल, प्रत्येक चार आनेभर ३२ तोले पानीमें औटाना ८ तोले रहते छानकर पिलाना। आमाशयके प्रथम अवस्थामें रेड़ीका तेल आधा छटांक, अहिफेनासव १० बूंद १ छटांक पानीमें मिलाकर रोज एकदफे पिलाना तथा थोड़े दिनतक सोंठका चूर्ण २ रत्ती, कुरैयाका चूर्ण ८ रत्ती, गोंदका चूर्ण ४ रत्ती और अफीम आधी रत्ती एकमें मिलाकर दिनभरमें ३ बार सेवन करानेसे आमाशय रोग आराम होताहै। सफेद रालचूर्ण और चीनी सम भाग दो आनेभर मात्रा खिलानेसे आमाशय रोग बहुत जल्दी आराम होताहै। पेटका दर्द आराम करनेके लिये तार्पिनका तेल पेटपर मालिश करना, अथवा सेउड़ा पत्ता दो तोले, गरम काटकलिया केलेका दो टुकड़ा, अरवा चावल २ तोले और पानी एक पाव एकत्र एक पत्थरके बरतनमें मलकर छान लेना। फिर उस पानीका चौथा भाग एक पीतलके बरतनमें औटाना आधा पानी जल जानेपर सेवन कराना। ऐसही ३ घंटे अन्तर दिनभरमें ४ बार सेवन करानेसे पेटकी दर्द आराम होताहै। रोग

और रोगोंकी अवस्था विचार कर अतिसार और ग्रहणी रोगोक्त अन्यान्य औषधभी इस रोगमें प्रयोग कर सकतेहैं।

पथ्यापथ्य। पथ्यापथ्य अतिसार रोगकी तरह पालन करना। पुराने रक्तामाशयमें ज्वरादिका संस्रव न रहनेसे भैसकी दही या उसका मट्ठा दे सकतेहै, इससे विशेष उपकार होताहै।

—०—

ग्रहणी-रोग।

निदान। अतिसार रोग आराम होनेपर अग्नि, बल अच्छी तरह वृद्धि होनेके पहिलेहो किसी तरहका कुपथ्य पदार्थ खा लेनेसे जठराग्नि अत्यन्त दुर्ब्बल हो ग्रहणी नामक नाड़ीको दुषित करताहै। फिर अग्निमान्द्य आदि कारणोंसे वातादि दोष कुपित हो वही दुषित ग्रहणी नाड़ीको अधिक दूषित करताहै। इस अवस्थामें कभी अपक्व युक्त द्रव्य मलद्वारसे बार बार निकलताहै, कभी पक्वकर अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त मल बार बार निकलताहै, तथा कभी मल बन्द हो जाता है। सब अवस्थामें पेटमें दर्द मालूम होताहै। इसी रोगको ग्रहणी-रोग कहतेहै। ग्रहणीकी नाड़ी अर्थात् पक्काशय दूषित होकर यह रोग उत्पन्न होताहै इसीसे ग्रहणी रोग कहतेहैं। अति-सार रोग रहते अथवा अतिसार रोग न रहनेपरभी एकादम ग्रहणी रोग उत्पन्न होताहै।

ग्रहणी रोग प्रकाश होनेके पहिले प्यास, आलस्य, शरीरका

पूर्व्वरूप।

भारीपन, और अग्निमान्द्यसे खाया हुआ पदार्थका खट्टा होना अथवा देरसे पचना आदि पूर्व्वरूप प्रकाशित होताहै।

अतिशत कटु, तिक्त, कषाय और रुच द्रव्य भोजन, संयोगादि विरुद्ध द्रव्य भोजन, अथवा अल्प भोजन, उपवास, अधिक पैदल चलना, मलमूत्रका वेग रोकना और अतिरिक्त मैथुन आदि कारणोंसे वायु कुपित हो पाचकाग्नि दूषित होकर वातज ग्रहणी उत्पन्न होताहै।

वातज ग्रहणी।

यही वातज ग्रहणीमें खाया हुआ पदार्थ देरसे पचनेके सबब खट्टा हो जाताहै, शरीर रुखा, कंठ सूखा, भूख, प्यास, आंखकी ज्योति कम, कानमें भों भों शब्द बोध; पार्श्व, ऊरू, दोनो पट्टा, गरदन, आदिमें दर्द; विसूचिका अर्थात् कै दस्त दोनो एक साथ होना, अथवा कभी पतला, कभी सूखा थोड़ा फेनीला कच्चा मल बार बार तेज और कष्टसे होना, छातीमें दर्द, शरीर क्षश और दुर्व्वल; मुख बेस्वाद, गुदामें काटनेकी तरह दर्द मधुर (मोठा) आदि रसयुक्त भोजनकी इच्छा, मन अवसन्न और कास, श्वास आदि लक्षण प्रकाशित होतेहै। इस रोगमें खाया हुआ पदार्थ पचनेके वक्त अथवा पच जानेपर पेट फूलताहै, पर आहार करनेके बाद शान्ति मालूम होतीहै। तथा इस रोगमें सर्व्वदा वातगुल्म, हृद्रोग अथवा प्लीहा रोग हुआहै ऐसी आशङ्का रोगीको बनी रहतीहै।

अम्ल, लवण, कटु रसयुक्त, अपक्व विदाही अर्थात् जो द्रव्य पचने पर खट्टा होताहै वही सब द्रव्य और तीक्ष्ण उष्णवीर्य्य द्रव्यके भोजनसे पित्त बिगड़कर जठराग्नि मंद होनेसे पित्तजग्रहणी उत्पन्न होताहै।

पित्तज ग्रहणी।

इसमे बदबू लिये खट्टी डकार, गला और छातीमें दर्द, अरुचि, प्यास, नीले या पीले रंगका मल आना, तथा रोगीका शरीर पीला होजाताहै।

श्लेष्मज-ग्रहणी।

अतिशय गुरुपाक, स्निग्ध, शीतल, लसीदार और मधुरादि रस-युक्त द्रव्य भोजन, अधिक भोजन, तथा दिनको भोजनके बादही सोना आदि कारणोंसे कफ प्रकुपित हो जठराग्निको खराब करताहै, इससे श्लेष्मज ग्रहणी उत्पन्न होताहै। इस ग्रहणीमें खाया हुआ पदार्थ कष्टसे पचता है, मुख कफमें लिपटा और बेस्वाद मालूम होताहै, किसी प्रकार गाढ़े द्रव्यसे हृदय पूर्ण मालूम होताहै, दुर्व्वलता आलस्य, जी मतलाना, वमन, अरुचि, कास, पीनस, पेट स्तब्ध और भारी मालूम होना, डकारमें मीठा स्वाद, अवसन्नता, मैथुनमें अनिच्छा, आम और कफयुक्त मलभेद आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं।

सन्निपातज ग्रहणी।

तीन दोष मिले हुए प्रकोप कारक द्रव्य सेवन करनेसे दो या तीन दोष प्रकुपित हो दो दोषज या सन्निपातज ग्रहणी रोग उत्पन्न होताहै। उससे उक्त लक्षण सब मिले हुए मालूम होतेहैं।

संग्रह ग्रहणी।

ग्रहणी रोगके सिवाय संग्रह ग्रहणी नामक एक प्रकार और ग्रहणी रोगहै, इसमें किसीको रोज, किसी को १० या १५ दिन अथवा १ मास अन्तर पर पतला या गाढ़ा, शीतल, चिकना और अधिक मल जोरसे निकलताहै। दस्तके समय आवाज, कमर और पेटमें दर्द, पेट बोलना, आलस्य, दुर्व्वलता, अंग प्रभृतिमें अवसन्नता आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं। दिनको यह दोष बढ़ताहै और रातको

कम होजाताहै। आम और वायु इस रोगका आरम्भक है। यह लक्षण अतिशय दुर्व्वोध और दुःसाध्य है।

अतिसार रोगके अपक्व और पक्व लक्षणकी तरह ग्रहणी रोगमेंभी अपक्व और पक्व लक्षणका विचार करना चाहिये। वृद्धको ग्रहणी रोग होनेसे उसकी मृत्यु निश्चय जानना।

चिकित्सा।

अतिसार रोगकी तरह ग्रहणी रोगमेंभी अपक्वावस्थामें मल रोधक न देकर पाचक औषध देना उचित है। शोंठ, मोथा, इलायची, और गुरिच, इन चार द्रव्योंका काढ़ा अथवा धनिया, अतीस, वाला, अजवाइन, मोथा, शोंठ, वरियारा, सरिवन, पिठवन, और वेलको गूदो, इन सब द्रव्योंका काढ़ा पिलानेसे आमदोषका परिपाक और अग्निकी दीप्ति होतीहै। चित्रकगुड़िका नामक औषध इस अपक्वावस्थामें दी जातीहै।

दोषभेदसे व्यवस्था।

अतिसारोक्त पक्व लक्षणोंके अनुसार इसकाभी पक्व लक्षण विचार कर वातादि दोषोंका बलावल विवेचना पूर्व्वक रोग नाशक औषध स्थिर करना चाहिये। साधारणतः वातज ग्रहणी रोगमें शालपर्ण्यादि कषाय; पित्तज ग्रहणीमें तिक्तादि कषाय, श्रीफलादिकल्क, नागरादि चूर्ण, रसाञ्जनादि चूर्ण; श्लेष्मज ग्रहणीमें चातुर्भद्र कषाय, शट्यादि चूर्ण, रास्नादि चूर्ण और पिप्पली मूलादि चूर्ण; वातपित्तज ग्रहणीमें सुण्ठ्यादि गुड़िका; वातश्लेष्मज ग्रहणीमें कर्पूरादि चूर्ण और तालीशादि वटी; कुटजावलेह, खेतपापड़ाका रस और सहत चटाना, फिर हींग, जीरा, शोंठ, पीपल और गोलमरिचका चूर्ण समभाग दो आनेभर मात्रा मट्ठेके साथ पिलाना। पित्तश्लेष्मज ग्रहणी रोगमें श्रीफलादि योग व्यवस्था करना उचितहै। इसके सिवाय एक दोषज,

त्रिदोषज, त्रिदोषज या संग्रह ग्रहणी रोगमें रोगी और रोगकी अवस्था, दोष और बलाबल विचार कर श्रीफलादि कल्क, पंचपल्लव, नागराद्य चूर्ण, भूनिम्बाद्य चूर्ण, पाठाद्य चूर्ण, स्वल्प गंगाधर चूर्ण, वृहत् गंगाधर चूर्ण, स्वल्प और वृहत् लवंगादि चूर्ण, नायिका चूर्ण जातीफलादि चूर्ण, जीरकादि चूर्ण, कपित्थाष्टक चूर्ण, दाडिम्बाष्टक चूर्ण, अजाज्यादि चूर्ण, कंचटावलेह, दशमूल गुड़, मुस्तकाद्य मोदक, कामेश्वर मोदक, मदन मोदक, जीरकादि और वृहत् जीरकादि मोदक, मेथी और वृहन्मेथी मोदक, अग्निकुमार मोदक ग्रहणीकपाट रस, संग्रह ग्रहणी कपाट रस, ग्रहणीशार्दूल वटिका, ग्रहणीगजेन्द्र वटिका, अग्निकुमार रस, जातीफलाद्य वटी, महा गन्धक, महाभ्र वटिका पीयूषवल्ली रस, श्रीनृपतिवल्लभ, वृहत् नृपति वल्लभ; ग्रहणीवज्र कपाट, राजवल्लभ रस आदि औषध प्रयोग करना।

पुराने ग्रहणी रोगमें चाङ्गेरी घृत, मरिचाद्य घृत, महाषटपलक घृत, सेवन और विल्व तैल, ग्रहणी मिहिर तैल, वृहत् ग्रहणीमिहिर तैल और दाड़िमाद्य तैल मालिश करना।

पुराने ग्रहणीकी चिकित्सा।

पुराने ग्रहणी रोगमें शोथादि उपद्रव उपस्थित होनेसे दुग्धवटी, लौह पर्पटी, स्वर्ण पर्पटी, पंचामृत पर्पटी, रस पर्पटी आदि औषध प्रयोग करना चाहिये। संग्रह ग्रहणी और किसी ग्रहणी रोगमें मल बंद रहनेसे अजवाईन और काला नमक समभाग चार आने भर मात्रा गरम पानीके साथ सेवन कराना। गौ का घी सेंधा नमकके साथ मिलाकर सेवन करानेसेभी वह मल पतला हो निकलताहै।

ग्रहणी रोगके अपक्व या पक्व अवस्थामें अतिसार रोगका तरह

पथ्यापथ्य । पथ्यापथ्य प्रतिपालन करना। कईथकी गूदी, बेलकी गूदी और आमारके फलकी छाल प्रत्येक २ तोले और उपयुक्त परिमाण दहीके माठेमें यवागू बनाकर पिलाना। वातज ग्रहणीमें स्वल्प पंचमूलोंके काढ़ेके साथ यवागू मिलाकर पिलाना। सब प्रकारके ग्रहणी रोगमें तक्र अर्थात् दहीका मट्ठा विशेष उपकारी है।

अर्शोरोग (बवासीर) ।

गुह्यद्वारसे भीतरकी तरफ ४॥ अंगुल परिमित स्थानमें शंखा-वर्त्तकी तरह जो तीन आवर्त्त है, उसको वलि कहते हैं। वलिके समावेशका स्थान। भीतरकी तरफ १॥ डेढ़ अंगुल परिमित पहिले वलिका नाम प्रवाहणी, उसके नीचे १॥ डेढ़ अंगुल परिमित दुसरे वलिका नाम विसर्ज्जनी और उसके नीचे १ अंगुल परिमित तीसरे वलिका नाम सम्वरणीहै। बाकी आधी अंगुल परिमित गुह्यद्वारके अंशको गुदौष्ठ कहते है। वायु पित्त और कफ यह दोषत्रय, त्वक, मांस और मेद धातुका दूषन कर पूर्व्वोक्त वलित्रयमें नाना प्रकार आकृति विशिष्ट मांसांकुर उत्पन्न होते है, इसी मांसांकुरको अर्श कहते है; मलद्वारके बाहर जो सब मांसांकुर उत्पन्न होते है उसको वाह्यार्श: और भीतरके मांसांकुरका अभ्यन्तरार्श कहते हैं। गुह्यद्वारके सिवाय लिङ्ग, नाभि, नासिका और कर्ण आदि स्थानोंमेभी अर्शोरोग उत्पन्न होताहै।

इस रोगका साधारण लक्षण कोष्ठकाठिन्यता, अजीर्ण, कठिन

मल निकलते वक्त दर्द और रक्तस्राव।

साधारण लक्षण।

रक्त २।४ बूंदसे आध सेर तक स्राव होते देखा गयाहै। पीड़ाकी प्रबल अवस्थामें पिशाबके साथ या उत्कट भावसे बैठनेपरभी रक्त निकलताहै।

साधारणत: अर्शो रोग छ प्रकार:—वातज, पित्तज, श्लेष्मज, त्रिदोषज, रक्तज और सहज। दो दोषके मिलित लक्षण और मिलित चिकित्साके सिवाय द्विदोषज अर्श रोगका स्वतन्त्र कोई लक्षणादि न रहनेसे पृथक भावसे गिना नहो जाता।

प्रकार भेद।

वातज अर्श:—कषाय, कटु, तिक्त रस और रूक्ष, शीतल और लघु द्रव्य भोजन, अति अल्प भोजन, तीक्ष्ण मद्य पान अतिरिक्त मैथुन, उपवास, शीतल देशमें वास, व्यायाम, शोक, प्रबल वायु और आतप सेवन आदि कारणोंसे वातज अर्श उत्पन्न होताहै। हेमन्तादि शीत काल इस अर्शके उत्पन्नका समयहै। इस अर्श रोगमें किसी तरहका स्राव नहीं रहता, टप् टप् दर्द होताहै। मांसांकुर समूहोंमें किसीकी आकृति खजूरकी तरह, किसीकी बैरकी तरह, किसीकी बनकपासके फलकी तरह, कोई कदम्ब फूलकी तरह, कोई सफेद सरसोंकी तरह होताहै। सब प्रकारके मांसांकुर म्लान, धूम्रवर्ण, कठिन, धूलेकी तरह सूखा स्पर्श और गो जीभकी तरह कर्कश स्पर्श, कटहरके छोटे फलकी तरह छोटा छोटा कांटा और हरेक कांटा भिन्न भिन्न आकृति और टेढ़ा तथा अग्रभाग सूक्ष्म और फटा होताहै। इस रोगमें रोगीका मस्तक, पार्श्व, कंधा, कमर, ऊरू और पट्टा आदि स्थानोंमें दर्द; छींक, डकार, पेट भारी मालूम होना, छातीमें

वातज अर्श:।

दर्द, अरुचि, कास, श्वास, अग्निकी विषमता, कानमें सांय सांय आवाजका होना, भ्रम, अत्यन्त यातना, शब्दयुक्त चिकना और फेनयुक्त गठीला, थोड़ा थोड़ा मल आना ; तथा त्वक, नख, मल, मूत्र, आंख, मुखका रंग काला होजाताहै।

पित्तज अर्श :—कटु, अम्ल, लवण, उष्ण स्पर्श या उष्ण वीर्य्य, अल्पपाक, और तीक्ष्ण द्रव्य भोजन ; मद्य पान, अग्नि और धूपका सन्ताप, व्यायाम, क्रोध, असूया, उष्ण देश और उष्ण कालमें पित्तज अर्श रोग उत्पन्न होताहै। इस अर्श रोगमें मांसांकुर समूह लाल, पीला या काले रंग पर अग्रभाग नीले रंगका होताहै, इसको आकृति शुकके जीभ, यकृत खंड या जोंकके मुखकी तरह होतीहै पर मध्य भाग स्थूल, लम्बा और अल्प परिमाण, स्पर्श उष्ण और कोमल, आमगन्ध अर्थात् मछलीके बदबूकी तरह, मांसांकुरसे पतला रक्त स्राव, जलन और कभी कभी वह पक उठताहै तथा इस रोगमें ज्वर, पसीना आना, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि, मोह और नीला पीला या लाल रंगका कच्चा पतला मल भेद होताहै। रोगीका त्वक, नख, मल, मूत्र और मुख हरा, पीला अथवा हलदीके रंगका होताहै।

पित्तज अर्श।

श्लेष्मज अर्श :—मधुर, स्निग्ध, शीतल, लवण, अम्ल और गुरु द्रव्य भोजन ; शारीरिक परिश्रम शून्यता, दिवानिद्रा, सुखकर बिछौनेमें शयन, सुख कर आसन पर बैठना, पूर्व्व वायु या सम्मुख वायु सेवन, शीतल देश, शीतल काल और चिन्ता शून्यता आदि कारणोंसे श्लेष्मज अर्श उत्पन्न होताहै। इसमें मांसांकुर महामूल अर्थात् बहुत दूर तक प्रगाढ़, घना, अल्प वेदनायुक्त, श्वेतवर्ण, दीर्घाकृति, स्थूल, चिकना

श्लेष्मज अर्श।

कड़ा, (दवानेसे दबता नहीं) गुरु अर्थात् भारी, निश्चल, पिच्छिल, मसृण, अत्यन्त कण्डु और सुखस्पर्श होताहै। इसकी आकृति वंशांकुर, कटहरके बीज और गो स्तनकी तरह होतीहै। इस अंकुरसे क्लेद रक्तादि स्राव और कठिन मल आनेपरभी मांसांकुर विदीर्ण नहीं होता। इस अर्शो रोगमें दोनो पट्टा बांधनेकी तरह पीड़ा, गुह्यदेश, वस्ति, और नाभी खींचनेकी तरह वेदना श्वास, कास, वमन वेग, मुख और गुह्यस्राव, अरुचि, पीनस, मोह, मूत्रकृच्छ्र, शिरका भारीपन, शीतल ज्वर, रतिशक्ति हीनता, अग्निमान्द्य, अतिसार और ग्रहणी आदि आमबहुल पीड़ाकी उत्पत्ति और प्रवाहिकाके लक्षणयुक्त, कफमिश्रित और चर्बीकी तरह बहुत मलका आना, आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं। रोगीका त्वक, नख, मल, मूत्र, और नेत्र आदि चिकना, स्निग्ध और पांडुवर्ण होताहै।

वातज, पित्तज और श्लेष्मज अर्शो रोगमें जो सब निदान लक्षणादि पृथक भावसे निर्दिष्ट है; मिलित भावसे वह सब निदान सेवित होनेसे, द्विदोषज अर्थात् वातपित्तज, वातश्लेष्मज और पित्तश्लेष्मज अर्शो रोग उत्पन्न होनेसे वह सब लक्षण मिले हुए प्रकाश होतेहै।

त्रिदोषज अर्थात् सन्निपातज अर्शो रोगभी वही सब मिलित निदानसे उत्पन्न होनेसे तीन दोष मिले हुए लक्षण प्रकाशित होतेहै।

रक्तज अर्श:—पित्तज अर्शोरोगमें जो सब निदानहै, रक्तज अर्शभी वही सब निदानसे उत्पन्न होता है। इसमें मांसांकुर समूह बड़के अंकुरकी तरह और घुंघुची या मूंगकी तरह लालरंगका होताहै। मल कठिन आनेसे वह अंकुर सब दब जानेपर उससे खराब और गरम खून निकलता है। इससे खून अधिक जानेपर रोगी मेढुककी

रक्तज अर्श: ।

तरह पीला, रक्तक्षय जनित रोगसे पीड़ित, विवर्ण, कृश, उत्साह हीन, दुर्व्वल, और विकृतेन्द्रिय हो जाताहै। इसमे मल काला, कठिन और रूखा आताहै तथा अधोवायु नहो खुलती। इसके सिवाय पित्तज अर्शरोगके लक्षण समूहभी विद्यमान रहताहै।

सहज अर्श।

सहज अर्श:—पिता या माताको अर्श रोग रहनेसे जन्मकालमें पिता माता कर्त्तृक अर्शरोग कारक निदान सेवित हो पुत्रकोभी अर्शरोग होताहै; इसीको सहज अर्श कहतेहै। इस रोगमें मांसांकुर कदाकार, कर्कश, अरुण वर्ण, या पांडुवर्ण और मुह भीतरको तरफ होताहै। इस रोगसे पीडित रोगी कृश, अल्पाहारी, धीमी आवाज, क्रोधित, शिराव्याप्त देह, अल्पप्रजा तथा आंख, कान, नाक और शिरोरोगमे पीड़ित रहताहै। तथा पेटमे गुड़ गुड़ शब्द, अन्त्रकूजन, हृदयमें उपलेप, और अरुचि आदि उपद्रवभी दिखाई देतेहै। रोगीके शरीरमें वातादि दोषके आधिक्यानुसार वातजादि अर्शरोगोके लक्षणभी इसमें प्रकाशित होतेहै।

रक्तज अर्शरोगके साथ पित्तज अर्शके लक्षण प्रकाशित होनेसे उसको पित्तानुबन्ध रक्तार्श कहतेहै। वातानुबन्ध रक्तार्श: अधिक रूक्षताके कारण उत्पन्न होताहै और उसमें अरुणवर्ण फेनयुक्त पतला रक्तस्राव, कमर, ऊरू, गुदामे दर्द और शारीरिक दौर्व्वल्य आदि लक्षण मालूम होतेहै। श्लेष्मानुबन्ध रक्तार्श: गुरु और स्निग्ध से उत्पन्न होताहै, तथा उसमें स्निग्ध गुरू शीतल, श्वेत या पीले रंगका पतला मलभेद, गाढ़ा खून, या तन्तुविशिष्ट चिकना और पांडुवर्ण रक्तस्राव, गुदा चटचटो, और गीला कपड़ा आच्छादनको तरह अनुभव आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं।

अर्शोरोग मात्रही प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान यह पांच प्रकार वायु, आलोचक, रंजक, साधक, पाचक और भ्राजक यह पांच प्रकारके पित्त; अवलम्बक, क्लेदक, रोधक, और श्लेषक, यह पांच प्रकार कफ और प्रवाहनी, विसर्ज्जनी और सम्वरणी गुह्यदेशकी त्रिविध वलि, यह सब कुपित होनेसे उत्पन्न होताहै। इससे स्वभावतःही यह रोग दुःसाध्य, अति कष्टदायक, बहुरोगजनक और सर्व्व देहका पीड़ाकारक है।

दुःसाध्य रोगका कारण।

जो सब अर्श बाह्यवलि अर्थात् सम्वरणी वलि या एक दोष से उत्पन्न होताहै और एक वर्षसे कम दिनका पुराना अर्श सुखसाध्य जानना।

सुखसाध्य अर्श:।

इसके सिवाय जो सब अर्श मध्यवलि अर्थात् विसर्ज्जनीसे उत्पन्न हो दो दोषज और एक वर्षसे अधिक दिनका पुराना है, वह कष्टसाध्य है। तथा जो सब अर्श सहज, अथवा त्रिदोषजात और अभ्यन्तर वलि अर्थात् प्रवाहनी वलिसे उत्पन्न होताहै उस अर्शको असाध्य जानना।

कष्टसाध्य अर्श:।

जिस अर्श रोगीका हाथ, पैर, मुख, नाभि, गुदा और अण्डकोषमें शोथ, हृदय और पार्श्वमें शूल हो, अथवा जिस अर्शरोगसे रोगीका हृदय और पार्श्वमें शूल, मूर्च्छा, कै, सर्व्वाङ्गमें दर्द, ज्वर, तृष्णा, और गुदामें घाव आदि उपद्रव उपस्थित हो उससे उसकी मृत्यु होतीहै, केवल तृष्णा, अरुचि, शूल, अत्यन्त रक्तस्राव, शोथ और अतिसार आदि उपद्रव उपस्थित होनेसेभी रोगीकी मृत्यु होतीहै। लिङ्ग प्रभृति स्थानोंमें जो सब मांसांकुर उत्पन्न होतेहै उसका आकार केंचुएके मुखकी तरह चिकना और कोमल होताहै। गुह्य-

सांघातिक अर्श:।

देशके अर्शोरोगकी तरह इसमेंभी वातादि दोष भेदसे पृथक पृथक लक्षण लक्षित होताहै।

"फुन्सी" नामक जो एक प्रकारकी पीड़ा देखनेमें आतीहै, वहभी अर्श जातीयहै। संस्कृतमें उसको चर्म्मकील कहतेहैं। व्यान वायु कफको आश्रयकर चमड़ेके उपर यह रोग उत्पन्न होताहै। इस रोगमें वायुका आधिक्य रहनेसे उसमे सूई गड़ानेकी तरह दर्द और कर्कश स्पर्श होताहै। पित्तका आधिक्य रहनेसे स्निग्ध, गठीला और चमड़ेके समान वर्णविशिष्ट होताहै।

फुन्सी।

जिसकार्य्यसे वायु अनुलोम हो और अग्निबलकी वृद्धि हो, अर्श रोग शान्तिके लिये पहिले वही सब उपाय अवलम्बन करना चाहिये। रोज सबेरे सफेद तिल १ तोला, मिश्री १ तोला, मक्खन १ तोला मिलाकर खिलानेसे वायु अनुलोमज हो अर्शोरोग उपशम होता हैं। केवल सफेद तिल ४।५ तोले खाकर थोड़ा ठंढा पानी पिलानेसेभी उपकार होताहै। इस रोगमें पतला दस्त होनेसे वातातिसारकी तरह और मलबद्ध होनेसे उदावर्त्तकी तरह चिकित्सा करना चाहिये। मल बद्ध होनेसे अजवाईनका चूर्ण और काला नमक मट्ठेके साथ पिलाना। एक सीसेके नलमें घी और सेंधा नमक लगाकर गुदामें रोज देनेसे मलरोध दूर होताहै। चीतामूलकी छाल पीसकर एक घड़ेके भीतर लेप करना, लेप सूख जानेपर उसी घड़ेमें दही जमाना तथा उस दहीका माठा पिलानेसे अर्शोरोग शान्त होताहै। थोड़ा पीपल चूर्ण अथवा तेवड़ीके मूलका चूर्ण और दन्तीमूलके चूर्णके साथ बड़ी हरेंका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसेभी अर्श आराम होताहै। कालो तिल एक

चिकित्सा।

तोला भेलावाकेमूटोका चूर्ण २ रत्ती एकमें मिलाकर सेवन करानेसे अग्नि वृद्धि हो अर्शोरोग आराम होताहै। हरीतकी, बिना छिकलेकी काली तिल, आंवला, किसमिस और जेठीमधका चूर्ण समभाग फालसेके छालके रसके साथ सेवन कराना। १ या २ दिन गोमूत्रमें हरीतकी भिंगाकर वही हरीतकी खिलानेसे अर्शोरोगमें उपकार होताहै। जङ्गलीसूरण अभावमें ग्राम्य सूरणके उपर माटी लपेटकर पुट पाकसे भूंजना फिर वही भूंजा सूरण तेल और नमक मिलाकर खाना। सेंधा नमक, चीतामूल, इन्द्रयव, यवका चावल, डहर करंजकी बीज और घोड़ा नीमकी छाल सबका सम भाग चूर्ण एकमें मिलाकर ⁄) आनेसे ।) आने तक मात्रा रोज ठंढे पानीमें सेवन कराना। तोरईका खार ६ गूना पानीमें मिला कर २१ बार थोराकर छान लेना; फिर उस खार पानीमें बेगन उबालकर घीमें भूज थोड़े गुड़के साथ भर पेट खाना और उपरसे माठा पीना। इसी प्रकार सात दिन करनेसे बहुत बढ़ा हुआ अर्श और सहज अर्शभी आराम होताहै।

अर्शमें रक्तस्राव।

अर्शमें रक्तस्राव होनेसे एक दम बंद करना उचित नहीहै, कारण खराब रक्त बद्ध होनेसे मलद्वारमे दर्द, आनाह और रक्त विकृति आदि रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावनाहै। पर जब अतिरिक्त स्रावसे रोगीके प्राण नाशकी आशङ्का हो तब तुरन्त बंद करना चाहिये। बिना छिकलेकी तिल १ तोला आधा तोला चीनी एकमें पीसकर एक छटांक बकरीके दूधके साथ सेवन करानेसे तुरन्त रक्तस्राव बंद होताहै तथा पद्मका नरम पत्ता पीसकर चीनीके साथ खाना अथवा सबेरे बकरीका दूध पीना। पद्मकेशर, सहत्, टटका माखन, चीनी और नागकेशर एकमें मिलाकर खाना। आमरूल शाक, नागकेशर

और नीलोत्पल इस तीन द्रव्यके साथ अथवा बरियारा और सरिवन इन दो द्रव्यके साथ धानके लावाका मंड बनाकर सेवन कराना। रोज सबेरे मक्खन बिना छिलकेकी तिल प्रत्येक दो दो तोला अथवा मक्खन १ तोला नागकेशर या पद्मकेशरका चूर्ण चार आनेभर और चीनी चार आनेभर एकत्र; किम्बा दहीकी मलाई मिला मट्ठा पीना। पीसी काली तिल १ तोला, चीनी आधा तोला और बकरीका दूध १ छटांक एकमें मिलाकर पीना। वराहक्रान्ता नीलोत्पल, मोचरस, लोध और लालचन्दन सम भाग २ तोले, बकरीका दूध १६ तोले और पानी ६४ तोले औटाना, दूध बाकी रहने पर छानकर पिलाना, अनारका नरम पत्ता, गेंदाका पत्ता, किम्वा कुकुरभोंकाके पत्तेका रस १ तोला और चीनी आधा तोला मिलाकर पीना। उपर कही सब दवायें रक्त रोधक है। कुरैयाकी छाल अथवा बेलके गूदीका काढ़ा सोंठका चूर्ण मिलाकर पीना। कुरैयाकी छाल आधा तोला पीसकर माठेके साथ अथवा सतावरका रस २ तोले, बकरीके दूधके साथ पीना। यह सब योग रक्तार्श निवारक है तथा रक्तपित्त रोगोक्त योग और औषध समूहभी विचार कर रक्तार्श रोगमें प्रयोग कर सकते हैं।

शास्त्रीय औषध।

उक्त योगोंके सिवाय चन्दनादि काढ़ा, और मरिचादि चूर्ण, समशर्कर चूर्ण, कर्पूराद्य चूर्ण, विजय चूर्ण, करञ्जादि चूर्ण, भल्लातामृत योग, दशमूल गुड़, नागराद्य मोदक, स्वल्प सूरण मोदक, वृहत्सूरण मोदक, कुटजलेह, प्राणदा गुड़िका, चन्द्रप्रभा गुड़िका, जातिफलादि वटी, पंचानन वटी, नित्योदित रस, दन्त्यरिष्ट, अभयारिष्ट, चव्यादि घृत और कुटजाद्य घृत आदि औषध दोषका बलाबल विचार कर सब बवासीर रोगमें प्रयोग करनेसे आश्चर्यजनक उपकार होता है।

दृश्यमान मांसांकुर अर्थात् जो सब मस्सा गुदाके बाहर दिखाई देताहै उनमें सेहुंड़के दूधके साथ हलदीका चूर्ण मिलाकर एक बिन्दु लगाना। तोरईका चूर्ण मस्सेपर घिसना। अकवनका दूध सेहुंड़का दूध, तितलौकीका पत्ता और डहर करंजकी छाल सम-भाग बकरीके मूत्रमें पीसकर मस्सेपर लेप करना। अथवा इसकी बत्ती तिल तेलमें भिगोकर गूदामें रखना, इससे मस्सा बेमालूम गिर पड़ताहै। पुराना गुड़ थोड़े पानीमें मिलाना, फिर तोरईका चूर्ण मिलाकर औटाना गाढ़ा होनेपर उसकी बत्ती बना वही बत्ती गुदामें रखना। तोरईको जड़ पीसकर लेप करना। सूरण, हलदी, नाभकी जड़ और सोहागेका लावाका चूर्ण पुराने गुड़के साथ अथवा कांजीमें पीसकर लेप करना। बीज संयुक्त तितलौकी कांजीमें पीसकर गुड़ मिला प्रलेप देना। सेहुंड़ या अकवनके दूधमें पीपल, सेंधा नमक, कुड़ और शिरीष फलका चूर्ण मिला अथवा हलदी और तोरई चूर्ण सरसोंके तेलके साथ मिलाकर लेप करना। कपासके सूतमें हलदीको चूर्ण मिला सेहुंड़का दूध बार बार लगाकर उसी सूतसे मस्सा बांध रखना। इन सब उपायोंसे मस्सा गिरकर अर्शो रोग आराम होताहै। कासीसतैल और बृहत्कासीसतैल मांसांकुर निवारणका उत्कृष्ट औषधहै।

मांसांकुर गिरानेका उपाय।

पुराने चावलका भात, मूंग, चना या कुरथीकी दाल; परवर, गुल्लर, सूरण, छोटी मूली, कच्चा पपीता केलेका फूल, सैजनका डंडा आदिकी तर-कारी, दूध, घी, मखन, घृतपक्क पदार्थ, मिस्री, किसमिस, अंगूर, पक्का बेल, पक्का पपीता, मट्ठा और छोटी इलायची पथ्यहै।

पथ्यापथ्य।

नदी या प्रशस्त तालाबमें सहने पर स्नान और साफ हवामें टहलना आदि उपकारी है।

इसके सिवाय जो सब आहार विहारादिसे वायुका अनुलोम हो वही सब आहार विहारादि अर्शो रोगमें करना उचित है। अर्शो रोगमें अधिक रक्तस्राव हो तो रक्तपित्त रोगको तरह पथ्या-पथ्य प्रतिपालन करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म।

भूना, सेंका पदार्थ, गुरुपाक द्रव्य, दही, पिष्टक, उरद, सेम, लौकी, आदि द्रव्य भोजन; धूप या अग्निका सन्ताप, पूर्व्व दिशाको वायुका सेवन मल मूत्रादिका वेग धारण, मैथुन, घोड़ा आदि सवारीमें चढ़ना, कड़े आसनपर बैठना और जिस कार्य्यसे वायु कुपित हो उसका अनुशीलन अर्शो रोगमें अनिष्टकारक है।

अग्निमान्द्य और अजीर्ण।

अग्निमान्द्यका निदान।

अधिक जल पान, अपरिमित आहार, सर्व्वदा गुरुपाक द्रव्य भोजन, अश्रद्धा पूर्व्वक आहार, मल मूत्रादिका वेग रोकना, दिनको सोना, रातको जागना, दुश्चिन्ता, अच्छी तरह चिबाकर न खाना, परिपाक यंत्रका दोष, क्रिमि रोग, अधिक शीतल या आग धूपमें फिरना, अधिक जलक्रीड़ा और अधिक पान खाना आदि कारणोंसे अग्नि-मान्द्य रोग उत्पन्न होताहै। उक्त कारण और विषम भोजन अर्थात् कोई दिन थोड़ा, कोई दिन अधिक, अनिर्द्दिष्ट समयमें भोजन, सूखा या सड़ा द्रव्य भोजन, अनिच्छा या तृष्णामें भोजन;

भोजनके वक्त भय, क्रोध, लोभ, शोक या और कोई कारणसे मानसिक तकलीफ और भोजनके बादही अतिरिक्त मानसिक परिश्रम आदि कारणोंसेभी अजीर्ण रोग उत्पन्न होताहै। साधारणत: अजीर्णरोग चार प्रकार,—आमाजीर्ण, विदग्धा जीर्ण, विष्टब्धा, जीर्ण और रसशेषाजीर्ण। कफ प्रकोपसे अमाजीर्ण, पित्त प्रकोपसे विदग्धाजीर्ण वायु प्रकोपसे विष्टब्धाजीर्ण और खाये हुए पदार्थका पहिला रस रक्तादि रूपमें परिणत न होनेसे रसशेषाजीर्ण उत्पन्न होताहै।

प्रकारभेदके लक्षण।

अमाजीर्णमें शरीर भारी, जी मतलाना, गाल और आंखके चारो तरफ शोथ, खाये हुए पदार्थके स्वादका डकार आना आदि लक्षण होते है। विदग्धाजीर्णमें भ्रम, मूर्च्छा, प्यास खट्टी या धुंयेली डकार और पित्तजन्य अन्यान्य उपद्रव प्रकाशित होतेहै। विष्टब्धा जीर्णमें पेटका फूलना, दर्द, मल और अधो वायुका अनिर्गम, स्तब्धता, मूर्च्छा, सर्व्वांगमे दर्द तथा वायु जन्य अन्यान्य कष्टभी दिखाई देते है। रस शेषाजीर्ण में अन्न भोजनकी अनिच्छा, हृदयकी अशुद्धि और शरीर भारी मालूम होताहै।

साधारण लक्षण।

सब प्रकारके अजीर्णमें ग्लानि, शरीर और पेटमें भारीपन, पेटमे दर्द और वायु संचय, कभी मलरोध, कभी अजीर्ण मलभेद, और आहारके बाद वमन; यही कई एक साधारण लक्षण दिखाई देतेहैं।

उपद्रव।

अजीर्ण रोगसे मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, मुखसेस्राव, अवसन्नता और भ्रम; यही सब उपद्रव उत्पन्न होताहै।

सुपथ्य भोजन करनाही अग्निमान्द्यकी साधारण चिकित्साहै ।

अग्निमान्द्य चिकित्सा ।

समभाग बड़ी हर्र और शोंठका चूर्ण गुड़ या सेंधा नमकके साथ रोज खानेसे अग्निमान्द्य रोग आराम होताहै । रोज सवेरे जवाखार और शोंठका चूर्ण समभाग खानेसे अथवा शोंठका चूर्ण घीके साथ चटाकर थोड़ा गरम पानी पीनेसे भूख बढ़तीहै । रोज भोजनके पहिले अदरख और नमक खानेसे अग्नि मान्द्य दूर हो, जीभ और कण्ठ साफ होताहै । इसके सिवाय बड़वानल चूर्ण, सैन्धवादि चूर्ण, सैन्धवाद्य चूर्ण, हिङ्गाष्टक चूर्ण, स्वल्पाग्निमुख चूर्ण, वृहदग्निमुख चूर्ण, भास्कर लवण, अग्निमुख लवण, बड़वानल रस, हुताशन रस और अग्नितुण्डी वटी आदि औषध सेवन करनेसे अग्निमान्द्य आराम होताहै । अजीर्ण रोगोक्त औषध समूहभी अग्निमान्द्यमें दे सकतेहै ।

अजीर्ण की साधारण चिकित्सा ।

आमाजीर्णमें वमन, विदग्धाजीर्णमें लंघन अर्थात् उपवास, विष्टब्धाजीर्णमें स्वेद कार्य्य और रसशेषाजीर्णमें आहारके पहिले दिवा निद्रा ; यही सब अजीर्ण रोगकी साधारण चिकित्साहै ।

विशेष चिकित्सा ।

आमाजीर्णमें बच १ तोला सेंधा नमक १ तोला १ सेर गरम पानीमें मिला, पिलाकर कै कराना, पीपमें सेंधा नमक, और बच समभाग ठंढे पानीमे पीसकर पिलाना । धनिया १ तोला और शोंठ १ तोलाका काढ़ा पिलाना, इससे पेटकी दर्द तुरन्त आराम होताहै । गुड़के साथ शोंठ, पीपल बड़ी हर्र अथवा अनार इसमे कोई एक द्रव्यका चूर्ण सेवन करानेसे आमाजीर्ण, मलबद्धता और अर्शरोग शान्त होता है । सवेरे अजीर्ण मालूम होनेसे बड़ी हर्र, शोंठ, और सेंधा नमक

प्रत्येकका समभाग ठंढे पानीके साथ सेवन कर आहार करनेसे किसी तरहके अनिष्टकी आशंका नहीं रहती है।

विदग्धाजीर्णमें ठंढा पानी पीनेको देना, इससे विदग्ध अन्न जलदी परिपाक होताहै और पानीका ठंढापन तथा पतलेपनसे पित्त प्रशमित हो नीचे उतरताहै। भोजन करतेही यदि अन्न विदग्ध हो हृदय, कोष्ठ और गलेमें जलन मालूम हो तो उपयुक्त मात्रा बड़ीहर्र, किसमिस एकमें पीसकर चीनी और सहतके साथ समभाग चाटना। बड़ीहर्र १ तोला, पीपल एक तोला, ३२ तोले कांजीमें औटाना ८ तोले रहते उतार कर एक आना भर सेंधा नमक मिलाकर पीनेसे धुंएली डकार और प्रबल अजीर्ण आराम हो तुरन्त भूख लगतीहै।

विष्टब्धाजीर्णमें स्वेदक्रिया और लवण मिला कर पानी पिलाना चाहिये। रस शेषाजीर्णमें उपवास, दिवा निद्रा और प्रबल वायु शून्य स्थानमें बैठना आदि साधारण चिकित्सा है। हींग, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, और सेंधा नमक, पानीमे पीसकर पेटपर लेप करना तथा भोजनके पहिले लेप लगाकर दिनको सोनेसे सब प्रकारका अजीर्ण रोग आराम होताहै। बड़ीहर्र, पीपल और सौंचल नमक, सबका समभाग चूर्ण दोषानुसार दहीका पानी या गरम पानीके साथ सेवन करनेसे चार प्रकारका अजीर्ण, अग्निमान्द्य, अरुचि, पेटका फूलना, वातज गुल्म और शूल रोगभी जलदी आराम होताहै। शोंठ, पीपल, गोलमिरच, दन्तीबीज, निशोथकी जड़, चितामूल और पीपला मूल, इन सबका समभाग चूर्ण पुराने गुड़के साथ सबेरे खानेसे सब प्रकारका अजीर्ण, अग्निमान्द्य, उदावर्त्त, शूल, प्लीहा, शोथ और पांडु रोगमेंभी उपकार दिखाई देताहै। उदराध्मान निवृत्तिके लिये

गोलमिरच भिगोया पानी अथवा गोलमिरच पानीमें पीसकर पीनेसे विशेष उपकार होताहै ।

सब प्रकारके अजीर्णमें अग्निमान्द्य नाशक औषध समूह और लवङ्गाद्य मोदक, सुकुमार मोदक, चित्रकादि मोदक, मुस्तकारिष्ट, क्षुधासागर रस, शंखवटी, महाशंख वटी, भास्कर रस, चिन्तामणि रस और अग्निघृत प्रभृति औषध अवस्थानुसार प्रयोग करना। ग्रहणी रोगोक्त कई प्रकारके औषधभी दिया जाता है ।

पथ्यापथ्य ।

अजीर्णके प्रथम अवस्थामें उपवास कराना चाहिये, फिर बार्लि, एराकट, जौका मंड, सिंघाड़ेकी लपसी आदि हलका पथ्य देना । क्रमश: अजीर्णका उपशम और अग्निबलकी वृद्धि होनेसे, दिनको पुराने चावलका भात, मसूरकी दाल, मागुर, सिंगी, कोई आदि मछलीका रसा, परवल, बैंगन, कच्चा केला आदिकी तरकारी, मट्ठा और कागजी या पाती नीबू, आहार करनेको देना । रातको बार्लि आदि हलकी वस्तु खानेको देना । भूख अधिक होनेसे और दोनो वक्त परिपाक की शक्ति बढ़ने पर रातकोभी दिनकी तरह अन्न खानेको देना । भूंना कच्चा बेल, बेलका मुरब्बा, अनार, मिश्री आदि द्रव्य उपकारी है । अजीर्ण या अग्निमान्द्य रोगमें भोजनके २।३ घंटा बाद पानी पीना चाहिये । सबेरे बिछौनेसे उठतेही थोड़ा ठंढा पानी पीना इस रोगमें सुपथ्य है चलित भाषामें इसको "उषापान" कहतेहै ।

निषिद्ध कार्य्य ।

घृतपक्व द्रव्य, मांस पिष्टक आदि गुरुपाक द्रव्य, तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य, भूंजा सेंका द्रव्य, अधिक जल या तरल पदार्थ पीना, यव, गोधूम, उरद, शाक, इक्षु, गुड, दूध, दही, घी, खोवा, मलाई, नारियल, मुनक्का दस्तावर वस्तु मात्र, अधिक लवण, लाल मिरचा आदि भोजन,

तैल मर्द्दन, रातका जागना, मैथुन, स्नान, इस रोगमें अनिष्टकारक है। वस्तुत: जो द्रव्य जलदी हजम नहीं होता अथवा जिस द्रव्यके पचनेमें देर होतीहै वैसा पदार्थ परित्याग करना चाहिये।

विसूचिका।

आयुर्व्वेद शास्त्रमें विसूचिकाभी अजीर्ण रोगके अन्तर्गत निर्दिष्ट है। इसको संक्रामकताशक्ति इतनी अधिक है कि एक आदमीको अजीर्णके सबब विसूचिका रोग उत्पन्न हो क्रमश: उस देशके अधिकांश मनुष्यको आक्रमण करता है। रोगभी अति भयङ्कर और जलदी प्राण नाशक है। इन्हीं सब कारणोंसे इसको स्वतन्त्र रोगमें गिनना उचित जानकर अलग लिखतेहैं। चलित भाषामें इसका "हैजा" और अङ्गरेजीमें "कलेरा" कहते है। अतिवृष्टि, वायुको आर्द्रता या स्थिरता, अतिशय उष्ण वायु, अपरिष्कृत जल वायु, अतिरिक्त परिश्रम, आहारका अनियम, भय, शोक या दुःख आदि मानसिक पोड़ा, अधिक जनतापूर्ण स्थानमें वास, रातका जागना और शारीरिक दौर्व्वल्य आदिको इस रोगका निदान कहते हैं। जिस आदमीको बिना पेटको बिमारीके हैजा होताहै, उसको पहिले शारीरिक दुर्व्वलता, बदन कांपना, मुखश्रीको विवर्णता, पेटके ऊपरी भागमें दर्द, कानमें कई तरहके शब्द सुनाई देना, शिर:पोड़ा और शिर घूमना आदि पूर्व्वरूप प्रकाश होता है।

विसूचिका या हैजेका निदान।

इसका साधारण लक्षण लगातार दस्त और वमन है। पहिले २।१ बार उदरामयको तरह दस्त और खाया हुआ पदार्थ वमन हो, फिर पानी

साधारण लक्षण।

के तरह और जौ या चावलके काढ़ेकी तरह अथवा सड़ा सफेद कोंहड़ेके पानीकी तरह दस्त और पानी वमन होताहै। कभी कभी लाल रंगका दस्त होतेभी दिखाई देताहैं। पेटमें दर्द, सड़ी मछलीके तरह दुर्गन्ध और पिशाब बन्द होता हैं। फिर क्रमशः आंखोंका बैठ जाना, दानी ओष्ठका नीला होना, नाक ऊंची, हात पैर ठंढा सिंकुड़न और ऐठन, अंगुलीके अग्रभाग रूख जाना, शरीर रक्त-शून्य और पसीना होना; नाड़ी चीण शीतल और क्रमशः लुप्त, हुचकी, अत्यन्त प्यास, मोह, भ्रम, प्रलाप, ज्वर, अन्तर्दाह, स्वर-भंग बेचैनी, अनिद्रा, शिरका घूमना, शिरमें दर्द, कानमें विविध शब्द सुनाई देना; आंखमें नाना प्रकार मिथ्यारूप देखना; जीभ ठंढी, श्वास शीतल, और दांतोंका बाहर निकलना आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं।

दोष प्रकोपके लक्षण।

इस रोगमें वायुका प्रकोप अधिक रहनेमें दस्त वमनकी अल्पता पेटमें दर्द, अङ्गमर्द, मुखशोष, मूर्च्छा, भ्रम और शिरा संकोच आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं। पित्तके आधिक्यमें अधिक दस्त, ज्वर, अन्तर्दाह प्यास, मोह और प्रलाप आदि लक्षण और कफके आधिक्यमें अधिक वमन, आलस्य, शरीर भारी, शीतज्वर और अरुचि आदि लक्षण विशेष रूपसे लक्षित होतेहैं।

शारीरिक सन्ताप।

इस अवस्थामें शारीरिक सन्ताप बहुत कम हो जाताहै। ताप-मान यन्त्रसे परीक्षा करने पर ९६ डिग्री तक सन्ताप रहताहै। किसीको मृत्युके दो एक घण्टा पहिले कपाल, गाल और कानोंमें सन्ताप अधिक होताहै। उपर कहे लक्षणोंमें मूर्च्छा, गात्रदाह, निद्रानाश, शारीरिक विवर्णता, उदर, मस्तक और हृदयमें अत्यन्त दर्द, भ्रान्ति,

प्रलाप, स्वरभंग, कम्प और बेचैनी आदि लक्षण प्रकाश होनेसे रोगीके जीवनकी आशा नहीं करना। और यदि क्रमशः भेद वमनकी अल्पता, पित्त मिला मलभेद, शारीरिक सन्ताप वृद्धि, पेटके दर्दका नाश, नियमित निःश्वास प्रश्वास, प्यास कम, निद्रा स्वाभाविक, वर्ण प्रकाश और पिशाब होना आदि लक्षण दिखाई दे तो आराम होनेकी आशा है। इस रोगका हमला अक्सर सबेरे और रातको होताहै। पर कभी कभी और वक्तभी इसका हमला देखनेमे आताहै। इसके भागका काल निश्चय नहींहै, किसीको ता २।४ घंटेहीमें मृत्यु होतीहै और बहुतेरोंको २।४ दिन तक कष्टभोगकर मृत्युमुखमें पतित होना पड़ताहै।

यह रोग उपस्थित होतेही चिकित्सा (इलाज) करना चाहिये।

चिकित्सा। पर पहिलेही तेज धारक औषध देना उचित नहींहै; उससे दस्त बंद होनेपरभी वमन वृद्धि और पेटका फूलना आदि उपसर्ग उत्पन्न होताहै। तथा थोड़ी देरके लिये दस्त बन्द हो फिर अधिक परिमाणसे दस्त होनेकी आशङ्का बनी रहतीहै। इससे प्रथम अवस्थामें धारक औषध अल्प मात्रासे थोड़ी थोड़ी देना चाहिये। अजीर्णसे रोग उत्पन्न होनेसे पहिले पाचक और अल्प धारक औषध देनाही सद्व्यवस्था है। अजीर्णके विसूचिकामें नृपवल्लभ आदि औषध विशेष उपकारीहै। दूसरे विसूचिका रोगमें पहिले दालचिनी ॥।) आनेभर, जाफरान ॥।) आनेभर, लौंग ।≠) आनेभर और छोटी इलायचीका दाना ।) आनेभर अलग अलग अच्छी तरह पीसना फिर २५ तोले चीनीमें मिलाना; सब मिलाकर जितना वजन हो उसके तीन भागका एक भाग सफेद मिट्टीका चूर्ण उसके साथ मिलाना तथा रोग और रोगीके बलानुसार १० रत्तीसे ३० रत्ती तक मात्रा बार

बार देना। २० वर्षके जवानसे लेकर ५० वर्षके बूढ़ेतकको २० रत्ती चूर्णके साथ आधो रत्ती अफोम मिलाकर देना। इससे कम उमरवालेको खाली चूर्ण देना। रोगोके उमरके हिसाबसे दवाकी मात्राभी आधी या चौथाई करना चाहिये अथवा अफोम आधी रत्ती, गोल मरिचका चूर्ण चौथाई रत्ती, हींग चौथाई रत्ती और कपूर १ रत्ती एकसङ्ग मिलाकर एक आनाभर मात्रा प्रत्येक दस्तके बाद देना। दस्त बन्द हो जानेपर २।३ दिन तक दिन भरमें तीन बार देना, अफीम आदि ४ द्रव्य समभाग ले २ रत्ती वजनकी गोली बनाकर देना अथवा हमारा कर्पूरारिष्ट १०।१२ बून्द थोड़ी चीनोमें मिलाकर आधे घण्टेके अन्तर पर देना। अहिफेनासवभी इस रोगका प्रशस्त औषधहैं ५से १० बिन्दु मात्रा विचार कर ठण्ढे पानीके साथ देना। मुस्ताद्य वटी, कर्पूर रस, ग्रहणी कपाट रस और प्रबल-अतिसार नाशक, अतिसार और ग्रहणी रोगोक्त अन्यान्य औषधभी इस रोगमें दे सकतेहैं। यह सब औषध व्यवहार करनेके साथ साथ थोड़ी मृतसञ्जीवनी सुरा पानीमें मिलाकर देनेसे विशेष उपकार होता है, पर कै और हुचकोका वेग रहनेसे सुरा न देकर सोधू अर्थात् सिर्का पानीमें मिलाकर देना चाहिये इससे हुचकी कै, प्यास और पेटका फूलना आराम होताहै। एक छटांक इन्द्रयव १ सेर पानीमें औटाना एक पाव रहते उतार कर १ तोला मात्रा आधा घण्टा अन्तर पर देनेसे विशेष उपकार होताहै।

अपामार्ग (चिरचिरा) की जड़ पानीमें पीसकर सेवन करानेसे हैजा आराम होताहै; छोटी करेलीके पत्तेके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे हैजा आराम होताहै और भूख बढ़ताहै। बेलको गूदी और सोंठका काढ़ा; अथवा बेलको गूदी, सोंठ और कायफल इन तीन चीजका काढ़ा पीनेसेभी हैजा आराम होताहै।

एक अंजुली धानका लावा और १ तोला चीनी डेढ़ पाव पानीमें थोड़ी देर भिंगोकर छान लेना, फिर उसमें खस १ तोला, छोटी इलायची आधा तोला, सौंफ एक तोला पीसकर और सफेद चन्दन घिसा १ तोला मिलाना। यह पानी आधा तोला मात्रा आधा घंटा अन्तर पर पिलानेसे कै (वमन) बन्द होताहै।

वमन और मूत्र निःसारक उपाय।

सरसों पीसकर पेटपर लेप करनेसेभी कै बन्द होतीहै। तथा अन्यान्य औषधभी वमन बन्द करनेके लिये विचार कर देना चाहिये। पिशाब करानेके लिये पथरकुची, हिममागर या लोहाचूर नामक पत्तेका रस १ तोला पिलाना। अथवा गोखुर बीज, कंकड़ोकी बीज और जवासा, इसके काढ़ेके साथ दो आनेभर सोरा चूर्ण मिलाकर पिलाना, किम्बा कुश, काश, शर, खस, और काला ऊख यह तृणपंचमूलका काढ़ा पिलाना। रामतरोई उबाला पानी आधा छटांक ३।४ बार पिलानेसे अथवा स्थलपद्मके पत्तेका रस १ तोला थोड़ी चीनी मिलाकर पिलानेसे पिशाब उतरतीहै। पथरकुचीका पत्ता और सोरा एकमें पीसकर बस्तिपर लेप करनेसे भी पिशाब होतीहै। हाथ पैरका गोला आराम करनेके लिये तार्पिनका तेल और सुरा एकमें मिलाकर मालिश करना। केवल सोंठका चूर्ण मालिश करनेसे उपकार होताहै। कुड़ और सेंधा नमक कांजी और तिलके तेलमें पीसकर थोड़ा गरम कर मालिश करना। दालचिनी, तेजपत्ता, रास्ना, अगरु, सैजनकी छाल कुड़, बच, और सुलफा यह सब द्रव्य कांजीमें पीसकर थोड़ा गरम, कर मालिश करनेसेभी गोला आना बन्द होताहै। हुचकीके लिये सन्निपात-ज्वरोक्त हिक्का नाशक योग समूहोंकी व्यवस्था करना, अथवा केलेके जड़की रसका नास लेना। राई पीसकर गरदन

और मेरूदण्ड पर लेप करना। पेटकी दर्द शान्तिके लिये जीका चूर्ण और जवाखार मट्ठेके साथ पीस कर थोड़ा गरम कर पेटपर लेप करना, अथवा तार्पिनका तेल पेटपर मालिश कर सेंकना। गरम पानीमें ऊनी वस्त्र भिगो निचोड़ कर सेंकनेसेभी उपकार होताहै। प्याससे जी व्याकुल हो तो कपूर मिला पानी अथवा बरफका पानी पीनेको देना। कबावचिनीका चूर्ण १ तोला, जेठीमधका चूर्ण आधा तोला और कज्जली चार आनेभर सहतके साथ थोड़ा थोड़ा चटानेसे पिपासा शान्त होतीहै। लौंग, जायफल या मोथेका काढ़ा पिलानेसे प्यास और वमन बन्द होताहै। पसीन अधिक हो तो अबीर मालिश करना; अथवा मूंगेका भस्म सहतके साथ चटाना। शिरःशूलके लिये ठण्ढे पानीकी पट्टी शिरपर रखना, बेहोशी हो तो हाथ पैर सेंकना।

जीवनकी आशा कम होनेसे और सन्निपातकी तरह दोनो आंखे लाल, प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम आदि उपसर्ग उपस्थित होनेसे सूचिकाभरण रस प्रयोग करना उचितहै। कच्चे नारियलके पानीके साथ २।३ गोली अवस्था विशेषमें २।३ बार तक सेवन करा सकतेहैं। इससे उपकार नही हो तो फिर सेवन कराना वृथा है। अन्तकालके हिमांग अवस्थामें हमारा "कस्तुरीकल्प रसायन" देनेसे विशेष उपकार होताहै।

सूचिकाभरणरस और हमारा कस्तुरीकल्प रसायन प्रयोग।

इस रोगकी चिकित्सामें हर वक्त सतर्क रहना चाहिये, कारण किसवक्त कौन आफत आवेगी इसका ठिकाना नहीहै और न अनुमानसे जानने लायक इसका कोई उपायहै। रोगीका घर, बिछौना, और पहिरनेका कपड़ा आदि हरवक्त साफ रखना चाहिये कपूर, धूना, और गन्धकका धूप घरमें देना। मल आदि दूर फेंकना चाहिये।

पीड़ाकी प्रबल अवस्थामें उपवासके सिवाय कोई पथ्य नहीं देना। पीड़ा कम हो रोगीको भूख लगे तो सिंघाड़ेकी लपसी, एरारूट या साबूदाना पानीमें सिजाकर खानेको देना।

पथ्यापथ्य और हमारा संजीवन खाद्य।

अतिसारोक्त यवागूभी इस अवस्थामें विशेष उपकारी है। हमारा "संजीवन खाद्य"भी इस अवस्थामें सुपथ्य है। उक्त पथ्यके साथ कागजी या पाती नीबूका रसभी इस अवस्थामें दे सकते हैं। पीड़ा अच्छी तरह आराम हो अधिक भूख बढ़नेसे पुराने चावलका मण्ड कोई, मांगुर आदि छोटी मछलीका शुरुवा और नरम मांसका शुरुवा पीनेको देना। फिर अन्न परिपाकका उपयुक्त बल होनेसे पुराने चावलका भात, मसूरकी दालका जूस, पूर्व्वोक्त मछली और मांसका रस, गुल्लर, नरम परवल आदिकी तरकारी थोड़ा खानेको देना, मिश्री बतासाके सिवाय दूसरी मिठाई नहीं देना। शारीरिक बलकी वृद्धि होनेसे ३।४ दिन अन्तर पर गरम पानीसे स्नान कराना।

सम्पूर्ण स्वास्थ्य लाभ न होने तक गुरुपाक द्रव्य घी या घीकी बनाई वस्तु, भूना, सेंका पदार्थ भोजन, स्नान, मैथुन, आग और धूपका सन्ताप

निषिद्ध कर्म।

व्यायाम या अन्यान्य श्रमजनक कार्य्य नहीं करना। पहिलेही कह आयेहै, कि साधारणत: अजीर्णही इस रोगका मूल कारण है, अतएव जो सब कारणोंसे अजीर्णकी आशङ्का है उसकी सर्व्वदा परित्याग करना चाहिये। देश या गांवमें अथवा अपने परिवारमें किसीको यह रोग उपस्थित हो तो किसी तरहसे डरना नहीं, कारण भयसे अजीर्ण और अजीर्णसे हैजा उत्पन्न होनेकी सम्पूर्ण सम्भावना रहती है।

अलसक और विलम्बिका।

यह दो प्रकारका रोग अजीर्ण रोगका भेदमात्र है। दुर्ब्बल, अल्पाग्नि, बहु श्लेषयुक्त मल-मूत्र-वात वेगका रोकना, और जो मनुष्य गुरु,कठिन अधिक रूखा, शीतल, सूखा द्रव्य भोजन करताहै उसका वायु कुपित और कफसे रुद्धगति होनेसे उक्त दो प्रकारके रोग उत्पन्न होतेहै।

रोगका कारण।

अलसक रोगमें अतिशय कष्टदायक उदराध्मान होताहै, रोगी तकलीफसे छटफट करते करते मुर्च्छित हो जाताहै; और अजीर्णसे उसके कोंखकी वायुका अधोगति बंद हो वही वायु हृदय और कंठ आदि उपरकी तरफ चढ़ताहै; सुतरां हुचकी और डकार इस रोगमें अधिक आताहै। दस्त कै के सिवाय विसूचिका रोगके अन्यान्य लक्षणभी इस रोगमें दिखाई देतेहै। खाया हुआ पदार्थ नीचे या उपर न जाकर अपक्वावस्थाहीमें आमाशयमें अलस भावसे रहताहै इससे इस रोगको अलसक कहतेहै। विलम्बिका रोगके लक्षण पृथक भावसे निर्दिष्ट नहीहै पर उक्त लक्षण सब अधिक प्रकाशित होनेसे उसको विलम्बिका कहतेहै। अलसककी अपेक्षा विलम्बिका रोग अधिक कष्टसाध्यहै।

अलसक और विलम्बिका दोनो रोगकी चिकित्सा एकही प्रकारहै, दोनो रोगमें पहिले नमक मिला गरम पानीसे वमन कराना। अथवा उहर करञ्जका फल, नीमकी छाल, आपामार्गकी बीज, गुरिच, सफेद

चिकित्सा।

तुलसी और चन्द्रयव, इन सब द्रव्योंका काढा आकण्ठ पिलाना, इससे वमन होतेही अलसक और विलम्बिका रोग आराम होताहै। उदराध्मान और पेटकी दर्द शान्तिके लिये देवदारु, सफेद जी, कुड़ शुलफा, हींग, और सेंधा नमक कांजीमें पीसकर पेटपर लेप करना। जौका चूर्ण और जवाखार मट्ठेमें पीसकर लेप करनेसेभी उपकार होताहै। गरम कांजी बोतलमें भर अथवा उसमें ऊनी वस्त्र भिंगो निचोड़कर सेंकनेसेभी उदराध्मान और पेटकी दर्द आराम होताहै। हुचकीके लिये कदलीके जड़के रसकी नास लेना। अथवा राई पीसकर गरदन और रीढ़में लेप करना। अग्निवर्द्धक और अजीर्ण नाशक औषध इस रोगमें विवेचना पूर्व्वक प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य। इस रोगके प्रथमावस्थामें उपवास कराना चाहिये। फिर क्षुधा और अग्निबलके अनुसार धीरे धीरे लघु पथ्य देना। अन्यान्य सब नियम विसूचिका रोगकी तरह पालन करना चाहिये।

क्रिमिरोग।

प्रकार भेद। क्रिमि दो प्रकार, आभ्यन्तर दोषजात और वहिर्म्मल जात। आभ्यन्तर क्रिमि तीन भागसे विभक्त है; पुरीषज, कफज और रक्तज। अजीर्ण रहने पर भोजन, सर्व्वदा मधुर और अम्ल रस भोजन, अतिशय पतला पदार्थ पीना, अपरिष्कृत जल पान, गुड़, पिष्टक, मांस, उरद और दही आदि द्रव्य अधिक भोजन, चोर मलसादि संयोग

विरुद्ध द्रव्य भोजन, व्यायाम शून्यता, दिवा निद्रा आदि कारणोंसे आभ्यन्तर क्रिमि उत्पन्न होतीहै। यह क्रिमि उत्पन्न होनेसे ज्वर, विवर्णता, शूल, हृद्रोग, अवसन्नता, भ्रम, आहारमें अनिच्छा, जी मतलाना, के, मुहमे थूक आना, अजीर्ण, अरुचि, नासिका कंडु, सोतेमें दांत पीसना, छींक आना आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं।

पुरीषज क्रिमि लक्षण।

पुरीषज क्रिमि पक्वाशयमें जन्मतीहै, यह अकसर नीचेही रहतीहै। कभी कभी आमाशयकी तरफ भी उतरतीहै। ऊपर उठने पर रोगीके निश्वासमें विष्ठाकी तरह बदबू आतीहै। पुरीषज क्रिमि नाना प्रकारकी होतीहै। सूक्ष्म, स्थूल, दीर्घ, गोल और श्याव, पीली, सफेद या काली आदि नाना प्रकार आकृतिगत विभिन्नता दिखाई देतीहै। बहुतेरे धानके अंकुरकी तरह सूक्ष्म, बहुतेरे केचुवेकी तरह लम्बी और स्थूल, कई गोल, कितनी चर्म्मलताकी तरह आकृतियुक्त नाना प्रकार पुरीषज क्रिमि होतीहै। तूम्बो बीजकी तरह और एक प्रकार क्रिमिहै वह १२ हात तक लम्बी होतीहै। अतिरिक्त मांस भोजन, अथवा कच्चा मांस भोजन और अधिक शूकर मांस भोजन करनेसे प्राय: ऐसही क्रिमि उत्पन्न होतीहै। इसको बाहर निकालती वक्त खींचना पड़ताहैं। यही सब क्रिमि विमार्ग गामी होनेसे मलभेद, शूल, पेटकी स्तब्धता, शारीरिक कृशता; कर्कशता, पांडुवर्णता, रोमांच, अग्निमान्द्य, और गुदामें कण्डु आदि लक्षण प्रकाशित होतेहै।

कफज क्रिमि लक्षण।

कफज क्रिमि आमाशयमें उत्पन्न हो, पेटके चारो तरफ फिरती है, इसकीभी आकृति पूरीषज क्रिमिकी तरह नाना प्रकार, और वर्णभी वैसही विभिन्न दिखाई देताहै। कफज क्रिमि उत्पन्न होनेसे, जीमचलाना

मुखसे पानी आना, अजीर्ण अरुचि, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, मल मूत्र रोध, कृशता, छींक, पीनस आदि लक्षण अधिक प्रकाशित होतेहैं।

रक्तज क्रिमि रक्तवाहिनी शिरायोंमें रहतीहै। और मत्स्यादि संयोग विरुद्ध द्रव्य भोजन, अजीर्णमें भोजन और शाकादि द्रव्य अधिक भोजन करनेसे रक्तज क्रिमि उत्पन्न होतीहै। यह सब क्रिमि अतिशय सूक्ष्म, पदशून्य, गोल और ताम्रवर्ण होतीहै।

रक्तज क्रिमि।

वाह्य मलजात क्रिमि गात्रमल और पसीनेसे उत्पन्न होतीहै, अतएव अपरिष्कारताही इसका मुख्य कारण है। इसकी आकृति और परिमाण तिलकी तरह, वाह्यक्रिमि युक और लिक्ष्य भेदसे दो प्रकार, युका अर्थात् जूं नामक क्रिमि बहुपदयुक्त, कृष्णवर्ण और केश बहुल स्थानमें उत्पन्न होतीहै लिक्ष्य सूक्ष्म श्वेतवर्ण और यह कपड़ेमें उत्पन्न होतीहै।

वाह्य मलजात क्रिमि लक्षण।

आभ्यन्तर क्रिमि नाशके लिये घेंटूका पत्ता अथवा अनारसके नरम पत्तेका रस थोड़ा सहत मिलाकर पीना। विड़ङ्ग चूर्ण एक आनाभर पानीके साथ अथवा विड़ङ्गका काढ़ा २ तोला पिलाना ; विड़ङ्ग क्रिमि नाश करनेके हकमें अति श्रेष्ठ औषधहै, खजूरके पत्तेका रस बासी कर पीनेसे अथवा खजूरके जड़की नरम गूदी खानेसे क्रिमि नष्ट होतीहै। पालिधा पत्रका रस, केउपत्रका रस, शालिचा शाकका रस, पलाश बीजका रस, अनारके जड़का काढ़ा आदि द्रव्यभी क्रिमिनाशक है। खुरासानी अजवाईन, सेंधा नमकके साथ सवेरे खानेसे क्रिमि रोग अजीर्ण और आमवात आराम होताहै। तित लौकी बीजका चूर्ण मट्ठा या कच्चे नारियलके पानीके साथ अथवा

चिकित्सा।

कमला गुड़ि चार आनेभर गुड़के साथ सेवन करना। सोमराजी बीज आधा तोला एक छटांक पानीमें ५।६ घंटा भिंगोकर वह पानी पीना। विड़ङ्ग, सेंधा नमक, जवाखार कमलागुड़ी, और हर्र मट्ठेमें पीसकर पिलाना। आधा पानी और आधी दहीके मट्ठेमें विड़ंग, पीपलामूल, सैजनकी बीज और गोलमरिचका यवागू बनाना फिर जवाखार मिलाकर पीना। उक्त औषध सब क्रिमिनाश करनेमें उत्तम है। इसके सिवाय पारसीयादि चूर्ण मुस्तादि कषाय, क्रिमि मुद्गर रस, क्रिमिघ्न रस, विड़ङ्ग लौह, क्रिमिघातिनी वटिका, त्रिफलाद्य घृत, विड़ङ्ग घृतादि औषध प्रयोग करना। हमारी बनाई "क्रिमिघातिनी वटिका" सेवन करनेसे सब प्रकारका क्रिमि रोग आराम होताहै।

वाह्य क्रिमि विनाशके लिये धतुरेका पत्ता या पानके पत्तेके रसमें कपूर मिलाकर लेप करना, नालिताकी बीज कांजीमें पीस कर सिरमें लगानेसे केशकी क्रिमि दूर होतीहै। विड़ङ्ग तैल और धुस्तुर तैल वाह्य क्रिमिकी उत्कृष्ट औषधहै।

पथ्यापथ्य।

पुराने चावलका भात, छोटी मछलीका रसा, परवर, करैला, गुल्लर आदिकी तरकारी, कांजी, बकरीका दूध; तिक्त, कषाय और कटुरसयुक्त द्रव्य और पाती या कागजी नीबूका रस इस रोगमें उपकारीहै। दोनो वक्त भात न खाकर रातको साबूदाना, बार्लि, एराकट आदि हलका भोजन करना। कारण क्रिमि रोगमें जिसमें अजीर्ण न हो उसका ख्याल विशेष रखना चाहिये।

पिष्टक आदि गुरुपाक द्रव्य, मिष्ट द्रव्य गुड़, उरद, दही, अधिक घृत, अधिक पतला पदार्थ और मांस आदि द्रव्य भोजन तथा दिवानिद्रा और मलमूत्रका वेग रोकना विशेष अनिष्टकारक है।

पाण्डु और कामला।

निदान।

अतिरिक्त व्यायाम, मैथुन, अथवा अधिक अम्ल, लवण, मद्य, लाल मिरचा, राई आदि तीक्ष्णवीर्य्य और मिट्टी आदि द्रव्य खानेसे वातादि दोषत्रय रक्तको दूषित कर पांडु रोग उत्पन्न होताहै। यह रोग प्रकाशित होनेसे पहिले त्वक फटा, मुखसे पानी गिरना, शरीर अवसन्न, मिट्टी खानेकी इच्छा, आंखके चारो तरफ शोथ, मल मूत्रका पीला होना और अपरिपाक आदि पूर्व्वरूप प्रकाशित होतेहैं। पांडु रोग पांच प्रकार। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और मृत्तिकाभक्षण जात।

वातज, पित्तज और कफज पांडु रोग।

वातज पांडु रोगमें त्वक, मूत्र, चक्षु, नख काला या अरुण वर्ण और रूखा होताहै। शारीरिक कम्प, सूची विद्धवत् पीड़ा, आनाह और भ्रम आदि लक्षण होतेहैं। पित्तज पांडु रोगमें सब देह विशेष कर मल, मूत्र, नख पीला और दाह, प्यास, ज्वर तथा थोड़ा थोड़ा मल होना आदि लक्षण होतेहैं। कफज पांडु रोगमें त्वक, मूत्र, आंख और मुख सफेद, मुख और नाकसे रक्तस्राव, शोथ, तन्द्रा, आलस्य, देहकी अत्यन्त गुरुता आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं। सन्निपातज पांडु रोगमें उक्त वातादि पाण्डु रोगके लक्षण सब मिले हुये मालूम होतेहैं। सन्निपातज पांडु रोगमें ज्वर, अरुचि, जी मचलाना, वमन, प्यास, क्लान्ति और इन्द्रिय शक्तिका नाश आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे असाध्य

जानना। यकिंचा भक्षण जात पांडु रोगमें खाई हुई मिट्टीके गुणानुसार कोई एक दोष कुपित हो वही आरम्भक होताहै। कषाय रसयुक्त मिट्टी खानेसे वायु, क्षारयुक्त मिट्टीसे पित्त और मधुर रसयुक्त मिट्टीसे कफ कुपित हो पूर्व्वोक्त लक्षण समूहोंमें अपना अपना लक्षण प्रकाश करताहै। जो खाई हुई मिट्टी खानेसे उस मिट्टीके रूक्ष गुणके कारण रसादि धातु समूह और भुक्त अन्नभी रूखा होताहै। तथा खाई हुई जो मिट्टी अजीर्ण अवस्थाहीमें रस वहादि स्रोत समूहोंको पूर्ण और रुद्धकर इन्द्रिय शक्ति, दीप्ति, वीर्य्य और ओज पदार्थका विनाशकर सहसा बल, वर्ण और अग्नि विनष्ट कर पांडु रोग उत्पादन करता है। पांडु रोगीके पेटमें क्रिमि पैदा होनेसे, आंखके चारो तरफ, गाल, भौं, पैर, नाभि, और लिङ्गमें शोथ तथा रक्त और कफमिश्रित मल होताहै।

असाध्य लक्षण।

पांडु रोग बहुत दिन तक बिना चिकित्साके रहनेसे असाध्य हो जाताहै। तथा जो पांडु रोगी शोथ-युक्त हो, सब वस्तु पीली देखताहो तो वह पांडु रोगभी असाध्य जानना, अथवा पांडु रोगीका मल कठिन, थोड़ा हरा और कफयुक्त होनेसेभी असाध्य समझना।

सांघातिक लक्षण।

पांडु रोगीका शरीर यदि किसी सफेद पदार्थसे लिपटा हुआमालूम हो और शारीरिक ग्लानि, वमन, मूर्च्छा, पिपासा आदि उपद्रव लक्षित हो तो उसको मृत्यु होतीहै। रक्त क्षयके कारण जिसका शरीर एक दम सफेद हो गया हो उसकीभी जीवनकी आशा कम है। अथवा जिस पांडु रोगीका दांत, नख, आंख पांडुवर्ण तथा सब वस्तु उसको पांडुवर्ण दिखाई दे तो उसकीभी मृत्यु निश्चय जानना। पांडु रोगी का हाथ, पैर, मुंह फूला मध्यभाग क्षीण होनेसे अथवा मध्यभाग

मूर्च्छा और हाथ पैर शोथ होनेसे उसको भी मृत्यु होती है। जिस पांडु रोगीके गुदा, लिङ्ग और अण्डकोषमें शोथ तथा मूर्च्छा ज्ञान नाश, अतिसार और ज्वर आदि उपद्रव उपस्थित होते उसको भी मृत्यु होतीहै।

कमला रोगका निदान।

पांडु रोग उत्पन्न होनेके बाद अधिक पित्तकर द्रव्य भोजन करनेसे पित्त अधिकतर कुपित हो रक्त और मांसको दूषित करताहै, इसीसे कामला रोग उत्पन्न होता है। यकृत् रोग पैदा होकरभी क्रमशः यह रोग उत्पन्न होते दिखाई देताहै। पांडु रोगके जो सब निदान कह आए हैं, वही सब निदान और अतिरिक्त दिवा निद्रा आदि कारणोंसे कामला रोग उत्पन्न होताहै। यकृतसे पित्त बाहर हो सब पाकस्थलीमें न जाकर थोड़ा अंश रक्तके साथ मिलताहै। इसी रीतिसे कामला रोग संचारित होताहै।

लक्षण।

इस रोगमें पहिले केवल दोनो आंखे पीली हो फिर त्वक, नख, मुख, मल, मूत्र प्रभृति समस्त शरीर चर्मातके मेड़कके तरह पीला होता है। किसीका मल मूत्र लाल रंगकाभी दिखाई देताहै। इस रोगमें मल सफेद, कठिन, बदनमें खुजली, जीमतलाना, इन्द्रिय शक्तिका नाश, दाह, अपरिपाक, दुर्व्वलता, अरुचि और अवसाद आदि लक्षण लक्षित होतेहैं।

सांघातिक लक्षण।

कमला रोगमें अत्यन्त शोथ, मूर्च्छा, मुख और दोनों आंखें लाल, मल मूत्र काला, पीला या लाल और दाह, अरुचि, पिपासा, आनाह; तन्द्रा, मूर्च्छा, अग्निमान्द्य और संज्ञानाश आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोगीको मृत्यु होती है।

कामला रोग बहुत दिन तक शरीरमें रहनेसे पूर्वोक्त लक्षण समूह अधिकतर प्रकाश होतो उसको कुम्भकामला कहतेहैं। यह अवस्था स्वभावत: कष्टसाध्य है। विशेषत: इसमें अरुचि, वमन वेग, ज्वर, दोषज ग्लानि, श्वास, कास, और मलभेद आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोगीके जीनेकी आशा नहीं रहती।

कुम्भकामला।

पांडु या कामला रोग उत्पन्न होनेके बाद क्रमश: शरीरका रंग हरा, श्याव और पीला होनेसे तथा साथही बल और उत्साहका ह्रास, तन्द्रा, अग्निमान्द्य, मृदु ज्वर, स्त्री सहवासमें अनिच्छा, अंग वेदना, दाह, तृष्णा, अरुचि, और भ्रम आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे उसको हलीमक रोग कहतेहैं।

हलीमक।

जिस कार्य्यसे यकृत्‌की क्रिया सम्पूर्ण रूपसे होती रहे वैसही कार्य्य करनाही इस रोगकी चिकित्साहै। हमारी "सरलभेदी वटिका" रोज रातको सोती वक्त उचित मात्रासे खानेपर दस्त साफ हो यकृत्‌की क्रिया अच्छी तरह होतीहै और पांडु कामला आदिमेंभी विशेष उपकार होताहै। पांडु रोगमें हलदीका काढ़ा या कल्कके साथ औटाया हुआ घी, अथवा आंवला, बड़ी हर्र और बहेड़ा इस तीन द्रव्यका काढ़ा या कल्कके साथ पकाया घी किम्वा वातव्याधि प्रसंगका तिन्दुक घृत सेवन कराना उचितहै। कोष्ठ बद्ध हो तो घीके साथ दस्तावर औषध मिलाकर सेवन कराना चाहिये। वातज पांडुरोगमें घी और चीनीके साथ त्रिफलाका काढ़ा पिलाना। पित्तज पांडुरोगमें २ तोला ५ मासा ४ रत्ती चीनीके साथ १० मासा ८ रत्ती निसूतका चूर्ण मिलाकर सेवन

चिकित्सा और हमारी सरलभेदी वटिका।

करना। कफज पांडुरोगमें बड़ी हर्रं गोमूत्रमें भिगोना फिर गोमूत्रमें मिलाकर सेवन करना। अथवा गोरसके साथ सोंठका चूर्ण ४ माशे और लोहभस्म १ माशा; किम्वा गोमूत्रके साथ पीपल-का चूर्ण ४ माशे और सोंठका चूर्ण ४ माशे; अथवा गोमूत्र-के साथ शोधित शिलाजीत ३ माशे; किम्वा घृतपिष्ट गुग्गुल ८ माशा सेवन करना। लौहचूर्णको ७ दिन गोमूत्रकी भावना दे फिर दूधके साथ सेवन करानेसेभी कफज पाण्डुरोगमें विशेष उपकार होताहै।

पांडुरोगमें शोथ चिकित्सा।

गुड़के साथ बड़ी हर्रं रोज खानेसे सब प्रकारका पांडुरोग आराम होताहै। लोहचूर्ण काली तिल, सोंठ, पीपल, गोलमरिच और बेरकी गूदी हरेकका चूर्ण समभाग और सब चूर्ण के समान स्वर्णमाक्षिक चूर्ण मिला सहतके साथ मोदक बनाना। यह मोदक मट्ठेके साथ सेवन करनेसे अति कठिन पाण्डुरोग भी आराम होताहै। पाण्डु-रोगीको शोथ हो तो मण्डूर सात बार आगमें गरमकर गोमूत्रमें बुताना, फिर वही शोधित मंडूर का चूर्ण घी और सहतके साथ मिलाकर अन्नके साथ सेवन करनेसे पाण्डु और शोथ आराम हो भूख बढ़तीहै।

कामला चिकित्सा।

कामला रोगमें गुरिचका पत्ता पीसकर मट्ठेके साथ पीना। गोदूधमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पीना। हलदीका चूर्ण १ तोला ८ तोले दही-के साथ सवेरे सेवन कराना। त्रिफला, गुरिच, दारुहरिद्रा, और नीमकी छालका रस सहतके साथ रोज सवेरे पीना। लौहचूर्ण, सोंठ, पीपल, गुरिच और विड़ङ्ग चूर्ण; अथवा हलदी, आंवला, बड़ी हर्रं और बहेड़ेका चूर्ण सेवन कराना। सहसपुटित या

पाँचसौ बार पुटित लौहचूर्ण सहत और घीके साथ सेवन कराना। वड़ो लौहचूर्ण हरीतकी और हलदीका चूर्ण, घी और सहतके साथ अथवा हरीतकी चूर्ण गुड़ और सहतके साथ सेवन कराना। लौहचूर्ण, आंवला, सोंठ, पीपल, गोलमरिच और हलदीका चूर्ण घी, सहत और चीनीके साथ सेवन करनेसेभी कामला रोग आराम होताहै।

कुम्भ कामला और हलीमक रोगमें पाण्डु और कामला रोगके तरह चिकित्सा करना। विशेषत: कुम्भकामलामें बहेड़ाके लकड़ीकी आंचमें मण्डुर गरम कर क्रमश: ८ बार गोमूत्रमें बुताना; फिर मंडुर चूर्ण सहतके साथ चटाना; और हलीमक रोगमें आरित लौहचूर्ण, खैरका काढ़ा और मोथेके चूर्णके साथ चटाना। कुटकी, बरियारा, जेठोमध, आंवला, बहेड़ा, हलदी और दारुहलदीका समभाग चूर्ण सहत और चीनीके साथ चाटनेसेभी हलीमक रोग आराम होताहै। फलत्रिकादि कषाय, वासादि कषाय, नवायस लोह, त्रिकत्रयाद्य लौह, धात्रीलौह, अष्टादशांग लोह पूनर्नवादि मंडुर, पञ्चानन रस और हरिद्राद्य घृत, व्योषाद्य घृत तथा पुनर्नवातेल विवेचना पूर्व्वक पाण्डु, कामला, कुम्भकामला और हलीमक रोगमें प्रयोग करना।

कुम्भकामला और हलीमक चिकित्सा।

चक्षुद्वयका पीलापन दूर करनेके लिये द्रोणपुष्पके पत्तेका रस आंखमें देना, अथवा हलदी गेरूमिट्टी और आंवलेका चूर्ण सहतके साथ मिलाकर आंखमें लगाना। कांकरोलके मूलका रस या घृतकुमारिका रस, अथवा पीत घोषाफल पानीमें घिसकर नास लेनेसेभी आंखे साफ होतीहै।

उक्त रोगोंमें जीर्ण ज्वर और यकृत् रोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। किसी प्रकारका उत्तेजक पानाहार सेवन नहीं करना।

पथ्यापथ्य ।

रक्त-पित्त ।

अग्नि और आतप आदि सेवन, व्यायाम, शोक, पथ पर्य्यटन, मैथुन और गोलमिरच आदि तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य, आहार, लवण और कटुरसयुक्त द्रव्य अधिक भोजन करनेसे पित्त कुपित हो यह रोग उत्पन्न होताहै। स्त्रियोंका रजो रोध होनेसेभी यह रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। इस रोगमें मुख, नासिका, चक्षु और कान यह ऊर्द्धमार्ग और गुदा, योनि और लिङ्ग अधोभागसे रक्तस्राव होताहै। पीड़ाकी वृद्धिमें समस्त रोमकूपसेभी रक्तस्राव दिखाई देताहै।

निदान ।

रक्तपित्त रोग उत्पन्न होनेसे पहिले शारीरिक अवसन्नता, शीतल द्रव्यपर अभिलाष, कण्ठसे धूम निकलनेकी तरह अनुभव, वमन और निश्वासमें रक्त या लोहेके गन्धकी तरह गन्ध आदि पूर्व्वरूप प्रकाश होतेहै। रोग उत्पन्न होनेपर वातादि दोषके आधिक्यानुसार पृथक पृथक लक्षण प्रकाश होताहैं। रक्तपित्तमें वायुका आधिक्य रहनेसे रक्त श्याव या अरुणवर्ण फेनिला पतला और रूखा होताहै और इसी रक्तपित्तरोगमे गुदा,योनि या लिङ्ग इन्ही सब अधोभागोंसे रक्त निकलताहै। पित्तके आधिक्यमें रक्तवटादि छालके काढ़ेकी तरह

दोषभेदसे पूर्व्व लक्षण ।

रंग, काला गोमूत्रकी तरह, चिकना कृष्णवर्ण, कालेके रंगकी तरह अथवा सोवोराञ्जनकी तरह वर्णविशिष्ट होताहै। कफके आधिक्यसे खून माढ़ा, थोड़ा पांडुवर्ण, थोड़ा चिकना और पिच्छिल होताहै तथा मुख, नाक, आंख और कान इन सब ऊर्द्ध मार्गोंसे रक्तस्राव होताहै। केवल इसी दोषका या तीनो दोषका आधिक्य रहनेसे, उसी दो दोष या तीन दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होतेहैं। द्विदोषज रक्तपित्तमें वात कफके रक्तपित्तसे ऊर्द्ध और अधः उभय मार्गोंसे रक्त निकलताहै।

साध्यासाध्य।

उक्त रक्तपित्तमें जो रक्तपित्त ऊर्द्ध मार्गगत अर्थात् मुख, नासिका आदिसे रक्त निकलताहैं या वेग कम, उपद्रव शून्य, तथा हेमन्त और शीतकालमें प्रकाशित हो उसको साध्य जानना। जो रक्तपित्त अधो मार्गगत अर्थात् गुदा, योनि, और लिंगसे रक्तस्राव तथा दो दोषसे उत्पन्न होताहै, वह याप्य। और जिस रक्तपित्तमें ऊर्द्ध और अधो दोनो मार्गसे रक्तस्राव होताहै अथवा तीनो दोषका रक्तपित्त असाध्य। रोगी वृद्ध, मन्दाग्नि, आहार-शक्तिहीन या अन्यान्य व्याधियुक्त होनेसेभी रक्तपित्त असाध्य जानना।

उपसर्ग।

दुर्व्वलता, श्वास, कास, ज्वर वमन, मत्तता, पांडुता, दाह, मूर्च्छा, खाया हुआ पदार्थका अम्लपाक, सर्व्वदा अधैर्य्य, हृदय वेदना, प्यास, मल भेद, मस्तकमें दाह शरीरसे सड़ी दुर्गन्ध आना, आहारमे अनिच्छा, अजीर्ण और रक्तमें सड़ी बदबू, रक्तका रंग मांसधोये पानीकी तरह, या कर्द्दमवत्, मेद, पीप, यकृत् खंड, पक्का जामुनकी तरह काला किम्बा इन्द्रधनुकी तरह नाना रंग होना, यही रक्तपित्तका उपसर्गहै। इन सब उपसर्गयुक्त रक्तपित्तसे रोगीको

मृत्यु होतीहै। जिस रक्तपित्तमें रोगीकी आंखें लाल और जो रोगी अपने उद्गारमें लाल देखताहै अथवा सब पदार्थ लाल दिखाई देताहै, किम्बा अधिक परिमाण रक्त वमन होतो उसकी मृत्यु निश्चय जानना।

रोगी बलवान हो तो रक्तस्राव बंद करना उचित नहीहै। कारण वही दुषित रक्त देहमे रह ही रहनेसे पांडुरोग, हृद्रोग, ग्रहणी, प्लीहा, गुल्म और ज्वर आदि नाना प्रकारकी पीड़ा उत्पन्न होनेकी सम्भावनाहै। किन्तु दुर्ब्बल रोगी, अथवा अतिरिक्त रक्तस्रावसे जिसके अनिष्टकी आशंकाहै, उसका रक्त बंद करनाही उचितहै।

अवस्था भेदसे चिकित्सा।

दूबका रस, अनारके फूलका रस, गोबर या घोड़ेकी लीदका रस, चीनी मिलाकर पीनेसे रक्तस्राव बन्द होताहै। अडूसेके पत्तेका रस, गुल्लरके फलका रस और लाह भिंगोया पानी पीनेसेभी रक्तस्राव बंद होताहै। एक आनाभर फिटकिरीका चूर्ण दूधमें मिला कर पीनेसे रक्तस्राव तुरंत बंद होताहै। रक्तातिसार और रक्तार्श निवारक अन्यान्य योग समूहभी इस रोगमें विचार कर प्रयोग कर सकतेहैं। नाकसे रक्तस्राव हो तो, आंवला घीमे भूंजकर कांजीसे पीस मस्तक पर लेप करना। चीनी मिला दूधका नास अथवा दूर्व्वाका रस, अनारके फूलका रस, पियाजका रस, गोबर या घोड़ेकी लीदका रस, महावरका पानी या हरीतकी भिगोया पानीका नास लेना। कानसे रक्तस्राव हो तो यही सब औषध प्रयोग करना। मूत्र मार्गसे रक्तस्राव हो तो काश, शर, कासा जड़ और कांडेकी जड़ सब मिलाकर २ तोले, बकरीका दूध १६ तोले १ सेर पानीके साथ औटाना, दूध शेष रहने पर नीचे उतार कर पीना। शतमूली और गोखुरके जड़के साथ अथवा शरिवन,

पिठवन, सुपानि, और माषानिके साथ दूध पाककर पिलाना। योनिसे रसस्राव हो तो यही सब औषध और प्रदर रोगोक्त अन्यान्य औषधभी विचार कर देना। लाल चन्दन, बेलकी गूदी, अतीस, कुरैयाकी छाल और बबूलका गोंद सब २ तोला बकरीका दूध १६ तोले, एक सेर पानीमे औटाना दूध बाकी रहने पर उतार छानकर पीनेसे गुदा, योनि और लिंगसे रक्तस्राव जलदी आराम होताहै। किसमिस, लाल चन्दन, लोध और प्रियंगु, सबका चूर्ण अडूसेके पत्तेका रस और सहतके साथ पीनेसे मुख नासिका गुदा, योनि और लिंगसे निकलता हुआ खून तुरन्त बंद होताहै। रक्तकी गांठ गिरनेसे कबूतरका बीट अति अल्प मात्रासे सहतके साथ चाटना। इसके सिवाय धान्यकादि हिम, ह्रीवेरादि क्वाथ, अटरुषकादि क्वाथ, एलादि गुड़िका, कुष्माण्ड खंड, वासाकुष्मांड, खण्डकाद्य लौह, रक्तपित्तान्तक लौह, वासाघृत, सप्तप्रस्थ घृत और ह्रीवेराद्य तैल विवेचना पूर्व्वक प्रयोग करना।

रक्तपित्तज ज्वर चिकित्सा।

रक्तपित्तमें ज्वर रहनेसे लाल त्रिवृत, काली त्रिवृत, आंवला, बड़ी हर्र, बहेड़ा और पीपलका चूर्ण प्रत्येकके समभागका दूनो चीनी और सहत मिला मोदक बनाना, इस मोदकमे रक्तपित्त और ज्वर दोनोकी शान्ति होतीहै। इसके सिवाय रक्तपित्त नाशक और ज्वर नाशक यह दोनो औषध मिलित भावसे इस अवस्थामें प्रयोग करना। श्वास, कास, स्वरभंग आदि अन्यान्य उपद्रव उपस्थित होनेसे राजयक्ष्माकी तरह चिकित्सा करना। अडूसेके पत्तेके रसमे तालीश पत्रका चूर्ण और सहत मिलाकर पीनेसे श्वास कास और स्वरभंगमें उपकार होताहै।

जबतक रक्तपित्तमें रोगीका बल, मांस और अग्निबल क्षीण न

होनेसे पहिले उपवास देना उचित है।

पथ्यापथ्य।

किम्वा बलादि क्षीण होनेसे लंघन आहारादि देना चाहिये। घी मइत और धानके लावाका खाद्य बनाकर खानेको देना। अथवा पिण्ड खजूर, किसमिस, जेठीमध और फालसा इसका काढ़ा ठंढाकर चिनी मिलाकर पिलाना। अधोगत रक्तपित्तमें लंघनकर पेयादि पोनेको देना। शरिवन, पिठवन, वृहती, कंटकारी, और गोक्षुर यह स्वल्प पंचमूलके काढ़ेके साथ पेया बनाकर पोनेसे रक्तपित्तमें विशेष उपकार होताहै। अतिरिक्त रक्तस्राव बंद होनेसे और अन्नादि पचानेको ताकत होनेपर दिनको पुराने चावलका भात, मूंग, मसूर और चनेकी दालका जूस, परवल, गुल्लर, पक्का कोहड़ा, और करैलेकी तरकारी, छाग, हरिण, खरगोश, कबूतर, बटेर और बकुलेके मांसका रस, बकरीका दूध, खजूर, अनार, सिंघाड़ा, किसमिस, आंवला, मिसरी नारियल, तिल तैल या घृत पक्क वस्तु इस रोगमें आहार कराना। रातको गेंहूं या जौके आटेकी रोटी या पूरी और पूर्व्वोक्त तरकारी। सूजी, चनेका बेसन, घी और कम मोठेका बनाया पदार्थ खानेको देना। गरम पानी ठंढाकर पिलाना।

निषिद्ध कार्य्य।

गुरुपाक तीक्ष्णवीर्य्य, और रूक्ष द्रव्य समूह, दही, मछली, अधिक सारक द्रव्य, सरसोंका तैल, लालमिरचा, अधिक नमक, सेम, आलू, शाक, खट्टा, उरदकी दाल, और पान आदि द्रव्य भोजन; मल मूत्रका वेग धारण, दतुवनसे मुंह धोना, व्यायाम, पथ पर्य्यटन, धूमपान, धूलि और धूपमें बैठना, ओस लगाना, रातका जागना, स्नान, संगीत या जोरसे बोलना, मैथुन, अश्वादि सवारीमें चढ़ना आदि इस रोगमें विशेष अनिष्टकारक है। स्नान न करनेसे विशेष कष्ट

हो तो गरम पानी शीतल कर किसी किसी दिन स्नान करना उचितहै ।

राजयक्ष्मा और क्षतक्षीण ।

निदान । मल मूत्रादिका वेग धारण, अतिरिक्त उपवास, अति मैथुन आदि धातुक्षय कारक कार्योंसे तथा बलवान मनुष्यसे कुश्ती लड़ना और किसी दिन कम किसी दिन अधिक या अनिर्दिष्ट समयमें भोजन करना आदि कारणोंसे राजयक्ष्मा रोग उत्पन्न होताहै । रक्तपित्त पीड़ा बहुत दिन तक बिना चिकित्साके रहनेसेभी क्रमशः वह राजयक्ष्मा रोगमें परिणत होते दिखाई देताहै । वायु, पित्त, कफ, यह तीन दोष जब कुपित हो रसवाही शिराओंको रुद्ध करताहै, तब उससे क्रमशः रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र क्षीण होताहै । कारण रसही सब धातुओंका सृष्टिकर्त्ताहै । उसी रसकी गति रुद्ध होनेसे किसी धातुका पोषण नहीं हो सकता । अथवा अतिरिक्त मैथुनसे शुक्र क्षय होनेपर उसकी क्षीणता पूर्ण करनेके लियेभी अन्यान्य धातु क्रमशः क्षयको प्राप्त होताहै । इसीको क्षयरोग या राजयक्ष्मा कहतेहैं ।

पूर्वलक्षण । यह रोग उत्पन्न होनेके पहिले, श्वास, अंगमें दर्द, कफ निष्ठीवन, तालुशोष, कै, अग्निमान्द्य, मत्तता, पीनस, कास, निद्राधिक्य, आखोंका सफेद होना, मांस भक्षण और मैथुनकी इच्छा, आदि पूर्व्वरूप प्रकाशित होतेहैं, तथा इस रोगमें रोगी यही स्वप्न देखताहै कि मानो पक्षी, पतंग और श्वापद जन्तु उसको आक्रमण कर रहेहैं ; केश,

भस्म और रुखो, (अग्नि) स्तूपके ऊपर वह खड़ाहै, जलाशय सूख गयाहै, पर्व्वत टूट पड़ाहै और आकाशके तारे सब गिर रहेहैं।

रोग प्रकाशित होनेपर प्रतिश्याय, कास, स्वरभेद, अरुचि, पार्श्वद्वयका संकोच और दर्द, रक्त वमन, और मलभेद यही सब लक्षण लक्षित होतेहै। इसमे स्वरभंग, कंधा और दोनो पसुलियोंका संकोच या दर्द वाताधिक्यसे होताहै। ज्वर, सन्ताप, अतिसार और निष्ठीवन पित्ताधिक्यसे और शिरो वेदना, अरुचि, कास, प्रतिश्याय और अंगमर्द्द कफाधिक्यका लक्षण है। जिसको जिस दोषका आधिक्य रहताहै, उसको उन्ही सब लक्षणोंमें उसी दोषका लक्षण अधिक प्रकाशित होताहै।

पूर्व्वरूप।

क्षय यक्ष्मारोग साधारणतः दुःसाध्यहै, रोगीका बल और मांसक्षीण न होनेसे, उक्त प्रतिश्याय आदि एकादश रूप प्रकाशित होनेके बादभी आरोग्य होनेकी आशा कर सकतेहै, पर यदि बल मांस क्षीण हो जाय और उक्त एकादशरूप प्रकाशित न हो, कास, अतिसार, पार्श्ववेदना, स्वरभंग, अरुचि और ज्वर यह छ लक्षण दिखाई दें अथवा श्वास, कास, और रक्त निष्ठीवन यही तीन दोष प्रकाशित होयतो रोग असाध्य जानना।

साध्य सा॰, निर्णय।

यक्ष्मा रोगी प्रचुर आहार करने परभी क्षीण होवे अथवा अतिसार उपद्रवयुक्त हो किम्बा यदि अंडकोष और पेटमें शोथ हो तो उसकोभी असाध्य समझना। दोनो आंखे सफेद, अन्नमें द्वेष, ऊर्द्ध श्वास, कष्टके साथ शुक्र जाना इसमें कोई एक उपद्रव यक्ष्मा रोगमें उपस्थित होनेसे मृत्यु लक्षण जानना।

सांघातिक लक्षण।

उरःक्षत निदान।

गुरुभार वहन, बलवानसे कुश्ती लड़ना, ऊंचे स्थानसे गिरना; गौ, अश्वादि जन्तु दौड़ते वक्त उसके गतिको जोरसे रोकना, पत्थर आदि पदार्थ जोरसे दूर फेकना, तेजीसे बहुत दूर तक चलना, ऊंची आवाजसे पढ़ना, अधिक तैरना और कूदना आदि कठोर कार्य्योंसे और अतिरिक्त स्त्री सहवाससेभी छातीमें घाव होताहै। उक्त कार्य्योंके साथ सर्व्वदा अधिक और कम आहार करनेवालेकोभी छातीमें घाव होनेकी अधिक सम्भावनाहै। इन्ही सब कारणोंसे छातीमें घाव होनेसे उसको उरःक्षत रोग कहतेहैं। इस रोगमें वक्षस्थल विदीर्ण या टूटकर गिर पड़नेकी तरह मालूम होताहै तथा दोनो पसुलियोंमें दर्द, अंगशोष और कम्प होताहै। फिर क्रमशः बल, वीर्य्य, वर्ण, रुचि, अग्निहीनता, ज्वर, कष्ट, मन उदास, मलभेद, खांसीके साथ सड़ी दुर्गन्ध, श्याव या पीला, गठीला और रक्तमिला कफ सर्व्वदा बहुत निकलता रहताहै। अतिरिक्त कफ और रक्त वमनसेभी क्रमशः शुक्र और ओज क्षीण हो रक्तस्राव और पार्श्व, पृष्ठ कमरमे दर्द होताहै। उरःक्षत रोगभी राजयक्ष्माका अन्तमूलहै। जबतक इसके सब लक्षण प्रकाशित न हो तथा रोगीका बल, वर्ण सम्यक वर्त्तमान रहे और रोग पुराना न हो तभीतक यह रोग साध्यहै। एक वर्षका पुराना रोग याप्य, और समस्त रूप प्रकाश होनेसे रोग असाध्य होताहै।

क्षीणरोग लक्षण।

यही उरःक्षत रोग और अतिरिक्त मैथुन, शोक, व्यायाम और पैदल चलना आदि कारणोंसे शुक्र, ओज, और बल वर्णादि क्षीण होनेसे उसको क्षीणरोग कहतेहैं। राजयक्ष्माके साथ इसकी चिकित्सामें कोई प्रभेद नहीहै इससे एक साथही सन्निवेशित किया गया है।

चिकित्सा।

राजयक्ष्माकी चिकित्सा करना अत्यन्त कठिनहै। मल और मलका इस रोगमें सर्व्वदा रक्षा करना चाहिये। इसीसे विरेचनादि इस रोगमें न करानाही उचितहै। पर मल एक दम बद्ध होनेसे मृदु विरेचन देना। छाग मांस भक्षण, छाग दूध पान, चीनीके साथ छाग घृत पान, छाग और हरिण दोगमें लेना और बिछौनेके पास छाग या हरिण रखना यक्ष्मा रोगीके हकमें विशेष उपकारीहै। रोगी दुर्ब्बल होनेसे चीनी और सहतके साथ मक्खन खानेको देना। मस्तक, पार्श्व या कंधेमें दर्द हो तो सुलफा, जेठीमध, कुड़, तगर-पादुका और सफेद चन्दन एकत्र पीसकर घी मिला गरम कर लेप करनेसे दर्द शान्त होताहै। अथवा बरियारा, रास्ना, तिल, जेठीमध, नीलकमल और घृत, अथवा गुग्गुलु, देवदारु, सफेद चन्दन, नागकेशर और घृत किम्वा क्षीरकाकोली, बरियारा, बिदारी-कन्द एलवालुका और पुनर्नवा यह पांच द्रव्य किम्वा शतमूली, क्षीरकाकोली, गन्धतृण, जेठीमध और घृत यह सब द्रव्य पीसकर गरम लेप करनेसे मस्तक पार्श्व और कंधेको दर्द आराम होताहै। रक्त वमनके लिये महावरका पानी २ तोले आधा तोला सहतके साथ या कुकुरसोंकेका रस २ तोले पिलाना। रक्तपित्तमें जो सब योग और औषध रक्त वमन निवारणके लिये कह आएहै, उसमें जो सब क्रिया ज्वरादिका अविरोधीहै वहभी प्रयोग कर सकतेहैं। पार्श्वशूल, ज्वर श्वास और पीनस आदि उपद्रवमें धनिया, पीपल, सोंठ, सरिवन, कंटकारी, हडती, गोखुर, बेलकी छाल, श्योनाक छाल, माष्कारी, पाटला छाल, और गनि-यारीकी छाल; इन सब द्रव्यका काढा पिलाना। ज्वर, कास, स्वरभंग और रक्तपित्त आदि रोग समूहोंको औषधें लक्षणानुसार

विचार कर इस रोगमें मिलित भावसे प्रयोग कर सकतेहैं। इसके सिवाय लवङ्गादि चूर्ण, सितोपलादि लेह, वृहद्वासावलेह, च्यवन-प्राश, द्राक्षारिष्ट, वृहत् चन्द्रामृत रस, जयकेसरी, मृगाङ्क रस, महा मृगांक रस, हेमगर्भपोट्टली रस, राजमृगांक रस, कांचनाभ्र, वृहत् कांचनाभ्र, रसेन्दु और वृहत रसेन्दु गुड़िका, रत्नगर्भ पोट्टली रस, सर्व्वाङ्गसुन्दर रस, पञ्चपंचक घृत, वलागर्भ घृत, जीवन्त्याद्य घृत और महाचन्दनादि तैल, तथा यक्ष्मा रोगको प्रशस्त औषध हमारा "वासकारिष्ट" सेवन करानेसे कास, श्वास और छातीको दर्द आदि उपद्रव जलदी आराम होताहै। रक्त वमन हो तो कस्तुरी संयुक्त कोई औषध प्रयोग करना उचित नहीहै। ज्वर हो तो घृत और तैल प्रयोग नही करना।

उर:क्षत रोगमे यही सब औषध विचार कर प्रयोग करना। क्षीण रोगमें जिस धातुको क्षीणता अनुभवहो, उसी धातुका पुष्टि-कारक पान भोजन और औषध व्यवहार करना चाहिये। अमृत-प्राश और श्वदंष्ट्रादि घृत आदि पुष्टिकारक औषध क्षीण रोगमें प्रयोग करना।

पथ्यापथ्य।

रोगीका अग्निवल क्षीण न हो तो दिनको पुराने चावलका भात, मूंगको दाल, छाग, हरिण, कबूतर और मांसभोजी जीवका मांस, परवर, बैंगन, गुल्लर, सैजनका डंटा, पुराना सफेद कोहड़ा आदिको तरकारी खानेको देना। तरकारी आदि घृत और सेंधा नमकमे पाक करना चाहिये। रातको जौ या गोहूंके आटेकी रोटी, मोहनभोग, और उपरकही तरकारी, छाग दूध अथवा थोड़ा गोदूध देना। कफके प्रकोपमें दिनको भात न दे रोटी खानेको देना। अग्निवल क्षीण होनेसे दिनको भात या रोटी और रातको थोड़ा दूध मिला

साबु, एरारूट और बार्लि आदि खानेको देना। यहभी अच्छी तरह जोर्ण न होनेसे दोनो वक्त साबु आदि हलका पथ्य देना। इस अवस्थामें जौ दो तोले, कुलथी २ तोले छाग मांस ८ तोला, पानी ९६ तोले एकमें औटाना २४ तोले रहते उतार कर छान लेना। फिर २ तोले गरम घीसे उस काढ़ेको छौंक कर थोड़ा हींग, पोपलका चूर्ण, और सोंठका चूर्ण मिलाकर थोड़ी देर औटाना पाक शेषमें अनारका रस थोड़ा मिलाकर पिलाना। यह जूस यक्ष्मा रोगमें विशेष हितजनक और पुष्टिकारकहै। गरम पानी ठंढा कर पिलाना। इस रोगमें शरीर सर्व्वदा कपड़ेसे ढका रखना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म। ओसमें बैठना, आग तापना, रातको जागना, संगोत, चिल्लाकर बोलना, घोड़ा आदि सवारो पर चढ़ना, मैथुन, मलमूत्रका वेग रोकना, कसरत, पैदल चलना, श्रमजनक कार्य्य करना, धूमपान, स्नान और मछली, दही, लाल मिरचा, अधिक लवण, सेम, मूलो, आलू, उरद, शाक, अधिक हींग, पियाज, लहसन, आदि द्रव्य भोजन इस रोगमें अनिष्ट कारकहै। शुक्र क्षयसे हुई पोड़ामें विशेष सावधान रहना चाहिये। जिस काममें मनमें कामवेग उपस्थित होनेको सम्भावनाहै, उससे हर वक्त अलग रहना।

कासरोग।

निदान और लक्षण। मुख या नाकसे धूम या धूलि प्रवेश, वायुसे अपक्व रसको ऊर्द्ध गति, अति द्रुत भोजन करना आदिसे श्वास नलोमें भुक्त द्रव्यका प्रवेश; मल, मूत्र

और छींकका वेग रोकना आदि कारणोंसे वायु कुपित हो, पित्त कफको कुपित करनेसे कास रोग उत्पन्न होताहै। कांसेके बरतनमें चोट लगनेसे जैसी आवाज होतीहै मुखसे वैसही शब्द निकलना कास रोगका साधारण लक्षणहै। कासरोग उत्पन्न होनेके पहिले मुख और कंठनाली जौ आदिके छिकलेसे भरी मालूम होतीहै, गलेके भीतर खुजलाहट और कोई पदार्थ निगलती वक्त कंठमें दर्द मालूम होताहै। कासरोग पांच प्रकार। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, उरःक्षतज और क्षयजात।

वातज कासमें हृदय, ललाट, पार्श्वद्वय, उदर और मस्तकमें शूलवत् वेदना, मुख सूखना, बलक्षय, सर्व्वदा कास वेग, स्वरभंग, और कफादि शून्य शुष्क कास, यही सब लक्षण लक्षित होतेहै।

वात, पित्त और कफज काम लक्षण।

पित्तज कासमें छातीमें दाह, ज्वर मुख शोष, मुखका स्वाद कड़ुवा होना, पिपासा पीतवर्ण और कटुस्वादयुक्त वमन, देहकी पाण्डुवर्णता, और कासके वक्त कंठमें दाह, यह सब लक्षण प्रकाशित होतेहै। कफज कासमें रोगीका मुख कफसे लिपटा, देह अवसन्न, शिरोवेदना, सर्व्व शरीरमें कफ पूर्णता, आहारमें अनिच्छा, देहका भारीपन, कण्डु, निरन्तर कास वेग और कासके साथ गाढ़ा कफ निकलना, यही सब लक्षण दिखाई देताहै।

उरःक्षत रोगमें जो सब कारण लिख आएहै, क्षतज कासभी उन्ही सब कारणोंसे उत्पन्न होताहै। इसमें पहिले कफहीन शुष्क कास होतीहै, फिर कास वेगसे क्षतस्थान विदीर्ण हो खून आना, कंठमें अत्यन्त दर्द, छाती तोड़नेकी तरह दर्द, तो सूची विद्धवत् कष्ट और असह्य क्लेश; पार्श्वद्वय भङ्गवत् शूल वेदना,

क्षयज कास निदान और लक्षण।

सन्धिस्थान समूहोंमें दर्द, ज्वर। श्वास, तृष्णा, स्वरभङ्ग, और खांसनेके समय कबूतरके शब्दकी तरह कंठस्वर होना आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं।

क्षयज कास निदान और लक्षण।

अपथ्य भोजन, विषम अर्थात् किसी दिन कम, किसी दिन अधिक अथवा अनिर्दिष्ट समयमें भोजन, अति मैथुन, मल मूत्रादिका वेग धारण और आहारके अभावसे अपनेको धिक्कार देना वा तज्जन्य शोकाभिभूत होना आदि कारणोंसे पाचकाग्नि दूषित होनेसे वातादि दोषत्रय कुपित हो क्षयज कास उत्पन्न होताहै। इससे वदनमें दर्द, दाह, मूर्च्छा, क्रमशः देहकी शुष्कता, दुर्बलता, बलक्षीण, मांसक्षीण और खांसीके साथ पीप रक्तका निकलना आदि लक्षण दिखाई देताहै।

प्रतिश्यायज कास।

इन सब कारणोंके सिवाय प्रतिश्याय अर्थात् "सर्दी"सेभी अकसर कास रोग उत्पन्न होते देखा गयाहै। नासारोगाधिकारमें प्रतिश्यायके लक्षण और चिकित्सा लिखेंगे। तथापि यहां इतना अवश्य कहना चाहिये कि सामान्य सर्दी खांसीकोभी उपेक्षा न कर उसकी चिकित्सा करना अवश्य उचितहै।

कास रोगका साध्यासाध्यता।

क्षतज और क्षयज कास स्वभावतःही असाध्यहै। पर रोगीका बल, मांस क्षीण न होनेसे तथा रोग थोड़े दिनका हो तो आराम होनेकी आशा रखतीहै। बुढ़ापेमें जो कास उत्पन्न होताहै वहभी असाध्यहै; पर औषधादि व्यवहारसे याप्य होजाताहै। दूसरा कोई कास साध्य नहीहै; सुतरां रोग उत्पन्न होतेही चिकित्सामें मनोयोगी होना चाहिये।

वातज कासमें बेलकी छाल, श्योनाककी छाल, गम्भीर छाल, पाटला छाल और गनियारीकी छाल, इन सब द्रव्योंका काढ़ा पीपलका चूर्ण मिला पिलाना । शठी, काकड़ाशिंगी, पीपल, बमनेठी, मोथा, जवासा, और पुराना गुड़, किम्बा बमनेठी, शटी, काकड़ाशिंगी, पीपल, शोंठ और पुराना गुड़, यह तीन प्रकारके योगोंमेंसे कोई एक योग तिलके तेलमें मिलाकर चाटनेसे वातज कास आराम होताहै । पित्तज कासमें वृहती, कंटकारी, किसमिस, अडूसा, कपूर, वाला, शोंठ और पीपल इन सबका काढ़ा चीनी और सहत मिलाकर पिलाना । वृहती, वाला, कंटकारी, अडूसा और द्राक्षा ; इन सबके काढ़ेमें सहत और चीनी मिलाकर पीनेसेभी पित्तज कास उपशम होताहै । पद्मबीजका चूर्ण सहतके साथ चाटनेसे पित्तज कास शान्त होताहै । कफज कासमें पीपल, पीपला मूल और चाभ, चितामूल और शोंठ, इनका काढ़ा दूधमें औटाकर पिलाना । इससे कास, श्वास, और ज्वरका उपशम हो बल और अग्निकी वृद्धि होती है । कुड़, कटफल, बमनेठी, शोंठ और पीपल इन सब द्रव्योंका काढ़ा पीनेसे कफज कास, श्वास और हृद्रोग आराम होता है । सहत और आदीका रस पीनेसेभी कास श्वास और सर्दी खांसी आराम होताहै । दशमूलके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसेभी कफज कास, श्वास, ज्वर और पार्श्ववेदना दूर होताहै । क्षतज कासमें, इक्षु, इक्षुवालिका, पद्मकाष्ठ, मृणाल, नीलकमल, सफेद चन्दन, जेठीमध, द्राक्षा, लाक्षा, काकड़ाशिंगी और शतमूली सबका समभाग लेना फिर कोई एक वस्तुका दूना वजन वंशलोचन और सर्व्व समष्टिकी चौगुनी चीनी । यह सब द्रव्य एकमें मिला घी और सहतमें मिला चाटना । क्षयज कासमें

चिकित्सा ।

अर्जुन वृक्षके छालका चूर्ण अडूसेके रसको ७ बार भावना दे सहत, घी और मिश्रीके साथ चाटनेसे अवश्य कास और रक्तस्राव आराम होताहै।

पीपलका चूर्णके साथ कंटकारीका काढ़ा पीनेसे अथवा कंटकारीका चूर्ण और पीपलका चूर्ण समभाग सहतमें मिलाकर चाटनेसे सबप्रकारका कास आराम होताहै। बहेड़ामें घी लगाकर गोबरसे लपेट पूट पाकमें सिझाना फिर वही बहेड़ा मुखमें रखनेसे कास रोग आराम होता है। अडूसेका पत्ता पुट दग्धकर अर्थात् अडूसेके पत्तेको केलेके पत्तेसे लपेटना फिर कपड़मिट्टीकर सिझाना इस पत्तेका रस, पीपल का चूर्ण और सहतके साथ पिलाना। अथवा वासकके छालका काढ़ा पीपलका चूर्ण और सहत मिलाकर पिलाना। यह दोनो दवा कास निवारकहै। जेठीमधका काढ़ा सामान्य खांसीमें विशेष उपकारीहै। कटफलादि काढ़ा मरिच्यादि चूर्ण, समशर्कर चूर्ण, वासावलेह, तालीशाद्य मोदक, चन्द्रामृत रस, कासकुठार रस, वृहत् रसेन्द्रगुड़िका, शृङ्गाराभ्र, वृहत् शृंगाराभ्र; सार्व्वभौम रस, कासलक्ष्मीविलास, समशर्कर लौह, वसन्ततिलक रस, वृहत् कंटकारी घृत, दशमूल षटपलक घृत, चन्दनाद्य तैल, वृहत् चन्दनाद्य तैल कास रोगमें प्रशस्त औषध है। अवस्थानुसार उक्त औषध देनेसे अति सुन्दर फल मिलताहै। हमारा "वासकारिष्ट" सेवन करनेसे दुरारोग्य खांसी थोड़ेही दिनमें आरामहोतीहै।

शास्त्रीय औषध।

पथ्यापथ्य—रक्तपित्त राजयक्ष्मा रोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है, कास रोगमेंभी वही सब पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। पर इस रोगकी प्रथम अवस्थामें कोई, मागुर आदि छोटी मछलीका शुरुवा, मिसरी, आदी और काकमाचीको शाक खानेको देना।

हिक्का और श्वास निदान।

हिक्का और श्वास निदान।

खाया हुआ पदार्थ उपयुक्त समयमें हजम न होकर पेटमें स्तब्ध होकर रहे, अथवा जो सब द्रव्य भोजन करनेसे छाती और कंठमें जलन पैदा हो वही सब द्रव्य भोजन, गुरुपाक, रुक्ष, कफजनक, और शीतल द्रव्य भोजन, शीतल स्थानमें वास, नासिका आदि रास्तेसे धूम और धूलि प्रवेश, धूप और ओसमें फिरना, छातीमें चोट लगे ऐसी कसरत, अधिक बोझा उठाना, बहुत दूर तक पैदल चलना, मल मूत्रका वेग रोकना, अनशन (उपवास) और रुक्षकारक कार्य्यादिसे हिक्का और श्वास रोग उत्पन्न होताहै।

लक्षण और प्रकार भेद।

हिक्का रोगका साधारण लक्षण, प्राण और उदान वायु कुपित हो बार बार ऊपरकी तरफ जाताहै और इसीसे हिक् हिक् शब्दके साथ वायु निकलता रहताहै। यह रोग प्रकाश होनेसे पहिले कंठ और छातीमें भारबोध, मुखका स्वाद कसैला, और पेटमें गुड़ गुड़ शब्द होना आदि लक्षण मालूम होतेहैं। हिक्का रोग पांच प्रकार,—अन्नज, यमल, क्षुद्र, गम्भीर और महा हिक्का। अपरिमित पान भोजनसे सहसा वायु कुपित और ऊर्द्धगामी होनेसे जो हिक्का उत्पन्न होतीहै, उसका नाम अन्नज हिक्काहै। जो हिक्का मस्तक और गरदन कंपाते हुए दो दो बार निकलतीहै, उसका नाम यमल। कंठ और छातीकी सन्धिस्थानसे उत्पन्न हो जो हिक्का मन्दवेग और देरसे निकले उसका नाम क्षुद्र। जो हिक्का नाभिस्थलसे उत्पन्न हो

गम्भीर स्वरसे निकले और तृष्णा, ज्वर आदि नाना प्रकार उपद्रव उपस्थित हो तो, उसको गम्भीर हिक्का कहतेहैं। तथा जो हिक्का निरन्तर आती रहै, तथा आती वक्त सब शरीरमें कम्प हो और जिससे वस्ति, हृदय तथा मस्तक आदि प्रधान मर्म्मस्थान समूहोंका विदीर्ण होना मालूम हो उसको महाहिक्का कहतेहैं।

गम्भीर और महाहिक्का उपस्थित होनेसे रोगीको मृत्यु निश्चय जानना। असाध्य हिक्कामें जिसका सब शरीर विस्तृत या आकुञ्चित और दृष्टि ऊर्द्धगत हो; अथवा जिस हिक्कासे रोगी क्षीण और अत्यन्त हिक्का आती हो तो मृत्यु होतीहै, जिस व्यक्तिके वातादि दोष अत्यन्त संचित हो, किम्वा वृद्ध या अतिशय मैथुनासक्त; मनुष्यको कोई एक हिक्का उपस्थित होनेसे वह प्राणका नाश करतीहै। यमल हिक्काके साथ प्रदाह, दाह, तृष्णा और मूर्च्छा आदि उपद्रव रहनेसे वहभी घातकहैं। किन्तु यदि रोगीका बल क्षीण न होकर मन प्रसन्न रहे, धातु समूह स्थिर और इन्द्रियोंमें शक्ति भरपूर हो तो इस अवस्थामेंभी आराम होनेकी आशा कर सकतेहैं।

प्राणनाशक हिक्का।

दूर्व्वोक्त कारणोंसे कुपित वायु और कफ मिलकर जब प्राण और उदान वायुवाही स्रोत समूहोंको बंद करताहै और कफ कर्त्तृक वायु अवरुद्ध और विमार्गगामी हो इधर उधर फिरताहै, तब श्वासरोग उत्पन्न होताहै। श्वासरोग प्रकाशित होनेके पहिले छातीमें दर्द, पेट फूलना, शूल, मल मूत्र थोड़ा निकलना या रोध, मुख विस्वाद होना, और मस्तक या ललाटमें दर्द आदि पूर्व्वरूप दिखाई देताहै। श्वास रोग पांच प्रकार, क्षुद्र श्वास, तमक श्वास, छिन्न श्वास, ऊर्द्धश्वास और महाश्वास।

श्वासरोगका पूर्व्वलक्षण।

रुचद्रव्य सेवन और अधिक परिश्रमसे कोष्ठस्थित वायु कुपित हो ऊर्ध्वगत होनेसे क्षुद्र श्वास उत्पन्न होताहै। यह अन्यान्य श्वासकी तरह कष्टदायक या प्राण नाशक नहीहै।

क्षुद्रश्वास।

जब वायु ऊर्ध्वगत होकर स्रोतोंमें जाकर कफको बढ़ाताहै तथा उसी कफकी गति रुद्ध होनेसे तमक श्वास उत्पन्न होता है। इस श्वासके पहिले ग्रीवा और मस्तकमें दर्द होताहै; फिर कंठसे घर घर शब्द निकलना, चारो तरफ अंधियारा देखना, तृष्णा, आलस्य, खांसते खांसते मूर्च्छा, कफ निकलनेसे थोड़ा आराम मालूम होना, गलेमें सुरसुराहट, कष्टसे बोलना, नींद न आना, सोनेसे अधिक श्वास आना बैठनेसे थोड़ा आराम बोध, दोनों पसुलियोंमें दर्द, उष्णद्रव्य और उष्ण अर्थकी इच्छा, दोनो आंखोंमें शोथ, ललाटमें पसीना, अत्यन्त कष्ट, मुह रूखा, बार बार तीव्र वेगसे दम फूलना और शरीर हिलना, यह सब लक्षण प्रकाशित होतेहैं। इस श्वासके साथ ज्वर और मूर्च्छा रहनेसे उसको प्रमतक श्वास कहतेहैं। प्रमतक श्वासको कोई कोई सन्तमक श्वासभी कहतेहैं।

तमक और प्रमतक श्वास लक्षण।

अति कष्ट और अत्यन्त जोरसे विच्छिन्न भाव अर्थात् ठहर ठहरकर दम फूलना अथवा जिस श्वासमें एक दम निश्वास बंद हो जातीहै उसको छिन्न श्वास कहतेहै। इस श्वासमें अत्यन्त कष्ट, हृदय विदीर्ण होनेकी तरह दर्द, आनाह, पसीना आना, मूर्च्छा, वस्तिमें दाह, नेत्रद्वयकी चंचलता और पानी आना, अंगकी क्षयता और विवर्णता, एक आंख लाल होना, चित्तमें उद्वेग, मुख शोष और प्रलाप, यह सब उपद्रव उपस्थित होतेहै।

छिन्न श्वास।

ऊर्द्धश्वासमें रोगी जैसे जोरके श्वास लेताहै वैसे वेगसे श्वास निकाल नहीं सकता। रोगीका मुख और स्रोतः समूह कफसे आवृत रहनेसे वायु कुपित हो विशेष कष्ट होताहै। तथा इसी श्वासमें ऊर्द्ध दृष्टि, विभ्रान्त चक्षु, मूर्च्छा, अंगवेदना, मुखका सफेद होना, चित्तकी विकलता आदि उपद्रव उपस्थित होतेहैं।

ऊर्द्धश्वास लक्षण।

मत्त वृषको अटका रखनेसे जैसा वह कूदता और चिल्लाता है, महाश्वास रोगमें वायु ऊर्द्धगत होनेसेभी वैसही शब्दके साथ दीर्घश्वास निकलताहै। दूरसेभी श्वासका शब्द सुनाई देताहै। तथा इस रोगमें रोगी अत्यन्त क्लिष्ट और उसका जी ठिकाने नहीं रहता। दोनो आंखे चंचल, विस्तृत, मुख विकृत, मल मूत्र रोध, बोली धीमी, और मन श्रान्त होताहै।

महाश्वास लक्षण।

इन पांच प्रकारके श्वासमें छिन्न, ऊर्द्ध और महाश्वास स्वभावतःही घातकहै। इसमेंसे कोई एक उत्पन्न होनेसे मृत्यु होतीहैं, तमक श्वासकी प्रथम अवस्थामें चिकित्सा होनेसे आराम होताहै किम्बा चिकित्सासे एक दम आराम न हो तो याप्य रहताहै। छिन्न, ऊर्द्ध, और महाश्वासके प्रथम अवस्थाहीसे चिकित्सा करना चाहिये, रोगीके भाग्यसे यहभी आराम होते देखा गयाहै।

सांघातिकता।

वायुका अनुलोमक या वायु नाशक तथा उष्णवीर्य्य कोई क्रिया हिक्का और श्वास रोगका उपकारीहैं। हिक्का रोगसे पेटमें और श्वास रोगसे हृदयमें तेल मर्द्दन कर स्वेद देनेसे और वमन करानेसे उपकार होताहै। किन्तु रोगीका बल आदि क्षीण होनेसे वमन कराना उचित

चिकित्सा।

नहीं है। अकवनके जड़का चूर्ण डा आनेभर मात्रा पानीके साथ सेवन करानेसे वमन होता है।

हिक्का रोगमें बेरके गुठलीकी गूदी, सौवीराञ्जन और धानका लावा; अथवा कुटकी और स्वर्णगेरू; किम्बा पीपल, आंवला, चीनी और सोंठ; अथवा हीराकस और कैथकी गूदी; किम्बा पटलाका फूल, फल और खजूरका गूदा: इन ६ योगोंमेंसे कोई एक सहतके साथ सेवन कराना। जेठीमधका चूर्ण, सहतके साथ, पीपल चूर्ण चीनीके साथ, किम्बा सोंठका चूर्ण गुड़के साथ मिलाकर नास लेना। मक्खीका बीट स्तनदूधके साथ अथवा महावरके पानीमें मिलाकर; अथवा स्तनदूधमें लाल चन्दन घीसकर नास लेना। सोंठ २ तोले बकरीका दूध १ पाव और पानी एक सेर एक साथ औटाना दूध रहने पर छानकर पीना। बड़ा नीबूका रस, सहत और सोंचल या सेंधा नमक मिला पीना। मृगाभस्म, शंखभस्म, हरीतकी, आंवला, बहेड़ा और गेरूमिट्टीका चूर्ण, घी और सहतमें मिलाकर चाटना। बड़ी इलायचीका चूर्ण और चीनी एकमें मिला सेवन करना। केलेके जड़के रसमें चीनी मिला पीना अथवा नास लेना। पीसी हुई राई पानीमें मिला रख छोड़ना फिर पानी ऊपर और राई नीचे बैठ जानेपर वही पानी बार बार पिलाना। चीनी और गोलमरिचका चूर्ण सहतके साथ चाटना। हींग उरदका चूर्ण और गोलमरिचका चूर्ण निर्धूम कोयलेकी आंचपर रख धूम नाकसे खींचना।

हिक्का चिकित्सा।

श्वास रोगमें कनक धतुरेका फल, डाल और पत्ता टूकड़ा २ कर सुखा लेना, फिर चिलममें रख पीनेसे प्रबल श्वास (दमा) आराम होता

श्वासवेग शान्तिका उपाय।

है। थोड़ा शोरा पानीमें भिंगोना, तथा उसी पानीमें सफेद कपड़ेका एक टुकड़ा भिंगोकर सूखा लेना, फिर उसी टुकड़ेको लपेट कर चुरुटकी तरह पीना, अथवा देवदारु, बरियारा और जटामांसी समभाग पीसकर एक सछिद्र बत्ती बनाना; सूख जानेपर उसमें घी लगा चुरुटकी तरह पीना, यह दो प्रकार के धूम पानसे श्वासका वेग जल्दी दूर होताहै। मोरका पंख बंद बरतनमें भस्मकर उसमें पीपलका चूर्ण और सहत मिलाकर चाटनेसे श्वासवेग और प्रवल हिक्का आराम होताहै। हरीतकी और शोंठ किम्बा गुड़, जवाखार और गोलमरिच एकत्र पीसकर गरम पानीके साथ पीनेसे श्वास और हिक्का रोग आरामहोताहै। श्वासका वेग शान्त होनेपर रोग आराम होनेके लिये, हलदी, गोलमरिच, किसमिस, पुराना गुड़, रास्ना, पीपल और शठीका चूर्ण सरसोंके तेलके साथ मिलाकर चाटना। पुराना गुड़ और सरसोंका तेल समभाग मिलाकर पीना। पुराना सफेद कोंहड़ेकी गूदीका चूर्ण आधा तोला थोड़े गरम पानीमें मिलाकर पीनेसे कास श्वास दोनो आराम होताहै। आदीके रसमें पीपल चूर्ण ℊ) आनेभर, सेंधा नमक ℊ) आनेभर मिलाकर पीना। शोधित गन्धक चूर्ण घीके साथ; अथवा शोधित गन्धक चूर्ण और गोलमरिचका चूर्ण घीके साथ सेवन करना। बेलपत्तेका रस, अडूसेके पत्तेका रस, सरसोंके तेलके साथ पीना। गुरिच, शोंठ, बभनेठी, कंटकारी और तुलसी इन सबका काढा पीपलका चूर्ण मिलाकर पीना। दशमूलके काढ़ेमें कुड़का चूर्ण मिलाकर पीनेसे श्वास, कास, पार्श्वशूल, और छातीका दर्द आराम होताहै।

उक्त साधारण औषधसे पीड़ाका उपशम न हो तो भार्गी गुड़,

शास्त्रीय औषध और हमारा श्वासारिष्ट।

भार्गी शर्करा, शृंगी गुड़ घृत, पिप्पलाद्य लौह, महाश्वासारि लौह, श्वासकुठार रस, श्वासभैरव रस, श्वासचिन्तामणि, हिंगाद्य घृत, बृहत् चन्दनादि तैल और कनकासव; यह सब औषध अवस्था विचार कर प्रयोग करना। हमारा "श्वासारिष्ट" सब प्रकारके श्वास रोगको उत्कृष्ट औषधहै,इसके पीतेही श्वासका वेग कम हो क्रमश: रोग निर्मूल आराम होताहै।

पथ्यापथ्य।

जिस प्रकारके आहार विहारादिसे वायुका अनुलोम होवे, हिक्का और श्वास रोगमें वही साधारण पथ्यहै। रक्तपित्त रोगमें जो सब आहारीय द्रव्योंका नाम लिख आयेहै,इसमेंभी वही सब पानाहार व्यवहार करना। वायुका उपद्रव अधिक हो तो, पुरानी इमली भिंगोया पानी पीनेसे उपकार होताहै। मिश्रीके शरबतमें नीबूका रस मिलाकर पीना और नदी या प्रशस्त तालावमें स्नान इस अवस्थामें हितकारकहै। पर कफके आधिक्यमें शर्ब्बत पीना या स्नान करना मनाहै। कफज श्वासमें मुहमें सुरती रख थोड़ा थोड़ा रस पीनेसे बहुत उपकार होताहै। रातका लघु आहार करना चाहिये।

निषिद्ध द्रव्य।

गुरुपाक, रूक्ष और तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य, दही, मछली और मिरचा आदि द्रव्य भोजन, रात्रि जागरण, अधिक परिश्रम, अग्नि या रौद्र सन्ताप, अधिक परिमाण भोजन, दुश्चिन्ता, शोक, क्रोध प्रभृति मनोविकार इस रोगमें सर्व्वदा परित्याग करना चाहिये।

स्वरभेद।

बहुत जोरसे बोलना, विषपान और कंठमें चोट लगना आदि कारणोंसे वातादि दोषत्रय स्वर वहा नाड़ियोंका आश्रय लेनेसे स्वरभेद या स्वरभंग रोग उत्पन्न होताहै। यक्ष्मासेभी यह रोग उत्पन्न होताहै। स्वरभंग ६ प्रकार, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, मेदोज और क्षयज।

निदान।

वातज स्वरभेदमें गदहेके स्वरकी तरह कंठस्वर और मल, मूत्र, चक्षु और मुख कृष्णवर्ण होता है। पित्तज स्वरभेदमें कंठ सर्व्वदा कफसे भरा रहनेके सबब शब्द बहुत कम निकलता है, और रातकी अपेक्षा दिनका शब्द कुछ साफ मालूम होताहै। सन्निपातज स्वरभेदमें उक्त तीन दोषजात स्वरभंगके लक्षण समूह मिले हुए मालूम होते हैं। मेदोज स्वरभेदमें गला कफ या मेदसे लिप्त रहताहै, इससे कंठस्वर साफ नहीं निकलता तथा इस रोगमें रोगीको प्यास बहुत लगतीहै। क्षयज स्वरभेदमें स्वर बहुत क्षीण और शब्द धूमके साथ निकलना रोगीको मालूम होताहै अर्थात् वैसही तकलीफ होतीहै। क्षयज और सन्निपातज स्वरभेद स्वभावतःही दुःसाध्यहै। दुर्व्वल, कृश और वृद्ध व्यक्तिका स्वरभेद, पुराना स्वरभेद, आजन्म जात स्वरभेद, अति स्थूल व्यक्तिका स्वरभेद और सम्पूर्ण लक्षणयुक्त सन्निपातज स्वरभेद असाध्यहै। क्षयज स्वरभेदमें एक दम शब्द उच्चारण बन्द हो जानेसे रोगीको मृत्यु होतीहै।

वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज लक्षण।

और तेलमें मिलाकर मुखमें रखनेसे सब प्रकारका अरोचक रोग आराम होताहै। अथवा काला जीरा, जीरा, गोलमरिच, मुनक्का, इमली, अनार, सोचल नमक, गुड़ और सहत एकमें मिलाकर मुहमें धारण करना। दालचिनी, मोथा, बड़ी इलायची और धनिया, अथवा मोथा आंवला, और दालचिनी, किम्वा दारुहलदी और अजवाईन; अथवा पीपल और आभ; किम्वा अजवाईन और इमली; इन पांच प्रकारके योगको मुखमें रखना। पुरानी इमली और गुड़ पानीमें घोलकर दालचिनी, बड़ी इलायची और गोलमरिचका चूर्ण मिलाकर कुल्ला करनेसे अरोचक रोग आराम होताहै, अथवा काला नमक और सहत अनारके रसमें मिलाकर कुल्ला करना। राई, जीरा और हींग भूनकर चूर्ण करना फिर उसके साथ सोंठका चूर्ण और सेंधा नमक मिलाना, तथा सबके समान गायको दही मिलाकर खूब फेटकर काम लेना तथा सबका समभाग मट्ठा मिलाकर पीना यह रुचिकर और अग्नि वर्द्धक है। अनारका चूर्ण २ तोले, खांड़ २ तोले और दालचिनी, एलाइची और तेजपत्ताका चूर्ण १ तोला, सब द्रव्य एकत्र मिलाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे अरुचिका नाश, अग्निकी दीप्ति और ज्वर, कास, पीनस रोग शान्त होताहै। इसके सिवाय यवानीषाड़व, कलहंस, तिन्तिड़ी पानक, रसाला और सुलोचनाभ्र नामक औषध अरोचक रोगमें देना चाहिये।

पथ्यापथ्य।

जो सब आहार रोगीका अभिलषित तथा लघुपाक और वातादि दोषत्रयमें उपकारीहो; वही सब आहार अरोचक रोगीको देना। आहार करते करते बीच बीचमें ३।४ बार पूर्व्वोक्त कुल्ला करना चाहिये। ज्वरादि कोई उपसर्ग न रहनेसे बहती नदी या प्रशस्त तलावमें

ध्यान करना। उपवन या वैसही सुन्दर स्थानमें घूमना संगीतादि सुनना आदि जिस कामसे मन प्रसन्न रहे वही सब काम करना हितकारीहै। खानेकी चीज, भोजनका स्थान, पात्रादि, पाचक, परिवेशक आदि सब साफ सुथरा रखनाभी इस रोगमें विशेष आवश्यकहै।

निषिद्ध कर्म।

जिस कारणसे मन विकृत हो और जो सब आहार मनका विघात कारकहै, उसका त्याग करना चाहिये।

छर्दि अर्थात् वमन।

वमन लक्षण और प्रकारभेद।

अतिरिक्त तरल वस्तु पान, स्निग्ध द्रव्य अतिरिक्त भोजन, घृणा-जनक वस्तु भोजन, अधिक लवण भक्षण, असमयमें भोजन, अपरिमित भोजन और श्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण, क्रिमिदोष, गर्भावस्था और कई घृणा-जनक कारण समूहोंसे वायु, पित्त और कफ कुपित हो वमन रोग उत्पन्न होताहै। इस रोगमें दो वेग उपस्थित होनेसे मुखको पीड़ित और आच्छादित तथा सर्व्वांगमें भङ्गवत् पीड़ा होतीहै वमन रोग पांच प्रकार,—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगन्तुक, वमन होनेके पहिले जीमचलाना, उद्गार रोध, मुखसे लवणाक्त पतला जलस्राव और पान भोजनकी अनिच्छा, यही सब लक्षण लक्षित होतेहैं।

वातज वमन रोगमें हृदय और पार्श्वमें दर्द, मुखशोष, मस्तक

वातज लक्षण ।

और नाभिमें सूई गड़ानेकी तरह दर्द कास, स्वरभेद, अङ्गमें सूचीविद्धवत् वेदना, प्रबल उद्गार और फेनीला, पिच्छिल, पतला कसैला और तेज वमन होना, यही सब लक्षण प्रकाशित होतेहैं।

पित्तज लक्षण ।

पित्तज वमन रोगमें मूर्च्छा, पिपासा, मुखशोष, मस्तक, तालु, और चक्षु द्वयमें सन्ताप, अन्धकार दर्शन और पीला, हरा या धूम्रवर्ण, थोड़ा कड़ुआ, अति उष्ण पदार्थ वमन और वमनके समय कण्ठमें जलन ; यही सब लक्षण दिखाई देतेहैं।

कफजलक्षण ।

कफज वमन रोगमें तन्द्रा, मुखका स्वाद मीठा, कफस्राव, भोजनकी अनिच्छा, निद्रा अरुचि, देहका भारीपन और स्निग्ध, घना, मधुर रसयुक्त सफेद वमन, वमनके साथ शरीर रोमांच और अतिशय कष्ट होताहै।

सन्निपातज लक्षण ।

सन्निपातज वमन रोगमे शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, पिपासा, श्वास, मूर्च्छा और स्वेद लवण रसयुक्त, उष्ण, नील या लाल रङ्गका घना पदार्थ वमन होना आदि लक्षण प्रकाशित होतेहैं।

आगन्तुक वमन ।

कुत्सित द्रव्य भोजन, किसी प्रकारके घृणाजनक वस्तु सूंघने या देखनेसे जो वमन होताहै तथा गर्भावस्था, क्रिमिरोग और खट्टा खानेसे जो वमन होताहैं उसको आगन्तुक वमन कहतेहैं। इस वमन रोगके वातादि दोष त्रयमें जिस दोषका लक्षण अधिक प्रकाशित हो उसी दोषके वमन रोगमें उसको मिलाना चाहिये। केवल क्रिमिके वमन रोगमें अत्यन्त वेदना, अधिक वमन वेग और क्रिमिसे हृद्रोगके कई लक्षण अधिक प्रकाशित होतेहैं।

वमन रोगमें यदि कुपित वायु, मल, मूत्र और जलवाही स्रोत समूहोंको अंदकार अवरोध करता हो और उससे यदि रोगीके पेटसे पूर्व सञ्चित पित्त, कफ या वायु दूषित स्वेदादि वमन हुआ करे; और वमनमें मल मूत्रकी तरह गंध हो तथा रोगी तृष्णा, श्वास और हिक्कासे पीड़ित हो तो उनको मृत्यु जानना। जिस वमन रोगसे रोगी क्षीण हो जाय और सर्व्वदा रक्तपित्त मिला पदार्थ वमन करे, अथवा वान्त पदार्थमें यदि मयूर पुच्छकी तरह आभा दिखाई दे, किम्वा वमन रोगके साथही यदि कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, तृष्णा, भ्रम, हृद्रोग और तमक श्वास यह सब उपद्रव उपस्थित होनेसेभी असाध्य होताहै।

रोगका उपद्रव और साध्या-साध्यता।

कच्चे नारियलका पानी, फलही या जली रोटी भिंगोया पानी और बरफका पानी वमन निवारणके हकमें उत्कृष्ट औषधहै। बड़ीलायचीका काढ़ा पीनेसेभी वमन रोग आराम होताहै। रातको गुरिच भिंगो रखना, सवेरे वही पानी थोड़ा सहत मिलाकर पीनेसेभी वमन आराम होताहै। पीपल वृक्षकी सूखी छाल जलाकर किसी पात्रमें पानीमें डुबाना, फिर वही पानी पीनेसे अति दुर्निवार वमनभी आराम होताहै। खेतपापड़ा, बेलकी जड़, या गुरिचका काढ़ा सहतके साथ अथवा मूर्व्वाकी जड़का काढ़ा चावलके धोवनके साथ पीनेसे सब प्रकारका वमन दूर होताहै। जेठीमध और लाल चन्दन दूधमें पीसकर पीनेसे रक्त वमन आराम होताहै। सहतके साथ हरीतकी चूर्ण चाटनेसे दस्त हो वमन आराम होते देखा गयाहै। आंवलेका रस १ तोला और कैथका रस १ तोला थोड़ा पीपलका चूर्ण, गोलमरिचका चूर्ण सहतमें

चिकित्सा।

मिलाकर चाटनेसे प्रबल वमनभी आराम होताहै। सौवर्च्चल नमक चीनी और गोलमरिचका चूर्ण समभाग सहतके साथ चाटनेसे वमन रोग आराम होताहै। समभाग दूध और पानी; किम्वा सेंधा नमक और घी एकत्र पान करनेसे वातज वमनमें विशेष उपकार होताहै। आमुनकी गुठली और बेरकी गुठलीकी गूदी अथवा मोथा और काकड़ासिङ्गी; सहतके साथ चाटनेसे कफज वमन आराम होताहै। तेलचट्टका बीट ३।४ दाना थोड़े पानीमें भिंगोकर पीनेसे अति दुर्निवार वमनभी आराम होताहै। एलादि चूर्ण, रसेन्द्र, वृषध्वज रस और पद्मकाद्य घृत वमन रोगकी उत्कृष्ट औषध है।

सब प्रकारके वमन रोगमें आमाशयका उत्क्लेश होताहै, इससे पहिले उपवास करनाही उचित है।

पथ्यापथ्य।

वेग शान्त होनेपर लघुपाक, वायु अनुलोमक और रुचिकर आहारादि क्रमशः देना चाहिये, वमन वेग रहते आहार देनेकी आवश्यकता हो तो भूंजे मूंगके काढ़ेके साथ धानके लावाका चूर्ण, सहत और चीनी मिलाकर खानेको देना; इससे वमन, मेद, ज्वर, दाह और पिपासाकी शान्ति होतीहै। वमन वेग शान्त होनेपर सहनेपर सब वस्तु आहार और ज्वरादि उपसर्ग न रहनेसे अभ्यासके अनुसार स्नान कर सकतेहैं। साफ पानाहार, साफ स्थानमें वास, सुगंध सूंघना और मनको प्रसन्न रखना इस रोगमें विशेष उपकारी है।

जिस कारणसे घृणा उत्पन्न हो, वही सब कारण और रौद्रादि आतप सेवन प्रभृति वमन रोगमें विशेष अनिष्टकारक है।

तृष्णारोग ।

भय, श्रम, और बलादि क्षयसे वायु कुपित होताहै, तथा यही सब कारणसे वायु ; कटु या अम्ल-

निदान ।

रस भोजन, क्रोध और उपवास आदि कारणोंसे पित्त, प्रकुपित हो तृष्णा रोग उत्पन्न होताहै । जल-वाही स्रोत समूह वायु प्रभृति दोषत्रयसे कुपित होनेपरभी तृष्णा रोग उत्पन्न होता है । इस रोगके उत्पन्न होनेसे पहिले तालु, कण्ठ, ओठ, और मुख सूखा, दाह, प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, और सन्ताप, यह सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होताहै । तृष्णा रोग सात प्रकार,—वातज,पित्तज, कफज,क्षतज,क्षयज,आमज और भक्तज ।

वातज तृष्णा रोगमें मुख सूखा और म्लान, ललाट और मस्तकमें सूची विद्धवत् वेदना, रस और

भिन्न २ दोषज रोग लक्षण ।

जलवाही स्रोत समूहोंका रोध और स्वादका बिगड़ना यही सब लक्षण लक्षित होतेहै । पित्तज तृष्णामें मूर्च्छा, आहारमें अनिच्छा, प्रलाप, दाह, दोनो आखें लाल, अत्यन्त प्यास, शीतल द्रव्यपर इच्छा, मुखका स्वाद कड़ुवा और सन्ताप, यही सब लक्षण प्रकाशित होतेहै । कफज तृष्णामें अधिक निद्रा, मुखका स्वाद मीठा और शरीर शुष्क आदि लक्षण दिखाई देतेहै । शस्त्रादिसे शरीर क्षत हो अधिक रक्तस्राव होनेसे या क्षतज वेदनासे जो तृष्णा होतीहै उसको क्षतज तृष्णा कहते है । रसक्षयसे जो तृष्णा उत्पन्न होतीहै उसको क्षयज तृष्णा कहतेहै । इस तृष्णामें रोगी बार बार पानी पीने परभी तृप्त नही होता । तथा छातीमें दर्द, कम्प और मनकी शून्यता आदि लक्षण प्रकाशित ह.।है । आमज तृष्णासे छातीमें शूल,

निष्ठोवन, शारीरिक अवसन्नता और तीन दोषजात तृष्णाकेभी लक्षण समूह प्रकाशित होतेहै। घृत, तैल प्रभृति अधिक चिकना पदार्थ, अम्ल, लवण और कटु रस तथा गुरुपाक अन्न भोजन करनेसे जो तृष्णा उत्पन्न होतीहै उसको अन्नज तृष्णा कहतेहै। दुसरे कोई रोग के उपसर्गसे तृष्णा होनेसे उसको उपसर्गज तृष्णा कहतेहै। यह वातादि दोषजात तृष्णाके अन्तर्गतहै इससे इसको अलग नही किया गया। इसमें स्वरकी क्षीणता, मूर्च्छा, क्लान्ति; और मुख कण्ठ, तालु बार बार सूखता है। इसमें शरीर बहुत सूख जाताहै और यह अति कष्टसाध्य है।

सांघातिक लक्षण।

ज्वर, मूर्च्छा, क्षय, कास, श्वास आदि रोगोंसे पीड़ित मनुष्यको कोई एक तृष्णा रोग प्रवल होनेसे और साथही वमन और मुख शोष आदि उपद्रवयुक्त होनेसे रोगीको मृत्यु होतीहै।

चिकित्सा।

वायुके तृष्णारागमें गुरिचका रस उपकारीहै, पित्तज तृष्णामें गुल्लरके पक्का फलका रस या काढ़ा सेवन उपकारीहै। गाम्भारी फल, चीनी, लाल चन्दन, खस, पद्मकाष्ठ, द्राक्षा और जेठीमध, यह सब द्रव्य मिला २ तोले, आधा पाव गरम पानीमें पहिले दिन शामका भिगोकर, दुसरे दिन सवेरे छानकर पीना पित्तज तृष्णामें यह उपकारीहै। तथा यह सब द्रव्य पीसकर पीनेसेभी फायदा होताहै। मोथा, खेतपापड़ा, बाला, धनिया, खस और लाल चन्दन प्रत्येक साढ़े पांच आनेभर एकमें मिला २ सेर पानीमें औटाना एक सेर पानी रहते छानकर थोड़ा थोड़ा पीनेसे तृष्णा, दाह, और ज्वर आराम होताहै। बेलकी छाल, अरहरका पत्ता, धाईफूल, पीपला मूल, चाभ, चितामूल, शोंठ और कुशमूल, यह सब द्रव्य २ तोले २ सेर

पानीमें औटाना एक सेर रहते छानकर थोड़ा थोड़ा पोनेसे कफज तृष्णा शान्त होतीहै। नीमकी छाल या पत्ता अथवा फूलका काढ़ा गरम गरम पीकर के करनेसेभी कफज तृष्णा आराम होतो है। आम जन्य तृष्णा रोगमें पीपल, पीपला मूल, चाभ, चितामूल, सोंठ, अम्लवेतस, गोलमरिच, अजवाईन, भेलावेके गुठली प्रभृति अग्निदीपनीय द्रव्यका काढ़ा बनाकर बेलको गूदो, बच और होंगको चूर्ण मिलाकर पोना। क्षतज तृष्णामें मांस रस और रक्त पान विशेष उपकारोहै। क्षयज तृष्णामें दूध और मधु मिला पानी और मांस रस हितकारोहै। अन्नज तृष्णामें वमन कराना ही प्रशस्त चिकित्साहै। आंवला, पद्ममूल, कुड़, धानका लावा और बड़कोसोर इन सबका समभाग चूर्ण सहतमें मिला मुहमें रखनेसे सब प्रकारकी तृष्णा और मुखशोष आराम होताहै। आम और जामुनके पत्तेका किम्वा आम जामुनके छालका काढ़ा अथवा आम जामुनके गुठलोको गूदो औटाकर सहत मिलाकर पोने से वमन और तृष्णा आराम होताहै। धनियाका काढ़ा बासोकर पोने से तृष्णा आराम होते देखा गयाहै। बड़कोसार, चीनो, लोध, अनार जेठोमध और सहत; अथवा चावलका धोवनके साथ सेवन करनेसे तृष्णा आराम होतीहै। द्राक्षारस, इक्षुरस, दूध, जेठोमधका काढ़ा सहत या सुंदी फुलका रस नाकसे पान करनेसे प्रबल पिपासा शान्त होतोहै। बड़ा नीबूका जीरा, सहत और अनार एकमें पीसकर कुल्ला करनेसे सब प्रकारकी तृष्णा आराम होतीहै। तालु शोष रोगमें दूध, इक्षुरस, गुड़ या किसो अम्ल द्रव्य पानीमें घोलकर कुल्ला करना। कुमुदेश्वर रस सब प्रकारके तृष्णा रोगकी अति उत्कृष्ट औषधहै।

रुचिजनक, मधुर रस विशिष्ट और शीतल द्रव्य तृष्णा रोगमें

पथ्यापथ्य।

सुपथ्य है। उग्रवीर्य्य और शारीरिक उद्वेग कारक, तृष्णा रोगमें यही सब पानाशा-रादि सर्व्वदा परित्याग करना चाहिये।

मूर्च्छा भ्रम और सन्न्यास।

निदान।

विरुद्ध द्रव्य पान, भोजन, मल मूत्रादि वेग धारण, अस्त्र शस्त्रादिसे शरीरमें आघात प्राप्ति और सत्वगुणकी अल्पता आदि कारणोंसे वातादि उग्रदोषत्रय मनोधिष्ठान अथवा शिराधिष्ठान स्रोत समूहोंमें प्रविष्ट होनेसे मूर्च्छारोग उत्पन्न होताहै। अथवा शिरा, धमनी आदि जिस नाड़ीके अवलम्बनसे मन और इन्द्रिय समूहोंमें जातीहै, वही नाड़ी वातादि दोषोंसे आच्छादित होनेपर, तमोगुण वर्द्धित हो मूर्च्छा रोग उत्पन्न होताहै। सुख दुःखादि अनुभव शक्तिहीन हो, काष्ठादिकी तरह बेहोश हो जमीनपर गिर पड़नाही इस रोगका साधारण लक्षणहै। मूर्च्छा उपस्थित होनेसे पहिले हृदयमें पीड़ा, जृम्भा, ग्लानि और ज्ञानकी कमी यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होताहै। मूर्च्छा रोग सात प्रकार, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, मद्यज और विषज। भिन्न भिन्न मूर्च्छामे पृथक पृथक दोषका आधिक्य रहनेपरभी मूर्च्छा रोग मात्रमे पित्तका आधिक्य रहताहै। कारण पित्त और तमोगुणही मूर्च्छा रोगका आरम्भकहै।

भिन्न भिन्न दोषभेद लक्षण।

वातज मूर्च्छामें रोगी, नील, कृष्ण अथवा अरुणवर्ण आकाश देखते देखते मूर्छित होताहै और थोड़ेही देरमें होशमें आताहै, तथा कम्प, अङ्गमर्द,

हृदयमें पीड़ा, शारीरिक क्षमता और देहका वर्ण श्याव या अरुण वर्ण होताहै। पित्तज मूर्च्छामें रोगी लाल, पीला, अथवा हरित् वर्ण आकाश देखते देखते मूर्च्छित होताहै। होश आनेपर पसीना, पिपासा, सन्ताप, दोनो आंखें लाल या पीतवर्ण, मलभेद और देह पीला होताहै। कफज मूर्च्छामें रोगी साफ आकाशमें मेघकी आभा, मेघाच्छन्न या अन्धकारयुक्त देखते देखते मूर्च्छित होताहै और देरसे होशमें आताहै। होश आनेपर सर्व्वाङ्ग गीले चमड़ेसे आच्छादितकी तरह भारी, मुखसे लाल और जी मतलाताहै। सन्निपातज मूर्च्छामें वातादि त्रिविध मूर्च्छाके लक्षण समूह मिले हुए मालूम होतेहै और अपस्मार रोगकी तरह प्रबल वेगसे पतित हो देरमे होशमें आताहै। पर अपस्मारकी तरह फेन वमन, दांती लगना और नेत्रविकृति आदि भयानक अङ्गविकृति समूह इसमें प्रकाशित नही होता। रक्तज मूर्च्छामें अङ्ग और दृष्टि स्तब्ध तथा श्वास बहुत कम चलतीहै। मद्यपान जनित मूर्च्छामें ज्ञानशून्य और विभ्रान्तचित्त हो जमीनपर गिरकर हाथ पैर पटकना और प्रलाप बकते बकते मूर्च्छित होताहै। मद्य जीर्ण न होनेतक होशमें नही आता। विष मूर्च्छामें कम्प, निद्रा, तृष्णा, आंखके सामने अंधियाला देखना, और विष भक्षण जनित अन्यान्य लक्षणभी प्रकाशित होतेहै।

वायु, पित्त और रजोगुण मिलकर भ्रम रोग उत्पन्न होताहै।

भ्रमरोगका निदान और लक्षण।

इस रोगमें रोगीको अपना शरीर और सब पदार्थ घूमता हुआ मालूम होताहै, इससे खड़ा नही रह सकता तथा खड़ा होनेपर गिर पड़ताहै।

वातादि दोष समूह अत्यन्त कुपित हो जब प्राणाधिष्ठान

सन्न्यास रोग।

हृदयको दूषित करता है तथा दुर्व्वल रोगीका मन और इन्द्रिय समूहोका कार्य्य बंदकर मूर्च्छित करताहै, तब उसको सन्यास रोग कहतेहै। यह रोग अतिशय भयानकहै। सूचीवेध, तीक्ष्ण अञ्जन, तीक्ष्ण नस्य, आदि तुरन्त होशमें लानेवाले उपाय न करनेसे होशमे नही आता, तथा रोगीभी थोड़ेही देरमें प्राणत्याग देताहै।

चिकित्सा।

मूर्च्छा रोगके आक्रमण कालमें आंख और मुख आदि स्थानोंमे ठंढे पानीका छीटा देकर होशमे लाना चाहिये। फिर थोड़ी देर नरम बिछौने पर सुलाकर ताड़के पंखेसे हवा करना उचितहै। दांती लगजाने पर उसके छुड़ानेका उपाय करना। पानीके छीटेसे होशमें न आवे-तो नौसादरका टूकड़ा २ भाग और सूखा चूर्ण १ भाग शीशीमें भरकर सूंघनेको देना। अथवा सेंधा नमक, बच, गोलमरिच और पीपल समभाग पानीसे पीसकर नस देना। शिरीष बीज, पीपल, गोलमरिच, सेंधा नमक, लहसन, मैनसिल और बच; यह सब द्रव्य गोमूत्रमें पीसकर अथवा सेंधा नमक, गोलमरिच और मेन-सिल; यह तीन द्रव्य सहतके साथ पीसकर आखमें अञ्जन करनेसेभी मूर्च्छा दूर होतीहै। हमारा "कुमुदासव" सेवन करानेसे मूर्छा आराम हो रोगी अच्छी तरह होशमें आताहै।

भ्रम चिकित्सा।

भ्रम रोगमें शबमूली, बरियारेकी जड़, और किसमिस दूधमें औटाकर वही दूध पीना। बरियारेके बीजका चूर्ण और चीनी एकमें मिला-कर सेवन कराना। रातको सहत और त्रिफलाका चूर्ण, सबेरे गुड़के साथ अदरख सेवन करनेसे भ्रम, मूर्छा, कास, कामला, और उन्माद रोग आराम होताहै। सोंठ, पीपल, शुलफा और

हरीतकी प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, गुड़ ६ तोले एकमें मिलाकर आधा तोला मात्राकी गोली बना रखना, यह गोली सेवन करनेसे भ्रम रोग दूर होताहै। जवासाके काढ़ेके साथ ताम्रभस्म २ रत्ती और घी एक आनाभर मिलाकर पीनेसेभी भ्रम रोग आराम होता है। शिलाजीत आदि रसायन अधिकारके औषध समूहोंका सेवन और १० वर्षका पुराना घृत मर्द्दन इस रोगमें विशेष उपकारीहै।

सन्न्यास रोगकी बेहोशी छुड़ानेके लिये अपस्मार रोगोक्त तेल अंजन, नास, धूंआ, सूई गड़ाना,, गरम लोहकी सलाई नखके भीतर दागना, केश लोमादि खींचना, दांतसे काटना और बदनमें आलकुशी मलना आदि कार्य्यों से होश आनेपर मूर्च्छा रोगोक्त औषध देना। क्योंकि सन्न्यास रोगमे रेंड़ीका तेल अथवा रसांजन चूर्णसे विरेचन करा पेटमें स्वेद करना उचित है। क्रिमिजन्य सन्न्यास रोगमें क्रिमि नाशक औषध प्रयोग करना चाहिये।

सन्न्यासमें चेतना सम्पादन।

मूर्च्छा, भ्रम और सन्न्यास रोगमें सुधानिधि, मूर्च्छान्तक रस, अश्वगन्धारिष्ट तथा अपस्मार और उन्माद रोगोक्त अन्यान्य औषध, घृत, तेल आदि प्रयोग करना चाहिये। हमारा "मूर्च्छान्तक तैल" इस रोगमें विशेष उपकारी है।

हमारा मूर्च्छान्तक तैल।

मूर्च्छा आदि रोगमें पुष्टिकर और बलकारक आहार आदि देना। दिनको पुराने चावलका भात, मूंग, मसूर, चना और उड़दकी दाल; कोई, मागुर, सिंगी, खालिसा आदि मछलीका शुरवा, बकरीका मांस, गुल्लर, परवर, सफेद कोहड़ा, बैंगन, केलेका फूल, आदिकी तरकारी, मक्खन, मट्ठा, दही, द्राक्षा, अनार, पका आम, पका

पथ्यापथ्य।

पपीता, शरीफा, कच्चा नारियल आदि फल भोजन कराना। रातको पूरी या रोटी, मोहनभोग, मिठाई, खुरमा, दूध, घी, मैदा, सूजी और घीसे बनायी कोई वस्तु खानेको देना। सबेरे धारोष्ण दूध और शरबत पीना विशेष उपकारीहैं। तिलतैल मर्द्दन, बहती नदी या प्रशस्त तलावमें स्नान, सुगन्ध द्रव्य, साफ हवा और चन्द्रकिरण सेवन, सन्तोषजनक बातें, गीतवाद्य श्रवण और अन्यान्य कार्य्य जिससे मन स्थिर रहे इस रोग में वही सब करना उचितहै।

निषिद्ध कार्य्य।

गुरुपाक, तीक्ष्ण वीर्य्य, रूक्ष और अम्लद्रव्य भोजन, मेहनतका काम करना, चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, मानसिक उद्वेग, मद्यपान, रात दिन बैठे रहना, धूममें बैठना और आग तापना, इच्छाके प्रतिकूल कार्य्यादि, घोड़ा आदि की सवारीपर चढ़ना, मल, मूत्र, तृष्णा, निद्रा, क्षुधा आदिका वेग रोकना, रातका जागना, मैथुन और दतुवनसे मुख धोना आदि इस रोगमें अनिष्टकारक है।

मदात्यय।

निदान और प्रकारभेद।

अवैध नियम और अपरिमित मात्रासे तथा बल और विचार न कर मद्यपान करनेसे मदात्यय रोग उत्पन्न होताहै*। इसके सिवाय क्रोध, भय,

* स्निग्ध अन्न और मांस आदि भक्ष्य द्रव्यके साथ ग्रीष्म ऋतुमें शीतल मधुर रसयुक्त माध्वीकादि मद्य और शीत ऋतुमें तीक्ष्ण और उष्णवीर्य्य, गौड़िक या पिष्टकादि मद्य प्रसन्न चित्तसे पीना यही मद्यपानका नियमहै। जिस मात्रासे बुद्धि, स्मृति, प्रीति, स्वर, अध्ययन या संगीत शक्ति वर्द्धित हो और पान, भोजन, निद्रा, मैथुन और अन्यान्य कार्य्योंमें आसक्ति हो वही उचित मात्राहै। इस रीतिसे मद्यपान करनेसे उपकार होताहै। विपरीत पान करनेसे उत्कट रोग उत्पन्न हो शरीरमें अनिष्ट होताहै।

शोक, पिपासा, भारवहन, पैदल चलतेर थक जानेपर किम्बा मल मूत्रके वेगमें, अजीर्ण अवस्थामें, भोजनके बाद, दुर्व्वल अवस्थामें मद्यपान करनेसेभी मदात्यय रोग उत्पन्न होताहै। यह रोग चार भागमें विभक्त है।—पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पान विभ्रम।

वात, पित्त और कफाधिक्य रोग लक्षण।

वाताधिक्य मदात्यय रोगमें हिक्का, श्वास, शिर:कम्प, पार्श्वशूल निद्रानाश और अत्यन्त प्रलाप होताहै। पित्ताधिक्य मदात्यय रोगमें तृष्णा, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम और शरीर पीले रङ्गका होजाताहै। कफाधिक्य मदात्ययमें कै, जीमतलाना, अरुचि, तन्द्रा, शरीर भारी मालूम होना अतिशय शीत और शरीर गीले वस्त्रसे लिपटा हुआ अनुभव होताहै। सान्नि-पातिक मदात्ययमें यही सब लक्षण मिले हुए मालूम होतेहै।

परमद लक्षण।

परमद रोगमें कफके आधिक्यमें नाकसे कफस्राव, देह भारी, मुख वेस्वाद, मल मूत्रका रोध, तन्द्रा, अरुचि तृष्णा, मस्तकमे दर्द, और शरीरके सन्धिस्थानोंमें दर्द होताहैं।

पानाजीर्ण लक्षण।

पानाजीर्ण रोगमे अत्यन्त उदराध्मान, उद्गार, कै, पेटमें जलन, पीये हुए मद्यका अपरिपाक, यही सब लक्षण प्रकाशित होतेहै।

पान विभ्रम लक्षण।

पान विभ्रम रोगमें सब शरीर विशेष कर हृदयमें सूई गड़ा-नेकी तरह दर्द, कफस्राव, कंठसे धूम निकलनेकी तरह दर्द, मूर्च्छा, कै, ज्वर, शिर:शूल, दाह और सुरा या सुरासे बनाया कोई खाद्य और पिष्टकादि भोज्य द्रव्यमे द्वेष, यही सब लक्षण दिखाई देतेहै।

साम्पातिक मदात्यय।

जिस मदात्यय रोगमें रोगीका ओष्ठ नीचेको झुक जाताहै और ऊपर शीत तथा भीतर दाह, मुख तैल लगायेकी तरह चिकना, जिह्वा, ओष्ठ तथा दांत काला, नीला या पीले रङ्गका होना, तथा आखें लाल होनेसे रोगीको मृत्यु होती हैं।

उपद्रव।

हिक्का, ज्वर, वै, कम्प, पार्श्वशूल, कास और भ्रम इन सबको मदात्यय रोगका उपद्रव कहतेहैं।

चिकित्सा।

मद्यपान न करनाही मदात्यय रोगको श्रेष्ठ औषधहै, अत्यन्त मद्यपान करनेसे मदात्यय रोगमें कम मात्रासे यथाविधि मद्यपान कराना। वातिक मदात्ययमें पहिलेका पीया हुआ मद्य जीर्ण होने पर सौचल नमक, शोंठ, पीपल, गोलमरिच चूर्ण और थोड़े पानीके साथ मद्यपान कराना। पैत्तिक मदात्ययमें चीनी, द्राक्षा और आंवलेके रसमें पुराना शीतवीर्य्य (ठंढा) मद्यपान कराना। सुगन्धि मद्य या अधिक जल मिश्रित मद्य किम्बा चीनी और सहत संयुक्त मद्य पैत्तिक मदात्ययमें हितकारी है। मद्यके साथ खजूर, किस-मिस, फालसा, अनारका रस और सत्तु मिलाकर पीनेसे पैत्तिक मदात्यय आराम होताहै। अथवा अधिक इक्षु रस मिश्रित मद्य पिलाकर थोड़ी देर बाद कै करानेसेभी पैत्तिक मदात्यय आराम होताहै। श्लैष्मिक मदात्ययमें वमन कारक द्रव्य संयुक्त मद्य पिलाकर वमन कराना। फिर रोगीके बलानुसार उपवास कराना चाहिये। इस मदात्ययमें तृष्णा हो तो, बाला, वरियारा, पाटला, कंटकारी, अथवा शोंठका काढ़ा ठंढाकर पिलाना। चाभ, सौचल नमक, हींग, बड़े नीबूकी छाल, शोंठ और अजवाईनका चूर्ण मिलाकर मद्यपान करानेसे सब प्रकारका मदात्यय रोग आराम

होताहै। सब प्रकारके मदात्यय रोगका दोष परिपाकके लिये जवासा और मोथा, खेतपापड़ा, किम्बा सिर्फ मोथेका काढ़ा पिलाना। अष्टांग लवण कफज मदात्ययकी श्रेष्ठ औषधहै। धानके लावाका चूर्ण पानीमें मिलाना फिर पिंड खजूर, किसमिस, मुनक्का, इमली, अनार और आंवलेका रस मिलाकर पीनेसे मद्य-पान जनित सब प्रकारका रोग प्रशमित होताहै।

शास्त्रीय औषध।

मदात्ययका दाह उपशमके लिये दाह नाशक योग समूह प्रयोग करना। फलत्रिकादय चूर्ण, एलादय मोदक, महाकल्याण वटी, पुनर्नवा घृत, वृहत् धात्री तैल और श्रीखण्डासव सब प्रकारके मदात्ययमें विचार कर प्रयोग करना।

मत्तता निवारणोपाय।

मद्यपान कर तुरन्त घी चीनी मिलाकर चाटनेसे नशा नही होती। कोदो धानकी नशा सफेद कोहड़ेका पानी गुड़ मिलाकर पीनेसे दूर होतीहै। सुपारीकी नशा पानी पीनेसे उतरतीहै; रुखा गोबर सुंघना और नमक खानेसेभी सुपारीकी नशा दूर होतीहै। चीनी मिलाया दूध पीनेसे धतुरेकी नशा शान्त होतीहै। गरम घी, कटहरके पत्तेका रस, इमलीका पानी या कच्चे नारियलका पानी पीनेसे भांगकी नशा दूर होतीहै। थोड़ी शराब पीनेसेभी भांगकी नशा तुरन्त छूट जातीहैं तथा शराबकीभी नशा नही होती।

पथ्यापथ्य।

वातिक मदात्ययमें स्निग्ध और उष्ण भात, तित्तिर, बटेर, मुरगा, मोर या पानीके पास रहनेवाले जीवोंके मांसका रस, मछलीका रसा, पूरी, खट्टा और नमकयुक्त द्रव्य उपकारीहै। ठंढा पानी पीना, स्नानभी करना। पैत्तिक मदात्ययमें ठंढाभात, चीनी मिलाया

मूंगका जूस, मोठे मांसका रस पीनेको देना, शीतल शयन, उपवेशन शीतल वायु सेवन, शीतल जलसे स्नान और चन्दनादि शीतल द्रव्य अनुलेपन स्त्रीका आलिङ्गन उपकारीहै। कफज मदात्ययमें पहिले उपवास, फिर सूखा अर्थात् घृतशून्य छागमांसका रस अथवा दाड़िमादि अम्लरसयुक्त जङ्गली मांसका रस किम्वा घृतादि शून्य केवल गोलमरिच और अनारके रसमें मांस भूनकर उसी मांसके साथ अन्न भोजन उपकारीहै ; तथा जिस कार्य्यसे कफ शान्त रहै, कफज मदात्ययमें वही सब कार्य्य करना। गरम पानी पीनेको देना, स्नान बन्द करनाही अच्छाहै, किसी किसी दिन गरम पानीसे स्नान कराना चाहिये।

दाह।

संज्ञा और लक्षण।

विविध कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो, हाथ पैरका तरवा, आंख या सर्व्वाङ्गमें जलन उत्पन्न होताहै। इसीको दाह रोग कहतेहैं। दाह पित्तहीसे उत्पन्न होताहै इससे रोग मात्रमें पित्तका आधिकार होनेहीसे दाह होता है। शरीरमें रक्तकी अत्यन्त वृद्धि होनेपरभी दाह रोग उत्पन्न होताहै। इसमें रोगीको प्यास, दोनो आंखे या सब शरीर ताम्र वर्ण, शरीर और मुखमें लोहेकी तरह गंध ; यही सब लक्षण प्रकाशित होतेहै और रोगी अपने चारो तरफ आग जलानेकी तरह कष्ट अनुभव करताहै। प्यास लगने पर पानी न पीनेसे शरीरके सब पतले धातु क्रमशः क्षीण होतेहै, इससे पित्तकी आ वर्धित हो देहके भीतर अधिक दाह उत्पन्न होताहै। इस दाहमें

गला, तालु और ओष्ठ सूखताहै तथा रोगी जीभ बाहरकर हांफता है। रस रक्तादि धातुक्षय होनेसे भी एक प्रकारका दाह होता है; इसमें रोगी मूर्च्छित, तृष्णार्त्त, क्षीणस्वर और चेष्टाहीन हो जाता है। उपयुक्त चिकित्सा न करानेसे इस दाहमें मृत्युकी सम्भावना है। अस्त्र घातादिसे हृदयादि कोष्ठमें रक्तपूर्ण होनेसे भयङ्कर दाह उपस्थित होताहै। मस्तक या हृदय प्रभृति मर्म्मस्थानोमें आघात जन्य दाह असाध्य है। जिस दाहमें भीतर दाह और बदन ठंढा हो वह दाह रोगभी असाध्यहै।

चिकित्सा।

दाह रोगमें पेट साफ रखना बहुत जरूरीहै धनिया २ तोले आधा पाव पानीमें पहिले दिन शामको भिंगोना सबेरे वही पानी चीनी मिलाकर पीनेसे दाह रोग आराम होताहै। गुरिचकारस, खेतपापड़ाका रस दाह नाश करनेमें अकसीरहै। ज्वरमें दाह शान्तिका जो सब उपाय लिख आयेहैं, दाह रोगमेंभी वही सब प्रयोग करना। इसके सिवाय शतधौत घृत या शतधौत घृतमें जौका सत्तु मिलाकर बदनमें मलना। पद्मपत्र या केलेके पत्तेपर सुलाकर चन्दन जल-सिक्त पंखेसे हवा करना। वाला, पद्मकाष्ठ, खस और सफेद चन्दन सबका चूर्ण पानीमें मिलाकर स्नान कराना। चन्दनादि काढ़ा, त्रिफलाद्य कषाय, पर्पटादि काढ़ा, दाहान्तक रस और कांजिक तैल दाह रोगको प्रशस्त औषधहै, ज्वर हो तो तैल या घृत मर्द्दन और स्नान मनाहै।

पथ्यापथ्य।

दाह रोगमें पित्तनाशक द्रव्य भोजन। तिक्त वस्तु खाना अतिशय उपकारीहै। मूर्च्छा रोगमें जो सब भोजनविधि लिखीहै, ज्वर न रहनेसे वही सब आहार देना। ठंढे पानीमें अवगाहन, शीतल जल पान,

चीनीका शर्बत्, इक्षुका रस, दूध और माखन आदि शीतल द्रव्य व्यवहार करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म। मूर्च्छा रोगमें जो सब आहार विहार मना है, दाह रोगमेंभी वही सब त्याग करना चाहिये।

उन्माद।

निदान। और मत्स्यादि संयोग विरुद्ध भोजन, विषयुक्त द्रव्य भोजन, अरुचि द्रव्य भोजन, देव, ब्राह्मण, गुरु आदिकी अवमानना, अत्यन्त भय, हर्ष शोकादि कारणोंसे चित्तमें विघात, विषम भावसे अङ्गविन्यास अर्थात् मुद्रादोष और बलवान मनुष्यसे युद्ध आदि विषम कार्य्योंसे अल्प सत्वगुण विशिष्ट मनुष्योंका वातादि दोषत्रय कुपित हो बुद्धि स्थान, हृदय और मनोवहा नाड़ीको दूषित करताहै, इससे चित्तमें विकृति उपस्थित हो उन्माद रोग उत्पन्न होताहै। यह मानसिक रोगहै। बुद्धिमें भ्रान्ति, चित्तमें अस्थिरता, व्याकुल दृष्टि, काममें अस्थिरता, असम्बन्ध वाक्य उच्चारण और हृदय शून्यता, यही सब उन्माद रोगके साधारण लक्षणहै।

वातज उन्माद लक्षण। निरन्तर चिन्तासे हृदय दूषित होनेके बाद रूक्ष, शीतल या अल्प भोजन, विरेचन, धातुक्षय उपवास आदि वायु वृद्धिकारक निदान सेवन करनेसे वातज उन्माद पैदा होताहै। इस उन्मादमें बिना कारण हंसना, नाचना, गाना, बोलना, अङ्ग विक्षेप और रोना यही सब

लक्षण लक्षित होतेहैं, तथा रोगीका देह दुबला, रूखा और लालवर्ण होताहै। आहार परिपाकके समय यह रोग बढ़ताहै।

वैसही चिन्तासे हृदय दूषित होनेपर तथा कटु, अम्ल, उष्ण और जिस द्रव्यका अम्लपाक हो वही सब द्रव्य भोजन और अजीर्णमें भोजन आदि कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो पैत्तिक उन्माद रोग उत्पन्न होताहै। इस उन्मादमें असहिष्णुता, आड़म्बर, वस्त्र पहिरनेकी अनिच्छा, तर्जन गर्जन, जोरसे दौड़ना, बदन गरम, क्रोध, छायेमें बैठना, शीतल वस्तु पान भोजनकी इच्छा और देह पीतवर्ण होना यही सब लक्षण प्रकाशित होतेहैं।

पैत्तिक उन्माद लक्षण।

श्रमजनक कार्य्यसे जी उबजानेपर अति भोजनादि कफ बढ़ानेवाले निदानसे हृदयका कफ दूषित और पित्त संयुक्त होनेसे कफज उन्माद उत्पन्न होताहै। इसमे बोलना और काम काज कम करना, अरुचि, स्त्री सहवासकी इच्छा, निर्ज्जनमें रहनेकी इच्छा, निद्रा, जी-मतलाना, लारस्राव, त्वक, मूत्र, चक्षु, नख सफेद होना और आहारके बाद रोग बढ़ना, यही सब लक्षण प्रकाशित होतेहैं।

कफज उन्माद लक्षण।

अपने अपने वृद्धिकारक कारण समूहोसे वातादि तीन दोष कुपित होनेसे सन्निपातज उन्माद उपस्थित होताहै। इससे वही तीन दोषजात उन्मादके लक्षण मिले हुए मालूम होतेहै। त्रिदोषज उन्माद असाध्यहै।

त्रिदोषज लक्षण।

किसी कारणसे डर जानेपर या धनक्षय या बन्धुका नाश अथवा अभिलषित कामिनी प्रभृति न मिलनेसे, मन अत्यन्त आहत हो जो उन्माद रोग उत्पन्न होताहै उसको शोकज उन्माद कहतेहैं। इसमें

शोकज उन्माद लक्षण।

रोगी कर्त्तव्य ज्ञानशून्य हो जाताहै, अति गुह्यवातभी प्रकाश कर बैठताहै और कभी गीत गाताहै, कभी हंसता तथा कभी रोताहै।

विषज उन्माद लक्षण।

विष या विषाक्त द्रव्य भोजन करनेसे विषज उन्माद पैदा होता है। इसमें रोगीकी आंखे लाल, मुख काला, अन्तरमें दीनता, चेतना नाश, बल, इन्द्रिय शक्ति और कान्तिका ह्रास होताहै।

सांघातिक लक्षण।

जिस उन्मादमें रोगी सर्व्वदा ऊर्द्ध या अधोमुख रहै और अतिशय क्षय, दुर्व्वल, तथा निद्राशून्य हो तो उसकी मृत्यु होनेकी सम्भावनाहै।

भुतोन्माद।

उक्त कई प्रकारके उन्मादके सिवाय भुतोन्माद नामक एक प्रकारका उन्माद है। मनुष्य शरीरमें ग्रहोंके आवेशसे भुतोन्माद उत्पन्न होता है। दर्पण आदिका प्रतिविम्ब या जीव शरीरमे जीवात्मा प्रवेशकी तरह ग्रहगणभी रोगीके शरीरमें अदृश्य भावसे प्रविष्ट हो स्व स्व जाति विशेषके अनुसार भिन्न भिन्न लक्षण प्रकाश करतेहैं। देव ग्रहोंकी पूर्णिमा तिथि, असुरग्रहोंका प्रातःसन्ध्या और सायंसन्ध्या, गन्धर्व्वग्रहोंका अष्टमी, यक्षग्रहोंका प्रतिपद, पितृग्रहोंकी अमावास्या, नागग्रहोंका पञ्चमी, राक्षसोंका रात और पिशाचोंका चतुर्दशी तिथि मनुष्य शरीरमें प्रवेश करनेका दिन है। भूतोन्माद रोगमें रोगीकी वक्तृताशक्ति, बल, विक्रम, तत्वज्ञान और शिल्पज्ञानादि अमानुषिक भावसे वर्द्धित होताहै। यही भूतोन्मादका साधारण लक्षणहै।

देव, असुर, गन्धर्व्व, यक्ष, पितृ और ग्रहज उन्माद लक्षण।

देवग्रहजनित उन्माद रोगमें रोगी सर्व्वदा सन्तुष्ट, शुचाचार दिव्यमालाकी तरह शरीर गन्धविशिष्ट, तन्द्रायुक्त, संस्कृत भाषी, तेजस्वी, स्थिरदृष्टि वरदाता और ब्राह्मणानुरक्त होताहै।

असुर ग्रहजमें रोगी धर्म्मात्म द्वेष, देव, द्विज, गुरु आदिका दोष भाषी, कुटिल दृष्टि, निर्भीक, दुष्टाचारी और प्रचुर पान भोजन करने परभी तृप्त नही होता। गन्धर्व्व ग्रहजमें रोगी प्रसन्न चित्त नदी तीर या वनमें विचरणशील, सदाचारी, संगीतप्रिय, गन्ध-माल्यादिमें अनुरक्त और मृदु मधुर हंसते हंसते मनोहर नृत्य करताहै। यक्षग्रहजमे रोगीका नेत्र लाल, लाल वस्त्र पहिरनेकी इच्छा, गम्भीर प्रकृति, द्रुतगामी, अल्पभाषी, सहिष्णु और तेजस्वी होताहै, तथा सर्व्वदा किसको क्या दान करे यही कहता फिरता है। पितृ ग्रहजमें रोगी शान्तचित्त हो पितरोंका श्राद्ध तर्पणका अभिनय करताहै, पितृभक्त तथा मांस, तिल, गुड़, पायस आदि भोजनकी इच्छा होतीहै। नागग्रह रोगमें रोगी कभी कभी सर्पकी तरह पेटके बलसे चलताहै और जीभसे ओष्ठ बारंबार चाटताहै, तथा इस रोगमें रोगी क्रोधी और गुड़, मधु, दूध आदि द्रव्य खानेको मांगताहै। राक्षस ग्रहजमें रोगी मांस, रक्त, मद्य प्रभृति भोजनका अभिलाषी, अत्यन्त निर्लज्ज, अतिशय निष्ठुर, अति बलवीर्य्यशाली, क्रोधी, कदाचारी, और रातको फिरना चाहताहै। पिशाचदुष्ट उन्मादमें रोगी ऊर्द्धबाहु, उलङ्ग, कृश, रुक्षदेह, सर्व्वदा प्रलापभाषी, गात्र दुर्गन्धयुक्त, अतयन्त अशुचि, भोज्य वस्तुमें अति लोभी, अति भोजनशील, निर्ज्जन वनमें भ्रमण-कारी और विरुद्ध आचरणशील होताहै तथा सर्व्वदा रोदन और इधर उधर घूमता रहताहै।

साध्यासाध्य।

जिस भूतोन्माद रोगीकी दोनो आंखे चढी, चञ्चल, फेन लेहन-कारी, निद्रालु और कांपती रहतीहै, अथवा किसी ऊंचेस्थानसे गिरकर यदि ग्रहोंके द्वारा आविष्ट हो तो पीड़ा असाध्य जानना। १३ वर्ष तक

उन्माद रोग अचिकित्सित रहनेसे सब प्रकारका उन्माद रोग असाध्य होजाताहै।

वातिक उन्माद रोगमें स्नेहपान, पैत्तिकमें विरेचन और श्लैष्मिक उन्मादमें शिरो विरेचन अर्थात् नस्य सुंघ कर कफ निकालना हितकारीहैं। रोज सवेरे पुराना घी पान करनेसे उन्माद रोगमें विशेष उपकार होता है। शिरीषफुल, लहसन, शोंठ, सफेद सरसो, बच, मजीठ, हलदी और पीपल यह सब द्रव्य पीसकर गोली बनाना, गोली छायामें सुखाकर पानीमें घिसकर नास लेना। इसका अञ्जनभी कर सकतेहैं। तर्ज्जन, ताड़न, भयोत्पादन, वांछित द्रव्य देना, सान्त्वना वाक्य हर्षोत्पादन और विस्मित करना उन्माद रोगमें विशेष उपकारीहै। पुराने सफेद कोहड़ेको पीसकर सत्तूमें मिलाकर सेवन कराना। गौरैया (चटक) का छोटा बच्चा जिसको पंख नहो निकलाहै उसका मांस दूधमें पीसकर पिलाना। पीपल, गोलमरिच, सेंधानमक और गोलोचन समभाग सत्तूमें मिलाकर अञ्जन करना। सफेद सरसो, हींग, बच, डहरकरंज, देवदारू, मजीठ, हरीतकी, आंवला, बहेड़ा, सफेद अपराजिता, लताफटकीकी छाल, शोंठ, पीपल, गोलमरिच, प्रियंगु, शिरीषकी छाल, हलदी और दारुहलदी, समभाग छाग दूधमें पीसकर पान, नस्य, अञ्जन और लेपमें व्यवहार करना, या पानीमें मिलाकर स्नान कराना। तथा उक्त द्रव्योंका कल्क बनाकर गोमूत्रके साथ विधि पूर्व्वक घीसे पाककर पीनेसे उन्माद रोग आराम होताहै। देवग्रह, गन्धर्व्वग्रह या पितृग्रहसे आविष्ट होनेपर किसी तरहका क्रूर कर्म्म, या तेज अञ्जन आदि प्रयोग करना उचित नहीहै। सारस्वत चूर्ण, उन्माद गजांकुश, उन्माद भंजन रस, भूतांकुश रस, चतुर्भुज रस

चिकित्सा।

और वातव्याधि रोगोक्त चिन्तामणि, वातचिन्तामणि, चिन्तामणि चतुर्म्मुख आदि औषध और पानीय कल्याणक घृत, और कल्याण घृत, चैतस घृत, शिवाघृत, महापैशाचिक घृत, नारायण तैल, महानारायण तैल, मध्यम नारायण तैल, हिमसागर और विष्णु तैल आदि विचारकर प्रयोग करनेसे उन्मादरोग आराम होताहै।

पथ्यापथ्य। जिस आहार विहारसे वायु शान्त हो पेट साफ रहे और शरीर चिकना हो वही सब आहार विहार उन्माद रोगीका पथ्यहै। उन्माद रोगीको पानी और अग्निके पास या किसी ऊंचे स्थानपर रखना उचित नहीहै। मूर्च्छा रोगमे जो सब पानाहारके नियम लिख आयेहै उन्मादमेभी वही पालन करना चाहिये।

अपस्मार।

अपस्मारका लक्षण और निदान। अपने अपने निदानके अनुसार वायु पित्त और कफ, अत्यन्त कुपित होनेके अपस्मार रोग उत्पन्न होता है। चलित भाषामें इसको "मिरगी" कहते हैं। ज्ञानशून्यता, दोनो आंखोकी विकृति, मुखसे फेन वमन और हात पैर पटकना यही कई एक अपस्मार रोगके साधारण लक्षण है। अपस्मार रोग उत्पन्न होनेके पहिले हृदय कम्पन, और शून्यता, पसीना निकलना, अत्यन्त चिन्ता, मोह, निद्रानाश यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होतेहैं। अपस्मार चार प्रकार वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज। अपस्मार रोग प्रकाशित न होकर १२ दिन १५ दिन या १ मास अथवा उससेभी कमी बेशी दिनके अन्तरपर प्रकाशित होताहै।

वातज अपस्मारमें कम्प, दांतो लगना, फेन वमन और श्वास जोरसे चलतीहै, तथा रोगी चारो तरफ काला या अरुणवर्ण रूखा देह आदि नाना प्रकारकी मिथ्या मूर्त्ति देखताहै। पित्तजमें शरीर गरम, प्यास, मुख, आंख, मुखका फेन, पीतवर्ण तथा रोगीको सब वस्तु पीत या लोहित वर्ण अथवा चारो तरफ पीला या लोहित वर्ण कुछ मिथ्यारूप दिखाई देताहै। तथा सारा जगत अग्निसे वेष्टित उसको मालूम होताहै।

वातज लक्षण।

कफज अपस्मारमें रोगीका मुख, आंख और मुखका फेन सफेद रंग, बदन शीतल, भार और रोमांचित होताहैं तथा चारो तरफ श्वेतवर्ण मिथ्या मूर्त्ति दिखाई देतीहै। वातज पित्तजकी अपेक्षा इसमे देरसे होशमें आताहै। यही तीन दोषजात अपस्मारके लक्षण समूह मिले हुए मालूम होनेसे उसको सन्निपातज अपस्मार कहते हैं।

कफज लक्षण।

सन्निपातज अपस्मार, क्षीण व्यक्तिका अपस्मार और पुराना अपस्मार असाध्यहै। अपस्मार रोगमें बार बार कम्प, शारीरिक क्षीणता, दोनो भौंका फरकना और नेत्र विकृति ; यही सब लक्षण लक्षित होनेसे रोगीकी मृत्यु होतीहै।

सन्निपातज लक्षण।

गर्भाशयकी विकृति, रजःस्रावका अभाव या कमी, स्वामीसे अस्नेह, निठुराचरण या इन्द्रिय चरितार्थ शक्तिकी कमी वैधव्य आदि नानाविध शोकादिसे मनःपीड़ा, देहमें खूनका आधिक्य या कमी, मलबद्धता, अजीर्ण आदि कारणोंसे युवती स्त्रीको भी एक प्रकार अपस्मार रोग

अपस्मार या हिष्टीरिया।

उत्पन्न होता है, इसको संस्कृतमें योषापस्मार और अङ्गरेजी में "हिष्टिरिया" कहते हैं।

यह रोग उपस्थित होनेके पहिले छातीमें दर्द, तृष्णा, शारीरिक और मानसिक ग्लानि प्रकाश की संज्ञानाश होताहै। अपस्मार रोगकी तरह इसमें भी फेन वमन और आंखका तारा बड़ा नहीं होता।

हिष्टिरिया लक्षण।

किसी किसीको अकारण हंसी, रोदन, चिल्लाना, आत्मीयजनोंपर वृथा दोषारोप और अपनेको वृथा अपराधी समझ दूसरेसे क्षमा प्रार्थना आदि विविध भ्रान्ति लक्षणभी दिखाई देतेहै। अकसर लोग यह लक्षणको देखकर भूतावेशका अनुमान करते हैं। किसी किसी रोगियोंको पेटके नीचेसे एक गोला ऊपरको उठता हुआ मालूम होताहै तथा शरीरके किसी स्थानमें दर्द मालूम होताहै. इसमें सफेद उजियाला देखना या ऊंची आवाज सुननेसे चमक उठतीहै और पुरुष संगकी अतिरिक्त इच्छा होतीहै।

रोग प्रकाश होतेही चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो थोड़े दिन जानेसे यह रोग प्रायः असाध्य हो जाताहै। इसमें होश लानेके लिये मूर्च्छा

चिकित्सा।

रोगकी तरह आंख और मुखमें पानीका छींटा देना। इससे होश न आनेपर मैनसिल, रसांजन, कबूतरकी बीट, सहतमें मिला आंखमे लगाना। जेठीमध, हींग, वच, तगरपादुका, शिरीष बीज, लहसन और कुड़ गोमूत्रमें पीसकर अंजन या नास लेना। यह दो अंजन और नास उन्माद रोगमेंभी उपकारीहै। जटामांसीका नास या धूम लेनेसे पुराना अपस्मारभी आराम होताहै। फांसी लगा मरनेवाले मनुष्यके गलेकी रस्सीका भस्म ठंढे पानीके साथ मिलाकर पीनेसे अपस्मारमे उपकार होताहै। रोज सहतके साथ एक मासाभर

बचका चूर्ण चाटकर दुग्धान्न भोजन, सफेद कोंहड़ेके पानीमें जेठी मध पीसकर सेवन और दशमूलका काढ़ा पीनेसे अपस्मार रोग आराम होताहै। कल्याण चूर्ण, वातकुलान्तक, चण्डभैरव रस, स्वल्प और वृहत् पञ्चगव्य घृत, महाचैतस घृत, ब्राह्मीघृत, पलंकषाद्य तैल, और मूर्च्छा रोग तथा वातव्याधिमें लिखी औषध, घृत और तैलादि दोष प्रकोपादिका विचारकर अनुपान विशेषके साथ अपस्मार रोगमें देना चाहिये।

योषापस्मारमेंभी मूर्च्छा रोगकी तरह उपाय अवलम्बन करना। फिर मूर्च्छा और अपस्मार रोगोक्त औषध, घृत और तैल प्रयोग करना। रजो लोप होनेसे रक्तस्रावका उपाय करना चाहिये। हमारा मूर्च्छान्तक तैल और "कुमुदासव" योषापस्मारकी श्रेष्ठ औषधहै।

पथ्यापथ्य। मूर्च्छा और उन्माद रोगके पथ्यापथ्यकी तरह इसमेंभी पालन करना।

वातव्याधि।

रूक्ष, शीतल, लघु या अल्प भोजन, अतिशय मैथुन, अधिक रात्रि जागरण, अतिशय वमन विरेचनादि सेवन, अधिक रक्तस्राव, साध्यातीत उल्लङ्घन, अधिक तैरना, चलना या कसरत; शोक, चिन्ता किम्वा रोगादिसे धातुक्षय होना, मलमूत्रादिका वेग रोकना, चोट लगना, उपवास और किसी तेज सवारीसे गिर जाना प्रभृति कारणोंसे वायु कुपित हो वातव्याधि रोग उत्पादन करताहै। वायु विकारकी

निदान।

गिनती नहीहै । शास्त्रमें ८० प्रकारका वातव्याधि लिखाहै पर सबका नाम नही पाया जाता, इससे शास्त्रमें वायुरोग जितने प्रकारके कथितहैं हम यहा उतनही प्रकारके नाम और लक्षण आदि लिखतेहैं, बाकोके नाम निर्दिष्ट न होनेपरभी विचार पूर्व्वक वायु नाशक चिकित्सा करना चाहिये। कई प्रकारके वात-व्याधिमें कफ और पित्तका विशेष संस्रव रहताहै, चिकित्साके समय इसकाभी विचार कर वही दोष नाशक औषध देना चाहिये।

आक्षेप, अपतन्त्रक और अपतानक लक्षण ।

कुपित वायु नाड़ी समूहोंमें रहकर शरीरको बार बार इधर उधर फिरावे तो उसको आक्षेप वातव्याधि कहतेहैं। जिस रोगमें वायु हृदय, मस्तक, और ललाटमें पीड़ा पैदाकर देहको धनुष की तरह नोचा और टेढ़ा करे उसको अपतन्त्रक कहतेहैं। इस रोग में रोगी मूर्च्छित, निर्निमेष या निमीलित चक्षु और संज्ञाहीन हो जाताहै तथा कण्ठसे श्वास और कबूतरकी तरह शब्द निकलताहै। जिसमें दृष्टिशक्तिका नाश, संज्ञालोप और कंठसे अव्यक्त शब्द निकलताहै उसको अपतानक कहतेहैं। इस रोगमें जब वायु हृदयमें जाताहै तभी संज्ञानाश आदि रोग प्रकाशित होताहै तथा हृदयसे हट जानेपर रोगी स्वस्थ होताहै। कुपित वायु कफके साथ मिलकर समुदय नाड़ीका अवलम्बन कर जब दण्डकी तरह शरीरको स्तम्भित और आकुञ्चितादि शक्तिको नष्ट करताहै तब उसका दण्डापतानक कहतेहैं। जिस रोगमें देह धनुषकी तरह नोचा होताहै उसको धनुस्तम्भ कहतेहैं। अन्तरायाम और वहि-रायाम भेदसे धनुस्तम्भके दो प्रकारहै। अति कुपित वेगवान वायु अंगुलि, गुल्फ, जठर, वक्षस्थल, हृदय और गलेको वायु समूहोंको खींचनेसे रोगीका गर्द्दन सामनेकी तरफ नोचा हो जाताहै इसको

अन्तरायाम कहतेहैं। तथा इसमें रोगीकी आखें स्तब्ध, चहुआ बंद होकर पार्श्वद्वय टूट पड़ताहै और कफ निकलताहै। वही वायु पीठके स्नायु समूहोंको खोचनेसे रोगी पीठके तरफ टेढ़ा हो जाता है इसको वहिरायाम कहतेहैं। वहिरायाममें छाती, कमर और जंघा टूटनेकी तरह मालूम होताहै; यह प्राय: असाध्यहै। गर्भपात, अधिक रक्तस्राव या चोट लगना आदि कारणोंसे धनुस्तम्भादि रोग असाध्य जानना।

पक्षाघात या एकांग वात लक्षण।

कुपित वायु देहके आधे भागमे फैलनेसे उस भागकी नाड़ी और स्नायु समूह संकुचित या सूख जाने तथा सन्धिस्थान टूटनेसे वह भाग बेकाम हो जाताहै; इस रोगको पक्षाघात (लकवा) या एकांग वात कहतेहैं। यह रोग दो प्रकारका होते देखा गयाहै, किसीके बायें या दहिने भागके एक भागमें और किसीको कमरके ऊपर या नीचे के किसी भागमें उत्पन्न होताहै। पक्षाघात रोगमें वायुके साथ पित्तका अनुबन्ध रहनेसे दाह, सन्ताप और मूर्च्छा; तथा कफका अनुबन्ध रहनेसे पीड़ित अंगोंमें शीतलता, शोथ और अंगोंको गुरुता आदि लक्षण लक्षित होतेहैं। पित्त या कफका अनुबन्ध न रहनेसे केवल वायुका पक्षाघात उत्पन्न हो तो वहभी असाध्य जानना। शरीरके आधे भागमें न होकर सर्व्वांगमें यह पीड़ा होनेसे उसको सर्व्वांग रोग कहतेहैं।

अर्द्दित लक्षण।

सर्व्वदा जोरसे बोलना, कठिन द्रव्य चिबाना, हंसना, जम्हाई लेना, भारवहन तथा विषम भावसे शयनादि कारणोंसे वायु कुपित हो मुखका अर्द्धभाग और गर्द्दनको टेढ़ा कर शिर:कम्प, वाक्यरोध और

नेत्रादिसे विक्कति उत्पादन करताहै ; इसको अर्दित रोग कहतेहैं। मुखके जिस तरफ अर्दित रोग पैदा होताहै उस तरफका गर्दन, डाढो और दांतमें दर्द होताहै। इस रोगमें वायुका आधिक्य रहनेसे लालास्राव, दर्द, कम्प, फरकन, हनुस्तम्भ (चहुआ बैठना) वाकरोध, ओष्ठद्वयमें शोथ और शूलको तरह दर्द होताहै। पित्तके आधिक्यसे मुख पोला, ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा और दाह यही सब उपसर्ग दिखाई देतेहैं। कफके आधिक्यसे गाल, मस्तक और मन्या (गरदनको शिरा)में शोथ और स्तम्भ होताहै। जो अर्दित रोगी क्षीण, निमेषशून्य, अति कष्टसे अव्यक्तभाषी और कांपताहो अथवा जिसका रोग ३ वर्षका पुराना हो गयाहै ऐसे रोगीके आराम होनेका आशा नहो रहती।

दतुवनके बाद जोभी करते समय या कड़ी वस्तु चिवानेपर किम्वा किसी तरहसे चोट लगनेपर हनुमूलको वायु कुपित हो हनुद्वय (दोनो चहुआ) को शिथिल करताहै इससे मुख बंद हो जाताहै, खुलता नहो, अथवा खुला रहनेपर बंद नहो होता, इसको हनुग्रह कहतेहैं। दिवा निद्रा, विषम भावसे गरदन रखना विक्षत या ऊर्द्ध नेत्रसे देखना आदि कारणोंसे कुपित वायु कफयुक्त हो मन्या अर्थात् गरदनको दोनो नाड़ियोंको स्तम्भित करताहै, इससे गरदनका इधर उधर फिराना बन्द होजाताहै इस रोगको मन्याग्रह कहतेहैं। कुपित वायु वाग्वाहिनी शिरामें जानेसे, जिह्वा स्तम्भ रोग उत्पन्न होता है। इससे रोगोका खाना पोना और बोलना बन्द हो जाताहै। गरदनके नाड़ियोंमें कुपित वायु जानेसे शिराग्रह या शिराग्रह नामक रोग पैदा होताहै, इससे शिरायें सब रूखो, वेदनायुक्त और कृष्णवर्ण होतोहै तथा रोगो

(हनुग्रह, मन्याग्रह, जिह्वास्तम्भ शिराग्रह और रधृसीके लक्षण।)

शिर हिलाया हुआ नहीं सकता। इसको स्वभावतःही असाध्य जानना। जिस वातव्याधिमें पहिले स्फिक (चूतड़) फिर क्रमशः कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जंघा और पैरोंको स्तब्धता, वेदना और सूई गड़ानेकी तरह दर्द हो तो उसको गृध्रसी वात कहतेहैं, इसमें वाताधिक्य रहने से बार बार स्पन्दन तथा वायु और कफ दोनोंके आधिक्यसे तन्द्रा, देहका भारीपन और अरुचि यही सब लक्षण प्रकाशित होतेहैं। बाहुके पीछेकी तरफसे अंगुली तक जो सब नाड़ी विस्तृतहै, वायुसे वह सब शिरायें दूषित होनेसे, बाहु अकर्म्मण्य अर्थात् आकुञ्चन प्रसारणादि क्रियाशून्य होताहै, इसको विश्वची रोग कहतेहैं। कुपित वायु और दुषित रक्त दोनो मिलकर जानुमें सियारके सिरकी तरह एक प्रकार शोथ पैदा होताहै, इसको क्रोष्टुक शीर्ष कहतेहै। कमरकी कुपित वायु यदि एक पैरके उपर जङ्घाकी बड़ी शिराको तानेतो खञ्ज और दोनो पैरके जंघाको बड़ी शिराओंको तानेतो पंगु रोग उत्पन्न होताहै। चलती वक्त यदि पैर कांपेतो उसको लाप खञ्ज कहतेहै। इस रोगमें सन्धि समूह शिथिल होता जाताहै। असम अर्थात् नीचे उपर पैर रखना या अधिक परिश्रमसे वायु कुपितहो गुल्फमें दर्द पैदा करे तो उसको वातकण्टक कहतेहैं। सर्व्वदा भ्रमण करनेसे पित्त, रक्त और वायु कुपित होनेसे पायदाह नामक रोग उत्पन्न होताहै। दोनो पैर स्पर्शशक्तिहीन,बार बार रोमांचित,झिन झिन और दर्द हो तो उसको पादहर्ष कहतेहै,साधारण झिन झिनके अपेक्षा इस रोगको तकलीफ देरतक रहतीहैं। वायु और कफ ये दो दोष कुपित होनेसे पादहर्ष रोग पैदा होताहै। कंधेकी वायु कुपित हो कंधेका बन्धन स्वरूप कफको सुखावेतो अंसशोष रोग होताहै, यह केवल वातजहै। फिर वही कंधेकी कुपित वायु शिरा समूहोंको संकुचित करनेसे अववाहुक रोग

उत्पन्न होता है। वायु और कफ ये दो दोषसे अववाहुक रोग पैदा होताहै। कफसंयुक्त वायु शब्दवाहिनी धमनी समूहोंको दूषित करनेसे मनुष्य गूंगा, नाकसे बोलना या तोतला भाषी होताहै। जिस रोगमें मलाशय या मूत्राशयसे लेकर गुह्यदेश, लिङ्ग या योनि तक फाड़नेकी तरह दर्द हो तो उसको तूनी तथा वही दर्द पहिले गुह्य, लिङ्ग या योनिसे उठकर प्रबल वेगसे पाकाशयमें जाय तो उसको प्रतितूनी कहतेहैं। पाकाशयमें वायु बंद रहनेसे उदर स्फीत, वेदनायुक्त और गुड़ गुड़ शब्द हो तो उसको आध्मान रोग कहतेहैं। वही दर्द पाकाशयमें न हो आमाशयसे उठे और पेट या पार्श्वद्वय स्फीत न होतो उसको प्रत्याध्मान कहतेहैं। कफसे वायु आहत होनेसे प्रत्याध्मान रोग उत्पन्न होताहै। नाभीके नीचे पत्थरके टुकड़े की तरह कठिन, उपरकी तरफ फैला हुआ, ऊंचा तथा सचल या अचल ग्रन्थि विशेष उत्पन्न होनेसे उसको अष्ठीला कहतेहैं। अष्ठीला टेढ़ी होतो उसको प्रत्यष्ठीला कहतेहैं। ये दोनों रोगमें मलमूत्र और वायु बन्द हो जाताहै। सर्व्वांग विशेषकर मस्तक कांपनेसे उसको वेपथु तथा पैर, जङ्घा, ऊरू और करमूल मुरक जानेसे खल्ली कहतेहैं।

साध्यासाध्य।

सब प्रकारकी वातव्याधि कष्टसाध्यहै; रोग उत्पन्न होतेही विधिपूर्व्वक चिकित्सा न करनेसे प्रायः असाध्य होजाताहै। पक्षाघात (लकवा) आदि वातव्याधिके साथ विसर्प, दाह, अत्यन्त वेदना मलमूत्रका रोध, मूर्च्छा, अरुचि, अग्निमान्द्य; अथवा शोथ, स्पर्श शक्तिका लोप, अंग भंग, कम्प, उदराध्मान प्रभृति उपद्रव मिला रहनेसे और रोगीका बल मांस क्षीण होनेसे प्रायः आराम होनेकी आशा नही रहतीहै।

घृत तैलादि स्नेह प्रयोगही सब प्रकारके वातव्याधिकी साधारण चिकित्साहै। अपतन्त्रक और अपतानक आदि रोगोंमें होशमें लानेके लिये तेज नास लेना उचितहै। गोलमरिच, सेजनकी बीज, विड़ंग और तुलसीका छोटा पत्ता समान भाग चूर्णकर नास लेनेसे अपतन्त्रक आदि रोगमें होश आताहै। बड़ीहर्र, लाभ, रास्ना, सेन्धानमक और थैकल ; इन सबका चूर्ण अदरखके रसमें मिलाकर पीनेसे अपतन्त्रक रोग आराम होताहै। अपतानक रोगमें दशमूलके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना, भोजनके पहिले गोलमरिचका चूर्ण खट्टे दहीमें मिलाकर पीना अपतानक रोगमें उपकारीहैं। पक्षाघात रोगमें उरद, कंवाचकी जड़, एरण्ड मूल और बरीयाराके काढ़ेमें हींग और सेंधानमक मिलाकर पिलाना। पीपलामूल, चितामूल, पीपल, सोंठ, रास्ना और सैन्धव इन सबका कल्क और उरदके काढ़ेके साथ यथाविधि तैल पाककर मालिश करना। अथवा उरद, कंवाचकी जड़, अतीस, एरण्डमूल, रास्ना, शुल्फा और सेंधानमक इन सबका कल्क और तैलका चौगूना उड़द और बरियाराका काढ़ा अलग अलग तैलमें पाककर मालिश करना। अर्द्दित रोगमें मुख खुला रहनेसे दोनो अंगूठेसे हनु और दोनो तर्जनीसे डाढ़ो दबाकर मुह बन्द करना। हनु शिथिल हो जानेसे ज्यांका त्यों रहने देना। मुख स्तब्ध हो जानेसे स्वेद देना उचितहै। लहसन कूटकर मखनके साथ खानेसे अर्द्दित रोग आराम होताहै। बरियारा, उड़द, कवांचकी जड़, गंधतृण और एरण्डमूल इन सबका काढ़ा पीनेसे और वही काढ़ेकी नास लेनेसे अर्द्दित, पक्षाघात और विश्वची रोग आराम होताहै। मन्या स्तम्भ रोगमें कुक्कुट डिम्बके द्रव भागमें लवण और घी मिला

चिकित्सा।

गरमकर ग्रीवामें मालिश करना। अश्वगन्धाकी जड़का प्रलेप देनेसे और सरसोंका तेल मालिश करनेसे मन्यास्तम्भ आराम होताहै। वाग्वाहिनी शिरा विकृत होनेसे, घृत तैल प्रभृति स्नेह पदार्थका कुल्ला उपकारी है। विश्वची और अववाहक रोगमें दशमूल, बरियारा और उरद इन सबके काढ़ेमें तेल और घृत मिलाकर रात्रि भोजनके बाद नास लेना। बाहुशोष रोगमें मरिचनके साथ दूध औटाकर पान करना। गृध्रसी रोगमें हलकी आंचपर निर्गुण्डीका काढ़ा बनाकर पिलाना। एरण्डमूल, बेलकी छाल, बृहती, और कंटकारी इन सबका काढ़ा सोचल नमक मिलाकर पीनेसे गृध्रसीजन्य वङ्क्षण वस्तिकी स्थाई दर्द आराम होताहै। त्रिफलेके काढ़ेके साथ एरण्ड तैल मिलाकर पीनेसे गृध्रसी और उरुग्रह आराम होताहै। दशमूल बरियारा, रास्ना, गुरिच और सोंठ इसके काढ़ाके साथ एरण्ड तैल मिला पान करनेसे गृध्रसी, खंज और पंगु रोग आराम होताहै।

आध्मान रोगमें पीपलका चूर्ण २ तोले, निसुतकी जड़का चूर्ण ८ तोले, चीनी ८ तोले एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा महतके साथ सेवन करना। देवदारु या कुड़, शुलफा, हींग और सेंधा नमक कांजीमें पीस गरम कर लेप करनेसे शूल और आध्मान रोग आराम होताहै। प्रत्याध्मान रोगमें वमन, लङ्घन, अग्निदीपक, पाचक औषध प्रयोग और पिचकारी देना उपकारीहै। शिराग्रह या शिरोग्रह रोगमें दशमूलका काढ़ा और बड़े नीबूके रससे तैलपाककर मालिश करना। अष्ठीला और प्रत्यष्ठीला रोगकी चिकित्सा गुल्म रोगकी तरह करना। तूनी और प्रतितूनी रोगमें स्नेह पिचकारी देना उचितहै हींग और जवखार मिला गरम घी पान करना। खल्ली रोगमें तेलके

साथ कुड़, सैन्धानमक और चुक्र मिला गरम कर मालिश करना। वातकण्टक रोगमें जोंक प्रभृतिसे रक्त मोचन, एरण्ड तैल पान और गरम लोहेसे पीड़ित स्थानमें दागना उचितहै। क्रोष्टकशीर्ष और पाददाह रोगकी चिकित्सा वातरक्त रोगकी तरह करना। मसूर और उड़दका आटा पानीमें औटाकर लेप करनेसे पाद दाह रोग शान्त होताहै, अथवा दोनो पैरमें मखन मालिश कर सेंक करना। पादहर्ष रोगमें कुब्ज प्रसारिणी तैल उपकारीहै।

सब प्रकारके वातव्याधिमें तैल मर्द्दन करना प्रधान चिकित्साहै।

शास्त्रीय औषध और तैलादि।

तैलकी उपकारिता और रोगकी अवस्था विचारकर स्वल्प विष्णुतैल, वृहत् विष्णु तैल, नारायण तैल, मध्यनारायण तैल, वायुच्छाया सुरेन्द्र तैल, माषवलादि तैल, सैन्धवाद्य तैल, महानारायण तैल, सिद्धार्थक तैल, हिमसागर तैल, पुष्पराज प्रसारिणी तैल, कुब्ज प्रसारिणी तैल और महामाष तैल आदि प्रयोग करना। सेवनके लिये रास्नादि काढ़ा माषवलादि काढ़ा, कल्याणावलेह, स्वल्प रसोनपिंड, त्रयोदशांग-गुग्गुलु, दशमूलाद्य घृत, छागलाद्य और वृहत् छागलाद्य घृत, चतुर्मुख रस, चिन्तामणि रस, वातगजांकुश, वृहत् वातगजांकुश योगेन्द्र रस, रसराज रस, चिन्तामणि रस, वृहत् वातचिन्तामणि रस आदि औषध विचारकर प्रयोग करना।

वातव्याधि मात्रमें स्निग्ध और पुष्टिकर आहारादि उपकारीहै।

पथ्यापथ्य।

मूर्च्छा रोगमें पानाहार जो सब कह आए हैं वही सब और रोहित मछलीका शिर और मांस रस प्रभृति पुष्टिकर द्रव्य भोजन कराना। स्नानादि मूर्च्छा रोगके नियमानुसार करना चाहिये। केवल पक्षाघात (लकवा) रोगमें कफका संस्रव रहनेसे अथवा और कोई वात-

व्याधिमें कफका उपद्रव या ज्वरादि हो तो गरम पानीसे कदाचित् स्नान करना उचितहै तथा यावतीय शैत्यक्रिया परित्याग करना चाहिये। मूर्च्छा रोगमें जो सब आहार विहार मना कियाहै, साधारण वातव्याधिमें भी वही सब मनाहै।

वातरक्त।

निदान।

अतिरिक्त लवण, अम्ल, कटु, चिकना, गरम, कच्चा या देरसे हजम होनेवाला पदार्थ भोजन, जलचर और आनूपचर जीवका सूखा या सड़ा, मांस भोजन, अधिक मांस भोजन; उरद, कुरथी, तिल, मूली, सीम, उखका रस, दही, कांजी, शराब आदि द्रव्य भोजन; संयोग विरुद्ध द्रव्य भोजन, पहिलेका आहार जीर्ण न होनेपर फिर भोजन, क्रोध, दिवा निद्रा और रात्रि जागरण, यह सब कारण तथा हाथी, घोड़ा, या ऊंटके सवारी पर अतिरिक्त भ्रमण आदि कारणोंसे रक्त गरम हो कुपित वायुसे मिलकर वातरक्त रोग पैदा होताहै। यह रोग पहिले पादमूल या हस्तमूलसे आरम्भ हो फिर मूषिक विषकी तरह क्रमश: सर्व्वांगमें व्याप्त होताहै। वातरक्तप्रकाशित होनेसे पहिले बहुत पसीना निकलना या एकदम पसीना बंद होना, जगह जगह काला काला दाग और शून्यता, किसी कारणसे कही घाव होनेपर उसका जलदी आराम न होना और दर्द, गांठोकी शिथिलता, आलस्य, अवसन्नता, जगह जगह फोड़िया निकलना और जांनु, जंघा, ऊरु, कमर, कंधा, हाथ, पैर, तथा सन्धिसमूहोंमें सूची विद्धवत् दर्द, फरकन,

फाड़नेकी तरह कष्ट, भारबोध, स्पर्श शक्तिकी अल्पता, खजुली, सन्धियोंमें बार बार दर्दका पैदा होना और बदनपर चिंटी चलनेकी तरह मालूम होना यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होताहै।

भिन्न भिन्न प्रकारके लक्षण।

वातरक्तमें वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे, शूल, स्फुरण, भंगवत् पीड़ा, रूक्ष शोथ, शोथ स्थानका काल या श्यामवर्ण होना, पीड़ाके सब लक्षणही कभी अधिक कभी कम; नाड़ी, अंगुलि और सन्धियोंका संकोच, अंग वेदना, अत्यन्त यातना, शीतल स्पर्शादिसे द्वेष और अनुपकार, शरीरकी स्तब्धता, कम्प, स्पर्श शक्तिकी कमी, यही सब लक्षण लक्षित होताहै। रक्तका प्रकोप अधिक रहनेसे ताम्रवर्ण शोथ, उसमे कण्डु और क्लेद स्राव, अतिशय दाह और सूची विद्धवत् वेदना, स्निग्ध और रूक्षक्रियासे रोगका शान्त न होना। पित्तके आधिक्यमें दाह, मोह, पसीना आना, मूर्च्छा, मत्तता, और तृष्णा होतीहै। शोथ स्थान छूनेसे दर्द, शोथ रक्तवर्ण और दाहयुक्त, स्फीत, पाक और उष्माविशिष्ट होता है। कफके आधिक्यसे स्तैमित्य, गुरुता, स्पर्श शक्तिकी अल्पता, सर्व्वांग चिकना, शीतल स्पर्श, खजुली और थोड़ा दर्द होताहै। दो दोष या तीन दोषके आधिक्यसे वही सब दोष मिले हुए मालूम होतेहै।

साध्यासाध्य।

एक दोषजात और थोड़े दिनका वातरक्त साध्य तथा रोग एक वर्षका होनेसे याप्य होता है। इसके सिवाय द्विदोषज वातरक्तभी याप्यहै। त्रिदोषज वातरक्त रोगमें निद्रानाश, अरुचि, श्वास, मांस पचन, शिरो वेदना, मोह, मत्तता, व्यथा, तृष्णा, ज्वर, मूर्च्छा, कम्प, हिक्का, पंगुता, विसर्प, शोथका पकना, सूची विद्धवत् अत्यन्त यातना, भ्रम, क्लान्ति, अंगुलियां काटेढ़ा होना, स्फोटक, दाह, मर्म्मवेदना और

अर्व्वुद यही सब उपद्रवयुक्त अथवा केवल मोह उपद्रवयुक्त वातरक्त असाध्य है। जिस वातरक्तमें पादमूलसे जानुतक पीड़ा व्याप्त रहती है, त्वक दलित और विदीर्ण हो जाता है, वहभी असाध्य जानना।

वातरक्त रोगका पूर्व्वरूप प्रकाश होतेही चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो सवरूप प्रकाशित होनेसे प्राय: असाध्य हो जाता है। जिस स्थानकी

चिकित्सा।

स्पर्शशक्ति नष्ट हो गई है वहा जोंक लगाकर या किसी अस्त्रसे काटकर रक्त निकालना चाहिये। अंग सूख जानेपर या वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे रक्त निकालना उचित नहीहै। स्नेहयुक्त विरेचक औषध और स्नेह द्रव्यको पिचकारी देना वातरक्तमें हित कर है। विरेचनके लिये तीन या पांच अथवा रोगीके वलके अनुसार उससेभी अधिक या कम वड़ीहर्रै पुराने गुड़के साथ पीसकर खिलाना चाहिये। अमिलतासकी गूदो, गुरिच, और अड़ुसेकी छालके काढेके साथ रेड़ीका तेल पीनेसे विरेचन हो वातरक्त रोग आराम होताहै। किसी स्थानमें दर्द रहनेसे गृहधूम, बच, कूठ, सोआ, हरिद्रा और दारुहरिद्रा एकत्र दूधमें पीसकर लेप करनेसेभी वातरक्त शान्त होताहै। काढ़ा, कल्क, चूर्ण या रस चाहे जिस उपायसे गुरिचका सेवन वातरक्तमें उपकारीहै। अमृतादि, वासादि, नवकार्षिक और पटोलादि काढ़ा, निम्वादि चूर्ण, कैशोर-गुग्गुलु, रसाभ्र गुग्गुल, वातरक्तान्तक रस, गुडुच्यादि लौह, महा तालेश्वररस, विश्वेश्वररस, गुड़ूचीघृत, अमृताद्य घृत, वृहत् गुडूच्यादि तैल, महारुद्र गुड़ूची तैल, रुद्रतैल, महारुद्र तैल और महापिण्ड तैल आदि औषध और कुष्ट रोगोक्त पञ्चतिक्त घृत गुग्गुलु आदि कई औषध विचारकर वातरक्त रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य ।

दिनको पुराने चावलका भात, मूग चनेकी दाल, तीती तरकारी अथवा परवर, गुल्लर, करेला, सफेद कोंहड़ा आदिकी तरकारी; नीमका पत्ता, श्वेत पुनर्नवा, और परवरके पत्तेको शाक खाना उपकारी है। रातको पूरी या रोटी और ऊपर कही तरकारी; कम मीठेका कोई पदार्थ खाना और थोड़ा दूध पीना चाहिये; जलपानके समय भिङ्गोया चना खाना वातरक्तके लिये विशेष उपकारी है। तरकारी आदि घीमें बनाना चाहिये।

निषिद्ध द्रव्य ।

नये चावलका भात, गुरुपाक द्रव्य, अम्लपाक द्रव्य भोजन, मछली, मांस, मद्य, सीम, मटर, गुड़, दही, अधिक दूध, तिल, उड़द, मूली, खट्टा, लाल कोंहड़ा, आलु, पियाज, लहसन, लाल मिरचा और अधिक मोठा भोजन, तथा मल मूत्रका वेग रोकना, आगके पास या धूपमें बैठना, कसरत, मैथुन, क्रोध, दिवानिद्रा आदि वातरक्त रोगमें अनिष्टकारक है।

ऊरुस्तम्भ ।

निदान ।

अधिक शीतल, उष्ण, द्रव, कठिन, गुरु, लघु, स्निग्ध या रूक्ष द्रव्य भोजन; पहिलेका खाया पदार्थ अच्छी तरह परिपाक न होतेही भोजन, परिश्रम, शरीरको अधिक चलाना, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण आदि कारणोंसे कुपित वायु, कफ और आमरसयुक्त पित्तको दूषित कर ऊरुमें जानेसे ऊरुस्तम्भ रोग पैदा होता है। इस रोगमें

जरु स्तब्ध, शीतल, अचेतन, भाराक्रान्त और अतिशय वेदनायुक्त होता है तथा जरु (जङ्घा) उठाने या चलानेकी शक्ति नहीं रहती है, इसके सिवाय इस रोगमें अत्यन्त चिन्ता, बदनमें दर्द स्तैमित्य अर्थात् बदन गीले वस्त्रसे ढपा अनुभव, तन्द्रा, वमि, अरुचि, ज्वर, पैरकी अवसन्नता, स्पर्शशक्तिका नाश और कष्टसे चलना यही सब लक्षण दिखाई देते हैं। ऊरुस्तम्भका दूसरा नाम आढ्यवात है। ऊरुस्तम्भ प्रकाशित होनेसे पहिले अधिक निद्रा, अत्यन्त चिन्ता, स्तैमित्य, ज्वर, रोमांच, अरुचि, वमि तथा जंघा और जरु दुर्ब्बल होना, यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होते हैं।

कष्ट सम्भव।

इस रोगमें दाह, सूची विद्धवत् वेदना, कम्प, आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोगीके मृत्युकी सम्भावना है। यह रोग उत्पन्न होतेही चिकित्सा न करनेसे कष्टसाध्य हो जाता है।

चिकित्सा।

जिस क्रियासे कफकी शान्ति हो और वायुका प्रकोप अधिक न हो वैसी चिकित्सा करना चाहिये। तथापि रुक्ष क्रियासे कफको शान्तकर फिर वायुका शान्त करना चाहिये। पहिले स्वेद, लंघन और रुक्ष क्रिया करना उचित है। अतिरिक्त रुक्षक्रियासे वायु अधिक कुपित हो निद्रानाश प्रभृति उपद्रव उपस्थित होनेसे स्नेह स्वेद व्यवहार करना। डहरकरञ्ज का फल और सरसों, किम्बा असगन्ध, अकवन, नीम या देवदारुकी जड़; अथवा दन्ती, मुसाकानी, रास्ना और सरसो; किम्वा जयन्ती, रास्ना, सैजनकी छाल, वच, कुरैया और नीम; इसमेंसे कोई एक योग गोमूत्रमें पीस कर ऊरुस्तम्भमें लेप करना। सरसोंका चूर्ण सहतके साथ मिला कर अथवा धतुरेके पत्तेके रससे पीसकर गरम लेप करना। काले

धतुरेकी जड़, पोस्तकी ढेंड़ी, लहसन, मिरच, कालीजिरी, जयन्ती पत्र, सैजनकी छाल और सरसो यह सब द्रव्य गोमूत्रमें पीसकर गरम लेप करनेसे ऊरुस्तम्भ आराम होता है। त्रिफला, पीपल, मोथा, चाभ और कुटकी इन सबका चूर्ण अथवा केवल त्रिफला और कुटकी यह चार द्रव्यका चूर्ण आधा तोला सहतके साथ सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग आराम होता है। पीपला मूल, भेलावा और पीपल इसका काढ़ा सहत मिलाकर पिलाना। भल्लातकादि और पिप्पल्यादि काढ़ा, गुञ्जाभद्रा रस, अष्टकट्वर तैल, कुष्ठाद्य तैल और महासैन्धवाद्य तैल ऊरुस्तम्भ रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।

दिनको पुराने चावलका भात, कुरथी, मूंग चना और मसूरकी दाल, परवर, गुल्लर, करेला, बैंगन, लहसन अदरख आदिकी तरकारी, छाग, कबूतर या मुरगा आदिके मांसका रस, सहनेपर घी और थोड़ा मट्ठा खानेको देना। रातका पूरी या रोटी उपर कही तरकारी, घी मैदा, सूजी और थोड़ी चिनी मिलाया पदार्थ, मोहनभोग, मिठाई आदि द्रव्य थोड़ा दे सकते हैं। जलपानमें किसमिस, छोहाड़ा, खजूर आदि कफनाशक और वायु विरोधी फल खानेको देना। गरम पानी ठण्ढाकर पीनेको देना। स्नान जितना कम हो उतनाही अच्छा है। विशेष आवश्यक होनेसे गरम पानीसे स्नान करना चाहिये। किन्तु वायुका प्रकोप अधिक होनेसे नदीमें स्नान और स्रोतके प्रतिकूलके तरफ तैरना उपकारी है।

निषिद्ध कर्म।

गुरुपाक द्रव्य, कफजनक द्रव्य, मत्स्य, गुड़, दही, उड़द, पिष्टकादि, अधिक आहार और मल मूत्रका वेग रोकना, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण और ओसमें फिरना आदि ऊरुस्तम्भ रोगमें अनिष्टकारक है।

आमवात ।

विरोध मत्स्यादि संयोग विरुद्ध आहार, स्निग्धान्न भोजन, अति-

निदान और लक्षण ।

रिक्त मैथुन, व्यायाम, सन्तरणादि जल-क्रीड़ा, अग्निमान्द्य, गमनागमन शून्यता आदि कारणोंसे खाये हुए पदार्थका कच्चा रस वायु द्वारा आमाशय और सन्धिस्थल प्रभृति कफ स्थानोंमें एकत्र और दूषित होनेसे आमवात रोग उत्पन्न होता है। अङ्गमर्द, अरुचि, तृष्णा, आलस्य, देहका भारी होना, ज्वर, अपरिपाक और शोथ; यही कई एक आमवातके साधारण लक्षण है।

कुपित आमवातके उपद्रव ।

आमवात अधिक कुपित होनेसे सब रोगकी अपेक्षा अधिक कष्ट दायक होताहै। इसमें हाथ, पैर, मस्तक, गुल्फ, कमर, जानु, ऊरु और सन्धिस्थानोंमें अत्यन्त दर्दयुक्त शोथ उत्पन्न होता है; तथा इसमें दुष्ट आम जिस जिस स्थानमें जाता है उसी स्थानमें बिच्छूके काटनेकी तरह दर्द और अग्निमान्द्य, मुख नाकसे जलस्राव, उत्साह हानि, मुखका बेस्वाद होना, दाह, अधिक मूत्रस्राव, कुक्षिमें शूल और कठिनता, दिवा निद्रा, रातको अनिद्रा, पिपासा, जीमतलाना, भ्रम मूर्च्छा छातीमें दर्द, मलबद्धता, शरीरकी जड़ता, पेटमें शब्द होना और आनाह आदि उपद्रव उपस्थित होता है।

दोषभेदसे लक्षण ।

वातज आमवातमें अधिक शूलवत् वेदना, पैत्तिकमें दाह दाह, शरीर लाल होना; कफमें गीला कपड़ा लपेटनेकी तरह अनुभव, गुरुता और कंडु; यही सब लक्षण अधिक लक्षित होते हैं। दो दोष या तीन दोषके

आधिक्यसे वही सब लक्षण मिले हुए मालूम होते हैं। एक दोषज आमवात साध्य, द्विदोषज याप्य और सन्निपातज तथा सर्व्व देह-गत शोथ लक्षणयुक्त आमवात असाध्य जानना।

पीड़ाके प्रथम अवस्थाही से चिकित्सा करना चाहिये। नहीं तो कष्टसाध्य हो जाता है। लङ्घन, स्वेदन और विरेचन आमवातको प्रधान चिकित्सा है।

चिकित्सा।

बालूकी पोटली गरमकर दर्दके जगह सेंकना, अथवा कपासको बीज, कुरथी, तिल, यव, लाल रेंडोका जड़, मसिना, पुनर्नवा और सनबीज; यह सब द्रव्य या इसमे से जय वस्तु मिले उसको कूट कांजीसें तरकर पोटली बनाना फिर एक हाडीमें कांजी रख एक बहु छिद्र वालासिकोरा ढांक संयोग स्थानको मिट्टीसे बन्दकर देना, फिर वही कांजीकी हाडी आगपर रख तथा ढकनेके उपर वह पोटली रख गरमकर आमवातमें सेंकनेसे दर्द दूर होता है। इसको शङ्कर स्वेद कहते है। सोवा, बच, शोंठ, गोखुर, बरुण छाल, पीत बरियारा, पुनर्नवा, शठि, गन्धाली, जयन्ती फल और हींग यह सब द्रव्य कांजीमें पीस गरमकर लेप करना। कालाजीरा, पीपल, करञ्जके बीजको गूदी और शोंठ, समभाग अदरखके रसमें पीसकर लेप करनेसेभी दर्द जल्दी आराम होता है। तीनकांटेवाले सेंहुडका दूध नमकमें मिलाकर दर्दके जगह लगानेसे भी आराम होता है। विरेचनके लिये दशमूल और शोंठके काढ़ेमें आधी छटाक या कोष्ठानुसार उससे कम मात्रा रेंड़ीका तेल अथवा केवल रेंडीका तेल गरम दूधके साथ पिलाना। त्रिहतके जडका चूर्ण १२ मासे, सेन्धानमक १२ मासे और शोंठ २ मासे; एकमें मिलाकर चार या ६ आने मात्रा कांजीके साथ सेवन करानेसेभी विरेचनहो आमवात शान्त होता है, अथवा केवल

त्रिवृत चूर्णको त्रिवृतकी काढ़ेकी भावना देकर उक्त मात्रा कांजीके साथ सेवन कराना। चितामूल, कुटकी, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, अतीस, और गुरिच, अथवा देवदारु, बच, मोथा, अतीस और हरीतकी, इन सबका चूर्ण गरम पानीके साथ पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करनेसे आमवात आराम होता है। रास्नापञ्चक, रास्नासप्तक, रसोनादि कषाय और महारास्नादि क्वाथ आमवातकी श्रेष्ठ औषध है। विरेचनकी आवश्यकता होनेसे उपर कहे काढ़ोंमें रेड़ीका तेल मिलाकर पान करना। हिङ्ग्वाद्य चूर्ण, अवलम्बुषाद्य चूर्ण, वैश्वानर चूर्ण, अजमोदादि वटक, योगराज गुग्गुलु, वृहत् योगराज गुग्गुलु, सिंहनाद्य गुग्गुलु, रसोनपिण्ड, महारसोनपिण्ड, आमवातारि वटिका, वातगजेन्द्रसिंह, प्रसारणी तैल, वृहत् सैन्धवाद्य तैल, विजय भैरव तैल और वातव्याधि कथित कुब्ज प्रसारणी और महामाष प्रभृति तैल आमवात रोगमें विचार कर प्रयोग करनेसे पीड़ा शान्त होतीहै। हमारा "वातारिमर्द्दन तैल" मालिश करनेसे आमवातकी दर्द जल्दी आराम होताहै। ग्टध्रसी, पक्षाघात प्रभृति वातव्याधिके दर्दमें "वातारिमर्द्दन तैल" व्यवहार करनेसे सब दर्द जल्दी आराम होता है।

ऊरुस्तम्भ रोगमें जो पथ्यापथ्य कह आयेहै, आमवात रोगमें वही सब पालन करना। स्नान गरम पानी-

पथ्यापथ्य।

सेभी नही करना। रूई और फलालेनसे दर्दकी स्थानको बांधना चाहिये। ज्वर होतो भात बंदकर सूखी रोटी, सागू आदि हलका पथ्य खानेको देना।

शूलरोग।

संज्ञा और प्रकार भेद।

पेटमें शूल गड़ानेकी तरह दर्द जिस रोगमें होता है, उसको शूलरोग कहते है। यह रोग आठ प्रकारका है; वातज, पित्तज, श्लेष्मज, वातजपित्तज, वातश्लेष्मज, पित्तश्लेष्मज, सन्निपातज और आमदोषजात। इस आठ प्रकारके सिवाय परिणाम शूल और अन्नद्रव नामक और दो प्रकारका शूलरोगहै। शूलरोग मात्र अतिशय कष्टदायक और कष्टसाध्य है।

निदान।

व्यायाम (कसरत) घोड़ा आदि सवारीपर घूमना, अति मैथुन रात्रि जागरण, अतिशय शीतल जल पान, और मटर, मूग, अरहर, कोदो, रुक्ष द्रव्य, तिक्त द्रव्य, अङ्कुरित धानका भात आदि द्रव्य भोजन; संयोग विरुद्ध भोजन, पहिलेका आहार जीर्ण न होनेपर भोजन, मल, मूत्र, वायु और शुक्रका वेग रोकना, शोक, उपवास और अतिशय हसना या बोलना; यही सब कारणोंसे वायु कुपित होकर वातज शूल उत्पन्न होता है। वातज शूलमें हृदय, पार्श्वद्वय, पीठ, कमर और वस्तिमें सूची वेधवत् या भङ्गवत् वेदना, मल और अधोवायुका रोध; आहार जीर्ण होनेपर शीत और वर्षा ऋतुमें पीड़ा बढ़ना, यही सब लक्षण प्रकाशित होते है।

पित्तज शूल।

क्षार, अति तीक्ष्ण और अति उष्ण द्रव्य भोजन, जिस द्रव्यका अम्लपाक हो ऐसा द्रव्य भोजन, सोम, पीसी तिल, कुरथी, उरदका जूस, कटू और अम्ल रस, मद्य और तैल पान, क्रोध, रौद्र, अग्नि सन्ताप

परिश्रम और अति मैथुन आदि कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो पित्तज शूल उत्पन्न होताहै। इसमें नाभिमें दर्द, तृष्णा, मोह, दाह, पसीना, मूर्च्छा, भ्रम और चोष अर्थात् आगके पास रहनेसे जैसे चसनेकी तरह पीड़ा होतीहै वैसी पीड़ा, यही सब लक्षण लक्षित होतेहै। दोपहर, आधी रात, आहार पचनेके समय और शरत ऋतुमें यह शूल बढ़ता है।

श्लेष्मज शूल।

जलज या जल समीपजात जीवका मांस, फटा दूध, दही, इक्षु रस, पिष्टक, खिचड़ी, तिल, तण्डुल और अन्यान्य कफ वर्द्धक द्रव्य भोजन करनेसे श्लेष्मा कुपित हो श्लेष्मज शूल उत्पन्न होता है। इससे आमाशयमें दर्द, जीमतलाना, कास, देहकी अवसन्नता, मुख और नासिकासे जलस्राव, कोष्ठकी स्तब्धता आदि लक्षण दिखाई देते हैं। आहार करने पर, सवेरे शीत और वसन्त ऋतुमें कफज शूल अधिक प्रकुपित होता है।

त्रिदोषज शूल।

अपने अपने कारणसे वातादि तीन दोष एकसाथ कुपित होनेसे त्रिदोषज शूल पैदा होताहै। इसमे उक्त सब लक्षण मिले हुए मालूम होते है। त्रिदोषज शूल असाध्य है।

आमज शूल लक्षण।

आमज अर्थात् अपक्व रसजात शूल रोग से उदरमें गुड़ गुड़ शब्द होना वमन या वमन वेग, देहकी गुरुता, शरीर आर्द्रवस्त्र आच्छादनकी तरह अनुभव, मलमूत्र रोध, कफस्राव और कफज शूलके अन्यान्य लक्षणभी प्रकाशित होते हैं।

द्विदोषज।

द्विदोषज शूलमें वातकफज शूल वस्ति, हृदय, पार्श्व और पीठ; पित्तकफज शूल कुक्षि, हृदय और नाभि तथा वातपित्तज शूल पूर्व्वोक्त वातज

पित्तज शूल निर्दिष्ट स्थानमें उत्पन्न होता है। वातपैत्तिक शूलमें ज्वर और दाह अधिक होता है।

उक्त शूलोंमें एक दोषजात शूल साध्य, दो दोषजात शूल कष्टसाध्य, त्रिदोषज तथा अतिशय वेदना, अत्यन्त पिपासा, मूर्च्छा, आनाह, देहको गुरुता, ज्वर, भ्रम, अरुचि, क्षीणता और बलहानि आदि उपद्रवयुक्त शूलरोग असाध्य है।

परिणाम शूल।

आहारके परिपाक अवस्थामें जो शूल उत्पन्न होता है। उसको परिणाम शूल कहते हैं। वायुवर्द्धक कारण समूह सेवित होनेसे वायु कुपित हो, कफ और पित्तको दूषित करनेसे यह शूल उत्पन्न होता है।

परिणाम शूलमें दोषाधिक्यके लक्षण।

परिणाम शूलमें वायुका आधिक्य रहनेसे उदराध्मान, पेटमें गुड़ गुड़ शब्द, मल मूत्रका रोध, मनकी अस्वस्थता और कम्प, यही सब लक्षण अधिक लक्षित होते है। स्निग्ध और उष्ण द्रव्य सेवन करनेसे इस शूलमें उपशम दिखाई देता है। पित्तके आधिक्यमें तृष्णा, दाह, चित्तको अस्वस्थता, पसीना और शीतल क्रियासे पीड़ामें उपशम, यही सब लक्षण दिखाई देते है। कटु, अम्ल या लवण रस भोजनसे यह शूल उत्पन्न होता है। कफके आधिक्यमें वमन या वमनवेग, मूर्च्छा और अल्पक्षण स्थायी दर्द होता है। कटु या तिक्त रस सेवन करनेसे इस शूलमें उपशम होता है। दो या तीन दोष मिले हुये लक्षण प्रकाशित होनेसे तथा द्विदोषज या त्रिदोषज परिणाम शूलमें रोगोका बल मांस या अग्निक्षीण होनेसे वह असाध्य होता है।

भुक्त द्रव्यका परिपाक होनेसे या परिपाकके समय अथवा अपक्व अवस्थाओंमें जो अनिर्दिष्ट शूल उत्पन्न होता है, उसको अन्नद्रव शूल कहते हैं यह शूल पथ्य भोजनादिसे शान्त नहीं होता है। कै करानेसे कुछ आराम मालूम होता है।

अन्नद्रव शूल लक्षण।

शूलरोग उत्पन्न होतेही चिकित्सा करना चाहिये। रोग पुराना होनेसे आराम होनेकी आशा नहीं रहती। वातज शूलमें पेटमें स्वेद करनेसे आराम मालूम होता है। मिट्टी पानीमें घोलकर आगपर रखना जब गाढ़ा हो जाय तब वस्त्रको पोटलीमें उसे रख सेंकना। अथवा कपास बीज, कुरथी, तिल, जौ, एरण्ड मूल, तीसी, पुनर्नवा और शण बीज इन सब द्रव्यमें जो मिले उसको कांजीमें पीस गरम कर पोटलीमें बांधकर सेंकनेसे उदर, मस्तक, केहुनी, तूचड़, जानु, पैर, अङ्गुलि, गुलफ, कन्धा और कमरको दर्द जलदी आराम होता है। बिल्वमूल, तिल और एरण्ड मूल एकत्र कांजीमें पीस गरम कर एक पिंड बनाना; वह पिंड पेटपर फिरानेसे शूल आराम होता है। देवदारु, श्वेतवच, कुड़, सोया, हींग और सेंधा नमक कांजीमें पीस गरम कर पेटपर लेप करनेसे वातज शूल आराम होता है। अथवा बेलकी जड़, एरंडकी जड़, चितामूल, शोंठ, हींग और सैन्धव एकत्र पीसकर पेटपर ठंढा लेप करना। बरियारा, पुनर्नवा, एरण्ड मूल, वृहती, कण्टकारी, और गोखरू इसके काढ़ेमें हींग और सेंधा नमक मिलाकर पीना। शोंठ, एरण्ड मूल यह दो द्रव्यका काढ़ा हींग सौचल नमक मिलाकर पीनेसे तुरन्त शूल आराम होता है। हींग, थैकल, शोंठ, पीपल, सौचल नमक, अजवाइन, यवाखार, हरीतकी और सैन्धव सबका समान

वातज शूल चिकित्सा।

वजन चूर्ण चार आनेभर मात्रा ताड़ीके साथ पीनेसे वातज शूल आराम होता है। हींग, त्रैफल, शोंठ, पीपल, गोलमरिच, अजवाईन, सैन्धव, सोचल और काला नमक, एकत्र बड़े नीबूके रसमें पीसकर २ आने या चार आनेभर मात्रा सेवन करनेसेभी वातज शूल शान्त होता है।

पित्तज शूलमें परवरका पत्ता या नीमका कल्कयुक्त दूध, जल किम्वा इक्षुरस पिलाकर वमन कराना।

पित्तज शूल चिकित्सा।

मलवद्ध रहनेसे जेठीमध (मुलेठी)के काढ़ेके साथ उपयुक्त मात्रा एरण्ड तेल पिलाना। अथवा त्रिफला और अमिलतासके गूदोंका काढ़ा घी, चिनी मिलाकर पिलाना। इससे शूल दाह और रक्तपित्त आराम होता है। सबेरे सहतके साथ शतमूलीका रस, किम्वा चिनीके साथ आंवलेका रस पीनेसे, अथवा सहतके साथ आंवलेका चूर्ण चाटनेसे पित्तज शूल आराम होता है। शतमूली, जेठीमध, बरियारा, कुशमूल और गोक्षुर इसका काढ़ा ठंढाकर पीनेसे पित्तज शूलको दाहयुक्त पीड़ा दूर होती है। वृहती, कण्टकारी, गोक्षुर, एरण्डमूल, कुश, काश और इक्षुवालिका, इन सबका काढ़ा पीनेसे प्रवल पित्तज शूलभी शान्त होता है।

कफज शूलमें पहिले वमन और उपवास देना चाहिये। आम-दोष हो तो मोथा, वच, कुटकी, हरीतकी और मूर्व्वाकी जड़ सब समान भाग पीस

कफज शूल।

कर चार आनेभर मात्रा गोमूत्रके साथ पिलाना। पीपल, पीपला मूल, चाभ, चितामूल, शोंठ, सैन्धव, सोचल नमक, काला नमक और हींग एकत्र चूर्णकर दो आने या चार आनेभर मात्रा गरम पानीके साथ सेवन कराना, अथवा वच, मोथा, चितामूल, हरी-

तकी, और कुटकी, इसका चूर्ण चार आनेभर, गोमूत्रके साथ सेवन कराना।

आमज शूलकीभी चिकित्सा कफज शूलकी तरह करना।

आमज शूल चिकित्सा। इसके सिवाय अजवाइन, सेंधा नमक, हरीतकी और सोंठ, एकत्र चूर्णकर चार आनेभर मात्रा ठंढे पानीके साथ सेवन कराना। जिस औषधसे अग्निमान्द्य और अजीर्ण रोगमें आमदोषका परिपाक और अग्नि वर्द्धित होता है आमज शूलमेंभी वही औषध देना चाहिये।

त्रिदोष शूल चिकित्सा। त्रिदोषज शूल, विदारीकन्दका रस २ तोले और पक्के अनार का रस २ तोले, सोंठ, पीपल, गोलमरिच और सेन्धा नमकका चूर्ण ⧸ भर तथा २ आनेभर सहत एकत्र मिलाकर पीना। शङ्खभस्म १ मासा, सैन्धव लवण, सोंठ पीपल और गोलमिरच, इसका चूर्ण २ मासा और हींग २ या ३ रत्ती एकत्र मिलाकर गरम पानीके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज शूल शान्त होता है।

परिणाम शूल चिकित्सा। परिणाम शूलमें एरण्ड मूल, बेलकी जड़, वृहती, कण्टकारी बड़े नीबूकी जड़, पाथरचूर और गोक्षुर मूल इन सबके काढ़ेमें जवाखार, हींग, सैन्धव और एरण्ड तेल मिलाकर पिलाना। इससे दूसरे स्थानोंको दर्दभी शान्त होता है। हरीतकी, सोंठ और मंडूर चूर्ण प्रत्येक समभाग घृत और मधुके साथ सेवन करनेसे परिणाम शूल दूर होता है। शम्बुकादि गुड़िका और नारिकेल क्षार परिणाम शूलकी श्रेष्ठ औषध है।

अन्नद्रव शूलमें अम्लपित्त रोगकी तरह चिकित्सा करना चाहिये।

हमारा शूलनिर्व्वाण चूर्ण। हमारा "शूलनिर्व्वाण चूर्ण" सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल रोग जलदी आराम होता है।

शास्त्रीय औषध।

सामुद्राद्य चूर्ण, तारामण्डुर गुड़, शतावरी मण्डूर, वृहत् शतावरी मण्डूर, धात्री लौह (२ प्रकार) आमलकी खण्ड, नारिकेल खण्ड, वृहत् नारिकेल खण्ड, नारिकेलामृत, हरीतकी खण्ड, श्रीविद्याधराभ्र, शूलगजकेशरी, शूलवर्ज्जिनी वटी, पिप्पली घृत और शूलगजेन्द्र तैल यही सब औषध सब प्रकारके शूलरोगमें विचार कर देना। ग्रहणी रोगोक्त श्रीबिल्व तैल भी शूल रोगमें विशेष उपकारी है।

पथ्यापथ्य।

पीड़ाकी प्रबल अवस्थामें अन्नाहार बन्द कर दिनको दूध बार्लि, दूध सागु और रातको दूध और धानका लावा खानेको देना। पित्तज शूलमें जो मतलाना, ज्वर, अत्यन्त दाह और अतिशय तृष्णा उपद्रव हो तो मधु मिलाकर जौकी लपसी पिलाना। हमारा "सञ्जीवन खाद्य" शूलके प्रबल अवस्थामें देनेमे विशेष उपकार होता है। पीड़ाकी शान्ति होनेपर दिनको पुराने चावलका भात, मागुर, सिङ्गी, कोई आदि छोटी मछलीका रसा सूरण, परवर, बैगन, गुलर, पुराना सफेद कोंहड़ा, सैजनका डंडा, करेला, केलेका फूल आदिकी तरकारी ; आंवला केसरू, द्राक्षा, पक्का पपीता, नारियल और बेल आदि फल ; गरम दूध, तिक्त द्रव्य, कच्चे नारियलका पानी और हींग आदि खादेको देना। तरकारी आदिमें सेंधा नमक मिलाना। तरकारी जितनी कम खाई जाय उतनही अच्छा है। अर्थात् तरकारी बंद कर केवल भातही खाना बहुत अच्छा है। रातको जौकी लपसी, दूध बार्लि, दूध सागु, दूध धानका लावा या हमारा "सञ्जीवन खाद्य" खानेको देना। जलपानमें कोंहड़ेका मुरब्बा, गरीकी बरफी और आवलेका मुरब्बा खानेको देना। इस रोगमें आहारके साथ जलपान न कर आहारके दो घण्टा बाद पानी

पीना उपकारी है। सहनेपर शीतल या गरम पानीसे स्नान करना।

गुरुपाक द्रव्य भोजन, अधिक भोजन, सब प्रकारकी दाल, शाक, बड़ी मछली, दही, दूध, कषाय और शीतलद्रव्य; अम्ल द्रव्य, लाल मिरचा तेज शराब, धूपमें फिरना, परिश्रम, मैथुन, शोक, क्रोध, मलमूत्रका वेग रोकना, रात्रि जागरण, शूल रोगमें अनिष्टकारक है।

निषिद्ध द्रव्य।

उदावर्त्त और आनाह।

अधोवायु, मल, मूत्र जृम्भा, अश्रु, छींक, डकार जीमतलाना, शुक्र, क्षुधा, तृष्णा, दीर्घश्वास और निद्रा; इन सबका वेग धारण करनेसे जो जो रोग उत्पन्न होता है उसको उदावर्त्त कहते हैं।

संज्ञा उदावर्त्त।

अधो वायुका वेग रोकनेसे वायु, मूत्र और मलका रोध, पेटका फूलना, क्लान्ति, उदर और सर्व्वांगमें दर्द, तथा अन्यान्य वातज पीड़ा उत्पन्न होती है। मलवेग रोकनेसे पेटमें गुड़ गुड़ शब्द और शूलवेदना, गुदा काटनेकी तरह दर्द, मलरोध, डकार और कभी कभी मुखसे मल निकलना, यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं। मूत्रवेग रोकनेसे मूत्राशय और लिंगमें शूल कीतरह, कष्टसे मूत्र आना या मूत्ररोध, शिरःपीड़ा, कष्टसे शरीरका वेकाबू होना और वंक्षण द्वय (दोनों पट्ठों)में खींचनेकी तरह कष्ट होता है। जम्हाईका

भिन्न भिन्न वेग रोधने पीड़ाके लक्षण।

वेग रोकनेसे वायुजनित मन्यास्तम्भ, गलस्तम्भ, शिरो रोग और आंख, कान, नाक और मुखरोग उत्पन्न होता है। आनन्द या शोकादि कारणोंसे आंसुका वेग रोकनेसे, मस्तकका भारी होना अति कष्टदायक पीनस और चक्षु रोग उत्पन्न होता है। छींकका वेग रोकनेसे मन्यास्तम्भ, शिरःशूल, अर्द्दित रोग, अर्द्धाव-भेदक (आधा शीशी) और इन्द्रियोंकी दुर्व्वलता यही सब लक्षण लक्षित होते हैं। डकारका वेग रोकनेसे कंठ और मुख भरा रहना, हृदय और आमाशयमें सूची वेधवत् वेदना, अस्पष्ट वाक्य, निःश्वास प्रश्वासमें कष्टबोध, खजुली, कोठ, अरुचि, मेहुंआ आदि मुखमें काला काला दाग, शोथ, पाण्डुरोग, ज्वर, कुष्ठ, जीमतलाना और विसर्प रोग उत्पन्न होता है। शुक्रवेग रोकनेसे मूत्राशय, गुह्य और अण्डकोषमें शोथ, दर्द, मूत्ररोध, शुक्राश्मरी, शुक्र क्षरण और नाना प्रकार कष्टसाध्य मूत्राघात रोग उपस्थित होता है। भूख रोकनेसे अर्थात् भूख लगने पर भोजन नहीं करनेसे तन्द्रा, अङ्गमर्द, अरुचि, श्रान्ति और दृष्टिशक्तिकी दूर्व्वलता आदि उत्पन्न होता है। प्यास रोकनेसे कंठ और मुखमें शोष, श्रवनशक्तिका नाश और छातीमें दर्द यही सब लक्षण प्रकाशित होते है। परि-श्रमके बाद दीर्घश्वासका वेग रोकनेमें हृद्रोग, मोह और गुल्मरोग उत्पन्न होता है। निद्रारोधसे जम्हाई, अङ्गमर्द, आंख और शिरका भारीपन तथा तन्द्रा उपस्थित होती है।

अन्यविध प्रकार भेद।

ऊपर कहे उदावर्त्तके सिवाय कोष्ठाश्रित वायु रूक्ष, कषाय, कटु और तिक्त द्रव्य भोजनादि कारणोंसे कुपित हो और एक प्रकारका उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है। उसमेंभी वही कुपित वायुसे वात, मूत्र, मल, रक्त, कफ और मेदोवहा स्रोत समूह आवृत और सूख जाते है,

इससे हृदय और वस्तिमें दर्द, जीमतलाना, अति कष्टसे वात, मूत्र, पुरीषका निकलना और क्रमशः श्वास, कास, प्रतिश्याय, दाह, मूर्च्छा, तृष्णा, ज्वर, वमि, हुचकी, शिरोरोग, मनकी भ्रान्ति, श्रवण इन्द्रियकी विकृति और अन्यान्य विविध वातज पीड़ा उत्पन्न होती है।

आनाह संज्ञा और लक्षण।

आहार जनित अपक्व रस या पूरीष क्रमशः संचित और विगुण वायु कर्त्तृक बद्ध हो यथायथ रूपसे नहीं निकले तो उसको आनाह रोग कहते हैं। अपक्व रस जनित आनाहमें तृष्णा, प्रतिश्याय मस्तकमें जलन, आमाशयमें शूल और भारीपन, हृदयमें स्तब्धता और डकार बंद होना आदि लक्षण उत्पन्न होते है। मल संचय जनित आनाह रोगमें कमर और पीठकी स्तब्धता, मल मूत्रका रोध, शूल, मूर्च्छा, विष्टा वमन, शोथ, आध्मान, अधो वायुका रोध और अलसक रोगोक्त अन्यान्य लक्षणभी प्रकाशित होते हैं।

उदावर्त्त चिकित्सा।

वायुका अनुलोमक विधानही उदावर्त्तकी साधारण चिकित्सा है। अधोवातरोध जन्य उदावर्त्तमें स्नेह पान, स्वेद और वस्ति (पिचकारी) प्रयोग करना। मयन फल, पीपल, कुड़, बच और सफेद सरसों इनकाा समभाग सबके समान गुड़, पहिले गुड़ पानीमें घोलकर आगपर रखना, खूब औटनेपर थोड़ा दूध और वही सब चूर्ण मिलाकर बत्ती बनाना इसीका फलवर्त्ती कहते हैं। गुह्यद्वारमें यह वर्त्ती प्रयोग करनेसे सब प्रकारका उदावर्त्त रोग आराम होता है। मल वेग धारण जन्य उदावर्त्त रोगमें विरेचक और फलवर्त्ती देना, वदनमें तैल मर्दन, अवगाहन, स्वेद और वस्तिकर्म्म करना चाहिये। मूत्र वेग रोध जन्य उदावर्त्तमें अर्जुन छालका काढ़ा, ककड़ीके बीजका

चूर्ण थोड़ा नमक मिला पानीके साथ सेवन, अथवा वचका चूर्ण सेवन करना । मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी रोगोक्त सब औषध इसमे प्रयोग कर सकते हैं । कृच्छा वेग धारणके उदावर्त्त में स्नेह, स्वेद और वायु नाशक अन्यान्य क्रियाभी करना । अश्रुवेग धारण जनित उदावर्त्तमे तीक्ष्ण अंजनादिसे अश्रु निकालकर रोगीको प्रसन्न रखना । छींक रोधमें मरिचादि तीक्ष्ण द्रव्यका नास या सूर्य्य दर्शण आदि क्रियासे छींकना चाहिये । डकार रोधमें गुरिच, विदारीकन्द, असगन्ध, अनन्तमूल, शतमूली (प्रत्येक २भाग) माषपर्णी, जीवन्ती और जेठीमध यह सब द्रव्य पीसकर वसा, घृत या मोमके साथ मिलाना फिर उसकी बत्ती बनाकर चुरटकी तरह पीना । वमन वेग रोध जन्य उदावर्त्तमें वमन, लङ्घन, विरेचन और तेल मर्द्दन हितकारी है । शुक्रवेग धारण जन्य उदावर्त्त में मैथुन, तेल मर्द्दन, अवगाहन, मद्यपान, मांस रस प्रभृति पुष्टिकर भोजन और पंच तृण मूलका कल्क चौगूने दूधमें औटाना दूध रहजानेपर वही दूध छानकर पिलाना । क्षुधा रोध जन्य उदावर्त्तमें स्निग्ध, उष्ण और रुचिजनक अन्न थोड़ा भोजन तथा सुगन्ध द्रव्य सूंघना भी उपकारी है । तृष्णा वेग धारणके उदावर्त्त में कपूर मिला पानी या बरफका पानी, या यवागु पिलाना तथा सब प्रकारकी शीतलक्रिया इसमे उपकारी है । श्रमजन्य श्वास रोधज उदावर्त्तमे विश्राम करना और मांस रसके साथ अन्न भोजन करनेको देना । निद्रा रोधजन्य उदावर्त्तमें चिनी मिला दूध पान, सम्बाहन (हाथ पैर दबाना) और सुखप्रद बिछौने पर सोना आदि उपाय करना चाहिये मल द्रव्यादि सेवनके उदावर्त्त में पूर्व्वोक्त फलवर्त्ती या हींग मधु और सेंधा नमक एकत्र पीसकर बत्ती बनाना, फिर बत्तीमें घी लगाकर गुदामें रखना ।

आनाह रोगमेंभी उदावर्त्तकी तरह वायुकी अनुलोमता साधन और वस्तिकर्म्म तथा वर्त्ती प्रयोग आदि उपकारी है। त्रिवृत चूर्ण २ भाग, पीपल ४ भाग, हरीतकी ५ भाग और गुड़के सबकी समान, एकत्र मर्द्दन कर चार आने या आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे आनाह रोग शान्त होता है। वच, हरीतकी, चितामूल, जवाखार, पीपल, आतीस और कुठ समभाग सबका चूर्ण चार आने या दो आनेभर मात्रा सेवन करना। इसके सिवाय नाराचचूर्ण, गुड़ाष्टक, वैद्यनाथ वटी, वृहत् इच्छाभेदी रस, शुष्कमूलाद्य-घृत और स्थिराद्य घृत, उदावर्त्त और आनाह रोगमें प्रयोग करना। हमारी सरलभेदीवटिका सेवन करनेसे हलका जुलाब हो उदावर्त्त और आनाह रोगमें विशेष उपकार होता है।

आनाह चिकित्सा।

उदावर्त्त और आनाह रोगमें वायु शान्तिकारक अन्नपानादि आहार करना। पुराने चावलका गरम भात घी मिलाकर खाना। कोई, मागुर, शिङ्गी और मौरला आदि छोटी मछलीका रसा, छागमांस और शूलरोगोक्त तरकारी समूह और दूध आहार उपकारी है। मांस दूध एक साथ खाना अनिष्टजनक है। मिश्रीका शरबत्, कच्चे नारियलका पानी पक्का पपीता, शरीफा, इक्षु, बेदाना, आनार आदि खानेको देना। रातको भूख हो तो वही सब अन्न खानेको देना। भूख अच्छी तरह न लगे तो दूधसागु, जौके आटेकी लपसी या दूध धानका लावा किम्वा थोड़ा मोहनभोग खानेको देना। सहनेपर ठण्ढा या गरम पानीसे स्नान, तैलमर्द्दन, तीसरे पहरको हवामें फिरना आदि उपकारी है।

पथ्यापथ्य।

देरसे हजम होनेवाला पदार्थ, उष्णवीर्य्य या रूक्ष द्रव्य भोजन, रात्रि जागरण, परिश्रम, कसरत, पैदल चलना और क्रोध, शोक आदि मनो विघात कार्य्य करना इस रोगमें अनिष्टकारक है।

निषिद्ध कर्म्म।

गुल्मरोग।

हृदय, पार्श्वद्वय, नाभि और वस्ति इन पांचोंके भीतरी भागमें एक गोल गांठ पैदा होनेसे उसको गुल्म रोग कहते हैं। गुल्मरोग उत्पन्न होनेसे पहिले अधिक डकार आना, मलरोध, भोजनमें अनिच्छा, दुर्व्वलता, उदराध्मान, पेटमें दर्द, गुड़ गुड़ शब्द होना और अग्निमान्द्य यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होते है। गुल्म पांच प्रकार; वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सन्निपातज और रक्तज। मल, मूत्र और अधोवायुका कष्टसे निकलना, अरुचि, अन्त्र कुजन, आनाह और वायुका उर्द्ध गमन, यही सब गुल्मरोगके साधारण लक्षण है। प्राय सब प्रकारके गुल्मरोगमें यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं।

संज्ञा पूर्व्व लक्षण और प्रकार भेद।

अधिक या अल्प अथवा अनिर्द्दिष्ट समयमें रूक्ष अन्न, पान, भोजन, बलवान् मनुष्यके साथ युद्ध विग्रहादि कार्य्य, मल मूत्रका वेग धारण, शोक, आघातप्राप्ति, विरेचनादिसे अतिशय मलक्षय और उपवास; यही सब कारणोंसे वातज गुल्म उत्पन्न होताहै। इस गुल्मके अवस्थितिकी स्थिरता नही है; कभी नाभिमें,

वातज गुल्मके निदान और लक्षण।

कभी पार्श्वमें, कभी वस्तिमें घूमता रहता है। इसकी आकृतिभी सर्व्वदा एक प्रकार नहीं रहती है। कभी बड़ा कभी छोटा होता रहता है। नानाप्रकार यातना, मलरोध, अधोवायुका रोध, मुख और गलनालीका सूखना, शरीर श्याम या अरुण वर्ण, शीतज्वर, हृदय, कुक्षि, स्कन्ध और मस्तकमें अत्यन्त दर्द तथा आहार पचने पर पीड़ाका अधिक प्रकोप आहार करतेही पीड़ा शान्त होती है।

पैत्तिक गुल्मके निदान और लक्षण।

कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण विदाही (जो सब द्रव्यका अम्ल पाक होता है) और रूक्षद्रव्य भोजन, क्रोध, अधिक मद्यपान, अत्यन्त धूप या अग्निसन्ताप सेवन, विदग्धाजीर्ण जनित अपक्क रसका आधिक्य और दूषित रक्त ; यही सब कारणोंसे पैत्तिक गुल्म उत्पन्न होता है इसमें ज्वर पिपासा समस्त अङ्ग विशेषकर मुखका लाल होना, आहार परिपाकके समय अत्यन्त दर्द, पसीना निकलना, जलन और गुल्मस्थान छूनेमे अत्यन्त दर्द होता है। वह गुल्म कदाचित पकतेभी देखा गया है।

कफज गुल्म निदान और लक्षण।

शीतल गुरुपाक और स्निग्धद्रव्य भोजन, परिश्रम शून्यता अधिक भोजन और दिवानिद्रा, यही सब कारणोंसे कफज गुल्म उत्पन्न होता है। इसमे शरीर आर्द्रवस्त्रसे आवृतकी तरह अनुभव शीतज्वर, शारीरिक अवसन्नता, वमन वेग, कास, अरुचि शरीरका भारबोध, शीतानुभव, अल्पवेदना, तथा गुल्म कठिन और उन्नत होताहै।

द्विदोषज और त्रिदोषज गुल्म लक्षण।

दो दोष वर्द्धक कारण मिलित भावसे सेवन करनेसे द्विदोषज गुल्म उत्पन्न होताहै। इससे वही सब दोषके लक्षण मिले हुए लक्षित होतेहै। त्रिदोषज गुल्मभी वैसही तीन दोष वर्द्धक कारणसे

उत्पन्न होता है। इस गुल्ममें अत्यन्त दर्द और दाह, पत्थरकी तरह कठिन भयङ्कर कष्टदायक और मन, शरीर, अग्निबलका क्षयकारक होता है। यह गुल्म बहुत जल्दी पक जाता है। त्रिदोषज गुल्म असाध्य है।

रक्तगुल्मका निदान और लक्षण।

अपक्व गर्भस्राव किम्वा उचित समय पर प्रसव न होनेसे ; अथवा ऋतुकालमें अहितकारक आहार विहारादि आचरण करनेसे वायु कुपित हो रजो रक्तको दुषित करता है, इससे गर्भाशयमें रक्तगुल्म पैदा होता है। इसमे अत्यन्त दाह, दर्द और पैत्तिक गुल्मके अन्यान्य लक्षणभी दिखाई देते हैं। इसके सिवाय ऋतुबन्द होना, मुख पीला, स्तनका अग्रभाग काला, स्तनसे दूध निकलना, विविध द्रव्य भोजनकी इच्छा, मुखसे जलस्राव, आलस्य आदि सब गर्भके लक्षण मालूम होते हैं, पर गर्भलक्षणके साथ केवल यही प्रभेद रहता है कि गर्भस्पन्दनमें किसी तरहका दर्द नहीं होता है और गर्भके वालकका सब अङ्ग एकही वक्त स्पन्दित न हो हाथ पैर आदि एक एक अङ्ग स्पन्दित होता है। रक्तगुल्मके समस्त पिण्डमें दर्द और देरतक स्पन्दित होता रहता है।

असाध्य साङ्घातिक गुल्म।

गुल्म क्रमशः सञ्चित होकर यदि समस्त उदरमें व्याप्त होकर रस रक्तादि धातुका आश्रय ले, शिरा समूहोंसे आच्छादित और कछुयेकी तरह बड़ा होय और इसके साथ साथ यदि दुर्बलता, अरुचि, वमन वेग, वमि, कास, बेचैनी, ज्वर, तृष्णा, तन्द्रा और मुख नाकसे जलस्राव यह सब लक्षण प्रकाशित हो तो गुल्मरोग असाध्य जानना। गुल्म रोगीका हृदय, नाभि, हात और पैरमें शोथ तथा ज्वर, श्वास, वमि और अतिसार अथवा श्वास, शूल, पिपासा, अरुचि, अकस्मात् गुल्म

का विलीन होना और दुर्ब्बलता आदि लक्षण प्रकाशित होनेसे रोगीको मृत्यु जानना।

गुल्म चिकित्सा।

गुल्म रोगमें पहिले वायुके शान्तिका उपाय करना चाहिये। जहां दोषविशेषके लक्षणसमूह स्पष्ट प्रकाशित न होनेसे कौन दोषज गुल्म है इसका निर्णय न हो वहां वायु शान्तिके औषधादि प्रयोग करना। कारण वायुको शान्त करनेहीसे अन्यान्य दोष सब सहजमें शान्त होते है। दूध और बड़ी हर्रके चूर्णके साथ रेंढ़ीका तेल पान करना और स्नेह स्वेद वातज गुल्ममें उपकारीहै। सज्जीखार २मासे, कूठ २मासे और केतकीको जटाका चार ४मासे रेंड़ीके तेलके साथ मिलाकर पीनेसे वातज गुल्म आराम होता है। शोंठ ४ तोले, सफेद तिल १६ तोले और पुराना गुड़ ८ तोले एकत्र पीसकर आधा तोला या एक तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे वातज गुल्म, उदावर्त्त और योनिशूल आराम होता है। पैत्तिक गुल्ममें विरेचन उपकारी हैं। त्रिफलाके काढ़ेके साथ त्रिवृत चूर्ण अथवा पुराने गुड़के साथ हरीतकी चूर्ण सेवन करनेसे विरेचन हो पित्तज गुल्म शान्त होताहै। गुल्म रोगमें दाह, शूलकी तरह दर्द, स्तब्धता, निद्रानाश अस्थिरता और ज्वर प्रकाश होनेसे गुल्म पकनेपर है समझना; तब उसमें व्रण पकनेकेलिये उचित औषधदेना और पकनेपर अन्तर्विद्रधिकी तरह चिकित्सा करना। कफज गुल्ममें वमन, उपवास और स्वेद देना चाहिये। अग्निमान्द्य, थोड़ा दर्द, कोष्ठ भारबोध, शरीर गीले वस्त्रसे आच्छादितकी तरह अनुभव, जीमतलाना, अरुचि आदि उपद्रवमें वमन कराना। बेल, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला और गणियारी इन सबके जड़का काढ़ा पीना कफज गुल्ममें हितकरहै। अजवाइनका चूर्ण और काला नमक दहीके

मट्ठेके साथ पीनेसे अग्निकी दीप्ति और वायु, मूत्र, पुरीषका अनुलोम होता है। कफज गुल्ममें तिल, एरण्डबीज और सरसो पीसकर गरम लेपकर लोहेके पात्रसे सेंकना उपकारी है। हींग, कूठ, धनिया, हरीतकी, त्रिवृतकी जड़, कालानमक, सेन्धा नमक, जवाखार और शोंठ, यह सब द्रव्य घीमें भूंज चूर्ण करना फिर दो आने या चार आने मात्रा जौके काढ़ेके साथ सेवन करनेसे गुल्म और तज्जनित उपद्रव दूर होते हैं। सज्जीखार आधा तोला और पुराना गुड़ आधा तोला एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे गुल्मरोग शान्त होता है। रक्त गुल्मकी चिकित्सा ११ महीने पीछे करनी चाहिये कारण यह रोग पुराना होनेहीमें जलदी आराम होता है। इसमें पहिले स्नेहपान, स्वेद और स्निग्ध विरेचन देना चाहिये। सोवा, करञ्जकी छाल, देवदारु, बमनेठी और पीपल समभाग पीसकर तिलके काढ़ेके साथ पीनेसे रक्तगुल्म आराम होता है; अथवा तिलके काढ़ेके साथ पुराना गुड़, हींग और बमनेठीका चूर्ण सेवन करना। गोलमरिच चूर्णके साथ आंवलेका रस पीनेसेभी उपकार होता है।

शास्त्रीय औषध। हिङ्ग्वादि चूर्ण, वचादि चूर्ण, लवङ्गादि चूर्ण, वज्रक्षार। दन्ती हरीतकी, कांकायन गुड़िका, पञ्चाननरस, गुल्म कालानल रस, वृहत् गुल्मकालानल रस, त्र्यषणाद्य घृत, नाराच घृत, त्रायमाणाद्य घृत और वायु शान्तिकारक स्वल्प विष्णु तेल आदि कई तैल गुल्मरोगमें विचार कर प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य। जो सब द्रव्य वायु शान्तिकारक है वही गुल्मरोगका साधारण पथ्य है। पित्तज और कफज गुल्ममें जो सब द्रव्य पित्त और कफका अनिष्ट कारक

नही है तथा वायु शान्तिकारक है ऐसा आहार देना चाहिये। दिनको पुराने महीन चावलका भात, घी, तित्तिर, मुरगा, बत्तक और छोटे पक्षीका मांस और शूलरोगोक्त सब तरकारी देना चाहिये। रातको पूरी या रोटी, मोहनभोग और दूध भोजन करना। कच्चे नारियलका पानी, मिश्रीका शर्बत, पक्का पपीता, पक्का आम, शरीफा आदि पक्के फल खानेको देना। शीतल या गरम पानीसे सहनेपर स्नान करना उपकारी है। पेट साफ रखना इस रोगमें विशेष उपकारी है।

निषिद्ध कर्म्म।

अधिक परिश्रम, पथ पर्य्यटन, रात्रि जागरण, आतप सेवन, मैथुन और जिस कार्य्यसे वायु कुपित हो वही सब कार्य्य और वैसही आहारादि गुल्म रोगमें अनिष्ट कारक है।

हृद्रोग।

निदानलक्षण और प्रकारभेद।

अति उष्ण, गुरुपाक और कषाय कटुतिक्तरस भोजन, परिश्रम, छातीमें चोट लगना, पहिलेका आहार जीर्ण न होनेपर फिर भोजन करना, मल मूत्र वेग धारण और निरन्तर चिन्ता करना यही सब कारणोंसे हृद्रोग उत्पन्न होताहै। छातीमें दर्द और सर्वदा धुक धुक करना इस रोगका साधारण लक्षण है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और क्रिमिजात भेदसे हृद्रोग पांच प्रकारका होता है।

विविध दोषज हृद्रोग लक्षण।

वातज हृद्रोगमें हृदय आकृष्ट, सूची द्वारा विद्ध, दण्डादिसे पीड़ित, शस्त्र द्वारा छिन्न, शलाका द्वारा स्फुटित; अथवा कुठारसे पाटितैकी तरह

अनुभव होता है। पित्तज हृद्रोगमें हृदयमें ग्लानि, शरीर चूसनेकी तरह दर्द, सन्ताप, दाह, तृष्णा, कण्ठसे धुंआ निकलनेकी तरह अनुभव, मूर्च्छा, पसीना होना और मुख सूख जाता है। कफज हृद्रोगमें शरीर भारबोध, कफस्राव, अरुचि, जड़ता, अग्निमान्द्य और मुखका स्वाद मीठा होता है। त्रिदोषज हृद्रोगमें ऊपर कहे तीनों दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होते है। त्रिदोषज हृद्रोग उत्पन्न होनेपर यदि तिल, दूध, गुड़ प्रभृति क्रिमिजनक आहारादि अधिक खानेमें आवे तो हृदयके किसी स्थानमें एक गांठ उत्पन्न हो उसमेंसे क्लेद और रस निकलता है, तथा उसी क्लेदादिसे क्रिमि उत्पन्न हो क्रिमिज हृद्रोग उत्पन्न होता है। इससे छातीमें तीव्र वेदना, सूची वेधवत् यातना, कंडू, वमनवेग, मुखसे कफस्राव, शूल, छातीके रसका वमन, अन्धकार देखना, अरुचि, दोनो आंखें काली और शोथयुक्त, यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं। क्लान्तिबोध, देहकी अवसन्नता, भ्रम, शोष और कफज क्रिमिके कई उपद्रव इस हृद्रोगके उपद्रव रूपसे प्रकाशित होते है।

चिकित्सा।

हृद्रोगमें अग्निवृद्धिकारक और रक्तजनक औषधादि प्रयोग करना आवश्यक है। घृत, दूध किम्वा गुड़के साथ अर्जुन छालका चूर्ण ॥) आनेभर सेवन करनेसे हृद्रोग, जीर्णज्वर और रक्तपित्त शान्त होता है। कूठ, बड़े नीबूकी जड़, शोंठ, शठी और हरीतकी समभाग एकत्र पीसकर दूध, कांजी, घृत और लवण मिलाकर सेवन करनेसे वायुजन्य हृद्रोग प्रशमित होता है। हरीतकी, वच, रास्ना, पीपल, शोंठ, शठी और कूठका समभाग चूर्ण दो आनेसे चार आनेभर मात्रा पानीके साथ सेवन करनेसे हृद्रोग दूर होता है। पित्तज हृद्रोगमें अर्जुन छाल, स्वल्प पञ्चमूल, बरियारा या मुलेठीके

साथ दूध औटाकर वही दूध चिनी मिलाकर पिलाना। कफज हृद्रोगमें त्रिवृत, शठी, बरियारा, रास्ना, हरीतकी और कूठका समभाग चूर्ण दो आने या चार आनेभर मात्रा गोमूत्रके साथ पीना। छोटी इलायची और पीपलका चूर्ण दो आनेभर घीके साथ मिलाकर चाटनेसे कफज हृद्रोग आराम होता है। हींग, बच, काला नमक, सोंठ, पीपल, हरीतकी, चितामूल, जवाखार, सोचल नमक और कूठ इन सबका समभाग चूर्ण ।) आनेभर मात्रा जौके काढ़ेके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज हृद्रोगभी आराम होता है। क्रिमिजात हृद्रोगमें विडङ्ग और कूठ चूर्ण दो आनेभर मात्रा गोमूत्रके साथ पीनेसे तथा क्रिमिरोगके अन्यान्य औषधसेभी आराम होता है। ककुभादि चूर्ण, कल्यानसुन्दर रस, चिन्तामणि रस, हृदयार्णव रस, विश्वेश्वर रस, श्वदंष्ट्राद्य घृत और अर्ज्जुन घृत आदि हृद्रोगके श्रेष्ठ औषध है। वृहत् छागलाद्य घृत भी हृद्रोगमें प्रयोग कर सकते हैं।

विभिन्न कारणज वेदना चिकित्सा।

छातीमें चोट लगनेसे और कास या रक्तपित्त पीड़ाके पहिले छातीमें दर्द हो तो छातीमें तार्पिन तेल मालिश कर पोस्तके ढेड़ीके काढ़ेमें फलालेन या कम्बल भिंगो निचोड़ कर सेंकना चाहिये। अदरख दो भाग और अरवा चावल एक भाग एकत्र पीसकर गरम लेप करना। कूठका चूर्ण सहतके साथ चाटना। दशमूलका काढ़ा सैन्धव और जवाखार मिला कर पिलाना। लक्ष्मीविलास रस औषध सेवन और महादशमूल तैल किम्वा कास रोगोक्त चन्दनादि तैल छातीमें मालिश करना चाहिये।

स्निग्ध पुष्टिकर और लघु आहार हृद्रोगमें देना चाहिये,

पथ्यापथ्य। ज्वरादि कोई उपसर्ग न रहनेसे वातव्याधि कीतरह पथ्यापथ्य प्रतिपालन करना उचित है। छातीके दर्दमें रक्तपित्त और कासरोगोक्त पथ्य व्यवस्था करना।

निषिद्ध कर्म। रूक्ष या अन्यान्य वायुवर्द्धक द्रव्य भोजन, उपवास और परिश्रम, रात्रिजागरण, अग्नि और धूपमें बैठना, मैथुन आदि इस रोगमे अरिष्टकारक है।

मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात।

संज्ञानिदान और प्रकारभेद। जिस रोगमें अतिशय कष्टसे पिशाब हो उसको मूत्रकृच्छ्र कहते हैं। तीक्ष्णद्रव्य या तीक्ष्ण औषध सेवन; रूखा अन्न भोजन, रूखी शराब पीना, जलाभूमिजात * जीवका मांस भोजन, पहिलेका खाया अन्न न पचनेपर फिर आहार करना, अरुचि, कसरत, घोड़ा आदि तेज सवारी पर चढ़ना, मलमूत्रका वेग धारण आदि कारणोंसे यह रोग उत्पन्न होताहै। मूत्रकृच्छ्र आठप्रकार; वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आगन्तुक, पुरीषज, अश्मरीज और शुक्रज।

विभिन्न दोषजात रोग लक्षण। वातज मूत्रकृच्छ्रमें दोनो पट्ठा, वस्ति और लिङ्गमें अत्यन्त वेदना और बार बार थोड़ा २ पिशाब होता है। पित्तजमें दर्द और जलनके साथ बार बार पीला या रक्तवर्ण पिशाब होताहै। कफजमें लिङ्ग और बस्तिमें भारबोध, शोथ और पिच्छिल मूत्र होता है। सन्निपातज मूत्रकृच्छ्रमें उक्त तीन दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होते

* बरसातके पानीसे डूबी हुए स्थानको जलाभूमि कहते हैं।

है। मूत्रवहा स्रोत कांटेसे चत या किसी तरह चोट लगनेसे जो मूत्रकृच्छ्र रोग उत्पन्न होताहै उसको आगन्तुक मूत्रकृच्छ्र कहते हैं। इससे वातज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण लक्षित होते हैं। मलका वेग धारण करनेसे उदराध्मान और शूलयुक्त एकप्रकारका मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न होता है उसको पूरीषज मूत्रकृच्छ्र कहते हैं। अश्मरी अर्थात् पथरी रोगमें जो मूत्रकृच्छ्र होता है उसको अश्मरी कहते है। इससे छातीमें दर्द, कम्प, कुक्षिशूल, अग्निमान्द्य और मूर्च्छा यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं। दूषित शुक्र मूत्रमार्गमें उपस्थित होनेसे शुक्रज मूत्रकृच्छ्र पैदा होता है। इसमें वस्ति और लिङ्गमें शूलवत् दर्द तथा अति कष्टसे पिशाब होता है।

मूत्राघात लक्षण।

पिशाब रुक रुक कर थोड़ा २ होना या पिशाब बन्द होनेसे उसको मूत्राघात कहते हैं। मूत्रकृच्छ्रके अपेक्षा इस रोगमें पिशाबमें कष्ट कम होता है, इसका और मूत्रकृच्छ्र दोनोका निदान एकही प्रकार है। प्रमेहसेभी यह रोग होते देखा गया है। बूंद बूंद पिसाब होना, मूत्रके साथ रक्त जाना, मूत्राशय फूलना, आध्मान, तीव्र वेदना, वस्तिके मुहपर पत्थरकी तरह गांठका पैदा होना, गाढ़ा पिसाब होना, मलगन्धि या मलमिश्रित पिसाब होना आदि नाना प्रकारके लक्षण मूत्राघात रोगमें प्रकाशित होते है। सब प्रकारका मूत्राघात अतिशय कष्टदायक और कष्टसाध्य है।

विभिन्न दोषज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा।

वायुजनित मूत्रकृच्छ्रमें गुरिच, शोंठ, आंवला, असगन्ध, और गोखरूके काढ़ेके साथ सहत मिलाकर पीना। पित्तज मूत्रकृच्छ्रमें शतमूलीके रसमें चिनी मिलाकर पीना। कांकड़ीकी बीज, मुलेठी और दारु हलदीका चूर्ण अरवा चावलके धोवनके

साथ अथवा दारुहलदीका चूर्ण सहत और आंवलेके रसमें मिला कर पीनेसे पित्तज मूत्रकृच्छ्र आराम होता है। शतावर्य्यादि और हरीतक्यादि काढ़ा पित्तज मूत्रकृच्छ्रमें विशेष उपकारी है। कफज मूत्रकृच्छ्रमें ग्रमालुकी बीज मट्ठेके साथ, अथवा प्रवाल चूर्ण अरवा चावलके धोवनके साथ किम्बा गोखरू शोंठके काढ़ाके साथ पीना। त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्रमें वृहती, कण्टकारी, अम्बष्ठादि, मुलेठी और इन्द्रयवका काढ़ा पीना। आगन्तुक मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा वातज मूत्रकृच्छ्रकी तरह करना। गोखरू बीजके काढ़ेमें जवाखार मिलाकर पीनेसे पुरीषज मूत्रकृच्छ्र आराम होता है। अश्मरीज मूत्रकृच्छ्रमें गोखरू बीज, अमिलतासकी गूदी कुश, कास, जवासा, पाथरचूर और हरीतकी, इनसबका काढ़ा या चूर्ण सहतके साथ मिलाकर सेवन करना। केवल पाथरचूरका रस या काढ़ा अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र नाशक है। शुक्रज मूत्रकृच्छ्रमें सहतके साथ शिलाजीत सेवन करना। गोरक्ष चाकुलाका काढ़ा, सहत मिलाया जवाखार, मट्ठेके साथ गन्धक, जवाखार और चिनी; जवाखार और चिनी मिला सफेद कोंहड़ेका रस; गुड़के साथ आवलेका काढ़ा अथवा हुड़हुड़की बीज बासी पानीसे पीस-कर सेवन करनेसे सब प्रकारका मूत्रकृच्छ्र आराम होता है। नारियलका फूल अरवा चावलके धोवनके साथ सेवन करनेसे रक्तमूत्र आराम होता है। एलादि क्वाथ, वरुणाद्य लौह, कुशाव-लेह, सुकुमारकुमारक घृत और त्रिकण्टकाद्य घृत सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्रमें विचारकर प्रयोग करना चाहिये।

मूत्राघात रोगमें मूत्रकृच्छ्र नाशक और अश्मरी नाशक औषध विचारकर प्रयोग करना। मूत्रका रोधहोनेसे तेलियाकी जड़ कांजीसे पीस नाभिपर

मूत्राघात चिकित्सा।

लेप करना। लिङ्गमें भीतर कपूरका चूर्ण रखना। सफेद कोंहड़ेके पानीके साथ जवाखार और चिनी मिलाकर पीनेसे मूत्ररोध दूर होता है। ककड़ीकी बीज, सेन्धानमक और त्रिफला इन सबका समभाग चूर्ण गरम पानीके साथ सेवन करनेसेभी मूत्ररोध दूर होता है। चित्रकाद्य घृत, धान्यगोक्षुरकघृत, विदारी घृत, शिलोद्भिदादि तैल और उशीराद्य तैल, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी आदि पीड़ाके उत्कृष्ट औषध है।

स्निग्ध और पुष्टिकर आहार इस रोगमें उपकारी है। दिनको पुराने चावलका भात, छोटी मछलीका शूरवा, छाग, या पक्षीके मांसका शूरवा, बैगन, परवर, गुल्लर, केलेका फूल आदिकी तरकारी, तिक्त शाक, पाती या कागजी नीबू खाना। रातको पूरी, रोटी, मोहनभोग, दूध और थोड़ा मीठा खाना। जलपानमें मक्खन, मिश्री, तरमुज पक्का मीठा फल आदि भोजन उपकारी है। सहनेपर रोज सबेरे कच्चे दूधमें पानी मिलाकर पीना या मिश्रीका शरबत पीना। रोज नदी या लम्बे चौड़े तालाबमें स्नान करना।

पथ्यापथ्य।

रुक्षद्रव्य, गुरुद्रव्य, अम्लद्रव्य, दही, गुड़, अधिक मछली, उरदकी दाल, लाल मिरचा, शाकादि भोजन और मैथुन, घोड़ा आदिकी सवारी पर चढ़ना, कसरत, मलमूत्रका वेग रोकना, तेज शराब पीना, चिन्ता, रात्रि जागरण इस रोगमें अनिष्टकारक है।

निषिद्ध कर्म।

अश्मरी ।

कुपित वायु कर्त्तृक मूत्र और शुक्र किम्वा पित्त, कफ विशोषित हो पत्थरकी तरह कड़ा होनेसे अश्मरी रोग होता है। चलित भाषामें इसको "पथरी" रोग कहते हैं, यह रोग उत्पन्न होनेसे पहिले वस्तिका फूलना, वस्तिके पासवाले स्थानोंमें दर्द, मूत्रमें छाग गन्ध, कष्टसे पिशाब होना, ज्वर और अरुचि, इतो सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अपने अपने कारणसे कुपित वायु पित्त, कफ और शुक्र यह चार पदार्थसे अश्मरी रोग उत्पन्न होता है। सुतरां यह रोग वातज, पित्तज, कफज और शुक्रज भेदसे चार प्रकारका है। नाभि और नाभिके नीचे, फोतेके नीचे सोयनपर तथा वस्तिके मुखमें दर्द, अश्मरीसे मूत्रमार्ग बंद होनेसे विच्छिन्न धारसे मूत्र आना, पिशाब करती वक्त वेग देनेसे दर्द, मूत्रमार्गमें अश्मरी न रहनेसे थोड़ा लाल रङ्गका मूत्र निकलना आदि इसके साधारण लक्षण हैं। किसी प्रकारके अश्मरीसे मूत्रमार्गमें क्षत होनेसे पिशाबसे रक्त दिखाई देता है।

संज्ञा और पूर्व्वरूप ।

वातज अश्मरी रोगमें अश्मरीकी आकृति श्याव या अरुण वर्ण और छोटे छोटे कांटे उसमें पैदा होते है। इसमें रोगी दांत पीसता है, कांपता है, तकलीफसे चिल्लाता है, सर्व्वदा लिङ्ग और नाभि दबाये रहता है तथा पिशाब उतरनेके लिये कांखनेसे अधो वायु, मल और बूंद बूंद पिशाब होता है। पित्तज अश्मरी अतिशय उष्ण स्पर्श, रक्त पीत या कृष्ण-

वातज पित्तज अश्मरी लक्षण ।

वर्ण और मेलावेकी तरह आकृति होती है। इसमें वस्तिमें अत्यन्त जलन होताहै। कफजमें शीतल स्पर्श भारी, चिकनी और सहतकी तरह पिङ्गल या सफेद रंग तथा वस्तिमें सूई गड़ानेकी तरह दर्द होता है। शुक्रका वेग रोकनेसे शुक्राश्मरी पैदा होती है, इससे वस्तिमें शूलवत् दर्द मूत्रकृच्छ्र और अण्डकोषमें शोथ होता है।

शर्करा और सिकता लक्षण।

यह अश्मरी अधिक दवानेपर क्षुद्र अंशोंमें विभक्त होनेसे शर्करा और अतिसूक्ष्म अंशोंमे विभक्त होनेसे उसको सिकता कहते हैं। वायुका अनुलोम रहनेसे शर्करा और सिकता पिशावके साथ निकल जाती है। पर वायुका अनुलोम न रहनेसे वहां सब शर्करा या सिकता रुद्ध होती है तथा दौर्व्वल्य, अवसाद, कृशता, कुक्षिशूल, अरुचि, पांडुता, तृष्णा, हृत्पोड़ा, जीमतलाना आदि उपद्रव उपस्थित होता है।

साघातिक लक्षण।

अश्मरी, शर्करा और सिकता रोगमें रोगीके नाभि और अण्डकोषमें शोथ, मूत्ररोध और शूलवत् वेदना यह सब लक्षण प्रकाशित होनेसे रोगीको मृत्यु जानना।

चिकित्सा।

अश्मरी रोग उत्पन्न होतेही औषध प्रयोग करना आवश्यक है, नहीतो थोड़े दिन बिना चिकित्साके रहनेसे फिर औषधसे आराम नही होता है, तब नस्तरसे पथरीको बाहर निकालना पड़ता है। इस रोगका पूर्व्वरूप प्रकाश होतेही औषध प्रयोग करना चाहिये। वातज अश्मरीमें वरुण छाल, शोंठ और गोखरू इसके काढ़े में जवाखार २ मासे, और पुराना गुड़ २ मासे मिलाकर पीना। गोखरू, रेड़का पत्ता, शोंठ और वरुण छाल इसका काढ़ा पीनेसे सब प्रकारकी पथरी आराम होती है। शर्करा रोगमें वरुण छाल,

पाथरचूर, सोंठ और गोखरू इसकी काढ़ेमें ।≠) आनेभर जवाखार मिलाकर पीना। गोखुर बीज चूर्ण चार आनेभर भेड़ीके दूधमें मिलाकर सात दिन पीनेसे सब प्रकारकी पथरी आराम होता है। तालमूली अथवा गोरच चाकुला वासी पानीमें पीसकर पीनेसे किम्बा नारियलका फूल ४ मासे, जवाखार ४ मासे पानीमें पीस कर पीना अश्मरी रोगमें विशेष उपकारी है। मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात रोगोक्त कई योग और औषध अश्मरी आदि रोगमें विचारकर देना चाहिये। शुंठयादि क्काथ, वरुणादि और बृहत् वरुणादि कषाय, एलादि पाचन, पाषाणवज्र रस, पाषाण भिन्न, त्रिविक्रम रस, वरुणाद्य घृत और वरुणाद्य तैल अश्मरी, शर्करा और सिकता रोगके श्रेष्ठ औषध है।

पथ्यापथ्य। मूत्रकृच्छ्रादि रोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है अश्मरीमेंभी वही सब पालन करना चाहिये।

प्रमेह।

प्रमेह निदान। एक दमभरभी परिश्रम न करना, रात दिन बैठे रहना, या बिछौनेपर पड़े रहना, अधिक निद्रा, दही, दूध, जल जात और जलाभूमिजात जीवका मांस भोजन, नये चावलका भात खाना, बरसातका नया पानी पीना, गुड़ और अन्यान्य कफ वर्द्धक आहार विहारादिसे वस्तिगत कफ दूषित हो मेद, मांस और शरीरके क्लेदको दूषित करनेसे पित्तज प्रमेह तथा कफ और पित्त क्षीण होनेसे वायु

कुपित हो वसा, मज्जा, ओज और लसीका * पदार्थको वस्तिके मुहमें लानेसे वातज प्रमेह पैदा होता है। प्रमेह रोग २० प्रकार। इसमे उदक मेह, इक्षुमेह, सान्द्रमेह, सुरामेह, पिष्ट-मेह, शुक्रमेह, सिकतामेह, शीतमेह, शनैर्मेह और लालामेह यह १० प्रकार कफज, क्षारमेह, नीलमेह, कालमेह, हारिद्रमेह, माञ्जिष्ठमेह और रक्तमेह यह ६ प्रकार पित्तज और वसामेह, मज्जा-मेह, क्षौद्रमेह और हस्तिमेह यह चार प्रकार वातज प्रमेह है। सब प्रकारका प्रमेह उत्पन्न होनेसे पहिले दांत आंख कर्णादिमें अधिक मल सञ्चय, हाथ पैरमें जलन, देहका चिकना, प्यास और मुहका स्वाद मीठा होना यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अधिक मात्रासे मूत्र आना और मूत्रकी आविलता यह दो साधारण लक्षण प्रायः सब प्रमेहमें दिखाई देते हैं।

सर्व्वविध प्रमेहके लक्षण।

उदक प्रमेहका मूत्र गदला, कभी साफ, पिच्छिल, कभी सफेद पानीकी तरह गन्धहीन होता है। इक्षुप्रमेह इक्षु रसकी तरह मीठा होता है। सान्द्र प्रमेहका पिशाब देरतक रख छोड़नेसे गाढ़ा हो जाता है। वसा प्रमेह शराबकी तरह तथा उपर साफ और नीचे गाढ़ा मूत्र दिखाई देता है। पिष्टप्रमेहमे पिशाब करती वक्त रोगी रोमाञ्चित होता है और आटा घोलनेकी तरह सफेद या अधिक पिशाब होता है। शुक्रप्रमेहमें मूत्र शुक्रकी तरह या शुक्रमिश्रित होता है। सिकता मेहके मूत्रके साथ बालुकी तरह कड़ा पदार्थ निकलता है। शीतप्रमेहमें मूत्र अतिशय शीतल, मीठा और बहुत होता है। शनैर्मेहमें अति मन्द वेगसे थोड़ा थोड़ा मूत्र निकलता है। लाला-

* मांसके चिकने भागको वसा, हड्डीके बीचके गूदे भागको मज्जा, त्वक और मांसके मध्यवर्त्ती जलीय भागको लसीका और सब धातुके सार पदार्थको ओज कहते हैं।

मेहमें लालायुक्त तन्तुविशिष्ट और पिच्छिल पिशाब होता है। क्षारमेहका मूत्र खारे पानीकी तरह गन्ध, वर्ण, स्वाद और स्पर्श युक्त होता है। नीलमेह नीलवर्ण और कालमेहमें काले रंगका पिशाब होता है। हारिद्रमेहमें मूत्र पीला, कटुरसयुक्त और पिशाब करती वख्त लिङ्गनालीमें जलन होती है। माञ्जिष्ठ मेहमें मजीठके पानीकी तरह लाल दुर्गन्धयुक्त मूत्र होता है। रक्त मेहमें मूत्र बदबूदार, गरम और खारा होताहै। वसामेहमें चर्व्वीकी तरह अथवा चर्व्वी मिला मूत्र बार बार होता है, कोई कोई वसा मेहको "सर्पिमेह"भी कहते हैं। मज्जामेहमें मूत्र मज्जाकी तरह या मज्जा मिला मूत्र होता है। क्षौद्र मेहमें मूत्र कषाय और मधुर रसयुक्त और रूक्ष होता है। हस्तिमेह रोगी मत्तहातीके तरह सर्व्वदा अधिक पिशाब करता है, मूत्रत्यागके पहिले किसी प्रकार-का वेग नही होता। कभी कभी मूत्ररोधभी होते देखा गया है।

मेह रोगके उपद्रव।

१० प्रकारके कफज प्रमेहमें अजीर्ण, अरुचि, वमि, निद्रा, खांसीके साथ कफ निकलना और लिङ्ग-नालीमें सूची विद्धवत् वेदना घाव, अण्डकोषका फटना, ज्वर, दाह, तृष्णा, अम्लोद्गार, मूर्च्छा और मलभेद, तथा ४ प्रकारके वातज मेहमें उदावर्त्त, कम्प, छातीमें दर्द, आहारमें लोभ, शूल, अनिद्रा, शोष, कास और श्वास यही सब उपद्रव उपस्थित होते हैं। उपद्रवयुक्त प्रायः सब प्रकारका प्रमेह कष्टसाध्य है।

मधुमेह।

सब प्रकारका प्रमेह, अचिकित्सित भावसे बहुत दिन तक रहने से मधुमेह रोग होताहै। इसमें मूत्र मधुकी तरह गाढ़ा, पिच्छिल, पिङ्गलवर्ण और मीठा होताहै तथा रोगीका शरीरभी मीठास्वादयुक्त होताहै। मधु

मेहमें जिस जिस दोषका आधिक्य रहताहै लक्षणभी उसी दोषके प्रकाशित होते हैं, इस अवस्थामें बहुत दिन तक बिना चिकित्साके रहनेसे रोगीके शरीरमें नाना प्रकारको पिड़िका उत्पन्न होती है। मधुमेह और पिड़िकायुक्त मेह असाध्य। पिता माताके दोषसे पुत्रको प्रमेह रोग होनेसे वहभी असाध्यही जानना। गुदा, मस्तक हृदय, पीठ और मर्म्मस्थानमें पिड़िका उत्पन्न होनेसे और उसके साथ प्यास और कास आदि उपद्रव रहनेमें वहभी असाध्य होताहै।

चिकित्सा और मुष्टियोग।

प्रमेह रोग स्वभावत:ही कष्टसाध्य है। इससे रोग उत्पन्न होतेही चिकित्सा करना चाहिये। गुरिच का रस, आंवलेका रस, नरम सेमलके मुसलीका रस आदि प्रमेह रोगके उत्कृष्ट मुष्टियोग है। त्रिफला, देवदारु, दारुहलदी और मोथा इसका काढ़ा सहतके साथ पीनेसे सब प्रकारका प्रमेह आराम होताहै। सहत और हलदीका चूर्ण मिलाया आंवलेका रसभी विशेष उपकारीहै। शुक्रमेहमें दूधके साथ शतमूलीका रस अथवा रोज सवेरे कच्चा दूध आधा पाव और पानी आधा पाव एकत्र मिलाकर पीनेसे विशेष उपकार होताहै। पलाश फूल १ तोला, चिनी आधा तोला एक साथ ठण्ढे पानीके साथ पीसकर पीनेसेभी सब प्रकारका प्रमेह आराम होता है। वङ्गभस्म प्रमेह रोगको उत्कृष्ट औषध है। सेमलके मुसलीका रस, सहत और हलदीके चूर्णके साथ २ रत्ती मात्रा वङ्गभस्म सेवन करनेसे प्रमेह रोग आराम होता है।

मूत्ररोध चिकित्सा।

प्रमेह रोगमें मूत्रका रोध होनेसे कंकड़ीको बीज, सेन्धा नमक और त्रिफला, इसका चूर्ण चार आनेभर गरम पानीके साथ सेवन करना। कुशाव-लेह और मूत्रकृच्छ् रोगके अन्यान्य औषधभी इस अवस्थामें दे सकते

है। पाथरचूरके पत्तेका रस पीनेसे मूत्र साफ आताहै, एलादि चूर्ण, मेहकुलान्तक रस, मेहमुद्गर वटिका, वङ्गेश्वर, वृहद्वङ्गेश्वर, वृहत् हरिशङ्कररस, सोमनाथरस, इन्द्रवटिका, स्वर्णवङ्ग, वसन्त कुसुमाकर रस, चन्दनासव, दाड़िम्बाद्य घृत और प्रमेहमिहिर तैल आदि रोगको अवस्था विचारकर प्रमेह रोगमें देना चाहिये। हमारा "प्रमेहविन्दु" सब प्रकारका प्रमेह और सुजाककी उत्कृष्ट औषधहै।

पिड़िका निवारण।

प्रमेहसे पिड़िका उत्पन्न हो तो गुल्लरका दूध अथवा सोमराजीकी बीज पीसकर उसका लेप करना। अनन्तमूल, श्यामालता, मुनक्का, त्रिवृत, सनाय, कुटकी, बड़ीहर्र, अडूसेकी छाल, नीमकी छाल, हलदी, दारुहलदी और गोखरूकी बीज इन सबका काढ़ा पीनेसे प्रमेह पिड़िका दूर होतीहै, शारिवादि लौह, शारिवाद्यासव और मकरध्वज रस इस अवस्थाकी उत्कृष्ट औषध है। प्रमेह रोगके अन्यान्य औषधभी विचारकर दे सकते हैं। प्रमेह पिड़िकामें हमारा "अमृतवल्ली कषाय" विशेष उपकारी है।

पथ्यापथ्य।

दिनको पुराने चावलका भात, मूंग, मसूर, चनेकी दाल, छोटे मछलीका थोड़ा शूरवा, शशक, घुघु, बटेर, कुक्कुट, छाग और हरिण मांसका शूरवा, परवल, गुल्लर, बैगन, सैजनका डण्डा, केलेका फूल, नरम कच्चा केला आदिकी तरकारी और पाती या कागजी नीबू खाना प्रमेह रोगमें हितकर है। रातको रोटी, पूरी और ऊपर कही तरकारी तथा थोड़ा मीठा मिलाया दूध पीना चाहिये। सब प्रकारका तिक्त और कषाय रसयुक्त द्रव्य उपकारी है। जलपानमें जख, सिंघाड़ा, किसमिस, बदाम, खजूर, अनार, भिंगोया चना, थोड़ा मीठेका मोहनभोग आदि आहार करना, सहनेपर स्नानभी करना।

अधिक दूध, मीठा, मछली, लाल मिरचा, शाक, अम्ल-

निषिद्ध कर्म।

द्रव्य, उड़दको दाल, दही, गुड़ लौकी, तालफल और अन्यान्य कफवर्द्धक द्रव्य भोजन; मद्यपान, मैथुन, दिनको सोना, रातका जागना, धूपमें फिरना, मूत्रका वेग धारण और धूमपान प्रभृति इस रोगमें अनिष्टकारक है।

शुक्रमेह और मधुमेहके पथ्यापथ्य।

शुक्रमेह में पुष्टिकर आहार करना चाहिये, इसमें रोगीका अग्निबल विचारकर ध्वजभङ्ग रोगोक्त पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। मधु मेहमें बहुमूत्र रोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये।

गनोरिया या सुजाक।

दूषित योनि—वेश्या प्रभृतिके सहवाससेभी एक प्रकारका प्रमेह रोग होताहै उसको हिन्दीमें "सुजाक" और अङ्गरेजीमें "गनरिया" कहते हैं। सहवासके प्रायः सात दिनके भीतरही यह रोग दिखाई देता है। पहिले लिङ्गके अग्रभागमें सुरसुरी, लिङ्ग खोलनेमें या पिशाब करती वक्त या पिशाबके बाद दर्द होना, बार बार लिङ्गोद्रेक और पिशाब करनेकी इच्छा होती है, फिर लिङ्गनालीमें घाव, लिङ्ग फूलना, लालरंग, अण्डकोष और दोनो पट्ठोंमें दर्द, सर्व्वदा पीप रक्तादिका स्राव या छोटसे मूत्रमार्ग बन्द होनेसे मूत्ररोध या दोधारसे मूत्रका निकलना, यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं। सुजाक पुराना होनेसे कष्ट क्रमशः कम हो जाता है। यह रोग बड़ा संक्रामक है अर्थात् इस रोग वाली स्त्रीके सहवाससे पुरुषको और पुरुषके सहवाससे स्त्रीको यह रोग उत्पन्न होता है।

औपसर्गिक प्रमेहमें पहिले पिशाब साफ लानेका उपाय करना

भिन्न २ अवस्थाकी चिकित्सा ।

उचित है, साथही घाव आराम करनेकोभी दवा देना चाहिये। त्रिफलाका काढ़ा, बबूलके लकड़ीका काढ़ा, पीपलके छालका काढ़ा, खैर भिंगोया पानी और दहीके पानीको पिचकारी लेनेसे घावमें विशेष उपकार होता है। रोज सवेरे कबाबचीनीका चूर्ण ।) आनेभर, सोरा एक आनेभर और सनायका चूर्ण एक आनेभर फांक गरम पानी ठण्ढाकर दो घोंट पीना। रातको सोती वक्त कबाबचिनीका चूर्ण एक आनेभर, कपूर २ रत्ती, अफीम आधी रत्ती एकमें मिलाकर सेवन करना। इससे साफ पिशाब उतरता है, तथा लिङ्गोद्रेक सम्प्रदाय और घाव आराम होता है। गोंदका पानी या बबूलके पत्तेके रसमें चन्द्रेश्वर या मेहमुद्गर वटी सेवन करनेसे क्लेद, पीप रक्तादिका स्राव आदि जलदी आराम होता है। गुरिचका रस तेजपत्तेकी लकड़ी भिंगाये पानीके साथ वही सब औषध सेवन करनेसे भी जलन आराम होता है। लिङ्गका शोथ थोड़ा गरम त्रिफलाका काढ़ा या जायफलके काढ़ेमें डूबो रखनेसे आराम होता है। सर्व्वदा कपड़ेसे लिङ्ग लपेटकर बांध रखना तथा उपरको उठा रखना चाहिये। पिशाब साफ लानेके लिये पाथरचूरके पत्तेके रसके साथ उक्त औषधि और कुशावलेह सेवन करना। हमारा "प्रमेहबिन्दु" सुजाककी अकसीर दवा है। इससे थोड़े दिनमें ही पीड़ा शान्त होता है।

यह रोग जड़से आराम न होनेसे फिर क्रमशः शुक्रमेह, शुक्रतारल्य या ध्वजभङ्ग रोग उत्पन्न होता है। सब प्रकारकी शीतल क्रिया या स्नान करना इस रोगमें उचित नहीं है। इससे थोड़ी देरके लिये पीड़ा आराम मालूम होनेपरभी परिणाममें गठिया या पङ्गु रोग होनेकी सम्भावना है।

आराम न होनेका परिणाम ।

सोमरोग।

सोमरोगका साधारण नाम "बहुमूत्र" है। मिष्टद्रव्य वा कफजनक द्रव्यका अधिक भोजन, अधिक स्त्री सङ्गम, शोक, अतिरिक्त परिश्रम, योनिदोष सम्पन्ना स्त्री सहवास, अधिक मद्यपान, अतिनिद्रा या दिवा निद्रा, अतिरिक्त चिन्ता अथवा विषदोष प्रभृति कारणोंसे सब देहका जलीय पदार्थ विकृत और स्थानच्युत हो मूत्रमार्गमें उपस्थित होताहै फिर वही पानी पिशाबके रास्तेसे अधिक निकलता रहता है। निकलती वखत, किसी तरहकी तकलीफ नही होती और पानीभी साफ, ठण्ढा सफेद रंग तथा गन्धशून्य होता है। इस रोगमें दुर्बलता, रतिशक्तिकी हीनता, स्त्री सहवासमें अक्षमता, मस्तककी शिथिलता, मुख और तालुशोष तथा अत्यन्त प्यास यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं। इससे सोम अर्थात् जलीयांसका क्षय होता है इससे इसको सोमरोग कहते हैं। कोई कोई इसको मूत्रातिसारभी कहते हैं। रोगके प्रबल अवस्थामें कृशता, घर्म्मनिर्गम, शरीरमें बदबू, खांसी, अङ्गकी शिथिलता, अरुचि, पिड़िका, पाण्डुवर्णता, शान्ति, पीला पिशाब होना, मीठास्वाद और हाथ, पैर तथा कानमें सन्ताप यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं।

संज्ञानिदान और लक्षण।

बहुमूत्र रोगमें थोड़ाभी बलक्षय होनेसे यदि प्रलाप, मूर्च्छा या पृष्ठव्रण आदि दूरारोग्य स्फोटकादि उत्पन्न हो तो रोगीके प्राणनाशकी सम्भावना है।

सांघातिक अवस्था।

चिकित्सा।

पक्का केला एक, आंवलेका रस १ तोला, सहत ४ मासे, चिनी ४ मासे और दूध एक पाव एकत्र मिलाकर पोनेसे बहुमूत्र रोग शान्त होता है। पक्का केला, बिदारीकन्द और शतमूली समभाग दूधके साथ खानेसे मूत्राधिक्य दूर होता है। गुल्लरका रस या बीजका चूर्ण जामुनके गुठलीके गूदीका चूर्ण केलेके जड़का रस, आंवलेका रस, नरम ताड़फल और खजूरका रस, नरम अमरूद भिंगोया पानी, तथा भूने ननुआका रस बहुमूत्र निवारक है। बृहद्वङ्गेश्वर, तारकेश्वर रस, सोमनाथ रस, हेमनाथ रस, वसन्तकुसुमाकर रस, बृहत् धात्रीघृत, और कदलाद्य घृत बहुमूत्र रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।

दिनको पुराने चावलका भात मूंग, मसूर और चनेकी दालका जूस। छाग हरिण मांसका शूरवा तथा गुल्लर, ननुआ, कच्चा केला, परवर, सैजनकी शाक आदि तरकारी, मक्खन निकाला दूध पीना, आंवला, जामुन कसेरू, पक्का केला, पाती या कागजी नीबू और पुरानी शराबभी सेवन करना। व्यायाम क्रिया, घोड़ा हाथीकी सवारी पर घूमना, पर्य्यटन, कसरत आदि इस रोगमें विशेष उपकारी है। पाड़ाके प्रवल अवस्थामें दिनको भात न खाकर जौके आटेकी रोटी या केवल पूर्व्वोक्त दूध पीकर रहना चाहिये। गरम पानी ठण्ढाकर पोना तथा सहनेपर उसी पानीसे स्नान करना उचित है।

निषिद्ध कर्म्म।

कफजनक और गुरुपाक द्रव्य, जलाभूमिजात मांस, दही, अधिक दूध, मिष्टद्रव्य, लाल कोहड़ा, लौकी, शाक, खट्टा, उदरकी दाल, लाल

मिरचा भोजन और अधिक जल पान, तीव्र सुरापान, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण, अधिक निद्रा, मैथुन और आलस्य इस रोगमें अनिष्ट कारक है।

—— ० ——

शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग।

शुक्रतारल्यका निदान।

कम उमरमें स्त्री सहवास, हस्तमैथुन या और कोई अन्याय रीतिसे शुक्र स्खलन, अतिरिक्त स्त्री सहवास आदि कारणोंसे शुक्रतारल्य रोग उत्पन्न होता है। इससे मल मूत्रके समयमें अथवा थोड़ाभी कामोद्रेक होनेसे शुक्रपात, स्त्रीदर्शन, स्पर्शन, या स्मरण मात्रसे रेतःपात, स्वप्नदोष, सङ्गम होतेही शुक्रपात, शुक्रको तरलता और अग्निमान्द्य, कोष्ठबद्धता या अतिसार, अजीर्ण, शिराघूर्णन, आंखके चारो तरफ काला होना, दुर्व्वलता, उद्यम शून्यता, तथा निर्ज्जन प्रियता यही सब लक्षण लक्षित होते है। पीड़ाके प्रबल अवस्थामें लिङ्गके शिथिल अवस्थामेभी शुक्रपात होता रहता है और लिङ्गोद्रेक शक्ति नष्ट हो जातीहै, तथा फिर क्रमशः ध्वजभङ्ग रोग उत्पन्न होताहै। भय, शोक या अन्य किसी मनके कारणसे, विद्वेषभाजन स्त्री सहवास, औपदंशिक पीड़ा या और कोई कारणसे शुक्रवाहिनी शिराविकृति, कामवेगसे उत्तेजित होनेपर मैथुन नही करना और अधिक कटु, अम्ल, उष्ण लवणरसयुक्त द्रव्य भोजन आदि कारणोंसेभी ध्वजभङ्ग रोग उत्पन्न होता है।

शुक्रतारल्य रोगमें शुक्रकी रक्षा करनाही प्रधान चिकित्सा है।

शुक्रतारल्य चिकित्सा ।

कच्चो सेमलकी मुसलीका रस, तालमूली चूर्ण विदारीकन्दका रस या चूर्ण, आंवलेका रस, कवांचकी बीज या जेठीमध चूर्ण प्रभृति द्रव्य शुक्रवर्द्धक और शुक्रतारल्य नाशक है।

ध्वजभङ्ग चिकित्सा ।

मल मूत्रके समय शुक्रस्राव और ध्वजभङ्गमे उक्त अनुपानके साथ वृहद्वङ्गेश्वर, सोमनाथ रस, शुक्रमातृका वटी, कामचूड़ामणि रस, चन्द्रोदय मकरध्वज, पूर्णचन्द्र रस, महालक्ष्मीविलास, अष्टावक्र रस, मन्मथाभ्र रस, मकरध्वज रस आदि औषध देना। अमृतप्राश घृत, वृहत् अश्वगन्धाघृत, कामदेव घृत, वावरी वटिका, कामाग्निसन्दीपन मोदक, मदन मोदक, शतावरी मोदक, रतिवल्लभ मोदक और श्रीगोपाल तथा पल्लवसार तैल प्रभृति शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्गकी उत्कृष्ट महौषध है। हमारा "रतिविलास" सेवन करनेसे शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग रोग जल्दी आराम होता है। स्वप्नदोषमें सोती वक्त कवावचिनीका चूर्ण एक आनेभर, कपूर २ रत्ती और अफीम आधी रत्ती यह तीन द्रव्य मिलाकर अथवा केवल कवावचिनीका चूर्ण ⅃)आनेभर सहतके साथ सेवन करना, अथवा हमारी "शिवदा वटिका" सेवन करनेसे स्वप्नदोष रोग आराम होता है।

सङ्गममें शीघ्र शुक्रपात निवारणके लिये पूर्व्वोक्त मोदक और नागवल्यादि चूर्ण, अर्कादि वटिका, शुक्रवल्लभ रस या कामिनी विद्रावण रस सेवन करना चाहिये।

सब प्रकारके पुष्टिकर आहार इस रोगका पथ्य है। दिनको पुराने

पथ्यापथ्य ।

चावलका भात, रोहित आदि बढ़िया मछली, छाग, मेष, चटक, कुक्कुट, कबूतर,

बटेर, तित्तिर आदिके मांसका शूरवा; मूंग, मसूर और चनेकी दाल; हंसका अण्डा, छागका अण्डकोष, आलु, परवर, गुल्लर, बैगन, गोभी, शलगम, गाजर आदि घृतपक्क तरकारी खाना। रातको पूरी या रोटी और ऊपर कही तरकारी दूध और मीठा खाना उचित है।

जलपान। जलपानमें घी, चिनी, सूजी वा बेसनकी वस्तु, अर्थात् खाजा, खुरमा, और मोहनभोग तथा बेदाना, बदाम, पिस्ता, किसमिस, खजूर, अंगूर, आम, कटहल और पपोता आदि फल उपकारी है। अग्निबल विचारकर सब प्रकारका पुष्टिकर द्रव्य भोजन इस रोगमें उपकारी है, स्नान सहनेपर करना।

निषिद्ध द्रव्य। अधिक लवण, लाल मिरचा, खट्टा, आग और धूपका उत्ताप लगाना, रात्रि जागरण, अधिक मद्यपान, मैथुन, और अधिक परिश्रम यह सब दोनो रोगमें विशेष अनिष्टकारक है।

मेदोरोग।

निदान। निरन्तर कफजनक द्रव्य भोजन अथवा व्यायामादि किसी तरहका परिश्रम न करनेसे किम्वा दिनको सोनेसे, भुक्तद्रव्य अच्छो तरह हजम नही होनेसे मधुर रसयुक्त अपक्व रस उत्पन्न होताहै, तथा उसी रसके चिकने पदार्थसे मेदकी वृद्धि हो मेदोरोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें मेद वृद्धिके कारण रसरक्तादिवाही स्रोत समूह बन्द हो

जाते है, इससे अन्यान्य धातुभी पुष्ट नही होने पाते, केवल मेद धातुही क्रमशः वर्द्धित होनेसे मनुष्य अति स्थूल और सब काम-काजमें असमर्थ हो जाता है, क्षुद्रश्वास, प्यास, मूर्च्छा, अधिक निद्रा अकस्मात् उच्छ्वासका रोध, अवसन्नता, अतिशय क्षुधा, पसीना निकलना, शरीरमें दुर्गन्ध, बल और मैथुन शक्तिकी कमी आदि मेदरोगके आनुसङ्गिक लक्षण है।

मेदोवृद्धि परिणाम फल। मेदधातु अतिशय बढ़ जानेसे वातादि दोष समूह कुपित होकर प्रमेह पिड़िका ज्वर और भगन्दर आदि उत्कट पीड़ा उपस्थित होनेसे प्राणनाशकी सम्भावना है।

चिकित्सा। जिससे शरीर कृश और रूक्ष हो वही आचरण करना मेद रोगको प्रधान चिकित्सा है। रोज सबेरे सहत मिलाया पानी पीनेसे मेदरोग आराम होताहै। त्रिफला और त्रिकटु चूर्ण, तेल और नमकके साथ मिलाकर कुछ दिन सेवन करनेसेभी मेदोरोग प्रशमित होता है। अथवा विड़ङ्ग, शांठ, जवखार, कान्तलौह भस्म, यव और आंवला, इन सबका समभाग चूर्ण सहतके साथ मिलाकर चाटना। गनियारीका रस या शिलाजतु सेवनसेभी मेदरोगमें विशेष उपकार होता है। अमृतादि और नवक गुग्गुलु, त्र्यषणाद्य लौह, वड़वाग्नि लौह और रस तथा त्रिफलाद्य तैल मेदरोग दूर करनेके लिये प्रयोग करना चाहिये। महासुगन्धि तेल या हमारा हिमांशुद्रव बदनमें लेप करनेसे मेदजन्य दुर्गन्ध जड़से आराम होता है।

पथ्यापथ्य। दिनको सांवा चावलका भात, अभावमें महीन चावलका भात, छोटो मछलीका शूरवा, गुल्लर, कच्चा केला, बैगन, परवल और पुराने सफेद कोंहड़ेकी तरकारी, खट्टेमें पाती या कागजी नीबू। रातको जौके आटेकी रोटी

और अपर कची तरकारी। मीठेमें सिर्फ थोड़ी मिश्री खाना। स्नान न करना ही अच्छा है, सहनेपर गरम पानी ठण्ढाकर स्नान करना और गरम पानी ही पीना उचित है। परिश्रम, चिन्ता, पथ पर्य्यटन, रात्रि जागरण, व्यायाम और मैथुन यह सब कार्य्य मेदोरोगमें विशेष उपकारी है।

निषिद्ध कर्म।

यावतीय कफवर्द्धक और स्निग्धद्रव्य, दूध, दही, मक्खन, मांस, मछली, घृतपक्व द्रव्य, नारियल, पका केला और दूसरे पुष्टिकर द्रव्य भोजन, सुखकर बिछौनेपर शयन, सुनिद्रा, दिवानिद्रा, सर्व्वदा उपवेशन, आलस्य और चिन्ताशून्यता इस रोगमें अनिष्टकारक है।

कार्श्यरोग और औषध।

यहां कार्श्य रोगके विषयमें भी कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है। रुक्षद्रव्य भोजन, अत्यन्त परिश्रम, अतिरिक्त चिन्ता, अधिक उपवास आदि कारणोंसे कार्श्यरोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें मेद-मांस आदि धातु क्षीण हो जाते हैं। अश्वगन्धा कार्श्यरोगकी एक उत्कृष्ट औषध है; दूध, घृत, या पानीके साथ अश्वगन्धा का कल्क सेवन करना कार्श्यरोगमें विशेष उपकारी है।

कार्श्यरोगमें हमारा अश्वगन्धारिष्ट।

शुक्रतारल्य रोगमें जो सब औषधि कथित है, उसमें अश्वगन्धा घृत, अमृतप्राश घृत, और वातव्याधि कथित छागलाद्य घृत आदि पुष्टिकर औषध कार्श्यरोगमें प्रयोग करना चाहिये। हमारा "अश्वगन्धारिष्ट" कार्श्यरोगकी अति उत्कृष्ट औषध है। असगन्धका कल्क १ सेर, काढ़ा ६ सेर और दूध ६ सेर यह तीन प्रकारके द्रव्यके साथ तिलतैल ४ सेर यथाविधि पाककर मालिश करनेसे कृशाङ्गी पुष्ट होता है। इस रोगमें घी, दूध, मांस, मक्खन,

और अन्यान्य श्लेष्मनाशक पुष्टिकर आहार, सुनिद्रा, दिवानिद्रा, परिश्रम त्याग, निश्चिन्तता और सर्व्वदा प्रसन्न चित्तसे रहना उपकारी है। मांस ही कार्श्यरोगका उत्कृष्ट पथ्य है। शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग रोगोक्त पथ्यापथ्य कार्श्यरोगमें पालन करना चाहिये।

उदर रोग।

एकमात्र अग्निमान्द्यहीको सब प्रकारके उदर रोगका निदान कहा जा सकता है। इसके सिवाय अजीर्ण दोषजनक अन्न भोजन और उदरमें मलोंका सञ्चय, यही सब उदर रोगके कारण है। उक्त कारणोंसे सञ्चित वातादि दोष स्वेदवहा और जलवहा स्रोत: समूहोंको रुद्ध तथा प्राणवायु, अपान वायु और अग्निको दूषित कर उदर रोग पैदा करता है। इसके सिवाय प्लीहा और यकृत् अत्यन्त बढ़नेसे अन्त्रमें किसी तरहका घाव होनेसे तथा अन्त्रमें अधिक जल सञ्चय होनेसे भी उदर रोग उत्पन्न होता है। उदराध्मान, चलनेमें अशक्ति, दुर्ब्बलता, अतिशय अग्निमान्द्य, शोथ, सर्व्वाङ्गकी अवसन्नता, अधोवायु और मलका अनिर्गम, दाह और तन्द्रा, यही सब उदर रोगके साधारण लक्षण है। उदर रोग ८ प्रकार, वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, प्लीहा और यकृत् जनित, मलसञ्चय जनित, क्षतज और उदरमें जल सञ्चयजनित।

निदान।

वातज उदर रोगमें हाथ, पैर, नाभि और कुक्षिमें शोथ; कुक्षि, पार्श्व, उदर, कटि, पृष्ठ और सन्धि समूहोंमें दर्द; सूखी खांसी, अङ्गमर्द,

वातज रोग लक्षण।

शरीरका आधा भाग भारी मालूम होना, मलरोध, त्वक, नख, मूत्र आदिका श्याव या अरुण वर्णता, अकस्मात् उदर शोथका ह्रास या वृद्धि, उदरमें सूचीवेधवत् या भङ्गवत् वेदना, सूक्ष्म सूक्ष्म कृष्णवर्ण शिरा समूहोंकी उत्पत्ति, पेटमें मारनेसे वायु पूर्णकी तरह आवाज और दर्दके साथ वायुका इधर उधर फिरना। यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं।

पित्तज रोग लक्षण।

पित्तोदरमें ज्वर, मूर्च्छा, तृष्णा, मुखका कड़ुआ स्वाद, भ्रम, अतिसार, त्वक और आंख आदिका पीला होना, पेटमें पसीना, दाह, वेदना और उष्मायुक्त, कोमल स्पर्श; हरित, पीत या ताम्रवर्णकी शिरामें आच्छन्न और पेटसे उष्मा निकलनेकी तरह अनुभव होना, यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं। पित्तोदर जल्दी पककर जलोदर होता है।

श्लेष्मज रोग लक्षण।

कफोदरमें सर्व्वांगकी अवसन्नता, स्पर्शज्ञानका अभाव, शोथ, अंगकी गुरुता, निद्रा, वमनवेग, अरुचि, श्वास, कास, त्वक आदिका सफेद होना और उदर बड़ा होना, स्तिमित, चिकना, कठिन, शीतल स्पर्श, भारी, अचल और सफेद शिरायुक्त होता है। कफोदर देरसे बढ़ता है।

दुष्य या त्रिदोषज उदर रोग लक्षण।

नख, लोम, मूत्र, विष्ठा, आर्त्तव या किसी तरहके विषादि द्वारा दूषित अन्न भोजन करनेसे रक्त और वातादि दोषत्रय कुपित होकर त्रिदोषज उदर रोग उत्पन्न होता है। इसमें वातादि तीनों दोषके उदर रोगके लक्षण मिले हुए मालूम होता हैं और रोगी पांडुवर्ण, कृश, पिपासासे गला सूखना तथा बार बार मूर्च्छित होता रहता है। ठण्डके समय ठण्डी हवा लगनेसे और अशौच

जांघोंके दिनोंमें यही उदर रोग बढ़कर दारुण होता है। इसका दूसरा नाम दुष्योदर है।

प्लीहोदरका निदान और लक्षण।

निरन्तर कफजनक द्रव्य और जो सब द्रव्यका अम्लपाक हो वैसा द्रव्य भोजन करनेसे कफ और रक्त दूषित होकर प्लीहा यकृतको बढ़ाता है। प्लीहा यकृत् बढ़ते बढ़ते जब पेट बढ़ता है तब सर्व्वाङ्गकी अवसन्नता, मन्दज्वर, अग्निमान्द्य, बलक्षीण, देहकी पाण्डुवर्णता, और कफपित्तजनित अन्यान्य उपद्रवभी उपस्थित होते हैं, तब उसको प्लीहोदर या यकृदुदर कहते हैं। प्लीहोदरमें पेटके वामभागकी वृद्धि और यकृदुदरमें दक्षिण भाग बढ़ता है। इसमें वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे उदावर्त्त, आनाह और पेटमें दर्द; पित्तके प्रकोपमें मोह, तृष्णा, दाह, ज्वर और कफके प्रकोपमें गात्र गुरुता, अरुचि और पेटकी कठिनता; यही सब लक्षण लक्षित होते हैं।

बद्ध गुदोदर लक्षण।

शाकादि भोज्यद्रव्य या अन्नादिके साथ बाल किम्बा कंकरी अन्तड़ीमें जानेसे अन्ननाड़ी क्षत हो जाती है, इससे गुह्य नाड़ोमें मल और दोष समूह सञ्चित हो बद्ध गुदोदर नामक मल सञ्चय जनित उदर रोग उत्पन्न होता है। इसमें छाती और नाभिके बीचका भाग बढ़ता है और अति कष्टसे थोड़ा थोड़ा मल निकलता है।

क्षतज उदर रोग लक्षण।

अन्नके साथ कण्टकादि शल्य प्रविष्ट होकर यदि नाड़ीको भेद करें अथवा अतिरिक्त भोजन और जम्हाईसे अन्तड़ी भेद हो तो उस क्षत स्थानसे पानीकी तरह स्राव होता है तथा नाभिके नीचेका भाग बढ़ताहै, और गुह्यद्वारसे पानी स्राव होता हैं। इसको परिस्राव्युदर नामक

क्षतज उदर रोग कहते हैं। इस उदर रोगमें सूचीविधवत् या विदीर्ण होनेकी तरह अत्यन्त यातना होती है।

जलोदरके लक्षण।

स्नेहपान, अनुवासन (स्नेह पदार्थकी पिचकारी) वमन, विरेचन, अथवा निरूहण (रूक्ष पदार्थकी पिचकारी) क्रियाके बाद एकाएक शीतल जल पान करना, किम्वा स्नेह पदार्थसे जलवह स्रोत उपलिप्त होनेसे, वही स्रोत समूह दूषित होता है और वही दूषित नाड़ीमें जलस्राव होकर उदरकी वृद्धि होती है; इसको उदकोदर या जलोदर नामक जलसञ्चय जनित उदर रोग कहते हैं। इस रोगमें पेट चिकना, बड़ा, जल भरा रहनेकी तरह फूला और सञ्चालित होनेसे क्षुब्ध, कम्पित और शब्दयुक्त होता है। इससे नाभिके चारो तरफ दर्द होता है।

साध्यासाध्यता।

प्राय सब प्रकारका उदर रोग कष्टसाध्य है; विशेषतः जलोदर और क्षतोदर रोग अतिशय कष्टसाध्य है, शस्त्रचिकित्साके सिवाय इसके आराम होनेकी आशा कम है। रोग पुराना होनेसे या रोगीका बलक्षय हो जानेसे सब उदर रोग असाध्य हो जाते है। जिस उदर रोगीकी आंखे फूली, लिङ्ग टेढ़ा, त्वक पतला, क्लेदयुक्त और बल, अग्नि, रक्त, मांस क्षीण हो जाय; अथवा जिस रोगीका पार्श्वद्वय भग्नवत्, अन्नसे द्वेष, अतिसार किम्वा विरेचन करानेसेभी कोष्ठ पूर्ण रहता है; यही सब उदर रोग असाध्य है।

विभिन्न दोषज उदर रोगकी चिकित्सा।

प्राय सब प्रकारके उदर रोगमें तीन दोष कुपित होतेहै, इससे वातादि तीन दोषोके शान्तिकी चिकित्सा पहिले करना चाहिये। इसमें अग्निशुद्धिके लिये अग्निवर्द्धक औषध और विरेचनके

लिये थोड़ा गरम दूध या गोमूत्रके साथ रेडीका तेल पान कराना चाहिये। वातोदरमें पहिले पुराना घी आदि स्नेह पदार्थ मालिस कर सेंकना चाहिये। फिर विरेचन कराकर कपड़ेके टुकड़ेसे पेटको बांध रखना। वातोदरमें पीपल और सेन्धा नमकके साथ; पित्तोदरमें चिनी और गोलमरिचके साथ; कफोदरमें अजवाईन, सेन्धानमक, जीरा और त्रिकटुके साथ और सन्निपातोदरमें त्रिकटु जवाखार और सैन्धानमकके साथ मट्ठा पिलाना। इससे पेटका भारीपन और अरुचि दूर होताहै। प्लीहोदर और यकृदुदरमें प्लीहा और यकृत् रोगोंका चिकित्सा करना चाहिये। बद्धोदरमें पहिले स्वेद फिर तेज जुलाब देना चाहिये। देवदारु, सेजन और अपामार्ग, अथवा असगन्ध गोमूत्रमें पीसकर पीनेसे दूष्योदर प्रभृति सब प्रकारका पेटरोग आराम होता है। भैंसे महिषका मूत्र अन्दाज एक छटांक पीनेसेभी सब प्रकारका उदर रोग दूर होता है। पुनर्नवा, देवदारु, गुरिच, अम्बष्टा, बेलकी जड़, गोखुर, वृहती, कण्टकारी, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, चितामूल और अडूसा इन सब द्रव्योंका समान चूर्ण गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे उदररोग प्रशमित होता है। दशमूल, देवदारु, सोंठ, गुरिच पुनर्नवा और बड़ी हर्रे इन सबका काढा पीनेसे जलोदर शोथ, श्लीपद और वात रोग आराम होता है। पुनर्नवा, नीमकी छाल, परवरका पत्ता, सोंठ, कुटकी, गुरिच, देवदारु और हरीतकी इन सबका काढ़ा पीनेसे सब प्रकार उदर, सर्व्वाङ्ग शोथ, काम, शूल, श्वास और पाण्डुरोग आराम होता है। उदर रोगमें दोष-विशेष विचारकर पुनर्नवादि क्वाथ, कुष्ठादि चूर्ण, सामुद्राद्य चूर्ण, नारायण चूर्ण, त्रैलोक्यसुन्दर रस, इच्छाभेदी रस, नाराच रस, पिप्पल्याद्य लौह, शोथोदरारि लौह, चित्रकघृत, महाबिन्दुघृत, वृहत् नाराचघृत

और . . . तेल प्रभृति औषध प्रयोग करना चाहिये। रोगी दुर्बल होनेसे जुलाब न देकर हमारी "सरलभेदी वटिका" प्रयोग करना उचित है।

पथ्यापथ्य।

उदर रोगमें लघुपाक और अग्निवृद्धिकारक आहार करना उचित है। पीड़ाकी प्रबल अवस्थामें केवल मानमण्ड, अभावमें केवल दूध अथवा दूध सागूदाना आदि आहार करना हितकर है। पीड़ा अधिक प्रबल न हो तो दिनको पुराने चावलका भात, मूंगकी दालका जूस, परवल, बैगन, गुल्लर, सूरण, सैजनका डण्ठा, छोटी मूली, श्वेत पुनर्नवा और अदरख आदिकी तरकारी थोड़ा नमक मिलाकर खाना चाहिये। रातको दूधसागू अथवा अधिक भूख हो तो २।१ पतली रोटी खानेको देना। गरम पानी पीना उचित है।

निषिद्ध कर्म।

पिष्टकादि गुरुपाक द्रव्य, तिल, लवण सोम आदि द्रव्य भोजन और स्नान, दिवानिद्रा, परिश्रम; उदर रोगमें विशेष अनिष्टकारक।

शोथरोग।

निदान।

वमन विरेचनादि क्रिया, ज्वर, अतिसार, ग्रहणी, पाण्डु, अर्श, रक्तपित्त, प्लीहा और यकृत् आदि पीड़ा, तथा उपवास और भोजनादिसे क्षय और दुर्बल होनेपर, खार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और गुरुपाक द्रव्य भोजन करनेसे, अथवा दही, कच्चा द्रव्य, मिट्टी, शाक, और

मत्स्यादि संयोग विरुद्ध और विष मिला द्रव्य भोजन करनेसे, तथा वमन विरेचनादि उचित कालमें न करानेसे या असमयमें करनेसे, परिश्रम त्यागनेसे, गर्भस्राव होनेसे किम्वा मर्म्मस्थानमें चोट लगनेसे शोथ रोग पैदा होता है। कुपित वायु, दुष्ट रक्त, पित्त और कफको बाहर की शिरा समूहोंमें लाकर तथा वायुभी वही दोषोंसे रुद्ध होनेसे त्वक और मांस फूलता है, इसीको शोथरोग कहते हैं। शोथ पैदा होनेके पहिले सन्ताप, शिरा समूहोंका फैलनेकी तरह यातना और शरीर भारबोध यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होते हैं। अवयव विशेषकी स्फीतता, तथा भारबोध, बिना चिकित्साकेभी कभी शोथकी निवृत्ति और फिर उत्पत्ति; शोथस्थान उष्ण स्पर्श, शिरायुक्त, विवर्णता और रोगीके शरीरमें रोमाञ्च होना आदि शोथ रोगके साधारण लक्षण है। वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातश्लेष्मज, पित्तश्लेष्मज और त्रिदोषज भेदसे शोथरोग ७ प्रकारका होता है।

वातज रोग लक्षण।

वातज शोथ एक जगह स्थिर नहीं रहता, इससे बिना कारण भी कभी कभी आराम मालूम होता है; शोथके उपरका चमड़ा पतला, कर्कश, अरुण या कृष्णवर्ण स्पर्श शक्तिहीन और भिन्न भिन्न वेदना विशिष्ट होता है। यह शोथ दबानेसे बैठ जाता है। दिनको यह शोथ बढ़ता है और रातको कम हो जाता है।

पित्तज लक्षण।

पित्तज शोथ कोमल स्पर्श, गन्धयुक्त और शीत या अरुणवर्ण; तथा उष्माविशिष्ट, दाहयुक्त और अतिशय यन्त्रनादायक होकर पक जाता है। इस शोथमें भ्रम, ज्वर, पसीना, पिपासा, मत्तता और दोनो आंखे लाल यही सब लक्षण लक्षित होते हैं।

कफज शोथ भारी, एक स्थानमें स्थायी और पाण्डुवर्ण तथा इससे अरुचि, मुखादिसे जलस्राव, निद्रा, वमि और अग्निमान्द्य होता है। यह शोथ दबानेसे दब जाता है, पर छोड़ देनेसे फिर उठता नहीं। रातको यह बढ़ता है और दिनको कम हो जाता है। कफज रोग जैसे देरमें बढ़ता है वैसही देरसे आरामभी होता है। इसी प्रकार दो दोषके लक्षण प्रकाशित होनेसे उसको वही दो दोषजात और तीन दोषके लक्षणोंमें त्रिदोषज मानना चाहिये।

कफज लक्षण।

शोथजनक कोई दोष आमाशयमें रहे तो छातीसे ऊर्द्ध देहमें; पक्वाशयमें रहे तो मध्य शरीरमें अर्थात् छातीसे पक्वाशय तक; मलाशयमें रहे तो कमरसे पैरके तलवे तक; और सब शरीरमें विस्तृत रहनेसे सर्व्वाङ्गमें शोथ होता है।

अवस्थान भेद।

मध्यदेह या सर्व्वाङ्गका शोथ कष्टसाध्य। जो शोथ दहिने बायें या उपर नीचे विभागानुसार जिस किसी अर्द्धाङ्गमें उत्पन्न हो अथवा जो शोथ निम्न अवयवोंसे उत्पन्न होकर क्रमशः उपरको विस्तृत होता रहे, उसी शोथसे प्राण नाशको सम्भावना है। किन्तु पाण्डु प्रभृति अन्यान्य रोगके उपद्रव रूपसे यदि पहिले पैरमें शोथ होकर क्रमशः उपरको तरफ बढ़े तो वह मारात्मक नहीं है। स्त्रियोंको पहिले मुखसे उत्पन्न हो क्रमशः पैरको तरफ जो शोथ उतरता है वह उनका प्राण नाशक है। स्त्री या पुरुष जिस किसीको पहिले गुदामें शोथ होतो वह प्राण नाशक है। ऐसही कुक्षि, उदर, गलदेश और मर्म्मस्थान जात शोथभी असाध्य है। जो शोथ अतिशय स्थूल और कर्कश, अथवा, जिस शोथमें श्वास, पिपासा, वमि, दौर्ब्बल्य,

साध्यासाध्य निर्णय।

ज्वर और अरुचि आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं वह शोथभी असाध्य जानना। बालक, वृद्ध और दुर्व्वल व्यक्तिका भी शोथ कष्टसाध्य होता है।

किसी रोग विशेषके साथ शोथ रोग होनेसे, उसी रोगको दवायोंके साथ शोथनाशक औषध प्रयोग करना। मलमूत्र साफ रखना इस रोगमें विशेष आवश्यक है।

चिकित्सा।

वातिक शोथमें कोष्ठबद्ध होनेसे दूधके साथ रेंड़ीका तेल पिलाना। दशमूलका काढ़ा वातज शोथमें विशेष उपकारी है। पित्तज शोथमें गोमूत्रके साथ ⁄) आनेभर निसृतका चूर्ण सेवन करना; अथवा निसृतकी जड़, गुरुच और त्रिफला का काढ़ा पीना। कफज शोथमें पुनर्नवा, शोंठ, निसृतकी जड़, गुरिच, बड़ीहर्र और देवदारु; इसके काढ़ेमें गोमूत्र और ⁄) आनेभर गुग्गुलु मिलाकर पिलाना। गोलमरिच चूर्णके साथ बेलके पत्तेका रस, शीमके पत्तेका रस और सफेद पुनर्नवाका रस; यह सब शोथ रोगमें उपकारी है। सेहुंड़के पत्तेका रस मालिश करनेसे शोथ शान्त होता है। पथ्यादि क्वाथ, पुनर्नवाष्टक, सिंहास्यादि काढ़ा, मानमण्ड, शोथारिचूर्ण, शोथारिमण्डूर, कंस हरीतकी, कटुकाद्य लौह, त्रिकट्वादि लौह, शोथकालानल रस, पञ्चामृत रस, दुग्धवटी और ग्रहणी रोगोक्त औषध स्वर्णपर्पटी आदि विवेचना पूर्व्वक प्रयोग करना चाहिये। पाण्डुजन्य शोथ रोगमें तक्रमण्डूर और सुधानिधि विशेष उपकारी है। दुग्धवटी और स्वर्णपर्पटी सेवन करती वक्त लवण-पानी छोड़कर केवल दूध पीकर रहना चाहिये। ज्वरादि संस्रव न रहनेसे चित्रकाद्य घृत सेवन और शोथ स्थानमें पुनर्नवादि तैल और शुष्कमूलादि तैल आदि मर्दन कर सकते हैं।

उदर रोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिख आये हैं कोष रोगमेंभी

पथ्यापथ्य । वही सब पालन करना चाहिये ।

कोषवृद्धि ।

संख्या और प्रकार भेद । वायु अपने दोषसे कुपित हो पट्ठेसे अण्डकोषमें आता है और फिर पित्तादि दोष दूष्यको कुपित कर अण्डकोष वर्द्धित, स्फीत और वेदना-युक्त होनेसे उसको वृद्धिरोग कहते हैं। वृद्धिरोग ७ प्रकार; वातज, पित्तज, श्लेष्मज, रक्तज, मेदोज, मूत्रज और अन्त्रज।

प्रकारभेद लक्षण । वातज वृद्धिरोग में अण्डकोष बढ़कर वायुपूर्ण चर्म्मपुटको तरह आकृतिविशिष्ट होता है और वह रूखा तथा सामान्य कारणसेभी उसमें दर्द होता है। पित्तज वृद्धिमें अण्डकोष पक्के गुल्लरको तरह लाल, दाह और उष्मायुक्त होता है। वैसो दिन रहनेसे पकजाता है। कफज वृद्धिमें अण्डकोष शीतल स्पर्श, भाराक्रान्त, चिकना, कण्डुयुक्त, कठिन और कम वेदनायुक्त होता है। रक्तज वृद्धि कृष्णवर्ण स्फोटक व्याप्त और पित्तज वृद्धिके अन्यान्य लक्षणयुक्त होता है। मेदोज वृद्धि रोगमें अण्डकोषका आकार पक्के ताड़फलको तरह और वह मृदु स्पर्श तथा कफ वृद्धिके लक्षणयुक्त होता है। नियत मूत्रवेग धारण करनेसे मूत्रजवृद्धि रोग पैदा होता है; इस वृद्धिसे चलती वक्त अण्डकोष जलपूर्ण चर्म्मपुटको तरह संक्षोभित, मृदुस्पर्श और वेदनायुक्त होता है। इसमें कभी मूत्रकृच्छ्रकी तरह दर्द होता है

और हिलानेसे नीचेकी तरफ भुक जाता है। वायुकारक आहार, शीतल पानीमें अवगाहन, मलमूत्र वेग धारण या अनुपस्थित वेगमें वेग देना, भार वहन, पथ पर्य्यटन, विषम भावसे अङ्ग-विन्यास और दुःसाहसिक कार्य्य प्रभृतिसे वायु चालित हो जब क्षुद्रान्त्रका कियदंश सङ्कुचित हो नीचेकी तरफ वंक्षण सन्धिमें आता है तभी उस सन्धिस्थलमें ग्रन्थिरूप शोथ उत्पन्न होता है इसीको अन्त्रवृद्धि कहते हैं, अन्त्रवृद्धि अचिकित्स्य भावसे अधिक दिन रहनेसे अण्डकोष वर्द्धित, स्फीत, वेदनायुक्त और सञ्चित होता है। हाथ दबानेसे या कभी आपही आप शब्द करते हुए वायु ऊपरकी तरफ उठता है और फिर कोषोंमें आकर शोथ उत्पन्न होता है। अन्त्रवृद्धि (आंत उतरना) असाध्य रोग है।

एकशिरा और वातशिरा।

अमावस्या या पूर्णिमा अथवा दशमी और एकादशी तिथिमें कम्प और सन्धिसमूह या सर्व्वाङ्गमें वेदना प्रभृति लक्षणयुक्त प्रबल ज्वर होकर एक प्रकार कोषवृद्धि उत्पन्न होता है; २।३ दिन बाद फिर वह आपही आप दूर होजाता है। एक कोष बढ़नेसे उसको चलित भाषामें एकशिरा और दो कोष बढ़नेसे उसको वातसिरा कहते हैं।

वृद्धिरोग चिकित्सा।

यावतीय वृद्धिरोगके प्रथम अवस्थाहीमें चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो कष्टसाध्य होजाता है। सब वृद्धि रोगमें दूधके साथ तथा पित्तज और कफजमें दशमूलके काढ़ेके साथ रेंड़ीका तेल पीना। कफज और मेदोज वृद्धिमें त्रिकटु और त्रिफलाके काढ़ेके साथ ✓) आनेभर जवाखार और ✓) आनेभर सेंधा नमक मिलाकर पीना यही श्रेष्ठ विरेचन है। मूत्रज वृद्धिमें अस्त्रविशेषसे भेदकर जलस्राव कराना अर्थात् "टेप" लेना आवश्यक है।

अन्त्रवृद्धि (आंत उतरना) जबतक कोषतक नहीं उतरता उसी समय तक चिकित्सा करनेसे आराम होता है। इसमें रास्ना, मुलेठी, एरण्ड मूल, बरियारा, गोक्षुर ; अथवा केवल बरियारेकी जड़ दूधमें औटाना, फिर उसी दूधमें रेंड़ीका तेल मिलाकर पिलाना। बच और सरसों ; किम्बा सैजनकी छाल और सरसों ; अथवा दातिम बीज और अदरख ; किम्बा सफेद अकवनकी छाल कांजीमें पीसकर लेप करनेसे सब प्रकारका वृद्धिरोग शान्त होता है। जयन्ती पत्र आगपर गरम कर कोषमें बांधनेसेभी कोषवृद्धि रोग आराम होता है। हमारी "कोषवृद्धिकी दवा" सब प्रकारके वृद्धिरोगमें व्यवहार करनेसे सुन्दर उपकार होता है। भल्लातकादि, वृद्धिबाधिका वटी, वातारि, शतपुष्पाद्य घृत, गन्धर्व्व-हस्त तैल और श्लीपद रोगोक्त कृष्णादि मोदक, नित्यानन्द मोदक आदि औषध विचार कर प्रयोग करना। कोषमें मालिश करनेके लिये सैन्धवाद्य घृत, शोथ रोगोक्त पुनर्नवा और शुष्क मूलादि तैल व्यवहारमें लाना चाहिये। अन्त्रवृद्धिकी प्रबलावस्थामें "ट्रस" नामक यन्त्र लगाना उपकारी है।

पथ्यापथ्य।

दिनको पुराने महीन चावलका भात ; मूंग, मसूर, चना और अरहरकी दाल ; परवर, बैगन, आलू, गाजर, गुल्लर, करेला, सैजनकी छड़ा, अदरख, लहसन आदिकी तरकारी अल्प परिमाण बीच बीचमें छागमांस, छोटी मछली और सब प्रकारके तिक्त और सारक द्रव्य आहार करना। रातको रोटी या पूरी और ऊपर कही तरकारी और थोड़ा दूध भोजन करना। गरम पानी ठण्ढाकर पान और स्नान करना चाहिये। इस रोगमें सर्व्वदा लङ्गोट पहिरे रहना चाहिये।

नये चावलका भात या और कोई गुरुपाक द्रव्य, दही, उरद, पका केला और अधिक मीठा आदि द्रव्य भोजन, शीतल जलपान, भ्रमण, दिवा निद्रा, मलमूत्रका वेग धारण, स्नान, अजीर्ण रहनेपरभी भोजन, तैलाभ्यङ्ग आदि इस पीड़ामें अनिष्टकारक है।

निषिद्ध कर्म।

गलगण्ड और गण्डमाला।

अपने अपने कारणोंसे कुपित वायु, कफ और मेद गलमें अण्डकोषकी तरह जो लम्बा शोथ पैदा होता है उसको गलगण्ड कहते हैं। वातज गलगण्ड सूचीवेधवत् वेदना, कृष्णवर्ण, शिराव्याप्त, कर्कश, अरुणवर्ण और देरसे बढ़ता है; तथा रोगीके मुखका स्वाद फीका और तालु कण्ठमें शोष होता है। यह गलगण्ड पकता नही कदाचित् किसीका पकता है। कफज गलगण्ड कड़ा, सफेद, वजनदार, अत्यान्त कण्डूविशिष्ट, शीतल, बड़ी देरसे बढ़ना और अल्प वेदनायुक्त होता है। मुहका स्वाद, मीठा तथा तालू और गलमे कफ भरा रहताहै। मेदोज गलगण्ड, चिकना, भारी, पाण्डुवर्ण, दुर्गन्ध, कण्डूयुक्त और अल्प वेदनाविशिष्ट जानना। इसका आकार लौकीकी तरह जड़ पतली और ऊपर मोटा होता है। शरीरके ह्रासवृद्धिके साथ साथ इसकीभी ह्रासवृद्धि होती रहती है तथा इसमें रोगीका मुख तेलकी तरह चिकना और गलसे सर्व्वदा शब्द निकलता है। जिस गलगण्डमें रोगीके निश्वास प्रश्वासमें अति कष्ट, सर्व्वाङ्गकी कोमलता,

गलगण्ड लक्षण।

देह शोथ, आहारमें अरुचि, और स्वरभङ्ग हो तथा जिसको बिमारी एक वर्षसे अधिक दिनकी है, वह असाध्य जानना।

गण्डमाला।

दूषित मेद और कफ कन्धा, गलेकी मन्यानामक शिरा, गला और बगलमें बेर और आंवलेकी तरह बहुतसी गांठें उत्पन्न होती है उसको गण्डमाला कहते हैं। गण्डमाला बहुत दिन पर पकते देखा गया है। जिस गण्डमालाकी कोई गांठ पक जाय, कोई गांठ आराम हो जाय तथा फिर नयी पैदा होय ऐसी अवस्था होनेसे उसको अपची कहते हैं। अपचीके साथ साथ पीनस, पार्श्वशूल, कास, ज्वर और वमि आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे असाध्य होता है। यदि कोई उपद्रव न हो तो आरामभी होता है।

अर्व्वुद।

शरीरके जिस स्थानमें गांठकी तरह एक प्रकार क्षुद्र शोथ उत्पन्न होकर उसमें गांठ और गोल, अचल और अल्प वेदनायुक्त जो मांसपिण्ड उत्पन्न होता है उसको अर्व्वुद कहते हैं। गलगण्डकी आकृतिसे यह बहुत मिलता है, इससे यहां इसी दो रोगके विषयमें लिखना आवश्यक है।

गलगण्ड चिकित्सा।

गलगण्ड रोगमें कफनाशक चिकित्सा करना विशेष आवश्यक है। हस्तिकर्ण पलाशकी जड़, अरवे चावलके धोवनमें पीसकर गलगण्डमें लेप करना। अथवा सफेद सरसों, सैजनकी बीज, तीसी, जौ और मूलीकी बीज; एकसङ्ग मट्ठेमें पीसकर लेप करना। पकी तितलौकीका रस, काला और सैन्धानमक मिलाकर नास लेनेसे गलगण्ड रोग शान्त होता है। इसमें नित्यानन्द रस और अमृताद्य तेल पान तथा तुम्बी तैलका नास लेना चाहिये।

गण्डमाला रोगमें मलमण्ड नामक लेप आदि प्रयोग करना।

गण्डमाला चिकित्सा।

काञ्चन छालके काढ़ेमें सोंठ मिलाकर अथवा वरुण मूलके काढ़ेमें शहत मिलाकर पीना। सफेद अपराजिताकी जड़ गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे पुराना गण्डमालाभी आराम होता है। इसमें काञ्चन गुग्गुलु सेवन, छुछुन्दरी और सिन्दुरादि तैल मर्द्दन तथा निर्गुण्डी और बिम्बादि तैलका नस्य लेना विशेष उपकारी है।

अपची चिकित्सा।

गण्डमाला अपचीके रूपमें परिणत होनेसे सैजनकी छाल और देवदारु एकत्र कांजीमें पीसकर गरम लेप करना। अथवा सफेद सरसों, नीमका पत्ता, आगमें जलाया भेलावा, छागमूत्रमें पीसकर लेप करना। गुञ्जाद्य तैल और चन्दनाद्य तैल मर्द्दन अपची रोगमें विशेष उपकारी है।

ग्रन्थिरोग चिकित्सा।

ग्रन्थि रोगमें द्राक्षा या इक्षुरसके साथ हरीतकी चूर्ण सेवन करना, जामुनकी छाल, अर्ज्जुन छाल और बेतकी छाल पीसकर लेप करना। दन्तीमूल, चितामूल, सेहुड़का दूध, अकवनका दूध, गुड़, भेलावेकी बीज और हिराकस; यही सब द्रव्यका लेप करनेसे गांठ पकती है और उसमेंसे क्लेदादि निकलकर आराम हो जाता है। सज्जीखार, मूलक भस्म और शङ्खचूर्णका लेप करनेसे ग्रन्थि और अर्ब्बुद रोग आराम होता है। अर्ब्बुद रोगमें फस्त लेना चाहिये। गुल्लर या और कर्कश पत्तसे अर्ब्बुद घिसकर उसके ऊपर राल, प्रियङ्गु, लाल चन्दन, लोध, रसाञ्जन और मुलेठी एकत्र पीसकर शहत मिला लेप करना। बड़का दूध, कुड़ और पांगा नमक अर्ब्बुदमें लेपकर बड़के पत्तेसे बांध रखना, सैजनकी बीज, मूलीकी

बीज, सरसों, तुलसी, जो और कनेलकी जड़, एकत्र मठ्ठेमें पीस-कर लेप करनेसे अर्व्वुद रोग आराम होताहै। इन सब क्रियाओंसे ग्रन्थि और अर्व्वुद रोगको शान्ति न होनेसे नस्तर करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।

गलगण्डादि रोगमें कोषवृद्धि रोगको तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये, इससे अलग नहीं लिखा गया।

श्लीपद।

श्लीपदका साधारण नाम "फील पा" है। इस रोगमें पहिले पठ्ठेमें दर्द होता है, फिर पैर फूलता है। प्रथम अवस्थामें बहुतोंको ज्वरभी आता है। कफके प्रकोपहीसे यदि रोग उत्पन्न होता है, तथापि वातादि दोषके आधिक्यानुसार भिन्न भिन्न लक्षणभी इसमें लक्षित होते हैं। श्लीपदमें वायुका आधिक्य रहनेसे शोथस्थान काला, रूखा, फटा और तीव्र वेदनायुक्त होता है, तथा इसमें सर्व्वदा ज्वर तथा अकसर दर्दकाभी क्रमवृद्धि होता है। पित्तके आधिक्यसे श्लीपद कोमल, पीतवर्ण दाहविशिष्ट और ज्वर संयुक्त होता है। कफके आधिक्यसे श्लीपद कठिन, चिकना, सफेद या पाण्डुवर्ण और वजनदार होता है।

दोषभेदसे श्लीपदके लक्षण।

जो श्लीपद बहुत बढ़गया हो अथवा क्रमशः बढ़कर ऊंचे ऊंचे शिखरयुक्त और एक वर्षसे अधिक दिनका पुराना, तथा जिस श्लीपदमें स्राव और कण्डू तथा जिसमें वातादि दोषजन्य समुदय उपद्रव उत्पन्न हों, ऐसा श्लीपद असाध्य जानना।

असाध्य लक्षण।

जिस देशमें अधिक परिमाण बरसातका पानी सञ्चित रहता है और जिस देशकी आब हवा ठण्ढी है, प्रायः ऐसेही देशोंमें श्लीपद रोग अधिक पैदा होता है।

श्लीपद पैदा होतेही इलाज करना चाहिये नहीतो असाध्य हो जाता है। उपवास, विरेचन, स्वेद, प्रलेप और कफनाशक क्रिया समूह इस रोगका शान्तिकारक है। धतुरा, रेंड़, श्वेतपुनर्नवा, सैजन और सरसो यह सब द्रव्य पीसकर लेप करना; अथवा चितामूल, देवदारु, सफेद सरसो या सैजनके जड़की छाल गोमूत्रमें पीस गरम कर लेप करना। सफेद अकवनकी जड़, कांजीमें पीस लेप करनेसेभी श्लीपद आराम होता है। पित्तजन्य श्लीपद रोगमें मजीठ, मुलेठी, रास्ना, और पुनर्नवा यह सब द्रव्य कांजीमें पीसकर लेप अथवा मदनादि लेप करना। बरियारेकी जड़ ताड़के रससे पीसकर लेप करनेसे सब प्रकारका श्लीपद रोग आराम होता है। बड़ी हर्रे रेंड़ीके तेलमें भूनकर गोमूत्रके साथ खानेसेभी श्लीपद रोग आराम होता है। कणादि चूर्ण, पिप्पल्यादि चूर्ण, कृष्णादि मोदक, नित्यानन्द रस, श्लीपद गजकेशरी, सौरेश्वर घृत और विड़ङ्गादि तैल आदि विचार कर श्लीपद रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

दोषभेद और चिकित्सा।

कोषवृद्धि रोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है, श्लीपद रोगमेंभी वही सब पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।

विद्रधि और व्रण।

विद्रधिका साधारण नाम "फोड़ा" है। गुल्मके आकृतिकी तरह और दाह, वेदना तथा अन्तमें पाकयुक्त शोथको विद्रधि कहते हैं। विद्रधि दो प्रकार, वाह्यविद्रधि और अन्तर्विद्रधि। कुपित वातादि दोष हड्डोमें रहकर त्वक, रक्त, मांस और मेदको दूषित करनेसे विद्रधि रोग उत्पन्न होता है। वाह्यविद्रधि शरीरके सब स्थानोंमें पैदा होता है। अन्तर्विद्रधि गुदा, वस्तिमुख, नाभि, कुक्षि, दोनो पठ्ठा, पार्श्व, प्लीहा, यकृत्, हृदय, क्लोम (पिपासा स्थान) यही सब स्थानोंमें उत्पन्न होती है। गुह्यनाड़ीमें विद्रधि उत्पन्न होनेसे अधोवायुका रोध, वस्तिमें होनेसे मूत्रकृच्छ्र और मूत्रकी अल्पता, नाभिमें होनेसे हिक्का और पेटमें दर्दके साथ गुड़ गुड़ शब्द होना, कुक्षिमें होनेसे वायुका प्रकोप, पठ्ठोमें होनेसे कमर और पीठमें तीव्र वेदना, पार्श्वमें होनेसे पार्श्वका सङ्कुचित होना, प्लीहामें होनेसे श्वासरोध, हृदयमें होनेसे सर्व्वाङ्गमें दर्द और कास, यकृतमें होनेसे श्वास हिक्का और क्लोममें होनेसे बार बार पानी पीनेकी इच्छा होती है। यही सब विशेष लक्षणोंके सिवाय यन्त्रना आदि अन्यान्य लक्षणभी सब प्रकारके विद्रधिका एकही प्रकार जानना।

विद्रधि या फोड़ाका निदान और प्रकारभेदसे लक्षण।

नाभिके उपर अर्थात् प्लीहा, यकृत्, पार्श्व, कुक्षि, हृदय और क्लोम स्थानमें जो सब अन्तर्विद्रधि पैदा होता है, वह पककर फूटनेसे पीप रक्त निकलता है; और नाभिके नीचे याने वस्ति, गुदा, पठ्ठा, आदि

साध्यासाध्य निर्णय।

विद्रधि और व्रणशोथके अपक्वावस्थामें रक्त मोक्षण, मृदु विरेचन, औषध प्रयोग और स्वेद क्रियासे उसको बैठानेका उपाय करना चाहिये।

विद्रधि और व्रणशोथचिकित्सा।

जौ, गेहूं और मूंग पकाकर उसका लेप करना अथवा सैजनके जड़का लेप और स्वेद करनेसे विद्रधि बैठ जाता है। अपक्व अन्तर्विद्रधिमें सैजनके जड़की छालका रस मधुके साथ पिलाना; अथवा सफेद पुनर्नवाकी जड़ या वरुण छालकी जड़का काढ़ा पिलाना। आरग्वधादि मूल, मधु और अरवे चावलके धोवनके साथ सेवन करनेसेभी अपक्व अन्तर्विद्रधि आराम होता है। वरुणादि घृत सेवन करनेसे अन्तर्विद्रधिमें विशेष उपकार होता है। व्रणशोथके अपक्वावस्थामें धतूरेकी जड़ और सेंधा नमक एकत्र पीसकर गरम लेप करना अथवा बड़, गुलर, पीपल, पाकड़ और बेत इन सबकी छाल समभाग पीसकर थोड़ा घी मिलाकर लेप करना। इससेभी व्रणशोथ बैठ जाता है।

प्रलेपादिसे न बैठनेपर विद्रधि या व्रणशोथ पकाकर पीप रक्त निकालना चाहिये। पकानेके लिये सनका बीज, मूलीको बीज, सैजनका बीज, तिल, सरसो, तिसी, जौ और गेहूं आदिकी पुलटिस देना।

शोथ पकानेका उपाय।

पकनेपर नस्तर करनाही अच्छा है। नहीतो करञ्ज, भेलावा, दन्तीमूल, चितामूल, कनेरकी जड़ और कबूतर, कौवा, या शकुनिकी विष्टा पीसकर अथवा गायका दांत घिसकर उपयुक्त स्थानमें लगाना, इससे वही स्थान फूटकर पीप रक्त आदि निर्गत होता है। गेहु और सेमल आदि पिच्छिल द्रव्यकी छाल और मूल तथा गेहूं और उरद आदि द्रव्यका लेप देनेसे फैला हुआ पीप आदि आकृष्ट हो घावके मुखसे बाहर निर्गत हो जाता है।

क्षतस्थान धोनेके लिये पटवरका पत्ता, नीमका पत्ता या वटादिके छालका काढ़ा व्यवहार करना। घाव धोनेपर करञ्जाद्य घृत, जीरक घृत, जात्याद्य घृत और तैल, विपरीत मल्ल तैल, व्रणराक्षस तैल, या हमारा "क्षतारि तैल" प्रयोग करना, इससे घाव जल्दी सूख जाता है। व्रण दुषित होनेसे अर्थात् दुष्ट व्रणके लक्षण मालूम होनेसे नीमका पत्ता, तिल, दन्तीमूल और त्रिवृत मूल यह सब समभाग पीसकर थोड़ा नमक और मधु मिलाकर लेप करना। केवल अनन्तमूलका प्रलेप किम्बा असगंध, कुटकी, लोध, कायफल, जेठीमध, लज्जालु लता और धाईफूलका प्रलेप देनेसे अथवा शतपर्व्वीका दूध लगानेसेभी दुष्टव्रण आराम होता है।

सद्योव्रणके प्रथमावस्थामें उपयुक्त चिकित्सा होनेसे फिर वह घाव नहो होता। शस्त्रादिसे किसी स्थानमें घाव होनेसे उसको पट्टी बान्धनेसे

सद्योव्रण चिकित्सा।

रक्तस्राव बन्द होता है। अपामार्गके पत्तेका रस, दन्ती पत्तेका रस, और दुर्व्वाका रस प्रयोग करनेसेभी रक्तस्राव बन्द होता है। कपूर मिलाया शतधौत घीसे घाव भरकर बान्ध देनेसे घाव पकता नही तथा तकलीफ दूर हो क्रमश: घाव भर आता है। इन सब क्रियाओंसे आराम न हो घाव होनेपर पूर्व्वोक्त प्रलेप और तैलादि प्रयोग तथा आगसे जले घावमेंभी वही सब तैलादि प्रयोग करना चाहिये। आगसे जलतेही जले हुए स्थानमें तिल तैलके साथ जौ भस्म मिलाकर अथवा दूध और अघिप नवनीतके साथ तिल पीसकर लेप करनेसे जलन शान्त होता है। जले हुए स्थानमें मधु लगाकर उपरसे चौचूर्ण लेपनेसे या केवल गुड़ अथवा चूर्णसे लेप करनेसे जलन दूर होती है।

नाड़ीव्रण यानि नासूरमें हापरमालीका गांद लगाना। सफेद रेंडका दूध और खैर एकत्र मिलाकर लेप करना शृगालकूली, मैनफल, सुपारीको छाल और सेन्धा नमक समभाग सेंहुड़ या अकवनके दूधमें मिलाकर वत्ती बनाना तथा वही वत्ती नालीमें प्रवेश कर रखना। अथवा मेषलोम जलाकर उसको राख और तितलोकीके साथ तैल पाक कर उसमें रुई भिङ्गोकर नासूरमें रखना। स्वर्जिकाद्य तैल निर्गुण्डी तैल, हंसपादी तैल और हमारा "चतारि तैल" नासूरमें प्रयोग करना चाहिये। इसके साथ सप्ताङ्ग गुग्गुलु या हमारा "अमृतवल्ली कषाय" व्यवस्था कर सकते हैं।

नाड़ीव्रण चिकित्सा।

दिनको पुराने चावलका भात, मूंग और मसूरकी दाल, परवल, बैंगन, गुल्लर, कच्चा केला सैजनका डण्डा आदि घृतपक्व तरकारी, बलादि क्षीण होनेसे छाग आदि लघु मांसका रस आहार करना। रातको रोटी और वही सब तरकारी, खानेको देना। गरम पानी ठण्डा कर पान और बीच बीचमें जरूरत होनेसे उसी पानीसे स्नान करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।

सब प्रकारके कफजनक और गुरुपाक द्रव्य, दूध, दही, मत्स्य, पिष्टक और सब प्रकार मिष्टद्रव्य भोजन और दिवानिद्रा, रात्रि जागरण, स्नान, मैथुन, पथ पर्य्यटन और व्यायाम आदि कार्य्य इस रोगमें अनिष्ट कारक है।

निषिद्ध कर्म।

भगन्दर।

गुदासे दो अङ्गुल बादके स्थानमें नाड़ीव्रणकी तरह एकप्रकार घाव उत्पन्न होता है, उसको भगन्दर कहते हैं। कुपित वातादि दोषोंसे पहिले उस स्थानमें व्रण शोथ उत्पन्न होता है, फिर वह पककर फैल जानेसे अरुण वर्णका फेन और पीप आदि उसमेंसे स्राव होता है, घाव बड़ा होनेसे उसी रास्ते मल, मूत्र, शुक्र आदि निर्गत होता है। गुह्यदेशमें किसी प्रकारका घाव होकर पकनेपर वहभी क्रमश: भगन्दर हो जाता है।

संज्ञा।

सब प्रकारका भगन्दर अतिशय कष्टदायक और कष्टसाध्य है। जिस भगन्दरसे अधोवायु मल मूत्र और क्रिमि निकले तो उससे रोगीके प्राणनाशकी सम्पूर्ण सम्भावना है। जो भगन्दर पहिले गोस्तनकी तरह उत्पन्न हो विदीर्ण होनेपर नदी जलके आवर्त्तनकी तरह आकारविशिष्ट हो तो वह असाध्य जानना।

साध्यासाध्य निर्णय।

पकनेसे पहिले ही इसकी चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो नितान्त कष्टसाध्य हो जाता है। अपक्कावस्थामें रक्तमोक्षणही इसकी प्रधान चिकित्सा है। पिड़िका बैटानेके लिये वटपत्र या पानीके भीतरकी ईंटका चूर्ण, शोंठ, गुरिच और पुनर्नवा यह सब द्रव्य पीसकर लेप करना। विद्रधि प्रभृति बैठानेके लिये जो सब उपाय कह आये हैं वह सबभी प्रयोग कर सकते हैं। बैठनेकी आशा न रहनेसे शस्त्र

चिकित्सा।

करना चाहिये। अथवा पूर्व्वोक्त उपायोंसे पकाकर पीप आदि निकालना चाहिये। घाव आराम करनेके लिये सेहुंड़का दूध, अकवनका दूध अथवा दारुहल्दीका चूर्ण, यही सब द्रव्यकी बत्ती बनाकर भगन्दरमें रखना। त्रिफलाके काढ़ेसे भगन्दर धोकर, त्रिफलाके काढ़ेमें बिल्ली या कुक्कुरकी हड्डी घिसकर लेप करना। नाड़ीव्रण नाशक सब प्रकारका तैल भगन्दरमें प्रयोग करना चाहिये। इसके सिवाय हमारा "क्षतारि तैल" प्रयोग करनेसेभी पीड़ा दूर होती है। इस रोगमें सप्तविंशतिक गुग्गुलु, नवकार्षिक गुग्गुलु और व्रण गजाङ्कुश रस आदि औषध अथवा हमारा "अमृतवल्ली कषाय" सेवन करना बहुत जरूरी है।

पथ्यापथ्य। विद्रधि और व्रण रोगमें जो सब पथ्यापथ्य विहित है; भगन्दर रोगमेंभी वही सब पालन करना चाहिये। अग्निबल क्षीण न होतो शृगाल मांस भोजन भगन्दर रोगमें विशेष उपकारी है।

उपदंश और व्रध्न।

निदान। दूषितयोनि स्त्रीके साथ सहवास, ब्रह्मचारिणी सहवास, अतिरिक्त मैथुन, मैथुनके बाद लिङ्ग न धोना अथवा क्षार मिश्रित गरम पानीसे धोना और किसी कारणसे लिङ्गमें घाव होना आदि कारणोंसे उपदंश रोग पैदा होता है। इसी प्रकार दूषित पुरुष सहवास आदि कारणोंसे स्त्रियोंको यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें पहिले

लिङ्गके कोड़ी या उपरके चमड़ेपर छोटी छोटी फुसरी पैदा हो फुसरीके चारो तरफ कड़ा हो जाता है तथा क्रमशः वह फुसरी पककर बढ़ती है, फिर उसमें से पीप क्लेद और अलवत् पदार्थ निर्गत होता है। क्षतस्थान अत्यन्त विवर्ण होनेके साथ साथ सामान्य ज्वर, वमनोद्रेक, अग्निमान्द्य, जिह्वा विकृतास्वाद और मैली, हड्डोमें दर्द, शिरःपीड़ा और किसीको पट्ठोंमें दर्द अथवा व्रण (बाघो) होता है। क्षतस्थानका मूलभाग कठिन और मध्यस्थान थोड़ा नीचा और उसके चारो तरफ थोड़ा ऊंचा होता है। यह रोग बहुत दिन तक अचिकित्स भाव रहनेसे क्रमशः सर्व्वाङ्गमें फुसरीकी उत्पत्ति जगह जगह क्षत या स्फोटक; नेत्र-रोग, केश और लोमका क्षय, सन्धिस्थान समूहोंमें दर्द, पीनस और कभी कभी प्रकृत कुष्ठ रोगभी पैदा होता है; तथा अन्तमें उसी घावमें क्रिमि उत्पन्न हो लिङ्ग क्षय हो जाता है। इसी अव-स्थामें रोगीका प्राण नाश होता है।

चिकित्सा। उपदंश क्षत दूर करनेके लिये करञ्जाद्य घृत, विडङ्गादि तैल और हमारा "क्षतारि घृत" और "क्षतारि तैल" प्रयोग करना। अथवा आंवला, हर्रा और बहेड़ा एक हाण्डीमें रख उपर ढकनीसे ढांककर आगमें जलाना, वही भस्म सहतमें मिलाकर घावमें लगाना, किम्वा रसाञ्जन और हर्रा सहतमें मिलाकर लगाना। बबूरके पत्तेका चूर्ण, अनारके छालका चूर्ण अथवा मनुष्य अस्थि चूर्ण व्यवहार करनेसे उपदंशका घाव आराम होता है। यही सब लेप या तैलादि प्रयोगसे पहिले त्रिफलाका काढ़ा किम्वा भीमराजका रस अथवा करवीर, जयन्ती, अकवन और अमिलतासके पत्तेके काढ़ेसे घाव अच्छी तरह धोना चाहिये। खानेके लिये वरादि गुग्गुलु

और रसशेखर औषध प्रयोग करना। ज्वर होतो ज्वर निवारक औषधभी उसीके साथ सेवन कराना उचित है। रोग पुराना होनेसे सालसा सेवन कराना चाहिये। हमारा "वृहत् अमृतवल्ली कषाय और अमृतवल्ली कषाय" नामक सालसा उपदंश रोगकी अति उत्कृष्ट औषध है।

उपदंश रोग जल्दी आराम होनेके लिये बहुतेरे लोग पारा सेवन करते हैं। पारा यथारीति शोधित या सेवित न होनेसे, वह शरीरमें जाकर नानाप्रकारके उत्कट रोग पैदा करता है। हड्डीमें जलन सन्धि समूह या सर्व्वाङ्गमे दर्द, शरीरके नानास्थानोंमे घाव या फोड़ियों-की उत्पत्ति और काला या सफेद रंगका दाग, हाथ और पैरके तलवोंसे चमड़ा निकलना, मुख नाकमें घाव, पीनस, मुखरोग, दन्तच्युति, नासिका क्षय, शिरःपीड़ा, पक्षाघात, अण्डकोषमें शोथ और कठिनता, जगह जगह गांठकी तरह शोथकी उत्पत्ति, चक्षु-रोग, भगन्दर, नानाप्रकार चर्म्मरोग और कुष्ठरोगतक अयथा पारद सेवनसे उत्पन्न होते दिखाई देता है। पारद विकृतिमें हमारा "अमृतवल्ली कषाय" सेवन करनाही अच्छा है, कारण यह इस रोगकी श्रेष्ठ औषध है। इसके सिवाय कुष्ठरोगोक्त पञ्चतिक्त घृत आदि कई औषध विचार कर प्रयोग करना चाहिये। शोधित गन्धक ४ रत्ती मात्रा घीके साथ, रालका तेल १०।१२ बूंद दूधके साथ रोज सेवन करनेसे पारद विकृतिमें विशेष उपकार होता है। घाव आराम करनेके लिये पूर्व्वोक्त क्षत निवारक औषध और चर्म्मरोग शान्तिके लिये सोमराजी तेल, मरिचादि तेल, महारुद्र गुडूची तेल और कन्दर्पसार तेल बदनमें मालिश करना चाहिये।

पारद सेवनका परिणाम।

उपदंश होनेसे अकसर बाघी होते दिखाई देता है। कफ जनक या गुरुपाक अन्न भोजन, सूखा या सड़ा मांस भोजन, नीचे ऊंचे स्थानमें चलना, तेज चलना और पैरमें फोड़ा या किसी तरहका चोट लगनेसेभी यह रोग उत्पन्न होता है। इसमें वंक्षण सन्धि यानि दोनो पठ्ठोमें शोथ और साथही ज्वर होता है। उपदंश जनित व्रध्न पक जाता है, पर दूसरे कारणोंसे बाघी पकते नही देखा है।

व्रध्नके कारण।

उपदंशजनित व्रध्न पकाकर नस्तरसे काट पीप रक्त निकालनाही अच्छा है, नहीतो और और रोग उत्पन्न होनेको सम्भावना है। व्रणशोथ पकानेके लिये और पकजानेपर, विदारण और घाव सुखानेके लिये जो सब योगादि लिख आये हैं, व्रध्न रोगमेंभी वही सब प्रयोग करना। अन्यान्य व्रध्न अथवा उपदंश जनित व्रध्नभी किसी वखत बैठानेकी आवश्यकता होतो, पैदा होतेही बैठानेको तदबीर करना चाहिये। जोंकसे रक्तमोक्षण या बड़का दूध लगाना गन्धाबिरोजा या मुरगीके अण्डेके द्रव भागको पट्टी रखनेसे व्रध्न बैठ जाता है। नौसादर या सोरा चार आनेभर एक छटांक पानीमें मिलाकर कपड़ेकी पट्टी भिंगोकर रखनेसेभी व्रध्न जल्दी बैठ जाता है। अथवा कालाजीरा, हबुषा, कूठ, तेजपत्ता और बेर; यही सब द्रव्य काञ्जीमें पीसकर लेप करना। दर्दको शान्तिके लिये भेंड़ीके दूधमें गेहूं पीसकर लेप करना। ज्वर दूर करनेके लिये ज्वरनाशक औषध देना।

व्रध्न चिकित्सा।

इस बिमारीमें दिनको पुराने चावलका भात, मूंग, मसूर, अरहर और चनेकी दाल, परवर, गुल्लर, बैगन, पुराना सफेद कोहड़ा आदि घीमें

पथ्यापथ्य।

बनी तरकारी ; बीच बीचमें छाग, कबूतर या मूरगाका मांस आहार करना। रातको रोटी और उक्त तरकारी खाना चाहिये ज्वर अधिक हो तो भात बन्दकर रोटी या सागू आदि हलका आहार देना चाहिये ।

निषिद्ध कर्म्म । मिष्टद्रव्य, शीतल द्रव्य, दूध और मछली भोजन और स्नान, मैथुन, दिवानिद्रा, व्यायाम आदि इस रोगमें अनिष्टकारक है ।

कुष्ठ और श्वित्र ।

निदान । चोर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध द्रव्य, भोजन ; द्रव, स्निग्ध, और गुरुपाक द्रव्य भोजन ; नये चावलका भात दही, मछली, लवण, उरद, मूली, मिष्टान्न, तिल और गुड़ आदि द्रव्य अतिरिक्त भोजन और मलमूत्र वमनादिका वेग धारण, अतिरिक्त भोजनके बाद व्यायाम या धूपमें बैठना ; आतपक्लान्त, परिश्रान्त, या भयार्त्त होनेपर विश्राम न लेकर ठण्ढा पानी पीना ; अजीर्णमें भोजन, वमन विरेचनादि शुद्धिकार्य्यके बाद अहित आचरण, भुक्त अन्न जीर्ण न होनेके पहिले स्त्रीसङ्गम, दिवानिद्रा और गुरु ब्राह्मण आदिका अपमान आदि उत्कट पापाचरण ; यही सब कारणोंसे कुष्ठरोग उत्पन्न होता है । वातरक्त और पारद विकृतिसेभी कुष्ठरोग पैदा होता है ।

पूर्व्व लक्षण । कुष्ठरोग उत्पन्न होनेसे पहिले अङ्ग विशेष अतिशय मसृण या खरस्पर्श, अधिक घर्म्म निर्गम या घर्म्मका एक दम बंद होना, शरीरकी विवर्णता,

दाह, कण्डु, बदनमें खुजली, सुरसुरी अथवा चिंवटी चलनेकी तरह अनुभव। अङ्गविशेषमें स्पर्श शक्तिका नाश, जगह जगह सूई गड़ानेकी तरह दर्द, जगह जगह बर्रं काटनेकी तरह दाग, क्लान्ति बोध, किसी प्रकारका घाव होनेसे उसमें भयानक दर्द, घावकी जल्दी उत्पत्ति और आराम होनेमें देर, सामान्य कारणसेभी घावका प्रकोप, घाव सूख जानेपरभी उस स्थानमें रुखापन, रोमाञ्च और कृष्णवर्णता यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता हैं।

कुष्ठरोग अपरिज्ञेय होनेपरभी संक्षेपत: १८ प्रकारका निर्दिष्ट है। जिसमें कापाल, ओडुम्बर, मंडल, ऋष्यजिह्व, पुण्डरिक, सिध्म और काकन नामक सात प्रकारके कुष्ठको महाकुष्ठ

महाकुष्ठके प्रकार और भेद लक्षण।

कहते हैं। बाकी ११ प्रकारका क्षुद्र कुष्ठ हैं। कापाल कुष्ठ, थोड़ा काला और थोड़ा अरुण वर्ण, रूक्ष, खरस्पर्श सूई गड़ानेकी तरह दर्द और पतला त्वकविशिष्ट होता है। ओडुम्बर कुष्ठ गुल्लरके रगकी तरह दाह, कण्डुयुक्त और इसमें व्याधि स्थानके लोम पिङ्गल वर्ण होता है। मण्डल कुष्ठ थोड़ा सपेद, थोड़ा लाल, आर्द्र, स्वेद-युक्त, उन्नत, मंडलाकार और परस्पर मिला हुआ होता है। ऋष्य-जिह्व कुष्ठ हरिणके जीभकी तरह आकृतिविशिष्ट, कर्कश, प्रान्त-भागमें लाल और बीचमें काला दाग और वेदनायुक्त होता है। पुण्डरीक कुष्ठ लाल कमलके फूलकी तरह आकृतिविशिष्ट सफेद मिला लाल रङ्ग और ऊंचा। सिध्मकुष्ठ देखनेसे लौकीके फूलकी तरह और सफेद मिला लाल रङ्गका चमड़ाविशिष्ट व्याधिस्थान घिसनेसे उसमेंसे चूर्णके तरह पदार्थ निकलता है, यह रोग छातीमें अधिक होता है। काकन कुष्ठ घुंघचीके तरह भीतर काला और प्रान्तभागमें लाल रंग, तीव्र वेदनायुक्त, यही कुष्ठ पकता है।

सब प्रकारका कुष्ठ जब रसधातुमें प्रवेश करता है तब अङ्गकी विवर्णता, रूक्षता, स्पर्श शक्तिका नाश, रोमाञ्च और अधिक पसीना यही सब लक्षण प्रकाशित होता है ; फिर खून गाढ़ा होनेसे कण्डु और अधिक पीप सञ्चय। मांसगत होनेसे कुष्ठकी पुष्टि और कर्कशता, मुखशोष, पिड़िकाकी उत्पत्ति, सूई गड़ानेकी तरह दर्द और घाव पैदा होता है। मेदोगत होनेसे हस्तक्षय, गतिशक्तिका नाश, अङ्गकी वक्रता और घावके स्थानकी विकृति और अस्थि तथा मज्जागत होनेसे नासाभङ्ग, चक्षुकी रक्तवर्णता क्षतस्थानमें क्रिमिकी उत्पत्ति और स्वरभङ्ग होता है।

कुष्ठरोग रस, रक्त और मांसगत होनेतक आराम होनेकी सम्भावना है। मेदोगत कुष्ठ याप्य। अस्थि और मज्जागत तथा उसमें क्रिमि, तृष्णा, दाह और मन्दाग्नि उपस्थित होनेसे असाध्य होता है। जिस कुष्ठरोगीका कुष्ठ विदीर्ण, स्रावयुक्त, चक्षु लाल और स्वरभङ्ग हो उसकी मृत्यु निश्चय जानना।

साध्यासाध्य निर्णय।

उक्त सात महाकुष्ठके सिवाय बाकी ११ प्रकारके क्षुद्र कुष्ठोंमेंसे जिस कुष्ठमें पसीना नहीं होता और जो अधिक स्थानमें व्याप्त रहता है तथा जिसकी आकृति मछलीके चोइयाकी तरह होती है उसीको एक प्रकारका कुष्ठ कहते हैं। हाथीके चमड़ेकी तरह रूखा, काला और मोटा कुष्ठको चर्मकुष्ठ कहते हैं। जिस कुष्ठमें हाथ पैर फट जाता है, तीव्र दर्द होता है, उसको वैपादिक कुष्ठ कहते हैं। श्याव वर्ण रूखा, सूखा और सूखे घावकी तरह खरस्पर्श कुष्ठको किटिभ कुष्ठ कहते हैं।

क्षुद्रकुष्ठोंके प्रकार भेदसे लक्षण।

कण्डुविशिष्ट, रक्तवर्ण स्फोटक द्वारा व्याप्त कुष्ठको अलसक

कहते हैं। ऊंचा, मण्डलाकार, कण्डुयुक्त और रक्तवर्ण फोड़ियांसे व्याप्त कुष्ठको दद्रुमण्डल, तथा रक्तवर्ण, शूलवेदनाकी तरह दर्द, कण्डुयुक्त स्फोटक व्याप्त, स्पर्शसह और जिसमें मांस गलकर गिरता है उस कुष्ठको चर्म्मदल कहते हैं। दाह, कण्डु और स्रावयुक्त छोटो छोटो फोड़ियाको पामा और उसमें तीव्र दाह और स्फोटक होनेसे कच्छु (खजुली) कहते हैं। कच्छु हाथ और चूतड़में अधिक होता है। श्याव या अरुण वर्ण पतला चर्म्मविशिष्ट स्फोटकको विस्फोटक कहते हैं। लाल या श्याव वर्ण तथा दाह और वेदनायुक्त बहु व्रणको शतारु कहते हैं। विचर्च्चिका नामक क्षुद्र कुष्ठ श्याव वर्ण, स्रावयुक्त तथा कंडु और पिड़का विशिष्ट होता है, यही पैरोंमें पैदा होनेसे उसको विपादिका कहते हैं। वस्तुतः १८ प्रकारके कुष्ठोंमें सिध्म, दद्रु, पामा या कच्छु, विचर्च्चिका या विपादिका, शतारु और विस्फोटक यही छ प्रकारके कुष्ठको प्रकृत क्षुद्र कुष्ठ कहना उचित है। इसके सिवाय और भी कई एक क्षुद्र कुष्ठ शास्त्रमें परिगणित है इन सबकोभी महा कुष्ठकी तरह समझना चाहिये।

अवस्थाभेदसे चिकित्सा।

कुष्ठरोगका पूर्व्वरूप प्रकाश होतेही चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो सम्पूर्ण रूपसे पीड़ा प्रकाश होनेपर यह रोग असाध्य हो जाता है। इस रोगमें मञ्जिष्ठादि और अमृतादि क्वाथ, पञ्चनिम्ब, अमृत गुग्गुलु, पञ्चतिक्त घृत गुग्गुलु, अमृत भल्लातक, अमृतांकुर लौह, तालकेश्वर, महा तालकेश्वर, रसमाणिक्य और पञ्चतिक्त घृत तथा कुष्ठस्थानमें मालिश करनेके लिये महासिन्दुराद्य तैल, सोमराजी तैल, मरिचादि तैल, कन्दर्पसार तैल, और वात रोगोक्त महा गुडूची तैल व्यवहार कर सकते हैं। कुष्ठस्थानमें प्रलेप करनेके लिये हरीतकी,

डहर करञ्जको बीज, चकवड़की बीज और कूठ; यह सब द्रव्य गोमूत्रमें पीस कर लेप करना, अथवा मैनसिल, हरिताल, गोलमरिच, सरसोंका तेल, अकवनका दूध, यह सब द्रव्य पीस कर किम्वा डहर करञ्ज बीज, चकवड़की बीज और कूठ यह तीन द्रव्य गोमूत्रमें पीस कर लेप करना। गोमूत्र पान और चावलमुगराके तेलका मर्द्दन, कुष्ठ और कण्डु आदि रोगमें विशेष उपकारी है। दादको दूर करनेके लिये विडङ्ग, चकवड़की बीज, कूठ, हलदी, सेन्धा नमक और सरसों; यह सब द्रव्य कांजीमें पीस कर लेप करना। चकवड़की बीज, आंवला, राल, और सेहुंडका दूध; यह सब द्रव्य कांजीमें पीस कर लेप करनेसे दद्रुरोग आराम होता है। हमारा "दद्रुनाशक चूर्ण" व्यवहार करनेसे भी दाद जल्दी आराम होता है। चकवड़की बीज, तिल, सफेद सरसों, कूठ, पीपल, सोंचल और काला नमक यह सब द्रव्य दहीके पानीमें तीन दिन भिगो रखना फिर उसका लेप करनेसे दद्रु और विचर्च्चिका रोग आराम होता है। अमिलतासका पत्ता कांजीमें पीसकर लेप करनेसे दद्रु, किटिभ और सिध्म रोग दूर होता है। गन्धक चूर्ण और यवाक्षार चूर्ण सरसोंके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे सिध्मरोग आराम होता है। मूलीकी बीज अपामार्गके रसके साथ अथवा दहीमें पीसकर लेप करनेसे भी सिध्मरोग आराम होता है। अकवनके पत्तेका रस और हलदीका कल्क सरसोंके तेलमें औटाकर मालिश करनेसे पामा, कच्छु, और विचर्च्चिका आराम होता है। नरम अडूसेका पत्ता, हलदी, गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे पामा, कच्छु रोगमें विशेष उपकार होता है। हमारा "क्षतारि तैल" पामा, कच्छु और विचर्च्चिका रोगमें विशेष उपकारी है।

पूर्व्वोक्त अष्टादश प्रकारके कुष्ठरोगके सिवाय श्वित्र और

श्वित्र या धवल और किलास।

किलास नामक और भी दो प्रकारके कुष्ठ रोग है। श्वित्र रोगका साधारण नाम "धवल" है। इससे शरीरमें जगह जगह सफेद दाग और किलास रोगमें थोड़ा लाल रंगका दाग होता है। जिन कारणोंसे कुष्ठरोग पैदा होता है श्वित्रादि रोग भी वही सब कारणोंसे उत्पन्न होता है। श्वित्रादि रोग पुराना और निर्लोम स्थान अर्थात् गुदा, लिङ्ग, योनि, हाथ पैरका तरवा और ओठमें उत्पन्न होनेसे असाध्य जानना। जिस श्वित्रके दाग सब परस्पर असंयुक्त और जिसके उपरकी लोम समूह श्वेतवर्ण न हो कृष्णवर्ण होती है तथा थोड़े दिनका पैदा हुआ और जो आगसे जला नहीं है उसीके आराम होनेकी सम्भावना है। घुंघची दाना और कागजनादि गोमूत्रके साथ पीसकर लेप करनेसे श्वित्र और किलास रोगमें विशेष उपकार होता है। इसके सिवाय कुष्ठ रोगोक्त यावतीय सिध्मनाशक प्रलेप समूह और कन्दर्पसार तैल इसमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।

वातरक्त रोगोक्त पथ्यापथ्य कुष्ठ प्रभृति रोगोंमें भी पालन करना चाहिये। यह रोग अतिशय संक्रामक है, इससे कुष्ठरोगीके साथ एक बिछौनेमें शयन, उपवेशन, एकत्र भोजन, बदनमें निःश्वासादि लगाना, रोगीका पहिरा कपड़ा पहिरना और उसके साथ मैथुन कदापि नहीं करना चाहिये।

शीतपित्त।

संज्ञा और पूर्व्व लक्षण।

सर्व्वाङ्गमें बर्रे काटनेकी तरह शोथ और अतिशय कण्डु विशिष्ट लाल रंगका एक प्रकार ददोरा हो खुजलाया करता है, उसीको शीतपित्त तथा चलित भाषामें इसको "आमवात" कहते हैं। किसी किसी जगह सूचीवेधवत् वेदना, वमन, ज्वर और दाहभी होता है। यह रोग उत्पन्न होनेसे पहिले पिपासा, अरुचि, वमन वेग, शरीरका अवसाद, गौरव और आंखे लाल होना, यही सब पूर्व्व-रूप प्रकाशित होता है।

उदर्द और कोठ।

उदर्द और कोठ नामक औरभी दो प्रकारकी पीड़ा इसी जातिकी है। शीतल वायु सेवन आदि कारणोंसे वायु और कफ, प्रकुपित हो वायुके आधिक्यसे शीतपित्त और कफके आधिक्यसे उदर्द रोग उत्पन्न होता है। यह दो रोगके लक्षण प्राय: एकही प्रकार होते हैं। वमन क्रियासे अच्छी तरह वमन न होनेसे उत्क्लिष्ट पित्त और कफ शीतपित्तके लक्षणयुक्त जो सब शोथ पैदा होता है उसको कोठ कहते हैं। कोठ बार बार उत्पन्न और बार बार विलीन होनेसे उसको उत्कोठ कहते हैं।

चिकित्सा।

इस रोगमें अजीर्ण जन्य आमाशय पूर्ण रहनेसे परवरका पत्ता, नीमकी छाल और अडूसेकी छालका काढ़ा पिलाकर कै करना। विरेचनके लिये त्रिफला, गुग्गुलु और पीपल समभाग मिलाकर आधा तोला

मात्रा सेवन कराना। बदनमें सरसोंका तेल मर्द्दन और गरम पानीसे स्नान उपकारी है। पुराने गुड़के साथ अदरखका रस पीना, २ तोले गौके घीके साथ ≁) आनेभर गोलमरिच चूर्ण रोज सबेरे सेवन; हरिद्राखण्ड, बृहत् हरिद्राखण्ड और आर्द्रखण्ड सेवन और दूर्व्वा, हरिद्रा एकत्र पीसकर लेप अथवा सफेद सरसो, हल्दी चाकुलाके बीज और काली तिल एकत्र पीसकर सरसोंका तेल मिलाकर लेप करनेसे शीतपित्त आदि रोगमें विशेष उपकार होता है। दस्त साफ रखना इससे बहुत जरूरी है।

पथ्यापथ्य। इन सब रोगोंमें तिक्तरसयुक्त द्रव्य, कच्ची हल्दी, और नीमका पत्र भोजन उपकारी है। वातरक्त पीड़ामें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है, इस रोगमेंभी वही सब द्रव्य पानाहार करना। गरम पानीसे स्नान और गरम कपड़ेसे शरीरको ढांके रखना विशेष उपकारी है।

अम्लपित्त।

निदान और लक्षण। क्षीर मत्स्यादि संयोगविरुद्ध द्रव्य भोजन और दूषित अन्न, अम्लरस, अम्लपाक तथा अन्यान्य पित्त प्रकोप कारक पानाहारसे पूर्व्व सञ्चित पित्त विदग्ध हो अम्लपित्त रोग पैदा होता है। इस रोगमें भुक्त द्रव्यका अपरिपाक, क्लान्तिबोध, वमन वेग, तिक्त या अम्लरसयुक्त डकार, देहका भारीपन, छाती और गलेमें जलन और अरुचि यही सब लक्षण प्रकाशित होते है। अम्लपित्त अधोगामी होनेसे चारो तरफ सबजी मालूम होती है, ज्ञानका वैपरीत्य, वमन वेग

शरीरमें कोठका उद्गम, अग्निमान्द्य, रोमाञ्च, घर्म्म और शरीरका पीला होना ; यही सब लक्षण लक्षित होते है। ऊर्द्धगामी होनेसे हरित्, पीत, नील, कृष्ण और रक्तवर्ण अथवा मांस धोया पानीकी तरह रंग ; अम्ल, कटु या तिक्तरसयुक्त पिच्छिल और कफमिश्रित दमन होता है। भुक्तद्रव्य विदग्ध होनेके बाद अथवा अभुक्त अवस्थाहोमें कभी कभी वमन होता हैं। इसमें कण्ठ, हृदय और कुक्षिमे दाह, शिरो वेदना, हात पैरमें जलन, देह गरम, अत्यन्त अरुचि, पित्त कफज ज्वर, शरीरमें कण्डूयुक्त पिड़काकी उत्पत्ति आदि नानाप्रकारके उपद्रव उपस्थित होते हैं।

प्रकारभेदसे लक्षण।

वातज श्लेष्मज और पित्तश्लेष्मज भेदसे अम्लपित्त चार प्रकारका होता है। वातज अम्लपित्तसे कम्प, प्रलाप, मूर्च्छा, अवसन्नता, शूलवेदना अन्धकार दर्शण, ज्ञानका वैपरित्य, मोह और रोमाञ्च, यही सब लक्षण दिखाई देते हैं। कफजमें कफ निष्टीवन, देहकी गुरुता जड़ता, अरुचि, शीतबोध और निद्राधिक्य प्रकाशित होता है। वातश्लेष्मज अम्लपित्तमें तिक्त, अम्ल और कटुरसयुक्त उद्गार, छाती, कुक्षि और कण्ठमें दाह, भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमि, आलस्य, शिरोवेदना, मुखसे जलस्राव, मुखका स्वाद मीठा, यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं।

अधोगत अम्लपित्तमें अतिसारका भ्रम और ऊर्द्धगत अम्ल पित्तमें वमन रोगका भ्रम होनेकी सम्पूर्ण सम्भावना है, इसीसे इस रोगकी परीक्षा सावधानी और विचार कर करना उचित है।

चिकित्सा।

पीड़ाकी प्रथम अवस्थामें चिकित्सा न करनेसे यह रोग असाध्य हो जाता है, इससे पैदा होतेही चिकित्सा करना चाहिये।

अम्लपित्त रोगमें अत्यन्त जलन अथवा कोष्ठबद्ध रहनेसे किम्वा कफके आधिक्यमें वमन विरेचनादि उपयुक्त शुद्धिक्रिया नितान्त उपयोगी है।

लक्षणभेदसे चिकित्सा।

कफज अम्लपित्तमें परवरका पत्ता, नीमपत्र और मदनफलके समभाग काढ़ेमें सहत और ⅛) आनेभर सेन्धानमक मिलाकर पिलानेसे वमन हो अम्लपित्तकी शान्ति होती है। विरेचनके लिये सहत और आंवलेके रसमें चार आनेभर निसूतका चूर्ण मिलाकर सेवन कराना। अम्लपित्त शान्तिके लिये निस्तुष जौ, अडूसा और आंवला, इसके काढ़ेमें दालचिनी, इलायची, तेजपत्र चूर्ण और सहत मिलाकर पिलाना। जौ, पीपल और परवरका पत्ता अथवा गुरिच खैरकी लकड़ी, मुलेठी और दारु हरिद्राके काढ़ेमें सहत मिलाकर पिलाना। गुरिच, नीमकी छाल, परवरका पत्ता और त्रिफलाके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे अम्लपित्त आराम होता है। अम्लपित्तका वमन निवारणके लिये हरीतकी और भीमराज चूर्ण समभाग आधा तोला मात्रा पुराने गुड़के साथ सेवन कराना। अथवा अडूसा, गुरिच और कण्टकारी इन सबके काढ़ेमें सहत मिलाकर पिलाना, इस काढ़ेसे श्वास, कास और ज्वरकाभी उपशम होता है। अतिसार निवारणके लिये अतिसार रोगोक्त कई औषध विचारकर प्रयोग करना। मलबद्ध हो तो अविपत्तिकर चूर्ण हरीतकी खण्ड अथवा हमारी "सरलभेदी वटिका" सेवन करना उचित है। पिप्पलीखण्ड, वृहत् पिप्पली खण्ड, शुण्ठीखण्ड, खण्ड कुष्माण्डक अवलेह, सौभाग्य शुण्ठी मोदक, सितामण्डूर, पानीय भक्त वटी, क्षुधावती गुड़िका, लीलाविलास, अम्लपित्तान्तक लौह, सर्व्वतोभद्र लौह, पिप्पली घृत, द्राक्षाद्य घृत, श्रीविल्व तैल आदि विचारकर अम्लपित्त रोगमें व्यवहार कराना। शूल रोगोक्त

धात्री लौह, आमलकी खण्ड आदि औषधभी इसमें प्रयोग कर सकते हैं; हमारा "शूल निर्व्वाण चूर्ण" अम्लपित्त रोगका विशेष उपकारी औषध है।

शूलरोगोक्त पथ्यापथ्यही इसमे पालन करना उचित हैं। तिक्तरस भोजन इसमें विशेष उपकारी है। वातज अम्लपित्तमें चिनी और सहतके साथ धानके लावाका चूर्ण भोजन हितकर हैं। यव और गोधूमका मण्ड आदि लघुपथ्य इसमें देना चाहिये। हमारा "सञ्जीवन खाद्य" इस रोगमें उपयुक्त पथ्य है।

पथ्यापथ्य और हमारा सञ्जीवन खाद्य।

सब प्रकारका गुरुपाक द्रव्य, अधिक लवण, मिष्ट, कटु और अम्लरस तथा तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य भोजन दिवानिद्रा, रात्रि जागरण, मैथुन और मद्यपान आदि इस रोगमें विशेष अनिष्टकारक है।

निदान।

विसर्प और विस्फोट।

सर्व्वदा लवण, अम्ल, कटु और उष्णवीर्य्य द्रव्य सेवन करनेसे वातादि दोष कुपित हो विसर्प रोग पैदा होता है। इस रोगमें शरीरके किसी स्थानमें स्फोटककी तरह उत्पन्न हो नाना-स्थानमें विस्तृत होता है। विसर्प रोग सात प्रकार, वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सन्निपातज, वातपित्तज, वातश्लेष्मज और पित्त-श्लेष्मज। इन सबमें वातपित्तज विसर्पको अग्नि विसर्प, वात-कफजको ग्रन्थि विसर्प और पित्तकफजको कर्द्दमक कहते हैं।

विसर्पका निदान और प्रकारभेद।

विभिन्न दोषजात लक्षण।

वातज विसर्पमें वातज्वरकी तरह मस्तक, हृदय, पार्श्व और उदरमें दर्द, शोथ, धक धक करना, सूची-वेधवत् या भङ्गवत् वेदना, अग्निबोध और रोमाञ्च होना यही सब लक्षण लक्षित होते हैं। पैत्तिक विसर्प अतिशय लाल रंग और जल्दी बढ़ता है, तथा पित्तज्वरके लक्षण समूह प्रकाशित होते हैं। कफज विसर्प कण्डुयुक्त चिकना और कफज ज्वरके लक्षणयुक्त होता है। सन्निपातज विसर्पमें तीनो दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होते हैं।

अग्नि विसर्प।

अग्नि-विसर्प नामक वातपित्तज विसर्पमें ज्वर, जीमतलाना, मूर्च्छा, अतिसार, पिपासा, भ्रम, गांठोमें दर्द, अग्निमान्द्य, अन्धकार-दर्शन और अरुचि यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं। इसके सिवाय सर्व्वाङ्ग शरीर जलते हुए अङ्गारसे व्याप्त मालूम होना; शरीरके जिस स्थानमें विसर्प विस्तृत हो, वह स्थान कोयलेकी तरह काला रंग, कभी नीला या लालभी होते देखा गया है, तथा उसके चारो तरफ आगसे जलनेकी तरह फफोले होते है। इस विसर्पका अकसर हृदयादि मर्म्म स्थानोपर हमला होनेसे वायु प्रबलहो सर्व्वाङ्गमें दर्द, संज्ञा और निद्रानाश तथा श्वास और हिक्का पैदा होता है। इसीतरह तकलीफ भोगते भोगते रोगी अवसन्न और संज्ञाहीन हो मृत्युमुखमें जाता है।

ग्रन्थि-विसर्प।

ग्रन्थि-विसर्प नामक वातकफ विसर्पमें दीर्घ वर्त्तुलाकार, स्थूल, कठिन और लाल रङ्गकी ग्रन्थिश्रेणी अर्थात् गांठे होती है। इसमें अत्यन्त पीड़ा, प्रबल ज्वर, श्वास, कास, अतिसार, मुखशोष, हिक्का, वमि, भ्रम, ज्ञानका वैपरीत्य, विवर्णता, मूर्च्छा, अङ्गभङ्ग, और अग्नि-मान्द्य यही सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

कर्द्दमक नामक पित्तश्लेष्मज विसर्प पीत, लोहित, या पाण्डु-वर्ण पिड़कासे व्याप्त, चिकना, काला या

कर्द्दमक।

कृष्णवर्ण, मलिन, शोथयुक्त, गुरु, भितर पका हुआ, अतिशय उष्ण-स्पर्श, क्लिन्न, विदीर्ण, कीचकी तरह कालारङ्ग और मुर्देकी तरह दुर्गन्धयुक्त होता है। फिर क्रमशः इस रोगमें मांस गलकर गिर जानेसे शिरा और स्नायु सब दिखाई देते है, तथा साथही ज्वर, जड़ता, निद्रा, शिरोवेदना, देहका अवसाद, आक्षेप, मुखकी लिप्तता, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, अग्निमान्द्य, अस्थि-वेदना, पिपासा, इन्द्रिय-समूहोंका भारीबोध, अपक्क मल निर्गम और स्रोत समूहोंकी लिप्तता, यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं।

शस्त्र, नख, और दन्त आदिसे किसी जगह घाव होनेसे कुरथीकी तरह काली या लाल रङ्गकी

क्षतज विसर्प।

फोड़िया पैदा होते देखा गया है; वहभी एक प्रकारका पित्तज विसर्प है।

ज्वर, अतिसार, वमि, क्लान्ति, अरुचि, अपरिपाक, और त्वक-मांस विदीर्ण होना यही सब विसर्प

उपद्रव।

रोगके उपद्रव हैं।

उक्त विसर्पोंमें वातज पित्तज और कफज विसर्प साध्य है। किन्तु मर्मस्थानमें होनेसे कष्टसाध्य हो

साध्यासाध्य।

जाता है। त्रिदोषज, क्षतज, और वात-पित्तज अग्निविसर्प असाध्य जानना।

कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही (अम्लपाकी) रुक्ष, क्षार या अपक्क द्रव्य भोजन; पहिलेका आहार

विस्फोटकके निदान और लक्षण।

जीर्ण न होनेपर फिर भोजन; आतप-सेवन और ऋतु-पर्य्यय आदि कारणोंसे वातादि दोष समूह विशेष

कर पित्त और रक्त कुपित हो विस्फोटक रोग उत्पन्न होता है। इसमे शरीरके किसी स्थानमें या सर्व्वाङ्गमें आगसे जलेकी तरह फफाले पैदा होते है और ज्वरभी होता है।

दोषभेदसे लक्षण।

वातज विस्फोटक कृष्णवर्ण तथा साथही उसके शिरोवेदना, अत्यन्त शूल, ज्वर, तृष्णा, सन्धिस्थानमें दर्द होती हैं। पित्तज विस्फोट पाण्डु-वर्ण, अल्प वेदना, और कण्डुयुक्त होता है, यह देरसे पकता है, तथा वमि, अरुचि, और शरीरकी जड़ता आदि उपस्थित होती है। द्विदोषज विस्फोटमें इसी तरह दो दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होते है। त्रिदोषज विस्फोट कठिन, रक्तवर्ण, अल्प पाकविशिष्ट तथा उसका मध्यभाग नीचा और प्रान्तभाग उंचा ; दाह, तृष्णा, मोह, वमि, मूर्च्छा, वेदना, ज्वर, प्रलाप कंप, और तन्द्रा यही सब लक्षण इसके साथ प्रकाशित होते हैं। रक्त दूषित होनेसे घुंघुचीकी तरह लालरङ्ग और पित्तविसर्पके लक्षणयुक्त एक प्रकार रक्तज विसर्प उत्पन्न होता है।

साध्यासाध्य।

उक्त विसर्पोंमे एक दोषज विसर्प साध्य, द्विदोषज कष्टसाध्य और त्रिदोषज, रक्तज तथा बहु उपद्रव-युक्त विसर्प असाध्य जानना।

विसर्प चिकित्सा।

विसर्प रोगमें कफका आधिक्य होनेसे वमन और पित्तके आधिक्यमें विरेचन देना चाहिये। वमनके लिये परवरका पत्ता नीम और इन्द्रयव ; अथवा पीपल, मदनफल और इन्द्रयव ; इसका काढ़ा पिलाना। विरेचनके लिये त्रिफलाके काढ़ेके साथ घी ॥) आनेभर और त्रिवृतचूर्ण चार आनेभर मिलाकर पीना इससे ज्वरकोभी शान्ति होती है। वातज विसर्पमें रास्ना, नीलोत्पल, देवदारु, लाल

चन्दन, मुलेठो और बरियारा यह सब समभाग घी और दूधके साथ पीसकर लेप करना। पित्तज विसर्पमें बड़कोसार, गुरिच, केलेका फुल और कमलके डण्डाकी गांठ एकत्र पीसकर शतधौत घीमें मिलाकर लेप करना। कफज विसर्पमें त्रिफला, पद्मकाष्ठ, खसकी जड़, वराहक्रान्ता, कनैलकी जड़, और अनन्तमूल, इन सब द्रव्योंका लेप देना। द्विदोषज और त्रिदोषज विसर्पमेंभी वही सब पृथक दोष-नाशक द्रव्य विचारकर लेप करना। सब प्रकारके विसर्पमें पद्मकाष्ठ, खसकी जड़, मुलेठी, और लाल चन्दन इन सबका काढ़ा अथवा बड़, पीपर, पाकर, गुल्लर और बकुल इन सबके पल्लवका काढ़ा सेवन विशेष उपकारी है। शिरीष, मुलेठो, तगरपादुका, लाल चन्दन, इलायची, जटामांसी, हलदी, दारुहलदी, कुड़ और बाला, यही दशाङ्ग प्रलेप सब प्रकारके विसर्पमें प्रयोग होता है। चिरायता, अड़ूसेकी छाल, कुटकी, परवरका पत्ता, त्रिफला, लाल चन्दन, नीमकी छाल इन सबका काढ़ा पीनेसे सब प्रकारका विसर्प और तज्जनित ज्वर, दाह, शोथ, कण्डु, तृष्णा, और वमि आराम होती है।

विस्फोटक-चिकित्सा।

विस्फोट शान्तिके लिये चावलके धोवनमें इन्द्रयव पीसकर लेप करना चाहिये, लाल चन्दन, नागकेशर, अनन्तमूल, शिरीषछाल, और जातिपुष्प इन सब द्रव्योंका लेप करनेसे विस्फोटकी दाह शान्त होती है। शिरीष छाल, तगरपादुका, देवदारु, और बभनेठी इन सब द्रव्योंका प्रलेप सब प्रकारके विस्फोटमें उपकारी है। शिरीषछाल, गुल्लर, और जामुनकी छाल, इन सब द्रव्योंका प्रलेप और काढ़ेका परिषेक विस्फोट रोगमें विशेष उपकारी है।

विसर्प और विस्फोट रोगमें अमृतादि कषाय, नवकषाय

शास्त्रीय औषध और हमारा चतारि तैल।

गुग्गुलु, काला तिल, रुद्रस, वृषाद्य घृत और पञ्चतिक्त घृत सेवन, तथा घावमें करञ्ज-तैल या हमारा "चतारि तैल" व्यवहार करना चाहिये। हमारा "अमृतवल्ली-कषाय" पीनेसे दोनो रोग जल्दी आराम होता हैं।

पथ्यापथ्य।

वातरक्त और कुष्ठरोगमें लिखित पथ्यापथ्य, विसर्प और विस्फोट रोगमेंभी पालन करना चाहिये।

रोमान्ती और मसूरिका।

रोमान्तिके संज्ञा और लक्षण।

चलित भाषामें रोमान्तीको छोटीमाता, और मसूरिकाको बड़ीमाता कहते हैं। रोमकूपके उन्नतिकी तरह छोटी छोटी लाल फोड़ियाको रोमान्ती अर्थात् छोटीमाता कहते है, तथा छोटीमाता निकलनेके पहिले ज्वर और सर्व्वाङ्गमें दर्द होता हैं, अकसर २।३ दिन तक एकज्वर होकर ज्वर शान्त होते ही बदनमे दिखाई देती है; पहिले कपाल और डाढ़ीमें निकल कर फिर सर्व्वाङ्गमें प्रकाशित होती है। रोमान्ती ज्वरमें कोष्ठरोध या उदरामय, अरुचि, काम और कष्टसे श्वास-निर्गम यही सब लक्षण प्रकाश होते हैं। रोमान्ती अच्छी तरह बाहर न निकलनेसे पीड़ा कष्टसाध्य होता है। यह रोग बाल्यावस्थामें अधिक होता है।

चोर-मत्स्यादि संयोगविरुद्ध भोजन, दूषित अन्न, सोम, शाक

बड़ीमाताके निदान और लक्षण।

और कटु, अम्ल, लवण और क्षार द्रव्य भोजन ; पहिलेका आहार पचनेसे पहिले भोजन और क्रूट ग्रहोंको कुदृष्टि आदि कारणोंसे मसूरिका अर्थात् बड़ीमाता उत्पन्न होती है। मसूरिकाकी पिड़िका समूहोंकी आकृति मसूरकी तरह। यह रोग उत्पन्न होनेके पहिले ज्वर, कण्डु, सर्व्वाङ्गमें दर्द, चित्तकी अस्थिरता, भ्रम, त्वक स्फीत और लाल रंग तथा दोनों आंखे लाल, यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता हैं। मसूरिका धातुको अवलम्बन कर उत्पन्न होती है, इस लिये इसमें नानाप्रकारके भेद दिखाई देते है।

रसधातुगत मसूरिका जलविम्बकी तरह अर्थात् छोटे छोटे

रसधातुगत या दुलारीमाता।

फफोलेकी तरह होतीहै और फट जानेसे पानी निकलता है। यह सुखसाध्य है। चलित भाषामें इसको दुलारीमाता कहते है। रक्तगत मसूरिका लाल और पतले चर्म्मयुक्त होता है यह जल्दी पकजाती है और फूटने पर रक्तस्राव होता है। रक्त अधिक दूषित न होनेसे यहभी सुखसाध्य है। मांसगत मसूरिका कठिन, स्निग्ध और मोटे चर्म्म विशिष्ट, इससे बदनमें शूलवत् वेदना, तृष्णा, कण्डु, ज्वर, और चित्तकी चञ्चलता होती है। मेदोगत मसूरिका, मण्डलाकार, कोमल, किञ्चित अधिक ऊंची स्थूल और वेदनायुक्त होता है। इसमें अत्यन्त ज्वर, मनोविभ्रम, चित्तकी चञ्चलता और सन्ताप यही सब उपद्रव उपस्थित होता हैं। अस्थि और मज्जागत मसूरिका क्षुद्राकृति, गात्रसम वर्ण, रूक्ष, चिवड़ेकी तरह चिपटी और थोड़ी ऊंची ; इसमें अत्यन्त मोह, वेदना, चित्तकी अस्थिरता, मर्म्मस्थान छिन्न होनेकी तरह और सर्व्वाङ्गमें भ्रमर काटनेकी तरह तकलीफ होती है। शुक्रगत मसूरिका चिकनी, सूक्ष्म, अत्यन्त

वेदनायुक्त और देखनेमें पक्की तरह पर पकी नही होती, इसमें सर्व्वाङ्ग गोले कपड़ेसे आच्छादनकी तरह अनुभव, चित्तकी अस्थिरता, मूर्च्छा, दाह, और मत्तता यही सब उपद्रव प्रकाशित होता हैं।

दोषाधिक्यमें पिडकाकी अवस्था।

मसूरिकामें वायुके आधिक्यसे पिडिका श्याव या अरुणवर्ण, रूक्ष, तीव्र वेदनायुक्त और कठिन होता है, तथा देरसे पकती है। पित्तके आधिक्यसे स्फोटक लाल, पीत या कृष्णवर्ण और दाह तथा उग्रवेदनायुक्त होता है; यह जल्दी पकती है तथा सन्धिस्थान और अस्थिसमूह तोडनेकी तरह दर्द; काम, कम्प, चित्तकी अस्थिरता, क्लान्ति, तालु, ओठ और जिह्वामें शोथ, तृष्णा, और अरुचि यही सब उपद्रव उपस्थित होते हैं। कफके आधिक्यसे स्फोटक श्वेतवर्ण, चिकना, अतिशय स्थूल, कण्डु और अल्प वेदना युक्त होता है; यह देरमें पकता है, इसमें कफस्राव, शरीर आर्द्र वस्त्रसे आवृतकी तरह अनुभव, शिरोवेदना, गात्रकी गुरुता, वमनवेग, अरुचि, निद्रा, तन्द्रा और आलस्य आदि उपद्रव दिखाई देते हैं। रक्तके आधिक्यमें मलभेद, अङ्गमर्द, दाह, तृष्णा, अरुचि, मुखमें घाव होना, आंखें लाल, तीव्र वेगसे दारुण ज्वर और पित्तज मसूरिकाके अन्यान्य लक्षण प्रकाशित होते हैं। तीनों दोषका आधिक्य रहनेसे मसूरिका लाल रंग चिवडेकी तरह चिपटी और मध्यभाग नीचा, अत्यन्त वेदना और सुगन्ध स्रावयुक्त होती है। यह बहुत परिमाण उत्पन्न होती है और देरसे पकती है। चर्म्मदल नामक एक प्रकारकी मसूरिका होती है उसमें कण्ठरोध, अरुचि, स्तम्भितभाव, प्रलाप, और चित्तकी अस्थिरता यही सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

उक्त मसूरीकामें त्रिदोषज, चर्म्मदल, और मांस, मेद, अस्थि,

साध्यासाध्य।

मज्जा और शुक्रगत मसूरिका असाध्य। तथा जो मसूरिका रोगमें कई मूंगेकी तरह लाल रंग, कई जामुनकी तरह काली, कई तमाल फलकी तरह होती है वह सब असाध्य जानना। जिस मसूरिका रोगमें कास, हिक्का, चित्तकी विभ्रमता और अस्थिरता, अति कष्टप्रद तीव्रज्वर, प्रलाप, मूर्च्छा, तृष्णा, दाह, गात्रघूर्णन, अतिनिद्रा, मुख, नासिका, और आंखसे रक्तस्राव, और कण्ठमें घुर घुर शब्द, और अति वेदना सहित श्वासनिर्गम यह सब उपद्रव प्रकाशित होतेहै, उसकोभी असाध्यही समझना। मसूरीका-रोगी अतिशय तृष्णार्त्त और अपतानकादि वातव्याधिग्रस्त होनेसे, अथवा मुखको छोड़ केवल नासिकासेही दीर्घश्वास लेनेसे उसकी मृत्यु निश्चय जानना।

आरोग्यान्तमें शोथ।

मसूरिका आराम होनेपर किसी किसीके केहुनी, हाथका कब्जा, कन्धेमें शोथ होता है, वह अतिशय कष्टदायक और दुश्चिकित्स्य है।

चिकित्सा।

इस दो रोगमें अधिक रूक्षक्रिया या अधिक शीतल क्रिया करना उचित नहीं है। अधिक रूक्ष-क्रियासे माता अच्छी तरह नहीं निकलती, इससे पीड़ा कष्टदायक होती है; और अधिक शीतलक्रियासे पीड़ा कष्टदायक होती है, तथा अधिक शीतलक्रियासे सर्दी खांसी होकर तकलीफ बढ़ती है। माता अच्छी तरह नही निकलनेसे कच्ची हल्दीका रस, तेलाकूचाके पत्तेका रस, या शत-मूलीका रस मक्खनके साथ मिलाकर मालिश करना। इस अवस्थामें तुलसीके पत्तेके रसके साथ अजवाईन पीसकर लगाते देखा है। पीड़ाकी प्रथमावस्थामें मेथी भिंगोया पानी कुड़ और बनतुलसीका काढ़ा किम्बा कुड़, बनतुलसी, पानकी जड़ और मानकी जड़का

काढ़ा पिलानेको रीति है। छोटीमातावालेको वच, घृत, बांसका नोल, जौ, अड़ूसेका जड़, बनोरको बोज, ब्रह्मीशाक, तुलसीका पत्ता, अपामार्ग और लाह यह सबका धूप देना चाहिये। सर्दी खांसी हो तो मुलेठीके काढ़ेके साथ मकरध्वज या लक्ष्मीविलास रस सेवन कराना।

मसूरिकाके प्रथमावस्थामें कांटा कुम्हाड नामक लताके काढ़ेमें (?) आनेभर हींग मिलाकर पिलाना।

प्रथम अवस्थाकी चिकित्सा।

सुपारीका जड़, करञ्जको जड़, गोखुरको जड़ अथवा अनन्तमूल पानीमें पीस कर सेवन कराना। वातज मसूरिकामें दशमूल, अड़ूसा, दारुहरिद्रा, खसको जड़, अमिलतास, गुरिच, धनिया और मोथा; यह सब द्रव्यका काढ़ा पिलाना तथा मजीठ, बड़, पाकर, शिरीष और गुल्लरको छाल यह सब द्रव्यका लेप करना। मसूरिका पकने पर गुरिच, मुलेठी, रास्ना, वृहत् पञ्चमूल, रक्तचन्दन, गांभारी फल और वरियारका जड़ इन सबका काढ़ा अथवा गुरिच, मुलेठी, द्राक्षा, इक्षुमूल और अनार यह सब द्रव्यका काढ़ा पिलाना। पित्तज मसूरिकामें नोमको छाल, खेतपापड़ा, अकवन, परवरका पत्ता, चन्दन, लालचन्दन, खसको जड़, कुटकी, आंवला, अड़ूसेको छाल और जवासा इसका काढ़ा ठण्ढाकर थोड़ी चिनी मिलाकर पोना। शिरीष, गुल्लर, पोपल और बड इन सबका छाल ठण्ढे पानीमें पीसकर घी मिला लेप करनेसे पित्तज मसूरिका का व्रण और दाह दूर होता है। कफज मसूरिकामें अड़ूसा, मोथा, चिरायता, त्रिफला, इन्द्र-यव, जवासा; परवरका पत्ता और नोमको छाल इन सबका काढ़ा पिलाना और शिरीषको छाल, गुल्लरको छाल, खैर और नोमका पत्ता पीसकर लेप करना। गुड़के साथ बेरको बुकनो खानेसे

सब प्रकारकी मसूरिका पकजाती है। परवरका पत्ता, गुरिच, मोथा अडूसकी छाल, जवासा, चिरायता, नीमकी छाल, कुटकी और खेतपापड़ा इन सबका काढ़ा पीनेसे अपक्क माताभी पक जाती है। और पकी माता शीघ्र सूखजाती है, तथा इससे ज्वरमेंभी विशेष उपकार होता है। दाह शान्तिके लिये कलमी शाकका रस बदनमें लगानेसे विशेष उपकार होता है।

पीप निवारणोपाय। मसूरिकासे पीप निकलती बड़, गूलर, पीपर, पाकर और बकुल (मोलसरी)के छालकी बुकनी क्षतस्थानमें लगाना। जङ्गली कण्डे की राख अथवा गोबरकी मिहीन बुकनी लगानेसभी घाव जल्दी सूखता है। इस अवस्थामें क्षत नाशक अन्यान्य औषधभी प्रयोग करना चाहिये। मातामें क्रिमि उत्पन्न होनेसे, धूना, देवदारु, चन्दन, अगरू और गुग्गुलु आदिका धूप देना। मसूरिका एक दफे निकल कर एकाएकी लोन हो जानेसे निम्बादि और काञ्चनादि क्वाथ पिलाना। मसूरिका रोगोको खदिरकाष्ठके काढ़े से शौचादि करानाउपकारी है।

चक्षुजात मसूरिकाकी चिकित्सा। आंखमें मसूरिका होनेसे गोखुर, चाकुले और मुलेठीका काढ़ा दोनो आंखमें देना। मुलेठी, त्रिफला, मूर्व्वाकी जड़, दारुहल्दी, दारचिनी, खसकी जड़, लोध, मजीठ, यह सब द्रव्यके काढ़ेसे दोनो आंखे धोना।

आगन्तुक रोग चिकित्सा। इस रोगमें अरुचि रहनेसे खट्टे अनारका रस और खैरकाठका ठंढा काढ़ा पीना विशेष उपकारी है। मुखरोग या कंठ रोग रहनेसे जावित्री, मंजीठ, दारुहल्दी, सुपारी, शमीकी छाल, आंवला और मुलेठी, इन सब का काढ़ा सहत मिलाकर कुल्ला

करना। सहतके साथ पीपल और हरीतकी चूर्ण चाटनेसे मुख और कण्ठ शुद्ध होता है। ऊषणादि चूर्ण, सर्व्वतोभद्र, इन्दुकला-वटी, एलाद्यरिष्ट, छोटी माता और बड़ी माता रोगमें विचारकर प्रयोग करनेसे उपकार होता है।

पथ्यापथ्यमें हमारा सञ्जीवन खाद्य।

रोगके प्रथमावस्थामें भूखके अनुसार दूधसागु, दूधबार्लि या हमारा "सञ्जीवन खाद्य" आदि लघु पथ्य खानेको देना। फिर क्षुधाबृद्धि और ज्वरादिके अनुसार अन्न आदि खानेको देना। परवर, बैगन, कच्चा केला, गुल्लर आदिकी तरकारी और बेदाना, किसमिस, नारङ्गी, अनारस आदि द्रव्य खाना चाहिये। बदन पर मोटा कपड़ा रखना तथा रहनेका घर प्रशस्त और बिछौना साफ रहना चाहिये।

निषिद्ध कर्म।

मत्स्य, मांस, उष्णवीर्य्य द्रव्य, गुरुपाक द्रव्य भोजन और तैल मर्द्दन, वायु सेवन इस रोगमें मना है; मसूरिका अतिशय संक्रामक व्याधि है। इससे रोगीसे हरवख्त दूर रहना चाहिये।

संक्रामकका प्रतिरोध।

इस रोगके आक्रमणसे बचनेका उपाय "कपाना"। स्त्री बायें तरफ पुरुष दाहिने तरफ हरीतकी का बीज धारण करनेसे मसूरिकाके आक्रमणका भय कम रहता है।

क्षुद्ररोग ।

बालकोंके शरीरमें मूंगकी तरह गोल, चिकना, गात्र समवर्ण गठीला और वेदनाशून्य एक प्रकारकी

अजगल्लिकादि ।

फोड़िया उत्पन्न होतीहै, उसको अजगल्लिका कहते है। जौकी तरह मध्यभाग स्थूल, कठिन गठीली जो सब पिड़का मांसल स्थानमें उत्पन्न होती है उसका यवप्रख्या कहते हैं। अवक्र, उन्नत, मण्डलाकार अल्प पूययुक्त और घनसन्निविष्ट पिडका समूह उत्पन्न होनेसे उसको अन्त्रालजी कहते है। यह तीन प्रकार व्याधि वातश्लेषजहै। पके गूलरकी तरह रंग, दाहयुक्त, मण्डलाकार और विदोण पिडकाका नाम विवृता ; यह पित्तज व्याधि हैं। कछुवेकी तरह आकृतिविशिष्ट अति कठिन और पांच छ एक साथ मिली हुई फोडियाका नाम कच्छपिका ; यहभी वातश्लेषज है। ग्रीवा, स्कन्ध, हाथ, पैर, सन्धिस्थान और गलेमें वल्मीककी तरह शिखरयुक्त पिडकाको वल्मीक कहते है ; यह त्रिदोषज व्याधि है। प्रथमावस्थामें इसकी चिकित्सा न करनेसे क्रमश: वर्द्धित, अग्रभाग उन्नत, वहुमुख, स्राव और वेदनायुक्त होता है। कमलके छत्तेमें जैसे कमलको बोज समूह मण्डलाकार रहताहै, वैसही मण्डलाकार पिडका उत्पन्न होनेसे उसको इन्द्रविद्धा कहते है, यह वातपत्तिक रोग हैं। मण्डलाकार, उन्नत, लाल, वेदनायुक्त गोल पिड़का व्याप्त व्याधिको गर्दभिका कहते हैं, यह वातपित्तज व्याधि है। हनु अर्थात् चहुआके सन्धिस्थलमें अल्प वेदनायुक्त और चिकना जो शाथ उत्पन्न होताहै उसको पाषाणगर्दभ कहतेहै, यह वातश्लेषज

रोग है। कानमें उग्र वेदनायुक्त जो पिड़का उत्पन्न हो भीतरका भाग पकजाता है, उसको पनसिका कहते है। विसर्पकी तरह क्रमशः विस्तृतिशील, दाह और ज्वरयुक्त जो शोथ उत्पन्न होता है उसको जालगर्द्दभ या अग्निवात कहते है, इसके उपरका चमड़ा पतला और यह अकसर पकता नही कदाचित् कोई पकताभी है; यह रोग पित्तजनित है। उग्र वेदना और ज्वरयुक्त जो सब पिड़का मस्तकमे, उत्पन्न होती है उसका नाम इरिवेल्लिका, यह त्रिदोषज है। बाहु, पार्श्व, स्कन्ध, बगलमें कृष्णवर्ण वेदनायुक्त जो स्फोटक पैदा होता है उसको गन्धमाला कहते है; यह पीड़ा पित्तज है। बगलमें जलते हुए अङ्गारेकी तरह एक प्रकार स्फोटक पैदा हो चर्म्म विदीर्ण होकर भीतर अत्यन्त दाह और ज्वर होता है, इस रोगका नाम अग्निरोहिणी, यह त्रिदोषज और असाध्य है। ८दिनमे १५ दिनके भीतर इस रोगमे रोगीके मृत्युकी सम्भावना है। वायु और पित्त कर्त्तृक नखका मांस दूषित होनेमे वह पकनेसे अत्यन्त दाह होताहै, इसका नाम चिप्प; चलित भाषामे "अङ्गुलि खाय।" कहते हैं। नखका मांस अल्प दूषित होनेसे पहिले नखका दोनो कोना, फिर सब नख नष्ट या खराब होनेमे उसको कुनख कहते हैं। परके उपर थोड़ा शोथ, गात्र समवर्ण, अन्तरमें पका जो रोग पैदा होता है उसका नाम अनुशयी। बगल और पट्ठोंमे भूमि-कुष्माण्डकी तरह जो शोथ होता है उसका नाम विदारिका; यह त्रिदोषज है। जिस रोगमें दूषित वायु और कफ, मांस, शिरा, स्नायु और मेदको दूषित करनेसे पहिले कई एकगांठ पैदा होती है; फिर वह गांठ विदीर्ण होकर उसमेसे घी, सहत और चर्व्वीकी तरह स्राव होनेसे धातुक्षय हो मांस सूख जाता है; सुतरां यह सब ग्रन्थिस्थान अतिशय कठिन होता है, इसको शर्कराव्र्वुद कहते

है, इस अर्व्वुदकी शिरामें दुर्गन्ध, सड़ा या नानाप्रकार स्राव दिखाई देता है, कभी कभी रक्तस्रावभी होता है।

पाददारी।

सर्व्वदा नङ्गे पैर पैदल चलनेवालोंका पैर रुखा हो फट जाता है; इसको पाददारी कहते हैं। कङ्कर या कांटेसे पैरके तलवेमें चोट या घाव लगनेसे पैरके तलवेमें जो बैरके बीजकी तरह गांठ पैदा होती है, उसको बदर या बैरकी बीज कहते हैं। रातदिन पैर पानीमें भिंगा रहनेसे पैरके अङ्गुलियोंकी सन्धि सड़ कर उसमें खुजलाहट और दर्द पैदा होनेसे उसको अलस कहते है। कुपित वायु और पित्त केशकी जड़में जाकर यदि सिरका बाल गिरा दे और खराब कफ और रक्तसे लोमकूप बन्द हो जानेसे फिर उस जगह केश नहीं निकलेता, उसको इन्द्रलुप्त या खालित्य; और चलित भाषामें "टाक" कहते हैं। केशभूमि कठिन, कण्डुयुक्त, और फट जानेसे उसको दारुणक रोग तथा चलित भाषामें "रूसी" कहते है यह वात कफज व्याधि है। मस्तकमें बहु क्लेदयुक्त व्रण समूह उत्पन्न होनेसे उसको अरुंषिका कहते हैं। कफ, रक्त और क्रिमिसे यह रोग उत्पन्न होता है। क्रोध, शोक और श्रमादि कारणसे देहकी ऊष्मा और पित्त शिरोगत होनेसे केश बेवक्त पकजाता है; उसको पलित रोग कहते हैं। युवकोंके मुखपर सेमलके कांटेकी तरह एक प्रकार फोड़िया पैदा होती है उसको युवानपिड़क या "वयोव्रण" कहते हैं। कफ वायु और रक्तके दोषसे यह पैदा होती है, अतिरिक्त शुक्रक्षयही इस रोगका प्रधान कारण है। चमड़ेके उपर पद्मके कांटेकी तरह कण्टकाकीर्ण, पाण्डुवर्ण कण्डुयुक्त और गोलाकार जो मण्डल उत्पन्न होता है उसको पद्मिनीकण्टक कहते है; यह वात कफज व्याधि है। चमड़ेके उपर उरदकी तरह थोड़ा

ऊंचा, काला, वेदनाशून्य और मण्डलाकार एकप्रकार फोड़िया पैदा होती है, उसको माषक कहते हैं। वायुके प्रकोपसे यह पोड़ा पैदा होती है। चमड़ेके उपर तिलको तरह काले रंगका जो दाग होता है उसको तिल कहते है, यह त्रिदोषज व्याधि है। बदनमें श्याव या कृष्णवर्ण, वेदनाशून्य मण्डलाकार जो चिह्न होता है उसको मच्छ या मेंडुआ कहते हैं; यह रोग पहिले बूंद बूंद उत्पन्न हो फिर बढ़ता है। क्रोध और परिश्रम आदि कारणोंसे वायुपित्त कुपित हो मुख श्याव वर्ण, अनुन्नत और वेदनाशून्य एक प्रकार मण्डलाकार चिह्न पैदा होता है उसको मुखव्यङ्ग या वोदकार कहते हैं। वही वोदकार अधिक काला होनेसे उसको नीलिका कहते हैं। नीलिका बदनमेंभी होती है।

पंरिवत्तिका।

लिङ्ग अतिशय मर्द्दित, पोड़ित वा किसी तरह चोट लगनेसे लिङ्ग चर्म्म दूषित और परिवर्त्तित होकर लिङ्गमणिके नीचेका भाग गांठकी तरह लम्बा हो जाता है, उसको परिवर्त्तिका कहते हैं। इसमें वायुका आधिक्य रहनेसे दर्द, कफके आधिक्यमें कड़ा और कण्डुयुक्त होता हैं। सूक्ष्ममुख योनि आदिमें गमन या और कोई कारणसे यदि लिङ्गचर्म्म उलट जाय तथा मुद्रित नहो तो उसको अवपाटिका कहते हैं। कुपित वायु लिङ्ग चर्म्ममें रहनेसे लिङ्गमणि विवृत नहो होती तथा अत्यन्त दर्द, मूत्रस्रोत बन्द, अथवा पतली धारसे मूत्र निकलता है। इसको निरुद्धप्रकाश कहते है। मलवेग धारण करनेसे अपान वायु कुपित हो, मलमार्गका बन्द या सूक्ष्म द्वार होनेसे अतिकष्टसे मल निकलता है उसको सन्निरुद्ध गुद कहते हैं। बच्चोंके गुदाका मलमूत्र घर्म्मादि न धोनेसे गुदामें खजुली पैदा होता है। फिर वह खुजलातेही वहां घाव हो स्राव होने

लगता है, उसको अहिपूतनक रोग कहते हैं। स्नान या बदन साफ न रखनेसे अण्डकोषको मैल पसीनेसे क्लिन्न हो उसी स्थानसे खजुली होती है, खजुलानेसे घाव हो स्राव होनेसे उसको वृषण कच्छू कहते हैं। अतिशय कुंथन या अधिक मलभेदसे रूक्ष या दुर्व्वल रोगीकी गुदनाड़ी निकल आनेसे उसको गुदभ्रंश रोग कहते हैं। जिस रोगसे सर्व्वाङ्गमें घाव हो, घावका प्रान्तभाग लाल तथा दाह, खजुली, तीव्र वेदना और ज्वर हो उसको वराहदंष्ट्रक रोग कहते हैं।

क्षुद्ररोग चिकित्सा।

अजगल्लिका रोगमें नये कटैलीके कांटेसे फोड़िया छेद देनेसे वह पककर जल्दी आराम हो जाती है। अडूसेकी जड़ और बालम खीरेकी जड़ पीसकर लेप करनेसे अजगल्लिका आराम होती है। अनुशयी रोगमें कफज विद्रधिकी तरह और विवृता, इन्द्रवृद्धा, गर्द्दभी, जालगर्द्दभ, इरिवेल्लिका और गण्डमाला रोगमें पित्त विसर्पकी तरह चिकित्सा करना। नीलका पेड़ और परवरको जल पीसकर घी मिला लेप करनेसे जालगर्द्दभ रोगका दर्द आराम होता है। बार बार जोंक आदिसे खून निकालना और सैजनके जड़की छाल तथा देवदारुका प्रलेप करनेसे विदारिका, पनसिका और कच्छपिका रोग दूर होता है। अन्धालजी, यवप्रख्या और पाषाण गर्द्दभ रोग पहिले सेंककर फिर मैनशिल, देवदारु और कूठ यह तीन द्रव्य पीसकर लेप करना। पकनेपर व्रणरोगकी तरह चिकित्सा करना। पाषाणगर्द्दभ रोगमें वातश्लैष्मिक शोथनाशक प्रलेप उपकारी है। वल्मीक रोगमें शस्त्रसे उखाड़कर उस स्थानको जलाना; फिर मैनसिल, हरताल, भेलावा, छोटी इलायची, अगुरु, रक्तचन्दन और जावित्री, इन सबके कल्कके साथ नीमका

तेल पकाकर घावमें मर्द्दन करना। पाददारी रोगमें मोम, चर्बी, घी और यवक्षारका बार बार लेप करना। अथवा राल और सेन्धा नमक चूर्ण, मधु, घी और तेलके साथ मिलाकर पैरमें घिसना। अलस रोगमें पैर थोड़ी देर कांजीमें भिंगा रखना फिर परवरका पत्ता, नीमकी छाल, त्रिफला, और त्रिफला पीस-कर बार बार लेप करना। भूंगराके डण्ड़का दूध अलस रोगमें विशेष उपकारी है। मेहदीका पत्ता और हल्दी एकत्र पीसकर लेप करनेसेभी अलस रोग जल्दी आराम होता है। बैरकी गुठली नस्तरसे बाहर निकालकर गरम तेल या आगसे वह स्थान जला देनेसे आराम होता है। चिप्प रोगमें गरम पानीका सेंक देकर काटना और चतस्थानमें रालका चूर्ण या व्रणनाशक तेल प्रयोग करना। एक लोहेके बरतनमें हल्दी और बड़ी हर्रे घिसकर बार बार लेप करनेसे चिप्प रोग आराम होता है। गम्भारीका कोमल पत्ता लपेट कर बांध देनेसेभी चिप्प रोग जल्दी आराम होता है। कुनख रोगमें नखमें सोहागेकी चूर्ण भरना; अथवा सोहागा और हापरमाली एकत्र पीसकर लेप करना। पद्मकांटा रोगमें पद्मका डण्डा जलाकर उसकी राखका लेप अथवा नीमकी छाल और अमिलतासका पत्ता पीसकर बार बार मर्द्दन करना। नीलकी जड़, परवरकी जड़ पीसकर घी मिलाकर लेप करनेसे जालगर्द्दभ रोगकी दर्द आराम होती है। अहिपूतन रोगमें त्रिफला और खैरके काढ़ेसे घाव बार बार धोना, और रसाञ्जन, मुलेठी एकत्र पीसकर लेप करना। गुदभ्रंशरोगमें निकली हुई नाडीमें गौकी चर्बी आदि स्नेह पदार्थ मालिश कर नाड़ी भीतरको ढकेल देना। गुदद्वारमें एक टुकड़ा चमड़ा छिद्रकर बांधनेसे विशेष उपकार है। चाङ्गेरीघृत सेवन, मूषिकाद्य तेल गुदनाडीमें मर्द्दन करना,

गुदभ्रंश रोग आराम होता है। परिवर्त्तिका रोगमें परिवर्त्तित लिङ्गचर्म्ममें घी लगाकर उबाले हुए उदरका स्वेद करना, मांस कोमल होनेसे लिङ्गचर्म्म बैठाकर थोड़ा गरम मांसका लेप करना। अवपाटिका रोगमें परिवर्त्तिकाकी तरह चिकित्सा करना। निरुद्धप्रकाश रोगमें सोना, लोहा आदिका छिद्रयुक्त नल घृतादिसे अभ्यक्त कर मूत्रमार्गमें प्रवेश करनेसे मूत्र निकलता है। मूत्रद्वार बढ़ानेके लिये एक दिन अन्तरपर क्रमशः बड़ो नल स्थूलतर प्रवेश करना चाहिये। अङ्गरेजोंमें इस प्रकार नल प्रवेश करनेको "कौथिटार" पास करना कहते हैं। सन्निरुद्ध गुद रोगमें भी यह प्रवेश करना चाहिये। चर्म्मकील, माषक और तिल शस्त्रसे उखाड़ कर क्षार या आगसे जलाना चाहिये। रेंड़के डण्डेसे शङ्खचूर्ण घिसकर अथवा सांपकी केंचुलीकी राख घिसनेसे माषक रोग आराम होता हैं; युवानपिड़कामें लोध, धनिया, बच, गोरोचन, मरिचचूर्ण अथवा सफेद, सरसों, बच, लोध, सेन्धानमक एकत्र पीसकर मुखमें लेप करना। सेमर वृक्षका चोखाकांटा, मसूरको दाल दूधमें पोसकर लेप करनेसे युवानपिड़का आराम होती है। मेंहआमें लाल चन्दन, मञ्जीठ, कूठ, लोध, प्रियङ्गु बड़का नरम पत्ता और कली, मसूरको दाल एकत्र पीसकर लेप करना। हरिद्राद्य तैल, कनकतैल, कुङ्कुमाद्य तैल आदिसेभी युवानपिड़का, व्यङ्ग और नीलिका आदि रोग आराम होते हैं। अरुंषिका रोगमें सिर मुड़ाकर नीमके काढ़ेसे व्रणसमूह धोना फिर घोड़ेकी लीदका रस और सेन्धानमक एकत्र मिलाकर लेप करना; अथवा पुरानी सरसोंकी खली और मुरगीका बीट गोमूत्रसे पीसकर लेप करना। हरिद्राद्य तैल इस रोगमें विशेष उपकारी है। सिरकी रूसी कोदो धानकी राख पानीमें घोल

कर वही क्षार पानीमें मिर धोना और केसर, मुलेठी, तिल और आंवला यह सब द्रव्यका प्रलेप करना। त्रिफलाद्य तैल और वह्नि तैल इस रोगमें विशेष उपकारी है। इन्द्रलुप्त या टाक रोगमें सुई गड़ाना या गुल्लर आदि कर्कश पत्तेसे घिसकर घाव कर फिर लाल घुंघची पोसकर लेप करना। बकरीका दूध, रसाञ्जन और पुटदग्ध हाथीदांतभस्म एकत्र मिलाकर लेप करनेसे टाकमेंभी केश उत्पन्न होता है। क्षुद्राद्य तैल, मालत्याद्य तैल और यष्टि-मध्वाद्य तैल टाक रोगमें प्रयोग करना। पालित्य रोग विनाशके लिये अर्थात् सफेद केश काला करनेके लिये त्रिफला, नील वृक्षका पत्ता, लोहा और भीमराज समभाग क्षाग मूत्रको भावना देकर केशमें लगाना। महानील तैल इस रोगको श्रेष्ठ औषध है। हमारा केशरञ्जन तैल यथाविधि व्यवहार करनेसे टाक्गक, इन्द्रलुप्त और पालित्य रोग आराम होता है। कक्षा, अग्निरोहिणी और इरि-वेल्लिका रोगमें पैत्तिक विसर्पकी तरह चिकित्सा करना। पनसिका रोगमें पहिले स्वेद करना फिर मैनशिल, कूट, हल्दी और देवदारु इन सब द्रव्योंका लेप करना। पकनेपर नस्तरसे पोप आदि निकाल कर व्रणकी तरह चिकित्सा करना। शर्कराव्र्बुदकी चिकित्सा अर्बुद रोगको तरह करना। वृषणकच्छु रोगमें राल, कुड, सेन्धानमक और सफेद सरसो यह सब द्रव्य पीसकर मर्द्दन करना तथा पामा और अहिपूतन रोगकी तरह चिकित्सा करना। हमारा "क्षतारि तैल" और मरिच्याद्य तैल लगानेसेभी रोग आराम होता है। अहिपूतन रोगमें हीराकस, गोरोचन, तुतिया, हरिताल, और रसाञ्जन यह सब द्रव्य कांजीमें पीसकर लेप करना। शूकरदंष्ट्रक रोगमें हल्दी और भीमराजकी जड़ ठण्ढे पानीमें पीसकर गायके घीके साथ सेवन कराना। विसर्प रोगकी तरह अन्यान्य चिकित्सा-

भी करना । न्यच्छ अर्थात् सेंहुआ रोगमें सोहागेका लावा और सफेद चन्दन अथवा सोहागेका लावा और सहत मिलाकर मर्द्दन करना । सिध्म रोगोक्त अन्यान्य प्रलेप भी इसमें प्रयोग कर सकते हैं। समच्छदादि तैल, कुङ्कुमादि घृत, सहचर घृत और हमारा "हिमांशु द्रव" सेंहुआकी अकसीर दवा है ।

क्षुद्र रोगाधिकारोक्त पीड़ा समूहोंकी चिकित्सा संक्षेपमें लिखी गयी ; यह सब चिकित्साके सिवाय रोगका दोष और अवस्था-विशेषादि विचारकर बुद्धिमान चिकित्सक अन्यान्य औषधभी इसमें प्रयोग करें ।

पथ्यापथ्य ।

पीड़ाविशेषका दोषदुष्य विचार कर वही वही दोषके उपशमकारक पथ्य सेवन और उसी दोष-वर्द्धक पथ्यापथ्य समूहोंका त्याग करना चाहिये ।

मुखरोग ।

मुखरोग संज्ञा और निदान ।

ओष्ठ, दन्तवेष्ठ, (मसूढ़ा) दन्त, जिह्वा, तालु, कण्ठ प्रभृति मुखके भीतरी अवयवों में जो सब पीड़ा उत्पन्न होती है उसको मुखरोग कहते हैं। मत्स्य, क्षीर, दही आदि द्रव्य अतिरिक्त भोजन करनेसे वातादि दोषत्रय कुपित हो मुखरोग उत्पन्न होता है। अधिकांश मुखरोग में कफकाही प्राधान्य रहता है ।

ओष्ठगत मुखरोगोंमें वातज ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय कर्कश,

श्याववर्ण, रूच, जड़वत्, सूई गड़ाने की तरह दर्द और कठोर होताहै। पित्तज ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय पीतवर्ण; वेदना, दाह और पाकयुक्त फोड़ियोंसे व्याप्त होता है। कफज ओष्ठ रोग ओष्ठद्वय शीतल, श्वेताभ, गुरु, पिच्छिल, कण्डुयुक्त, वेदनाशून्य और त्वकसम वर्ण पिड़कायुक्त होता है। त्रिदोषज ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय कभी पीला, कभी सफेद और कभी नाना प्रकारकी पिड़कायुक्त होताहै। रक्तकोपज ओष्ठरोगमें ओष्ठद्वय पक्के खजुर फलके रंगकी तरह पिड़का व्याप्त और रक्तस्रावयुक्त होताहै। मांस दोषज ओष्ठरोगमें ओष्ठद्वय गुरु, स्थूल और मांसपिण्डकी तरह ऊंचा तथा ओष्ठप्रान्तद्वयमें क्रिमि उत्पन्न हो क्रमशः बढ़ता है। मेदोजनित ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय भारी, कण्डुयुक्त और घीके उपरीभाग की तरह सफेद रंग होता है तथा सर्व्वदा निर्म्मल स्राव होता रहता है। किसी तरहके आघातसे यदि ओष्ठरोग उत्पन्न हो तो पहिले उसमें फट जाने की तरह या कुठाराघात की तरह वेदना होती है, फिर दोष कुपित हो अन्यान्य लक्षण प्रकाशित होते हैं।

ओष्ठगत मुखरोगके प्रकारभेद और लक्षण।

दन्तवेष्ठ अर्थात् मसूढ़े में जो सब रोग उत्पन्न होता है, उसमें शीताद नामक रोगमें अकस्मात् मसूढ़े से रक्तस्राव होकर दन्तमांस क्रमशः सड़कर दुर्गन्ध, क्लेदयुक्त, कृष्णवर्ण और कोमल हो मसूढ़ा गिर पड़ता है। कफ और रक्तदूषित होनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। दो या तीन दांतके जड़में शोथ होने से उसको दन्तपुप्पुटक रोग कहते है; यह भी कफज व्याधि है। जिस रोगमें दांत हिलता हैं और दन्तमूलसे रक्त पीप निकलता है, उसको दन्तवेष्ठ रोग कहते है। दांतकी खराबीसे यह रोग उत्पन्न

दन्तगत मुखके लक्षण और प्रकार भेद।

होता है। दांतको जड़में दर्द और शोथ को रक्तज व्याधि कहते हैं। जिस रोग में दांत हिले तथा तालु, दांत और ओष्ठ क्लेद-युक्त हो, उसको महाशौषिर कहते है; यह त्रिदोषज रोग है। दन्तमांस गलकर उसमे से खुन निकले तो उसको परिदर कहते है, यह रक्तपित्त और कफकी खराबीसे पैदा होता है। मसूड़ेमें दाहयुक्त फोड़िया होनेसे तथा तज्जन्य दांत गिर पड़नेसे उसको उपकुश कहते है, यह रक्तपित्तज पीड़ा है। मसूढ़ा किसी तरह घिस जानेसे यदि प्रबल शोथ हो या दांत हिले तो उसको वैदर्भ कहते है; यह अभिघातज पीड़ा है। वायुके प्रकोपसे प्रबल यातना सहित जो एक एक अधिक दांत हनुकुहरमें निकलता है, उसको खल्ली वर्द्धन कहते है, निकल आनेपर फिर इसमें किसी तरहकी दर्द नही रहतीहै। यह दांत अधिक उमरमें उठताहै, इससे इसको अक्किल दांत कहते है। कुपित वायु दांतका आश्रय कर क्रमशः विषम और विकटाकार दांत निकलनेसे उसको कराल रोग कहते है; यह असाध्य व्याधि है। हनुकुहरस्थ अखीर दन्त-मूलमें अति पीड़ादायक प्रबल शोथ हो लार निकलनेसे उसको अधिमांस कहते है, यह कफज पीड़ा है। यह सब पीड़ाके सिवाय मसूड़ेमें नाना प्रकार नाड़ीव्रण, नासूर आदि उत्पन्न होता है।

दन्तगत रोग समूहोमें दालननामक दन्तरोगमें दांत विदीर्ण की तरह तकलीफ होती है, यह वातरोग है। क्रिमिदन्तक रोगमे दांतमें काला छिद्र होता है, दन्तमूलमें अतिशय दर्द लिये शोथ तथा उसमें से लारस्राव और अकस्मात् दर्दका बढ़ना यही सब लक्षण लक्षित होते है, यह भी वातपित्तज व्याधि है। भञ्जनक रोगमें मुख टेढ़ा और दांत टूट जाता है; यह वातश्लेष्मज व्याधि है। दन्तहर्ष रोगमें दन्तसमूह शीत, उष्ण, वायु और अम्लस्पर्श

सहन नही कर सकता अर्थात् दांत सुरसुराता है; यह वात पित्तज पोड़ा है। मसूढा दूषित हो मुखके भीतर और बाहर दाह और वेदनायुक्त जो शोथ उत्पन्न होता है; उसको दन्तविद्रधि कहतेहै। इस रोगमें मलोत्पत्ति और स्राव होताहै। विदोर्ण होनेसे इसमेंसे पोपरक्त निकलताहै। वायु और पित्तसे दन्तगत मलशोषित हो कङ्कर को तरह खरस्पर्श होनेसे उसको दन्तशर्करा कहते है, यही दन्तशर्करा फट जानेसे उसके साथ दांतका भी थोड़ा अंश फट जानेसे उसको कपालिका कहते है। इसी पोड़ामें क्रमशः सब दांत गिर पड़ते है। दुष्टरक्त और पित्तसे कोई दांत जल जानेको तरह काला या श्याव वर्ण होनेसे उसको श्यावदन्तक कहते है।

जिह्वागत मुखरोगके लक्षण और निदान।

जिह्वागत रोग समूहोमें वायुजनित जिह्वा स्फुटित, रसास्वादनमें असमर्थ और काटेदार होती है। पैत्तिक रोगमें जिह्वा लाल रंग, दाहजनक और दोर्घाकार कण्टक समूहोंसे व्याप्त होती है। श्लेष्मज जिह्वारोगमें जिह्वा गुरु और सेमरके कांटे की तरह मांसाङ्कुर विशिष्ट होती है। कुपित कफ और रक्तसे जिह्वाके नोचे भयानक शोथ होनेसे उसको अलास कहते है। यह रोग बढ़ जानेसे जिह्वामूल पककर स्तम्भित होता है। ऐसही दूषित कफ रक्तसे जो शोथ जिह्वाके नोचे उत्पन्न हो जिह्वाको उन्नत; तथा शोथ, दाह, कण्डु और लालास्राव होता है। उसको उपजिह्वा कहते हैं।

तालुगत मुखरोगके लक्षण और प्रकारभेद।

तालुगत रोग समूहोमें दुष्टकफ और रक्तसे तालुमूलमें जो शोथ उत्पन्न होताहै वह क्रमशः बढ़कर वायुपूर्ण चर्मपुटके आकृतिको तरह होनेसे उसको गलशुण्ठो कहतेहै। इस रोगके साथ तृष्णा

और काम उपद्रव भी रहता है। कफ और रक्त कुपित हो तालु-मूलमें बनकपासके आकृतिकी तरह तथा दाह और सूचीवेधवत् वेदनायुक्त जो शोथ पैदा होता है उसको तुण्डीकेरी कहते है; यह भी पकजाता है। रक्तदुष्टिसे लालरंग अनतिस्थूल तथा ज्वर और तीव्र वेदना युक्त जो शोथ तालुमें उत्पन्न होता है; उसको अध्रुव कहते है। कफप्रकोपमे तालुमें थोड़ी वेदनायुक्त और कछुवेकी तरह शोथ क्रमशः उत्पन्न हो देरसे बढ़ता है; उसको कच्छपरोग कहते हैं। रक्तप्रकोपसे तालुमें मांसाङ्कुर उत्पन्न होनेसे; उसको रक्तार्व्वुद कहते है। कफदुष्टिसे तालुमें मांसवृद्धि होतो उसको मांससंघात कहते है। इसमें दर्द किसी तरहको नही होती। दुष्ट कफ और मेदसे तालुमें बेर की तरह और वेदनाशुन्यशोथको तालु-पुप्पुट कहते है। जिस तालुरोगमें तालु बारबार सूखता रहता है; विदीर्ण होनेकी तरह दर्द और रोगीको श्वास उपस्थित होतो उसको तालुशोष कहतेहै। वायुके प्रकोपसे यह रोग पैदा होताहै। पित्तके अधिक प्रकोपमे तालु पकजानेसे उसको तालुपाक कहतेहै।

कण्ठगतमुखरोगके लक्षण और प्रकारभेद।

वायु पित्त और कफ यह तिन दोषके प्रकोपसे कण्ठमें नाना-प्रकारके रोग पैदा होते है। उसमें अधिकांश हो शस्त्रसाध्य और असाध्य जानना। कण्ठरोग समूहोमें रोहिणी और अधिजिह्व नामक दो रोग आराम नही होता। यहा हम केवल वही दो रोगके लक्षण आदि लिखते है। कण्ठरोगमें कुपित दोषसे मांस और रक्त दूषित हो जीभके चारो तरफ मांसाङ्कुर उत्पन्न होता है, उसको रोहिणी कहते है। वही सब मांसाङ्कुर अधिक बढ़कर क्रमशः कण्ठरोध हो रोगीके प्राणनाशकी सम्भावना हैं। अधिजिह्व जिह्वाके उपरीभागमें उत्पन्न होता है।

जिह्वाके अग्रभाग की तरह इसकी आकृति होती है, तथा पकने-पर यह रोग असाध्य हो जाता है।

मुखके भीतर जो सब रोग उत्पन्न होता है उसको सर्व्वसर मुखरोग कहते हैं। वायुके आधिक्यसे मुखभरमें सूचिवेध की तरह वेदनायुक्त छोटी छोटी फोड़िया पैदा होती है। पित्ताधिक्यसे वही सब फोड़िया पीत या रक्तवर्ण हो उसमें दाह होता है; कफा धिक्यसे फोड़ियोंमें अल्प वेदना, कण्डु और रङ्ग बदन की तरह होता है।

सर्व्वसर मुखरोग।

वातज ओष्ठ रोगमें तेल या घीमें मोम मिलाकर मर्द्दन करना। लोहबान, राल, गुगुल, देवदारु और जेठी-मध (मुलेठी) इन सब द्रव्योंका चूर्ण थोरे थोरे ओठपर घिसना। मोम और गुड़के साथ राल, तेल या घीमें पकाकर लेप करनेसे ओठका सूचीवेधवत् दर्द, कर्कशता और पीप बहन जाना बन्द होता है। पित्तज ओष्ठ रोगमें तिक्त द्रव्यका पान भोजन तथा शीतल द्रव्यका प्रलेप करना। पित्तज विद्रधिकी तरह इसकी चिकित्सा करना चाहिये। कफज ओष्ठ रोगमें त्रिकटु, सज्जीखार और यवाखार यह तीन द्रव्यमें सहत मिलाकर ओष्ठमें घिसना। मेदोजनित ओष्ठ रोगमें अ[illegible]का सेंक करना उपकारी है। प्रियङ्गु, त्रिफला और लोध इन सबका चूर्ण सहत मिलाकर ओष्ठमें घिसना। ओष्ठके घावमें राल, गेरू, धनिया, तेल, घृत, सेन्धानमक और मोम एकत्र पकाकर लेप करना। त्रिदोषज ओष्ठ रोगमें जिस दोषका अधिक प्रकोप हो पहिले उसीकी चिकित्सा कर फिर दूसरे दोषोंकी चिकित्सा करना चाहिये। पक जानेपर व्रणरोग की तरह चिकित्सा करना।

ओष्ठगत मुखरोग चिकित्सा।

दन्तरोग समूहों में शीताद रोगमें शांठ, सरसो और त्रिफलाके काढ़ेका कुल्ला करना। हीराकस, लोध, पीपल, मैनसिल, प्रियङ्गु, तेजपत्ता इनका चूर्ण सहत मिलाकर लेप करनेसे शीताद रोगका सड़ा मांस निकल जाता है। कूठ, दारुहल्दी, लोध, मोथा, बराहक्रान्ता, मकवन, चाभ और हल्दी इन सबके चूर्णसे दांत घिसनेसे रक्तस्राव, कण्डु और दर्द आराम होता है। दन्तपुप्पुट रोगको प्रथम अवस्थामें रक्तमोक्षण और मधु मिलाकर पञ्च लवण और जवाक्षार चूर्ण घिसना उपकारी है। चलदन्त रोगमें बड़, पीपल प्रभृति दूधवाले वृक्षके काढ़ेसे कुल्ला करना या मौलसरीका कच्चा फल चिबाना। दन्ततोद और दन्तहर्ष रोगमें तैलादि वायु नाशक द्रव्यका कुल्ला करना। मौलसरी छालके काढ़ेका कुल्ला और पीपल चूर्ण, घी और सहत एकमें मिलाकर मुहमें धारण करनेसे दन्तशूल आराम होता है। दन्तवेष्ट रोगमें रक्तमोक्षण, बड़ और अश्वत्थादि वृक्षके काढ़ेमें घी, सहत और चिनी मिलाकर कुल्ला करना तथा लोध, लालचन्दन, मुलेठी और लाह इनका चूर्ण सहतमें मिलाकर आहिस्ते आहिस्ते घिसना विशेष उपकारी है। शैशिर रोगमें रक्त मोक्षण बटादिके काढ़ेका कुल्ला करना और लोध मोथा, रसाञ्जन चूर्ण सहतमें मिलाकर लेप करना। परिदर और उपकुश रोगको चिकित्सा शीताद रोगको तरह करना चाहिये। उपकुश रोगमें पीपल, सफेद सरसो और शांठ गरम पानीमें पीस कर कुल्ला करना। दन्तवैदर्भ, अधिदन्त, अधिमांस और शुषिर रोग शस्त्रसाध्य है। दन्तनाली रोगमें जिस दांतमें नाली हो वह दांत उखाड़ डालना किन्तु उपरका दांत उखाड़ना उचित नहीं है। जावित्री, माजूफल और कुटकी इनका काढ़ा मुखमें धारण

दन्तगत मुखरोग चिकित्सा।

करनेसे और लोध, खैर, मजीठ, मुलेठी, इन सब द्रव्यके साथ तेल पकाकर लगानेसे दन्तनाली आराम होता है। दन्तशर्करा रोगमें दन्तमूलमें किसी तरह की तकलीफ न हो इस ख्यालसे काटना तथा सहत मिला लाहका चूर्ण घिसना। कपालिका रोगकी चिकित्सा दन्तहर्षकी तरह करना। क्रिमिदन्तक रोगमें हींग गरम कर लेप करना। वृहती, कुकरशोंका, एरण्डमूल और कण्ट-कारीके काढ़ेमें तेल मिलाकर कुल्ला करना। द्रोण पुष्पका रस, समुद्र फेन, सहत और तेल एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे दांतके कीड़े नष्ट होते हैं। भेंडुड़की जड़ चिबाकर दांतके नीचे दबा रखनेसे कीड़ा गिरजाता है। कंकड़का पैर पीसकर दांतमें लेप करनेसे नोदमें दांतका घिसना दूर होता है; अथवा कंकड़ेका पैर गायके दूधमें औटाना दूध खूब गाढ़ा होनेपर दोनो पैरमें लेपकर सोना, इससे भी दन्तशब्द दूर होता है। दन्तरोगाशनि चूर्ण, दन्तसंस्कार चूर्ण और हमारा "दन्तधावन चूर्ण" सब प्रकारके दन्तरोगको उत्कृष्ट औषध है।

जिह्वागत मुखरोग चिकित्सा।

वातज जिह्वा रोगमें वातज ओष्ठ रोगकी चिकित्सा करना चाहिये। पैत्तिक जिह्वा रोगमें ककंश पत्तेसे जिह्वा घिसकर खून निकालना, फिर सतावर, गुरिच, बिदारीकन्द, सरिवन, पिठवन, असगन्ध, कांकड़ाशृङ्गी, वंशलोचन, पद्मकाष्ठ, पुण्डरिया, बरियारा, पीत बरियारा, द्राक्षा, जीवन्ती और मुलेठी इन सब द्रव्यका चूर्ण और काढ़ा जिह्वामें घिसना। श्लैष्मिक जिह्वा रोगमें भी इसी तरह कर्कश पत्तेसे जिह्वा घिसकर खून निकालना चाहिये फिर पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल, सोंठ, गोलमरिच, गजपिप्पली, समालु का बीज बड़ी इलायची, अजवाइन, इन्द्रयव, अकवन, जीरा,

सरसो, घोड़नोमका फल, हींग, भारंगी, मूर्व्वामूल, अतीस, बच, विडङ्ग और सेंधानमकके काढ़ेका कुल्ला करना । मानभस्म, सेंधानमक और तेल एकत्र मिलाकर जीभमें घिसना तथा बड़ा नीबू आदि अम्ल द्रव्यका केशर थोड़ा सेहुड़का दूध मिलाकर चिबानेसे जिह्वाको जडता दूर होतीहै । उपजिह्वा रोगमें कर्कश पत्तेसे जिह्वा घिसकर फिर जवाखार घिसना अथवा त्रिकटु, बड़ीहर्रे और चितामूल इन सबका चूर्ण घिसना या इन सब द्रव्योंसे तेल पकाकर लगानेसेभी उपजिह्वा रोग आराम होता है ।

तालुरोग ।

प्राय सब तालुरोग बिना नस्तरके आराम नहीं होते । जिसमें गलशुण्ठी रोगमें हरसिंगारको जड़ चिबानेसे अथवा बच, अतीस, अकवन, रास्ना, कुटकी, नीमकी छाल इसके काढ़ेका कुल्ला करनेसे आराम होता है । वातज रोहिणी रोगमें खून निकाल कर नमक घिसना और गरम तेलका कुल्ला करना हितकर है । पैत्तिक रोहिणी रोगमें लाल चन्दन, चिनी और सहत एकत्र मिलाकर घिसना तथा लाह और फालसेके काढ़े का कुल्ला करना । श्लैष्मिक रोहिणी रोगमें झूल (मकडीका जाला) और कुटकी चूर्ण घिसना तथा अपराजिता, विडङ्ग, दन्ती सेन्धानमक तेलमें औटाकर इसका नास लेना और कुल्ला करना । रक्तज रोहिणीमें पैत्तिक की तरह चिकित्सा करना । अधिजिह्व रोगकी चिकित्सा उपजिह्वकी तरह जानना ; सोंठ, मिरच आदि तीक्ष्ण द्रव्य, लवण और उष्णद्रव्य घिसनेसे अधिजिह्व रोग शान्त होता है । कालक चूर्ण, पीतक चूर्ण, क्षारगुड़िका और यवक्षारादि गुटी व्यवहार से यावतीय कण्ठरोग आराम होता है ।

सर्व्वसर मुखरोगमें परवरका पत्ता, जामूनका पत्ता, आमका

सर्व्वसर मुखरोग। पत्ता और मालती पत्तेके काढ़ेसे कुल्ला करना। जाविची, गुरिच, द्राक्षा, जवासा दारुहल्दी और त्रिफलाके काढ़ेमें सहत मिलाकर कुल्ला करनेसे मुखके भीतरका घाव दूर होता है। पीपल, जीरा, कूठ और इन्द्रयवका चूर्ण मुखमें रखनेसे भी मुखपाक, व्रण, क्लेद और दुर्गन्ध दूर होता है। सप्तच्छदादि, पटोलादि क्वाथ, खदिर वटिका, वृहत् खदिर वटिका, वकुलाद्य तैल सब प्रकारके मुखरोगमें विचारकर प्रयोग करना चाहिये।

रोग विशेषमें दोषका आधिक्य विचार कर वही दोष नाशक पथ्यापथ्य पथ्य देना। साधारणतः कफनाशक द्रव्य मुख रोगमें विशेष उपकारक है।

मुखरोगमें अधिक खट्टा, मछली, दही, दूध, गुड़, उड़द, निषिद्ध कर्म्म। और कठिन द्रव्य भोजन, अधोमुख शयन, दिवानिद्रा और दतुवनसे मुख धोना अहितकर है।

कर्णरोग।

कर्णगत वायु चारो तरफ घूमनेसे कानमें कष्टदायक दर्द उत्पन्न होता है और उसके साथ जो दोष कर्णशूल लक्षण। रहता है उसी दोषके लक्षण प्रकाशित होते है, इसीको कर्णशूल कहते हैं। कानमें भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख आदिके शब्दकी तरह नानाप्रकारके शब्द सुनाई देनेसे उसको कर्णनाद कहते हैं। केवल वायु अथवा वायु कफ यही दो दोषसे

शब्द वहा स्रोत अवरुद्ध होकर वाधिर्य रोग पैदा होता है; इस रोगमें श्रवण शक्ति नष्ट हो जाती है। कानमें बांसुलीकी तरह शब्द सुनाई देनेसे उसको कर्णक्ष्वेड कहते हैं। मस्तकमें आघात, जलमग्न होना अथवा कानमें फोड़ा हो पक जानेपर कानसे पोप, रस, पानी आदि निकलनेसे उसको कर्णस्राव कहते हैं। सर्व्वदा कानमें खुजली हो तो उसको कर्णकण्डु कहते हैं। पित्तकी उष्मासे कानका कफ सूखकर कानमें एक प्रकार मल पैदा होता है उसको कर्णगूथ कहते है। स्नेह पदार्थादि प्रयोगसे कर्णगूथ द्रव हो मुख और नाकसे निकल जाने पर उसको कर्णप्रतिनाह कहते हैं। इसके साथही अर्धावभेदक उपस्थित होता है। पित्त प्रकोपसे कान क्लेदयुक्त और पूतिभावापन्न होनेसे उसको कर्ण-पाक जानना। चाहे जिस कारणसे कानसे दुर्गन्ध पीप आदि निकलनेसे उसको पूतिकर्ण कहते है। कानमें मांस रक्तादि सड़-कर कोड़े पैदा होनेसे उसको क्रिमिकर्णक रोग कहते हैं। इस पीड़ाके सिवाय विद्रधि, अर्व्वुद और कीट प्रवेश या आघातादि कारणोंसे नानाप्रकार की पीड़ा कानमें उत्पन्न होती है।

कर्णरोग चिकित्सा।

अदरखका रस आधा तोला, सहत चार आनेभर, सैन्धानमक एक रत्ती और तिल तेल चार आनेभर यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर कानमें भर-नेसे कर्णशूल, कर्णनाद, वाधिर्य्य और कर्णक्ष्वेड रोग आराम होता है। लहसन, अदरख, सैजनकी छाल, मूली, करेला इन सबमें कोई एकका रस थोड़ा गरम कर कानमें डालनेसे दर्द दूर होताहै। अकवन पत्तेके पुटमें सेंहुड़का पत्ता जलाकर अथवा अक-वनके पत्तेमें घी लगाकर आगमें झुलसाना फिर उसीके गरम रससे कान भरदेनेसे कर्णशूल आराम होता है। कर्णनाद, कर्णक्ष्वेड

और बाधिर्य्य रोगमें कड़ुवा तेल अथवा वात रोगोक्त महामाष तेल कानमें डालना। गुड़मिश्रित सोंठके काढ़ेका नास लेना विशेष उपकारी है। वट, पीपल, पाकड, गुल्लर और बेतसके छालका चूर्ण, कयेथका रस, और सहत एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे पूतिकर्ण दूर होता है। कर्णगूथ रोगमें पहिले तेलसे मल फुलाना फिर शलाकासे उसको निकाल डालना। कानके कीड़े दूर करनेके लिये हुड़हुड, निसिन्दा और ईशलाङ्गलाके जड़के रसमें त्रिकटु चूर्ण मिलाकर कानमें डालना। सरसोंका तेल डालना और बैंगनका धूंआ लगाना क्रिमिकर्णकमें विशेष उपकारी है।

कर्णवेधज शोथ।

कर्णवेधके समय उचित स्थानमें कर्णविद्ध न होनेसे शोथ और दर्द होता है, इसमें जेठोमध, जौ, मजीठ और रेंडका जड़ एकत्र पीसकर घी और सहत मिला लेप करना। पकने पर व्रण रोगकी तरह चिकित्सा करना।

शास्त्रीय औषध।

भैरव रस, इन्द्रवटी, मारिचादि वटी, दीपिका तेल, अपामार्ग चार तेल, दशमूली तेल, बिल्वतेल, जम्बाद्य तेल, शम्बूक तेल, निशातेल और कुष्ठाद्य तेल; रोगविशेष पर विचार कर देना।

पथ्यापथ्य।

कर्णरोग समूहोंके दोषका आधिक्य विचार कर पथ्यापथ्य स्थिर करना। कर्णनाद, कर्णक्ष्वेड़, बाधिर्य्य आदि वायुप्रधान कर्णरोगमें वातव्याधिकी तरह और कर्णपाक, कर्णस्राव आदि श्लेष्मप्रधान रोगमें आमवातादि पीड़ाके तरह पथ्यापथ्य व्यवस्था करना।

नासारोग ।

पीनस लक्षण ।

जिस रोगमें कफ वायुसे शोषित हो नासिनाको रुद्ध कर धूँआ निकलनेकी तरह यातना अनुभव हो, तथा नाक कभी सूखी, कभी गीली होती रहे और घ्राणशक्ति, आस्वाद शक्ति नष्ट हो जाय, उसको पीनस रोग कहते हैं। पीनसके अपक्कावस्थामें शिरका भारीपन, अरुचि, पतला स्राव, स्वरकी क्षीणता और नासिकासे बार बार पानी निकलताहै। पकनेपर कफ घना हो नाकके छिद्रमें विलीन होकर स्वर साफ होताहै, किन्तु अपक्कावस्थाके कई एक लक्षण इसमें मिले हुए रहते है। दुष्ट रक्त, पित्त और कफसे वायु तालुमूलमें दूषित और पूतिभावापन्न हो मुख और नाकसे निकलनेपर उसको पूतिनस्य कहते हैं। जिस रोगमें नाकके दुष्टपित्तसे नाकमें पिड़का समूह और दारुण घाव हो अथवा जिस रोगमे नासिका पूतिभावापन्न और क्लेदयुक्त हो उसको नासापाक कहते हैं। वातादि दोषोंसे दूषित होनेपर अथवा ललाटमें किसी तरहसे चोट लगनेसे पीप रक्त निकलता है उसको पूयरक्त रोग कहते है। शृङ्गाटक नामक नासा रोग में मर्म्मस्थानका कफानुगत वायु दूषित होनेसे नाक जोरसे बोलती है उसको क्षवथु (छींक) कहते है। तेजवस्तु सूंघना, सूर्य्य दर्शण, बत्ती डालनेसे भी छींक आती है, उसको आगन्तुक क्षवथु कहते हैं। मस्तकमे पहिलेका सञ्चित गाढ़ा कफ सूर्य्यकी गरमी या पित्त से विदग्ध होनेपर लवण रसयुक्त नाकसे निकलता है इसको भ्रंशथु रोग कहते है। जिस नासा रोगमे नासिकामें अत्यन्त दाह तथा

अग्निशिखा और धूंआ निकलनेकी तरह दर्दके साथ गरम श्वास निकले तो उसको दीप्त कहते हैं। वायु और कफसे निश्वास मार्ग बन्द होजानेपर उसको प्रतिनाह कहतेहै। नासिकासे गाढ़ा या पतला पीला या सफेद कफ निकले तो उसको नासास्राव कहतेहैं। नासा स्रोत और तद्गत कफ वायुसे शोषित और पित्तसे प्रतप्त होनेपर अति कष्टसे निश्वास प्रश्वास निकलता है; इसको नासाशोष कहते हैं। मलमूत्रादि वेग धारण, रात्रि जागरण, दिवानिद्रा, शीतल जलका अधिक व्यवहार, शैत्यक्रिया, ओसमें फिरना, मैथुन, रोदन आदि कारणोंसे मस्तकका कफ घनीभूत होनेपर वायु कुपित हो तुरन्त प्रतिश्याय रोग पैदा होताहै। तथा वायु, पित्त, कफ और रक्त पृथक पृथक या मिलकर क्रमशः मस्तकमें सञ्चित और अपने अपने कारणोंसे कुपित होनेसे कालान्तरमें प्रतिश्यायरोग उत्पन्न होताहै। प्रतिश्याय होनेसे पहिले छींक, शिरका भारीपन, स्तब्धता, अङ्गमर्द, रोमाञ्च, नाकसे धूंआ निकलनेकी तरह अनुभव, तालुमें जलन और नाक मुखसे पानीका स्राव आदि पूर्व्वरूप प्रकाशित होते है। वातिक प्रतिश्यायमें नासिका विवद्ध और आच्छादितकी तरह मालूम होता है, पतला स्राव और गला, तालु, ओष्ठमें शोष ललाटमे सूई गड़ानेकी तरह दर्द, बार बार छींक आना, स्वरभङ्ग और नाक मुखसे मानो सधूम अग्नि निकलताहै। रोगीभी काला, पाण्डुवर्ण और कृश हो जाता है। श्लैष्मिक प्रतिश्यायमें नाकसे पाण्डुवर्ण और शीतल कफ बहुत निकलताहै, रोगीका शरीर और दोनों आंखे शुक्लवर्ण, शिर भारी, कण्ठ, ओष्ठ, तालु और मस्तकमें अत्यन्त खजुली होती है। प्रतिश्याय रोग पक्क या अपक्क चाहे जिस अवस्थामे अकारण बार बार उत्पन्न और बार बार विलीन होता रहे तो उसको सान्निपातिक जानना। रक्तज प्रतिश्यायमें

नाकसे रक्तस्राव, आंखोंका लाल होना, मुख और निश्वासमें दुर्गन्ध तथा घ्राणशक्तिका नाश हो जाता है।

साध्यासाध्य लक्षण और परिणाम।

जिस प्रतिश्यायके निःश्वासमें दुर्गन्ध, घ्राण शक्तिका लोप और नासिका कभी आर्द्र, कभी सूखी, कभी बन्द, कभी विवृत होनेसे उसको दुष्ट और कष्टसाध्य जानना। वक्तपर दवा न करनेसे प्रतिश्याय दुष्ट और असाध्य हो जाता है तथा उसमें छोटे छोटे कोड़े पैदा होनेसे क्रिमिज शिरोरोगके लक्षण समूह प्रकाशित होते है। प्रतिश्याय अधिक गाढ़ा होनेसे क्रमशः वाधिर्य्य, नेत्र हीनता, नानाविध उत्कट नेत्ररोग, घ्राणशक्तिका नाश, शोथ, अग्निमान्द्य, कास और पीनस रोग उत्पन्न होता है।

नासार्शः।

अर्शोरोगोक्त मांसाङ्कुरकी भांति नाकमें भी एक प्रकार मांसाङ्कुर उत्पन्न होता है उसको नासार्शः कहते है। चलित भाषामें इसको "नासारोग" या नासाज्वर नामक एक प्रकार रोग होता है इसमें नाकके भीतर लाल रङ्गका एक शोथ हो उसके साथ प्रबल ज्वर, गरदन, पीठ, और कमरमें दर्द, सामनेके तरफ झुकनेसे तकलीफ होना, यही सब लक्षण प्रकाशित होते है, यह भी एक प्रकार नासार्शः रोगके अन्तर्भूत है।

नासारोग चिकित्सा।

पीनसरोग उत्पन्न होतेही गुड़ और दहीके साथ गोलमिरचका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे विशेष उपकार होताहै। कायफल, कूठ, काकड़ाशिङ्गी, शोंठ, पीपल, मिरच, जवासा और कालाजीरा, इनका चूर्ण या काढ़ेमें अदरखका रस मिलाकर सेवन करनेसे पीनस, स्वरभेद, नासास्राव, हलीमक आदि रोग शान्त होते है। व्योषाद्य

चूर्ण नासा रोगमें विशेष उपकारी है। इन्द्रयव, हींग, मिरच, लाह, तुलसी, कुटकी, कूठ, बच, सैजनकी बीज और विड़ङ्ग चूर्णका नास लेनेसे पूतिनस्य रोग आराम होता है। शिग्रुतैल और व्याघ्री तैलका नास भी पूतिनस्यमें उपकारी है। नासापाक रोगमें पित्तनाशक चिकित्सा करना तथा वटादि चोरि वृक्षकी छाल पीसकर घी मिलाकर लेप देना। पूयरक्त रोगमें रक्तपित्त नाशक नस्य ग्रहण और उसी रागोक्त औषधादि सेवन करना। क्षवथु रोगमें शोंठ, कूठ, पीपल, बेलकी जड़, द्राक्षा इनका काढ़ा और कल्कके साथ यथाविधि घृत, गुग्गुलु और मोम मिलाकर धूम देना चाहिये। घीका भूंजा आंवला कांजीमें पीसकर मस्तकमें लेप करनेसे नाकसे खूनका जाना बन्द होता है। प्रतिश्याय रोगमें पीपल, सैजनकी बीज, विड़ङ्ग और मिरचके चूर्णका नास लेना, शटी, भूई आंमला और त्रिकटु इनका चूर्ण घी और पुराने गुड़के साथ सेवन करना अथवा पुटपक्व जयन्ती पत्र तेल और सैन्धानमक के साथ रोज सेवन करना चाहिये। चित्रक हरीतकी और महा-लक्ष्मीविलासरस प्रतिश्याय रोगकी श्रेष्ठ औषध है। नासार्श रोगमें करवीराद्य तेल और चित्रकतैल प्रयोग करना। नासा रोगमें सूईसे नाकके भीतरका रक्तपूर्ण शोथ छेदकर खून निकालना, फिर नमक मिला अकवनका दूध या सरसोंका तेल अथवा तुलसीके पत्तेके रसकी नास लेना। ज्वर न छूटनेसे ज्वरनाशक औषध सेवन करना। आहवारि रस और चन्दनादिलौह नासा ज्वरका उत्कृष्ट औषध है। दूर्व्वादि तेलका नास लेना इसमें विशेष उपकारी है। जिनको अकसर यह रोग होता है वे रोज दतुवनके समय मसूढ़ेसे थोड़ा खून निकाले और सुंघनी सुंघनेसे विशेष उपकार होता है।

पीनस, प्रतिश्याय प्रभृति कफ प्रधान नासा रोगमें कफ शान्ति-कारक पथ्य देना। थोड़ाभी कफका उपद्रव हो तो भात न देकर रोटी या इससे भी अधिक रूखा और हलका पथ्य देना। पूय रक्त और नासापाक प्रभृति पित्तप्रधान नासा रोगमें पित्तनाशक और रक्तपित्त शान्ति-कारक पथ्य देना। नासाज्वरमें अधिक रूक्षक्रिया उचित नहीं है, तथापि ज्वर प्रबल रहनेसे पहिले २।१ दिन भात न देकर हलका पथ्य देना अच्छा है।

पथ्यापथ्य ।

नेत्ररोग ।

धूपादिसे सन्तप्त हो तुरन्त स्नान करना, बहुत देरतक दूरकी वस्तुको देखना, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण; आंखमें पसीना, धूलि और धूमका प्रवेश, वमनका वेग रोकना या अतिरिक्त वमन, रातको पतला पदार्थ भोजन, मल, मूत्र और अधोवायुका वेग धारण, सर्व्वदा रोना, क्रोध या शोक, शिरमें चोट लगना, अतिशय मद्यपान, ऋतुविपर्य्यय, अश्रुवेग धारण आदि कारणोंसे वातादि दोष कुपित हो नाना प्रकार नेत्ररोग पैदा होते हैं। नेत्ररोग बहुसंख्यक हैं, जिसमें अधिकांश ही शस्त्रसाध्य और असाध्य है। इससे साधारणतः कई एक औषध और साध्य नेत्ररोग की चिकित्सा यहां लिखते हैं।

नेत्ररोग निदान ।

नेत्राभिष्यन्द या "आंख आना" यह रोग अकसर दिखाई देता हैं; वातज, पित्तज, कफज और रक्तज भेद से यह रोग ४ प्रकार है। वातज अभिष्यन्द में आंखमें सूई गड़ानेकी तरह दर्द, जड़ता, रोमहर्ष, आंखका

नेत्राभिष्यन्द ।

गड़ना, रूक्षता, शिरोवेदना, शुष्कभाव और शीतल अश्रुपात यही सब लक्षण प्रकाश होते हैं। पित्तज अभिष्यन्द से आंखमें जलन, घाव, शीतल स्पर्शादि की इच्छा, आंखसे धूम निकलनेकी तरह दर्द और अधिक अश्रुपात आदि लक्षण लक्षित होते हैं। कफज अभिष्यन्दमें उष्ण स्पर्शादिकी इच्छा, भारबोध, चक्षुमें शोथ, कण्डू, कीचड़ आना, आंख शीतल और बार बार पिच्छिल स्राव, यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं। रक्तज अभिष्यन्दके लक्षण पित्तज अभिष्यन्दकी तरह जानना। अभिष्यन्द रोग क्रमशः बढ़जानेसे अधिमन्थ होजाता है, उसमें अभिष्यन्दके सम्पूर्ण लक्षण रहनेके सिवाय आंख और मस्तकका अर्द्धभाग मानो उत्पाटित और मथित होना मालूम होता है। आंखें फूलकर पके गुल्लरकी तरह लाल रंग, कंडूविशिष्ट, चिचड़ैली, शोथयुक्त और पकजाने पर उसको नेत्रपाक रोग कहते हैं। अधिक खट्टा खानेसे पित्तप्रकुपित हो अम्लाध्युषित नामक एक प्रकार नेत्ररोग उत्पन्न होता है, इसमें आंखका भीतरी भाग ईषत् नीलवर्ण और प्रान्तभाग लालरंग हो पकजाता है तथा दाह और शोथ बराबर बना रहता है।

रात्रान्ध पीड़ा।

निरन्तर उपवास या अल्प भोजन, तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य भोजन, अग्नि और धूप लगाना, सफेद रोशनी देखना, अतिरिक्त परिश्रम, रात्रि जागरण अतिशय मैथुन या अवैध उपायसे शुक्रपात, अत्यन्त चिन्ता, अधिक क्रोध या शोक और प्रमेह या और कोई बिमारीसे बहुत दिन तक भोगनेके सबब धातुक्षय प्रभृति कारणोंसे दृष्टिशक्ति कम हो जाती है। इसमें दूरकी वस्तु या छोटी वस्तु दिखाई नहीं देता अथवा रातको कोई चीज नजर नहीं आता है। रातको दिखाई न देनेसे उसको रात्रान्ध (रतौंधी) कहते हैं।

अभिष्यन्द चिकित्सा।

कनैलका नरम पत्ता तोड़नेसे जो रस निकलता है, वह आंखमें लगानेसे अथवा दारुहल्दी का काढ़ा किम्वा स्तनदूधमें रसाञ्जन घिसकर आंखमें लगानेसे अभिष्यन्दका अश्रुस्राव, दाह और दर्द आराम होता है। सैन्धव, दारुहल्दी, गेरुमिट्टी, हरीतकी और रसाञ्जन, एकत्र मर्द्दन कर आंखके चारो तरफ लेप करनेसे आंखका शोथ और दर्द शान्त होता है। अथवा गेरुमिट्टी, लाल चन्दन, शोंठ, सफेद मिट्टी और वच, पानीमें पीसकर लेप करनेसे रक्ताभिष्यन्द आराम होता है।

हमारा नेत्रबिन्दु अभिष्यन्दकी श्रेष्ठ दवा है।

आंखें लाल होनेसे फिटकिरीका पानी या गुलाब जल आंखमें देना तथा हमारा "नेत्रबिन्दु" सब प्रकार के नेत्राभिष्यन्दकी श्रेष्ठ औषध है। पोस्तकी ढेंडी उबाला पानीका स्वेद करनेसे आंखका शोथ आराम होता है। नेत्रपाक, अधिमन्थक आदि रोगमें भी यही सब औषध प्रयोग करना। शिरमें दर्द हो तो शिरोरोगोक्त कई औषध और महाढशमूल आदि तेल व्यवहार करना।

नेत्ररोग चिकित्सा।

नेत्ररोग पक जानेसे अर्थात् शोथ, दर्द, कण्डू, अश्रुपात प्रभृति छूट जानेसे अञ्जन लगाना चाहिये। हल्दी, दारु हल्दी, मुलेठी, द्राक्षा और देवदारु यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें पीसकर अञ्जन करना। बबूल का काढ़ा गाढ़ाकर सहत मिलाकर अञ्जन करनेसे आंखमें पानी जाना बन्द होताहै। बेलके पत्तेका रस आधा तोला, सैन्धा नमक २ रत्ती और गायका घी ४ रत्ती ताम्बेके बरतनमें कौड़ीसे घिसकर आंचमें गरम करना, फिर स्तनदूध मिलाकर अञ्जन लगानेसे आंखका शोथ, रक्तस्राव, दर्द और अभिष्यन्द आराम होता है। चन्द्रोदय

और बृहत् चन्द्रोदयवर्त्ती, चन्द्रप्रभावर्त्ती तथा नागार्ज्जुन अञ्जन लगानेसे नाना प्रकारके चक्षुरोग शान्त होते हैं। विभीतक्यादि, वासकादि और बृहत् वासकादि काढ़ा, महात्रिफलाद्य घृत, नयन-चन्द्र लौह आदि औषध नेत्ररोगमें विचार कर प्रयोग करना। नेत्र रोगमें सहत और त्रिफलाचूर्ण सेवनकरनेसे विशेष उपकार होता है।

दृष्टिशक्तिकी दुर्ब्बलतामें हमारा केशरञ्जन तैल।

दृष्टिशक्तिकी दुर्व्वलतामें महात्रिफलाद्य घृत, अश्वगन्धा घृत, बृहत् छागलाद्य घृत, मकरध्वज, विष्णुतैल नारायण तैल और हमारा "केशरञ्जन तैल" आदि वायु नाशक और पुष्टिकर औषध प्रयोग करना। रात्रान्धता, (रतौंधो)में भी यही सब औषध सेवन करना, या रसाञ्जन, हल्दी, दारुहरिद्रा. मालती पत्र और नीमके पत्तेको गोमयके रसमें बत्ती बनाकर अञ्जन करना। रोज शामको पानका रस ३।४ बूंद आंखमें डालनेसे रतौंधी आराम होता है। पान या केलेके फलमें जुगनू कीड़ा रोगीको बेमालूम खिलानेसे भी रतौंधी आराम होता है।

पथ्यापथ्य।

अभिष्यन्द आदि रोगमें लघु, रुक्ष और कफनाशक द्रव्य भोजन कराना। ज्वरादि उपसर्ग हो तो लङ्घन कराना। मछली, मांस, खट्टा, शाक, उरद, दही और गुरुपाक द्रव्य भोजन तथा स्नान, दिवानिद्रा, अध्ययन, स्त्रीसङ्गम, धूपमें फिरना आदि अनिष्टकारक है।

दृष्टिदौर्व्वल्य और रतौंधी रोगमें पुष्टिकर, स्निग्ध और वायु-नाशक द्रव्य भोजन करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।

रुक्षसेवा, व्यायाम, रौद्रादिका आतप सेवन, तेज रोशनी देखना, परिश्रम, पर्य्यटन, अध्ययन स्त्री-सहवास आदि धातुक्षयकारक कार्य्य इस रोगमें अनिष्टकारक हैं।

शिरोरोग।

शिरोरोग संज्ञा।

शूलवत् वेदनाकी तरह मस्तकमें जो रोग पैदा होताहै, उसको शिरोरोग कहते हैं। वातज शिरोरोग में मस्तक में अकस्मात् दर्द होता है, रातको यह दर्द बढ़ने पर शिरमें कपड़ा बांधना और स्नेह स्वेद करनेसे दर्द शान्त होता है। पित्तज शिरोरोग में मस्तक जलते हुए अंगारे की तरह व्याप्त, आंख नाकमें धूंआ निकलने की तरह तकलीफ होतीहै। यह शैत्यक्रियासे और रातको कुछ शान्ति होता है। कफज शिरोरोग में मस्तक कफलिप्त, भारी, बंद रहनेको तरह दर्द और शीतल स्पर्श तथा दोनो आंखे फूल जाती है। सन्निपातज शिरोरोग में वही सब लक्षण मिले हुए मालूम होते है। रक्तज शिरोरोग में पित्तज शिरोरोगके लक्षण उपस्थित होते है और मस्तक में भयानक दर्द होता है।

कफज लक्षण

शिरका रक्त, चर्व्वी और वायु अतिरिक्त क्षय हो भयानक कष्टदायक और कष्टसाध्य शिरःशूल पैदा होता है; उसको क्षयज शिरोरोग कहते हैं। क्रिमिज शिरोरोग में कोड़े पैदा होते है, इससे दर्द, सूची वेधवत् यन्त्रणा, टनटनाहट और नाकसे पानी मिला हुआ पीप स्राव होता है।

सूर्य्यावर्त्त लक्षण।

सूर्य्योदयके वक्त जिस शिरोरोग में आंख और भौंमें थोड़ी थोड़ी दर्द आरम्भ हो तथा सूर्य्य जैसे जैसे ऊपर उठे दर्द भी वैसही बढ़ने लगे, फिर सूर्य्य जितना पश्चिम की तरफ उतरते जाय वैसही दर्द भी कम होता

जाय तो उसे सूर्य्यावर्त्त कहते हैं। सुतरां दोपहर को इस रोगको वृद्धि और शामको निवृत्ति होती है।

पहिले गरदनके पीछे दर्द आरम्भ हो तुरन्तही ललाट और भौंमें पैदा हो तथा गालके पास कम्पन, हनुग्रह और नानाप्रकार नेत्ररोग उत्पन्न होनेसे उसको अनन्तवात नामक रोग कहते हैं।

अनन्तवात।

रूखा भोजन, अध्यशन, पूर्व्व वायु और हिम सेवन, मैथुन, मलमूत्रादिका वेग धारण, परिश्रम, व्यायाम आदिसे कुपित, केवल वायु अथवा वायु और कफ मस्तकके आधे हिस्सेमें जाकर एक तरफको मन्या, भौं, ललाट, कान, आंख और शङ्खदेशमें भयानक दर्द पैदा होता है इसको अर्द्धावभेदक (अधकपारी) कहते हैं। पहिले शंखदेश (कनपटी) में दारुण वेदना और दाहयुक्त रक्तवर्ण शोथ उत्पन्न हो एकाएकी शिरःशूल और कण्ठरोध उपस्थित होनेसे उसको शिरोरोग कहते हैं। उपयुक्त चिकित्सा न होनेसे तीन दिनमें इस रोगसे रोगी मरजाता है।

वातज शिरोरोगमें वायुनाशक घृत पान और तैल मर्द्दन उपकारी है। कूठ, रेंड़की जड़ कांजीमें पीसकर अथवा मुचकुन्द फूल पानीमें पीसकर लेप करना।

शिरोरोगकी चिकित्सा।

पैत्तिक शिरोरोगमें घी या दूधके साथ उपयुक्त मात्रा त्रिवृतका चूर्ण सेवनकर विरेचन कराना चाहिये। दाह हो तो शतधौत घी मालिश करना, तथा कुमुद, उत्पल आदि शीतल पुष्पका लेप करना। लालचन्दन, खसकी जड़, मुलेठी, बरियारा, व्याघ्रनखी और नीलोत्पल दूधमें एकत्र पीसकर अथवा आंवला और नीलोत्पल पानीमें पीसकर लेप करनेसे पैत्तिक शिरोरोग आराम होता है। श्लैष्मिक शिरोरोगमें कायफलका

नाम लेना। पीपल, शांठ, मोथा, मुलेठी, मोवा, नीलोत्पल और कूठ, यह सब द्रव्य एकत्र पानीमें पीसकर लेप करनेसे भी कफज शिरोरोग तुरन्त आराम होता है। वातपैत्तिक शिरोरोगमें स्वल्प पञ्चमूल दूधमें औटाकर नास लेना। वातश्लैष्मिक शिरोरोगमें वृहत् पञ्चमूल दूधमें औटाकर नास लेना। त्रिदोषज शिरोरोगमें ऊपर कहो सब दवायें मिलाकर व्यवहार करना। त्रिकटु, कूठ, हलदी, गुरिच और असगन्ध, इसका काढ़ा नाकके रास्ते पीनेसे अथवा शांठ चूर्ण २ मासे दूध ८ तोले एकत्र मिलाकर नास लेनेसे त्रिदोषज शिरोरोग आराम होता है। पित्तज शिरोरोगको तरह रक्तज शिरोरोगको चिकित्सा करना चाहिये। क्षयज शिरोरोगमें अमृतप्राश घृत, वृहत् छागलाद्य घृत आदि धातु पोषक औषध सेवन और वातज शिरोरोग नाशक लेप करना चाहिये। क्रिमिज शिरोरोगमें अपामार्ग तेल या शांठ, पीपल, मिरच, करंजबीज, और सेंजनको बीज गोमूत्रमें एकत्र पीसकर नास लेना तथा और भी क्रिमिनाशक अन्यान्य औषध प्रयोग करना चाहिये।

सूर्य्यावर्त्त, अर्द्धावभेदक और अनन्तवात रोगमें अनन्तमूल, नीलोत्पल, कूठ और मुलेठी कांजीमें पीसकर घी मिलाकर लेप करना। अथवा हुडहुडको बीज हुडहुडके रसमें पीसकर लेप करना। भङ्गरैया का रस और बकरीका दूध समभाग धूपमें गरम कर नास लेना। दूधके साथ तिल पीसकर नास लेनेसे सूर्य्यावर्त्त आदि रोग आराम होता है। चीनी मिलाया दूध, नारियलका पानी, ठण्ढा पानी या घी इसमेंसे किसी एकका नास लेनेसे अर्द्धावभेदक रोग आराम होता। समभाग विडङ्ग और काली तिल एकत्र पीसकर नास लेना, अथवा चुल्हेको जली मिट्टी और गोलमिरचका चूर्ण समभाग मिलाकर नास लेनेसे भी अर्द्धावभेदक

आराम होता है। शंख रोगमें भी यही चिकित्सा उपकारी है। इसके सिवाय दारुहल्दी, हल्दी, मजीठ, नीमका पत्ता खसकी जड़ और पद्मकाष्ठ पानीमें पीसकर कनपटीमें लेप करना। नाकसे घी पान और मस्तकपर बकरीका दूध या ठण्ढा पानी सिञ्चन शंख रोगमें विशेष उपकारी है।

शास्त्रीय औषध।

शिरःशूलादि वज्ररस, अर्द्धनाडी नाटकेश्वर, चतुरास्य रस, मयुराद्य घृत, षड्बिन्दु तैल, और बृहत् दशमूल तैल सब प्रकारके शिरोरोगकी उत्कृष्ट औषध है। अवस्थाविशेष विचारकर यही सब औषध प्रयोग करना।

पथ्यापथ्य।

कफज, क्रिमिज, और त्रिदोषज शिरोरोगके सिवाय अन्यान्य शिरोरोगमें वायुप्रधान रहता है सुतरां वातव्याधि कथित पथ्यापथ्य उन सब रोगोंमें विचारकर देना चाहिये। कफजादि कफप्रधान शिरोरोगमें रुक्ष, और लघु आहार करना तथा स्नान, दिवानिद्रा, गुरुपाक द्रव्य भोजन आदि कफवर्द्धक आहार विहार परित्याग करना। क्रिमिज शिरोरोगमें क्रिमिरोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये।

स्त्रीरोग।

प्रदर निदान।

खीर मत्स्यादि संयोगविरुद्ध भोजन, मद्यपान, पहिलेका आहार पचनेसे पहिले भोजन, कच्चा पदार्थ खाना, गर्भपात, अतिरिक्त मैथुन, पथपर्य्यटन, सवारीपर अधिक चढ़ना, शोक, उपवास, भारवहन अभिघात, अतिनिद्रा आदि कारणोंसे प्रदररोग उत्पन्न होता है,

इसका दूसरा नाम असृगदर है। अङ्गमर्द और दर्द लिये योनिद्वार से स्राव होना यही सब प्रदरके साधारण लक्षण है। कच्चा रसयुक्त, चिपकता हुआ पीला रंग या मांसके धोवनकी तरह स्रावको कफज प्रदर कहते हैं। जिसमें पीला नीला, काला या लाल रंगका गरम स्राव, दाह और दर्द आदिके साथ वेगसे स्राव हो वह पित्तज और जिसमें रूखा, अरुणवर्ण, फेनीला, तथा मांसके धोवन की तरह दर्दके साथ निकले उसको वातज प्रदर कहते हैं। सन्निपातज प्रदर रोगमें सहत घी या हरितालके रंगकी तरह अथवा मज्जा या शव गन्धयुक्त स्राव होता है यह असाध्य जानना। प्रदर रोगिणी का खून और बल घटजाने पर भी निरन्तर स्राव होनेसे तथा तृष्णा, दाह और ज्वरादि उपद्रव उपस्थित होनेसे यह रोग असाध्य हो जाता है।

यह भी प्रदर रोगके अन्तर्भूत है। वाधक रोग नानाप्रकार दिखाई देता है। किसीमें कमर, किसी में नाभिके नीचेका भाग, पार्श्वद्वय, दोनो स्तनोंमें दर्द और कभी कभी एक या दो मासतक लगातार रक्त-स्राव होता रहता है। किसी वाधकमें आंख, हाथका तलवा, और योनिमें जलन, लस्सेदार रक्तस्राव तथा कभी कभी महीनेमें दोबार ऋतु होता है; किसीमें मानसिक अस्थिरता, शरीरका भारीपन, अधिक रक्तस्राव, हाथ पैरमें जलन, कृशता, नाभिके नीचे शूलवत् दर्द और कभी कभी तीन या चार मासपर ऋतु होता है तथा किसी वाधकमें बहुत दिनपर ऋतु होना पर उपवाससे थोड़ा रक्तस्राव, दोनों स्तनोंकी गुरुता, स्थूलता, देहकी कृशता और योनिमें शूलवत् वेदना यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं।

वाधक लक्षण।

प्रत्येक महीने ऋतु होकर पांच दिन रहे तथा दाह और वेदना न हो, खून चिटचिटा तथा कम और थोड़ा न हो, खूनका रंग लाहके रसकी तरह तथा कपड़ा उसमें रंग फिर पानीसे धोतेही छूट जाय वही ऋतु शुद्ध जानना। इसमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम मालूम होनेहीसे अशुद्ध जानना।

शुद्धऋतु लक्षण।

योनिव्यापक अनुपयुक्त आहार विहार, खराब रज और बीज दोष आदि कारणोंसे स्त्रियोंको नाना-प्रकारके योनिरोग उत्पन्न होते हैं। जिस योनिरोगमें अत्यन्त कष्टके साथ फेनोला रज निकले उसको उदावर्त्त कहते हैं। जिसमें रज दूषित हो सन्तानोत्पादिका शक्ति नष्ट हो जाती है उसको बन्ध्या। विप्लुता नामक योनि रोगमें योनिमें सर्वदा दर्द बना रहता है। परिप्लुता रोगमें मैथुनके वखत अत्यन्त दर्द होता है। यह चारों वातज योनि रोगमें योनिककंश, कठिन, शूल और सूचीविधवत् वेदनायुक्त होती है। लोहितक्षय नामक योनिरोगमें अतिशय दाह और रक्त क्षय होता है। वामिनी योनिरोगमें वायुके साथ रक्त मिला शुक्र निकालता है। प्रस्रंसिनीमें योनि अपने स्थानसे नीचेकी तरफ लम्बी होती है तथा वायुके उपद्रव इसमें होते हैं; इस रोगमें सन्तान प्रसव कालमें बड़ी तकलीफ होती है। पुत्रघ्नी रोगमें बीच बीचमें गर्भका सञ्चार होता है पर वायुसे रक्तक्षय होकर गर्भ नष्ट हो जाता है। यह चार पित्तज योनिरोगमें अत्यन्त दाह, पाक और ज्वर उपस्थित होता है। अत्यानन्दा नामक योनिरोगमें अतिरिक्त मैथुनसे भी तृप्ति नहीं होती। योनिमें कफ और रक्तसे मांसकन्दकी तरह ग्रन्थिविशेष उत्पन्न होनेसे उसको कर्णिक रोग कहते हैं। अचरणा रोगमें मैथुन

योनिव्यापक रोग।

के समय पुरुषके पहिलेही स्त्रीका रेत गिर जाता है इससे वह स्त्री बीज ग्रहणमें समर्थ नहीं होती। अतिरिक्त मैथुनमें बीज ग्रहण शक्ति नष्ट हो जानेसे उसको अतिचरणा कहते हैं। यह चारो कफज योनिरोगमें योनि पिच्छिल, कण्डुयुक्त और अत्यन्त शीतल स्पर्श होती है। जिस स्त्रीको ऋतु नहीं होता उसका स्तन कम उठता है और मैथुनके वक्त योनि कर्कश स्पर्श मालूम होती है, ऐसे योनिको षण्ढी कहते हैं। कम उमरमें और छोटा योनि-द्वारवाली स्त्री स्थूल लिङ्ग पुरुषके साथ सहवास करनेसे उसको योनि फोतेकी तरह लटक आती है उसका अण्डली रोग कहते है। अति विस्तृत योनिको महायोनि और छोटे छेदवाली योनि-को सूचीवक्त्रा कहते हैं।

योनिकन्द।

दिवानिद्रा, अतिरिक्त क्रोध, अधिक व्यायाम, अतिशय मैथुन और किसी कारणसे योनिमें घाव होनेसे वातादि दोषत्रय कुपित हो योनिमें पीप रक्तके रंगको तरह, मान्दारफलके आकारके तरह एक प्रकार मांसकन्द पैदा होता है उसको योनिकन्द कहते हैं। वायुके आधिक्यसे कन्द रूखा विवर्ण और फटा होता है। पित्तके आधि-क्यसे कन्द लाल रंग, दाह और ज्वर भी होताहैं। कफके आधिक्यसे नीलवर्ण और कण्डुयुक्त होता है। त्रिदोषके आधिक्यमें वही सब लक्षण मिले हुए मालूम होते हैं।

भिन्न भिन्न रोगमें प्रदर चिकित्सा।

वातज प्रदररोगमें दही ६ तोले, सोचलनमक ≈) आनेभर, कालाजीरा, मुलेठी और नीलोत्पल प्रत्येक चार आनेभर सहत आधा तोला एकत्र मिलाकर २ तोले मात्रा दो घण्टा अन्तर पर सेवन कराना। पित्तज प्रदरमें अडूसेका रस अथवा गुरिचके

रसमें चीनी मिलाकर पिलाना। रक्तप्रदरमें रसांजन, और चौराई की जड़ समभाग अरवेचावलके धोवनके साथ सेवन करना। रक्तप्रदरमें श्वास होता उसी योगमें बभनेटी और शोंठ मिलाना चाहिये। गुलनरका रस, लाह भिंगोया पानी आदि पोनेसे प्रदर रोगका रक्तस्राव जल्दी बन्द होता है। अशोक छाल २ तोले आधा सेर पानीमें औटाना एक पाव रहे तब एक सेर दूध मिलाकर फिर औटाना पानी जलजानेपर उतार लेना रोगिणीका अग्निबल विचारकर उपयुक्त मात्रा सेवन करानेसे प्रदररोगका रक्तस्राव बन्द होता है। दार्व्यादि क्वाथ, उत्पलादि कल्क, चन्दनादि चूर्ण, पुष्यानग चूर्ण, प्रदरारि लौह, प्रदरान्तक लौह, अशोकघृत, सितकल्यान घृत, और हमारा "अशोकारिष्ट" सब प्रकारके प्रदररोगमें विचारकर देना चाहिये। अजीर्ण, अग्निमान्द्य, ज्वर आदि उपद्रव हो तो घी सेवन करना उचित नहीं है। वायुका उपद्रव या पेडूमें दर्द हो तो प्रियङ्ग्वादि या प्रसर्ह्मभिहिर तैल मर्द्दन उपकारी है। बाधकरोगमें रक्तस्राव अधिक हो तो प्रदररोगोक्त औषध देना चाहिये। रजोरोध होनेसे ओड़हुलका फूल कांजीमें पीसकर सेवन कराना और मुसब्बर, हीराकस, अफीम, दालचिनी, हरेक का चार आनेभर चूर्ण पानीमें घोटना फिर २ रत्ती मात्राकी गोली बना कर एक गोली सबेरे और एक शामको पानीके साथ देना।

वातप्रधान योनिरोगमें वायुनाशक घृतादि सेवन कराना।

योनिरोग चिकित्सा।

गुरिच, त्रिफला, दन्तीके काढ़ेसे योनि धोना और तगरपादुका, वार्त्ताकू, कूठ, सैन्धव और देवदारुका कल्क विधिपूर्व्वक तैलमें पकाकर रूईका फाहा तैलमें भिंगोकर योनिमें रखना। पित्तप्रधान योनिरोगमें पित्तनाशक चिकित्सा और रूईका फाहा घीमें भिंगोकर योनिमें

रखना। कफप्रधान योनिरोगमें रुक्ष और उष्णवीर्य्य औषध प्रयोग करना तथा पीपल, गोलमिरच, उड़द, सोवा, कूठ, सेन्धा-नमक एकत्र पीसकर तर्ज्जनी अङ्गुलीके बराबर बत्ती बनाकर योनिमें रखना। कर्णिनी नामक योनिरोगमें कूठ, पीपल, अकवनका पत्ता, सेन्धानमक बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनाकर योनिमें रखना। सोवा और बेरका पत्ता पीसकर तिलका तेल मिला लेप करनेसे विदीर्ण योनि आराम होती है। करैलेकी जड़ पीस कर लेप करनेसे अन्तःप्रविष्ट योनि बाहर आती है। प्रसंसिनी नामक योनिरोगमें चुहेकी चर्व्वी मालिश करनेसे अपने स्थानमें आजाती है। योनिकी शिथिलतामें वच, नीलोत्पल, कूठ, गोल मिरच, असगन्ध और हलदी समभाग एकत्र पीसकर लेप करना और कस्तुरी, जायफल, कपूर किम्बा मदनफल और कपूर सहत में मिलाकर योनिमें भरना। योनिका दुर्गन्ध निवारण करनेके लिये आम, जामुन, कयेथ, बड़ानीबू और बेलका नरम पत्ता, मुलेठी, मालतीफूल; इन सबका कल्क यथाविधि घीमें पाककर उसी घीमें रुईका फाहा भिंगोकर योनिमें रखना। बन्ध्यारोगमें असगन्धका काढा दूधमें औटाना फिर घी मिलाकर ऋतु स्नानके बाद सेवन कराना। कन्दरोगमें त्रिफलेके काढेमें सहत मिलाकर योनि धोना। गेरूमिट्टी, आमकी गुठली, विडङ्ग, हलदी, रसांजन और कटफल इन सबका चूर्ण सहत मिलाकर लेप करना चुहेका टटका मांस तिलके तेलमें पकाना, मांस अच्छी तरह तेलमें मिल जानेपर उतार लेना, फिर उसी तेलमें कपड़ा भिंगोकर योनिमें रखनेसे कन्दरोग आराम होता है। फलघृत, फलकल्याण घृत, कुमारकल्पद्रुम घृत आदि योनिरोगमें विचारकर प्रयोग करना चाहिये।

दर आदि रोगमें दिनको पुराने चावलका भात, मूंग, मसूर और चनेको दाल ; केलेका फूल, कच्चा-केला, करेला, गुल्लर, परवर, पुराना कोंहड़ा आदिको तरकारी ; सहनेपर बोच बोचमें छाग मांसका रस देना। मछलीका रसा भी थोड़ा देना चाहिये। रातको रोटो आदि भोजन करना। सहनेपर ३।४ दिनके अन्तरपर गरम पानीसे स्नान करना चाहिये। ज्वरादि उपसर्ग हो तो हलका आहार देना तथा स्नान बन्द करना।

पथ्यापथ्य।

गुरुपाक और कफजनक द्रव्य, मछली, मिठाई, लालमिरचा, अधिक लवण, दूध आदि आहार और अग्निसन्ताप, धूपमें फिरना, ओसमें बैठना, दिनको सोना, रातको जागना, अधिक परिश्रम, पथ-पर्य्यटन, मद्यपान, ऊंचे स्थानपर चढ़ना और उतरना, विशेषकर मैथुन, मलमूत्रका वेग धारण, सङ्गोत और जोरसे बोलना, सब प्रकारके स्त्रीरोगमें अनिष्टकारक है।

निषिद्ध कर्म।

रजोरोध होनेसे स्निग्धक्रिया आवश्यक है। उड़द, तिल, दही कांजी, मछली और मांस भोजन इस अवस्थामें उपकारी है।

गर्भिणी चिकित्सा।

गर्भावस्थामें औरतों को ज्वर, शोथ, उदरामय, वमन, शिरका घूमना, रक्तस्राव, गर्भवेदना आदि नाना प्रकारको पीड़ा उपस्थित होती है। साधारण अवस्थाको तरह हरेक रोगको दवा देनेसे इस रोगमें उपकार नहो होता ; तथा गर्भस्थ शिशुको नानाप्रकारके विपदको

गर्भिणी चिकित्साकी दुरूहता।

आशङ्का बनी रहती है। इसलिये प्रधान प्रधान कई एक रोगकी चिकित्सा जानना उचित है।

गर्भावस्थामें ज्वरकी चिकित्सा।

गर्भावस्थामें ज्वर हो तो मुलेठी, लालचन्दन, खसकी जड़, अनन्तमूल, पद्मकाष्ठ और तेजपत्तेका काढ़ा सहत और चीनी मिलाकर पिलाना। अथवा लालचन्दन, अनन्तमूल, लोध और द्राक्षाका काढ़ा चीनी मिलाकर पिलाना। एरण्डादि क्वाथ, गर्भचिन्तामणिरस, गर्भविलासरस, गर्भपियूषवल्ली, गर्भिणीके ज्वर शान्तिके लिये प्रयोग करना, ज्वर रोगोक्त काढ़ा और गोलियोंमें जिसका वीर्य्य मृदु है विशेष विचारकर वह सबभी दे सकते हैं। अतिसार या ग्रहणी रोगमें आम और जामुनके छालके काढ़ेमें धानके लावाका चूर्ण मिलाकर सेवन कराना। बृहत् ह्रीवेरादि क्वाथ, लवङ्गादि चूर्ण, इन्दुशेखररस और अतिसारादि रोगोक्त मृदुवीर्य्य कई औषध विचारकर प्रयोग करना। मलरोध होनेसे आम, पक्काबेल, किसमिस, पक्का पपीता, गरम दूध आदि सारक द्रव्य देना। विशेष जरूरत हो तो थोड़ा रेड़ीका तेल दूधके साथ मिलाकर पिलाना, अधिक दस्त आनेसे गर्भस्रावका डर है, इससे विचारकर अधिक दस्त न हो ऐसी दवा देना। शोथमें सूखी मूली, पुनर्नवा, गोखुरबीज, ककड़ीकी बीज और खीरेकी बीजका काढ़ा चीनी मिलाकर पिलाना। शोथमें मेहँड़के पत्तेका रस मालिश करना। गर्भावस्थामें वमन होना स्वाभाविक नियम है इससे उसके लिये कोई औषध प्रयोग नहीं करना। रोज सबेरे मिश्रीका शर्बत या दूध पीनेसे वमन कम होता है। रोज अधिक कष्टकर वमन होनेसे धानके लावाका चूर्ण द्राक्षा और चीनी पानीमें खूब मिलाना फिर छान लेना, वही पानी थोड़ा थोड़ा पिलाना ; अथवा द्राक्षा, घिसा

चन्दन, खीरेका बीज, इलायची और सौंफ यह सब द्रव्य पानीमें खूब मलकर थोड़ा थोड़ा पिलाना तथा गर्भविलास,नारायण आदि तैल मर्द्दन करना। सिर भारी मालूम होती यही सब तैल या हमारा केशरञ्जन और मूर्च्छान्तक तैल सिरमें मालिश करना।

मासभेदसे गर्भमें रक्तस्रावकी चिकित्सा।

गर्भके प्रथम महीनेमें रक्तस्राव हो तो मुलेठी, शाकबीज खीर-काकोली और देवदारु इन सब द्रव्योंके साथ दूध मिलाकर पिलाना। द्वितीय मासमें रक्तस्राव हो तो काली तिल, मजीठ और शतावर; तृतीय महीनेमें खीरकाकोली, और अनन्तमूल, चतुर्थ मासमें अनन्तमूल, श्यामालता, रास्ना, बभनेठी और मूलेठी; पञ्चम मासमें वृहती, कण्टकारी, गाम्भारी फल, वटादि क्षीरी वृक्षके छाल और गूदा तथा घी। षष्ठ मासमें चकवड़, बरियारा, सेंजनकी बीज, गोक्षुर और मुलेठी; सप्तम मासमें सिङ्घाड़ा, मृनाल, किसमिस, कसेरु, मुलेठी और चीनी; अष्टम मासमें कईथ, बेल, वृहती, परवरका पत्ता, इक्षुमूल, कण्टकारी; नवम मासमें मुलेठी, अनन्तमूल, खीरकाकोली, श्यामालता और दशम मासमें दूधमें सोंठ मिला औटाकर पिलाना।

मासभेदसे गर्भवेदनाकी चिकित्सा।

गर्भके प्रथम महीनेमें वेदना हो तो, श्वेतचन्दन, चीनी और मदनफल, समान भाग अरवेचावलके धोवनमें मिलाकर पिलाना। अथवा तिल, पद्मकाष्ठ, और शालि तण्डुल यह सब द्रव्य दूधके साथ पीसकर दूध चीनी और सहत मिलाकर पिलाना, फिर दूध भात खिलाना। द्वितीय मासमें वेदना होनेसे पद्म, सिङ्घाड़ा, कसेरु, अरवेचावलके पानीमें पीसकर पिलाना। तृतीय मासमें वेदना हो तो शतावर २ भाग, आंवला १ भाग

एकत्र पीसकर गरम पानीके साथ सेवन कराना। अथवा पद्म, नीले कमलका फूल और शालुक चीनीके शर्व्वतमें पीसकर सेवन कराना। चतुर्थ मासमें नीला कमल, शालुक, कण्टकारी और गोक्षुर अथवा गोक्षुर कण्टकारी, वाला और नीला कमल, यह सब द्रव्य दूधमें पीसकर सेवन कराना। पञ्चम मासमें, नीला कमल और क्षीर-काकोली दूधके साथ पीसकर दूध, घी और सहत मिलाना अथवा नीला कमल, घृतकुमारी और शीतलचीनी समभाग पानीमें पीसकर दूधमें मिला पिलाना। षष्ठ मासमें बड़े नीबूका बीज, प्रियङ्गु, लाल-चन्दन, और नीला कमल दूधमें पीसकर किम्बा चिरौंजी, द्राक्षा और धानके लावाका चूर्ण पानीमें मिलाकर खिलाना। सप्तम मासमें शतमूली और पद्ममूल पीसकर दूधके साथ किम्बा कयेथ, सुपारी की जड़, धानका लावा, और चीनी ठण्ढे पानीके साथ सेवन कराना। अष्टम मासमें सप्तम मासका द्रव्य अरवेचावलके धोवनमें पीसकर सेवन कराना। नवम मासमें एरण्डमूल कांजीमें पीसकर पिलाना। दशम मासमें नीलोत्पल, मुलेठी, और मूंग चीनीका शर्व्वत या दूधमें पीसकर सेवन कराना, एकादश मासमें मुलेठी, पद्मकाष्ठ, मृणाल और नीला कमल, कूठ, वाराहक्रान्ता और चीनी यह सब द्रव्य ठण्ढे पानीमें पीसकर दूधमें मिलाकर सेवन कराना। द्वादश मासमें चीनी विदारीकन्द काकोली और क्षीर काकोली यह सब द्रव्य ठण्ढे पानीमें पीसकर सेवन कराना।

नवम, दशम, एकादश और द्वादश मासका कर्त्तव्य।

नवमसे द्वादश मास तक प्रसवका काल है, इससे इसी समयमें गर्भवेदना उपस्थित होनेसे वह प्रसव वेदना है वा नहीं इसका विचार कर औषध प्रयोग करना। प्रसव वेदनामें किसी प्रकारका औषध देना उचित नहीं है।

बे समय गर्भपात होनेसे हांड़ी आदि बनानेके लिये तयार की हुई मिट्टी आधा तोला, एक पाव बकरी का दूध और चार आनेभर सहत एकत्र मिला कर पिलाना। अथवा बाला, अतीस, मोथा, मोचरस और इन्द्रजव, इन सब द्रव्योंका काढ़ा पिलाना। इससे कुक्षिशूल भी आराम होता हैं। गर्भस्राव हो जानेपर कसेरू, सिङ्घाड़ा, पद्मकेशर, नीला कमल, मुगानी और मुलेठी, यह सब द्रव्य दूधमें औटाकर पिलाना इससे गर्भस्राव का शूल आराम होता है।

बे समय गर्भपात और कुक्षिशूल चिकित्सा।

गर्भस्राव, गर्भपात या प्रसव होनेपर अतिरिक्त रक्तस्राव हो तो बन्द करना, नहीं तो इसमें प्रसूतिकी मृत्युकी सम्भावना है। रक्त बन्द करनेके लिये प्रसूताका पेड़ू खूब दबाकर मलना। पेड़ूपर ठण्ढे पानीकी धार गिराना और भिंगोया कपड़ा रखकर बार बार पानीसे तर करते जाना। नौसादर और सोरा पानीमें भिंगो कपड़ेमें बांध पेड़ूपर रखना। पिचकारीसे ठण्ढा पानी गर्भाशयमें देना, कबूतर के बीटका चूर्ण २ रत्ती अरवैचावलके पानीके साथ सेवन कराना। रोगिणी उठने बैठने न पावे हरवख्त पड़ी रहे। प्यास मालूम होनेपर ठण्ढा पानी जितना मांगे उतना पीनेको देना।

अति रक्तस्राव चिकित्सा।

प्रसवमें देर होनेसे ईशलाङ्गलाकी जड़ कांजीमें पीसकर दोनो पैरमें लेप करना। अडूसे की जड़, कमर में बांधना, अथवा अडूसेकी जड़ पीसकर, नाभि, वस्ति और योनिमें लेप करना। कांजीमें घरका जाला अथवा बड़े नीबूकी जड़ और मुलेठी घीके साथ किम्बा फालसा, सरिवन, अकवन, ईशलाङ्गला और अपामार्ग इसमें से कोई एक

प्रसवमें विलम्ब चिकित्सा।

द्रव्यका जड़, नागदानाकी जड़ और चितामूल समभाग पीसकर चार आनेभर खिलानेसे जल्दी प्रसव होता है।

मृतसन्तान प्रसव व्यवस्था।

गर्भस्थ शिशु गर्भमें मरजानेपर प्रायः प्रसव नहीं होता, अकसर शस्त्रकी जरूरत पड़ती है। गर्भिणीके शिरमें सेहुंड़का दूध देनेसे मरा हुआ सन्तान प्रसव होता है। पीपल और बच पानीमें पीसकर रेंड़ीका तेल मिलाकर नाभिमें लेप करनेसे तथा नागदानेकी जड़ और चितामूल समभाग पीसकर चार आने मात्रा सेवन करनेसे मृत सन्तान प्रसव होती है।

रजोदर्शन करनेका उपाय।

उचित समयमें रजोदर्शन न होनेसे तितलौकी, सांपकी केंचुली, घोषालता, सरसों और कड़वा तेल; यह सब द्रव्यका धूप योनिमें देना। अङ्गुलिमें केश लिपटाकर कण्ठमें घिसना। ईषलाङ्गलाकी जड़ पीसकर लेप करनेसे भी खेरी गिर पड़ती है।

मकन्द शूल चिकित्सा।

प्रसवके बाद वस्ति और शिरमें अत्यन्त वेदना होनेसे इसको मकन्द शूल कहते हैं। घी या गरम पानीके साथ जवाखार सेवन करानेसे, किम्वा पीपल, पीपलामूल, चई, चिता सोंठ, मिरच, गजपिप्पली, संभालुके बीज, एलाइची, अजवाईन, इन्द्रयव, अकवन, जीरा, सर्षप, बड़ीनीम, हींग, बभनेठी, मूर्व्वा, अतीस, बच, विड़ङ्ग और कुटकी, यह सब द्रव्यका काढ़ा नमक मिलाकर पीनेसे मकन्द शूल दूर होता है।

वायुप्रकोप शान्तिका उपाय।

गर्भावस्थामें थोड़ा भी वायुका प्रकोप होनेसे गर्भिणीका शरीर और गर्भ सूखजाता है अच्छी तरह बढ़ने नहीं पाता। इसमें मुलेठी और गाम्भारी

फल दूधमें औटाकर पिलाना अथवा गुरिच, विदारीकन्द, असगन्ध, अनन्तमूल, सतावर, पिठवन, माषपर्णी, जीवन्ती और मुलेठी, यह सब द्रव्य यथाविधि घीमें पकाकर सेवन कराना।

पथ्यापथ्य और कर्त्तव्य कर्म।

गर्भावस्थामें कई एक साधारण नियम पालन करना गर्भिणी माताका कर्त्तव्य है। हलका अथवा पुष्टिकर और रुचिकर द्रव्य आहार करना। अधिक परिश्रम या एकदम परिश्रम त्याग करना नहीं चाहिये। जिस काममें श्वास प्रश्वास देरतक बन्द रखना पड़े, अधिक वेग देना हो किम्वा पेड़ दबे ऐसा काम करना नहीं चाहिये। पैदल या तेज सवारीमें अधिक दूर तक जाना भी अनिष्ट कारक हैं। सर्व्वदा प्रसन्नचित्त रहना चाहिये; भय, शोक और चिन्ता रात्रि आदिसे मनमें दुःख होनेसे सन्तानका अनिष्ट होता है। उपवास, जागरण, दिवानिद्रा, अग्नि सन्ताप, मैथुन, भारवहन कठिन शय्यामें शयन, ऊंचे स्थानपर चढ़ना और मूत्रादि वेग धारण कदापि उचित नहीं है।

गर्भावस्थामें जो रोग उत्पन्न हो पथ्यापथ्य भी उसी रोगका पालन करना चाहिये। उपवासवाले रोगमें हलका आहार देना-पर उपवास कराना अच्छा नहीं।

गर्भ या गर्भिणी सूख जानेसे घी, दूध, हंसका अण्डा, और छाग, कुक्कुट आदिका मांस आदि पुष्टिकर पथ्य भोजन करनेको देना।

प्रसवान्तका कर्त्तव्य।

प्रसवके बाद प्रसूतीको थोड़े दिन बड़ी सावधानीसे रखना चाहिये। प्रसवके दिनसे तीन दिन तक दूध या दूधसाबुदाना आदि हलका आहार देना उचित है। प्रसव दिनके बाद बाकी दो दिन दूधभात भी

दे सकते है। फिर क्रमशः सुन्दर पथ्य देना चाहिये। पांच दिन तक स्नान बन्द रखना, तथा फिर भी १५।१६ दिन तक गरम पानीसे स्नान कराना चाहिये। अग्निसन्ताप सेवन और शोंठ गोलमिरच, अदरख, काला जीरा प्रभृति द्रव्य पीसकर अछवानी देनेका नियम जो इस देशमें है वह विशेष उपकारी है। प्रसूतीका मैला कपड़ा और बिछौना सर्व्वदा बदलना चाहिये।

सूतिकारोग।

प्रसूता स्त्रीके अनुचित आहार विहारादिसे अर्थात् शरीरमें अधिक हवा और ओस लगना, शैत्यक्रिया अपक्व द्रव्य भोजन अजीर्णमें भोजन, कम भूखमें गुरुपाक द्रव्य भोजन आदि कारणोंसे नानाप्रकार सूतिकारोग पैदा होते है। खराब सूतिकागृह भी सूतिका रोगका एक प्रधान कारण है। ज्वर, शोथ, अग्निमान्द्य, अतिसार ग्रहणी, शूल, आनाह, बलक्षय, कास, पिपासा, गात्रभार, गात्र-वेदना, नाक मुखसे कफस्राव आदि सब पीड़ा जो प्रसवके बाद उत्पन्न होती है, उसीको सूतिका रोग कहते हैं।

कर्णवेधज शोथ।

स्त्रियोंको सूतिकारोगसे बचानेके लिये पहिले सूतिकागृह स्थिर करना विशेष आवश्यक है। मकानके कोनेमें एक छोटीसी अंधियाली कोठरी प्रसवके लिये निर्दिष्ट करना उचित नही है, ऐसे घरमें हवा धूप न जानेसे तथा आगका धूंआ और गरमी,

सूतिकागृह निर्म्माण चिकित्सा का अङ्ग है।

बालकका मलमूत्र और २।३ आदमोके श्वास प्रश्वास आदिसे उस सङ्कोर्ण घरको हवा खराब हो प्रसूती और बालक दोनोंके नाना-प्रकारके रोग उत्पन्न होते है। साफ, सूखा कमसे कम ७।८ हात लम्बा, ५।६ हाथ चोड़ा और ५।६ हात ऊंचा, उत्तर द्वारो या दक्षिणद्वारो आमने सामने दो दो जङ्गलाविशिष्ट सूतिकागृह बनाना चाहिये; जिसको कुरसी जमोनसे हाथभर ऊंचो और मजबूत होना चाहिये, दरवाजा और जङ्गलेमें किवाड़ लगा रहे, ऐसा घर न बनसके तो मकानमें जो कोठरी साफ सुथरी और हवा-दार हो वही स्थिर करना चाहिये। घरमें धूंआ न हो ऐसे अङ्गारे-को बोरसी घरमें रखना। प्रसूतीके सोने आदिके लिये एक खटिया रखना चाहिये नहोतो खड़ या पोवाल रखकर उसके उपर बिछौना करना। बालकका मलमूत्र सर्व्वदा बाहर फेकना। रातको जाड़ेके दिनोंमें हवाके वख्त जङ्गला बन्द रखना तथा दूसरे वख्त खुला रखना चाहिये। यह सब नियम पालन करनेसे सूतिका रोगको आशङ्का कम रहती है।

सूतिका ज्वर चिकित्सा।

सूतिका ज्वरमें सूतिकादशमूल या सहचरादि काढ़ा सूतिकारि रस, वृहत्सूतिकाविनोद और ज्वर रोगोक्त पुटपक्क विषम ज्वरान्तक-लोह आदि कई औषध प्रयोग करना। गात्रवेदना शान्तिके लिये दशमूलका काढ़ा और लक्ष्मीविलास रस आदि औषध प्रयोग करना उचित है। काम शान्तिके लिये सूतिकान्तक रस और काम रोगोक्त शृङ्गाराभ्र आदि कई औषध प्रयोग करना। अतिसार और ग्रहणी आदि रोगमें अतिसारादि रोगोक्त कई औषध और जीरकादिमोदक, जीरकाद्यरिष्ट, सौभाग्यशुंठो मोदक प्रयोग करना। सूतिका रोगमें जिस जिस रोगका

आधिक्य दिखाई दे वही वही रोग नाशक औषध विचार कर प्रयोग करना।

सूतिका रोगमें रोग विशेष के अनुसार पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। साधारण सूतिकावस्थामें पुराने चावलका भात, मसूर उरदका जूस, बैगन, नरम मूली, गुल्लर, परवल, और कच्चे केलेकी तरकारी, अनार और अग्निदीपक तथा वातश्लेष्म नाशक द्रव्य आहार और वातश्लेष्मनाशक क्रिया समूह भी पालन करना उचित है।

पथ्यापथ्य।

गुरुपाक और तीव्र वीर्य्य द्रव्य भोजन, अग्निसन्ताप, परिश्रम, शीतल हवा और मैथुन सूतिका रोगमें मना है। प्रसवके बाद ३।४ मास तक प्रसूतीको सावधानीसे रखना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।

स्तनरोग और स्तन्यदुष्टि।

अपने अपने प्रकोप कारणके अनुसार वातादि दोषत्रय कुपित हो गर्भवती या प्रसूता स्त्रीके स्तनमें आश्रय लेनेसे नानाप्रकार विद्रधि (फोड़ा) उत्पन्न होता है। चलित भाषामें इसको थनैल कहते हैं।

थनैल।

अनुचित आहार विहारादि कारणोंसे वातादि दोष समूह स्तनदूधको दूषित करनेसे उसको स्तन्य-दुष्टि कहते हैं। वायुदूषित स्तन्य कषाय रसविशिष्ट और पानीमें डालनेसे पानीमें न मिलकर ऊपर तैरता है। पित्तदूषित स्तन्य कटु, अम्ल या लवणास्वाद और पीतवर्ण

दूषित स्तनलक्षण।

रेखायुक्त होता है। श्लेष्मदूषित स्तन्य गाढ़ा और लसीदार यह पानीमें डूब जाता है। इसही मिले हुए दो या तीन दोषके लक्षण मालूम हो तो द्विदोषज स्थिर करना। यही दूध पीनेसे बालकको भी नानाप्रकार रोग उत्पन्न होता है। जो दूध पानीमें डालनेसे मिल जाय तथा पाण्डुवर्ण, मधुर रस और निर्म्मल वही दूध निर्दोष है, बालक को वही दूध पान करनेको देना चाहिये।

थनैल रोगमें स्तनमें शोथ होतेही दूध गार डालना। जोंक लगाना रास्रालशयाकी जड़ या हल्दी धतूरेका पत्ता एकत्र पीसकर लेप करना।

थनैलकी चिकित्सा।

विद्रधि और व्रण रोगमें जो सब योगादि लिखे आए है वही सब योग इसमें भी प्रयोग करना। पकजानेपर शस्त्रप्रयोग या औषध से पीप आदि निकाल कर व्रणरोगको तरह चिकित्सा करना।

दूध वायुकर्त्तृक दूषित होनेसे दशमूलका काढ़ा पिलाना पित्तदूषित स्तनमें गुरिच, शतमूली, परवरका पत्ता, नीमका पत्ता, लालचन्दन, और अनन्तमूल, यह सब द्रव्यका काढ़ा पिलाना। कफदूषित स्तनमें त्रिफला, मोथा, चिरायता, कुटकी, बभनेठी, देवदारु, बच और अकवन, यह सब द्रव्यका काढ़ा पिलाना। द्विदोषज या त्रिदोषज स्तन्यदुष्टिमें इसही मिले हुए द्रव्योंका काढ़ा पिलाना।

दूषित स्तन्य चिकित्सा।

स्तनदूध सूख जानेपर बनकपास की जड़ और इक्षुमूल समभाग कांजीमें पीसकर आधा तोला मात्रा सेवन कराना अथवा हल्दी, दारुहल्दी, चकवड़, इन्द्रयव और मुलेठी यह सब द्रव्यका काढ़ा किम्वा बच, मोथा, अतीस, देवदारु, सोंठ, सतावर और अनन्तमूल यह सब द्रव्यका काढ़ा पिलाना।

शुष्क स्तन्य चिकित्सा।

पथ्यापथ्य ।

स्तनरोगमें विद्रधि रोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। स्तनदुष्टिमें दोषके आधिक्यानुसार वही वही दोषनाशक और सूतिका रोगका साधारण पथ्यापथ्य प्रतिपालन करना चाहिये।

वालरोग ।

बालरोग दूषित स्तन्यज ।

प्रसूता या धात्रीका स्तनदूध दूषित होनेसे, वही दूषित स्तन पानकर बच्चोंको नानाप्रकारकी पीड़ा पैदा होती है। वातदुष्ट स्तन्यपान करनेसे बालक वातरोगाक्रान्त, क्षीणस्वर और कृशाङ्ग होते है, तथा उसके मलमूत्र और अधोवायु निकलनेमें कष्ट होता है। पित्तदुष्ट स्तन्यपान करनेसे, पसीना, मलभेद, तृष्णा, गात्रसन्ताप, कामला और अन्यान्य पित्तजन्य रोग उत्पन्न होते है। कफदुष्ट स्तन्यपान करनेसे लालास्राव, निद्रा, जड़ता, शूल, दूध कै, आंखे सफेद और विविध श्लेष्मजन्य पीड़ा पैदा होता है। दो या तीन दोषसे स्तन्य दूषित होनेसे दो या तीन दोषके लक्षण मिले हुए प्रकाशित होते है।

कुकूनक ।

दूषित दूध पान, सूतिकागृहका दोष, ओस लगाना आदि कारणोंसे बच्चोंके आंखको बरौनीमें कुकूनक नामक रोग पैदा होता है। इसमें आंखमें कण्डु, बार बार आंखमे जलस्राव, बालक कपाल आंख और नाक घिसता रहता है तथा धूपकी तरफ नही देखता और न आंख खोलता है।

बच्चोंके तालुमें कफ दूषित होनेसे तालुकण्टक नामक रोग पैदा होता है। इसमें तालु बैठजाता है, स्तन्य पानमें द्वेष, स्तन्यपान करनेमें कष्टबोध होना, पिपासा, मलभेद, आंख, कण्ठ और मुखमें दर्द, दूध के करना, और गरदन गिर पड़ना आदि लक्षण प्रकाशित होते है।

तालुकण्टक।

बालक गर्भवती माता या धात्रीका स्तनदूध अधिक पीवेतो पारिगर्भिक नामक रोग पैदा होता है। इसमें कास, अग्निमान्द्य, वमन, तन्द्रा, कृशता, अरुचि, भ्रम, उदर वृद्धि यही सब लक्षण लक्षित होते हैं।

पारिगर्भिक।

दन्तोद्गम रोग। पहिले पहल दांत निकलतीवखत बहुतेरे बालकको ज्वर, उदरामय, वमन, बदन तोड़ना, शिरोवेदना, नेत्ररोग आदि विविध पीडा दिखाई देती है।

बच्चे दूध पानकर के करदें तो उसको चलित भाषामें "दूध फेंकना" कहते है। पहिले इसमें फटा दूध या दहीकी तरह दूध तथा खट्टी बदबू रहती है। थोड़े दिन बाद क्रमशः पानीकी तरह पतला के होता है और जो खाता है तुरन्त वही निकल जाता है, पेट-फूला और बोलता है, दस्त साफ नही अथवा कभी कभी अधिक दस्त होता है। शरीर क्षीण, वर्ण पाण्डु और स्वभाव जिद्दी हो जाता है तथा शरीर ठण्ढा और चमड़ा रुखा होता है।

दूध फेंकना।

बालकों को "तड़का" नामक एक प्रकार रोग होता है। उसका साधारण लक्षण मूर्च्छा और हाथ पैरकी ऐंठन है। नाना कारणोंसे यह रोग पैदा होता है। ज्वर या और कोई कारणसे शरीरका उत्ताप बढ़नेसे, डर लगनेसे, शरीरमें कही चोट लगनेसे या दर्द होनेसे,

तड़काके लक्षण।

फोड़ा या क्रिमि होनेसे और बहुत दिन तक बिमार रहना आदि कारणोंसे बालक दुर्ब्बल होजानेपर तड़का रोग पैदा होता है। तड़का आरम्भ होतेही बालक बेहोश, मुखका रंग सफेद, हाथकी अङ्गुली मुट्ठीबन्धी, पैरकी अङ्गुली टेढ़ी और हाथ पैर एंठता रहता है। एक मिनटसे पांच मिनट तक यह रहता है। बहुतेरोंको एक बार हो नहो जाता है बार बार होता रहता है। कई जगह तड़का होनेसे पहिले कई एक पूर्व्वरूप अनुभव होते हैं, नींदमें चमक उठना, आंखें टेढ़ी होना और अङ्गुलीसिंकुड़जाना तड़का का यह पूर्व्वरूप है।

क्रिमि।

बालकके पेटमें छोटे छोटे कीड़े पैदा होते हैं, मलद्वारमें खुजलाहट और नाकमें सुरसुराहट होती है किसी किसी वख्त बालक नाक मलते मलते रो उठता है। क्रिमि बड़ी होनेसे बालक सोते सोते चमक उठता है, दांत पीसता है और मुखसे दुर्गन्ध आती है; कभी कभी चिपकता हुआ सबुज रंग और तेलमिला दस्त होता है।

धनुष्टङ्कार निदान।

कुत्सित सूतिकागृहमें साफ हवाके अभावसे आर्द्रता दुर्गन्ध आदि कारणोंसे और बालकको तेल लगाकर अधिक सेंकना और बालकके शरीरमें ओस लगनेसे धनुष्टङ्कार नामक रोग पैदा होता है। जन्मके बाद ८ दिनके भीतर यह रोग दिखाई देता है। इसमें पहिले बालकका चहुआ अटक जाता है फिर पीठकी रीढ़ कठिन और टेढ़ी होती है, हाथ पैर कड़ा और एंठता है। हाथ पैरकी अङ्गुली टेढ़ी, मुख टेढ़ा और बालक को छूने या हिलानेसे पीड़ा बढ़ती है, इस रोगमें एसही कोई बालक आराम होता है।

बालकके शरीरमें विविध ग्रहावेश होना आयुर्व्वेद शास्त्रमें स्वीकृत है। बालक ग्रहसे पीड़ित होने पर कभी उद्विग्न, कभी डर, कभी रोना, कभी नख आदिसे जननी धात्री या अपना हाथ पैर नोचता है, बार बार फेन वमन और शरीर चीण हो जाता है। रातको नींद नहीं आती, आंखें फूल जाती है, दस्त पतला होता है, गला बैठ जाता है, बदनसे रक्त और मांसकी बू आती है। यह सब रोगके सिवाय ज्वर और अतिसार आदि अन्यान्य प्रायः सब रोग बालक को पैदा होते है।

ग्रहपीड़ा।

बालक किसी प्रकारकी तकलीफ सह नहीं सकता, इससे उसका रोना और पीड़ित स्थानमें बार बार हाथ लगाना आदि चेष्टा और निपुणतासे विचार कर रोगकी परीक्षा करना चाहिये। गलेमें दर्द होनेसे बालक बार बार गलेमें हाथ लगाता है। शिरःपीड़ा होनेसे कपालका चमड़ा सिकुड़ जाता है और बालक बार बार शिरमें हाथ लगाता है और कान खींचता है। चंगा बालक बार बार रो उठनेसे उसका पेट दर्द करता है जानना। दूध पीनेवाले बच्चेको प्यास लगनेसे वह बार बार जीभ बाहर निकलता है। सर्द्दी होकर नाक बन्द होनेसे बालक दूध पीती वख्त मुहसे सांस लेनेके लिये बार बार स्तन छोड़ देता है। तीन चार महीनेतक का बालक रोनेसे उसके आंखसे पानी नहीं निकलता, फिर निकलता है। तीन चार महीनेसे अधिक उमरके बालक की रोती वख्त आंखसे पानी न निकले तो उसका रोग कठिन जानना। बालककी नाड़ी स्वभावतः ही अति द्रुत रहती है; इससे नाड़ी परीक्षासे उसका रोग निर्णय करना नये चिकित्सकके लिये अत्यन्त

शिशुचिकित्साकी कठिनता।

कष्टकर है। ज्वरादिकी परोक्षाके वक्त थर्मामिटर लगानाही अच्छा है। सांस लेती वक्त बालकके नाकका छेद बढ़ा होनेसे और नाक हिलनेसे उसको खांसी अति गुरुतर है तथा श्वास फेकनेमें कष्ट होता है जानना। बालकका पेट स्वभावतःही थोड़ा मोटा होता है, उससे भी अधिक मोटा होनेसे यकृत् प्लीहा या अजीर्णको आशङ्का करना उचित है। इसी प्रकार विविध लक्षणसे बालकोंके रोगको परोक्षा करना चाहिये।

धात्री निर्व्वाचन।

माताका दूध दूषित होनेसे बालक को पिलाना उचित नहीं है। उसके बदले को दुग्धवती धात्री (दाई)का दूध पिलाना। धात्रीनिर्व्वाचनमें कई बातोंका विशेष ध्यान रखना चाहिये। धात्रीकी उमर २०से ३२ वर्ष तक होनी चाहिये। इससे अधिक या कम उमरकी धात्रीका दूध शुद्ध नहीं होता। धात्रीके शरीरमें किसी तरहकी पीड़ा हो तो उसका दूध नहीं पिलाना। जिस बालकके लिये धात्री रखना हो उसी उमरका और मोटा ताजा बालक धात्रीका रहना चाहिये। धात्रीके स्तनद्वय दुग्धपूर्ण और दबानेसे दूध गिर पड़े तथा धात्रीका स्वभाव चरित्र निर्दोष और चित्त सन्तुष्ट होना चाहिये, ऐसी धात्री न मिलनेसे अथवा धात्रीका दूध दूषित होनेसे बकरीका दूध किम्वा पानी मिलाकर गायका दूध पिलाना। सौरीके बालकको माके दूधका अभाव होतो गायके दूधमें उतनही चूनेका पानी मिलाकर पिलाना। इससे पेट फूले तो सौंफ भिंगोया पानी १ तोला एक छटांक दूधमें मिलाकर पिलाना। इसी प्रकार स्तन्य छुड़ानेसे दूषित स्तनपानजनित रोग क्रमशः दूर होता है। तालु बैठ जानेसे हरीतकी बच और कूठ इसका चूर्ण सहत और स्तनदूधमें मिलाकर पिलाना।

बच्चोंको आंख आनेसे या कुकूणक रोग होनेसे गरम पानीकी पतली धार आधा हाथ ऊंचेसे देना और आंख धोना। गरम पानीमें कपड़ा भिंगोकर आंखका कीचड़ निकालना। एक रत्ती तूतिया एक छटांक साफ पानीमें मिलाकर एक शीशीमें भरना, यही पानी दिनभरमें २।३ बार आंखमें बूंद बूंद कर डालना। सेवारके रसमें कपड़ा भिंगोकर उसका काजल पाड़कर वही आंखमें लगाना। दारुहलदी, मोथा, और गेरूमिट्टी बकरीके दूध में पीसकर आंखके बाहर लेप करना।

आंख आनेकी चिकित्सा।

पारिगर्भिक रोगमें पहिले माताका दूध पिलाना बन्द करना चाहिये। अग्निवृद्धिके लिये अग्निमान्द्य रोगोक्त यमानीपञ्चक, हिङ्गाष्टक चूर्ण आदि मृदुवीर्य्य औषध अल्पमात्रा सेवन कराना। दूधके साथ चूनेका पानी या सौंफका अर्क मिलाकर पिलाना। अतिसार आदि रोग इस अवस्थामें लक्षित हो तो उसमें वही रोग नाशक औषध प्रयोग करना। कुमारकल्याण रस, सेवन करानेसे पारिगर्भिक आदि रोग आराम होता है।

पारिगर्भिक।

दांत निकलनेके वक्त ज्वर, उदरामय आदि पीड़ामें एका एकी कोई औषध प्रयोग करना उचित नही है। कारण दांत निकल आनेपर सब रोग आपही आप आराम हो जाते है। धवईका फूल, पीपल चूर्ण सहतमें मिलाकर या आंवलेका रस मसूड़ेमें घिसनेसे दांत जल्दी निकलता है। अन्यान्य रोगोंके लिये दवा देनेकी आवश्यकता हो तो दन्तोद्गदान्तक, कुमारकल्याण और पिप्पल्याद्य घृत विचार कर प्रयोग करना। दांत निकलनेमें

दन्तोद्गदज रोग चिकित्सा।

अधिक देर होनेसे या तकलीफ अधिक मालूम होनेसे वह स्थान चीर डालना।

दूध फेकना आराम करनेके लिये दूधमें चूनेका पानी मिला कर पिलाना। इससे आराम न हो तो दूध बन्दकर मांसका शूरुवा पिलाना।

दूध फेकनेकी चिकित्सा।

बृहती और कण्टकारी फलका रस या पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल और शोंठ, इन सब द्रव्योंका चूर्ण सहत और घीमें मिला कर थोड़ा थोड़ा चटाना। आम्रकेशी, धानका लावा और सैन्धा नमक इन सबका चूर्ण सहतमें मिलाकर चटानेमें दूध फेकना बन्द होता है। टटका सरसोंका तेल दिनभरमें ३।४ बार पेटपर मालिश करना और एक टुकरा फलालेन पेटमें लपेट रखना।

तड़का उपस्थित होनेसे पहिले होशमें लानेका उपाय करना चाहिये। कलछी या लोहेकी सलाई आदि गरम कर कपालमें थोड़ा थोड़ा सेंक देना,

तड़काकी प्रथम चिकित्सा।

आंखपर ठण्ढे पानीका छिटा देना, यदि इससे भी होशमें न आवे तो नौसादर और चूना एकमें मिलाकर बालकके नाकके पास रखना इसके सूंघनेसे भी मूर्च्छा दूर होती है। फिर जिस रोगके कारणसे तड़का हुआ है उसको तकलीफ दूर करना चाहिये। अतिरिक्त ज्वरसे तड़का होनेपर आंख, मुख, शिर, पाठकोरीढ़ और मस्तकके पीछे ठण्ढे पानीका छीटा देना। तेल और पानी एकत्र मिलाकर सर्व्वाङ्गमें मालिश करना। बालक को प्यास मालूम हो तो भरपूर पानी पीनेको देना। इन सब क्रियाओंसे शरीरका उत्ताप कमजानेपर तड़का होनेका डर नहीं रहता। नाताकतीके सबबसे तड़का होनेपर राईका चूर्ण गरम पानीमें मिलाकर उसी पानीमें बालक को ठेहुनातक डूबो रखना। बालक हिलने डोलने

न पावे। इसके बाद मयदा और राईका चूर्ण समभाग थोड़े पानीमें मिलाकर पेरके तलवेमें पट्टी लगाना। बगल और हाथ पैरमें सेंक करना। हाथ पेर और छातीमें शोंठका चूर्ण मालिश करना। क्रिमि या दूसरे किसी सबबसे तड़का होनेपर सहन हो ऐसे गरम पानीमें बालकको गलेतक डुबा रखना और आधा हाथ ऊंचेसे उसके शिरपर ठण्ढे पानीकी धार देना। ५।६ मिनिट तक ऐसा कर बदन पोंछकर सुला देना।

सब प्रकारका तड़का आराम होनेपर दूधके साथ थोड़ा रेंड़ीका तेल मिलाकर पिलाना चाहिये।

तड़कामें टम्ना करना।

तड़काके बार बार हमलेसे बचानेके लिये चौगुने पानीमें थोड़ी सञ्जीवनी सुरा अभावमें ब्राण्डि मिलाकर बालकको पिलाना चाहिये।

क्रिमिनाशके लिये भांटपत्तका रस या अन्यान्य क्रिमिनाशक औषध प्रयोग करना। क्रिमि छोटी हो

क्रिमिनाशक उपाय।

तो नमक की पिचकारीमें विशेष उपकार होता है। एक छटांक पानीमें थोड़ा नमक मिलाकर एक छोटी कांचकी पिचकारीसे बालकके मलद्वारमें देना। पिचकारीके मुहमें तेल लगाकर मलद्वारमें देना चाहिये। पानी तुरन्तही गिर न पड़े इससे मलद्वारको २।३ मिनिट अङ्गूठेसे दबा रखना। इसी तरह २।३ दिन पिचकारी देनेसे क्रिमिनाश होता है।

धनुष्टङ्कारमें होशमें लानेके लिये तड़का रोगोक्त उपाय करना। फिर माताका दूध पिलाना। बालक

धनुष्टङ्कार चिकित्सा।

दूध खींच न सके तो दूध गारकर सीपसे दूध पिलाना। स्तनदूधके अभावमें गौका दूध पिलाना। विरेचक औषध न खासके तो रेंड़ीके तेलमें थोड़ा तार्पिनका तेल मिलाकर

पेटमें मालिश कर ठण्ढा पानी देना। रेंड़ीका तेल पिलाकर दस्त कराना बहुतही उपकारी है। नींद आनेके लिये नाभिके ऊपर गांजा या भांग पीसकर पुलटिस बांधना। चौगूनी मृतसञ्जीवनी सुरा या ब्राण्डी पिलानेसे भी नींद आती है। चाहे जैसे हो बालकको सुलाना चाहिये। बालक सुरा पान न करे तो मलद्वारमें पिचकारी देना। गरम पानीमें स्नान और सर्व्वाङ्गमें वायुनाशक कुब्जप्रसारिणी आदि तैल मर्द्दन विशेष उपकारी है।

ग्रहावेश जनित पीड़ामें ज्योतिष शास्त्रोक्त ग्रहशान्तिका उपाय करना। या सुरामांसी, वच, कूठ, शिलाजीत, हल्दी, दारुहल्दी, शठी, चम्पक, मोथा इन सब द्रव्योंके काढ़ेमें स्नान कराना। इसको "सर्व्वौषधि स्नान" कहते है। अष्टमङ्गलघृत पान करानेसेभी ग्रहावेशकी शान्ति होतीहै।

ग्रहावेशमें कर्त्तव्य।

बालकके ज्वरमें भद्रमुस्तादि क्वाथ, रामेश्वर रस, बालरोगान्तक रस और ज्वररोगोक्त अन्यान्य मृदुवीर्य्य औषध उपयुक्त मात्रासे सेवन कराना।

बालकको ज्वर चिकित्सा।

ज्वरातिसार रोगमें धातक्यादि और बालचतुर्भद्रिका चूर्ण सेवन कराना चाहिये। अतिसारमें वराहक्रान्ता, धवईका फूल और पद्मकेशर, इसके कल्कका यवागू बनाकर सेवन कराना। बकरीका दूध और जामुनके छालका रस समान भाग मिलाकर पिलाना। अथवा बेलकी गिरी, इन्द्रयव, बाला, मोचरस और मोथा, यह सब द्रव्य मिलाकर एक तोला, एक पाव बकरीका दूध और एक सेर पानीके साथ औटाना, दूध बाकी रहनेपर छानकर पिलाना। इससे ग्रहणी रोगभी आराम होताहै। प्रवाहिका अर्थात् आमाशय रोगमें धानके लावाका चूर्ण मुलेठीका चूर्ण, चीनी और सहत यह सब द्रव्य अरवेचावलके धोवनके साथ सेवन कराना।

सफेद जीरा और रालका चूर्ण गुड़के साथ सेवन कराना। ग्रहणी रोगको शान्तिके लिये मिरच एक भाग, शोंठ २ भाग और कुरैया की छाल ४ भाग; इन सब द्रव्योंका चूर्ण गुड़ और मट्ठेके साथ सेवन कराना। अतिसारनाशक अन्यान्य औषध भी ग्रहणी रोगमें प्रयोग करना। बालकुटजावलेह और बालचाङ्गेरी घृत नामक औषध पुराना अतिसार, रक्तातिसार और ग्रहणीरोगमें विशेष उपकारी है। बेलकी गिरी और आमकी गुठलीके गूदेके काढ़ेके साथ धानके लावाका चूर्ण और चीनी मिलाकर सेवन करानेसे भेद वमन दूर होता है। बेर, आमरूल, काकमाची और कएथ का पत्ता पीसकर मस्तकमें लेप करनेसे भी बच्चोंका भेद वमन आराम होता है। आनाह और वातिक शूलरोगमें सैन्धव, बेलकी गिरी, इलायची, हींग और बभनेठी, इन सबका चूर्ण घीके साथ लेहन या पानीके साथ पान कराना। तृष्णारोगमें अनारबीज, जीरा और नागेश्वर इन सबका चूर्ण चीनी और सहतके साथ चटाना। हिचकी होनेमें गेरूमिट्टीका चूर्ण सहतके साथ चटाना। चितामूल, शोंठ, दन्तीमूल और गोरचचाकुला, इन सब द्रव्यका चूर्ण गरम पानीके साथ सेवन कराना, अथवा द्राक्षा, जवासा हरीतकी और पीपल इन सबका चूर्ण घी और सहतके साथ मिलाकर चटानेसे हिक्का, श्वास और कासरोग आराम होता है। बृहतीफल, कण्टकारीफल और पीपल, प्रत्येकका समभाग चूर्ण सहतके साथ चटाना। कूठ, अतीस, कांकड़ाशिङ्गी, पीपल और जवासा, इन सबका चूर्ण सहतके साथ चटानेसे सब प्रकारकी खांसी आराम होती है। कण्टकारीका रस और काढ़ेमें मकरध्वज सेवन करानेसे कास और तत्संयुक्त ज्वर भी आराम होता है। कण्टकारीघृत सेवन करानेसे भी कास, श्वास आदि पीड़ामें विशेष

उपकार होता है। काम रोगोक्त कई मृदुवीर्य्य औषध और ज्वर रहनेसे ज्वरनाशक औषध थोड़ी मात्रा विचार कर देना। बच्चोंको पिसाब साफ न होनेसे अर्थात् मूत्रकृच्छ्र हो तो पीपल, मिरच, चीनी, सहत, छोटी इलायची, सैन्धव यह सब एकत्र मिलाकर चटाना। मुहमें घाव होनेसे सोहागा सहतमें मिलाकर रोज २।३ दफे लगाना। भेड़ीका दूध लगानेसे भी मुहका घाव जल्दी आराम होता है। कान पकनेसे अर्थात् कानमें पीप निकले तो गरम पानी या कच्चा दूध और पानी एकत्र मिलाकर पिचकारीसे कान धोना, फिर एक पतली सोकमें कपड़ा लपेटकर कान भीतरसे पोछकर २ ३ बूंद अतर डालना। महावरका पानी गरमकर कानमें भर देनेसे अथवा फिटकिरीका पानी कानमें देनेसे कानका पकना बन्द होता है। पामा और विचर्च्चिका आदि चर्म्मरोग होनेसे वही वही रोगनाशक प्रलेप और हमारा क्षतारि तैल आदि क्षतनिवारक तैल प्रयोग करना। बालक उपयुक्त मात्रा मोटा ताजा न हो तो अश्वगन्धाघृत सेवन कराना। थोड़े दिनका बालक स्तनपान न कर सकनेसे आंवला और हरीतकी चूर्ण घृत और सहत मिलाकर जीभमें घिसना। इस रीतिसे मुख साफ करदेनेसे बालक स्तनपान करसकता है।

बालकके औषधकी मात्रा। ऊपर लिखे चूर्ण और औषध की मात्रा एक मासके बालकको एक रत्ती और फिर हरेक माससें रत्ती रत्तीभर मात्रा बढ़ाना। एक वर्षसे अधिक उमरमें हरेक महीने एक एक मासा मात्रा बढ़ाना चाहिये।

पथ्यापथ्य। स्तन्यपायी बालकको जो जो रोग हो उसको दूध पिलानेवाली दाईको भी वही वही रोगका पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। बालकको किसी

रोगमें उपवास कराना उचित नहीं है। उपवास देनेके लायक रोगमें अल्प आहार देना चाहिये। अतिसार प्रभृति रोगमें गायके दूधके बदले बकरीका दूध पिलाना। यहभी अच्छी तरह हजम न हो तो एराकट और हमारा "सञ्जीवन खाद्य" खिलाना चाहिये।

स्तनपान विधि।

सद्योजात स्वस्थ बालकको पहिले पहल गायका दूध पिलाना नहीं चाहिये। स्तनदूध पान कराना ही यथेष्ट है। स्तनपान करानेका समय निर्दिष्ट करना अच्छा है। पहिले थोड़े दिन विशेष नियमसे न चलनेपर भी एक मासके बाद समय निर्देश करना उचित है। दिनको २ घण्टाके अन्तरपर और रातको ३ घण्टा अन्तरपर स्तन पान कराना चाहिये। तीन महीनेके बालकको दिनको चार बार और रातको तीन बार स्तनपान कराना। चार महीनेके बाद रातको दो बारसे अधिक स्तनपान करानेकी आवश्यकता नहीं है।

स्तनपान बन्द करना।

नौमाससे पहिले बालकको स्तनपान बन्द करना उचित नहीं है, एक वर्षके बाद स्तनपान बन्द करना अच्छा है। स्तनपान एकाएकी बन्द न कर क्रमशः बन्द करना चाहिये।

बालकके पीनेका दूध

अवस्थानुसार गायका दूध या बकरीका दूध थोड़ा थोड़ाकर बालकको पिलाना। गदहेका दूध पिलाना उचित नहीं है। सद्योजात बालकको दूधके बराबर पानी और चूनेका पानी मिला गरमकर थोड़ा मिश्री या चीनी मिलाकर पिलाना। प्रत्येक बार दूध तयार कर पिलाना। बालक सात दिनका होनेपर पानी न मिलाकर खाली चूनेका पानी मिलाना। डेढ़मासतक दूधके तीन भागका एक भाग चूनेका पानी मिलाना। फिर पांचवे महीने तक चार

भातका एक भाग चूनेका पानी मिलाना। इसके बाद चूनेका पानी मिलानेकी जरूरत नहीं रहती है।

प्रथम दो महीने तक दिनको ६ बार और रातको दो बार दूध पिलाना। अनियमित रूपसे बार बार दूध पिलाना उचित नहीं है। बालक अपनी इच्छासे जितना दूध पीवे उतनाही पिलाना चाहिये जोर-जार पिलानेसे नुकसान हो सकता है। दो मासकी उमरके बाद दिनको चार बा. और रातको एक दफे दूध पिलाना। ६।७ मास-की अवस्थामें अर्थात् सामनेका दो दांत निकलने पर दूधके सिवाय और भी हलका आहार थोड़ा थोड़ा कर देना चाहिये। दूध साबूदाना मोहनभोग सहने पर थोड़ा थोड़ाकर देना चाहिये। फिर दूध भात या क्षार थोड़ा देना उचित है। दो वर्षकी उमर न होनेतक भात या रोटी खानेको देना उचित नहीं है।

आवश्यकीय बातें।

बालकके सोनेका घर साफ और लम्बा चौड़ा होना चाहिये जिसमें अच्छी हवा प्रतिवाहित हो सके। जाड़ा और बरसातमें रातको घरका जंगला बन्द रखना तथा बालकको कुड़ता पहिराना, दूसरे मोसममें आवश्यक नहीं है। कुड़ता ढीला रहना चाहिये। सहनेपर ठण्डे पानीसे स्नान कराना चाहिये। ३।४ वर्षको उमर तक दिनको सोने देना उचित है। अपने आपसे चलना सीखनेसे पहिले जोर कर नहीं चलाना इससे अङ्ग विकृत होनेकी आशङ्का है। धमकाकर या भकाऊ आदि अद्भुत नामसे डराना उचित नहीं है। अकारण खेलाना, अधिक कुदाना मना है। खेलनेके उपयुक्त उमर तक खेलने देना।

शिशुचर्य्या।

वैद्यक-शिक्षा।

द्वितीय और तृतीय खण्ड।

परिभाषा।

परिभाषा।

आयुर्वेद शास्त्रोक्त औषधादि प्रस्तुत और प्रयोग करनेकी प्रणाली कई एक साधारण नियमोंके वश-वर्त्ती है। वही सब साधारण नियम जिसमें विस्तृत रूपमें लिखा जाय उसको परिभाषा कहते हैं। यहां परिभाषाध्यायके यावतीय सङ्क्षिप्त जानने लायक विषय विस्तृत रूपमें आलोचित होते हैं।

परिमाण विधि,—६ सर्षपका एक यव। ३ यव या ४ धानका १ रत्ती। ६ रत्तीका एक आना। १० रत्तीका एक मासा। (सुश्रुतके मतमें ५ रत्तीका एक मासा होता है) ४ माषाका १ शाण (आधा तोला) २ शाणका १ कोल (एक तोला)। २ कोलका १ कर्ष (दो तोला)। २ कर्षको एक शुक्ति (चार तोला)। २ शुक्तिका १ एक पल (आठ तोला)। २ पलका एक प्रसृति (एक पाव)। २ प्रसृतिका एक अंजुली या कुड़व (आधा सेर)। २ कुड़वका एक शराव (एक सेर)। २ शरावका एक प्रस्थ। ४ प्रस्थका एक आढ़क (८ सेर)। ४ आढ़क एक द्रोण (३२ सेर)। दो द्रोणका एक कुम्भ (६४ सेर)। १०० पलका एक तुला (१२॥ सेर)। २००० पलका एक भार। २ कुम्भका एक द्रोणी या गोणी (३ मन ८ सेर)। ४ गोणीका एक खारी (१२ मन ३२ सेर)।

अनुक्त विषयमें ग्रहण विधि।

जिस औषधके निर्द्दिष्ट द्रव्य समूहोंमें जिसका परिमाण लिखा न हो वह और सब दवायोंके परिमाणमें लेना चाहिये। औषध सेवनका समय निर्द्धारित न रहनेसे सबेरे औषध सेवन करना। द्रव्यका कौन अंश लेना होगा लिखा न रहनेसे जड़ लेना। औषध पाक करने या रखनेके पात्रका उल्लेख न हो तो मिट्टीका पात्र लेना। द्रव्यका मूल लेते वखत जो सब मूल बड़े और जिसमें काठ है उसका काष्ठभाग छोड़कर छाल लेना तथा जो सब मूल छोटे और पतले है उसका काष्ठभाग समेत लेना चाहिये। अंग विशेषका उल्लेख रहनेसे वह अङ्ग ग्रहण करना। द्रव पदार्थ विशेषका उल्लेख न रहनेसे पानी लेना चाहिये। द्रव्य विशेषका विशेष परिचय लिखा न रहनेसे उत्पल शब्दमें नीलोत्पल पूरीष रसमें गोमय रस, चन्दनमें लाल चन्दन, सर्षपमें सफेद सरसों, लवणमें सेन्धा नमक, मूत्रमें गायका मूत्र, दूध और घीमें गायका दूध घी लेना चाहिये। मांस ग्रहणमें चौपाये जन्तुमें स्त्रीजातिका और पक्षीमें पुंजातिका मांस ग्रहण करना। किन्तु छाग मांसमें नपुंसक छागका मांस और शृगाल मांसमें पुंशृगालका मांस ग्रहण करना। नपुंसक छागका अभाव होनेसे बन्ध्या छागीका मांस लेसकते हैं। प्राय सब औषध नया ग्रहण करना उचित है। सिर्फ गुड़, घृत, सहत, धनिया, पीपल और हींग ; यह सब द्रव्य पुराना लेना चाहिये।

द्रव्यका प्रतिनिधि।

पुराने गुड़के अभावमें नया गुड़ चार पहर धूपमें रखकर लेना। सौराष्ट्र मृत्तिकाके अभावमें पङ्क-पर्पटी, तगर पादुकाके अभावमें हर-सिङ्गार, लोहेके अभावमें मण्डूर, सफेद सरसोंके अभावमें लाल सरसो, चाभ और गजपिप्पलीके अभावमें पिपलामूल, मुर्व्वातिका

अभावमें लालमिट्टी, कुङ्कुमके अभावमें हरिद्रा, मुक्ताके अभावमें सीपका चूर्ण, हीराके अभावमें चुन्नी या कौड़ीका भस्म, स्वर्ण और रौप्यके अभावमें लौहभस्म, पुष्करमूलके अभावमें कूठ, रास्नाके अभावमें बांदरी जड़ी, रसाञ्जनके अभावमें दारुहल्दीका काढ़ा, पुष्पके अभावमें नरम फल, मेदके अभावमें असगन्ध, महा-मेदके अभावमें अनन्तमूल, जीवकके अभावमें गुरिच, ऋषभकके बदलेमें बिदारीकन्द, ऋद्धिके बदलेमें बरियारा, वृद्धिके बदलेमें गोरखचाकुला, काकोली और क्षीरकाकोलीके अभावमें शतावर, रोहितक छालके बदलेमें नीमकी छाल, कस्तूरीके बदलेमें खटाशी और अन्यान्य दूधके अभावमें गायका दूध लेना चाहिये। इन सब द्रव्योंके सिवाय और किसी द्रव्यके अभावमें उस द्रव्यके समान गुणवाला दूसरा द्रव्य ग्रहण करना चाहिये। भेलावा असह्य होनेसे उसके बदलेमें लालचन्दन देना।

काढ़ा बनानेकी विधि।

काढ़ेमें जितनी दवायें हों वह सब समभाग मिलाकर दो तोले होनी चाहिये। जैसे दो द्रव्यमें प्रत्येक एक तोला, चार द्रव्यमें प्रत्येक आधा तोला। इसी नियमसे जितनी दवायें हों सब मिलाकर दो तोले लेना। फिर वह सब द्रव्य ३२ तोले पानीमें औटाना तथा ८ तोले पानी रहते उतारकर छान लेना। काढ़ेमें कोई वस्तु मिलाकर लेना होतो काढ़ा पीती बख्त मिलाना चाहिये। मिलानेवाली दवाकी मात्रा आधा तोला। एक द्रव्य मिलाना हो तो ॥) तोला, दो द्रव्य मिलाना हो चार चार आनेभर, पर रोगीके बलके अनु-सार इसकी मात्रा कमभी कर सकते हैं। काढ़ा एक दिन बनाकर २।३ दिन पीना उचित नहीं है। रोज नये द्रव्यका नया काढ़ा बनाना चाहिये।

शीतकषाय प्रस्तुत विधि।

शीतकषाय बनाना होतो वैसही दो तोले द्रव्य कूटकर १२ तोले पानीमें पहिले दिन शामको भिंगो रखना तथा सबेरे छानकर व्यवहार करना। फांट कषाय प्रस्तुत करना हो तो वही कूटी हुई दवायें ४ चौगूने गरम पानीमें थोड़ी देर भिंगो रखना फिर छानकर व्यवहार करना। कच्चो या सूखी दवा पानीमें पीस लेनेसे उसको कल्क कहते हैं। कच्चा द्रव्य कूटकर उसका रस लेनेको स्वरस कहते है। काढ़ेसे स्वरसतकको पञ्चकषाय कहते हैं। किसी द्रव्यका रस पुटपक्कमे लेना हो तो वही सब द्रव्य कूटकर जामुन या बड़के पत्तेमें लपेट रस्सोसे मजबूत बांधकर उपरसे एक या दो अङ्गुल मिट्टी लपेटना। फिर सुखाकर आगमें जलाना आगकी गरमीसे मिट्टी लाल रंग होनेपर भीतरका द्रव्य निकालकर रस निकाल लेना।

चूर्ण औषध प्रस्तुत विधि।

औषधका चूर्ण करना हो तो, सब द्रव्य अलग अलग अच्छी तरह सुखा और कूटकर कपड़ेसे छान लेना; फिर जो सब द्रव्य एकत्र मिलाना हो वह सब एक एक कर निर्दिष्ट परिमाणसे लेकर एकत्र मिलाना। किसी चूर्णमें भावना देनेकी व्यवस्था रहने पर उसमे निर्दिष्ट द्रव्यकी भावना देकर सुखाकर चूर्ण करना।

वटिका औषध प्रस्तुत विधि।

वटिका बनाना हो तो, निर्दिष्ट द्रव्य समूहके चूर्णमें द्रव पदार्थ विशेष की भावना देकर खलमें अच्छी तरह घोटना, फिर यव, सर्षप या गुंजा आदिके बराबर गोली बनाना। किसी द्रव पदार्थ का उल्लेख न रहनेसे केवल पानीमें खल करना। गोलीका परिमाण न लिखा हो तो प्राय: एक रत्ती परिमाण गोली बनाना।

भावना देनेकी रीति—जो सब चूर्ण पदार्थमें भावना देना हो, वह किसी द्रव्यके रस या काढ़ेमें अच्छी तरह भिंगोकर दिनको धूप और रातको ओसमें रखना। ऐसही जिस औषधमें जितने दिन भावना देना हो उतने दिन तक रोज भिंगोकर दिनको धूप और रातको ओसमें रखकर खल करना।

मोदक प्रस्तुत विधि।

जो सब मोदक औषध पाक करना नहो है, वह निर्द्दिष्ट परिमित अथवा अनिर्द्दिष्ट स्थलमें चूर्ण द्रव्यका दूना गुड और समान सहतमें खलकर निर्द्दिष्ट मात्रासे गोली बनाना, तथा जो सब मोदक पाक करना हो, उसमें पहिले गुड़ या चीनी चूर्णके दूने पानीमें औटाना। पक्की चाशनी हो जानेपर नीचे उतारकर चूर्ण उसमें डालकर अच्छी तरह मिलाना चाहिये। किसी किसी जगह चासनी आगपर रहते ही चूर्ण मिलाते है। मोदक प्रस्तुत हो जानेपर घृत भावित बरतन या आधुनिक चीनी मिट्टीके बरतनमें रखना।

अवलेह प्रस्तुत विधि।

अवलेह बनाना हो तो पहिले काढ़ा तयार कर फिर उसे औटाकर गाढ़ा करना। चीनीसे अवलेह बनाना हो तो चूर्ण पदार्थकी चौगूनी चीनी या गुड़ देकर बनाना हो तो चूर्णके दूने गुडका रस बना लेना। किसी द्रव पदार्थके साथ अवलेह बनाना हो तो वह भी चूर्णका दूना लेना चाहिये। मोदककी तरह अवलेहकी भी चाशनी पक्की होनी चाहिये।

गुग्गुल पाक विधि।

पहिले गुग्गुलका मल आदि पदार्थ निकालकर दशमूलके गरम काढ़ेमें मिलाकर छान लेना अथवा गुग्गुलु कपड़ेमें ढीला बांधकर दोला यन्त्रमें अर्थात् हाड़ीमें झुला देना, गायका दूध या त्रिफलाके काढ़ेमें पाक-

कर छान लेना, फिर धूपमें सुखाकर घी मिलाना। इस रीतिसे गुग्गुलु शोधा जाता है। यही शोधित गुग्गुलु आगमें पाक करनेका उपदेश हो तो करना, उपदेश न हो तो मत करना, निर्दिष्ट चूर्णादि पदार्थके साथ मिलालेनेहीसे गुग्गुलु तयार होता है।

पुटपाक विधि ।

एक गज गहिरा एक गढ़ा खोदना, फिर उसका तीन भाग कण्डेसे भरना तथा उसके उपर दवाका मुषा रखकर उस मुषिके उपरसे कण्डा रख गढ़ा भर देना, फिर उसमें आग लगाना। जब सब कण्डा राख हो जाय तब वह मुषा बाहर कर उसके भीतरकी दवा निकाल लेना। मुषावस्त्र और मिट्टीसे अच्छी तरह लपेटना चाहिये। गढ़ेका मुह एक हाथ और नीचेका भाग १॥ हाथ चौड़ा होना चाहिये। इसीको गजपुट कहते हैं।

बालुका यन्त्रमें औषध पाक विधि ।

बालुका यन्त्र या लवण यन्त्रमें औषध पाक करना हो तो एक हांडीमें बालु या लवण भरना तथा उसके उपर औषधिका मुषा रखकर निर्दिष्ट समयतक आगपर चढ़ाना। मुषिको कपड़ा और मिट्टीसे लेप करना।

सुरा प्रस्तुत विधि ।

सुरा बनाना हो तो, कलवारकी तरह शराब चुआनेवाला यन्त्र बनाकर उससे चुआ लेना। आसव और अरिष्ट चुआना नहीं पड़ता है केवल निर्दिष्ट समयतक धान्यराशि या जमीनमें गाड़कर सड़ा लेनेसे तयार होता है।

स्नेहपाक विधि ।

तैल और घृत पाक करनेसे पहिले उसको मूर्च्छा करना आवश्यक है। तिलके तेलको मूर्च्छा करना हो तो, लोहेकी कढ़ाई या दूसरे किसी पात्रमें तेल हलकी आंचपर चढ़ाना; तेल निस्फेन होजानेपर नीचे

उतार कर थोड़ा ठण्ढा होनेपर, उसमें पिसी हुई हल्दीका पानी फिर वैसही मठोज और क्रमशः पिसा हुआ लोध, मोथा, नालुका, आंवला, बहेड़ा, हरीतकी, केवड़ेका फूल, बड़कोसोर और बाला ; यह सब द्रव्य थोड़ा थोड़ा मिलाकर तेलका चौगूना पानी देकर पाक करना ; थोड़ा पानी रहतेही नीचे उतारना। फिर ७ दिनतक कोई पाक नही करना। मूर्च्छाके लिये मजीठ आदि द्रव्योंके वजन,—जितना तेल हो उसके १६ भागका एक भाग मजीठ ; औ दूसरे द्रव्य मजीठका चौथाई भाग लेना, अर्थात् तेल ४ सेर हो तो मजीठ एक पाव और दूसरे द्रव्य सब एक एक छटांक लेना चाहिये।

वायुनाशक तेलपाक विधि।

वायुनाशक तेल पाक करनेमें मूर्च्छित तेलमें तेलका आठवां भाग आम, जामुन, कदंब और बड़े नीबू का पत्ता चौगूने पानीमें औटाना एक भाग पानी रहते उतारकर छानकर उसी काढ़ेके साथ मूर्च्छित तेल और एक दफे औटाना चाहिये।

सर्षप तेल मूर्च्छा विधि।

सर्षप तेलको मूर्च्छामें यथाक्रम हल्दी, मजीठ, आंवला, मोथा, बेलकी छाल, अनारकी छाल, नागकेशर, कालाजीरा, बाला, नालुका और बहेड़ा ; यह सब द्रव्य, और रेंड़ीके तेलकी मूर्च्छामें मजीठ, मोथा, धनिया, त्रिफला, जयन्ती पत्र, बनखजूर, बड़कोसोर, हल्दी, दारुहल्दी, नालुका, केवड़का फूल, दही और कांजी, यह सब देना चाहिये। ४ सेर सरसोंके तेलमें मजीठके सिवाय बाकी सब द्रव्य दो दो तोले और ४सेर रेंड़ीके तेलमें मजीठके सिवाय अन्यान्य द्रव्य ४तोले मात्रासे मिलाना। मजीठ सब तेलमें समान परिमाण से देना उचित है, अर्थात् ४ सेर तेलमें एक पाव मजीठ देना।

घृतमूर्च्छा में घी आगपर चढ़ा निस्फेन होनेपर नीचे उतार थोड़ा ठण्ढा होनेपर पहिले हलदीका पानी, फिर नीबूका रस और उसके बाद पिसी हुई हरीतकी, आंवला, बहेड़ा, और मोथा डालना, तथा तैलकी तरह चौगूना पानी देकर फिर औटाना चाहिये। ४ सेर घीमें सब द्रव्य ८ तोले मिलाना।

घृतमूर्च्छा विधि।

मूर्च्छाके द्रव्य समूह अच्छी तरह छान कर, तेल या घीके साथ क्काथ पाक करना चाहिये जितने क्काथके साथ पाक करनेका विधि निर्द्दिष्ट हो उसके प्रत्येकके साथ अलग अलग पाक करना चाहिये। पहिले क्काथ द्रव्य तैलादिका दूना लेकर उसके आठ गूने पानीके साथ अर्थात् ४ सेर क्काथ द्रव्य ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहने पर छान लेना; फिर उसी काढ़ेके साथ तैलादि पाक करना। क्काथ पाकके बाद विधिके अनुसार दूध, दही, कांजी, गोमूत्र और रस आदि द्रव पदार्थके साथ तैलादि पाक करना। ये सब द्रव्यका परिमाण निर्द्दिष्ट न रहनेसे प्रत्येक द्रव्य स्नेहके समान लेना। किन्तु क्काथादि और कोई द्रव पदार्थके साथ पाक करनेकी विधि न रहनेसे केवल दूधहीके साथ विहित रहनेसे स्नेह पदार्थका चौगूना दूध लेना चाहिये। कोई कोई दूध पाकके समय दूधमें चौगूना पानी मिलाकर पाक करनेका उपदेश देते है। इसके बाद कल्क पाक करना उचित है। सूखा या कच्चा द्रव्य पानीमें पीस लेनेसे उसको कल्क कहते है। स्नेह पदार्थके चार भागका एक भाग कल्क द्रव्य उसके चौगूने द्रव पदार्थके साथ मिलाकर स्नेह पाक करना; अर्थात् ४ सेर स्नेह पदार्थमें १ सेर कल्क द्रव्य, ४सेर द्रव पदार्थके साथ मिलाना। कल्क द्रव्यके साथ किसी द्रव पदार्थ

आवश्यकीय बातें।

का उल्लेख न रहनेसे चौगूने पानीके साथ कल्क पाक करना। कल्क पाक करती वख्त जब कल्क द्रव्य अङ्गुलोंसे बत्ती या गोली बन जाय और आगमें देनेसे किसी तरहका शब्द न हो तो पाक शेष जानना। तब चुल्हेसे नीचे उतार रखना और सात दिनके बाद कल्क द्रव्य छान लेना।

अधिकांश तेलमें सबसे पीछे एक दफे गन्धपाक करनेकी विधि है। कूठ, नालुका, खटासी, खसकी जड़, सफेद चन्दन, जटामांसी, तेजपत्ता, नखी, कस्तूरी, जायफल, शीतलचीनी, कुङ्कुम, दालचिनी लताकस्तूरी बच, छोटी इलायची, अगरु, मोथा, कपूर, गठिवन, धूप सरल, गुंदबरोसा, लौंग, गन्धमात्रा, शिलारस, सोवा, मेथी, नागर मोथा, शठी, जाविची, शैलज, देवदारु और जीरा यह सब तथा गन्धद्रव्योंमें छडोला, कुङ्कुम, नखी, खटासी, इलायची, सफेद चन्दन, कस्तूरी, और कपूरके सिवाय और सब द्रव्य पीसकर या चूर्ण बनाकर कल्क पाककी तरह चौगूने पानीमें औटाना। खटासी पाकके वख्त तेलमें देना और सीज जानेपर निकाल डालना। पाक शेष होनेपर छडोला, कुङ्कुम, नखी, इलायची, सफेद चन्दन और कस्तूरी यह सब द्रव तेलमें डालकर पांच दिनके बाद छान लेना। घृत पाकमें गन्ध पाककी विधि नहो है।

गन्धपाक विधि।

रोग और रोगीकी अवस्थानुसार भिन्न भिन्न समयमें औषध सेवन कराना चाहिये। पित्त और कफके प्रकोपमें तथा विरेचनादि शुद्ध कार्य्यके लिये सबेरे औषध सेवन कराना चाहिये। अपान वायु दूषित होनेसे भोजनसे पहिले, समान वायुके प्रकोपमें भोजनके मध्यमें अर्थात् भोजन करती वख्त, व्यान वायु कुपित होनेसे भोजनके

औषध सेवन काल।

बाद, उदान वायुके प्रकोपमें ग्रासको भोजनके साथ और प्राण वायुके प्रकोपमें ग्रासको भोजनके बाद औषध सेवन कराना चाहिये। हिक्का, आक्षेप, और कम्प रोगमें भोजनमें पहिले और पीछे औषध सेवन करानेका उपदेश है। अग्निमान्द्य और अरुचि रोगमें भोजन के साथ औषध सेवन कराना चाहिये। अजीर्ण नाशक औषध रातहीको सेवन करने की विधि है। तृषा, वमि, हिक्का, श्वास और विष रोगमें मुहुर्मुहु औषध सेवन कराना आवश्यक है।

साधारणत: प्राय सब औषध सबेरेही सेवन करानेको प्रथा है, पर २।३ औषध रोज सेवन कराना हो तो विचार कर कोई सबेरे कोई उसके २।३घण्टे बाद और कोई तीसरे पहरको दिया जाताहै।

बहुतेरी दवायें सेवन करनेके बाद कोई एक पतला पदार्थ पीने को विधि है, उसीको अनुपान कहते हैं।

अनुपान विधि।

किन्तु साधारणत: अब महत प्रभृति जो सब द्रव पदार्थमें औषध मिलाकर सेवन कराया जाता है वही अनुपान शब्दसे व्यवहृत होता आया है। औषध मात्र अनुपान विशेषके साथ देनेसे वह थोड़ही देरमें अधिक कार्य्यकारक होता है; इससे प्राय: सब औषध अनुपान विशेषके साथ सेवन कराना चाहिये। जो रोग नाशक औषध हो अनुपान भी वही रोग नाशक व्यवस्था करना चाहिये। कफ ज्वरमें अनुपान सहत, पानका रस अदरखका रस और तुलसी पत्रके रसमें देना। पित्त ज्वरमें परवरका रस, खेतपापड़ेका रस या काढ़ा, गुरिचका रस और नीमकी छालका रस या काढ़ा। वात ज्वरमें सहत, गुरिचका रस और चिरायता भिंगोया पानी आदि का अनुपान देना। विषम ज्वरमें सहत, पीपलका चूर्ण, तुलसीके पत्तेका रस, हरसिंगारके पत्तेका रस, बेलके पत्तेका रस और गोलमरिच का

चूर्ण आदि अनुपान देना। अतिसार रोगमें बेलको छाल, धवईका फूल और कुरैया। कास, कफप्रधान श्वास और प्रतिश्याय आदि रोगमें अडूसेका पत्ता, तुलसीका पत्ता, पान और अदरखका रस; अडूसेकी छाल, कटेरी, मुलेठी, कटेली, कटफल और कूठ आदि द्रव्यका काढ़ा और बच, तालिश पत्र, पीपल, काकड़ाशिङ्गी और वंशलोचन आदिका चूर्ण। वायुप्रधान श्वासमें बहेड़ेका काढ़ा या बहेड़ेके बीजका चूर्ण और मधु। रक्तभेद, रक्त वमन और रक्तस्राव दूर करनेके लिये अडूसेके पत्तेका रस, विशल्यकर्णीका रस या काढ़ा, अनारके पत्तेका रस, कुकुरसोंकेका रस, गुलरका रस, कुरैयाके छालका काढ़ा, दूबका रस, बकरीका दूध और मोचरसका चूर्ण। शोथ रोगमें बेलके पत्तेका रस, सफेद पुनर्नवा का रस या काढ़ा, मूर्वा मूलीका काढ़ा और गोलमिरच चूर्ण। पाण्डु और कामला आदि रोगमें खतपापड़ाका रस या गुरिचका रस आदि। मलभेद करानेके लिये त्रिवृत मूलका चूर्ण, दन्तीमूल चूर्ण, सनाय भिंगाया पानी या काढ़ा, कुटकीका काढ़ा, हरीतकी भिंगाया पानी या गरम दूध। मूत्र विरेचन अर्थात् पिशाब साफ करानेके लिये स्थलपद्मके पत्तेका रस, पत्थरचूरके पत्तेका रस, सोरा भिंगाया पानी, कबाबचीनीका चूर्ण और गोक्षुर बीज, कुशमूल, काशमूल, खसकी जड़ और काली उखके जड़का काढ़ा आदि। बहुमूत्र निवारणके लिये गुलरके बीजका चूर्ण, जामुनके बीजका चूर्ण, मोचरस, कच्ची हलदीका रस, आंवलेका रस, नरम सेमलके मुसलीका रस, दारुहल्दीका चूर्ण, सलोठ और असगन्धका काढ़ा, घिसा सफेद चन्दन, गोंद भिंगाया पानी, कदम छालका रस और कसेरूका रस। प्रदर रोगमें गुरिचका रस, अशोक छालका काढ़ा और रक्त

शोधक अन्यान्य औषध। रजःस्राव करानेके लिये मुसब्बर, उलटा कमल, लताफिटकिरीका पत्ता और अड़हुलके फूलका रस। अग्निमान्द्य रोगमें अजवाइन, अजमोदा और सौंफ भिंगोया पानी, तथा पीपल, पिपला मूल, गोलमिरच, चाभ, सोंठ और हींगका चूर्ण। क्रिमि रोगमें विड़ङ्ग चूर्ण, अनारके जड़का काढ़ा और अनारसका पत्ता, खजूरका पत्ता, चम्पाका पत्ता और निसिन्दा पत्तेका रस। वमन रोगमें बड़ी इलायचीका काढ़ा या चूर्ण। वायु रोगमें त्रिफला भिंगोया पानी, सतावरका रस, बरियारेका काढ़ा, बिदारीकन्द, आमला या त्रिफला भिंगोया पानी। शुक्र-वृद्धि और शरीर पुष्टिके लिये मक्खन, दूधकी मलाई, दूध, केंवाच-की बीज, बिदारीकान्द, असगन्ध, सेमरकी मुसलीका रस और अनन्तमूलका काढ़ा अनुपान व्यवस्था करना।

रोग और रोगीकी अवस्था विचारकर उक्त अनुपानोंमें काढ़ा या भिंगोया हुआ पानी एक छटांक, द्रवका रस २ तोले या एक तोला और चूर्ण एक आना या आध आनेभर प्रयोग करना। चूर्ण अनुपानके साथ उपयुक्त सहत मिलाना चाहिये। पित्तके आधिक्यके सिवाय अन्यान्य सब अवस्थामें सहत देना चाहिये। वटिका और चूर्ण औषधमें ही यह सब अनुपान व्यवहृत होता है। मोदक, गुग्गुलु और गुड़ आदि औषध, अवस्था विशेषके अनुसार ठण्ढा पानी, गरम पानी और गरम दूधके साथ सेवन कराना। घृत केवल एक छटांक गरम दूध और चार आनेभर चीनीके साथ मिलाकर पीना चाहिये।

अवस्था। विशेष की अवस्था।

धातु आदिका शोधन और मारण विधि।

सर्व्वधातु शोधन विधि।

स्वर्णादि धातुका बहुत पतला पत्तर काटना फिर आगमें गरम कर यथाक्रम तैल, मट्ठा, कांजी, गोमूत्र और कुरथीके काढ़ेमें बुझाना, इसी प्रकार तीन बार करनेसे सब धातु शोधित होती है। रांगा जल्दी गल जाता है, इसमें इसका पत्तर न बनाकर केवल गलाकर तैलादि पदार्थोंमें बुझाना।

स्वर्णभस्म।

शोधित सोनेके पत्तरको कैंचीसे छोटा छोटा टुकड़ा कर काटना, फिर समभाग पारेके साथ मर्द्दन कर एक गोला बनाना। एक मिट्टीके कटोरेमें सोनेके वजन बराबर गन्धक चूर्ण रख उपर वह गोला रखना, फिर उपर से गंधक चूर्ण भर मिट्टीका लेप करना तथा ३० जङ्गली कण्डेके पुटमें फूकना। ठण्ढा होनेपर बाहर निकालकर फिर वैसही पारेके साथ खलकर गन्धक मिला पुटपाक करना। इसीतरह १४ बार मर्द्दन और पुटपाक करनेसे स्वर्णका भस्म तयार होता है।

रौप्य भस्म।

सोनेकी तरह चांदीका भी पत्तर बनाकर समभाग पारेके साथ मर्द्दन करना। फिर समानभाग हरिताल, गन्धक और नीबूके रसमें खल कर सोने की तरह फूकना। इसी तरह २१४ पुट देनेसे चांदीका भस्म तयार होता है।

ताम्रभस्म।

समभाग पारा और गन्धक की कज्जली बड़े नीबूके रसमें खलकर विशुद्ध ताम्बके पत्रमें इसी कज्जलीका लेपकर मिट्टीके बरतनमें रखना तथा उपरसे ढकना रख पुटपाकमें फूकना। पारा गन्धक के अभावमें बड़े नीबूके रसमें हिङ्गुल मिलाकर उसीका लेप करनेका भी उपदेश है। ताम्रभस्म तयार होनेपर उसका अमृतीकरण करना चाहिये, इससे वमन, भ्रम और विरेचन आदि ताम्र सेवन जनित उपद्रव नहीं होता। जारित ताम्र किसी खट्टे रसमें खलकर एक गोला बनाना फिर वह गोला एक सूरणके भीतर रख सूरणके चारों तरफ मिट्टी लपेट सुखाकर गजपुटमें फूकना, इसीको अमृतीकरण कहते हैं। पित्तल और कांसाभी इसी रीतिसे भस्म होता है।

वङ्गभस्म।

लोहेकी कढ़ाईमें रांगा गलाना और क्रमश: उसमें रांगके समान हलदी का चूर्ण, अजवाईनका चूर्ण, जीरेका चूर्ण, इमलीके छालका चूर्ण और पीपलके छालका चूर्ण एक एक कर डालना तथा लगातार चलाते रहना। सफेद रंग और साफ चूर्ण हो जानेपर रांगेका भस्म तयार हुआ जानना। दस्ता भी इसी रीतिसे भस्म होता है।

सीसक भस्म।

लोहेकी कढ़ाईमें सीसा और जवाखार एकत्र धीमी आंचपर चढ़ाना, सीसेकी राख न होनेतक बार बार उसमें जवाखार मिलाकर हिलाना चाहिये। लाल रंग होजाने पर नीचे उतार कर पानीमें धो फिर आंचपर सुखा लेना। इस रीतिसे सीसेका पीला भस्म तयार होता है। काला भस्म करना हो तो, सीसा आंचपर गल जानेसे

मैनसिल का चूर्ण मिलाकर चलाना जब धूलिकी तरह हो जाय तब नीचे उतार रखना, फिर गन्धक का चूर्ण मिलाकर नीबूके रसमें खलकर पुटपाक करना। यह दोनो प्रकारका भस्म औषधादिमें प्रयोग होता है।

पूर्व्वोक्त विधिके अनुसार लोहा शोधकर अर्थात् लोहेका पत्र एक एकबार गरम कर क्रमशः दूध, कांजी, गोमूत्र और त्रिफलाके काढ़ेमें तीन तीनबार बुझाना। दूध, कांजी और गोमूत्र लोहेका दूना और लोहेका आठगूना त्रिफला, चागूने पानीमें औटाना एक भाग पानी रहने पर छान लेना। इसी तरह निषेक कार्य्यके बाद लोह-पत्रका चूर्णकर १० बार गजपुटमें फूकना, प्रत्येक बार गोमूत्रको भावना देना चाहिये। लोहा जितनी बार फूंका जायगा उतनही उसका गुणभी अधिक होगा। सहस्र पुटित लौह सबसे अधिक उपकारी और सब कार्य्यमें प्रशस्त है।

लौह भस्म।

भस्मके लिये कृष्णाभ्र लेना। पहिले कृष्णाभ्र आंचमें जलाकर दूधमें देना फिर तबक अलग अलग कर चौराईके रसमें या किसी अम्ल रसमें ८ पहर भावना देनेसे अभ्र शोधित होता है। फिर वही शोधित अभ्रके चार भागका एक भाग शालिधान्यके साथ एक कम्बलमें बांधकर तीन दिन पानीमें भिंगो रखना, फिर हाथसे मर्द्दन करनेसे बहुत छोटा छोटा बालूकी तरह अभ्रकण निकलता है। वही भस्म करने योग्य है। इस अभ्रको धान्याभ्र कहते हैं। धान्याभ्र गोमूत्रमें मर्द्दन कर गजपुटमें फूंकनेसे अभ्रभस्म तयार होता है। जबतक अभ्रभस्मका चन्द्र अर्थात् चमकीला अंश नष्ट न होजाय तबतक औषधादिमें व्यवहार करना उचित नहीं है।

अभ्र भस्म।

सहस्रपुटित अभ्र सब काममें प्रयोग करना चाहिये। अभ्रभस्मको अमृतीकरण विधि—त्रिफलाका काढा २ सेर, गाइका घी एक सेर और जारित अभ्र सवासेर यह सब द्रव्य एकत्र लोहेकी कढ़ाईमें धीमी आंचपर चढ़ाना, पाक शेषमें चूर्ण हो जानेपर अमृतीकरण शेष हुआ जानना।

मण्डूर। लौह जलाती वक्त उसमेंसे जो मैल निकलता है, उसको मण्डूर कहते है। सौवर्षसे अधिक दिनका पुराना मण्डूर औषधके लिये ग्रहण करना। ६० वर्षका पुराना भी ले सकते हैं, किन्तु इससे कम दिनका मण्डूर कदापि नहो लेना। मण्डूर आगमें सात बार गरम कर गोमूत्रमें बुझाना। फिर वही मण्डूर चूर्णकर गजपुटमें फूंकनेसे औषधके उपयोगी होता है।

स्वर्णमाक्षिक। तीनभाग स्वर्णमाक्षिक और एक भाग सैन्धा लवण बड़े नीबूके रसमें मर्द्दन कर लोहपात्रमें पाक करना, पाकके समय बार बार हिलाना। लौह पात्र जब लाल हो जाय तब स्वर्णमाक्षिक विशुद्ध हुआ जानना। फिर वही स्वर्णमाक्षिक कुरथीके काढ़ेमें किम्वा तिलके तेलमें अथवा मठ्ठा किम्वा बकरीके दूधमें मर्द्दनकर गजपुटमें फूकना। रौप्यमाक्षिक कांकरोल, मेढाशृङ्गी और बड़े नीबूके रसमें भिंगोकर तेज धूपमें रखनेसे विशुद्ध होता है।

तुतियाकी शोधन विधि। बड़े नीबूके रसमें खलकर लघु पुटमें पाक कर तीन दिन दहीके पानीकी भावना देनेसे तुतिया शुद्ध तथा औषध के काम लायक होती है।

गोमूत्रका तरह गन्ध, काला रंग, तिक्त और कषाय रस,

शिलाजीत शोधन।

शीतल, स्निग्ध, मृदु और भारी हो वही शिलाजीत लेना। शिलाजीत पहिले एक पहर गरम पानीमें भिंगो रखना, फिर कपड़ेसे एक मिट्टीके बरतनमें छानकर दिनभर धूपमें रखना। शामको पानीके उपरवाला मलाईकी तरह पदार्थ एक बरतन में निकाल लेना, इसी तरह रोज धूपमें रखकर उसमेंकी सब मलाई लेना। यही मलाई शोधित शिलाजीत है। असल शिलाजीत आगमें देनेसे लिङ्गकी तरह उपर को उठता है तथा उसमेंसे धूंआ नही निकलता।

सिन्दूर शोधन—दूध और किसी खट्टे रसकी भावना देनेसे सिन्दूर शुद्ध होता है।

रसाञ्जन शोधन।

रसाञ्जन चूर्ण बड़े नीबूके रसमें मिलाकर दिनभर धूपमें रखनेसे अथवा पानीमें मिलाकर छान लेनेसे भी शोधित होता है।

सोहागा शोधन—आगपर रख इसका लावा हो जानेसे यह शुद्ध होता है। फिटकिरी भी इसी तरह शुद्ध होती है।

शङ्खादि शोधन—शङ्ख, शुक्ति (सीप) और कपर्दक (कौड़ी) कांजीमें एक पहर दोला यन्त्रमें औटानेसे शुद्ध होता है। तथा मिट्टीके बरतनमें रख आगमें जला लेनेसे भस्म तयार होता है।

समुद्रफेन शोधन—कागजी नीबूके रसमें पीसनेसे समुद्रफेन शुद्ध होता है।

गेरुमिट्टी—गायके दूधमें घिसनेसे अथवा गायके घीमें भून लेनेसे गेरुमिट्टी शुद्ध होता है।

हिराकस—भङ्गरैयाके रसमें एक दिन भिंगोनेसे हिराकस शुद्ध होता है।

खर्पर।

सात दिन दोला यन्त्रमें गोमूत्रके साथ औटानेसे खपरिया शुद्ध होता है, फिर आगपर चढ़ाना, गल जानेपर क्रमशः सैन्धव चूर्ण देना और पलासको लकड़ीसे चलाना, राखको तरह हो जानेपर नीचे उतार लेनेसे खर्पर भस्म तयार होता है।

हीरक भस्म।

कटेलो की जड़में हीरा रखकर कुरथी या कोदोके काढ़ेमें तीन दिन दोला यन्त्रमें औटानेसे हीरा शुद्ध होता है। फिर वही हीरा आगमें खूब गरम कर हींग और सेन्धा नमक मिलाये कुरथीके काढ़ेमें डुबाना, इसी तरह २११ बार डुबानेसे हीराभस्म तयार होता है। वैक्रान्त भी इसी तरह शुद्ध और भस्म होता है।

अन्यान्य रत्न शोधन।

अन्यान्य रत्न जयन्ती पत्तेके रसमें एकपहर दोला यन्त्रमें औटा कर शुद्ध करना, फिर आगमें गरम कर यथाक्रम घिकुआरके रसमें, चौलाईके रसमें और स्तनदूधमें सात सात बार बुझानेसे भस्म तयार होता है।

मीठाविष शोधन—विषका छोटा छोटा टुकरा कर तीन दिन गोमूत्रमें भिंगोनेसे शुद्ध होता है, गोमूत्र रोज बदलना चाहिये। फिर उसकी छाल निकाल डालना।

सर्पविष शुद्धि—काले सर्पका विष पहिले सरसोंके तेलमें मिलाकर धूपमें सुखाना, फिर पानका रस, अगस्तीपत्रका रस और कूठके काढ़ेको यथाक्रम तीन तीन बार भावना देनेसे शुद्ध होताहै।

जयपाल शुद्धि—जमालगोटाके बीजके मध्यभागमें जो पतला पत्ता रहता है वह निकालकर दोलायन्त्रमें दूधमें औटानेसे शुद्ध होता है।

लांगलीविष—दिनभर गोमूत्रकी भावना देनेसे शोधित होताहै।

धतुरेका बीज—कूटकर गोमूत्रमें चार पहर भिंगो रखनेसे धतुरेको बीज शुद्ध होतो है।

अफीम—अदरखके रसको १२बार भावना देनेसे शोधित होताहै।

भांग—पहिले पानीसे खूब साफ धोकर सुखा लेना फिर दूध को भावना देकर सुखा लेनेसे शुद्ध होता है।

कुचिला—घोमें भून लेनेसे कुचिला शोधित जानना।

गोदन्त शोधन। एक हांड़ोमें थोड़ा गोबर रखना, उसके ऊपर एक पान रखकर गोदन्त रखना तथा हांड़ीका मुह बन्धकर कपड़ा और मिट्टीका लेपकर चार पहर आगमें रखनेसे गोदन्त उपरको संलग्न हो जायगा, वही विशुद्ध गोदन्त जानना। दारुमुज नामक विष हरितालको तरह शोधन करना।

भल्लातक शोधन—पक्का भेलावा जो पानीमें डूब जाय वही लेना, फिर ईटके चूर्णमें घिसनेसे शुद्ध होता है।

नखी शोधन। गोबरका रस या गोबर मिलाये पानीमें नखो औटाना, तथा धोकर सुखा लेना फिर घोमें भूनकर गुड़ और हरीतकीके पानीमें थोड़ी देर भिंगो रखनेसे शुद्ध होता है।

हींग शोधन—लोहेको कढ़ाईमें थोड़े घोमें भूनना, हिलाते हिलाते जब लाल हो जाय तब शुद्ध जानना।

नौसादर शोधन। नौसादर चूनके पानीमें दोला यन्त्रमें औटानेसे शुद्ध होता है। अथवा गरम पानीमें खलकर मोटे कपड़ेसे छान वह पानी एक बरतनमें रखना, ठण्ढा हो जानेपर नीचे जो पदार्थ जम जाय उसीको शुद्ध नौसादर जानना।

लोहेकी कलछीमें थोड़ा घी गरम कर उसमें गन्धक चूर्ण देना तथा गन्धक गल जानेपर पानी मिलाये दूधमें डालना। इसी तरह सब गन्धक गलाकर दूधमें डाल देना तथा अच्छी तरह धोकर सुखा लेनेसे गन्ध शोधित होता है।

गन्धक शोधन।

पहिले सफेद कोहड़ेके रसमें फिर क्रमशः चूनेका पानी और तेलमें एक एकबार दोला यन्त्रमें औटानेसे हरिताल शुद्ध होता है। वंशपत्र हरिताल केवल सात दिन चूनेके पानीको भावना देनेसे शुद्ध होता है।

हरिताल शोधन।

हिङ्गुल शोधन—हिङ्गुल चूर्ण नीबूका रस और भैसका दूध अथवा भेड़ीके दूधको सात बार भावना देनेसे शुद्ध होता है।

हिङ्गुलसे पारा निकलना। बड़े नीबूका रस अथवा नीमके पत्तेके रसमें एक पहर खलकर एक हांड़ीमें रखना तथा उसके उपर दूसरी हांड़ी पानी भरी रख संयोग स्थलको मिट्टीसे अच्छी तरह बन्द करना। उपरके हांड़ीका पानी गरम न हो इसलिये पानी बदलते रहना। इसी रीतिसे हिङ्गुलका पारा उपरवाली हांड़ीके पेंदीमें लग जायगा। उसको निकाल लेना। यह पारा बहुत शुद्ध जानना इसको स्वतंत्र रूपसे शोधन करना नहीं पड़ता।

हिङ्गुलसे पारा निकालना।

अन्यान्य पारा पहिले घिकुआर, चीतामूल, लाल सरसो, वृहती और त्रिफला इन सबके काढ़ेमें खल करना, फिर मकड़ीका जाला, ईटका चूर्ण, कालाजीरा, मेषरोम भस्म, गुड़, सेंधव और कांजीके साथ तीन दिन मर्द्दन करना। फिर पारेका चौथाई हिस्सा हरिद्रा चूर्ण

पारा शोधन।

और घिकुआरके रसमें मर्द्दन करना। साधारणत: इसी रीतिसे पारा शोधा जाता है।

पारा शोधित करनेमें कई प्रकार पातनक्रिया करना चाहिये।

शोधित पारेका ऊर्द्धपातन विधि।

तीनभाग पारा और एकभाग तांबा एकत्र बड़े नीबूके रसमें खलकर एक गोला बनाना, वह पिण्ड एक हांड़ीमें रख उसके उपर पानी भरी दूसरी हांड़ी रख संधिस्थान मिट्टीसे बन्द कर हांड़ी चूल्हेपर रखना। उपरके हांड़ीका पानी गरम होनेसे गरम पानी निकालकर ठण्ढा पानी देना। इस रीतिसे नीचेवाली हांड़ीका पारा जलभरी हांड़ीकी पेंदीमें लग जाता है, वही पारा ग्रहण करना। इसीको पारेकी ऊर्द्धपातन विधि कहते हैं।

पारेका अध:पतन विधि।

अध:पतन करना हो तो पहिले त्रिफला, सैजनकी बीज, चीतामूल, सैंधव और राई इन सब द्रव्योंके साथ पारा खलकर कीचकी तरह होने पर एक हांड़ीके बीचमें लेप करना। दूसरी पानीभरी हांड़ी पहिली हांड़ीपर औंधी रख संधिस्थान मिट्टीसे बन्द करना, फिर एक गढ़ेमें दोनो हांड़ी गाड़ उपरसे आगका थोड़ा अङ्गारा रखना। गरमी पाकर उपरके हांड़ीका पारा नीचेवाली पानीभरी हांड़ीमें गिर जायगा। इस प्रक्रियाको पारेका अध:पतन कहते हैं।

तिर्य्यक्‌पातन विधि।

तिर्य्यक्‌पातन, एक घड़ेमें शोधित पारा और दूसरे घड़ेमें पानीभर दोनोंके मुहपर मिट्टीका ढकना रख कपड़मिट्टीसे बन्द करना; फिर दोनो घड़ेके गलेमें छेदकर बांसकी नलीका दो भाग दो छेदमें लगा संधिस्थान मिट्टीसे बन्द करना। फिर पारेवाली हांड़ीमें आग

लगानेसे पारा नलीके रास्तेसे पानी भरे घड़ेमें चला आयगा। इसीको तिर्य्यक्पातन कहते है। पारेका यह तीन प्रकार पातन विधि होनेसे वह शुद्ध होता है।

कज्जली प्रस्तुत विधि।

शोधित पारा और शोधित गंधक समभाग अच्छी तरह खल करना, दोनो मिलकर काला चूर्ण हो जाय तथा पारेकी चमक बिलकुल जाती रहे तब कज्जली तयार हुई जानना। औषध विशेषमें गंधक दूना मिलाकर कज्जली बनानेको विधि। वहां पारेका दूना गंधक मिलाकर कज्जली बनाना, औषध बनानेके नियमोंमें कज्जली जहां नही लिखी है अलग अलग पारा और गंधक लिखा है वहां पारा और गंधकको कज्जली बनाकर व्यवहारमें लाना चाहिये।

रससिन्दूर।

शोधित पारा ४ भाग, शोधित गंधक एक भाग और क्षचिक गंधक एक भाग एक दिन खलकर कज्जली बनाना फिर एक काले कांचका दलदार बोतलका शिर थोड़ा काटकर लगातार तीनबार कपड़ा और मिट्टी लगाकर सुखा लेना, तिसके बाद उसमें कज्जली भरकर बालुभरी हांडीमें रखना। बोतलके गले तक बालु रहना चाहिये तथा हांड़ीके नीचे कानी अङ्गुली जासके इतना बड़ा छेद करना। फिर वह बालु भरी बोतलवाली हांड़ी चुल्हेपर चढ़ा, चार दिन तक आंच देना अर्थात् पहिले बोतलसे धूंआ निकलकर नीले रंगकी शिखा होगी फिर धूंआ वगैरह बन्द हो लाल रंगकी आंच निकले तब पाक शेष हो रससिन्दूर तयार हुआ है जानना, फिर नीचे उतार कर बोतलको तोड़ उपरकी तरफ लगा हुआ सिन्दूर रंगका पदार्थ निकाल लेना, इसीको रससिन्दूर कहते हैं।

सोनेके पत्तरका टुकड़ा ८ पल और पारा ८ पल पहिले खल करना फिर उसके साथ १६ पल गन्धक मिला खल करना; कज्जलो तयार होनेपर घिकुआरके रसमें खल करना। फिर रससिन्दूरको तरह बोतलमें भरकर तीन दिन बालुका यंत्रमें फूकना। रस-सिन्दूरको तरह इसकाभो पाक शेष अनुमान करना। मकर-ध्वजको पूरी मात्रा १ यव, यह अनुपान विशेषके साथ सब रोगोंमें प्रयोग होता है।

मकरध्वज प्रस्तुत विधि।

बालुभरो हांड़ोमें मिट्टीका एक भांड़ रख पहिले उसमें पारेका समभाग गंधक देना, गंधक गलकर तेल-को तरह हो जानेपर पारा देना, ऐसही क्रमश: पारा ६ गूना देनेपर बालुभरी हांड़ो नोचे उतार कर पारेका भांड अलग करना तथा उसके नोचे एक छेद कर पारा निकाल लेना। इसोको षड़गुण बलिजारित पारा कहते हैं। इससे मकरध्वज तयार होनेसे उसको षड़गुण बलिजारित मकरध्वज कहते हैं।

षडगुण बलिजारण विधि।

जो सब द्रव्योंको शोधन विधि लिखो गई है उसमें कोई भो दवा बिना शोधे दवायोंमें प्रयोग नहो करना तथा धातु आदि जो सब द्रव्य भस्म करनेको विधि लिखो है वह सब द्रव्यका भस्म प्रयोग करना। अन्यथा प्रयोग करनेसे विविध अनिष्ट होता है।

बिना शोधी द्रव्यका अनिष्ट।

यन्त्र-परिचय।

औषध तयार करनेके लिये नानाप्रकार के यंत्रकी जरूरत पड़ती है। यहां हम सब प्रकारके यंत्रोंको तस्वीर और नाम ब्योरेवार लिखते हैं।

एक हांड़ीमें पानी भरकर गढ़ेमें रखना, तथा दूसरी हांड़ीमें दवा लपेटकर, पहिली हांड़ीके उपर औंधी रख संयोग स्थलको मिट्टीसे बन्द करना। फिर उपरवाली हांड़ीके उपर आगका आंगारा रखनेसे उसका औषध नीचवाली पानीभरी हांड़ीमें क्रमश: गिर जायगा। पारेको अध:पतन विधि इसी यंत्रसे होती है।
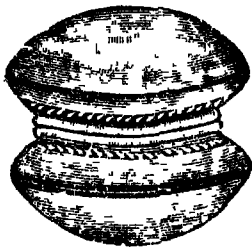
भूधर यंत्र
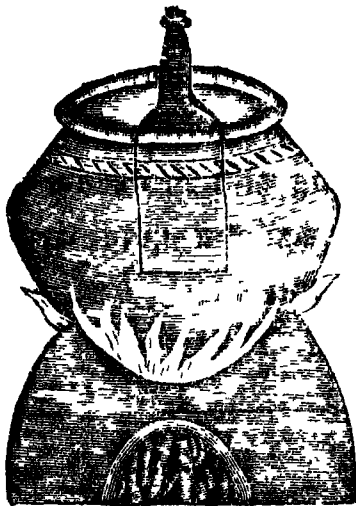
एक हांड़ीमें कवची इंच अर्थात् औषधपूर्ण और मिट्टी लपेटा बोतल रखो, बोतलके गलेतक बालु रहना चाहिये। फिर हांड़ी चूल्हेपर चढ़ाकर निर्द्दिष्ट समय तक आग पर रखना। इसीको बालुकायंत्र कहते हैं। इसी यंत्रमें रस-सिन्दूर और मकरध्वज आदि तयार होताहै।

बालुका यंत्र।

एक हाथ गहिरा गढ़ा खोदकर उसमें एक हांड़ो रखो, तथा दूसरो हांड़ोमें औषध भर उसका मुह एक छेदवाले ढकनेसे बन्दकर नोचेवालो हांड़ो पर औंधोरख संयोग स्थल अच्छो तरह मिट्टोसे बन्द करो तथा मिट्टोसे गढ़ा भरकर उपरवालो हांड़ोपर आगका जलाओ इससे उपरवालो हांड़ोको दवा ढकनेके छेदमें नोचेवालो हांड़ोमें गिर जायगो। आग ठण्डो होनेपर गढ़ेसे हांड़ो निकाल भोतर की दवा निकाल लेना। इसीको पाताल यंत्र कहते हैं।
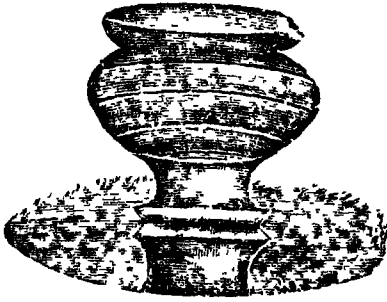
पाताल यन्त्र।

दो लम्बो हांडो एकमें पारा और दूसरोमें पानोभर दोनो हांड़ोका मुह टेढ़ाकर मिलाना तथा संयोगस्थल मिट्टोमे बन्द करना। फिर पारेवालो हांड़ोमें आंच लगानेसे पारा उडकर पानोभरो हांड़ोमें क्रमश: चला जायगा। इसोको तिर्य्यकपातन यंत्र कहते हैं। दोनो हांड़ोके गलेमें नल लगाकर भो एक प्रकार तिर्य्यकपातन यंत्र बनता है। जिसका विवरण तिर्य्यक-पातन विधिमें लिख आए हैं।

तिर्य्यकपातन यंत्र।

एक हांड़ीमें पारा दूसरी हांड़ीमें पानीभर उसके उपर रखना तथा संधागस्थल मिट्टीसे अच्छी तरह बन्दकर, दोनो हांड़ी चूल्हेपर चढ़ाना। उपर वाली हांड़ीका पानी गरम होनेसे बदल देना। इसी तरह नीचेवाली हांड़ीका पारा उपर-वालीकी पेंदीमें लग जायगा। पाक शेषमें हांड़ी ठण्ढी होनेसे नीचे उतार कर पेंदीका पारा निकाल लेना। इसको विद्याधर यंत्र कहते हैं। पारेकी ऊर्द्ध पातनक्रिया इसी यंत्रमें होती है।
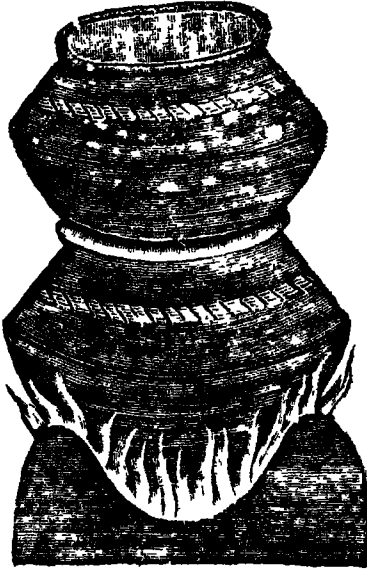
विद्याधर यंत्र।

जो सब पदार्थ दोलायंत्रमें पाक करना हो उसकी एक पोटली बनाना और हांड़ीका आधा अंश निर्दिष्ट द्रव पदार्थ या चूर्णसे पूर्ण करना तथा मुंह पर लम्बी लकड़ी रख उसमें वह पोटली बांधकर हांड़ीमें लटका देना। फिर हांड़ी चूल्हेपर रख आग लगाना। इसीको दोला यंत्र कहते है। अनेक पदार्थ स्विन्न या सिद्ध करनेके लिये यह यंत्र व्यवहृत होता है।

दोलायंत्र।
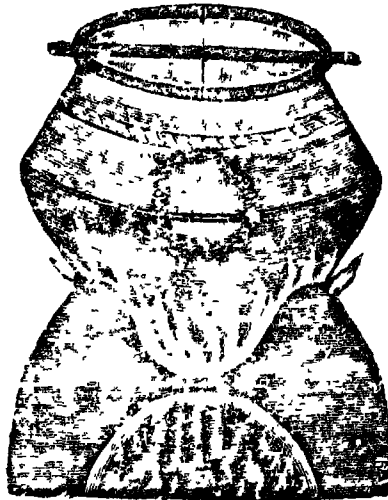
डमरू यंत्रमें उपरवाली हांड़ी नीचेवाली हांड़ीपर औंधी रखना तथा संयोग-स्थल मिट्टीसे बन्द करना। नीचेवाली हांडीमें पारा आदि पदार्थ और उपरवाली हांडी खाली रहे। नीचे-वाली हांड़ी चुल्हेपर रख उपरवाली पर पानी की धार देनेसे नीचेकी हांडी-का पारा उपरवाली हांडी-में लग जायगा। डमरू और विद्याधर यंत्र प्रायः एकही काममें व्यवहृत होता है।

डमरू यंत्र।

वकयंत्रमें जो सब पदार्थ पाक करना हो उस पदार्थसे आधो हांड़ी पूर्ण करना तथा उसके उपर दो नलवाला पात्र रख संयोगस्थल मिट्टीसे बन्द करना। नलवाले पात्रके किनारे-के नीचे एक अङ्गुल चौड़ी कार्निस रहना चाहिये; उसी कार्निस पर एक नल लगा

वकयंत्र।

उसका प्रान्तभाग बोतलमें रखना ; तथा उसी पात्रके उपर चारो तरफ दो अङ्गुल ऊंचा किनारा लगाकर और एक नल लगाना इसका प्रान्तभाग एक बरतनमें रखना, फिर उस हांडोके नीचे हलकी आंच देना तथा उपरवाले पात्रमें बार बार पानी देना। उपरवाले नलमे वही पानीपात्रमें आ गिरेगा। इसीको वकयंत्र कहते हैं। शराब और अर्क इसी यंत्रमें उतारा जाता है।

एक घड़ेके उपर दूसरा छोटा घड़ा औंधारख मंये गख्त्ल मिट्टी से अच्छी तरह बन्द करना तथा उपरके घड़ेमें एक छिद्रकर एक नल लगाना यह नल एक पात्रसे घुमाते हुए एक बोतलमें रखना। इसीको नाडिकायंत्र कहते हैं। दूसरे पात्रमें अर्थात् जिस पात्रमे नल घुमें उसमें पानी भरा रहे। आंच लगानेसे भाफ उपर उठकर नलसे बाहर हो पानीके बरतनमें ठण्डा होनेसे पानी हो जायगा तथा नलके प्रान्तभागसे बाहर निकलेगा। तब वहां एक बोतल रख वह पानी लेना चाहिये। इस यंत्रमें भी सुरा अर्क आदि उतारा जा सकता है।
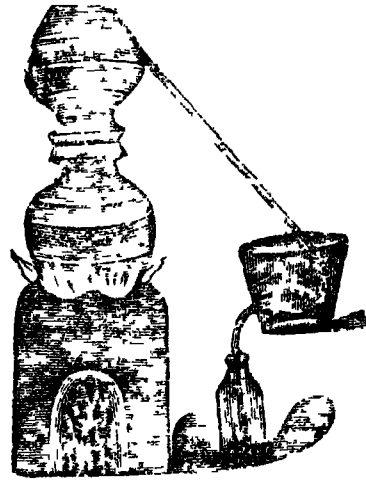
नाडिकायंत्र।

कवची यंत्र।- न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा एक मोटा बोतल, मिट्टी और कपड़े से अच्छी तरह लपेटकर सुखा लेना। उसीको कवचीयंत्र कहते हैं। रसमिन्दूरादि पाक करनेमें इसकी जरूरत पडती है। इसमें दवा भर बालुकायंत्रमें पाक करना चाहिये।

वारुणी यंत्र प्राय नाडिका यंत्रकी तरह होता है। पर नाडिका यंत्रका नल एक पात्रमें गड्डो मारे रहता है; इसमें उसके बदले बोतल हो उगढा पानी भरे एक पात्रमें रखना। नलसे भाफ आकर बोतल पानीभरे पात्र रहनेसे ठगढपाकर भाफ पानी हो जाता है। सुतरां नाडिका यंत्र और वारुणी यंत्र दोनो एकहो प्रकारके कार्य्यमें व्यवहृत होता है।

वारुणी यंत्र।

अन्धमूषायन्त्र। फूसकी राख २ भाग. दिवकेकी मिट्टी १ भाग. मण्डूर १ भाग. सफेद पत्थरका चूर्ण १ भाग. बकरीका दूध २ भाग और मनुष्य केश एकत्र खलकर गास्तनकी तरह एक प्रकार पात्र बनाना। इसीको मूषा कहते हैं। मूषा सूख जानेसे उससे पारा आदि पदार्थ रख दूसरा मूषा उसके उपर औंधारख दोनोका संयोग स्थान मूषा बनानेके उपादानसे अच्छो तरह बन्द करना। इसीको अन्धमूषा कहते हैं। अंधमूषाका वज्रमूषा भी कहते है।

पारिभाषिक संज्ञा।

वाक्य प्रयोगके सुबोतेके लिये कई लम्बे चौड़े विषय और कतिपय बहुसंख्यक पदार्थोंका एक एक छोटा नाम रखा गया है। वही यहां "पारिभाषिक संज्ञा" नामसे अभिहित कर उसका विस्तृत विवरण लिखते हैं।

दोष—वायु, पित्त और कफ यह तीन शरीर दोष और रजः तम यह दो मानस दोष नामसे अभिहित है। त्रिदोष शब्दका उल्लेख रहनेसे वायु, पित्त और कफ यह तीन दोष जानना।

दुष्य।—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि मज्जा और शुक्र यह सात पदार्थको दुष्य कहते हैं। रोग मात्रमें इनमेंसे कोई एक अवश्यही दूषित होता है। अविकृत अवस्थामें धे सब शरीरको धारण करते हैं इससे इसका दूसरा नाम धातु है।

मल।—मल, मूत्र, स्वेद, क्लेद और सिङ्घानक आदि पदार्थको मल कहते है, इसका नाम किट्टभी है। किसी किसी जगह वातादि दोषत्रयभी मल नामसे अभिहित होते है।

कोष्ठ।—आमाशय, ग्रहणी नाड़ी, पक्वाशय, मूत्राशय, रक्ता-शय (प्लीहा और यकृत्) हृदय, फुसफुस और गुह्यनाड़ी, यह आठ स्थानको कोष्ठ कहते है।

शाखा।—रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और त्वक यह सात अवयवको शाखा कहते हैं।

पञ्चवायु।—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान; नाम भेदसे शरीरमें पांच प्रकार वायु है। प्राण

पञ्च वायु।

वायु मस्तक, छाती और कण्ठमें रहकर बुद्धि, हृदय, इन्द्रिय और चित्तवृत्तिको चलाना, छींक, डकार, निश्वास आदिका निकालना और अन्नादि पदार्थको पेटमें लेजाता है। उदान वायुका स्थान छाती; नासिका, नाभि और गलेमें यह विचरण करता है। वाक्यप्रभृति कार्योद्यम, उत्साह और स्मरण आदि उदान वायुके कार्य्य हैं। व्यान वायुका स्थान हृदय किन्तु यह अति वेगवान है इससे सर्व्वदा समस्त देहमें विचरण करता है। चलना, उठना, बैठना, आंख बन्द करना और खोलना आदि प्रायः यावतीय क्रिया व्यान वायुकी है। समान वायु पाचकाग्निके पास कोष्ठके सब स्थानोंमें विचरण करता है और अपक्क अन्न आमाशयमें लेजाकर उसका परिपाक और मलमूत्र निकालना आदि कार्य्य करता है। अपान वायुका स्थान गुह्यदेश; नितम्ब, वस्ति, लिङ्ग, और ऊरुमें यह विचरण करता है तथा आर्त्तव, मल, मूत्र और गर्भको निकालता है।

पञ्चपित्त।—शरीरका पित्त कार्य्यभेदके अनुसार पाचक, रञ्जक, साधक, आलोचक, भ्राजक ये पांच प्रकारमें विभक्त है। जो पित्त आमा-

पञ्चपित्त।

शय और पक्वाशयमें रहकर खाये हुवे पदार्थको पचाता है उसको अग्नि और जो अन्नको पचाकर उसका सार और मल अलग अलग विभक्त करता है तथा रञ्जकादि बाकी ४ प्रकारके पित्तोंको बढ़ाता है उसको पाचक कहते हैं। जो पित्त आमाशयमें रह कर रसको रक्तवर्ण बनाता है उसका नाम रञ्जक। जो पित्त हृदयमें रहकर बुद्धि, मेधा और अभिमानादि द्वारा अभिलषित

विषयोंको कराता है उसका नाम साधक। जो पित्त आंखमें रहकर रूपको देखता है उसको आलोचक कहते हैं और जो पित्त त्वचामें रहकर त्वचाकी दीप्ति बढ़ाता है उसको भ्राजक कहते हैं।

पञ्चश्लेष्मा।—शरीरका कफभी भिन्न भिन्न कार्य्यके अनुसार अवलम्बक, क्लेदक, बोधक, तर्पक और श्लेषक ये पांच नाममें विभक्त है, जो कफ छातीमें रहकर अपने क्लेद पदार्थसे संधिस्थान आदि अन्यान्य कफ स्थानके कार्य्यमें मदद देता है उसको अवलम्बक कहते हैं। जो आमाशयमें रहकर कठिन अन्नको नरम करता है उसको क्लेदक कहते हैं। जो रसनामें रहकर मधुरादि रसका अनुभव कराता है उसका नाम बोधक है। जो मस्तकमें रहकर चक्षु आदि इन्द्रिय समूहोंका तृप्तिसाधन करता है उसका नाम तर्पक और जो कफ संधिस्थानमें रहकर संधिस्थानका मिलन आकुञ्चन प्रसारणादि कार्य्य करता है उसको श्लेषक कहते हैं।

पञ्चश्लेष्मा।

त्रिकटु--शोंठ, पीपल और गोलमिरच यह तीन द्रव्यको त्रिकटु या त्र्यूषण कहते हैं।

त्रिफला—आंवला, हर्रा और बहेड़ा ये तीन द्रव्यका नाम त्रिफला।

त्रिमद—बाभिरङ्ग, मोथा और चीतामूल यह तीनको त्रिमद कहते हैं।

त्रिजात—दालचीनी, बड़ीलायची और तेजपत्ता इसको त्रिजात या त्रिसुगंध कहते हैं।

चातुर्जात--दालचीनी, बड़ीलायची, तेजपत्ता और नागकेशर ये ४ द्रव्यको चातुर्जात कहते हैं।

चातुर्भद्रक—शोंठ, अतीस, मोथा और गुरिच यह चार द्रव्यका नाम चातुर्भद्रक हैं।

पञ्चकोल—पिपल, पिपलामूल, चाभ, चीतामूल और शोंठ यह पांच द्रव्यका पञ्चकोल कहते हैं।

चतुरम्ल और पञ्चाम्ल—बेर, अनार, इमली और थेकल यह चार अम्ल पदार्थको चतुरम्ल और इसके साथ जम्बीरा नीबू मिलानेसे पञ्चाम्ल कहते हैं।

पञ्चगव्य—दही, दूध, घृत, गोमूत्र और गोमय, यह पांचको पञ्चगव्य कहते हैं।

पञ्चपित्त—वराह, छाग, महिष, रोहित मछली और मयूर यह पांच जोवके पित्तको पञ्चपित्त कहते हैं।

लवणवर्ग—एक लवणका उल्लेख हो तो सैंधव, द्विलवण शब्दमें सैंधव और सोवर्चल, त्रिलवणमें सैंधव, सोवर्चल और काला नमक; चतुर्लवणमें सैंधव, सोवर्चल, कालानमक और सामुद्र; पञ्च लवणमें सैंधव, सोवर्चल काला नमक, सामुद्र और औद्भिद यह पांच प्रकार लवण जानना। लवणवर्गका उल्लेख रहनेसे यही पांचो ग्रहण करना।

क्षीरिवृक्ष—गुल्लर, बड़, पीपल, पाकड़ और बेतस यह पांचको क्षीरिवृक्ष कहते हैं।

स्वल्पपञ्चमूल—सरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी और गोक्षुर यह पांच पदार्थको स्वल्प पंचमूल कहते हैं।

वृहत् पञ्चमूल—बेल, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला और गणियारी, यह पांच द्रव्यको वृहत् पञ्चमूल कहते हैं।

तृणपंचमूल—कुश, काश, शर, दर्भ और इक्षु यह पांचको तृण पञ्चमूल कहते हैं।

मधुर वर्ग—जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली, क्षीर-काकोली, मुलेठी, मुगानी, माषोणी और जीवन्ती यह दश द्रव्यको मधुर वर्ग या जीवनीयगण कहते हैं।

अष्टवर्ग—मेद, महामेद, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि यह आठ द्रव्य को अष्टवर्ग कहते हैं।

जीवनीय कषाय—जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगाणी, माषाणी, जीवन्ती और मुलेठी यह दश द्रव्यको जीवनीय अर्थात् आयुर्वर्द्धक कहते हैं।

वृंहणीय कषाय—सत्यानाशी, राजक्षवक, बरियारा, बनकपास, श्वतविदारीकन्द और बधारा यह दश द्रव्य वृंहणीय अर्थात् पुष्टिकारक है।

लेखनीय कषाय—मोथा, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, वच, अतीस, कुटकी, चीतामूल, करञ्ज और श्वेत वच यह दश द्रव्य लेखनीय अर्थात् मलखुरचकर निकालनेकी तरह सञ्चित दोषोंका नाशक है।

भेदनीय कषाय—त्रिवृत मूल, अकवन, एरण्ड, भेलावा, दन्ती मूल, चीतामूल, करञ्ज, शङ्खपुष्पी, कुटकी और सत्यानाशी यह दश द्रव्य भेदनीय अर्थात् मल विरेचक है।

संधानीय कषाय—मुलेठी, गुरिच, पिठवन, अकवन, बराह-क्रान्ता, मोचरस, धवइफूल, लोध, प्रियङ्गु और कटफल यह दशको संधानीय अर्थात् टूटी हड्डीका संयोजक है।

दीपनीय कषाय—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, सोंठ, अम्लवेतस, (थैकल) मिरच, अजवाईन, भेलावा और हींग यह दश द्रव्य दीपनीय अर्थात् अग्नि उद्दीपक है।

वल्यकषाय—बड़ाखीरा, कंवाच, शतावर बिदारीकन्द, असगंध, मरिवन, कुटकी, बरियारा और पीला बरियारा यह दश वल्य अर्थात् बलकारक है।

वर्ण्य कषाय—लालचन्दन, पतङ्गवृक्ष, पद्माक, खसकी जड़, मुलेठी, मजीठ, अनन्तमूल, काकोली, चीनी और दूर्व्वा यह दश वर्ण्य अर्थात् वर्णकी उज्ज्वलता बढ़ाता है।

कण्ठ्य कषाय—अनन्तमूल, ईखुमूल, मुलेठी, पीपल, द्राक्षा, बिदारीकन्द, कटफल, खुलकुड़ि, वृहती और कण्टकारी यह दशको कण्ठ्य अर्थात् स्वरशुद्धिकारक है।

हृद्य कषाय—आम, अमड़ा, मदार, करञ्ज, आमरूल, अम्लवेतस, शेयाफूल, बैर, अनार और बड़ानीबू यह हृद्य अर्थात् रुचिकारक है।

तृप्तिघ्न कषाय—शांठ, चीतामूल, चाभ, विड़ङ्ग, मूर्व्वामूल, गुरिच, बच, मोथा, पीपल और परवर यह दश तृप्तिघ्न अर्थात् अक्षुधा या आहारमें अनिच्छा नाशक है।

अर्शोघ्न कषाय—कुरैया, बेलकी गिरी, चीतामूल, शांठ, अतीस, हर्रा, जवासा, दारुहल्दी, बच और चाभ यह दश अर्शनाशक है।

कुष्ठघ्न कषाय—खैर, हरीतकी, आंवला, हल्दी, भिलावा, छातीम छाल, अमिलतास, करवीर, विड़ङ्ग और जातीफूलका नरम पत्ता यह दश कुष्ठनाशक है।

कण्डुघ्न कषाय—लालचन्दन, खसकी जड़, अमिलतास, करञ्ज, नीम, कुरैया, सरसा, मुलेठी, दारुहल्दी और मोथा यह दश कण्डुनाशक है।

क्रिमिघ्न कषाय—सैजन, मिरच, शमठशाक, केऊ, विड़ङ्ग, समालू, लताफिटकिरी, गोखुर, बभनैठी और दूहाकानी यह दश द्रव्य क्रिमिनाशक है।

विषघ्न कषाय--हल्दी, मजीठ, रास्ना, छोटी इलायची, श्यामालता, लालचन्दन, निर्म्मली फल, शिरीष, समालू और कातिम यह दश द्रव्य विषनाशक है।

स्तन्यजनन कषाय—खसकी जड़, शालिधान, साठीधान, इक्षुशालिका, दर्भ, कुशकी जड, काशकी जड़, गुरिच, कण्डा और गंधतृण यह दश स्तनदुग्धजनक है।

स्तन्यशोधन कषाय- अकवन, शोंठ, देवदारु, मोथा, मूर्व्वामूल, गुरिच, इन्द्रयव, चिरायता, कुटकी और अनन्तमूल, यह दश स्तन्यदूधका शुद्धिकारक है।

शुक्रजनन कषाय—जीवक, ऋषभक, काकोली, चीरकाकोली, मारवन, पिठवन, मेदा, बांदरी, जटामांसी और काकड़ासिङ्गी, यह दश द्रव्य शुक्रवर्द्धक है।

शुक्रशोधन कषाय- कूठ, एलवालुक, कटफल, समुद्रफेन, कदमका गोंद, ईख, खागड़ा, कलेखाड़ा, मौलसरीका फूल और खसकी जड यह दश द्रव्य शुक्रशोधक है।

स्नेहोपग कषाय --द्राक्षा, मुलेठी, गुरिच, मेदा, बिदारीकन्द, काकोली, चीरकाकोली, जीवक, जीवन्ती और शालपर्णी; यह द्रव्य स्नेहोपग अर्थात् स्नेहक्रियामें व्यवहृत होता है।

स्वेदोपग कषाय—सैजन, एरण्ड, अकवन, श्वेतपुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, यव, तिल, कुरथी, उरद और बेर; यह दश स्वेदोपग अर्थात् स्वेदक्रियामें व्यवहृत होता है।

वमनोपग कषाय- मधु, मुलेठी, रक्तकाञ्चन, श्वेतकाञ्चन, कदम्ब, जलवेतस, तेलाकुचा, शणपुष्पी, अकवन और अपामार्ग; यह दश द्रव्य वमनोपग अर्थात् वमन कार्य्यमें व्यवहृत होता है।

विरेचनोपग कषाय—द्राक्षा, गाम्भारी फल, फालसा, हरीतकी, आंवला, बहेड़ा, बड़ी बेर, छोटी बेर, पियाफल और पोलुफल यह दश द्रव्य विरेचनोपग अर्थात् जुलाबमें व्यवहृत होता है।

आस्थापनोपग कषाय—त्रिवृतमूल, बेल, पीपल, कूठ, सरसों, वच, इन्द्रयव, सोवा, मुलेठी और मैनफल यह दश द्रव्य आस्थापनोपग अर्थात् वस्तिक्रिया (पिचकारी) में व्यवहृत होता है।

अनुवासनोपग कषाय—रास्ना, देवदारू, बेल, मैनफल, सोवा, श्वेतपुनर्नवा, गोक्षुर, गणियारी और श्योनाक छाल, यह दश द्रव्य अनुवासनोपग अर्थात् स्नेह पिचकारीमें व्यवहृत होता है।

शिरोविरेचनोपग कषाय—लताफिटकिरी, नकछिकनी, मिरच, पीपल, विड़ङ्ग, सैजनकी बीज, सरसों, श्वेत अपराजिता, अपामार्गकी बीज और नील अपराजिता, यह दश द्रव्य शिरोविरेचन अर्थात् नस्यक्रियामें उपयोगी है।

छर्द्दिनिग्रह कषाय—जामुनका पत्ता, आमकापत्ता, बड़ा नीबू, खट्टी बैर, अनार, यव, मुलेठी, खसकी जड़, सौराष्ट्रमृत्तिका और धानका लावा ; यह दश वमन निवारक है।

हिक्कानिग्रह कषाय—शठी, कूठ, बेरके गुठलीका गूदा, कण्टकारी, वृहती, बांदरा, हरीतकी पीपल, जवासा और काकड़ाशिङ्ग ; यह दश हिक्का (हुचकी) निवारक है।

पुरीष संग्रहणीय कषाय—प्रियङ्गु, अनन्तमूल, आमकी गुठली, मुलेठी, मोचरस, वाराहक्रान्ता, धवईफूल, बभनेठी और पद्मकेशर यह सब द्रव्य पुरीष संग्राहक अर्थात् मलरोधक है।

पुरीष विरजनीय कषाय—जामुनकी छाल, शल्लकी छाल, कवांच, मुलेठी, मोचरस, गन्धाबिरोजा, जली मिट्टी, बिदारी-

कन्द, नीला कमल और बिनाछिलकेका तिल; यह दश द्रव्य पूरीष विरजनीय अर्थात् दोषके कारण मलका रंग विकृत होनेसे इसमें प्रकृत वर्ण होता है।

मूत्रसंग्रहणीय कषाय—जामुनकी बीज, आमली गुठली, पाकड़, बड़, अमड़ा, गुल्लर, पीपर, भेलावा, अम्लकुचा और खैर; यह दश द्रव्य मूत्रसंग्राहक है।

मूत्रविरेचनीय कषाय—आंदरी, गोक्षुर, वकफूल, हुड़हुड़, पाथरचूर, शरमूल, कुशमूल, काशमूल, गुरिच और दर्भमूल; यह मूत्रविरेचक है।

मूत्रविरजनीय कषाय—थोड़ा सूखा पद्म, नीला कमल, लाल-पद्म, श्वेत उत्पल, सुगन्धयुक्त नीलोत्पल, श्वेतपद्म, शतदल पद्म, मुलेठी, प्रियङ्गु और धवईफूल; यह दश द्रव्य मूत्रकी विवर्णता नाशक है।

कासहर कषाय—द्राक्षा, हरीतकी, आंवला, पीपल, अमिलतास, कांकड़ाशिङ्गी, कण्टकारी, लाल पुनर्नवा, सफेद पुनर्नवा और भूंई आंवला; यह दश द्रव्य कासनाशक है।

श्वासहर कषाय—शठी, कुड, अम्लवेतस, इलायची हींग, अगुरु, तुलसी, भूंई आमला, जीवन्ती और शङ्खपुष्पी; यह दश द्रव्य श्वासनाशक है।

शोथहर कषाय—पाटला, गणियारी, बेल, श्योनाक, गाम्भारी, कण्टकारी, वृहती, सरिवन, पिठवन और गोक्षुर; यह दश द्रव्य शोथनाशक है।

ज्वरहर कषाय—अनन्तमूल, चीनी, अकवन, मजीठ, द्राक्षा, चिरौंजी, फालसा, हरीतकी, आंवला और वहेड़ा; यह दश द्रव्य ज्वर नाशक है।

श्रमहर कषाय—द्राक्षा, खजूर, चिरौंजी, बेर, अनार, काकगुल्लर, फालसा, ईख, जौ और साठीधान ; यह दश द्रव्य श्रान्तिनाशक है।

दाहप्रशमन कषाय—धानका लावा, श्वेतचन्दन, गाम्भारी फल, मुलेठी, चीनी, नीलोत्पल, खसकी जड़, अनन्तमूल गुरिच और बाला ; यह दश द्रव्य दाह निवारक है।

शीतप्रशमन कषाय—तगरपादुका, अगुरु, धनिया, सोंठ, अजवाईन, बच, कण्टकारी, गणिआरी, श्योनाक और पीपल ; यह दश द्रव्य शीत निवारक है।

उदर्द प्रशमन कषाय—गाव, पियाल फूल, खैर, पपड़ी खैर, कातिम, शाल, अर्जुन, पीतशाल और जङ्गली बबूल ; यह दश द्रव्य उदर्द रोग नाशक।

अङ्गमर्द प्रशमन कषाय—शरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी, एरण्डमूल, ककोली, लालचन्दन, खसकी जड़, इलायची और मुलेठी यह दश द्रव्य अङ्गमर्द निवारक है।

शूल प्रशमन कषाय—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, सोंठ, गोलमिरच, अजवाईन, अजमोदा, जीरा और शालिंचा ; यह दश द्रव्य शूल निवारक है।

शोणित स्थापन कषाय—मधु, मुलेठी, केशर, मोचरस, जली मिट्टी वा सोन्धी मिट्टी, लोध, गेरूमिट्टी, प्रियङ्गु, चीनी और धानका लावा यह दश द्रव्य रक्तरोधक है।

वेदनास्थापन कषाय—शाल, कायफल, कदम्ब, पद्मकाष्ठ, पुन्नाग, मोचरस, शिरीष, वेतस, एलवा और अशोक ; यह दश द्रव्य वेदनास्थापक अर्थात् जहांकी दर्द आराम होनेमें विपत्तिकी आशङ्का है वहां यह सब द्रव्य प्रयोग करना चाहिये।

संज्ञास्थापन कषाय—हींग, कटफल, जङ्गली, बबूल, बच, चारपुष्पी, ब्रह्मीशाक, भूतकेशी, जटामांसी, गुग्गुलु और कुटकी; यह दश द्रव्य संज्ञास्थापक है।

प्रजास्थापन कषाय—बड़ा खीरा, ब्रह्मीशाक, दूर्व्वा, श्वेतदूर्व्वा, पाटला, आमला, हरीतकी, कुटकी, वरियारा और प्रियङ्गु; यह दश द्रव्य प्रजासंस्थापक अर्थात् गर्भस्राव आदि निवारक हैं।

वयःस्थापन कषाय—गुरिच, हरीतकी, आंवला, रास्ना, श्वेत अपराजिता, जीवन्ती, शतमूली, थानकुनी, शालपाणी और पुनर्नवा; यह दश द्रव्य वयःस्थापक अर्थात् जरा प्रभृति निवारक है।

विदारी गन्धादिगण—शालपानी, विदारीकन्द, गोरक्षचाकुला, शतमूली, अनन्तमूल, श्यामालता, जीवक, ऋषभक, माषाणी, मुगानी, वृहती, कण्टकारी, पुनर्नवा, एरण्डमूल, गावालकी लता, बिछुटी, केंवाच इन सबको विदारी गन्धादि कहते हैं। यह वन अति पित्त, वायु, शोथ, गुल्म, अङ्गमर्द और ऊर्द्धश्वास और खांसी आदि रोगोंको आराम करता है।

आरग्वधादिगण—केंवाच, मैनफल, केवड़ेका फूल, कुरैया, अकवन, कांटेदार बैगन, रक्तलोध, मुर्व्वा, इन्द्रयव, छातिमकी छाल, नीमकी छाल, पीतझांटी, नीलझांटी, गुरुच, चिरायता, महाकरञ्ज, नाटाकरञ्ज, डहर करञ्ज, परवरकी लता, चिरायतेकी जड़, करेला, इन सबको आरग्वधादिगण कहते हैं यह कफ, विष, मेह, कोढ़, ज्वर, कै, खजुली इन सबको आराम करता है।

वरुणादिगण—वरुण, नीलझांटी, सेजन, रक्तसेजन, जयन्ती, मेढ़ाशृङ्गी, डहरकरञ्ज, करञ्ज, मुर्व्वा, गणियारी, श्वेतझांटी, पीतझांटी, तेलाकुचा, अकवन, बड़ी पीपल, चीतामूल, शतमूली, बेलकी गिरी, काकड़ाशृङ्गी, कुशमूल, वृहती, कण्टकारी,

इन सबको वरुणादिगण कहते हैं। इससे कफ मेदोरोग, शिरकी दर्द, गुल्म और अन्तर्विद्रधि रोग आराम होता है।

वीरतर्व्वादिगण—अर्ज्जुनकी छाल, नीलझांटी, पीतझांटी, कुशमूल, कुनरी, गुरिच, नरकटका जड़, काशमूल, पाषाणचूर, नागिनधारी, मुर्री, अकवन, गजपीपल, शिवनाक, सफेद झांटा, नीला कमल ब्रह्मी और गोखुर इनको वीरतर्व्वादिगण कहते हैं। इससे वायुरोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात दूर होता है।

सालसारादिगण—साल, आसन, खैर, पपड़िया खैर, तमाल, सुपारी, भोजपत्र, मेषशृङ्गी, तिनिस, चन्दन, लालचन्दन, शिसौ, शिरीष, पियाशाल, धव, अर्ज्जुन, साल, समवान, करंज, डहर करंज, लताशाल, अगुरु और कालियका काष्ठ, इन सबको सालसारादिगण कहतेहैं। इससे कुष्ठ, प्रमेह, पांडु, कफ और मेदोरोग दूर होताहै।

लोध्रादिगण—लोध, सावर लोध, पलाश, शिवनाक, अशोक, बारंगी, कायफल, एलवा, केवल मोथा, शल्लकी, झिङ्गनी, कदम्ब, शाल और कदली, इन सबको लोध्रादिगण कहते है, यह मेदो रोग, कफ और योनिदोष निवारक, स्तम्भनकारक, व्रण शोधक और विषनाशक है।

अर्कादिगण—अकवन, सफेद अकवन, करंज, डहर करंज, हाथीसुंड़, अपामार्ग, वमनेठी, रास्ना, सिदरोआरू, गालुटा, अलवन वृक्ष, इङ्गुदी वृक्ष, इनको अर्कादिगण कहते हैं इससे कफ मेदोरोग कृमि और कुष्ठरोग आराम होता है। तथा यह व्रण रोगमें विशेष उपकारी है।

सुरसादिगण—तुलसी, सफेद तुलसी, क्षुद्रपत्र तुलसी, वन-तुलसी, काली तुलसी, गन्धतृण, कालकासुंदी, अपामार्ग, भाग दाना, विडङ्ग, जायफल, सरसो, समालू, कुकसोमा, [illegible],

बभनैठी, प्राचीबल, काकमाची और कुचिला इसको सुरसादिगण कहते हैं। यह क्रमि, प्रतिश्याय, अरुचि, श्वास, कास रोग निवारक और व्रण शोधक है।

मुष्ककादिगण—घण्टापाटला, पलाश, धव, चीतामूल, धतुरा, शिसो, सेहुड़ और त्रिफला इनको मुष्ककादिगण कहते हैं यह मेदोरोग, प्रमेह, अर्श, पाण्डु, सर्करा और अश्मरीरोग निवारक है।

पिप्पल्यादिगण—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, गोलमिरच, बड़ी पीपल, रेणुको, इलायची, अजवाईन, इन्द्रयव, अकवन, जीरा, सरसो, बड़ी नीमका फल, बभनैठी, हींग, मूर्व्वा, अतीस, बच, विड़ङ्ग, कुटकी इनको पिप्पल्यादिगण कहते हैं। इससे कफ, प्रतिश्याय, वायु, अरुचि, गुल्म और शूल दूर होता है। यह आमदोषका पाचक और अग्निका उद्दीपक है।

एलादिगण—इलायची, तगरपादुका, कुठ, जटामांसी, गन्धतृण, दालचिनी, तेजपत्ता, नागकेशर, प्रियङ्गु, रेनुका, नखी, सेहुड़, चोरपुष्पी, गठिवन गन्धाबिरोजा, चोरक नामक गन्धद्रव्य, बाला गुग्गुलु, राल, घण्टा पाटला, कुन्दरखोटी, अगुरु, शुकशाक, खसका जड़, देवदारु, केशर और नागेश्वर, इन सबको एलादिगण कहते है। इससे वायु, कफ, विषदोष, खजुली, फोड़ा और कुष्ठरोग दूर हो शरीरकी कान्ति उज्वल होती है।

वचादिगण—बच, मोथा, अतीस, हरीतकी, देवदारु और नागकेशर इसको वचादिगण कहते हैं।

हरिद्रादिगण हल्दी, दारुहल्दी, पिठवन, इन्द्रयव और मुलेठी इसको हरिद्रादिगण कहते हैं।

उक्त वचादि और हरिद्रादिगण स्तनदुग्ध शोधक आमातिसार नाशक और दोषपाचक है।

श्यामादिगण--अनन्तमूल, श्यामालता, त्रिवृतमूल, शङ्खपुष्पी, लोध, कमलागुड़ि, बड़ी नीम, सुपारी, चुहाकानी, गवाक्षी, अमिलतास, करंज, डहर करंज, गुरिच, नवमालिका, शरहृण, राल, बीजताड़क, सेहुंड़ और सत्यानासी, इनको श्यामादिगण कहते हैं। यह गुल्म, विषदोष, आनाह, उदररोग, उदावर्त्त निवारक और विरेचक है।

बृहत्यादिगण--बृहती, कण्टकारी, इन्द्रयव, अकवन और मुलेठी, इनको बृहत्यादिगण कहते हैं। इससे पित्त, कफ, अरुचि, वमन, वमनोद्वेग और मूत्रकृच्छ्र दूर होता है।

पटोलादिगण परवरका पत्ता, चन्दन, लालचन्दन, मूर्व्वा, गुरिच, अकवन और कुटकी इनको पटोलादिगण कहते हैं। यह पित्त, कफ, अरुचि, ज्वर, व्रण, वमन, कण्डू और विषदोष निवारक है।

काकोल्यादिगण काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुगानी, माषाणी, मेदा, महामेदा, गुरिच, काकड़ाशृङ्गी, वंशलोचन, पद्मकाष्ठ, पुण्डरियाकाष्ठ, ऋद्धि, वृद्धि, द्राक्षा, जीवन्ती और मुलेठी इनको काकोल्यादिगण कहते हैं। यह रक्तपित्त और वायुनाशक तथा आयुवर्द्धक, पुष्टिकर, शुक्र और रतिशक्ति जनक, स्तन्य वर्द्धक और कफकर है।

ऊषणादिगण क्षारमृत्तिका, सैन्धव लवण, शिलाजतु, श्वेत हिराकस, रक्त हिराकस, हींग और तुतिया इनको ऊषणादिगण कहते है। इससे कफ, मेदारोग, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और गुल्म रोग दूर होता है।

अंजनादिगण--अंजन, रसांजन, नागकेशर, प्रियङ्गु, नीलोत्पल, खसकी जड़, पानी आंवला, कुङ्कुम और मुलेठी इनको अंजनादि

कहते है। इससे रक्तपित्त, विष और भीतर का दाह शान्त होता है।

परूषकादिगण—फालसा, किसमिस, कायफल, अनार, पलाश वृक्ष, निर्मली फल, शिरीष, जायफल, आंवला, हरीतकी और बहेड़ा इनको परूषकादिगण कहते हैं। इससे वायु, मूत्रदोष और पिपासा दूर हो भूख बढ़ती है।

प्रियङ्ग्वादिगण—प्रियङ्गु, बराहक्रान्ता, धवईफूल, नागकेशर, रक्तचन्दन, पतंगवृक्ष, मोचरस, रसांजन, टीकापानी, स्रोतांजन, पद्मकेशर, मजीठ और श्यामालता इनको प्रियङ्ग्वादिगण कहते है।

अम्बष्ठादिगण—अकावन, धवईफूल, बराहक्रान्ता, श्योनाक, मुलेठी, बेलकी गिरी, लोध, सावर लोध, पलाश, तूतवृक्ष और पद्मकेशर इनको अम्बष्ठादिगण कहते हैं। उक्त दोनो गण पक्वातिसार नाशक व्रण रोधक और भग्नस्थान संयोजक है।

न्यग्रोधादिगण— बट, गूलर, अश्वत्थ, पाकर, मुलेठी, आमड़ा, अर्जुन, आम, कोषाम्र, पिंडिंशाक, तेजपत्ता, बड़ा जामुन, छोटा जामुन, पियाल, महुआ, कुटकी, वेतस, कदम्ब, बैर, रक्तलोध, शल्लकी, लोध, सावर लोध, भिलावा, पलाश; मेषशृङ्गी इनको न्यग्रोधादिगण कहते हैं। यह व्रणनाशक, मलरोधक, भग्नस्थान संयोजक, तथा रक्तपित्त, दाह, मेदो रोग और योनिदोष निवारक है।

गुडूच्यादिगण—गुरिच, नीमकी छाल, धनिया, चन्दन और पद्मकाष्ठ इनको गुडूच्यादिगण कहते हैं इससे सब प्रकारका ज्वर, वमनवेग, अरुचि, वमन, पिपासा और दाह दूर होता है।

उत्पलादिगण—नीलोत्पल, रक्तोत्पल, श्वेतोत्पल, सुगन्धि नीलोत्पल, कुवलय, (थोड़ा नीला श्वेतोत्पल) श्वेतपद्म और

मुलेठी, इसको उत्पलादिगण कहते हैं। इससे दाह, रक्तपित्त, पिपासा, विषदोष, हृद्रोग, वमन और मूर्च्छा दूर होता है।

मुस्तादिगण—मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, हरीतकी, आंवला बहेड़ा, कूठ, सत्यानासी, बच, अकवन, कुटकी, बड़ा करौंदा, अतीस, इलायची, भिलावा और चीतामूल इसको मुस्तादिगण कहते हैं। यह कफनाशक, योनिदोष निवारक, स्तन्यशोधक और पाचक है।

आमलक्यादिगण—आंवला, हरीतकी, पीपल और चीतामूल इनको आमलक्यादिगण कहते हैं। यह सब प्रकारका ज्वर, कफ और अरुचिका नाशक तथा चक्षु हितकर, अग्नि उद्दीपक और रतिशक्ति वर्द्धक है।

त्रपादिगण—वङ्ग, सीसक, ताम्र, रौप्य, कान्तलौह, स्वर्ण और मण्डूर इसको त्रपादिगण कहते हैं। यह दूषित विषदोष, क्रिमि, पिपासा, विषदोष, हृद्रोग, पाण्डु और प्रमेह रोग नाशक है।

लाक्षादिगण—लाक्षा, जम्बीर, कुरैया, करवीर, कायफल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, नीम, क्वातिम, मालती, वला और गुल्लर इन सबको लाक्षादिगण कहते हैं। यह कषाय तिक्त, मधुर रस, कफ और पित्तजनित पीड़ा नाशक, कुष्ठ और क्रिमि निवारक तथा दुष्टव्रण शोधक है।

त्रिफला—हरीतकी, आंवला और बहेड़ा ये तीनको त्रिफला कहते हैं। यह वायु, कफ, पित्त, मेह, कुष्ठ, विषम ज्वरनाशक, चक्षु हितकर और अग्नि उद्दीपक है।

त्रिकटु—पीपल, मिरच और शोंठ यह तीन द्रव्यको त्रिकटु कहते हैं। त्रिकटुसे कफ, मेदोरोग, प्रमेह, कुष्ठ, चर्मरोग, गुल्म, पीनस और मन्दाग्नि दूर होता है।

स्वल्प पञ्चमूल—गोक्षुर, वृहती, कण्टकारी, शरिवन और पिठवन यह पांच द्रव्यके मूलको स्वल्पपञ्चमूल कहते हैं। यह कषाय तिक्त-मधुर रस, वायुनाशक, पित्तप्रशमक, बलकर और पुष्टिकारक है।

महत् पञ्चमूल—बेल, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला और गणि-यारी। यह पांचद्रव्यके मूलको महत् पञ्चमूल कहते हैं। यह तिक्त मधुर रस, कफ वायुनाशक, लघुपाक और अग्नि उद्दीपक है।

दशमूल—स्वल्प और महत् पञ्चमूलको मिलानेसे दशमूल होता है। यह श्वास, कफ, पित्त और वायुनाशक आमदोष पाचक और सर्व्वज्वर निवारक है।

वल्ली पञ्चमूल - सरिवन, अनन्तमूल, हल्दी, गुरिच और मेषशृङ्गी, इन सबके मूलको वल्ली पंचमूल कहते हैं।

कण्टक पंचमूल करौंदा, गोक्षुर, नीलझांटी, शतमूली और कालिया कड़ा, इनके मूलको कण्टक पंचमूल कहते हैं।

वल्ली पंचमूल और कण्टक पंचमूल रक्तपित्त, शोथ, सब प्रकारका प्रमेह और शुक्रदोष निवारक हैं।

तृणपंचमूल -कुश, काश, नरकट, कण्डा और ईख; इन सबके मूलको तृणपंचमूल कहते हैं। यह दूधके साथ देनेसे मूत्र दोष और रक्तपित्त जल्दी आराम होता है।

विशेषत: यह पांचमूलमें स्वल्प और महत् पंचमूल वायु-नाशक, तृणपंचमूल पित्तनाशक और कंटक पंचमूल कफनाशकहै।

यवक्षार।

जौके छिलके राख एक सेर ६४ सेर पानीमें मिलाकर मोटे कपड़में वह पानी क्रमश: २१ दफे छान लेना। फिर यह पानी किसी पात्रमें रख औटाना पानी जलकर चूर्णवत् पदार्थ बाकी रहनेपर उसको यव क्षार कहते हैं।

यवक्षार गरम पानीमें मिलाकर थोड़ी देर रखनेमें नीचे जम जाता है फिर उपरका पानी आहिस्तेसे निकाल कर सुखा लेनेसे यवक्षार शोधित होता है। अन्यान्य पदार्थका क्षार बनानेकी रीति प्रायः इसी तरह है।

वज्रक्षार।

यवक्षार और सोरा एक बरतनमें रख आगपर चढ़ाना पानीकी तरह गल जानेपर उसमें फिट किरीका चूर्ण मिलाना, इससे उसका मैला कटकर उपरको उठनेपर वह झांरसे आहिस्ते आहिस्ते बाहर निकाल देना। फिर किसी चौड़े पात्रमे ढालकर वह जमा देनेसे उसको वज्रक्षार कहते हैं। यह अजीर्ण, मूत्रकृच्छ्र, शोथ आदि विविध रोगनाशक है।

बुद्धिमान चिकित्सक रोग और रोगीकी अवस्था विचार कर इस अध्यायकी सब दवायोंका काढ़ा लेप और इसके साथ तेल घी आदि पाककर प्रयोग करनेसे उपयुक्त उपकार प्राप्त होवेगे।

पथ्य प्रस्तुत विधि।

यवागू।

थोड़ा कूटा हुआ चावल या औके चावलका यवागू तयार करना। मांगड़, पेय और लपसी यह तीन प्रकारका यवागू होता है। चावल १८गूने पानीमें खूब मिलाकर छान लेनेसे मांगड़ होता है, ११गूने पानीमें खूब सिजा लेनेसे पेय कहते हैं और ८ गूने पानीमें सिजानेसे लपसी कहते हैं। पेय और लपसी छानी नही जाती। यवागू पानीकी तरह होनेसे पेय और गाढ़ा होनेसे लपसी कहते हैं।

धानके लावाका मांड—टटका धानका लावा थोड़े गरम पानीमें थोड़ी देर भिंगो रखना, फिर कपड़ेमें छाननेसे जो मांड़की तरह पदार्थ निकलेगा उसको धानके लावाका मांड कहते हैं।

बार्लि और एराकट।

बार्लि और एराकट बनाना हो तो पहिले गरम पानीमें खूब मिलाके, फिर दूध, मिश्री मिलाकर औटाना। सागू बनानेकी भी रीति यही है, पर सागू थोड़ी देर ठण्ढ पानीमें भिंगाकर सिजाना चाहिये।

माणमण्ड।

माणकन्दका चूर्ण दो भाग और चावलका चूर्ण एक भाग १८ गूने पानीमें औटानेसे माणमण्ड तयार होता है। यवागू आदि पथ्य रोगीकी अवस्था विचारकर मिश्री, कागजी नीबूका रस २।३ बूंद या छोटी मछलीका शूरवा अथवा मांसका रस मिलाकर दिया जाता है।

उपवास या यवागू आदि हलके भोजनके बाद अन्न पथ्य देना हो तो चावल पांच गूने पानीमें सिजाना। चावल खूब गलजानेपर मांड निकाल डालना। तरकारी आदिमें भी थोड़ा तेल और नमक मिलाना चाहिये।

दालका जूस।

मूंग और मसूरका जूस बनाना हो तो, दाल १८ गूने पानीमें सिजाना तथा तेल, नमक और मसाला बहुत कम मिलाना। २।३ तेजपत्ता, थोड़ी गोलमिरच और थोड़ी पिसी हुई धनियाके सिवाय और कोई मसाला देना उचित नहीं है।

मांसका रस।

रोगके अवस्थानुसार छाग, कबूतर या मुरगा आदिके कोमल मांसका छोटा छोटा टूकड़ा कर उसकी चर्बी निकाल उपयुक्त पानीमें अन्दाज एक घण्टा भिंगो रखना; फिर उसमें थोड़ा नमक, हल्दी और

समूचो धनिया मिला मुह बन्दकर जलकी आंचमें सिझाना। सुसिद्ध होनेपर एक पात्रमें रस और दूसरे पात्रमें मांस निकाल रखना। फिर मांस अच्छी तरह मसलकर उसका भी रस दूसरे पात्रवाले रसमें मिला देना। थोड़ी देर बाद रसके ऊपर चर्व्वी दिखाई देगी, वह एक साफ कपड़ेके टुकड़ेसे निकाल लेना। रोगीको अवस्थाके अनुसार ३।४ तेजपत्ता और राईकी फोड़न देकर थोड़ा गोलमिरचका चूर्ण मिलाना। इसीको मांस रस कहते हैं। आजकल बोतलमें भरकर मांस रस बनानेकी एक प्रकार रीति है, उसे भी तयार कर सकते हैं। मांस रस एक दफे बनाकर ५।६ घंटेके बाद फिर वह कामका नहीं रहता। जरूरत होनेपर फिरसे बनाना चाहिये।

आटेकी रोटी।

जल्दी हजम होनेवाली रोटी बनाना हो तो, पहिले आटा एक घंटातक उपयुक्त पानीमें भिंगो रखना, फिर खूब मसलकर गोला बनाना, तथा एक बरतनमें पानी चूल्हेपर चढ़ा वह गोला १५।२० मिनट सिझाकर बाहर निकाल लेना। फिर उस गोलेको अच्छी तरह मसलकर पतली रोटी बनाकर सेंक लेना। यह रोटी बहुत जल्द हजम होती है और किसी तरह के बद-हजमीका डर नहीं रहता है।

ज्वराधिकार।

वातज्वरमें।

विल्वादि पञ्चमूल। बेल, अरलु, गाम्भारी, पाटला (पद्) और गणियारी (इरणी) यह पांच वृक्षके जड़को छाल २ तोले, आधासेर पानीमें औटाना आधा पाव रहते उतार कर पिलानेसे वातज्वर आराम होता है।

किरातादि। चिरायता, मोथा, गुरिच, वृहती, कंटकारी, गोखुर, सरिवन, पिटवन और शोठ; यह काढ़ा वातज्वर नाशक है।

रास्नादि: रास्ना, अमिलतास, देवदारु, गुरिच, एरण्ड और पुनर्नवा; इन सबके काढ़ेमें शोंठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे वातज्वर आराम होता है, तथा तज्जनित बदनको दर्द आदिभी निवृत्ति होता है।

पिप्पल्यादि। पीपल, गुरिच और शोंठ किम्वा पीपल, अनन्तमूल, द्राक्षा, सोवा और सम्भालुको बीज; यह दोमें किसी एकका काढ़ा पोनेसे भी वातज्वर आराम होता है।

गुड़च्यादि। वातज्वरके सातवें दिन जब सम्पूर्ण लक्षण प्रकाशित हो तब गुरिच, पोपलामूल और शोंठका काढ़ा देना चाहिये।

द्राक्षादि। द्राक्षा, गुरिच, गाम्भारी, गुलर और अनन्तमूल; इस काढ़ेका गुड़ मिलाकर पिलानेसे वातज्वर आराम होता है।

पित्तज्वरमें।

कलिङ्गादि। इन्द्रयव, कटफल, लोध, अकवन, परवरका पत्ता और मजीठ; यह काढ़ा पीनेसे पित्तज्वरका दोष परिपाक होता है।

लोध्रादि। लोधकी छाल, उत्पल, गुरिच, पद्मकाष्ठ और अनन्त-मूलका काढ़ा थोड़ी चीनी मिलाकर पिलानेसे पित्तज्वर दूर होता है।

पटोलादि। पित्तज्वरमें दाह और पिपासा प्रबल होतो परवरका पत्ता, यव धनिया और मुलेठीका काढ़ा पिलाना।

दुरालभादि। जवासा, पितपापड़ा, प्रियङ्गु, चिरायता, अडुसा और कुटकीके काढ़ेमें चीनी मिलाकर पिलानेसे तृष्णा, रक्तपित्त, ज्वर और दाह प्रशमित होता है।

त्रायमाणादि। गम्भर, मुलेठी, पीपलामूल, चिरायता, मोथा महुवेका फूल और बहेड़ाका काढ़ा चीनी मिलाकर पीनेसे पित्त ज्वर आराम होता।

श्लेष्मज्वरमें।

पिप्पल्यादिगण। पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीता, सोंठ, गोलमिरच, गजपीपल, सम्भालुकी बीज, इलायची, अजवाईन, इन्द्रयव, अकवन, जीरा, सरसो, बड़ी नीमका फल, हींग, बभनेटी, मूर्व्वा, अतीस, बच, विडङ्ग और कुटकी; इन सबको पिप्पल्यादिगण कहते हैं। इससे श्लेष्मज्वर दूर होता है तथा कफ, प्रतिश्याय, वायु, अरुचि, गुल्म और शूल आराम होता है।

कटुकादि। कुटकी, चीतामूल, नीमका फल, हलदी, अतीस, कूठ, इन्द्रयव, मूर्व्वा और परवरका पत्ता; इन सबके काढ़ेमें गोलमिरचका चूर्ण और सहत मिलाकर पीनेसे कफज्वर नाश होता है। किसी किसी ग्रन्थकारके मतसे कुटकीसे बचतक एक योग और कूठसे परवरके पत्तेतक दूसरा योग है।

निम्बादि। नीमकी छाल, शोंठ, गुरिच, देवदारु, शठी, चिरायता, कूठ, पीपल और इन्द्रजौका काढ़ा कफज्वर नाशक है।

वातपित्त ज्वरमें।

नवाङ्ग। शोंठ, गुरिच, मोथा, चिरायता, सरिवन, पिठवन, कंटकारी और गोक्षुरका काढ़ा पीनेसे वातज्वर जल्दी आराम होता है।

पञ्चभद्र। गुरिच, पित्तपापड़ा, मोथा, चिरायता और शोंठ; इनका काढ़ा वातपित्त ज्वरमें उपकारी है।

त्रिफलादि। त्रिफला, सेमरकी जड़, रासन, अमिलतासका फल और अडूसेका काढ़ा वातपित्त ज्वर नाशक है।

निर्दिग्धिकादि। कंटकारी, बरियारा, रास्ना, गुल्लर, गुरिच और मसूर (किसीके मतसे श्यामालता) के काढ़ेसे वातपित्त ज्वर आराम होता है।

मधुकादि। मुलेठी, अनन्तमूल, श्यामालता, द्राक्षा, महुवेका फूल, लालचन्दन, उत्पल, गाम्भारी, पद्मकाष्ठ, लोध, आंवला, हरीतकी, बहेड़ा, पद्मकेशर, फालसा और खसकी जड़; रातको साफ पानीमें भिंगोना और सबेरे छान लेना, इसमें सहत, धानके लावाका चूर्ण और चीनी मिलाकर खिलानेसे पित्तजनित तृष्णा, वमन, भ्रम आदि उपद्रव जल्दी प्रशमित होता है।

वातश्लेष्म ज्वरमें।

गुडूच्यादि। गुरिच, नीमकी छाल, धनिया, पद्मकाष्ठ और लालचन्दनका काढ़ा पीनेसे वातश्लैष्मिक ज्वर प्रशमित होता है। तथा अरुचि, सर्दी, पिपासा और दाह दूर होता है।

मुस्तादि। वातश्लेष्म ज्वरमें वमन, दाह और मुखशोष रहनेसे मोथा, पित्तपापड़ा, शोंठ, गुरिच और जवासेका काढ़ा पिलाना।

दार्व्यादि। वातकफ ज्वरमें हिक्का, मुखशोष, गलग्रहता, काम, श्वास और मुखप्रषेक हो तो देवदारु, खेतपापड़ा, बभनेठी, मोथा, बच, धनिया, कटफल, हरीतकी, शोंठ और नाटाकरंज; इनका काढ़ा हींग और सहत मिलाकर पिलाना।

चातुर्भद्रक। कफका वेग प्रवल हो तो चिरायता, शोंठ, मोथा और गुरिचका काढ़ा पिलाना।

पाठासप्तक। ज्वरका वेग प्रवल हो तो चिरायता, शोंट, गुरिच, अकवन, वाला और खसकी जड़का काढ़ा उपकारी है।

कण्टकार्य्यादि। कंटकारी, गुरिच, बभनेठी, शोंठ, इन्द्रयव, जवासा, चिरायता, लालचन्दन, मोथा, परवरका पत्ता और कुटकी का काढ़ा पिलानेसे दाह, तृष्णा, अरुचि, कास और हृदय तथा पार्श्व वेदना दूर होती है।

पित्तश्लेष्म ज्वरमें।

पटोलादि। परवरका पत्ता, लालचन्दन, मूर्व्वा, कुटकी अकवन और गुरिचका काढ़ा पित्तश्लेष्म ज्वर, अरुचि, वमन, कडू और विषदोष नाशक है।

अमृताष्टक। गुरिच, नीमकी छाल, इन्द्रयव, परवरका पत्ता, कुटकी, शोंठ, लालचन्दन और मोथाके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे पित्तश्लेष्म ज्वर दूर होता है; तथा तज्जनित वमन, अरुचि, तृष्णा, वमनवेग और दाह प्रशमित होता है।

पञ्चतिक्त। कंटकारी, गुरिच, शोंठ, चिरायता और कूठ यह पञ्चतिक्त काढ़ा पीनेसे आठ प्रकारका ज्वर आराम होता है।

नये ज्वरमें।

ज्वराङ्कुश। पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, हिङ्गुल ३ भाग,

जमालगोटेको बीज ४ भाग ; यह सब दन्तोमूलके काढेमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना । अनुपान चीनीका शर्बत ।

स्वच्छन्द भैरव । पारा, गन्धक, मोठाविष, जायफल और पीपल ; समभाग पानीमें खलकर आधो रत्ती वजनकी गोली बनाना, अनुपान अदरखका रस, पानका रस और सहत ।

हिंगुलेश्वर । पोपल, हिंगुल और मिठाविष ; समभाग पानीमें खलकर आधी रत्तीकी गोली बनाना । यह सहतमे देनेसे वातिक ज्वर आराम होता ।

अग्निकुमार रस । गोलमिरच २ मासे, वच २ मासे, कूठ २ मासे, मोथा २ मासे, और मोठा विष ८ मासे, अदरखके रसमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना । अनुपान आमज्वरके प्रथमावस्थामें शोंठका चूर्ण और सहत ; कफज्वरमें अदरखका रस ; पीनस और प्रतिश्यायमें भी अदरखका रस, अग्निमान्द्यमें लौंगका चूर्ण ; शोथमें दशमूलका काढ़ा ; आमातिसारमें धनिया और शोंठका काढ़ा ; पक्वातिसारमें कुरया का काढ़ा और सहत ; ग्रहणी रोगमें शोंठका चूर्ण ; सन्निपातके पहिली अवस्थामें पोपलका चूर्ण और अदरखका रस ; खांसीमें कंटकारीका रस ; श्वासमें सरसोंका तेल और पुराना गुड़ । इसको केवल दो गोली सेवन करनेसे रोगोको आराम मालूम होता है । सब प्रकारके रोगोंमें आमदोषके शान्तिके लिये यह औषध देना चाहिये । इससे अग्निवृद्धि होती है, इससे इसका नाम अग्निकुमार रस रखा गया है ।

अग्नितुण्डय रस । विष (मोठा विष) १ भाग, गोलमिरच एक भाग, पोपल एक भाग, जङ्गलो जोरा १ भाग, गन्धक एक भाग, सोहागेका लावा १ भाग,

हिंगुल २ भाग, (यहां हिंगुल जम्बीरी नीबूके रसको भावना देकर लेना ; यदि इसमें १ भाग पारा मिलाया जाय तो हिंगुल मिलानेकी जरूरत नहीं है) अदरखके रसमें खूब खलकर मूंगके बराबर गोली बनाना। इसका साधारण अनुपान सहत, वात ज्वरमें दहीका पानी, सन्निपातमें अदरखका रस, जीर्ण ज्वरमें जम्बीरी नीबूका रस, विषम ज्वरमें काला जीराका चूर्ण और पुराना गुड़, इसकी पूरीमात्रा ४ गोली है, पर बूढ़े, बालक और दुर्व्वल मनुष्यको एकही गोली देना चाहिये। यदि कफका आधिक्य न हो तथा रोगी सवल हो तो कच्चे नारियलका पानी और चीनीके साथ सेवन कराना। इससे वातपैत्तिक दाह भी दूर होता है।

सर्व्वज्वराङ्कुश वटी।

पारा, गोलमिरच, शोंठ, पीपल, जमालगोटेकी छाल, चीता और मोथा ; इन सबका समभाग चूर्ण अदरखके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह गोली सेवनकर शरीर कपड़ेसे ढांके रखना चाहिये। इससे आठ प्रकारका ज्वर, प्राकृत, वैकृत विषम आदि सब प्रकारका ज्वर आराम होता है।

चण्डेश्वर रस।

पारा, गन्धक, मीठा विष और ताम्बा ; यह सब समभाग लेकर एक पहर खल करना, फिर अदरखके रसकी ७ बार और समालू पत्रके रसकी ७सात बार भावना देकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। इससे सब प्रकारका ज्वर जल्दी आराम होता है।

चन्द्रशेखर रस

पारा एकभाग गन्धक दो भाग, सोहागेका लावा २ भाग, गोलमिरच २ भाग और सबके समान चीनी, रोहित मछलीके पित्तकी भावना

देकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस और ठंढापानी। इससे अत्युग्र पित्तश्लेष्मज्वर तीनदिनमें आराम होताहै।

वैद्यनाथ वटी।

पारा आधा तोला और गन्धक आधा तोला खलकर कज्जली बनाना, फिर कुटकीका चूर्ण २ तोले मिलाकर करैलीका रस अथवा त्रिफलाके काढ़ेकी तीन दफे भावना देकर मटरके बराबर गोली बनाना। अनुपान पानका रस किम्वा करैलीका रस और गरम पानी। दोषका बलाबल विचारकर एकसे चार गोलीतक देनेकी व्यवस्था है। यह बालकोंके लिये हलका जुलाब है।

नवज्वरेभसिंह।

पारा, गन्धक, लोहा, तांबा, सीसा, गोलमिरच, पीपल और सोंठ प्रत्येक समभाग, मीठा विष आधा भाग (कोई कोई समष्टिका आधा विष कहते हैं।) २ दिन पानीमें खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। इससे घोरतर नवज्वर आदि रोग नष्ट होते है।

मृत्युञ्जय रस।

पारा एकभाग, गन्धक दो भाग, सोहागेका लावा ४ भाग विष ८ भाग; धतूरेको बीज १६ भाग, त्रिकटु ६२ भाग धतूरेके रसमें खलकर एक मासा वजनकी गोलीबनाना। इससे सवप्रकारका ज्वर आराम होताहै। कच्चे नारियलका पानी और चीनीसे वातपैत्तिक ज्वर, सहतसे श्लैष्मिक ज्वर और अदरखके रसमें देनेसे सन्निपात ज्वर आराम होता है।

प्रचण्डेश्वर रस।

विष, पारा और गन्धक समान वजन दोपहर खलकर, समालू पत्रके रसकी २१ दफे भावना देना तथा इसकी तिलके बराबर गोली बनाना। अनुपान अदरखके रसमें यह नवज्वरकी अकसीर दवा है।

विष एक भाग, सोहागा २भाग, गन्धक ३ भाग, तांबा ४भाग, हरतीबीज ५ भाग; हरतीके काढ़ेमें एक पहर खलकर ३ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस अथवा शोंठ, पीपल और गोल-मिरचका काढ़ा और चीनी। इससे नवज्वर मन्दाग्नि, आमवात, शोथ, विष्टम्भ, अर्श: और क्रिमि दूर होता है।

त्रिपुरभैरव रस।

पारा एक भाग, गन्धक एक भाग, सोहागेका लावा एक भाग, जमालगोटेकी बीज २ भाग, सैंधव एक भाग, मिरच एक भाग, इसलीकी छालका भस्म १ भाग और मीठाविष एक भाग, यह सब द्रव्य जम्बीरी नीबूके रसमें खलकर दो रत्ती वजनकी गोली बनाना। यह वात-श्लेष्म और शीतज्वरकी उत्कृष्ट औषध है।

शीतारि रस।

शङ्खभस्म, शोंठ, पीपल, मिरच, सोहागेका लावा आदि एक एक भाग, मीठाविष ५ भाग यह आदीके रसमें तीन दफे खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान आदीका रस, इससे कफ जन्य कण्ठरोध, शिरोरोग और भयानक सन्निपात दूर होता है।

कफकेतु।

प्रताप मार्त्तण्ड रस—मीठा विष, हिङ्गुल और सोहागा समभाग पानीमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे ज्वर तुरन्त आराम होता है।

पारा, गन्धक, मीठाविष, शोंठ, पीपल, मिरच, हरीतकी, आंवला, बहेड़ा और जमालगोटेकी बीज, प्रत्येक समभाग भङ्गरइयाके रसमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। बच्चोंके लिये सरसो बराबर। पित्तज्वरमें चीनी, सन्निपात ज्वरमें मिरच और दाहज्वरमें पीपल

ज्वरकेशरी।

और जीरेके काढ़ेमें विरेचनके लिये प्रयोग करना। साधारणतः यह केवल गरम पानीके साथ प्रयुक्त होता है।

ज्वरमुरारि। हिङ्गुल, मीठाविष, शोंठ, पीपल, मिरच, सोहागेका लावा और हरीतकी, प्रत्येक समभाग, सबके बराबर जमाल गोटेकी बीज पानीके साथ खलकर उरदके बराबर गोली बनाना। आदीके रसके साथ विरेचनके लिये दिया जाता है। यह भी सद्यः ज्वर निवारक है।

सन्निपात ज्वरमें।

क्षुद्रादि—कण्टकारी, गुरिच, शोंठ और कुठका काढ़ा पीनेसे सन्निपात ज्वर, कास, श्वास, अरुचि और पार्श्वशूल आराम होता है; यह वातश्लेष्मिक ज्वरमें भी दिया जा सकता है।

चातुर्भद्रक—चिरायता, शोंठ, मोथा और गोलमिरचका काढ़ा पीनेसे सान्निपातिक ज्वर आराम होता है। यह कफाधिक्य सन्निपातमें प्रशस्त है।

नागरादि—शोंठ, धनिया, बभनेटी, पद्मकाष्ठ, लालचन्दन, परवरका पत्ता, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलेठी, बरियारा, कुटकी, मोथा, गजपीपल, अमिलतास, चिरायता, गुरिच, दशमूल और कण्टकारीके काढ़ेमें चीनी मिलाकर पीनेसे त्रिदोषोत्पन्न सन्निपात ज्वर आराम होता है।

चतुर्दशाङ्ग—पुराना ज्वर या वातश्लेष्मिक सन्निपात ज्वरमें पूर्व्वोक्त दशमूल और किराततादिगण अर्थात् चिरायता, मोथा, गुरिच और शोंठ के काढ़ेके साथ आधा तोला निशोथका चूर्ण मिलाकर पीनेको देना।

वातश्लेष्महर अष्टादशाङ्ग—वात कफाधिक्य सान्निपातिक ज्वरमें हृदय और पार्श्ववेदना तथा कास, श्वास, हिक्का और

वमनवेग रहनेसे पूर्वोक्त दशमूल, शठो, काकड़ाशिङ्गी, कूठ, जवासा, बभनेठो, इन्द्रयव, परवरका पत्ता और कुटको, यही अष्टादशाङ्ग का काढ़ा देना।

पित्तश्लेष्महर-अष्टादशाङ्ग—चिरायता, देवदारु, दशमूल, शोंठ, मोथा, कुटको, इन्द्रयव, धनिया और गजपोपलके काढ़ेसे तन्द्रा, प्रलाप, कास, अरुचि, दाह और मोह आदि उपद्रवयुक्त सान्निपातिक ज्वर जल्दी आराम होता है।

भार्ग्यादि—बभनेठो, हरीतको, कुटको, कूठ, पितपापड़ा, मोथा, पोपल, गुरिच, दशमूल और शोंठका काढ़ा पोनेसे सान्निपातिक ज्वर नाश होता है, तथा सततादि घोरतर ज्वर, वह्निस्थ और शोत संयुक्त ज्वर तथा मन्दाग्नि, अरुचि, प्लोहा, यकृत्, गुल्म और शोथभी विनष्ट होता है।

शट्यादि—शठो, कूठ, हृहतो, काकड़ाशिङ्गो, जवासा, गुरिच, शोंठ, आकनादि, चिरायता और कुटको, यह शट्यादि क्वाथ सान्निपातिक ज्वर नाशक है।

हृहत्यादि—हृहतो, कण्टकारी, कूठ, बभनेठो, शठो, काकड़ाशिङ्गो, जवासा, इन्द्रयव, परवरका पत्ता और कुटको; यह हृहत्यादि क्वाथ सेवन करनेसे सान्निपातिक ज्वर और उसके उपद्रव कासादि दूर होते हैं।

व्योषादि—शोंठ, पोपल, मिरच, त्रिफला, परवरका पत्ता, नोमको छाल, अडूसा, चिरायता, गुरिच और जवासाका काढ़ा त्रिदोषज्वर नाशक है।

त्रिहतादि—निशोथ, गोरक्ष ककंटो, त्रिफला, कुटको और अमिलतासके काढ़ेमें, जवाखार मिलाकर पोनेसे त्रिदोषजनित ज्वर आराम होता है।

अभिन्यास ज्वरमें।

कारव्यादि—कालाजीरा, कूठ; एरण्डमूल, बड़ा गुल्लर, शोंठ, गुरिच, दशमूल, शठी, काकड़ाशिङ्गी, जवासा और पुनर्नवा, गोमूत्रमें औटाकर पीनेसे घोरतर अभिन्यास ज्वर आराम होता है।

शृङ्ग्यादि। काकड़ाशिंगी, बभनेठी, हरीतकी, कालाजीरा, पीपल, चिरायता, पितपापड़ा, देवदारु, बच, कूठ, जवासा, कायफल, शोंठ, मोथा, धनिया, कुटकी, इन्द्रयव, अकवन, रेणुका, गजपीपल, अपामार्ग, पीपलामूल, चीतामूल, बड़ा खीरा, अमिलतास, नीमकी छाल, बकुची, विड़ङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, अजवाइन, अजमोदाके काढ़ेमें हींग और आदीका रस मिलाकर पीनेसे उत्कट अभिन्यास ज्वर, तेरह प्रकारका सन्निपात ज्वर और तन्द्रा, मोह, हुचकी, कर्णशूल, श्वास, कास आदि उपद्रव शान्त होता है।

स्वल्पकस्तूरी भैरव—हिंगुल, विष, सोहागेका लावा, जावीत्री, जायफल, मिरच, पीपल और कस्तूरी, प्रत्येक द्रव्य समभाग पानीमें खलकर दो रत्ती प्रमाण गोली बनाना। यह सन्निपात ज्वरमें आदीके रसमें देना।

बृहत् कस्तूरी भैरव। कस्तूरी, कपूर, धवइका फूल, तांबा, केवांच बीज, चांदी, सोना, मोती, मूंगा, लोहा, अकवन, विड़ंग, मोथा, शोंठ, बाला हरिताल, और आंवला इन सबका समभाग चूर्ण मदारके पत्तेके रसमें खलकर १ रत्ती वजनकी गोली बनाना, अनुपान आदिका रस, इससे सब प्रकारका ज्वर तथा और कई प्रकारके रोग आराम होते है।

हिङ्गुलोत्थ पारा, गन्धक, तांबा, तुतिया, मैनसिल, हरिताल, कटफल, धतूरेको बोज, हींग, स्वर्ण-माक्षिक, कूठ, निशोथ, दन्ती, सोंठ, पोपल, मिरच, अमलतास, वङ्ग और साहागेका लावा, यह सब द्रव्य सेहुंड़के दूधमें खलकर एक रत्ती वजनको गोली बनाना। इससे कफाल्वन सन्निपात आदि नानाप्रकारके रोग आराम होते है।

अथवा कालात्मक रस।

पारा, गंधक, अभ्र, साहागेका लावा, मैनसिल, हिंगुल, काले सर्पका विष, दारमुज विष और ताम्बा, प्रत्येक २ तोला लेकर बहुत महीन चूर्ण करना। लाङ्गली मूल, घोषालताका मूल, लाल चीताकी जड़, नरम भूंई आंवला, अभनेठो, अकवनकी जड़ और पञ्चतिक्त रसकी भावना देकर राईके बराबर गोली बनाना। इससे सन्निपातका विकार शान्त होता है।

कालानल रस।

पारा, विष, गंधक, हरिताल, बहेड़ा, आंवला, हर्रा, जमाल-गोटेको बीज, निशोथ मूल, सोना, तांबा, सीसा, अभ्र, लोहा, मदारका दूध, लांगली और स्वर्णमाक्षिक; यह सब द्रव्य समभाग लेकर नीचे लिखे प्रत्येक काढ़ाकी ३० बार भावना देकर मटर बराबर गोली बनाना।

सन्निपात भैरव।

भावनाकी द्रव्य—अकवन, श्वेत अपराजिता, मुण्डरी, हुड़हुड़, कालाजीरा, काकजङ्घा, श्योनाक छाल, कूठ, सोंठ, पोपल, मिरच, बच्चो, लाल सूर्य्यमणि फूल, श्रीखण्डचन्दन, समालू, रुद्रजटा, धतूरा और दन्ती; इससे सन्निपात ज्वर आराम होता है।

वेताल रस।

पारा, गंधक, विष, मिरच और हरिताल, समभाग पानीमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे साध्यासाध्य १२ प्रकारका सान्निपातिकाज्वर और तज्जनित मूर्च्छा आदि शान्त होता है।

सूचिकाभरण रस।

कालकूट विष, काले सर्पका विष और दारमुज, प्रत्येक एक भाग, हिंगुल ३ भाग, रोहित मछली, वराह, महिष, छाग और मोरके पित्तकी क्रमशः भावना देकर सरसोंके बराबर गोली बनाना। अनुपान कच्चे नारियलका पानी या मिश्रीका शर्बत। इसको सेवन कर तिलतैलका मर्द्दन और अन्यान्य शीतल क्रिया करना चाहिये। इससे विकारग्रस्त मृतप्राय रोगीभी आराम होते देखा गया है।

घोरनृसिंह रस।

ताम्बा १ भाग, वङ्ग एक भाग, लोहा २ भाग, अभ्र चार भाग, स्वर्णमाक्षिक १ भाग, पारा १ भाग, गंधक एक भाग, मैनशिल एकभाग, काले सर्पका विष ४ भाग, त्रिकटु ४ भाग, कुचिला १२ भाग और कालकूट विष ८८ भाग, यह सब द्रव्य, रोहित मछली, महिष, कपूर और शूकरका पित्त और चीताके रसमें एक एक पहर भावना देकर सरसो बराबर गोली बनाकर धूपमें सुखा लेना। अनुपान कच्चे नारियलका पानी। इससे १३ प्रकारका सन्निपात, हैजा और अतिसार आदि रोग आराम होता है।

चक्री (चाकी)।

पारा, गंधक, विष, धतूरेको बीज, मिरच, हरिताल और स्वर्णमाक्षिक, प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर दन्तीके काढ़ेकी भावना देकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे साध्य और असाध्य १३ प्रकारका सान्निपातिक ज्वर आराम होता है।

पारा, गंधक, अभ्र, हरिताल, हिंगुल, मिरच, सोहागेका लावा और सेंधानमक प्रत्येक समभाग सबके समान विष, तथा समष्टीका चौथा हिस्सा महिषके पित्तमें खल करना। ब्रह्मरन्ध्र रस बदन थोड़ा चोर कर लगानेसे सन्निपातके विकारकी अज्ञानता दूर होती है। रोगीको उस आदि शीतल द्रव्य देना।

ब्रह्मरन्ध्र रस।

मृतसञ्जीवनी ५० पल, मद्धन २५ पल, पानी २५ पल, कस्तूरी ४ पल, मिरच, लवण, जायफल, पीपल और दालचिनी प्रत्येक २ पल, यह सब एक बरतनमें रख मुह बन्दकर एक महीना रख, फिर छान लेना। यह उचित मात्रामें विसूचिका, हुचकी और सन्निपातिक ज्वरमें दिया जाता है।

कृमभटासव।

एक वर्षसे भी अधिक पुराना गुड़ ३२ सेर, कुटी हुई बबूलकी छाल २० पल, अनारकी छाल, अडूसेकी छाल, मोचरस, बराहक्रान्ता, अतीस, असगंध, देवदारु, बेलकी छाल, श्योन्याककी छाल, पाटलाकी छाल, शरिवन, पिठवन, बृहती, कण्टकारी, गोखुर, बेर, बड़े बोरिकी जड़, चीतामूल, आलकुशी बीज और पुनर्नवा यह सब मिलाकर १० पल लेना तथा कूटकर १५६ सेर पानीमें मिलाकर बड़े मिट्टीके बरतनमें रख मुह बन्द करना। १६ दिनके बाद कूटी हुई सुपारी ४ सेर, धतूरेकी जड़, लौंग, पद्मकाष्ठ, खस, लाल-चन्दन, सोवा, अजवाईन, गोलमिरच, जीरा, कालाजीरा, शठी, जटामांसी, दालचिनी, इलायची, जायफल, मोथा, गठिवन, शोंठ, मेथी, मेषशृङ्गी और चन्दन प्रत्येक २ पल; कूटकर मिलाना तथा मुह बन्द कर देना, फिर ४ दिनके बाद बकयन्त्रमें चुआकर शराब

मृतसञ्जीवनी सुरा।

बनाना। बल, अग्नि और उमरके अनुसार इसको मात्रा स्थिर करना। इससे घोर सन्निपात ज्वर और विसूचिका आदि नाना-प्रकारके रोग आराम होता है तथा शरीरको कान्ति, बल, पुष्टि और दृढ़ता होती है।

पारा, गंधक, लोहा और चांदो समभाग लेकर नीचे लिखे द्रव्यके रसको भावना देना। कुड़कुड़ समालु, तुलसो, श्वेत अपराजिता, चीता-मूल, अदरख, लाल चीतामूल, भांग, हरीतको, काकमाची और पञ्चतिक्त। एक कटोरेमें रख वालुकायन्त्रमें फूकना। इसके चूर्ण को मात्रा एक मासा। इसमें अभिन्यास नामक सन्निपात आराम होता है। बकरीका दूध और मूंगका जूस रोगीको पथ्य देना।

स्वच्छन्दनायक।

जीर्ण और विषम ज्वर।

कण्टकारी, सोंठ और गुरिचके काढ़ेमें एक आनाभर पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे विषमज्वर, जीर्ण-ज्वर, अरुचि, कास, शूल, श्वास, अग्नि-मान्द्य और पोनस रोग आराम होता है। इससे ऊर्द्धग रोग आराम होता है इसलिये शामको पिलाना चाहिये। रातके ज्वरमें यह काढा शामको और दूसरेमें सबेरे पिलाना। पित्तप्रधान मालूम हो तो पीपलके बदलेमें सहत मिलाना।

निर्दिग्धिकादि।

गुड़ूच्यादि—गुरिच, मोथा, चिरायता, आंवला, कण्टकारी, सोंठ, बेलकी छाल, श्योनाक छाल, गाम्भारी छाल, पाटला छाल, गणियारी छाल, कुटकी, इन्द्रयव और जवासाके काढेमें

आनेभर पीपलका चूर्ण और सहत २ मासे मिलाकर पीनेसे वातज, पित्तज, द्वन्द्वज और चिरोत्पन्न रात्रिज्वर आराम होता है।

द्राक्षादि—जीर्णज्वरमें कास, श्वास, शोथ और अरुचि हो तो; द्राक्षा, गुरिच, शठी, काकड़ाशिङ्गी, मोथा, लालचन्दन, शोंठ, कुटकी, अम्बष्ठा, चिरायता, जवासा, खस, धनिया, पद्मकाष्ठ, बाला, कण्टकारी, कूठ और नीमकी छाल; यह अष्टादश अंग काढ़ा देना।

महौषधादि—शोंठ, पिपलामूल, तालमूली, मार्कण्डिका, अमिलतास, बाला और हरीतकी। इन सबके काढ़ेमें जवाखार मिलाकर पिलाना। यह पाचक, रेचक और विषम ज्वर नाशक है।

पटोलादि—परवरका पत्ता, मुलेठी, कुटकी, मोथा और हरीतकी; इसका काढ़ा अथवा त्रिफला, गुरिच और अडूसेका काढा, किम्वा दोनो प्रकारका मिला हुआ काढा विषम ज्वर नाशक है।

वृहत् भार्ग्यादि—बारंगी, हरीतकी, कुटकी, कूठ, पित्त-पापड़ा, मोथा, पीपल, गुरिच, दशमूल और शोंठका काढ़ा पीनेसे धातुगत शततादि घोरतर ज्वर, वह्निस्थ और शीतसंयुक्त ज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, यकृत्, गुल्म और शोथ आराम होताहै।

भार्ग्यादि—बारंगी, कूठ, रास्ना, बेलकी छाल, अजवाईन, शोंठ, दशमूल और पीपल; इसका काढा पीनेसे विषम ज्वर, सान्निपातिक ज्वर और तज्जनित कास, श्वास, अग्निमान्द्य, तन्द्रा, हृदय और पार्श्वशूल आदि उपद्रव दूर होते है।

मधुकादि—मुलेठी, लालचन्दन, मोथा, आंवला, धनिया, खस, गुरिच और परवरके पत्तेके काढ़ेमें २ मासे सहत और

२ माशे चीनी मिलाकर पीनेसे आठ प्रकारका ज्वर, सततादि ज्वर आदि जल्दी आराम होता है।

दाक्षादि। नीलपुष्प, देवदारु, इन्द्रयव, मजीठ, श्यामालता, अम्बष्ठा, शठी, शोंठ, खस, चिरायता, गजपीपल, त्रायमाणा, पद्मकाष्ठ, हड़जोड़, धनिया, मोथा, सरलकाष्ठ, सैजनकी छाल, बाला, कण्टकारी, पित्तपापड़ा, दशमूल, कुटकी, अनन्तमूल गुरिच और कूठके काढ़ेमें आधा तोला मधु मिलाकर पीनेसे धातुस्थ विषम ज्वर, त्रिदोषजनित ज्वर, ऐकाहिक ज्वर और द्वाहिक ज्वर, कामज्वर, शोकजनित ज्वर, वमनयुक्त ज्वर, क्षयजनित ज्वर सततक और दुःसाध्य जीर्ण ज्वर आराम होता है।

दार्व्यादि। दारुहल्दी, इन्द्रयव, मजीठ, वृहती, देवदारु, गुरिच, भूंई आंवला, पित्तपापड़ा, श्यामालता, हरसिङ्गारका पत्ता, गजपीपल, कण्टकारी, नीमकी छाल, मोथा, कूठ, शोंठ, पद्मकाष्ठ, शठी, अडूसे का मूल, त्रायमाणा, हड़जोड़, चिरायता, भेलावा, अम्बष्ठा, कुशमूल, कुटकी, पीपल और धनियाके काढ़ेमें आधा तोला मधु मिलाकर पीनेसे सब प्रकारका विषम ज्वर और शीत, कम्प, दाह, कार्श्य, पसीना निकलना, वमन, ग्रहणी, अतिसार, कास, श्वास, कामला, शोथ, अग्निमान्द्य, अरुचि, आठ प्रकारका शूल, बीस प्रकारका प्रमेह, प्लीहा, अग्रमांस, यकृत और हलीमक आदि नानाप्रकारके रोग आराम होते हैं।

महौषधादि—शोंठ, गुरिच, मोथा, लालचन्दन, खस और धनियाके काढ़ेमें मधु और चीनी मिलाकर पीनेसे तृतीयक (एक दिन अन्तरका) ज्वर आराम होता है।

उशीरादि—तृतीयक ज्वरमें तृष्णा और दाह हो तो खस, लालचन्दन, मोथा, गुरिच, धनिया और शोंठके काढ़े में चीनी तथा सहत मिलाकर पीनेसे तृतीयक ज्वर आराम होता है।

पटोलादि—परवरका पत्ता, नीमकी छाल, किसमिस, श्यामालता, त्रिफला और अडूसेके काढ़े में चीनी और सहत मिला कर पीनेसे भी तृतीयक ज्वर आराम होता है।

वासादि—अडूसेकी छाल, आंवला, सरिवन, देवदारु, हरीतकी और शोंठ, इसका काढ़ा चीनी और सहत मिलाकर पीनेसे चातुर्थक अर्थात् दो दिन अन्तरका ज्वर आराम होता है।

मुस्तादि—मोथा, अमलता और हरीतकीका काढ़ा किम्वा दूधके साथ त्रिफलाका काढ़ा पीनेसे भी चातुर्थक ज्वर आराम होता है।

पथ्यादि—हरीतकी, सरिवन, शोंठ, देवदारु, आंवला और अडूसेका काढ़ा, चीनी और सहत मिलाकर पीनेसे चातुर्थक ज्वर जल्दी आराम होता है।

निदिग्धिकादि—निदिग्धिकादिगण (सरिवन, पिठवन, वृहती कण्टकारी, गोक्षुर) हरीतकी और बहेड़ेके काढ़े में यवक्षार और पीपलका चूर्ण २ मासे मिलाकर पीनेसे प्लीहा और यकृत्युक्त ज्वर आराम होता है, तथा प्लीहा आदि भी उपशम होता है।

सुदर्शन चूर्ण।

कृष्णागुरु (अभावे अगुरु), हल्दी, देवदारु, बच, मोथा, हरीतकी, जवासा, कांकड़ाशिङ्गी, कण्टकारी, शोंठ, त्रायमाणा, खेतपापड़ा, नीमकी छाल, पीपलामूल, वाला, शठी, कूठ, पीपल, मूर्व्वामूल, कुरैयाकी छाल, मुलेठी, सेजनकी बीज, नीलोत्पल, इन्द्रयव, शतमूली, दारुहल्दी, लालचन्दन, पद्मकाष्ठ, सरलकाष्ठ, खस, दालचीनी, सौराष्ट्र

मृत्तिका, सरिवन, अजवाईन, अतीस, बेलकी छाल, गोलमिरच, गन्धतृण, आंवला, गुरिच, कुटकी, चीतामूल, परवरका पत्ता और पिठवन; यह सब द्रव्यका समभाग चूर्ण और सबके बराबर चिरायतेका चूर्ण मिलाना। इसका नाम सुदर्शन चूर्ण है। माता।✓) आने भरसे आधा तोला तक। इससे सब प्रकार जीर्ण और विषम ज्वर तथा स्थान दोषज या जलदोषज ज्वर, विरुद्ध औषध सेवन जनित ज्वर, प्लीहा, यकृत् और गुल्म आदि जल्दी आराम होताहै।

ज्वरभैरव चूर्ण।

शोंठ, त्रायमाणा, नीमकी छाल, जवासा, हरीतकी, मोथा, बच, देवदारु, कण्टकारी, काकड़ाशिङ्गी, शतावर, पितपापड़ा, पीपलामूल, इन्द्रवारुणी की जड़, कूठ, शठी, मूर्व्वामूल, पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, लोध, लालचन्दन, घण्टापाटला, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, मुलेठी, चीता मूल, सैजनकी बीज, बरियारा, अतीस, कुटकी, तालमूली, पद्म काष्ठ, अजवाईन, सरिवन, गोलमिरच, गुरिच, बेलकी छाल, बाला, पर्पटी, तेजपत्ता, दालचीनी, आंवला; पिठवन, परवरका पत्ता, गन्धक, पारा, लोहा, अभ्रक और मैनसिल; यह सब द्रव्यका समभाग चूर्ण तथा समष्टिका आधा चिरायतेका चूर्ण एकत्र मिलाना। दोषका बलाबल विचार कर चार आने भरसे॥)तक मात्रा प्रयोग करना। इससे भी सुदर्शन चूर्णकी तरह सब प्रकारका ज्वर आराम होताहै। अधिकन्तु उदर, अन्त्रवृद्धि, पांडु, रक्तपित्त, चर्म्मरोग, शोथ, शिरःशूल और वातव्याधि प्रभृति रोगभी आराम होता है।

चन्दनादि लौह—लालचन्दन, बाला, अम्बष्ठा, खस, पीपल और मोथा समभाग तथा सबके बराबर लोहा मिलाकर पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे जीर्ण और विषम ज्वर जल्दी आराम होता है।

चीतामूल, बहेड़ा, आंवला, हरीतकी, शोंठ, पीपल, मिरच, विड़ङ्ग, मोथा, गजपीपल, पिपलामूल, खस, देवदारु, चिरायता, परवरका पत्ता, बाला, कुटकी, कण्टकारी, सैजनकी बीज, मुलेठी और इन्द्रयव ; प्रत्येक समभाग और समष्टिके बराबर लोहा मिलाना। फिर पानीके साथ खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे सब प्रकारका ज्वर, प्लीहा, यकृत् और अग्रमांस आराम होता है।

सर्व्वज्वरहर लौह।

पारा, गन्धक, ताम्र, अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, सोना, चांदी और शोधित हरिताल प्रत्येक २ तोले, कान्त-लौह, आठ तोले ; यह सब द्रव्य करेलीका पत्ता, दशमूल, पित्तपापड़ा, त्रिफला, गुरिच, पान, काकमाची, समालुका पत्ता, पुनर्नवा और अदरख ; इन सबके स्वरस या काढ़ेकी सात दिन भावना देकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। यह महौषध सेवन करनेसे ज्वर चाहे कैसाहो क्योंनहो सात दिनमें अवश्य आराम होता है। अनुपान पुराना गुड़ और पीपलका चूर्ण।

बृहत् सर्व्वज्वरहर लौह।

विष २ तोले, मिरच ४ तोले, गंधक ३ तोले, हिङ्गुल १ तोला, ताम्बा २ तोले, यह सब द्रव्य मदारके रसमें भावना देकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे प्रबल ज्वरभी आराम होता है। इसको देकर शीतक्रियादि करना चाहिये।

पञ्चानन रस।

पारा, गन्धक, सेन्धानमक, मीठाविष और ताम्बा प्रत्येक समभाग तथा सबके बराबर लोहा और अभ्रक एकत्र मिलाकर ; लोहेका खल और लोहेके दण्डसे समालू पत्तेके रसमें खल करना। फिर पारेके वजन

ज्वराशनि रस।

बराबर गोलमिरचका चूर्ण मिला मर्द्दनकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान पानका रस। इससे बहुत दिनका पुराना ज्वर, विषम ज्वर, धातुस्थ प्रबल ज्वर, दाहज्वर, यकृत्, प्लीहा, गुल्म, उदर, शोथ, श्वास और कास जल्दी आराम होता है।

ज्वरकुञ्जर पारीन्द्र ।

पारा २ तोले, अभ्र १ तोला, चांदी, स्वर्णमाक्षिक, रसाञ्जन, गेरुमिट्टी, मैनसिल, गन्धक और सोना; यह सब प्रत्येक ४ तोले नीचे लिखे द्रव्योंके स्वरसको तीन तीन बार भावना देकर ४रत्ती वजनकी गोली बनाना। भावनाके द्रव्य—मदार, तुलसीका पत्ता, पुनर्नवा, गणियारी, भूंई आंमला, घोषालता, चिरायता, पद्मकी गुरिच, ईशलाङ्गला, लताफिटकिरी, मुगानि और गन्धतृण। इसको सेवन करनेसे सब प्रकारका ज्वर, श्वास, कास, प्रमेह, शोथ, पाण्डु, कामला, ग्रहणी और क्षयरोग आराम होता है।

जयमङ्गल रस ।

हिंगुलोत्थ पारा, गंधक, सोहागेका लावा, ताम्बा, वङ्ग, स्वर्णमाक्षिक, सेंधानमक और गोलमिरच प्रत्येक ॥) आनेभर, सोना चार आनेभर, लोहा ॥) और चांदी ॥) एकमें मिलाकर धतूरेके पत्तेका रस, हरसिङ्गारके पत्तेका रस, दशमूलका काढ़ा और चिरायताके काढ़ेको तीन तीन बार भावना देकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान जीराका चूर्ण और सहत। इससे चाहे जैसा ज्वर क्यों न हो अवश्य आराम होता है। यह बल और पुष्टि बढ़ानेमें भी उत्कृष्ट औषध है।

विषम ज्वरान्तक लौह ।

पारा २ भाग, गंधक २ भाग, ताम्बा १ भाग, स्वर्णमाक्षिक १भाग और लोहा ६भाग, जयन्ती पत्तेका रस, तालमखानेके पत्तेका रस, पानका

रस अदरखका रस और अडूसेके रसको अलग अलग पांच दफे भावना देकर मटर बराबर गोली बनाना। इससे विषम ज्वर, गुल्म और प्लीहा आराम होता है। अधिकन्तु यह अग्निकारक, हृदयको उत्कर्षता जनक, बल और पुष्टिकारक है।

पुटपक्व विषमज्वरान्तक लौह।

हिङ्गुलोत्थ पारा १ तोला, गंधक एक तोला, इसको कज्जली बनाकर पर्प्पटोकी तरह फूकना। इसके साथ चौथाई तोला सोना; लोहा, अभ्र और ताम्बा प्रत्येक २ तोले; वङ्ग, गेरूमिट्टी और प्रवाल प्रत्येक आधा तोला; यह सब द्रव्य पानीमें खलकर सीपमें बन्दकर मिट्टीका लेपकर २०।२५ गोयठेमें फूक लेना। इसकी मात्रा २ रत्ती; अनुपान पीपलका चूर्ण, हींग और सेंधानमक। इससे सब प्रकारका ज्वर, पाण्डु, कामला, शोथ, प्रमेह, अरुचि, ग्रहणी आदि कई प्रकारके रोग जल्दी आराम होता है।

कल्पतरु रस।

पारा, गंधक, विष और ताम्बा प्रत्येक समभाग, पञ्चपित्त अर्थात् बराह, छाग, महिष, रोहूमछली और मोरके पित्तको यथाक्रम ५ दिन, समालूके पत्तेके रसको ७ दिन और अदरखके रसको ३ दिन भावना दे सरसोंके बराबर गोली बनाकर छायामें सुखा लेना। दोष, अग्नि और उमर विचारकर लगातार २१ दिनतक एक एक गोली सेवन कराना, तथा पसीना निकलनेतक कपड़ा ओढकर सोना चाहिये। पसीना निकल जानेपर बिछौनेसे उठकर दहीमें चीनी मिलाकर पिलाना। इसका अनुपान पीपलका चूर्ण और गरम पानी। इससे जीर्णज्वर, विषम ज्वर, ज्वरातिसार, पाण्डु और कामला आराम होता है। श्वास, कास और शूलयुक्त रोगीको यह देना उचित नहीं है।

ब्राह्मिकादि रस।

पारा १ भाग, गंधक १ भाग, मैनशिल १भाग, हरताल १भाग, अतीस ४ भाग, लोहा २ भाग और चांदी आधा भाग ; यह सब द्रव्य नीमके छालके रसमें खलकर ३ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अतीसका काढा। इससे त्रयहिकादि सब प्रकारका विषम ज्वर नाश होता है।

चातुर्थकादि रस।

पारा, गंधक, लोहा, अभ्रक, हरिताल, प्रत्येक समभाग, सोना पारेका आधा भाग, यह सब एकत्र कर काला धतूरा और मौलसरी फूलके रसमें खलकर २ रत्ती प्रमाणकी गोली बनाना। अनुपान चम्पेका रस। इससे चौथैया आदि विषम ज्वर आराम होता है। ज्वर छूटजाने पर त्रयहिकादि और चातुर्थकादि सब प्रकारका रस देना चाहिये।

अमृतारिष्ट।

गुरिच, साढे बारसेर। दशमूल १२॥ सेर, २५६ सेर पानीसे औटाना २४ सेर पानी रहनेपर नीचे उतारकर छान लेना। फिर उसी काढेमें ३१॥ सेर गुड़ २ सेर कालाजीरा १ पाव पित्तपापड़ा, छातिमछाल, शोंठ, पिपल, मिरच, मोथा, नागेश्वर, कुटकी, अतीस, इन्द्रयव, प्रत्येक १ पल, उसमें मिला मुह बन्दकर १ महीना रखना। यह अरिष्ट सेवन करनेसे सब प्रकार ज्वर आराम होता है।

अङ्गारक तैल।

तिलका तेल ४ सेर कांजी १६ सेर, कल्कार्थ मुर्व्वाकी जड़, लाह, हरदी, दारुहरदी, मजीठ, इन्द्र-वारुणकी जड़, हरती, सेंधानिमक, कूठ, रासन, जटामांसी और सतावर, सब मिलाकर १ सेर पीसकर, १६ सेर पानीमें औटाना, पाकशेष होनेपर तैल छान लेना। फिर कपूर, छड़ीला, नखी, प्रत्येकका चूर्ण २ तोले मिला रखना। यह तेल मालिश करनेसे सब प्रकारका ज्वर आराम होता है।

बृहत् अङ्गारक तैल—तिलका तैल ४ सेर, पानी १६ सेर, सूखी मूली पुनर्नवा, देवदारु, रास्ना, शोंठ और अङ्गारक तैलोक्त सब द्रव्यका कल्क एक सेर। यह तैल मर्द्दन करनेसे ज्वर, शोथ और पाण्डु रोग आराम होता है।

लाक्षादि तैल—तिलका तैल ४ सेर, कांजी २४ सेर, लाह, हलदी और मजीठ का कल्क एक सेर, पानी ४ सेर यथाविधि पाक करना। इससे दाह और शीतज्वर आराम होता है।

महालाक्षादि तैल। तिलका तैल ४ सेर, लाहका काढ़ा १६ सेर (लाह ८ सेर पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर), दहीका पानी १६ सेर, सोवा, हलदी, मूर्व्वाकी जड़, कूठ, समालुकं बीज, कुटकी, मुलेठी, रास्ना, असगन्ध, देवदारु, मोथा और लालचन्दन प्रत्येक दो तोलेका कल्क। तैलपाक समाप्त होनेपर यथाविधि छड़ीला, नखी और कपूर प्रत्येक दो तोले तैलमें मिला रखना। यह तैल मालिश करनेसे ज्वर और अन्यान्य रोग प्रशमित होता हैं।

किरातादि तैल। सरसोंका तैल ४ सेर, दहीका पानी ४ सेर, कांजी ४ सेर, चिरायतेका काढ़ा ४ सेर; मूर्व्वाकी जड़, लाह, हलदी, मजीठ, दारुहलदी, इन्द्र-वारुणी की जड़, वाला, कूठ, रास्ना, गजपीपल, शोंठ, पीपल, मिरच, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, सैन्धानमक, सोंचल नमक, कालानमक, अडूसेकी छाल, सफेद अकवनकी जड़, श्यामालता, देवदारु, गड़तुम्बी सब मिलाकर एक सेरका कल्क। यह तैल मालिश करनेसे सब प्रकारका ज्वर, पाण्डु और शोथ आदि नानाप्रकारके रोग आराम होता है।

सरसोंका तेल ८ सेर, चिरायता १२॥ सेर पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; मूर्व्वामूल ४ सेर, पानी ६४ सेर शेष ८ सेर, लाहका काढ़ा ८ सेर, कांजी ८ सेर, दहीका पानी ८ सेर; कल्कार्थ चिरायता, गजपीपल, रास्ना, कूठ, लाक्षा, इन्द्रवारुणीकी जड़, मजीठ हल्दी, दारुहल्दी, मूर्व्वामूल, मुलेठी, मोथा, पुनर्नवा, सेंधानमक, जटामांसी, बृहती, कालानमक, बाला, शतावर, लालचन्दन, कुटकी, असगन्ध, सोवा, समालुके बीज, देवदारु, खस, पद्मकाष्ठ, धनिया, पीपल, बच, शठी, त्रिफला, अजवाईन, अजमोदा, कांकड़ाशिंगी, गोखुर, सरिवन, पिठवन, दन्तीमूल, विड़ङ्ग, जीरा, काला जीरा, नीमका छाल, हीवेर और जवाखार प्रत्येक ४ तोले। पाक शेष होनेपर गन्धद्रव्य मिलाना। यह तैल मर्द्दन करनेसे सब प्रकारका विषम ज्वर, प्लीहा, शोथ, प्रमेह ज्वर और पाण्डुरोग आराम होता है।

बृहत् किरातादि तैल।

दशमूल ८ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, कल्कार्थ पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, जवाखार, प्रत्येक ८ तोले दूध ८ सेर; यह सब द्रव्यके साथ विधिपूर्व्वक ४ सेर घृत पाक करना, यह घृत विषमज्वर, प्लीहा, कास, अग्निमान्द्य और पाण्डुरोग नाशक है।

दशमूल षट्पलक घृत।

अड़ूसा, गुरिच, त्रिफला, त्रायमाणा और जवासा सब मिलाकर ८ सेर ६४ सेर पानीमें औटाना, शेष १६ रखना। कल्कार्थ पीपलामूल, द्राक्षा, लालचन्दन, नीला कमल और शोंठ सब मिलाकर १ सेर। दूध ८ सेर। विधिपूर्व्वक इसके साथ ४ सेर घृत पाक करना। यह जीर्ण ज्वर नाशक है।

वासाद्य घृत।

पिप्पल्याद्य घृत।

घी ४ सेर, पानी १६ सेर, कल्कार्थ पीपल, लालचन्दन, मोथा, खस, कुटकी, इन्द्रयव, अजटा (भूंई अंवरा), अनन्तमूल, अतीस, सरिवन, द्राक्षा, आंवला, बेलकी छाल, त्रायमाणा और कण्टकारी, सब मिलाकर एक सेर, दूध १६ सेर विधिपूर्व्वक पाक करना। इसमें जीर्णज्वर, श्वास, कास, हिक्का, क्षय, शिरःशूल, अरोचक, अग्निवैषम्य और अङ्गसन्ताप दूर होता है।

यह सब घृत पहिले आधा तोला मात्रामें सेवन कराना। सहने पर क्रमशः मात्रा २ तोलेतक देना चाहिये। अनुपान गरम दूध।

प्लीहा और यकृत्।

माणकादि गुड़िका।

एक वर्षका पुराना मानकन्द, अपामार्गके जड़की राख, गुरिच, अडूसेकी जड़, सरिवन, सेंधानमक चीतामूल, सोंठ और ताड़के जटाका क्षार प्रत्येक ६ तोले, कालानमक, सौवर्च्चल नमक, जवाक्षार और पीपल, प्रत्येक २ तोले; इन सबका चूर्ण १६ सेर गोमूत्रमें पाककर, मोदककी तरह गाढ़ा होनेपर नीचे उतार लेना, ठण्ढा होनेपर ३ पल सहत उसमें मिलाना। इसको आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करानेसे प्लीहा यकृत् आदि नानाप्रकारके उदर रोग आराम होते है।

वृहत् माणकादि गुड़िका।

पुराना मानकन्द, अपामार्गका क्षार, सरिवन, चीतामूल, सेंहुड़की जड़, सोंठ, सेंधानमक, ताड़के जटाका क्षार, विड़ंग, हीवेर, चाभ, बच,

काला नमक, सौवर्च्चल नमक, जवाक्षार, पीपल, शरपुङ्ख, जीरा और पालिधामदार की जड़, प्रत्येक ४ तोला, एकत्र १४ सेर गोमूत्रमें पाक करना मोदक की तरह गाढ़ा होनेपर त्रिकटु, हींग, अजवाईन, कूठ, शठी, त्रिवृत, दन्तीमूल और इन्द्रवारुणी की जड़ प्रत्येकका चूर्ण २ तोले मिलाना। ठण्ढा होनेपर २४ तोले मधु मिलाना। इसको आधा तोला मात्रा गरम पानीमें प्रयोग करना; इससे यकृत्, प्लीहा, गुल्म, आनाह, उदर, कुक्षि-शूल, हृत्शूल और पार्श्वशूल आराम होता है।

गुड़पिप्पली। विड़ंग, त्रिकटु, कूठ, हींग, पञ्चलवण, जवाक्षार, सर्ज्जिक्षार, सोहागा, समुद्रफेन, चीतामूल, गजपीपल, कालाजीरा, ताड़केजटाकी राख, कोहड़ेके डालकी राख, अपामार्ग भस्म और इमलीकी छालका भस्म, प्रत्येक समभाग, सबके बराबर पीपलका चूर्ण, सब समष्टीका दूना पुराना गुड़, एकत्र मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ प्लीहा आदि रोगमें देना चाहिये।

अभयालवण। नीमकी छाल, पलाशकी छाल, सेहुंड़की छाल, अपामार्ग, चीतामूल, बरुणकी छाल, गणियारीकी छाल, बथुआ शाक, गोखरू, वृहती, कंटकारी, नाटा, हाफरमाली, कुरैयाकी छाल, घोषालता और पुनर्नवा यह सबको कूट एक हांड़ीमें रख तिलकी लकड़ीके आंचसे राख करना। यह राख २ सेर, ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहनेपर उतारकर क्रमशः २१ दफे छान लेना। इस खार पानीमें सेंधानमक २ सेर, बड़ी हरेंका चूर्ण एक सेर और गोमूत्र २६ सेर मिलाना। गाढ़ा होनेपर कालाजीरा, त्रिकटु, हींग, अजवाईन, कूठ और शठी प्रत्येकका चूर्ण ४ तोले मिलाना। आधा तोला

मात्रा गरम पानीके साथ देनेसे प्लीहा, गुल्म, आनाह, अष्ठीला और अग्निमान्द्य आदि आराम होता है।

महामृत्युञ्जय लौह।

पारा, गन्धक और अभ्रक प्रत्येक आधा तोला, लोहा १ तोला, तांम्बा २ तोले, जवाखार, सज्जीखार, सेन्धानमक, कालानमक, कौड़ीका भस्म, शङ्खभस्म, चीतामूल, मैनसिल, हरिताल, हींग, कुटकी, चिहुत, इमलीके छालका भस्म, इन्द्रवारुणी की जड़, धला आंकड़ाका मूल, अपामार्ग भस्म, अम्लवेतस, हलदी दारुहलदी, प्रियङ्गु, इन्द्रयव, हरीतकी, अजमोदा, अजवाईन, तूतिया, शरपुङ्ख और रसाञ्जन, प्रत्येक आधातोला; यह सब द्रव्यको अदरख और गुरिचके रसकी भावना दे २ पल मधु मिलाकर २ रत्ती मात्राकी गोली बनाना। यह दोष विशेषके आधिक्यानुसार उपयुक्त अनुपानके साथ प्रयोग करनेसे विषम ज्वर, कास, श्वास, और गुल्म आदि पीड़ा आराम होती है।

वृहत् लोकनाथ रस।

पारा १ तोला, गन्धक २ तोले, अभ्रक १ तोला, घिकुआरके रसमें खलकरो फिर ताम्बा २ तोले, लोहा २ तोला और कौड़ीका भस्म ८ तोले मिलाकर काकमाचीके रसमें खलकर एक गोला बना सुखाकर फिर वह गोला गजपुटमें फूकना। २ रत्ती मात्रा अनुपान मधु। इससे प्लीहा, यकृत् और अग्रमांस रोग आराम होता है।

यकृदरि लौह।

लोहा ४ तोले, अभ्रक ४ तोले, ताम्बा २ तोले, पातीनीबूके जड़की छाल ८आठ तोले और अन्तर्धूमसे भस्मक्रिया कृष्णसार मृगका चर्म्म ८ तोले एकत्र पानीके साथ खलकर ८ घुङ्घची बराबर गोली बनाना। दोषानुसार उपयुक्त अनुपानसे प्रयोग करना।

हिंगुलोत्थ पारा, गन्धक, लौह, अभ्रक, जमालगोटा, सोहागा और शिलाजीत प्रत्येक १ तोला ; ताम्बा, मैनसिल और हल्दी प्रत्येक २ तोले एकत्र खलकर, दन्तीमूल, त्रिवृतमूल, चौतामूल, समालूका पत्ता, त्रिकटु, अदरख और भीमराज यथासम्भव इन सबके रस या काढ़ेकी अलग अलग भावना देकर बैरकी गुठली बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे पाण्डु, कामलादि रोग प्रशमित होते है।

बृहत् प्लीहारि लौह।

लोहा एकभाग, लोहेका आधा भाग अभ्रक, अभ्रकका आधा भाग रससिन्दूर, अभ्रक और लोहाके समष्टिका तिगुना त्रिफला, इसे समष्टिके ६ गुने पानीमें औटाना अष्टमांस रहनेपर उतार कर उसके साथ समान भाग घी और लोहा तथा अभ्रकका दूना सतावरका रस और दूध मिलाकर फिर औटाना। (लोहेका आधा भाग औटाते वख्त देना बाकी आधा भाग रख छोड़ना) गाढ़ा होने पर वही आधा भाग लोहा और सूरण, कापालिका, चाभ, विड़ङ्ग, लोध, शरपुङ्ख, अम्बष्ठा, चौतामूल, शोंठ, पञ्चलवण, जवाखार, बीजदारक, अजवाईन और मोम प्रत्येक लोहा और अभ्रकके बराबर मिलाना। विचार कर दो आनेसे चार आनेतक मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करानेसे प्लीहा, यकृत् और गुल्म आदि रोग प्रशमित होताहै। प्लीहोदर निवारणके लिये यह मानकन्द, और जिमिकन्दके रसमें खलकर दो दफे पुटमें फूकनेपर काममें लाना चाहिये।

यकृत् प्लीहोदरहर लौह।

सामुद्र, सेन्धा, सांभर और सौवर्चल नमक, सोहागा, जवाखार और सज्जीखार प्रत्येकके समभाग को अकवन और सेहुंड़के दूधको ३ दिन

वज्रक्षार।

भावना दे सुखा लेना फिर बन्द ताम्बेके पात्रमें फूकना। फिर दो गुना वजन त्रिकटु त्रिफला, जीरा, हल्दी और चीतामूलका चूर्ण मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम पानी या गोमूत्रके अनुपानमें देना।

महाद्रावक। अडूसा, चीतामूल, अपामार्ग, इमली वृक्षकी छाल, कोहड़ेका डण्ठा, सेहुड़की जड़, ताड़की जटा, पुनर्नवा और बेत। यह सब द्रव्यका भस्म समभाग, पातालनीबूके रसमें मिलाकर छान लेना। फिर धूपमें सूखाकर २ पल परिमित खारमें जवाखार २ पल, फिटकिरी एक पल, नौसादर १ पल, सैंधव ४ तोले, सोहागा २ तोले, हीराकस १ तोला, मुर्दाशङ्ख १ तोला, गोदन्त ३ तोले और समुद्र फेन १ तोला, यह सब द्रव्यका भी चूर्ण उससे मिलाकर बकयन्त्रमें चुआ लेना। ५।६ बूंद मात्रा ठण्ढे पानीमें मिलाकर पीनेसे प्लीहा यकृत् और गुल्म आदि रोग प्रशमित होता है।

शङ्खद्रावक। अकवनकी छाल, सेहुंड़की जड़, इमलीकी छाल, तिलकी लकड़ी, अमिलतासका छाल, चीतामूल, और अपामार्गका भस्म समभाग पानीमें घोलकर छान लेना तथा जलको आंचमें औटाना, पानीका स्वाद लवण होनेपर नीचे उतार ४ तोले क्षार लेना, तथा उसके साथ जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, समुद्रफेन, गोदन्त, हरिताल, हीराकस और सोरा प्रत्येक ४ तोले, तथा पांगा नमक प्रत्येक ८ तोले मिलाना। फिर बड़ेनीबूके रसमें सब द्रव्य मिला एक बोतलमें भर सात दिन रखना। तथा उसमें ८ तोले शङ्खचूर्ण मिलाकर वारुणीयन्त्रमें चुआ लेना। इसकी भी मात्रा और अनुपान महाद्रावक की तरह व्यवस्था करना।

इमलीको छाल, पीपलकी छाल, सेहुंड़की छाल, अकवनकी छाल और अपामार्ग, इन सबका चार अलग अलग बनाना। फिर सोहागा, जवाखार, सज्जीखार, पञ्चलवण, हींग, हरिताल, लौंग, नौसादर, जायफल, गोदन्ती हरिताल, स्वर्णमाक्षिक, गंधबोल, मीठाविष, समुद्रफेन, सोरा, फिटकिरी, शङ्खचूर्ण, शङ्खनाभि चूर्ण, मैनसिल, हीराकस, यह सब द्रव्य समभाग लेकर बेतसके रसकी भावना देकर एक बोतलमें रखो। फिर बोतल कपड़ेसे लपेटकर सात दिन गरम स्थानमें रखना, सात दिनके बाद वारुणीयन्त्रसे चुआ लेना। एक रत्ती मात्रा पानके साथ सेवन करनेसे कास, श्वास, क्षय, प्लीहा, अजीर्ण, रक्तपित्त, उर:क्षत, गुल्म, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, शूल और आमवात आदि रोग आराम होता है।

महाशङ्ख द्रावक।

घृत ४ सेर, काढ़ेके लिये चीतामूल १२॥ सेर, पानी २४ सेर शेष ६ सेर, कांजी ८ सेर, दहीका पानी १६ सेर; कल्कार्थ पीपला मूल, चाभ, चीतामूल, सोंठ, तालीशपत्र, जवाखार सेंधानमक, जीरा काला जीरा, हल्दी, दारुहल्दी और मिरच, सब मिलाकर १ सेर यथाविधि पाक करना। इस घीसे प्लीहा, यकृत् उदराध्मान, पाण्डु, अरुचि और शूल आदि पीड़ामें उपकार होता है।

चित्रक घृत।

ज्वरातिसार ।

ह्रीवेरादि—वाला, अतीस, मोथा, सोंठ, बेलकी गिरी और धनिया, इसका काढ़ा पोनेसे मलकी चिकनाहट, विवद्धता, शूल और आमदोष तथा सरक्त, सज्वर और विज्वर अतिसार आराम होता है।

पाठादि—ज्वरातिसारके आमावस्थामें अम्बष्ठा, चिरायता, इन्द्रयव, मोथा, खेतपापड़ा, गुरिच और सोंठका काढ़ा देना। इससे सज्वर, आमातिसार प्रशमित होता है।

नागरादि—सोंठ, चिरायता, गुरिच, अतीस और इन्द्रयवका काढ़ा सब प्रकारका ज्वर और अतिसार नाशक है।

गुडूच्यादि—गुरिच, अतीस, धनिया, सोंठ, बेलकी गूदी, मोथा, वाला, अम्बष्ठा, चिरायता, कुरैया, लालचन्दन, खस और पद्म-काष्ठका काढ़ा ठण्ढाकर पोनेसे ज्वरातिसार, वमनवेग, अरुचि, वमन, पिपासा और दाह दूर होता है।

उशीरादि । खस, वाला, मोथा, धनिया, सोंठ, वराहक्रान्ता, धवईका फूल, लोध और बेलकी गिरी, इसका काढ़ा पोनेसे अग्निकी दीप्ति और आम परि-पाक होता है तथा सवेदन, सरक्त, सज्वर या विज्वर अतिसार अरुचि और मलकी पिच्छिलता तथा विवद्धता विनष्ट होता है।

पञ्चमूल्यादि । सरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी, गोक्षुर, वरियारा, बेलकी गिरी, गुरिच, मोथा, सोंठ, अम्बष्ठा, चिरायता, वाला, कुरैयाकी छाल और

इन्द्रयव, इस काढ़ेसे सब प्रकारका अतिसार, ज्वर, वमन, शूल और भयङ्कर श्वास कास विनष्ट होता है।

ज्वरातिसार और दाहमें नीचे लिखा काढ़ा देना। इन्द्रयव, अतीस, शोंठ, चिरायता, बाला और जवासा ; अथवा इन्द्रयव, देवदारु, कुटकी, गजपीपल, गोखुर, पीपल, धनिया, बेलकी गिरी, अंबष्ठा और अजवाईन ; किंवा शोंठ, गुरिच, चिरायता, बेलकी गिरी, बाला और इन्द्रयव, मोथा, अतीस और खस, यह योगत्रयका काढ़ा विचारकर प्रयोग करना। इस योगत्रयमें पहिले योगका नाम कलिङ्गादि है।

कलिङ्गादि।

मुस्तकादि—मोथा, बेलकी गिरी, अतीस, अंबष्ठा, चिरायता और इन्द्रयवके काढ़ेमें मधु मिलाकर पीनेसे ज्वरातिसार निवृत्त होता है।

घनादि—मोथा, बाला, अंबष्ठा, अतीस, हरीतकी, नीला कमल, धनिया, कुटकी, शोंठ और इन्द्रयवका काढ़ा ज्वरातिसार नाशक है।

बिल्वपञ्चक—ज्वरातिसारमें वमन हो तो सरिवन, पिठवन, बरियारा, बेलकी गिरी और अनारके फलकी छालका काढ़ा देना।

कुटजादि—कुरैयाकी छाल, शोंठ, मोथा, गुरिच और अतीस का काढ़ा पीनेसे ज्वरातिसार आराम होता है।

शोंठ, पीपल, मिरच, इन्द्रयव, नीमकी छाल, चिरायता, भीमराज, चीतामूल, कुटकी, अंबष्ठा, दारुहल्दी और अतीस प्रत्येक समान भाग सबके बराबर कुरैयाके जड़की छालका चूर्ण ; एकत्र मिलाकर एक आना मात्रा चावलके पानीके साथ पीनेसे या दूने मधुमें

व्योषादि चूर्ण।

मिलाकर चाटनेसे ज्वरातिसार, तृष्णा, अरुचि, प्रमेह, ग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, कामला, पाण्डु और शोथ रोग आराम होता है। यह पाचक और मलसंग्राहक है।

कांचनाद्वादि गुटिका।

इन्द्रयव, बेलकी गिरी, जामुन और आमकी गुठलीका गूदा, कयेथका पत्ता, लाह, हलदी, दारुहलदी, वाला, कायफल, सोनापाठा छाल, लोध, मोचरस, मजीठ, धवईका फूल और बड़कीसोर, यह सब द्रव्य समभाग ले चावलके पानीमें पीसकर दो माशे वजनकी गोली बना छायामें सुखा लेना। इससे ज्वरातिसार, रक्तातिसार और पेटकी दर्द आराम होता है।

मध्यम गङ्गाधर चूर्ण।

बेलकी गिरी, सिङ्घाड़ा, अनारका पत्ता, मोथा, अतीस, सफेद राल, धवईका फूल, मिरच, पीपल, सोंठ, दारुहलदी, चिरायता, नीमकी छाल, जामुनकी छाल, रसांजन, इन्द्रयव, अंबठा, बराहक्रान्ता, वाला, मोचरस, भांग और भृङ्गराज प्रत्येक समभाग तथा कुरैयाकी छालका चूर्ण सबके बराबर एकत्र मिलाना। एक आनाभर मात्रा, अनुपान बकरीका दूध, मट्ठा या सहत। इससे ज्वरातिसार अतिसार ग्रहणी आदि रोग आराम होता है।

बृहत् कुटजावलेह।

कुरैयाके जड़की छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर रहनेपर छान लेना, इसमें २॥ सेर चीनी मिलाकर औटाना, गाढ़ा होनेपर नीचे लिखे द्रव्योंका चूर्ण मिलाकर उतार लेना। अंबठा, बराहक्रान्ता, बेलकी गिरी, धवईका फूल, मोथा, अनारके फलकी छाल, अतीस, लोध, मोचरस, सफेद राल, रसांजन, धनिया, खस और वाला; यह सब द्रव्यके प्रत्येकका चूर्ण २ तोले। ठण्ढा होनेपर

एक पाव सहत मिलाकर भांड़में रखना। इससे सब प्रकारका अतिसार, ग्रहणी, रक्तस्राव, ज्वर, शोथ, वमन, अर्श, अम्लपित्त, शूल और अग्निमान्द्य रोग विनष्ट होता है।

मृतसञ्जीवनी वटिका—पीपल एकभाग, वत्सनाभ विष एक-भाग, हिंगुल २ भाग, यह तीनों द्रव्य जामुनके रसमें खलकर मूलाके बीज बराबर गोली बनाना। यह वटिका ठण्ढे पानीके साथ सेवन करनेसे ज्वरातिसार, विसूचिका और सन्निपातिकज्वर दूर होताहै।

सिद्ध प्राणेश्वर रस। गन्धक पारा और अभ्रक प्रत्येक ४ मासे, सज्जीखार, सोहागेका लावा, जवाखार, पांचो लवण, त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्रयव, जीरा, काला-जीरा, चीतामूल, अजवाईन, विडङ्ग और सोवा प्रत्येकका चूर्ण एक एक मासा; एकत्र पानीमें खलकर एकमासे वजनकी गोली बनाना। अनुपान पानका रस। औषध सेवनके बाद गरम पानी पीना। इससे प्रबल ज्वरातिसार और ग्रहणी आदि रोग आराम होता है।

कनकसुन्दर रस—हिंगुल, मिरच, गन्धक, पीपल, सोहागेका लावा, मिठाविष और धतूरेकी बीज, यह सब समभाग ले भांगके रसमें एक पहर खलकर चने बराबर गोली बनाना। इससे तीव्र-ज्वर, अतिसार, ग्रहणी और अग्निमान्द्य आराम होता है। पथ्य दही या मट्ठा और भात।

गगनसुन्दर रस—सोहागेका लावा, हिंगुल, गन्धक और अभ्रक समभाग ले मदारके रसकी तीन दफे भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान सफेद राल २ रत्ती और सहत। इससे रक्तातिसार और आमशूल दूर होता है। यह अग्निवृद्धिकर है। पथ्य मट्ठा और बकरीका दूध।

आनन्दभैरव—हिंगुल, मिरच, सोहागीका लावा, विष और पीपल समभाग पानीमें खलकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान कुरैयाके छालका चूर्ण और सहत। इससे त्रिदोषज अतिसार आराम होता है।

मृतसञ्जीवन रस।

पारा एकभाग, गन्धक एकभाग, मीठाविष चौथाई भाग, और सबके बराबर अर्थात् सवा दो भाग अभ्रक; धतूरके पत्तेका रस और गन्धनाकुलीके रसमें एक एक प्रहर खल करना, तथा धवईफूल, अतीस, मोथा, सोंठ, जीरा, बाला, अजवाइन, धनिया, बेलकी गिरी, अम्बष्ठा, हरीतकी, पीपल, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, कयेथबेल और कच्चा अनार, यह १६ द्रव्य, प्रत्येक २ तोले कूटकर चौगुने पानीमें औटाना, चतुर्थांश रहनेपर इसी काढ़में उक्त पारा आदिको तीन दिन भावना देकर एक मिट्टीके बरतनमें रख मुह मिट्टीसे बन्दकर हलकी आंचपर वालुकायन्त्रमें पाक करना। इस औषधका नाम मृतसञ्जीवनी रस है। इसका एक रत्ती मात्रा अतिसारनाशक द्रव्यके अनुपानके साथ देनेसे सब प्रकारका दुर्निवार अतिसार आराम होता है।

कनकप्रभा बटी—धतूरेकी बीज, मिरच, गोयालिया लता, पीपल, सोहागेका लावा, विष और गंधक, यह सब द्रव्य भांगके रसमें खलकर गुंजा बराबर गोली बनाना। इसके सेवन करनेसे अतिसार, ग्रहणी, ज्वर और अग्निमान्द्य आराम होता है। पथ्य—दही भात, ठण्ढापानी और बटेर आदि पक्षीका मांस।

अतिसार।

आमातिसारमें।

पिप्पल्यादि—पीपल, सोंठ, धनिया, अजवाईन, हरीतकी और बच यह सब द्रव्य समभाग अर्थात् सब मिलाकर दो तोले अच्छी तरह कूटकर पूर्व्वोक्त नियमसे काढ़ा बनाना। इससे आमातिसार आराम होता है।

वत्सकादि—इन्द्रयव, अतीस, सोंठ, बेलकी गिरी, हींग, जौ, मोथा और लालचीता, इन सबका काढा पीनेसे आमातिसार आराम होता है।

पथ्यादि—आमातिसारमें हरीतकी, देवदारु, बच, मोथा, सोंठ और अतीसका काढ़ा पिलाना।

यमान्यादि—अग्निकी दीप्ति और आमरसको पचानेके लिये अजवाईन, सोंठ, खस, धनिया, अतीस, मोथा, बेलकी गिरी, सरिवन और पिठवनका काढ़ा प्रयोग करना

कलिङ्गादि—कुरैयाकी छाल, अतीस, हींग, बड़ाहर, सोवर्चल नमक और बच, इन सबका काढ़ा पीनेसे शूलकी दर्द, स्तम्भ और मलकी विवद्धता नाश तथा अग्निकी दीप्ति और आमदोषका परिपाक होता है।

त्र्यूषणादि—प्रबल अतिसारमें सोंठ, पीपल, मिरच, अतीस, हींग, बरियारा, सौवर्च्चल नमक और बड़ी हर्र, इन सबका चूर्ण समान भाग गरम पानीमें देना।

वातातिसारमें।

पूतिकादि—वातातिसारके शान्तिके लिये करंज, पीपल, सोंठ, बरियारा, धनिया और बड़ी हर्र; इन सबका काढा देना।

पथ्यादि—प्रबल वातातिसारमें बड़ी हर्र, देवदारु, बच, सोंठ, अतीस और गुरिचका काढ़ा प्रयोग करना।

वचादि—बच, अतीस, मोथा, इन्द्रयवका काढ़ा वातातिसार की उत्कृष्ट औषध है।

पित्तातिसारमें।

मधुकादि—पित्तातिसारमें मुलेठी, कायफल, लोध, कच्चे अनारका फल और छिलका। इन सबके चूर्णमें सहत मिलाकर चावल भिंगोये पानीके साथ देना।

बिल्वादि—आमपित्तातिसारमें बेलकी गिरी, इन्द्रयव, मोथा, बाला और अतीसका काढ़ा पिलाना।

कट्फलादि—कायफल, अतीस, मोथा, कुरैयाकी छाल, और सोंठ इन सबके काढ़ेमें थोड़ा सहत मिलाकर पीनेसे पित्तातिसार की निवृत्ति होती है।

कञ्चटादि—चौराईका पत्ता, अनारका पत्ता, जामुनका पत्ता, सिंघाड़ेका पत्ता, बाला, मोथा और सोंठ, इस सबके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे अति प्रबल अतिसारभी बन्द होता है।

किराततिक्तादि—चिरायता, मोथा, इन्द्रयवके काढ़ेमें रसाञ्जन और सहत मिलाकर पीनेसेभी पित्तातिसार आराम होता है।

अतिविषादि—अतीस, कुरैयाकी छाल और इन्द्रयव इन सबके चूर्णमें सहत मिलाकर चावल भिंगोये पानीमें लेनेसे पित्तातिसार बन्द होता है।

कफातिसारमें।

पथ्यादि—हरीतकी, चीतामूल, कुटकी, अम्बष्ठा, बच, मोथा, इन्द्रयव और सोंठका काढ़ा या कल्कसे कफातिसार दूर होता है।

क्रिमिशत्रुादि—विड़ंग, बच, बिल्वमूल, धनिया और कायफलका काढ़ा भी कफातिसार नाशक है।

चव्यादि—चाभ, अतीस, शोंठ, बेलकी गिरी, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, और बड़ी हरेंका काढ़ा पीनेसे कफातिसार और वमन निवृत्त होता है।

सान्निपातातिसार ।

समङ्गादि—वराहक्रान्ता, अतीस, मोथा, शोंठ, बाला, धवइ का फूल, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव और बेलकी गिरी इन सबका काढ़ा पीनेसे त्रिदोषज अतिसार आराम होता है।

पंचमूली बलादि—पंचमूल (पित्ताधिक्य में स्वल्प पंचमूल और वातकफाधिक्यमें वृहत् पञ्चमूल), वरियारा, बेलकी गिरी, गुरिच, मोथा, शोंठ, अम्बष्ठा, चिरायता, बाला, कुरैयाकी छाल, और इन्द्रयवका काढ़ा पीनेसे त्रिदोषज अतिसार, ज्वर, वमन, शूल उपद्रवयुक्त श्वास और दारुण काम आराम होता है।

शोकादिजातिसार ।

पृश्निपर्ण्यादि—पिठवन, बरियारा, बेलकी गिरी, धनिया, नीला कमल, शोंठ, विड़ङ्ग, अतीस, मोथा, देवदारु, अम्बष्ठा और कुरैयाकी छालके काढ़ेमें गोलमिरच का चूर्ण मिलाकर पीनेसे शोकजातिसार आराम होता है।

पित्तकफातिसार ।

मुस्तादि—मोथा, अतीस, मूर्वा, बच और कुरैयाकी छालके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे पित्तकफातिसार आराम होता है।

समङ्गादि—वराहक्रान्ता, धवईका फूल, बेलकी गिरी, आमकी गुठली और पद्मकेशर; किम्बा बेलकी गिरी, मोचरस, लोध और कुरैयाकी छाल; इन सबका काढ़ा अथवा चावल भिंगोये पानीमें कल्क पीनेसे पित्तकफातिसार और रक्तस्राव बन्द होता है।

वातकफातिसार।

चित्रकादि—चीता, अतीस, मोथा, बरियारा, बेलकी गिरी, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव और बड़ी हर्रका काढ़ा वातकफातिसार नाशक है।

वातपित्तातिसार।

कलिङ्गादि कल्क—वातपित्तातिसारग्रस्त रोगीको इन्द्रयव, बच, मोथा, देवदारु और अतीस; यह सब द्रव्य समभाग पीसकर चावल भिंगाये पानीके साथ पिलाना।

पक्वातिसार।

वत्सकादि—इन्द्रयव, अतीस, बेलकी गिरी, बाला और मोथा का काढ़ा पिलानेसे आम और शूलविशिष्ट पुराना अतिसार भी बन्द होता है।

कुटज पुटपाक।

काड़ोंका न खाई हुई, कच्ची और मोटी कुरैयाके जड़की छाल कूटकर चावल भिंगाये पानीसे तर करना फिर जामुनके पत्तेमें लपेट कर चारो तरफ गाढ़ी मिट्टीका लेपकर पुटपाक करना। उपरकी मिट्टी जब लाल हो जाय तब बाहर निकाल उसका रस निचोड़ लेना। इसके ८ तोले रसमें थोड़ा सहत मिलाकर देना। यह सब प्रकारके अतिसारकी प्रधान औषध है।

कुटजलेह।

कुरैयाकी छाल १२॥ सेर कूटकर ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहनेपर उतारकर छान लेना। तथा इसी काढ़ेको फिर औटाना गाढ़ा होनेपर इसमें सोवर्चल नमक, जवाखार, कालानमक, सेंधानमक, पीपल, धवईका फूल, इन्द्रयव और जीरा, इन सबका चूर्ण १६ तोले मिलाकर उतार लेना। मात्रा एक तोला सहतके साथ चटाना। इससे

पक्का, कच्चा, नानावर्ण और वेदनायुक्त अतिसार तथा दुर्निवार्य्य ग्रहणी आराम होता है।

कुरैयाकी छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, यह काढ़ा छानकर फिर औटाना, गाढ़ा होने-पर उसमें नीचे लिखी दवायोंका चूर्ण मिलाना। मोचरस, अम्बष्ठा, वराहक्रान्ता, अतीस, मोथा, वेलकी गिरी और धवईका फूल, प्रत्येक ८ तोले। इससे सब प्रकारका अतिसार, रक्तप्रदर, रक्तार्श आदि आराम होता है। अनुपान गरम दूध या ठण्ढा पानी, वस्तिदोषमें भातका माड़ और रक्तस्रावमें बकरीका दूध।

कुटजाष्टक।

गुरिच, बघारेको बीज, इन्द्रयव, वेलकी गिरी, अतीस, भृङ्ग-राज, शोंठ और भांगका पत्ता, प्रत्येकका चूर्ण समभाग, सबके बराबर कुरैयाके छालका चूर्ण एकत्र मिलाकर एक आना या दो आने मात्रा, शोंठ अथवा मट्ठेके साथ सेवन करनेसे रक्तातिसार शोथ, पाण्डु, कामला अग्निमान्द्य और ज्वर आदि पीड़ा दूर होता है।

नारायण चूर्ण।

अतिसार वारण रस---हिंगुल, कपूर, मोथा और इन्द्रयव इन सब द्रव्योंको अफीम भिंगाये पानीकी भावना देकर एक रत्ती वजन सेवन करनेसे सब प्रकारका अतिसार आराम होता है।

जातीफलादि वटिका---जायफल, पिण्डखजूर और अफीम समभाग पानके रसमें खलकर ३ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान मट्ठा। इससे प्रबल अतिसार बन्द होता है।

प्राणेश्वर रस---पारा, गन्धक, अभ्रक, सोहागेका लावा, सोवा, अजवाईन और जीरा प्रत्येक ४ तोले; जवाखार, हींग, पञ्च-लवण, विड़ङ्ग, इन्द्रयव, राल और चीता प्रत्येक २ तोले, यह

सब द्रव्य पानीमें खलकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे अतिसार आराम होता है।

अमृतार्णव रस। हिंगुलोत्थ पारा, लोहा, गन्धक, सोहागेका लावा, शठी, धनिया, बाला, मोथा, अम्बष्ठा, जीरा और अतीस ; प्रत्येक एक तोला, बकरीके दूधमें पीसकर एक माषा वजनकी गोली बनाना। धनिया, जीरा, भांग, शालबीज चूर्ण, सहत, बकरीका दूध, ठण्ढा पानी, केलेके जड़का रस अथवा कण्टकारीके रसके साथ सबेरे लेना चाहिये। इससे सब प्रकारका अतिसार, शूल, ग्रहणी, अर्श और अम्लपित्त आराम होता है।

भुवनेश्वर—सेंधानमक, त्रिफला, अजवाईन, बेलकी गिरी और धूमसल यह सब द्रव्य पानीमें पीसकर एक मासे वजनकी गोली बनाना। अनुपान पानी, इससे भी सब प्रकारका अतिसार आराम होता है।

जातीफल रस। पारा, गन्धक, अभ्रक, रससिन्दूर, जायफल, इन्द्रयव, धतूरेकी बीज, सोहागेका लावा, त्रिकटु, मोथा, हरीतकी, आम्रकेशी, बेलकी गिरी, शाल बीज, अनारकी छाल और जीरा ; यह सब द्रव्य समभाग, भांगके रसमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान कुरैया की छालका काढा। यह आमातिसार नाशक तथा अग्निदीप्ति-कारक है। रक्तग्रहणी रोगमें बेलके गिरीका काढ़ा और सहतके अनुपानसे तथा अतिसारमें सोंठ और धनियाके काढ़ेमें यह गोली देना।

अभयनृसिंह रस—हिंगुल, विष, त्रिकटु, जीरा, सोहागेका लावा, गन्धक, अभ्रक और पारा प्रत्येक समभाग, सबके बराबर

अफीम ; यह सब द्रव्य नीबूके रसमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। भुने हुए जीरेका चूर्ण और मट्ठेमें देनेसे अतिसार और संग्रह ग्रहणी आराम होता है।

कर्पूर रस—हिंगुल, अफीम, मोथा, इन्द्रयव, जायफल और कपूर ; यह सब समभाग लेकर पानीमें पीस २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। कोई कोई इसमें एकभाग सोहागेका लावा भी मिलाते हैं। ज्वरातिसार, अतिसार, रक्तातिसार और ग्रहणी रोग का यह महौषध है।

कुटजारिष्ट। कुरैयाकी छाल १२॥ सेर, मुनक्का ६० सेर, महुयेका फूल १० पल, गाम्भारीकी छाल १० पल, पानी १५६ सेर, शेष ६४ सेर ; इस काढ़ेमें धवईका फूल १० पल और गुड़ १२॥ सेर मिला मुह बन्दकर एक मास रख छोड़ना। फिर उसे छान लेना। इस अरिष्टसे दुर्निवार ग्रहणी, रक्तातिसार और सब प्रकारका ज्वर आराम हो अग्निकी वृद्धि होती है।

अहिफेनासव—महुवेकी शराब १२॥ सेर, अफीम ४ पल, मोथा, जायफल, इन्द्रयव और इलायची प्रत्येक एक एक पल ; यह सब द्रव्य एक बरतनमें रख मुह बन्दकर एक महीना रख छोड़ना, फिर छान लेना।

षडङ्ग घृत—इन्द्रयव, दारुहल्दी, पीपल, सोंठ, लाह और कुटकी ; यह ६ द्रव्योंके कल्कमें यथाविधि घी पाककर सेवन करनेसे सब प्रकारका अतिसार आराम होता है। यह घी सेवनके बाद यवागू पथ्य देना चाहिये।

—०—

ग्रहणी।

शालपर्ण्यादि कषाय—सरिवन, पिठवन, बेलकी गिरी, धनिया और सोंठ, इनका सृतकषाय पीनेसे वातज ग्रहणी और उसके उपद्रव उदराध्मान और शूलवत् वेदना प्रशमित होता है।

तिक्तादि—कुटकी, सोंठ, रसाञ्जन, धवईका फूल, हरीतकी, इन्द्रयव, मोथा, कुरैयाकी छाल और अतीसका काढ़ा पीनेसे सब प्रकार ग्रहणीरोग और उसके उपद्रव गुह्यशूल आदि आराम होता है।

श्रीफलादि कल्क—बेलके गिरीके कल्कमें थोड़ा गुड़ और सोंठका चूर्ण मिलाकर मट्ठेके साथ सेवन करनेसे अति उग्र ग्रहणी रोग आराम होता है।

चातुर्भद्र कषाय—गुरिच, अतीस, सोंठ और मोथा, इसका काढ़ा आमदोषयुक्त ग्रहणी नाशक, मलसंग्राहक, अग्निदीपक और दोषपाचक है।

पञ्चपल्लव—जामुन, अनार, सिंघाड़ा, अम्बष्ठा और कांचड़ाके पत्तेसे नरम बेलका फल लपेटकर पानीमें उबालना, दूसरे दिन उसी बेलका गूदा थोड़ा गुड़ और सोंठका चूर्ण मिलाकर खानेसे तथा भोजनके बाद उसका पानी पीनेसे सब प्रकारका अतिसार और प्रबल ग्रहणी रोग आराम होता है।

चित्रक गुड़िका—चीतामूल, पीपल, जवाखार, सज्जीखार सेंधा, सोवर्चल, काला, औद्भिद और सामुद्रलवण, त्रिकटु, हींग, अजमोदा, और चाभ, यह सब द्रव्योंके चूर्णको नीबूका रस अथवा अनारके रसकी भावना देकर चार आने भरकी गोली बनाना। यह आम परिपाचक और अग्निवर्द्धक है।

नागरादि चूर्ण—शोंठ, अतीस, मोथा, धवईका फूल, रसाञ्जन, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, बेलकी गिरी, अम्बष्ठा और कुटकी इन सबका समभाग चूर्णमें सहत मिलाकर चावल भिंगाये पानीके साथ सेवन करनेसे पित्तज ग्रहणीका रक्तभेद, अर्श, हृद्रोग और आमाशयके रोग आराम होते हैं। मात्रा ।) आनेसे ॥) तक।

रसाञ्जनादि चूर्ण—रसाञ्जन, अतीस, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल शोंठ और धवईका फूल, इन सबका चूर्ण सहत और चावल भिंगोये पानीके साथ सेवन करनेसे पित्तज ग्रहणी, रक्तातिसार, पित्तातिसार और अर्शरोग आराम होता है।

शठ्यादि चूर्ण—रास्ना, हरीतकी, शठी, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, जवाखार, सज्जीखार, पांचोनमक और पीपलामूलका समभाग चूर्ण बड़े नीबूका रस और अम्लरसके साथ लेनेसे कफज ग्रहणी शान्त होती है।

पिप्पलीमूलादि चूर्ण—पीपलामूल, पीपल, जवाखार, सज्जीखार सेंधानमक, काला नमक, सोवर्चल नमक, औद्भिद और सामुद्रलवण, बड़े नीबूकी जड़, हरीतकी, रास्ना, शठी, गोलमिरच और शोंठ, इन सब द्रव्योंका चूर्ण समभाग गरम पानीके साथ सबेरे सेवन करनेसे कफज ग्रहणी विनष्ट तथा बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

मुण्डादि गुड़िका—गोरखमुण्डी, सतावर, मोथा, कवांच बीज, क्षीरीवृक्ष, गुरिच, मुलेठी और सैन्धव, सबका समभाग चूर्ण, भूजी भांग दो गुनी, यह सब द्रव्य दशगुने दूधमें घृत भाण्डमें पाक करना, जबतक गोला न हो जाय तबतक हलकी आंचपर रखना। पाक समाप्त होनेपर सहतके साथ सेवन करानेसे वातपित्तज ग्रहणी दूर होता है।

कर्पूरादि चूर्ण—कपूर, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, राम्ना, पांचोंनमक, हरीतकी, सज्जीखार, जवाखार और बड़ा नीबू, सबका समभाग चूर्ण गरम पानीके साथ सेवन करनेसे, वातकफज ग्रहणी दोष दूर होकर बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

तालीशादि वटी—तालीशपत्र, चाभ और गोलमिरच प्रत्येक एक एक पल, पीपल और पीपलामूल प्रत्येक २ पल, शोंठ ३ पल और चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, नागेश्वर, तेजपत्ता) प्रत्येक २ तोले, इन सबके चूर्णमें तीगूना गुड़ मिलाकर गोली बनाना। इससे वातकफजनित उत्कट ग्रहणी, वमन, कास, श्वास, ज्वर, अरुचि, शोथ, गुल्म, उदर और पाण्डुरोग आराम होता है।

भूनिम्बादि चूर्ण—चिरायता २ तोले, कुटकी, त्रिकटु, मोथा और इन्द्रयव प्रत्येक १ तोला और कुरैयाकी छाल १६ तोले एकत्र चूर्ण बनाकर उपयुक्त मात्रा गुड़के गाढ़े शरबतके साथ पीनेसे ग्रहणी, गुल्म, कामला, ज्वर, पाण्डु, प्रमेह, अरुचि और अतिसार रोग आराम होता है।

पाठाद्य चूर्ण। पाठा, बेलकी गिरी, चीतामूल, त्रिकटु, जामुनकी छाल, अनारकी छाल, धवईका फूल, कुटकी, मोथा, इन्द्रयव, दारुहल्दी और चिरायता, इन सबका समभाग चूर्ण और सबके बराबर कुरैयाके छालका चूर्ण एकत्र मिलाकर सहत और चावल भिंगोये पानीके साथ सेवन करनेसे ज्वरातिसार, शूल, हृद्रोग, ग्रहणी, अरोचक और अग्निमान्द्य विनष्ट होता है।

स्वल्प गङ्गाधर चूर्ण। मोथा, सैन्धानमक, शोंठ, धवईका फूल, लोध, कुरैयाकी छाल, बेलकी गिरी, मोचरस, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, वाला, आम्रकेशी, अतीस और बराह,

क्रान्ता, इन सबका समभाग चूर्ण कर सहत और चावल भिंगोये पानीके साथ देना। इससे सब प्रकारका अतिसार, शूल, संग्रह ग्रहणी और सूतिका रोग आराम होता है।

वृहत् गङ्गाधर चूर्ण। बेलकी गिरी, मोचरस, अम्बष्ठा, धवईका फूल, धनिया, बराह-क्रान्ता, शोंठ, मोथा, अतीस, अफीम, लोध, नरम अनारके फलको छाल, कुरैयाकी छाल, पारा और गन्धक, प्रत्येक समभाग खल करना। अनुपान-चावल भिंगोये पानी या माठेके साथ। इससे आठ प्रकारका ज्वर, अतिसार, और ग्रहणी आदि रोग आराम होता है।

स्वल्प लवङ्गादि चूर्ण। लौंग, अतीस, बेलकी गिरी, मोथा, अम्बष्ठा, मोचरस, जीरा, धवईका फूल, लोध, इन्द्रयव, बाला, धनिया, सफेदराल, काकड़ाशिङ्गी, पीपल शोंठ, बराहक्रान्ता, जवाखार, सेंधा नमक और रसाञ्जन; यह सब द्रव्य समभाग ले चूर्ण कर एकत्र मिलाना। अनुपान सहत और चावल भिंगोया पानी अथवा बकरीका दूध। इससे अग्निमान्द्य, संग्रह ग्रहणी, सशोथ अतिसार, पाण्डु, कामला, कास, श्वास, ज्वर, बमन, विवमिषा, अम्लपित्त, शूल और सन्निपातिक सब प्रकारके रोग नष्ट होते हैं।

वृहत् लवङ्गादि चूर्ण। लौंग, अतीस, मोथा, पीपल, गोलमिरच, सेंधव, सोवा, धनिया, कायफल, कूठ, रसाञ्जन, जाविची कालाजीरा, सोंवर्चललवण, धवईका फूल, मोचरस, अम्बष्ठा, तेजपत्ता, तालीशपत्र, नागेश्वर, चीतामूल, काला नमक, तितलौकी, बेलकी गिरी, दालचीनी, इलायची, पीपलामूल, अजमोदा, अजवाईन, बराहक्रान्ता, इन्द्रयव, शोंठ, अनारके फलकी छाल, जवाखार, नीमकी छाल, सफेद राल, सज्जीखार, समुद्रफेन,

सोहागेकालावा, बाला, कुरैयाकी छाल, आमुनकी छाल, आमकी छाल, कुटकी तथा शोधित अभ्र, लौह, गंधक और पारा, प्रत्येक का समभाग चूर्ण। अनुपान सहत और चावल भिंगोया पानी। इससे उत्कट ग्रहणी, सब प्रकारका अतिसार, ज्वर, अरोचक, अग्निमान्द्य, कास, श्वास, वमन, अम्लपित्त, हिक्का, प्रमेह, हलीमक, पाण्डु, अर्श, प्लीहा, गुल्म, उदर, आनाह, शोथ, पीनस, आमवात, अजीर्ण और प्रदर आदि नानाप्रकारके रोग दूर होता है।

नायिका चूर्ण।

पांचोनमक प्रत्येक सवा तोला, त्रिकटु, २ तोले, गन्धक १ तोला, पारा आधा तोला, भांगका पत्ता ८॥ तोले, इन सबका चर्णकर एकत्र मिलाना। मात्रा एक मासासे आरम्भ कर आधा तोला तक। यह अत्यन्त अग्निवर्द्धक और ग्रहणी नाशक है।

जातीफलादि चूर्ण।

जायफल, बिड़ङ्ग, चीतामूल, तगरपादुका, तालीश पत्र, लालचन्दन, शोठ, लौंग, कालाजीरा, कपूर, हरीतकी, मिरच, पीपल, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर, प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, भांगका चूर्ण ७ पल और चीनी सबके बराबर एकत्र मर्द्दन करना। इससे ग्रहणी, अतिसार, अग्निमान्द्य, कास, क्षय, श्वास, अरोचक, पीनस, वातकफरोग और प्रतिश्याय निवारित होता है।

जीरकादि चूर्ण।

जीरा, सोहागेका लावा, मोथा, अम्बष्ठा, बेलकी गिरी, धनिया, बाला, सोवा, अनारका छाल, बराहक्रान्ता, धवईका फूल, त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, मोचरस, इन्द्रयव, अभ्र, गन्धक और पारा प्रत्येक समभाग और समष्टीके बराबर जायफल का चूर्ण, यह सब

द्रव्य एकत्र मिला मर्द्दन करना। इससे दुर्निवार ग्रहणी, सब प्रकार का अतिसार, कामला, पाण्डु और मन्दाग्नि का नाश होता है।

कपित्थाष्टक चूर्ण। अजवाईन, पीपलामूल, दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची, नागकेशर, शोंठ, मिरच, चीतामूल, बाला, कालाजीरा, धनिया और सौवर्च्चलनमक, प्रत्येक एक एक तोला, अम्लवेतस, धवईफूल, पीपल, बेलकी गिरी, अनारकाछिलका और गावझाल, प्रत्येक दो दो तोले, चीनी ६ तोले, कयेथका गूदा ८ तोले, एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे अतिसार ग्रहणी, क्षय गुल्म, कण्ठरोग, कास, श्वास, अरुचि और हिक्कारोग प्रशमित होता है।

दाड़िमाष्टक चूर्ण—वंशलोचन २ तोले, दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची और नागेश्वर, प्रत्येक आधा तोला, अजवाईन, धनिया, कालाजीरा, पीपलामूल और त्रिकटु, यह सब मिलाकर आठ तोले, अनारकाछिलका ८ पल और चीनी ८ पल; एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे कपित्थाष्टक चूर्णोक्त सब रोग दूर होता है।

अजाज्यादि चूर्ण—जीरा २ पल, जवाखार २ पल, मोथा २ पल, अफीम २ पल, मदारकी जड़का चूर्ण ४ पल, यह सब चूर्ण एकत्र मिलाकर २ रत्ती मात्रा सेवन करनेसे अतिसार, रक्तातिसार, ज्वरातिसार, ग्रहणी और विसूचिका रोग विनष्ट होता है।

कञ्चटावलेह। कञ्चट (चौराई) एक सेर, तालमूली एक सेर, १६ सेर पानीमें औटाना ४ सेर रहनेपर नीचे उतार छान लना। इस काढ़ेमें एकसेर चीनी मिलाकर पाक करना, चौथाई हिस्सा रहनेपर उसमें बराहक्रान्ता, धवईफूल, अम्बष्ठा, बेलकी गिरी, पीपल, भांग, अतीस, जवाखार, सौवर्च्चल

नमक, रसांजन और मोचरस प्रत्येक का चूर्ण २ तोले मिलाना। इसकी मात्रा दोष, काल और उमर विचारकर स्थिर करना। पाक शेष तथा ठंढा होनेपर एकपाव सहत मिलाना। यह सब प्रकारका अतिसार, संग्रहग्रहणी, अम्लपित्त, उदरशूल और अरोचक नाशक है।

दशमूल गुड़।

दशमूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; इस काढ़ेमें पुराना गुड़ १२॥ सेर और अदरखका रस ४ सेर मिलाकर धीमी आंचमें औटाना। अवलेहकी तरह गाढ़ा होनेपर पीपल, पीपलामूल, मिरच, शोंठ, हींग, विड़ङ्ग, अजमोदा, जवाखार, सज्जीखार, चीतामूल, चाभ और पञ्चलवण, यह सब द्रव्य प्रत्येक एक एक पल मिलाकर चलाना तथा पाक समाप्त होनेपर स्निग्ध पात्रमें रखना। मात्रा एक तोला। इससे अग्निमान्द्य, शोथ, आमजग्रहणी, शूल, प्लीहा, उदर, अर्श और ज्वर आराम होता है।

मुस्तकाद्य मोदक।

त्रिकटु, त्रिफला, चीतामूल, लौंग, जीरा, कालाजीरा, अजवाईन, अजमोदा, सौंफ, पान, सोवा, शतमूली, धनिया, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, वंशलोचन, मेथी और जायफल, प्रत्येक २ तोले, मोथा ४८ तोले, चीनी १॥ सेर। यथाविधि पाककर मोदक बनाना; मात्रा आधा तोलासे एक तोलातक। यह शामको ठण्ढे पानीमें लेनेसे ग्रहणी, अतिसार, मन्दाग्नि, अरोचक, अजीर्ण, आमदोष और विसूचिका रोग आराम हो देहका बल, वर्ण और पुष्टि सम्पादन करता है।

कामेश्वर मोदक।

आंवला, सैन्धव, कूठ, कटफल, पीपल, शोंठ, अजवाईन, अजमोदा, मुलेठी, जीरा, कालाजीरा, धनिया शठी, कांकड़ाशिंगी, वच, नागेश्वर,

तालीशपत्र, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, मिरच, बड़ीहर्रे और बहेड़ा, प्रत्येक का चूर्ण समभाग; सबके बराबर थोड़ी भूंजी हुई बीज समेत भांगका चूर्ण, तथा समष्टिके दो गुनी चीनी। चीनीकी चाशनी गाढ़ी होनेपर उक्त सब चूर्ण मिलाना, फिर थोड़ा घी और मधुत मिला मोदक तयार कर भूंजी तिलका चूर्ण और कपूरसे अधिवासित करना। इससे ग्रहणी आदि नानाप्रकारके रोगोंकी शान्ति, बल, वीर्य्य और रतिशक्तिकी वृद्धि होती है।

मदन मोदक।

घीमें भूंजी हुई सबीज भांगका चूर्ण २१ तोले, त्रिकटु, त्रिफला, कांकड़ाशिंगी, कूठ, धनिया, सैन्धव, शठी, तालीशपत्र, कटफल, नागेश्वर, अजमोदा, अजवाईन, मुलेठी, मेथी, जीरा और कालाजीरा, प्रत्येक का चूर्ण एक एक तोला, चीनी ४२ तोले, पाकयोग्य पानीमें औटाना, पाकशेष होनेसे घी और मधुत मिलाकर मोदक बना दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची का चूर्ण मिलाना। उपयुक्त मात्रा सबेरे सेवन करनेसे वातकफ रोग, कास, सब प्रकारका शूल, आमवात और संग्रहग्रहणी विनष्ट होता है।

जीरकादि मोदक।

जीरा ८ पल, घीमें भूंजी भांगके बीजका चूर्ण ४ पल, लोहा, वंग, अभ्र, सौंफ, तालीशपत्र, जावित्री, जायफल, धनिया, त्रिफला, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, लौंग, छड़ीला, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, जटामांसी, द्राक्षा, शठी, सोहागेका लावा, मुलेठी, वंशलोचन, बाला, गोरक्षचाकुला, त्रिकटु, धवईकाफूल, बेलकी गिरी, अर्जुनकी छाल, सोवा, देवदारु, कपूर, प्रियङ्गु, जीरा, मोचरस, कुटकी, पद्मकाष्ठ और बालुका प्रत्येक का चूर्ण

दो दो तोले और समष्टिकी दूनी चीनी, पाक शेष होनेपर घी और सहत मिलाकर मोदक बनाना। १ तोला मात्रा सबेरे ठण्ढे पानीके साथ लेनेसे सब प्रकारकी ग्रहणी, अग्निमान्द्य, अतिसार, रक्तातिसार, विषमज्वर, अम्लपित्त और सब प्रकारका उदर रोग आदि पीड़ा दूर होता है।

बृहत् जीरकादि मोदक। जीरा, कालाजीरा, कूठ, शोंठ, पीपल, मिरच, त्रिफला, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, वंशलोचन, लौंग, कड़ीला, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, काकोली, क्षीरकाकोली, जावित्री, जायफल, मुलेठी, सौंफ, जटामांसी, सोंचर नमक, शठी, धनिया, देवताड़, मूरामांसी, द्राक्षा, नखी, सोवा, पद्मकाष्ठ, मेथी, देवदारु, बाला, नालुका, सेन्धानमक, गजपीपल, कपूर, प्रियङ्गु, प्रत्येक एक एक भाग, लोहा, अभ्र और वंग प्रत्येक २ भाग; सब चूर्णके बराबर भूंजे हुए जीराका चूर्ण। समष्टी की दूनी चीनीकी चाशनीकर उक्त सब चूर्ण तथा घी और सहत मिलाकर मोदक बनाना। अनुपान गायका घी और चीनी। इससे अस्सी प्रकारका वायुरोग चालीस प्रकारका पित्तज रोग, सब प्रकारका अतिसार, शूल, अर्श, जीर्णज्वर, विषमज्वर, सूतिकारोग, प्रदर आदि नानाप्रकार का रोग दूर होता है।

मेथी मोदक। त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, जीरा, कालाजीरा, धनिया, कायफल, कूठ, कांकड़ाशिंगी, अजवाईन, सैन्धव, कालानमक, तालीशपत्र, नागेश्वर, तेजपत्ता, दालचीनी, इलायची, जायफल, जाविची, लौंग, मुरामांसी, कपूर, और लालचन्दन, इन सबका चूर्ण समभाग तथा सबके बराबर मेथीका चूर्ण। यह मोदक पुराने गुड़में बनाना, पाक

शेष होनेपर घी और सहत मिलाना। इससे अग्निमान्द्य, ग्रहणी, प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, पाण्डु, कास, यक्ष्मा और कामला रोग आराम होता है।

बृहत् मेथी मोदक।

त्रिफला, धनिया, मोथा, सोंठ, मिरच, पीपल, कायफल, सेंधा नमक, कांकड़ाशिंगी, जीरा, कालाजीरा, कूठ, अजवाईन, नागेश्वर, तेजपत्ता, तालीशपत्र, कालानमक, जायफल, दालचीनी, इलायची, जावित्री, कपूर, लौंग, सोवा, सुरामांसी, सुलेठी, पद्मकाष्ठ, चाभ, सौंफ, और देवदारु, प्रत्येकका चूर्ण समभाग और सबके बराबर मेथीका चूर्ण, तथा सब समष्टीको दूनी चीनीकी चाशनीमें यह सब चूर्ण मिला नीचे उतार घी और सहत मिलाकर मोदक बनाना। मात्रा आधा तोला, इससे अग्निमान्द्य, आमदोष, आमवात, ग्रहणी, प्लीहा, पाण्डु, अर्श, प्रमेह, कास, श्वास, सर्दी, अतिसार और अरोचक रोग आराम होता है।

अग्निकुमार मोदक।

खसकी जड़, बाला, मोथा, दालचीनी, तेजपत्ता, नागेश्वर, जीरा, कालाजीरा, कांकड़ाशिंगी, कायफल, कूठ, शठी, त्रिकटु, बेलकीगिरी, धनिया, जायफल, लौंग, कपूर, कान्तलोह, कड़ीला, वंशलोचन, इलायची, जटामांसी, रास्ना, तगरपादुका, वराहक्रान्ता, बरियारा, अभ्र, सुरामांसी और वंग, यह सब द्रव्य प्रत्येक समभाग, तथा सबके बराबर मेथीका चूर्ण और मेथीका आधा भाग भांगका चूर्ण, तथा सब चूर्णको दूनी चीनी। पाकशेष होनेपर सहत मिला मोदक बनाना। ठण्ढा पानी अथवा बकरीके दूधमें आधा तोला मात्रा सबेरे सेवन करानेसे दुर्निवार ग्रहणी, श्वास, कास, आमवात, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, विषमज्वर, आनाह, शूल, यकृत्, प्लीहा,

उदर, अठारह प्रकारका कुष्ठ, उदावर्त्त और गुल्म रोग आराम होता है।

ग्रहणीकपाट रस। सोहागीका लावा, जवाखार, गन्धक, पारा, जायफल, खैर, जीरा, सफेदराल, कंवाचकीबीज और धकपुष्प, प्रत्येक द्रव्यका आधातोला चूर्ण ; बेलका पत्ता, कपासका फल, शालिंच, कटेरी शालिंचमूल, कुरैयाकी छाल चौराईके पत्तेके रसमें मर्द्दन कर एकरत्ती वजनकी गोली बनाना। यह औषध तीन दिन देना तथा औषध खानेके बाद आधपाव दही पिलाना, इससे सब प्रकारकी ग्रहणी, आमशूल, ज्वर, कास, श्वास, शोथ और प्रवाहिका आदि नानाप्रकारके रोग आराम होते है।

सग्रह ग्रहणीकपाट रस। मोती, सोना, पारा, गन्धक, सोहागीका लावा, अभ्रक, कौड़ी भस्म और विष प्रत्येक १ तोला ; शंख भस्म ८ तोले, सब एकत्रकर अतीसके काढ़ेकी भावना दे एक गोला बना गजपुटमें फूकना, आग ठण्ढी होनेपर औषध निकालकर लोहेके पात्रमें धतूरा, चीता और तालमूलीके रसकी भावना दे २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान वाताधिक्य ग्रहणीमें घी और गोलमिरच ; पित्ताधिक्य ग्रहणीमें सहत और पीपल तथा कफाधिक्य ग्रहणीमें भांगका रस या घी मिलाया त्रिकटु। इससे ग्रहणी, क्षय, ज्वर, अर्श, मन्दाग्नि, अतिसार, अरोचक, पीनस और प्रमेह नष्ट होता है।

ग्रहणीशार्दूल वटिका—जायफल, लौंग, जीरा, कूठ, सोहागीका लावा, कालानमक, दालचीनी, इलायची, धतूरेकी बीज, और अफीम, प्रत्येक समभाग ; गंधालीके रसमें खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना ; इससे ग्रहणी, नानाप्रकार अतिसार और प्रवाहिका रोग आराम होता है।

पारा, लोहा, गन्धक, शङ्खभस्म, सोहागेका लावा, हींग, शठी, तालिसपत्र, मोथा, धनिया, जीरा, सेन्धा-नमक, धवईका फूल, अतीस, सोंठ, गृह-धूम, हरीतकी, भेलावा, तेजपत्ता, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, वाला, बेलगिरी और मेथी; यह सब द्रव्य भांगके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना, यह ग्रहणी, ज्वरातिसार, शूल, गुल्म, अम्लपित्त, कामला, हलीमक, कंडू, कुष्ठ, विसर्प, गुदभ्रंश और क्रिमिरोग नाशक तथा बल, वर्ण और अग्निजनक है।

ग्रहणीगजेन्द्र वटिका।

अग्निकुमार रस—पारा, गन्धक, मोठाविष, त्रिकटु, सोहा-गेका लावा, लौहभस्म, अजमोदा और अफीम प्रत्येक समभाग; सबके बराबर अभ्रभस्म; एकत्र चीतामूलके काढ़ेमें एक पहर खलकर गोलमिरचके बराबर गोली बनाना। इससे अजीर्ण और ग्रहणी रोग दूर होता है।

जायफल, सोहागेका लावा, अभ्र और धतूरेकी बीज प्रत्येक एक तोला, अफीम २ तोले, यह सब द्रव्य गन्धाली पत्तेके रसमें खलकर चने बराबर गोली बनाना। यह गोली ग्रहणी रोगमें सहतके साथ और दोषानुसार अनुपान विशेषके साथ सब प्रकारके अतिसार में भी प्रयोग कर सकते हैं। गोली सेवनके बाद दही और भात भोजन कराना चाहिये।

जातीफलाद्य वटी।

पारा २ तोले, गंधक २ तोलेकी कज्जली बनाना। कज्जलीमें थोड़ा पानी मिला एक लोहेके पात्रमें रख गरम करना फिर जायफल, जावित्री और नीमका पत्ता प्रत्येक का चूर्ण २ तोले इसमें मिलाना।

महागन्धक।

फिर दो सीपमें यह औषध बन्दकर केलेका पत्ता लपेट मिट्टीका लेप करना। सूखजानेपर गजपुटमें फूंकना, ऊपरकी मिट्टी लाल हो जानेपर दवा आगसे निकालकर एकदफे और खल करना। इसकी पूरी मात्रा २ रत्ती। ग्रहणी, अतिसार, सूतिका, कास, श्वास, और बालकोंके उदरामय रोगोंमें इससे विशेष उपकार होता है।

महाभ्र वटी।

अभ्रक, ताम्बा, लौह, गन्धक, पारा, मैनसिल,सोहागेका लावा, जवाखार और त्रिफला प्रत्येक ८ तोले, मीठाविष आधा तोला; एकत्र मर्द्दन कर भांग, सोमराजी, भृंगराज, बेलका पत्ता, पालिधापत्र, गनियारी, बिधारा, धनिया, खुलकुड़ी, निर्गुण्डी, नाटाकरञ्ज, धतूरेका पत्ता, श्वेत अपराजिता, जयन्ती, अदरख, अडूसा और पान, यथासम्भव इन सबके पत्तेका रस, या काढ़ेकी अलग अलग भावना देकर थोड़ा गिला रहनेपर ८ तोले गोलमिरचका चूर्ण मिला, एक रत्ती बराबर गोली बनाना, अनुपान विशेषके साथ यह ग्रहणी, अतिसार, सूतिका, शूल, शोथ, अग्निमान्द्य, आमवात और प्रदर आदि रोगोंमें प्रयोग करना।

पीयूषवल्ली रस।

पारा, गन्धक, रौप्य, लोहा, सोहागा, रसाञ्जन, स्वर्णमाक्षिक, लौंग, लालचन्दन, मोथा, अम्बष्ठा, जीरा, धनिया, बराहक्रान्ता, अतीस, लोध, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, दालचीनी, जायफल, शोंठ, नीमकी छाल, धतूरेकी बीज, अनारकी छाल, धवई फूल, और कूठ, प्रत्येक आधा तोला; इन सबको एकत्र मिला कसेरूका रस और बकरीके दूधकी भावना देकर चने बराबर गोली बनाना। भूंजा बेल और गुड़के साथ देनेसे रक्तातिसार, ग्रहणी और रक्तप्रदर आदि विविध पीड़ा इससे आराम होती है।

श्रीनृपतिवल्लभ। जायफल, लौंग, मोथा, दालचीनी, इलायची, सोहागेका लावा, हींग, जीरा, तेजपत्ता, अजवाईन, शोंठ, सैंधव, लोहा, अभ्रक, पारा, गंधक, और ताम्बा प्रत्येक एक पल, गोलमिरच २ पल एकत्र बकरीका दूध और आंवलेके रसकी भावना देकर एक आनाभरकी गोली बनाना। इससे अग्निमान्द्य, ग्रहणी, शूल, कास, खास, शोथ, भगन्दर, उपदंश और गुल्म आदि पीड़ा आराम होती है।

वृहत् नृपवल्लभ। पारा, गंधक, लोहा, अभ्र, सीसा, चीतामूल, मोथा, सोहागेका लावा, जायफल, हींग, दालचीनी, इलायची, वंग, तेजपत्ता, कालाजीरा, अजवाईन, शोंठ, सैंधव, गोलमिरच और ताम्बा प्रत्येक एक एक तोला, स्वर्णभस्म आधा तोला, इन सब द्रव्योंको अदरख और आंवलेके रसकी भावना दे चने बराबर गोली बनाना। इससे भी ग्रहणी, अग्निमान्द्य और अजीर्ण आदि उदरामय रोग आराम होता है।

ग्रहणीवज्रकपाट—पारा, गंधक, जवाखार, अजवाईन, अभ्रक, सोहागेका लावा और जयन्ती समभाग ले जयन्ती, भीमराज, और जम्बीर नीबूके रसमें एक एक दिन खलकर गोला बनाना। धीमी आंचमें गोला गरम कर ठण्ढा हो जानेपर भांग, सेमर और हरीतकीके रसकी सात सातदफे भावना देना। उपयुक्त मात्रासे सहतके साथ देनेसे ग्रहणी रोग विनष्ट होता है।

राजवल्लभ रस—जायफल, मोथा, दालचीनी, इलायची, सोहागेका लावा, हींग, जीरा, तेजपत्ता, अजवाईन, शोंठ, सैंधव, लोहा, अभ्र, ताम्बा, पारा, गंधक, गोलमिरच, तेवड़ी और रौप्य, प्रत्येक समभाग आंवलेके रसकी भावना दे दो रत्ती बराबर गोली

बनाना। यह औषध अनुपान विशेषके साथ देनेसे गृहणी, गुल्म, शूल, अतिसार और अर्श आदि पीड़ा आराम होती है।

चांगेरी घृत—घी ४ सेर, चौपतियाशाक का रस १६ सेर, दही १६ सेर, कल्कार्थ शोंठ, पीपल, चीतामूल, गजपीपल, गोखुर, धनिया, बेलकी गिरी, अम्बष्ठा और अजवाईन सब मिलाकर एक सेर; यथाविधि घृत पाककर प्रयोग करनेसे गृहणी, प्रवाहिका और वातकफजनित रोग आराम होता है।

मरिचाद्य घृत—घी ४ सेर, दशमूल ६। सेर, पानी ३२ सेर, शेष ८ सेर; दूध ८ सेर और गोलमिरच, पीपलामूल, शोंठ, पोपल, भेलावा, अजवाईन, विड़ङ्ग, गजपीपल, हींग, सौवर्चल, काला, सेंधव और कटैलानमक, चाभ, जवाखार, चीतामूल और वच प्रत्येक ४ तोले, यथाविधि पाक करना। यह अग्निमान्द्य, ग्रहणी, प्लीहा और कास नाशक है।

महाषट्पलक घृत—घी ४ सेर, दशमूलका काढ़ा ४ सेर, अदरखका रस ४ सेर चुक्र ४ सेर, दूध ४ सेर, दही ४ सेर और कांजी ४ सेर। कल्कार्थ पंचकोल, सौवर्चल, सैन्धव, काला और पाङ्गानमक, हीवेर, अजमोदा, जवाखार, हींग, जीरा, कालाजीरा, और अजवाईन प्रत्येक ४ तोले। यथाविधि पाक करना। इससेभी गृहणी, अर्श, श्वास, कास और कृमि आदि रोग आराम होते हैं।

बिल्वतैल। तिलका तेल ४ सेर, बेलका गूदा ६। सेर और दशमूल ६। सेर एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना शेष १६ सेर; अदरखका रस ४ सेर, कांजी ४ सेर, दूध ४ सेर। कल्कार्थ धवईफूल, बेलगिरी, कूठ, शठी, रास्ना, पुनर्नवा, त्रिकटु, पीपलामूल, चीतामूल, गजपीपल, देवदारु, बच, कूठ, मोचरस, कुटकी, तेजपत्ता, अजमोदा, और अष्टवर्ग प्रत्येक

चार चार तोले, इसको आंचपर यथाविधि पाक करना। यह संग्रह-ग्रहणी, अतिसार, गुल्म और सूतिका आदि बहुरोग नाशक है।

ग्रहणीमिहिर तैल।

तिलका तैल ४ सेर, क्वाथार्थ कुरैयाकी छाल किम्वा धनिया १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, अथवा तक्र (मट्ठा) १६ सेर; कल्कार्थ धनिया, धवईकाफूल, लोध, बराहक्रान्ता, अतीस, हरीतकी, खसकी जड़, मोथा, बाला, मोचरस, रसवत, बेलकी गिरी, नीलोत्पल, तेजपत्ता, नागेश्वर, पद्मकेशर, गुरिच, इन्द्रयव, श्यामालता, पद्मकाष्ठ, कुटकी, तगरपादुका, कुरैयाकी छाल, दालचीनी, कसेरु, पुनर्नवा, आमकी छाल, जामुनकी छाल, कदम्बकी छाल, अजवाईन और जीरा प्रत्येक २ तोले, यथाविधि पाक करना। ग्रहणी आदि विविध रोगोंमें यह प्रयोग होता है।

वृहत् ग्रहणीमिहिर तैल।

तिलका तैल ४ सेर; क्वाथार्थ कुरैयाकी छाल और धनिया प्रत्येक १२॥ सेर; अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाना, प्रत्येक का शेष १६ सेर, मट्ठा १६ सेर और कल्कार्थ धनिया, धवईका फूल, लोध, बराहक्रान्ता, अतीस, हरीतकी, लौंग, बाला, सिंघाड़ा, रसवत, नागेश्वर, पद्मकाष्ठ, गुरिच, इन्द्रयव, प्रियङ्गु, कुटकी, पद्मकेशर, तगरपादुका, शरमूल, भृङ्गराज, कसेरु, पुनर्नवा, आमकी छाल और कदमकी छाल, प्रत्येक दो दो तोले, यथाविधि पाक करना। यह तैल ग्रहणीमिहिर तैलसे भी विशेष उपकारी है।

दाड़िमाद्य तैल।

तिलका तैल १६ सेर; अनारके फलकी छाल, बाला, धनिया और कुरैयाकी छाल प्रत्येकका काढ़ा ८ सेर, मट्ठा ८ सेर और कल्कार्थ त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, चाभ, जीरा, सैंधव, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची,

नागेश्वर, सौफ, जटामांसी, लौंग, जाविनी, जायफल, धनिया, अज-वाइन, अजमोदा, बाला, कंचट, अतीस, खुलकुड़ी, सिंघाड़ेका पत्ता, हुहती, कण्टकारी, आमकी छाल, जामुनकी छाल, सरिवन, पिठवन, बराहक्रान्ता, इन्द्रयव, सतावर, धवईका फूल, वेलकी गिरी, मोचरस, तालमूली, कुरैयाकी छाल, बरियारा, गोक्षुर, लोध, अम्बष्ठा, खदिर काष्ठ, गुरिच और सेमरकी छाल, प्रत्येक ४ तोले, अरवाचावल भिंगोये चौगुने पानीमें यथाविधि पाक करना। यह ग्रहणी, अर्शः, प्रमेह आदि बहुविध रोग निवारक है।

दुग्धवटी।

पारा, गन्धक, मीठाविष, ताम्बा, अभ्रक, लोहा, हरिताल, हिंगुल, सेमरका खार और अफीम; प्रत्येक समभाग दूधमें खलकर आधा जौ बराबर गोली बनाना। यह दूधके अनुपानके साथ देनेसे शोथ युक्त ग्रहणी आदि रोग आराम होता है। इसमें पानी पीना और नमक खाना मना है। प्यास लगेतो पानीके बदले दूध पीना चाहिये। दाल तर्कारीके बदले केवल दूधभात या दूधमें औटाया दूसरा पदार्थ मंड आदि पथ्य देना उचित है। पानी और नमक बन्द करना कठिन मालूम हो तो, सेन्धानमक केसु-रियाके रसमें भूनकर वही नमक दाल और तरकारीमें बहुत थोड़ा मिलाकर देना तथा पानी गरम कर बहुत मांगनेपर थोड़ा पीनेको देना चाहिये।

लौहपर्पटी।

पारा २ तोले और गन्धक २ तोलेकी कज्जली बनाकर उसमें २ तोले लोहाभस्म मिलाना। लोहेकी कलछीमें घी लगाकर आगपर रख कज्जली गला लेना, फिर वह कज्जली गरम रहतेही, गोबरके ऊपर केलेका पत्ता रख उसपर ढालना तथा उपरसे दूसरा केलेका पत्ता रख-

कर गोबरसे ढांक देना। थोड़ी देर बाद जो चिपटा पदार्थ जम जायगा उसीको लौह पर्प्पटी कहते हैं। मात्रा एक रत्तीसे आरम्भकर थोड़ा थोड़ा बढ़ाना, अनुपान ठण्ढा पानी या धनिया और जीरेका काढ़ा। इससे ग्रहणी, अतिसार, सूतिका, पाण्डु, अग्निमान्द्य आदि रोग आराम होते है।

स्वर्णपर्पटी।

पारा ८ तोले और सोनेका भस्म १ तोला, एकत्र खूब मर्द्दन कर उसमें ८ तोले गंधक मिला कज्जली बनाना। फिर लौह पर्पटीकी तरह पर्पटी बनाकर उसी मात्रासे प्रयोग करना। इससे गृहणी, यक्ष्मा, शूल, आदि रोग आराम होता है।

पञ्चामृत पर्पटी।

गंधक ८ तोले, पारा ४ तोले, लोहा २ तोले, अभ्रक एक तोला और ताम्बा आधा तोला, एकत्र लोहेके पात्रमें खलकर पूर्व्ववत् पर्पटी बनाना। २ रत्ती मात्रा घी और महतके साथ सेवन करनेसे गृहणी, अरुचि, वमन और पुराना अतिसार आदि रोगोंका नाश होता है।

रसपर्पटी।

समभाग पारा और गंधक की कज्जली बनाकर पूर्व्ववत् पर्पटी तयार करना। यहभी गृहणी आदि विविध पीड़ानाशक है। मात्रा २ रत्ती। पर्पटी सेवनके समयमें भी दुग्धवटीकी तरह जलपान और लवण भोजन परित्याग करना चाहिये।

विजय पर्पटी।

गंधक के चूर्ण को भंगरैया के रसको ७ वार अथवा ३ बार भावना देकर सुखा लेना। फिर वही गंधक लोहेके पात्र में गलाकर भंगरैयाके रसमें डालना। थोड़ी देर बाद निकालकर सूखा लेना।

यह गंधक ८ तोले, शोधित पारा ४ तोले, चांदीका भस्म २ तोले, सोनेका भस्म १ तोला, वैक्रान्त भस्म आधा तोला और मोती चार आनेभर एकत्र खलकर कज्जली बनाना। बैरकी लकड़ीके अंगारेपर इसे गलाकर पर्पटी तयार करना। यह पर्पटी यथानियम २ रत्ती मात्रा सेवन करनेसे दुर्निवार ग्रहणी, शोथ, आमशूल, अतिसार, यक्ष्मा, पाण्डु, कामला, अम्लपित्त, वातरक्त, विषम ज्वर और प्रमेह आदि विविध रोग निराकृत होते हैं तथा रोगी क्रमशः बल और पुष्टि लाभकर थोड़ेही दिनोंमें चङ्गा हो जाता है। यह औषध सेवन करनेमें स्त्रीसहवास, रात्रिजागरण, कसरत और तिक्त द्रव्य तथा कफजनक द्रव्य भोजन निषिद्ध है। व्यञ्जनादि पथ्य देना हो तो धनिया, हींग, जीरा, शोंठ, सैंधव और घीसे पाक करना चाहिये। वायु कुपित होनेसे विशेष विचार कर कच्चे नारियलका पानी थोड़ा देना, नहीतो दूधके सिवाय और कोई पदार्थ नही पिलाना।

अर्श (बवासीर)।

चन्दनादि काढ़ा—लालचन्दन, चिरायता, जवासा और नागरमोथा प्रत्येक आधा तोला यथाविधि औटाकर पिलाना। यह खूनी बवासीर नाशक है।

मरिचादि चूर्ण—गोलमिरच, पीपल, कूठ, सैंधव, जीरा, शोंठ, बच, हींग, विड़ङ्ग, हरीतकी, चीतामूल और अजवाईन, इन सबका चूर्ण २ तोले और पुराना गुड़ ४ तोले, एकत्र मिला-कर आधा तोला मात्रा गरम पानीसे देना।

समशर्कर चूर्ण—छोटी इलायची एक भाग, दालचीनी २ भाग, तेजपत्ता ३ भाग, नागेश्वर ४ भाग, गोलमिरच ६ भाग, और शोंठ ७ भाग, एकत्र चूर्णकर समष्टीके बराबर चीनी मिलाना। यह चार आनेभर अथवा अवस्था विशेषमें उससे भी अत्याधिक मात्रा पानीसे देना।

कर्पूराद्य चूर्ण।

कपूर, लौंग, इलायची, दालचीनी, नागेश्वर, जायफल, खसकी जड़, शोंठ, कालजीरा, कृष्णाकुरु, वंश लोचन, जटामांसी, नीला कमल, पीपल, चन्दन, तगरपादुका, बाला और शीतलचीनीका चूर्ण एकत्रकर सब द्रव्यकी आधी चीनी मिलाना। यह वातार्शकी श्रेष्ठ औषध है तथा अतिसार, गुल्म, ग्रहणी और हृद्रोग आदि पीड़ा नाशक है।

विजय चूर्ण—त्रिकटु, त्रिफला, त्रिजात, बच, हींग, अम्बष्ठा, जवाखार, हरिद्रा, दारुहल्दी, चाभ, कुटकी, इन्द्रयव, चीतामूल, सोवा, पांचो नमक, पीपलामूल, बेलकी गिरी और अजवाईन, सब समभाग एकत्र चूर्णकर गरम पानीके साथ सेवन करनेसे अर्श ग्रहणी, वातगुल्म, कास, श्वास, हिक्का और पार्श्वशूल आदि विविध पीड़ा नाश होती है।

करञ्जादि चूर्ण—करञ्ज फलका गूदा, चीतामूल, सैन्धव, शोंठ, इन्द्रयव और श्योनाक (शोना) छाल; इन सबका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर उपयुक्त मात्रा मट्ठेके साथ देनेसे भी रक्तार्श आराम होता है।

भल्लातामृतयोग—गुरिच, ईशलांगला, काकड़ाशिङ्गी, बड़ी खुलकुड़ी, गुञ्जापत्र और कतकी पत्रके साथ भेलावेकी नरम बीज एक दिन खूब खलकर २ मासे प्रयोग करनेसे रक्तार्श आराम होता है।

दशमूल गुड़—दशमूल, चीतामूल और दन्तीमूल, प्रत्येक ५ पल, ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहते छानकर उसी काढ़ेके साथ १२॥ सेर गुड़ औटाना। पाकशेष होनेपर त्रिहत चूर्ण २ सेर और पीपलका चूर्ण एक सेर मिलाना। इसको मात्रा आधा तोला।

नागराद्य मोदक—सोंठ, भेलावा और विधारा को बीज प्रत्येकका समभाग चूर्ण दो गूने गुड़में मिलाकर मोदक बनाना। आधा तोला मात्रा पानीके साथ देना।

स्वल्प शूरण मोदक—गोलमिरच दो भाग, सोंठ चार भाग, चीतामूल ८ भाग, जंगली जिमिकन्द १६ भाग और सबके बराबर गुड़, एकत्र मिलाकर मोदक बनाना। १ तोला मात्रा पानीके साथ देना, इससे अर्श:, गुल्म, शूल, उदर रोग, श्लीपद, अग्निमान्द्य आदि रोग आराम होते है।

बृहत् शूरण मोदक।

जिमिकन्द का चूर्ण १६ तोले, चीतामूल ८ तोले, बेलको गिरी ४ तोले, गोलमिरच २ तोले; त्रिफला, पीपल, शतावर, तालीस पत्र, भेलावा और विड़ङ्ग प्रत्येक का चूर्ण ४ तोले, तालमूली ८ तोले, विधाराको बीज १६ तोले, दालचीनी २ तोले और इलायची २ तोले, यह सब द्रव्य १८० तोले पुराने गुड़में मिलाकर मोदक बनाना। मात्रा एक तोला ठण्ढे पानीके साथ। इससे स्वल्प शूरणोक्त रोग समूह तथा शोथ, ग्रहणी, प्लीहा, कास और श्वास आदि रोगभी आराम होते है।

कुटजलेह।

कुरैयाकी छाल १२॥ सेर, ६४ सेर पानीमें औटाना, ८ सेर रहते छानकर फिर औटाना, गाढ़ा हो जानेपर भेलावा, विड़ङ्ग, त्रिकटु, त्रिफला,

रसाञ्जन, चीतामूल, इन्द्रयव, बच, अतीस और बेलकी गिरी प्रत्येक का चूर्ण ८ तोले । पुराना गुड़ ३॥ सेर, घी एक सेर और सहत एक सेर, यह सब एकत्र मिलाना । आधा तोला मात्रा ठण्ढा पानी, मट्ठा, अथवा बकरीके दूधमें देनेसे रक्तार्श: रक्तपित्त, और रक्तातिसार आदि रोग नष्ट होते हैं ।

प्राणदा गुड़िका । सोंठ ३ पल, गोलमिरच ४ पल, नागेश्वर ४ तोले, पीपलामूल २ पल, तेजपत्ता १ तोला, छोटी इलायची २ तोले, दालचीनी १ तोला, खसकी जड़ १ तोला, पुराना गुड़ ३० पल ; यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा प्रयोग करना । अनुपान दूध या पानी । कोष्ठबद्ध हो तो सोंठके बदले बड़ीहर्रे देना ।

चन्द्रप्रभा गुड़िका । विड़ङ्ग, चीतामूल, त्रिकटु, त्रिफला, देवदारु, चाभ, चिरायता, पीपलामूल, मोथा, शठी, बच, स्वर्णमाक्षिक, सैन्धव, सोवर्चल नमक, जवाखार, सज्जीखार, हलदी, दारुहलदी, धनिया, गजपीपल और अतीस, प्रत्येक २ तोले ; शिलाजीत ८ पल, शोधित गुग्गुलु २ पल लोहा २ पल, चीनी ४ पल, वंशलोचन १ पल, दन्तीमूल, त्रिवृत, दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची सब मिलाकर एक पल ; कज्जली ८ तोले अथवा रससिन्दूर ८ तोले, यह सब एकत्र खल करना । मात्रा पहिले ४ रत्ती फिर सहनेपर बढ़ा देना । अनुपान घी और सहत ।

रसगुड़िका । रससिन्दूर एकभाग, विड़ङ्ग, गोलमिरच और अभ्रक प्रत्येक ३ भाग ; एकत्र जङ्गली पालकी शाकके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना । यह अर्श और अग्निमान्द्य नाशक है ।

जातीफलादि वटी—जायफल, लौंग, पीपल, सैन्धव, सोंठ, धतूरेको बीज, हिङ्गुल और सोहागा; समभाग नीबूके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना।

पञ्चानन वटी—रससिन्दूर, अभ्रक, लोहा, ताम्बा और गन्धक; प्रत्येक एक एक तोला, शोधित भेलावा ५ तोले; ८ तोले जङ्गली जिमिकन्दके रसमें खलकर एक मासा वजन की गोली बनाना।

नित्योदित रस—पारा, गन्धक, ताम्बा, लोहा, अभ्रक और मीठाविष प्रत्येक समभाग, तथा सबके बराबर भेलावा, सब एकत्र खलकर जिमिकन्द और मानकन्दके रसकी तीन दिन भावना दे उरद बराबर गोली बनाना, अनुपान घी।

दन्त्यरिष्ट। दन्तीमूल आठ तोले और दशमूल प्रत्येक ८ तोले, एकत्र कूटकर ६४ सेर पानीमें औटाना। औटाती वक्त हरीतकी, बहेड़ा और आंवला प्रत्येक आठ तोले एकत्र कूटकर मिलाना, फिर १६ सेर पानी रहते छान कर इसमें पुराना गुड़ २॥ सेर मिलाकर घीके बरतनमें मुंह बन्द कर रखना। १५ दिनके बाद १। भरी मात्रासे प्रयोग करना।

अभयारिष्ट। हरीतकी एक सेर, आंवला २ सेर, कपित्थ की गिरी १० पल, इन्द्रवारुणी ४ तोले; विड़ङ्ग, पीपल, लोध, गोलमिरच, एलवा, प्रत्येक दो दो पल; यह सब द्रव्य एकत्र ६ मन १० सेर पानीमें औटाना ६४ सेर रहते उतारकर छान लेना। फिर उसमें २५ सेर पुराना गुड़ मिला घृत भावित पात्रमें १५ दिन रखना। पूर्वोक्त मात्रा प्रयोग करनेसे अर्श, ग्रहणी, प्लीहा, गुल्म, उदर शोथ, अग्निमान्द्य और क्रिमि आदि रोग दूर होते है।

चव्यादि घृत—घी ४ सेर, दही १६ सेर, पानी १६ सेर; कल्कार्थ चाभ, त्रिकटु, अम्बष्ठा, जवाखार, धनिया, अजवाइन, पीपलामूल, कालानमक, सेंधानमक, चीतामूल, बेलकी छाल और हरीतकी सब मिलाकर एक सेर यथानियम पाककर सेवन करनेसे मल और वायुका अनुलोम होता है तथा गुदभ्रंश, गुल्म-शूल, अर्श और मूत्रकृच्छ्र आदि पीड़ा शान्त होती है।

कुटजाद्य घृत—घी ४ सेर, कल्कार्थ इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, नागकेशर, नीलाकमल, लोध और धवईका फूल सब मिलाकर एक सेर, पानी १६ सेर, यथाविधि पाक करना। यह रक्तार्श निवारक है।

कासीश तैल—तिलका तैल १ सेर, कांजी ४ सेर, कल्कार्थ हिराकस, दन्तीमूल, सैंधव नमक, कनैलकी जड़ और चीतामूल प्रत्येक एक छटांक, यथाविधि पाक करना, प्रयोग करनेके वक्त अकवनका दूध थोड़ा मिला लेना चाहिये।

बृहत् कासीशाद्य तैल—तिलका तैल ४ सेर, कल्कार्थ हिराकस, सैंधव, पीपल, शोंठ, कूठ, ईशलाङ्गला, पत्थरचूर, कनैल, दन्तीमूल, विड़ङ्ग, चीतामूल, हरिताल, मैनसिल, सनाय और सेहुंड़का दूध सब मिलाकर एक सेर, गोमूत्र १६ सेर; एकत्र यथाविधि पाक करना।

अग्निमान्द्य और अजीर्ण।

वड़वानल चूर्ण—सेंधानमक १ भाग, पीपलामूल २ भाग, पीपल ३ भाग, चाभ ४ भाग, चीता ५ भाग, सोंठ ६ भाग और हरीतकी ७ भाग ; इन सबका चूर्ण सेवन करनेसे अग्निकी दीप्ति होती है। मात्रा एक आनासे चार आनेभर तक। अनुपान गरम पानी।

सैंधवादि चूर्ण—सेंधानमक, हरीतकी, पीपल और चीता-मूल ; इन सबका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर गरम पानीके साथ सेवन करनेसे, अग्निकी अतिशय दीप्ति होती है। इससे नया चावलका भात, घृतपक्व पदार्थ और मछली आदि भी थोड़ेही देरमें हजम होता है।

सैंधवाद्य चूर्ण—सैंधव, चीतामूल, हरीतकी, लौंग, मिरच, पीपल, सोहागा, सोंठ, चाभ, अजवाइन, सौंफ और बच ; यह १२ द्रव्योंका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर २१ दिन नीबूके रसकी भावना देना। यह चूर्ण २ मासे, गरम पानी, नमक मिलाया मठ्ठा, दहीका पानी या कांजीके साथ सेवन करनेसे, सद्यः अग्निकी दीप्ति होती है।

हिङ्गाष्टक चूर्ण—त्रिकटु, अजवाईन, सैन्धव, जीरा, काला जीरा और हींग ; प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाना। भोजनके समय पहिले ग्रासमें यह चूर्ण और घी मिलाकर खानेसे उदावर्त्त, अजीर्ण, प्लीहा, कास और वायु शान्त होता है।

स्वल्प अग्निमुख चूर्ण—हींग १ भाग, बच २ भाग, पीपल ३

भाग, शोंठ ४ भाग, अजवाईन ५ भाग, हरीतकी ६ भाग, चीता-मूल ७ भाग, कूठ ८ भाग ; एकत्र चूर्ण करना। दधिमण्ड, सुरा या गरम पानीके साथ सेवन करनेसे उदावर्त्त, अजीर्ण, प्लीहा, कास और वायु शान्त होता है।

बृहत् अग्निमुख चूर्ण।

जवाखार, सज्जीखार, चीतामूल, अम्बष्ठा, करञ्जमूल की छाल, पांचोनमक, छोटी इलायची, तेजपता, बभनेठी, विड़ङ्ग, हींग, कूठ, शठी, दारु-हल्दी, तेवड़ी, मोथा, बच, इन्द्रयव, आंवला, जीरा, गज-पीपल, कालाजीरा, अम्लवेतस, इमली, अजवाईन, देवदारु, हरीतकी, अतीस, अनन्तमूल, ह्रीवेर, अमिलतास का गूदा, तिलकी लकड़ी का खार, बनपलासका खार, सैजनके जड़की छालका खार, कुलेखाड़ाका खार, पलाशका खार और गरम गोमूत्रमें भिंगोया मण्डूर, यह सब द्रव्य समभाग ले, ३ दिन नीबूके रसकी, ३ दिन कांजीकी और ३ दिन अदरखके रसकी भावना दे चूर्ण कर लेना। यह चूर्ण २ तोले मात्रा, भोजनके द्रव्योंमें मिलाकर घी डालकर खानेसे अजीर्ण, अग्निमान्द्य, प्लीहा, गुल्म, अष्ठीला और अर्श आदि पीड़ा शान्त होती है।

भास्कर लवण।

पीपल, पीपलामूल, धनिया, कालाजीरा, सेंधानमक, काला-नमक, तेजपत्ता, तालीश पत्र और नाग-केशर प्रत्येक २ पल, सौवर्च्चल नमक ५ पल, गोलमिरच, जीरा और शोंठ प्रत्येक एक पल, दालचीनी ४ पल, अम्लवेतस २ पल, इन सब द्रव्योंका चूर्ण एकत्र मिलाकर मठ्ठा या कांजीके साथ सेवन करनेसे वातकफ, वातगुल्म, वात-शूल, प्लीहा और पांडुरोगादि नानाप्रकारकी पीड़ा आराम हो अतिशय अग्निकी दीप्ति होती है।

चीतामूल, त्रिफला, दन्तीमूल, तेवड़ीमूल, और कूठ, प्रत्येक का समभाग चूर्ण, सबके बराबर सैन्धव नमक, एकत्र सेहुंड़के दूधकी भावना देकर, सेहुंड़के डण्डेमें भर मिट्टीका लेपकर आगमें रखना। जल-

अग्निमुख लवण।

जानेपर बाहर निकाल चूर्ण करना। इस चूर्णकी मात्रा २ रत्ती। गरम पानीके साथ सेवन करनेसे अतिशय अग्निकी दीप्ति होती है तथा प्लीहा और गुल्म आदि नानाप्रकारके रोग नाश होते हैं।

वाड़वानल रस—शोधित पारा २ तोले और शोधित गंधक २ तोलेकी कज्जली तथा पीपल, पांचोनमक, गोलमिरच, त्रिफला जवाखार, सज्जीखार और सोहागा प्रत्येक दो तोले एकत्र चूर्ण-कर निर्गुण्डीके पत्तेके रसकी एक दिन भावना दे, एकरत्ती वजन की गोली बनाना। यह अग्निमांद्य नाशक है।

हुताशन रस—गंधक एकभाग, पारा एकभाग, सोहागेका लावा एक भाग, विष ३ भाग, मिरच ८ भाग; यह सब द्रव्य एकत्र नीबूके रसमें एक दिन खलकर मूंगके बराबर गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। यह शूल, अरुचि, गुल्म, विसूचिका, अजीर्ण, अग्निमान्द्य, शिरःपीड़ा और सन्निपात आदि रोगमें प्रयोग होता है।

अग्नितुण्डी वटी—पारा, विष, गंधक, अजवाईन, त्रिफला, सज्जीखार, चीतामूल, सेंधानमक, जीरा, सौवर्चल नमक, विड़ङ्ग, कटैलानमक और सोहागेका लावा; प्रत्येक समभाग और सबके बराबर कुचिला, एकत्र बड़े नीबूके रसमें खलकर गोलमिरच बरा-बर गोली बनाना। इससे अग्निमान्द्य रोग दूर होता है।

लवङ्गादि मोदक—लौंग, पीपल, सोंठ, गोलमिरच, जीरा, कालाजीरा, नागकेशर, तगरपादुका, इलायची, जायफल, वंश-

लोचन, कटफल, तेजपत्ता, पद्मबीज, लालचन्दन, शीतल चीनी, अगरु, खसकी जड़, अभ्र, कपूर, जावित्री, मोथा, जटामासी, जौका चावल, धनिया और सोवा, प्रत्येक का समभाग चूर्ण, और चूर्णको दूनी चीनी मिला यथाविधि मोदक बनाना। इससे अम्लपित्त, अग्निमांद्य, कामला, अरुचि और ग्रहणी आदि रोग दूर होते है।

सुकुमार मोदक—पीपल, पीपलामूल, शोंठ, गोलमिरच, हरीतकी, आंवला, चीतामूल, अभ्र, गुरिच और कुटकी सबका चूर्ण १ तोला, दन्तीचूर्ण ६ तोले, तेवड़ीचूर्ण १६ तोले, चीनी २४ तोले; सहत मिलाकर मोदक बनाना। इससे वाताजीर्ण, विष्टम्भ, उदावर्त्त और आनाह रोग प्रशमित होता है।

त्रिवृत्तादि मोदक—तेवड़ीमूल, पीपलामूल, पीपल, चीतामूल; प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल, गुरुचकी चीनी ५ पल, शोंठका चूर्ण ५ पल और गुड़ ३० पल, इसका मोदक बनाना। मात्रा आधा तोलासे २ तोलेतक। यह अतिशय अग्निवृद्धि कारक है।

मुस्तकारिष्ट—मोथा २५ सेर, पानी २५६ सेर, शेष ६४ सेर यह काढ़ा छानकर उसमें ३७॥ सेर गुड़, धवईकाफूल १६ पल, अजवाईन, शोंठ, गोलमिरच, लौंग, मेथी, चीतामूल, जीरा, प्रत्येकका चूर्ण दो दो पल मिलाना, फिर मुह बन्दकर एक महीना रख द्रवांश छान लेना। इससे अजीर्ण, अग्निमांद्य, विसूचिका और ग्रहणी रोग आराम होते है।

सुधासागर रस—त्रिकटु, त्रिफला, पांचोनमक, जवाखार, सज्जीखार, सोहागेका खार, पारा, गंधक, प्रत्येक एक एक भाग, विष २ भाग; एकत्र पानीमें खलकर एकरत्ती बराबर गोली

बनाना। यह गोली सहत और ५ लौंगके चूर्णमें मिलाकर चाटना। इससे सब प्रकारका अजीर्ण, आमवात, ग्रहणी, गुल्म, अम्लपित्त और मन्दाग्नि दूर होता है।

टङ्कणादि वटी—सोहागेका लावा, शोंठ, पारा, गन्धक, मीठाविष और गोलमिरच; प्रत्येक समभाग एकत्र मदारके रसमें खलकर चने बराबर गोली बनाना। यह अग्निमान्द्य नाशक है।

शङ्खवटी—पारा २ तोले, गन्धक १ तोला, विष ६ तोले, गोलमिरच ८ तोले, शङ्खभस्म ८ तोले, शोंठ १० तोले तथा सज्जीखार, हींग, पीपल, रेउन, सोवर्चल नमक, कालानमक, सेंधा और पांगानमक प्रत्येक १० तोले कागजी नीबूके रसकी भावना दे गोली बनाना। इससे ग्रहणी, अम्लपित्त, शूल, अग्नि-मान्द्य आदि रोग नष्ट होकर अग्निकी वृद्धि होती है।

महाशङ्ख वटी।

पीपलामूल, चीतामूल, दन्तीमूल, पारा, गंधक, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, पांचो-नमक, गोलमिरच, शोंठ, विष, अजमोदा, गुरिच, हींग और इमलीके छालकी राख; प्रत्येक एक तोला, शङ्खभस्म २ तोले; यह सब द्रव्यमें अम्लवर्ग अर्थात् शरबती नीबू, बिजौरा नीबू, चुकपालकी, चांगेरी (चौपतिया शाक) इमली, बेर और करञ्जके रसकी भावना देकर बेरके गुठली बराबर गोली बनाना। खट्टे अनारका रस, मट्ठा, दहीका पानी, शराब, सीधू, कांजी अथवा गरम पानीके अनुपानसे देना। इससे अग्निवृद्धि होकर अर्श, ग्रहणी, क्रिमि, कुष्ठ, प्रमेह, भगन्दर, पथरी, कास, पाण्डु, कामला आदि रोग दूर हो जाते है।

भास्कर रस । विष, पारा, त्रिफला, गंधक, त्रिकटु, सोहागा और जीरा, प्रत्येक एकभाग, लौह, शङ्खभस्म, अभ्र और कौड़ीभस्म प्रत्येक २ भाग; सबके बराबर लौंगचूर्ण; इन सबको ७दिन शरबती नीबूके रसकी भावना दे २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। इसे पानके साथ चिबाकर खाना चाहिये। इससे अग्निकी दीप्ति और सब प्रकारका शूल, विसूचिका और अग्निमान्द्य रोगमें विशेष उपकार होता है।

अग्नि घृत । पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, हींग, चाभ, अजवाईन, पांचोनमक, जवाखार, सज्जीखार, और हौवेर; प्रत्येक का कल्क चार चार तोले, कांजी ४ सेर, मठ्ठा ४ सेर, अदरखका रस ४ सेर, दही ४ सेर, घी ४ सेर, यथाविधि पाक करना। यह घी मन्दाग्निमें विशेष उपकारी है। इससे अर्शः, गुल्म, उदर, ग्रन्थि, अर्व्वुद, अपची, कास, ग्रहणी, शोथ, मेह, भगन्दर, वस्ति और कुक्षिगत रोग समूह आराम होते हैं।

विसूचिका ।

अहिफेनासव—महुवेके फूलकी शराब १२॥ सेर, अफीम ४ पल, मोथा, जायफल, इन्द्रयव और इलायची प्रत्येक एक एक पल, यह द्रव्य एकत्र एक पात्रमें रख मुह बन्दकर एकमास रखना; फिर द्रव्यांश छान लेना। इससे उग्र अतिसार और प्रबल विसूचिका रोग आराम होता है।

मुस्ताद्य वटी—मोथा एक तोला, पीपल, लौंग और कपूर प्रत्येक आधा तोला; यह सब एकत्र पानीमें खलकर ४ रत्ती वजनकी गोली बनाना।

कर्पूर रस—हिङ्गुल, अफीम, मोथा, इन्द्रयव, जायफल और कर्पूर; यह सब द्रव्य समभाग पानीमें खलकर ४रत्ती वजनकी गोली बनाना। कोई कोई इसमें सोहागेका लावा १ तोला मिलाते हैं। यह ज्वरातिसार, अतिसार और ग्रहणी रोग में उपकारी है।

क्रिमिरोग।

पारसीयादि चूर्ण—पलाशबीज, इन्द्रयव, विड़ङ्ग, नीमकी छाल और चिरायताका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आने भर मात्रा गुड़के साथ ५ दिन सेवन करनेसे अथवा पलाशबीज और अजवाईन का चूर्ण एकत्र मिलाकर खानेसे क्रिमि नष्ट होती है।

दाड़िमादि कषाय—अनारकी छालके काढ़ेमें तिलका तेल चार आने भर मिलाकर पीनेसे, पेटके कीड़े निकल जाते हैं।

मुस्तकादि कषाय—मोथा, मुसाकानी, त्रिफला, देवदारू, और सैजनकी बीजके काढ़ेमें पीपलचूर्ण और विड़ङ्ग चूर्ण एक एक मासा मिलाकर पीनेसे, सब प्रकारकी क्रिमि और क्रिमिज रोग दूर होता है।

क्रिमिमुद्गर रस—पारा एक तोला, गन्धक २ तोले, अजमोदा २ तोले, विड़ङ्ग ४ तोले, कुचिला ५ तोले, पलाशबीज, ६ तोले एकत्र खल करना। मात्रा एक मासासे ४ मासेतक

फांककर मोथेका काढ़ा पीना। यह औषध सेवन करनेसे ३ दिनमें क्रिमि और क्रिमिज रोग दूर होता है।

क्रिमिघ्नरस—विड़ङ्ग, किंशुक, पलाशबीज और निमबीज यह सब द्रव्य चुहाकानीके रसमें खलकर ६ गुंजा बराबर गोली बनाना। इससे भी क्रिमि नष्ट होती है।

विड़ङ्ग लौह—पारा, गन्धक, गोलमिरच, जायफल, लौङ्ग, पीपल, हरिताल, शोंठ और वङ्ग, प्रत्येक समभाग, समष्टीके बराबर सोरा, तथा सब द्रव्यके बराबर विड़ङ्ग एकत्र पानीमें खलकर एक रती बराबर गोली बनाना। इससे भी क्रिमि नाश होती है।

क्रिमिघातिनी वटिका—पारा एक तोला, गन्धक २ तोले, अजमोदा ३ तोले, विड़ङ्ग ४ तोले, बभनेठीकी बीज ५ तोले कोज ६ तोले, यह सब द्रव्य सहतमें मिलाकर एक रती बराबर गोली बनाना। यह औषध सेवनके बाद पियास लगनेसे मोथा अथवा चूहाकानीके काढ़ेमें चीनी मिलाकर पीना। इससे बहुत जल्दी क्रिमि नष्ट होती है।

त्रिफलाद्य घृत—घी ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, कल्कार्थ त्रिफला तेवड़ी, दन्तीमूल, बच और कमीला सब मिलाकर एक सेर यथाविधि पाककर आधा तोला मात्रा गरम दूधमें मिलाकर पीनेसे क्रिमि नष्ट होती है।

विड़ङ्ग घृत—हरीतकी २६ पल, बहेड़ा १६ पल, आंवला १६पल, विड़ङ्ग १६ पल, पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल और शोंठ मिलाकर १६ पल, दशमूल १६ पल, पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर, घृत ४ सेर, कल्कार्थ सेन्धानमक २ सेर, चीनी एक सेर यथाविधि पाक करना। यह घी पान करनेसे भी क्रिमि नष्ट होती है।

विड़ङ्गतैल—सर्षपतैल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, कल्कार्थ विड़ङ्ग, गन्धक और मैनसिल सब मिलाकर, एकत्र पाक करना। यह तैल मस्तकमें लगानेसे केशके कोड़े नष्ट होते हैं।

धुस्तर तैल—सरसोका तैल ४ सेर, धतूरेके पत्तेका रस १६ सेर, कल्कार्थ धतूराका पत्ता एक सेर एकत्र औटाना। यह तैल मस्तकमें मर्द्दन करनेसे भी केशके कोड़े नष्ट होते हैं।

पाण्डु और कामला।

फलत्रिकादि कषाय—त्रिफला, गुरिच, अडूसा, कुटकी, चीता और नीमकी छाल के काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे पांडु और कामला रोग प्रशमित होता है।

वासादि कषाय—अडूसा, गुरिच, नीमकी छाल, चिरायता और कुटकीके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे पाण्डु, कामला, हलीमक और कफज रोग आराम होते हैं।

नवायस लौह—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विड़ङ्ग और चीतामूल, प्रत्येक एक एक तोला, लोहा ९ तोले, सबका चूर्ण एकत्र मिलाना। मात्रा २ रत्ती अनुपान सहत और घी।

त्रिकत्रयाद्य लौह। मंडूर एक पल, चीनी एक पल, कान्तलौह, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, हरीतकी, आमला, बहेड़ा, चीतामूल, मोथा और विड़ङ्ग; प्रत्येक एक एक तोला, एकत्र लोहेके खलमें गायका घी एक पल और सहत एक पलके साथ लोहेके दण्डसे मर्द्दनकर लगातार २।३ दिन धूप और ओसमें रखकर खल करना। मिट्टीके बरतनमें भी रख

सकते है। मात्रा एक माशा, भोजनके पहिले ग्रासके साथ सेवन करना। इससे पाण्डु, कामला और हलीमक आदि रोग आराम होते है। भोजनके साथ सेवन करनेसे विशेष कष्ट और भोजनमें अप्रवृत्ति होनेसे दूसरे समय दूधके अनुपानसे देना।

धात्रीलौह—आंवला, लोहचूर्ण, शोंठ, पीपल, गोलमिरच हल्दी, सहत और चीनी, यह सब द्रव्य एकत्रकर सेवन करनेसे कामला और हलीमक रोग आरोग्य होता हैं।

अष्टादशाङ्ग लौह—चिरायता, देवदारु, दारुहल्दी, मोथा, गुरिच, कुटकी, परवलका पत्ता, जवासा, खेतपापड़ा, नीम, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, चीता, आंवला, बहेड़ा, हरीतकी और विड़ङ्ग, प्रत्येकका चूर्ण समभाग, चूर्णकी समष्टीके बराबर लौह चूर्ण, घी और सहत मिलाकर गोली बनाना। यह सेवन करनेसे पाण्डु, हलीमक, शोथ और ग्रहणी रोग आराम होता हैं। अनुपान मठ्ठा।

पुनर्नवा मण्डूर।

शोधित मण्डूर ५ पल, पाकार्थ गोमूत्र पांचसेर, आसन्न पाकमें पुनर्नवा, तेवड़ीमूल, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, विड़ङ्ग, देवदारु, चीतामूल, कूठ, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, दन्तीमूल, चाभ, इन्द्रयव, कुटकी, पीपलामूल और मोथा प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिला खूब चलाकर नीचे उतारना। मात्रा ४ मासे। इससे पाण्डु और शोथ, आदि अनेक रोग आराम होते हैं।

पाण्डु पञ्चानन रस।

लौह, अभ्रक, ताम्बा, प्रत्येक एक एक पल, त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, चाभ, कालाजीरा, चीतामूल, हल्दी, दारुहल्दी, तेवड़ीमूल, मानकन्दमूल, इन्द्रयव, कुटकी, देवदारु, बच और मोथा, प्रत्येक दो दो

तोले, सब समष्टी का दूना मण्डूर, मण्डूरका आठगुना गोमूत्र, पहिले गोमूत्रमें मण्डूर औटाना, पाकसिद्ध होनेपर लोहा, अभ्रक आदि द्रव्य मिलाना। गरम पानीके साथ सबेरे सेवन करना चाहिये। इससे पाण्डु, हलीमक और शोथ आदि रोग शान्त होते है।

हरिद्राद्य घृत—भैसका घी ४ सेर, दूध १६ सेर, पाकार्थ पानी ६४ सेर; कल्कार्थ हलदी, त्रिफला, नीमकी छाल, बरियारा और मुलेठी सब मिलाकर एक सेर। मात्रा आधा तोला। यह घी सेवन करनेसे कामला नष्ट होता है।

व्योषाद्य घृत—त्रिकटु, बेलकी छाल, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, श्वेतपुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, मोथा, लौहचूर्ण, अम्बष्ठा, विड़ंग, देवदारु, बिछोटी और बभनैठी, सब मिलाकर एक सेरका कल्क, घी ४ सेर, दूध १६ सेर, पाकार्थ पानी ६४ सेर। यह घी पीनेसे मृत्तिका भक्षण जनित पाण्डुरोग आराम होता है।

पुनर्नवा तैल—तिलका तैल ४ सेर, क्वाथार्थ श्वेतपुनर्नवा १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; कल्कार्थ त्रिकटु, त्रिफला, काकड़ाशिंगी, धनिया, कटफल, शठी, दारुहलदी, प्रियंगु, देवदारु, रेणुक, कूठ, पुनर्नवामूल, अजवाईन, कालाजीरा, इलायची, दालचीनी, पद्मकाष्ठ, तेजपत्ता और नागेश्वर, प्रत्येक दो दो तोले, यथाविधि पाककर मालिश करनेसे पाण्डु, कामला, हलीमक और जीर्णज्वर आराम होता है।

रक्तपित्त।

धान्यकादि हिम—धनिया, आंवला, अडूसा, किसमिस और खेतपापड़ा, इन सबका शीतकषाय पीनेसे, रक्तपित्त, ज्वर, दाह और शोथ आराम होता है।

ह्रीवेरादि क्वाथ—बाला, निलोत्पल, धनिया, लाल चन्दन, मुलेठी, गुरिच, खसकी जड़ और तेवड़ीके काढ़ेमें चीनी और सहत मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त जल्दी आराम होकर तृष्णा, दाह और ज्वर दूर होता है।

अटरूषकादि क्वाथ—अडूसेके जड़की छाल, किसमिस और हरीतकीका काढ़ा चीनी और सहत मिलाकर पीनेसे श्वास, कास और रक्तपित्त आराम होता हैं।

एलादि गुड़िका—इलायची एक तोला, तेजपत्ता १ तोला, दालचीनी १ तोला, पीपल ४ तोले, चीनी, मुलेठी, पिण्डखजूर द्राक्षा, प्रत्येक एक एक पल, सबके चूर्णमें सहत मिलाकर गुड़िका बनाना, दोषोंके बलाबल विचार कर मात्रा स्थिर करना। इससे कास, ज्वर, हिक्का, वमन मूर्च्छा, रक्तवमन और तृष्णा आदि रोग आराम होते हैं।

कुष्माण्ड खण्ड। सफेद कोंहड़ा कोसा, पानी निचोड़ा तथा धूपमें थोड़ी देर सूखाया हुआ १०० पल, ४ सेर घीमें भूनना लाल होनेपर कोंहड़ेका पानी १५ सेर, चीनी १२॥ सेर मिलाकर औटाना पाकसिद्ध होनेपर नीचे लिखे द्रव्योंके चूर्ण मिला खूब चलाकर ठण्ढा होनेपर दो सेर

सहत मिलाकर घोके बरतनमें रखना। प्रक्षेप द्रव्य—पीपल, शोंठ और जीरा प्रत्येक दो दो पल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, गोलमिरच और धनिया प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले। मात्रा एक तोलासे दो तोले तक। अग्नि और बलका विचार कर मात्रा स्थिर करना। छागादि दूधके साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है। यह हृष्य, पुष्टिकर, बलप्रद और स्वरदोष निवारक है। यह औषध सेवन करनेसे रक्तपित्त और क्षयादि नानाप्रकारके रोग आराम होते हैं।

वासा कुष्माण्ड खण्ड। अड़ूसेके जड़की छाल ६४ पल, पाकार्थ पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, सफेद कोहड़ा किसाहुआ ५० पल, ४ सेर घोमें भूनकर, १०० पल चीनी, अड़ूसेका काढ़ा और किसा हुआ कोहड़ा यह तीन द्रव्य एकत्र औटाना, फिर उपयुक्त समयमें मोथा, आंवला, वंशलोचन, बारङ्गी, दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची इन सबका चूर्ण दो दो तोले, एलवा, शोंठ, धनिया और मिरच प्रत्येक एक एक पल और पीपल ४ पल उसमें मिला खूब चलाकर नीचे उतार लेना। ठण्ढा होनेपर एक सेर सहत मिलाना। इससे कास, श्वास, क्षय, हिक्का रक्तपित्त, हलीमक, हृद्रोग, अम्लपित्त और पीनस रोग आराम होता है।

खण्डकाद्य लौह। शतावर, गुरिच, अड़ूसेके जड़की छाल, मुण्डरी, बरियारा, तालमूली, खदिर काष्ठ, त्रिफला, बारङ्गी और कूठ, प्रत्येक पांच पांच पल, पाकार्थ पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर। इस काढ़ेमें मैनसिलके साथ फूंका हुआ कान्तलौह अथवा स्वर्णमाक्षिक १२ पल, चीनी १६ पल, घी १६ पल, एकत्र पाक करना, गाढ़ा होनेपर शिलाजीत,

दालचीनी, कांकड़ाशिंगी, विड़ङ्ग, पीपल, शोंठ और जायफल प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल और त्रिफला, धनिया, तेजपत्ता, गोलमिरच, नागेश्वर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले उसमें मिलाना। गाढ़ा होनेपर दो सेर मद्दत मिलाना। मात्रा दो आनेसे चार आनेभर तक। दूधके साथ सेवन करनेसे दुर्निवार रक्तवमन, रक्तस्राव, अम्लपित्त, शूल, वातरक्त, प्रमेह, शोथ, पाण्डु, क्षय, कास वमन आदि पीड़ा आराम होती है। यह पुष्टिकारक बलवर्द्धक, कान्ति और प्रीतिजनक तथा चक्षु हितकर है।

रक्तपित्तान्तक लौह—अभ्रभस्म, लौह, माक्षिक, रसताल और गन्धक समभाग, इन सबको मुलेठी, द्राक्षा और गुरिचके काढ़ेमें एक दिन खल करना। एक मासा मात्रा चीनी और मद्दतके साथ सेवन करनेसे रक्तपित्त, ज्वर और दाह आदि नानाप्रकारके रोग दूर होते हैं। (पारा, गन्धक, हरिताल और दारमुज विष एकत्र मर्द्दनकर बालुकायन्त्रमें एक पहर पाक करनेसे एक प्रकार पीला पदार्थ होता है उसको रसतालक कहते हैं)।

वासाघृत—अड़ूसेको छाल, पत्र और मूल मिलाकर ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, कल्कार्थ अड़ूसेका फूल ४ पल, घी ४ सेर; यथाविधि पाक करना। यह घी थोड़ा मद्दत मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त रोग शान्त होता है।

सप्तप्रस्थ घृत—शतावर, वाला, द्राक्षा, भूमिकुष्माण्ड, ऊख और आंवला; प्रत्येक का रस चार चार सेर, घी ४ सेर; यथाविधि औटाना। फिर चौथाई वजन चीनी मिलाकर मात्रा आठ आनेभरसे दो तोलेतक सेवन करनेसे रक्तपित्त, उरःक्षत, क्षय, पित्तशूल आदि रोग दूर होते हैं। यह बल, शुक्र और ओजःवृद्धि कारक भी है।

तिलका तैल ४ सेर, लाहका काढ़ा १६ सेर, दूध ४ सेर, कल्कार्थ वाला, खसकी जड़, लोध, पद्मकेशर, तेजपत्ता, नागेश्वर, बेलकी गिरी,

शीरेराद्य तैल।

नागरमोथा, शठी, लालचन्दन, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, त्रिफला, शोंठ, बहेड़ाकी छाल, आमकी गुठली और लालकमलकी जड़, प्रत्येक दो दो तोले यथाविधि पाककर यह तैल मालिश करनेसे त्रिविध रक्तपित्त, कास, श्वास और उरःक्षत रोग आराम होता है तथा बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

राजयक्ष्मा।

लौंग, शीतलचीनी, खसकी जड़, लालचन्दन, नगरपादुका, नीलोत्पल, जीरा, छोटी इलायची, पीपल, अगरू, दालचीनी, नागेश्वर, शोंठ, जटा-

लवङ्गादि चूर्ण।

मांसी, मोथा, अनन्तमूल, जायफल और वंशलोचन, प्रत्येकका चूर्ण एक एक भाग, चीनी ८ भाग एकत्र मिलाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे यक्ष्मा, श्वास, कास और ग्रहणी आदि रोग शान्त होता है। यह रोचक, अग्निदीपक, तृप्तिकर, बलप्रद, शुक्रजनक और त्रिदोषनाशक है।

सितोपलादिलेह—दालचीनी एक भाग, इलायची दो भाग, पीपल ४ भाग, वंशलोचन ८ भाग, चीनी १६ भाग, एकत्र घी और सहतके साथ चाटनेसे अथवा बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे यक्ष्मा, श्वास, कास, कर्णशूल और क्षयादि रोग प्रशमित होता है। यह हाथ पैर और ऊर्द्धग रक्तपित्तमें प्रशस्त है।

अडूसेकी जड़की छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, चीनी १२ सेर; त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, कटफल, मोथा, कूठ, कमीला, श्वेत जीरा, काला जीरा, तेवड़ी, पीपलामूल, चाभ, कुटकी, हरीतकी, तालीशपत्र और धनिया; प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले यथाविधि पाक करना। ठण्ढा होनेपर एक सेर सहत मिलाना। मात्रा एक तोला, अनुपान गरम पानी; इससे राजयक्ष्मा, स्वरभङ्ग, कास और अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट होते है।

बृहद्वासावलेह।

बेलकी छाल, गणियारी की छाल, श्योनाक छाल, गाम्भारी छाल, पाटला छाल, बरियारेकी छाल, सरिवन, पिठवन, मुगानि, माषाणी, पीपल, गोक्षुर, बृहती, कण्टकारी, काकड़ाशिंगी, बिदारीकन्द, द्राक्षा, जीवन्ती, कूठ, अगरू, हरीतकी, गुरिच, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, शठी, मोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलायची, नीलोत्पल, लालचन्दन, भूमिकुष्माण्ड, अडूसेकी छाल, काकोली और काकजङ्घा, प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल; ५०० या सात सेर १३छटांक आंवलेकी पोटली, यह सब एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानी रहते उतारकर काढ़ा छान लेना और आंवला पोटलीसे निकाल बीज अलगकर ६ पल घी और ६ पल तेलमें अलग अलग भूनकर सिल पर पीस लेना। फिर मिश्री ५० पल, उपर कहा काढ़ा और पिसा हुआ आंवला एकत्र पाक करना। गाढ़ा होनेपर वंशलोचन ४ पल, पीपल २ पल, दालचीनी २ तोले, तेजपत्ता २ तोले, इलायची २ तोले, नागेश्वर २ तोले, इन सबका चूर्ण मिलाकर उतार लेना। ठण्ढा होनेपर उसमें सहत ६ पल मिला-

च्यवनप्राश।

कर घीके पात्रमें रखना। इसकी मात्रा आधा तोलासे २ तोले तक। अनुपान बकरीका दूध। इससे स्वरभङ्ग, यक्ष्मा और शुक्र गत दोष आदि शान्त होता हैं तथा अग्निवृद्धि, इन्द्रिय सामर्थ, वायुकी अनुलोमता, आयुकी वृद्धि और बूढ़ाभी जवानकी तरह बलवान होता है। यह दुर्व्वल और चीण व्यक्तिके हकमें अति उत्कृष्ट औषध है।

द्राक्षारिष्ट—द्राक्षा ६। सवा छ सेर, पानी १२८ सेर, शेष ३२ सेर। इस काढ़ेमें २५ सेर गुड़ मिलाना, तथा दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, प्रियङ्गु, मिरच, पीपल और कालानमक प्रत्येक एक एक पल इसमें मिलाकर चलाना तथा घीके बरतनमें रख मुह बन्दकर एक महीना रख छोड़ना। फिर छानकर काममें लाना। इससे उरःक्षत, क्षयरोग, कास, श्वास, और गलरोग निराकृत हो बलकी वृद्धि तथा मल साफ होता है।

वृहत् चन्द्रामृत रस—पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, अभ्रक ४ तोले, कपूर आधा तोला, स्वर्ण १ तोला, ताम्बा १ तोला, लोहा २ तोले, विधारे की बीज, जीरा, बिदारीकन्द, शतमूली, तालमखाना, बरियारेकी जड़, लौंग, भांगकी बीज और सफेद राल प्रत्येक आधा तोला; यह सब द्रव्य सहतमें खलकर ४ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान पीपलका चूर्ण और सहत।

क्षयकेशरी—त्रिकटु, त्रिफला, इलायची, जायफल और लौंग, प्रत्येक एक एक तोला बकरीके दूधमें पीसकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान सहत, इससे क्षयरोग दूर होता है।

मृगाङ्क रस—पारा १ तोला, स्वर्णभस्म ३ तोले, सोहागा २ मासे; यह सब कांजीमें पीसकर गोला बनाकर सुखा लेना

फिर मुषिमें रख लवण यन्त्रमें पाक करना। मात्रा ४ रत्ती। १० दाना गोलमिरच या १० पीपलका चूर्ण और सहतमें मिलाकर चाटना।

महामृगाङ्क रस। स्वर्णभस्म एक भाग, पाराभस्म २ भाग, मुक्ताभस्म ३ भाग, गन्धक ४ भाग, स्वर्णमाक्षिक ४ भाग, प्रवाल ७ भाग, सोहागेका लावा ४ भाग; यह सब द्रव्य शर्व्वती नीबूके रसमें ३ दिन खलकर गोला बनाना और वह गोला तेज धूपमें सुखाकर मूषामें रख ४ पहर लवण यन्त्रमें पाक करना। ठण्ढा होनेपर बाहर निकाल लेना। इसके साथ हीरा (अभावमें वैक्रान्त) एक भाग मिलाना। मात्रा २ रत्ती, अनुपान गोलमिरच और घी किम्वा पीपलके चूर्णके साथ मिरच और घी। इससे यक्ष्मा, ज्वर, गुल्म, अग्निमान्द्य, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, स्वरभेद और कास आदि नानाप्रकारके रोग शान्त होते हैं।

राजमृगाङ्क रस। पारा ३ तोले, स्वर्ण १ तोला, ताम्बा १ तोला, मैनसिल २ तोले, हरताल २ तोले और गन्धक २ तोले। यह सब द्रव्य एकत्र खलकर बड़ी कौड़ीमें भरकर उसका मुह बकरीके दूधमें सोहागा पीसकर उससे बन्द करना। फिर एक हांड़ीमें रख उसका मुह बन्दकर मिट्टीका लेपकर जगपुटमें फूंकना ठण्ढा होनेपर चूर्ण करना; मात्रा दो रत्ती। अनुपान घी सहत और १० पीपल या १८ गोलमिरचके साथ। इससे सब प्रकारका क्षयरोग नाश होता है।

काञ्चनाभ्र—सोना, रससिन्दूर, मोती, लोहा, अभ्रक, प्रवाल, रौप्य, हरीतकी, कस्तूरी और मैनसिल, प्रत्येक समभाग; पानीमें

खलकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। दोषानुसार अनुपानके साथ देनेसे क्षय, प्रमेह, कास आदि पीड़ा शान्त होकर बलवीर्य्य बढ़ता है।

बृहत् काञ्चनाभ्र रस।

सोना, रससिन्दूर, मोती, लोहा, अभ्रक, मूंगा, वैक्रान्त, ताम्बा, रौप्य, वङ्ग, कस्तूरी, लौंग, जावित्री और एलवा यह सब द्रव्य एकत्र घीकुआरके रसमें केशुरियाके रसमें और बकरीके दूधमें ३ दफे भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। दोषानुसार अनुपानके साथ देनेसे क्षय, श्वास, कास, प्रमेह और यक्ष्मा आदि रोग शान्त होता है।

रस पर्पटिका।

शोधित पारा २ तोले, जयन्ती और अदरखके रसमें खलकर गोला बनाना, फिर जलकर्णी और काकमाचीके रसको अलग अलग भावना दे, तथा भंगरैयाके रसको भावना दिये हुए गन्धकका चूर्ण एक पल, उक्त पारेमें मिलाकर कज्जली बनाना; फिर छागदूध २ पलमें खलकर उरद बराबर गोली बनाना। अनुपान छागदूध किम्बा अडूसेके पत्तेका रस और मधु। इससे क्षयकास, रक्तपित्त, अरुचि और अम्लपित्त रोग नष्ट होता है।

बृहत् रसेन्द्रगुटिका।

४ तोले पारा, घिकुआरका रस, त्रिफलाचूर्ण, चीताका रस, राईको चूर्ण, झूल, हलदीका चूर्ण, ईंटका चूर्ण, अलम्बुषाके पत्तेका रस और अदरखके रसमें अलग अलग खलकर गाढ़े कपड़ेमें छान लेना। फिर जयन्ती, जलकर्णी और काकमाचीके रसको अलग अलग भावना देकर धूपमें सुखा लेना। तथा भंगरैयाके रसमें शोधा हुआ गन्धक एक पल, गोलमिरच, सोहागा, स्वर्णमाक्षिक, तुतिया,

हरिताल और अभ्रक प्रत्येक चार चार तोले, यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर अदरखके रसमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान आदीका रस। औषध सेवनके बाद दूध और मांसका जूस पिलाना चाहिये। इससे क्षयकास, श्वास, रक्तपित्त, अरोचक, क्रिमि और पाण्डु आदि रोग नष्ट हो बलबीर्य्य बढ़ता है।

हेमगर्भपोट्टली रस—रससिन्दूर ३ भाग, सोनेका भस्म १ भाग, शोधित ताम्र एक भाग, गन्धक एक तोला, यह सब द्रव्य चीताके रसमें खलकर दोपहरके बाद कौड़ीमें भरकर सोहागेसे मुंह बन्दकर हांड़ीमें रख गजपुटमें फूंकना। ठण्ढा होनेपर चूर्ण-२ रत्ती वजन सेवन करना। इससे राजयक्ष्मा आराम होता है।

रत्नगर्भ पोट्टली रस

रससिन्दूर, हीरा, सोना, चांदी, सीसा, लोहा, ताम्बा, मोती, स्वर्णमाक्षिक, मूंगा और शङ्खभस्म, सम-भाग आदीके रसमें ७दिन खलकर कौड़ीमें भर उसका मुंह अकवनके दूधमें पिसा हुआ सोहागेसे बन्दकर हांड़ीमें रख उसका मुंह बन्दकर गजपुटमें फूंकना। ठण्ढा होनेपर निर्गुण्डीके रसमें सातबार, आदीके रसमें सातबार और चीताके रसको सातबार भावना देकर सुखा लेना। इसको मात्रा २ रत्ती अनुपान सहत और पीपलका चूर्ण अथवा घी और गोलमिरचका चूर्ण। इससे कृच्छ्रसाध्य यक्ष्मा, आठ प्रकारका महारोग और ज्वरादि नानाप्रकार पीड़ा शान्त होती है। (वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, प्रमेह, उदररोग, भगन्दर, अर्श और ग्रहणी यह आठ रोगका महारोग कहते हैं।)

सर्व्वाङ्गसुन्दर रस।

पारा १ भाग, गन्धक एक भाग, सोहागेका लावा दो भाग (सोहागेका चूर्ण कपड़ेसे छाक लेना) मोती, मूंगा और शङ्ख प्रत्येक एक भाग

और स्वर्णभस्म आधा भाग इन सब द्रव्यको कागजी नीबूके रसकी भावना देकर गोला बनाना तथा मूषेमें बन्दकर गजपुटमें तेज आंगसे फूंकना। ठण्ढा होनेपर लोहा आधा भाग और लोहेका आधाभाग हिंगुल उसमें मिलाना। मात्रा २रत्ती। अनुपान पीपल-का चूर्ण, सहत घी, पानका रस, चीनी अथवा आदीका रस। इससे राजयक्ष्मा, वातिक और पैत्तिकज्वर, सन्निपात, अर्श, ग्रहणी, गुल्म, भगन्दर और कास आदि नानाप्रकारके रोग दूर होते है।

अजापञ्चक घृत—बकरीका घी ४ सेर, बकरीके बीटका रस ४ सेर, छागमूत्र ४ सेर, छाग दूध ४ सेर और छागदधि ४ सेर, एकत्र पाककर एक सेर जवाखारका चूर्ण मिलाकर उतार लेना। मात्रा एक तोला। यह घी पीनेसे यक्ष्मा, कास और श्वासरोग आराम होता है।

बलागर्भ घृत—घी ४ सेर, दशमूलका काढ़ा ८ सेर, बकरीके मांसका काढ़ा ४ सेर, दूध ४ सेर। कूटे हुए बरियारेका कल्क एक सेर यथानियम पाक करना। यह घी पीनेसे यक्ष्मा, शूल, चतक्षय और उत्कट कासरोग आराम होता है।

जीवन्त्याद्य घृत—घी ४ सेर, पानी १६ सेर, कल्कार्थ-जीवन्ती मुलेठी, द्राक्षा, इन्द्रयव, शठी, कण्टकारी, गोक्षुर, बरियारा, नीलोत्पल, भूंईआंमला, जवासा और पीपल सब मिलाकर २सेर। यह घी पीनेसे ११ प्रकारका उग्रयक्ष्मारोग आराम होता है।

महाचन्दनादि तैल। तिलका तेल १६ सेर, कल्कार्थ लालचन्दन, खरिवन, पिठवन, कण्टकारी, हहती, गोक्षुर, मूगानी, माषाणी, बिदारीकन्द, असगन्ध, आंमला, शिरीषछाल, पद्मकाष्ठ, खस, सरलकाष्ठ, नागेश्वर, गन्धाली, मूर्व्वामूल, प्रियङ्गु, नीलोत्पल, बाला, बरियारा, गुलसकरी,

पद्ममूल, पद्मडण्डा और शालूक मिलाकर ४० पल, श्वेत बरियारा ५० पल, पाकार्थ पानी ६४ सेर, शेष १६सेर, बकरीका दूध, शतावरका रस, लाहका काढ़ा, कांजी और दहीका पानी प्रत्येक १६ सेर। हरिण, छाग और शशक प्रत्येकका मांस आठ आठ सेर, पानी ६४सेर, शेष १६ सेर, (इन सबका काढ़ा अलग अलग रखना) कल्कार्थ श्वेतचन्दन, अगरु, शीतलचीनी, नखी, कड़ोला, नागेश्वर, तेजपत्ता, दालचीनी, मृणाल हलदी, दारुहलदी, श्यामालता, अनन्तमूल, रक्तोत्पल, तगरचण्डी, कूठ, त्रिफला, फरुषाफल, मूर्व्वामूल, नालुक, देवदारु, सरलकाष्ठ, पद्मकाष्ठ, खस, धाईफूल, बेलकीगिरी, रसाञ्जन, मोथा, शिलारस, बच, मजीठ, लोध, सौंफ, जीवन्ती, प्रियङ्गु, शठी इलायची, कुङ्कम, खटासी, पद्मकेशर, रास्ना, जाविची, शोंठ और धनिया, प्रत्येक ४ तोले। पाकशेष होनेपर इलायची, लौंग, शिलारस, श्वेतचन्दन, जातीपुष्प, खटासी शीतलचीनी, अगरु, लताकस्तूरी, कुङ्कम, कस्तूरी, यह सब गन्ध-द्रव्य मिला पाक करना। पाकके अन्तमें छानकर केशर, कस्तूरी और कपूर थोड़ा मिला रखना, यह तैल मालिश करनेसे राजयक्ष्मा, रक्तपित्त और धातुदौर्व्वल्यादि रोग आराम होते हैं।

कासरोग।

कटफलादि काढ़ा—कायफल, गन्धतृण, बारङ्गी, मोथा, धनिया, बच, हरीतकी, कांकड़ाशिङ्गी, खेतपापड़ा, शोंठ और देवदारु, इन सबके काढ़ेमें सहत और हींग मिलाकर पीनेसे वातश्लैष्मिक कास और कण्ठरोग नष्ट होता है।

मरिचादि चूर्ण—गोलमिरच का चूर्ण २ तोले, पीपलका

चूर्ण १ तोला, अनारके बीजका चूर्ण ८ तोले, पुराना गुड़ १६ तोले और जवाखार १ तोला; यह सब द्रव्य एकत्र मर्द्दनकर यथायोग्य मात्रा देनेसे अति दुःसाध्य कास और जिस कासमें पीव आदि निकलता है वहभी आराम होता है।

समशर्कर चूर्ण—लौंग २ तोले, जायफल २ तोले, पीपल २ तोले, गोलमिरच ४ तोले, शोंठ ४ पल इन सबका चूर्ण तथा सबके बराबर चीनी, यह सब द्रव्य एकत्र खल करना। इससे कास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, अग्निमान्द्य और ग्रहणी आदि नानाप्रकारके रोग नष्ट होते है।

वासावलेह।

अडूसेकी छाल २ सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, चीनी १ सेर, और घी एक पाव मिलाकर औटाना, गाढ़ा होनेपर पीपलका चूर्ण एक पाव मिलाकर नीचे उतारना। ठण्ढा होनेपर एक सेर सहत मिलाना। यह अवलेह राजयक्ष्मा, कास, श्वास, पार्श्वशूल, हृच्छूल, ज्वर और रक्तपित्त आदि रोग नाशक है।

तालीशादि मोदक।

तालीश पत्र १ तोला, गोलमिरच २ तोले, शोंठ ३ तोले, पीपल ४ तोले, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येक आधा तोला; चीनी आधा सेर एकत्र चूर्णकर सेवन करनेसे कास श्वास और अरुचि आराम हो भूख बढ़ती हैं। इसमें चीनीके समान पानी मिलाकर यथा-नियम मोदक बनाना, यह चूर्ण की अपेक्षा हलका है। यह मोदक सेवन करनेसे कास, श्वास, अरुचि, पाण्डु, ग्रहणी, प्लीहा, शोथ, अतिसार, जीमतलाना और शूल आदि नानाप्रकारके रोग नष्ट होते है। (कोई कोई इसके साथ वंशलोचन भी मिलाते है; पैत्तिक कासमें वंशलोचन मिलाना भी उचित है।)

त्रिकटु, त्रिफला चाभ, धनिया, जीरा, सेंधानमक ; प्रत्येक एक एक तोला, पारा, गन्धक, लोहा प्रत्येक दो दो तोले, सोहागेका लावा ८ तोले, गोलमिरच ४ तोले ; यह सब बकरीके दूधमें पीसकर ८ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान रक्तोत्पल, नीलोत्पल, कुरथी और अदरख इनमेंसे किसी एकका रस अथवा पीपलका चूर्ण और सहत। इससे नानाविध कास, रक्तवमन, श्वास सहित ज्वर, दाह, भ्रम, गुल्म और जीर्णज्वर आदि नानाप्रकारके रोग नष्ट होते है। यह अग्निवर्द्धक, बलकारक और वर्णकारक है। औषध सेवनकर अडूसा, गुरिच, बारङ्गी, मोथा और कण्टकारी सब मिलाकर २ तोले आधा सेर पानीमें औटाना आधा पाव पानी रहते छानकर सहत मिलाकर पीनेसे विशेष उपकार होता है।

चन्द्रामृत रस।

कासकुठार रस—हिंगुल, गोलमिरच, गन्धक, त्रिकटु और सोहागा ; यह सब द्रव्य एकत्र पानीमें खलकर २ रत्तीकी गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। इससे सन्निपात और सब प्रकारका कासरोग नष्ट होता है।

अभ्रक १६ तोले, कपूर, जाविश्री, बाला, गजपीपल तेज-पत्ता, लौंग, जटामासी, तालीशपत्र, दाल-चीनी, नागेश्वर, कूठ और धवईफूल ; प्रत्येक आधा तोला, हरीतकी, आंवला, बहेड़ा और त्रिकटु, प्रत्येक चार आनेभर, इलायची और जायफल प्रत्येक एक तोला, गंधक एक तोला, पारा आधा तोला ; यह सब द्रव्य पानीमें खलकर भिंगे चने बराबर गोली बनाना। अनुपान अदरख और पानका रस। औषध सेवनके बाद थोड़ा पानी पीना चाहिये। इससे कासादि विविध रोगोंकी शान्ति और बलवीर्य्यकी वृद्धि होतीहै।

शृङ्गाराभ्र।

पारा, गन्धक, सोहागा, नागकेशर, कपूर, जायफल, लौंग, तेजपत्ता, धतूरेकी बीज (कोई२ स्वर्णभस्म भी मिलाते है) प्रत्येक दो दो तोले, अभ्रभस्म ८ तोले, तालीशपत्र, मोथा, कूठ, जटामासी, दालचीनी, धाईफूल, इलायची, त्रिकटु, त्रिफला और गजपीपल, प्रत्येक चार चार तोले, एकत्र पीपलके काढ़में खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह दालचीनीका चूर्ण और सहतके साथ सेवन करनेसे अग्निमान्द्य, अरुचि, पाण्डु, कामला, उदर, शोथ, ज्वर, ग्रहणी, कास, श्वास और यक्ष्मा आदि नानाप्रकारके रोग दूर हो बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

बृहत् शृङ्गाराभ्र।

सार्व्वभौम रस—शृङ्गाराभ्रमें स्वर्ण या लोहा २ मासे मिलानेसे उसको सार्व्वभौम रस कहते हैं।

वङ्ग, लोहा, अभ्रक, ताम्बा, कांसा, पारा, हरिताल, मैनशिल और खपरिया प्रत्येक एक एक पल, एकत्र केशुरियाका रस और कुलथीके काढेकी १ दिन भावना देना। फिर इसके साथ इलायची, जायफल, तेलपत्ता, लौंग, अजवाईन, जीरा, त्रिकटु, तगरपादुका, दालचीनी और बंशलोचन प्रत्येक दो दो तोले मिलाकर फिर केशुरियाका रस और कुलथीके काढ़ेमें खलकर चने बराबर गोली बनाना। अनुपान ठण्ढा पानी। यह राजयक्ष्मा, रक्तकास, श्वास, हलीमक, पाण्डु, शोथ, शूल, अर्श और प्रमेह आदि रोग नाशक तथा अग्निकारक और बलवर्द्धक है।

कासलक्ष्मीविलास।

लौंग, कायफल, कूठ, अजवाईन, त्रिकटु, चीतामूल, पीपलामूल, अडूसेके जड़की छाल, कण्टकारी, धानका लावा, काकड़ाशिङ्गी, दालचीनी,

समशर्कर लौह।

तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, हरीतकी, शठी, शीतलचीनी, मोथा, लोहा, अभ्रक और जवाखार प्रत्येकका एक एक भाग चूर्ण और समष्टीके बराबर चीनी एकत्र मिलाकर घृत भाण्डमें रखना। यह सब प्रकारका कास, रक्तपित्त, क्षयकास और श्वासरोग नाशक तथा बल, वर्ण और अग्निवृद्धिकारक है। मात्रा ४ मासे।

वसन्ततिलक रस। स्वर्णभस्म १ तोला, अभ्रक २ तोले, लोहा ३ तोले, पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले, वङ्ग २ तोले, मोती ४ तोले; यह सब द्रव्य अडूसा, गोखुर और ईखके रसमें खलकर बड़मूषेमें रख जङ्गली कंडेकी आंचसे गजपुटमें ८ पहर फूंकना। फिर बाहर निकालकर कस्तूरी ४ तोले, कपूर ४ तोले मिलाकर खल करना। यह कास और क्षयकी महौषध है। मात्रा २ रत्ती।

वृहत् कण्टकारी घृत। कण्टकारीकी जड़, पत्ता और शाखाका काढ़ा १६ सेर, घी ४ सेर, कल्कद्रव्य बरियारा, त्रिकटु, विडङ्ग, शठी, चीता, सौवर्चल नमक, जवाखार, बेलकी छाल, आंवला, कूठ, श्वेतपुनर्नवा, वृहती, बड़ीहर्रे, अजवाईन, अनार, ऋद्धि, द्राक्षा, रक्तपुनर्नवा, चाभ, जवासा, अम्लवेतस, काकड़ाशिङ्गी, भूईआंमला, वारङ्गी, रास्ना और गोखुर, यह सब द्रव्य मिलाकर एक सेर, अच्छी तरह कूटकर इसके साथ घी पाक करना। इस घीसे सब प्रकारका कास, कफरोग, हिक्का, श्वास आदि रोग नष्ट होते है।

दशमूलाद्य घृत—घी ४ सेर, दशमूलका काढ़ा १६ सेर। कल्कार्थ—कूठ, शठी, बेलकी जड़, तुलसी, शोंठ, पीपल, मिरच और हींग प्रत्येक दो दो तोले। यथाविधि घृत पाककर सेवन करनेसे वातश्लेष्मोल्वण, कास और सब प्रकारका श्वास दूर होताहै।

तिलोंका तेल ८ सेर। कल्कार्थ—श्वेतचन्दन, अगरू, तालीश पत्र, नखी, मजीठ, पद्मकाष्ठ, मोथा, शठी, लाह, हलदी और लालचन्दन, प्रत्येक एक पल। क्वाथार्थ बारङ्गी, अडूसेकी छाल, कण्टकारी, बरियारा, गुरिच सब मिलाकर १२॥ सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर; इसी काढ़ेके साथ कल्क औटाना, कल्क पाक करनेमें दूसरा पानी देनेकी कोई जरूरत नहीं है। तैल औट जानेपर गंधद्रव्य मिलाकर फिर औटाना। गंधद्रव्यमें शिलारस, कुङ्कुम, मधु, नखी, श्वेतचन्दन, कपूर, इलायची और लौंग, यह सब द्रव्य तेल नीचे उतारकर मिलाना। यह तैल मालिश करनेसे यक्ष्मा और कास रोग आराम हो बल वर्णकी वृद्धि होती हैं।

चन्दनाद्य तैल।

तिलोंका तैल ४ सेर, लाह २ सेर, पानी १६ सेर, शेष ४ सेर; दही १६ सेर। कल्कार्थ—लालचन्दन, बाला, नखी, कूठ, मुलेठी, सैजन, पद्मकाष्ठ, मजीठ, सरलकाष्ठ, देवदारू, शठी, इलायची, खटाशी, नागेश्वर, तेजपत्ता, शिलारस, मुरामासी काकड़ाशिंगी, प्रियङ्गु, मोथा, हलदी, दारूहलदी, श्यामालता, अनन्तमूल, लताकस्तूरी, लौंग, अगरू, कुङ्कुम, दालचीनी, रेणुक और नालुका, प्रत्येक दो दो तोले अच्छी तरह कूटकर १६ सेर पानीमें औटाना। फिर गंधद्रव्य मिलाकर पाकशेष करना। ठण्ढा होनेपर कस्तूरी आदि गन्धद्रव्य देना चाहिये। इसे मालिश करनेसे रक्तपित्त, क्षय, श्वास और कास आराम होता है।

बृहत् चन्दनाद्य तैल।

हिक्का और श्वास।

बारंगीकी जड़ १२॥ सेर, दशमूल प्रत्येक सवा सेर, बड़ीहर्रे १०० वस्त्रकी ढीली पोटली बांध ११६ सेर पानीमें औटाना २८ सेर पानी रहते नीचे उतार छान लेना। फिर इसी पानीमें उक्त हर्रे और १२॥ सेर गुड़ मिलाकर औटाना, गाढ़ा होनेपर, त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, प्रत्येकका चूर्ण आठ आठ तोले और जवा-खार ४ तोले मिलाकर नीचे उतार लेना। ठण्ढा होनेपर तीन पाव सहत इसमें मिलाना। मात्रा एक तोलासे ४ तोलेतक और हर्रे एक एक खाना। इससे प्रबल श्वास और पञ्चकासादि रोग दूर होते है।

भार्गीगुड़।

बारंगीकी जड़ सवा छ ६। सेर, अड़ूसेकी छाल ६। सेर, कण्ट-कारी ६। सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर। ४ चमगीदड़का मांस, पानी १६ सेर शेष ४ सेर। दोनो काढ़ा एकत्र मिलाकर उसमें चीनी २ सेर मिला कर औटाना। गाढ़ा होनेपर नीचे उतार उसमें त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, तालीशपत्र, नागेश्वर, बारंगीकी जड़, बच, गोखुर, दाल-चीनी, इलायची, तेजपत्ता, जीरा, अजवाईन, अजमोदा, वंश-लोचन, कुलथी, कायफल, कूठ और काकड़ाशिंगी प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिलाना। रोग बिचारकर उपयुक्त अनुपानके साथ आधा तोलासे एक तोलातक मात्रा सेवन करना। इससे प्रबल श्वास, पञ्चप्रकार कास, हिक्का, यक्ष्मा और जीर्णज्वर आराम हो शरीर पुष्ट होता है।

भार्गी शर्करा।

कण्टकारी, हस्ती, अडूसेके जड़की छाल और गुरिच प्रत्येक छ छ चटांक, सतावर एक सेर चौदह छटांक, बारंगी सवा सेर, गोक्षुर, पिपला-

अगस्तिगुड़ घृत।

मूल प्रत्येक आठ तोले, पाटला छाल २४ तोले ; यह सब द्रव्य कूटकर ३२ सेर पानीमें औटाना आठ सेर पानी रहते नीचे उतार छानकर उसमें पुराना गुड़ सवा सेर, घी १० छटांक और दूध सवा सेर मिलाकर औटाना। गाढ़ा होनेपर कांकड़ासिंगी २ तोले, जायफल ३ तोले, तेजपत्ता ३ तोले, लौंग ४ तोले, वंशलोचन ४ तोले, सोंठ ७ तोले, पीपल ७ तोले, तालीशपत्र ३ तोले, जावित्री १तोला, यह सब द्रव्यका चूर्ण डालकर नीचे उतार लेना, तथा ठण्ढा होनेपर आठ तोले सहत मिलाना। आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे प्रबल श्वास, उपद्रवयुक्त पांच प्रकारके कास, क्षय और रक्तपित्त आदि रोग आराम होते हैं।

पिप्पल्याद्य लौह—पीपल, आंवला, मुनक्का, बैरकी गुठलीकी गिरी, मुलेठी, चीनी, विड़ंग और कूठ, प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, लोहा ८ तोले पानीमें खलकर ५ रत्ती बराबर गोली बनाना। दोष विचारकर अलग अलग अनुपानोंके साथ देनेसे, हिक्का, वमन और महाकास आराम होता है। यह हुचकी की महौषध है।

लोहा ४ तोले, अभ्रक १ तोला, चीनी ४ तोले, सहत ४ तोले और त्रिफला, मुलेठी, मुनक्का, पीपल, बैरके गुठलीकी गिरी, वंशलोचन,

महाश्वासारिलौह।

तालीशपत्र, विड़ंग, इलायची, कूठ और नागेश्वर, प्रत्येकका मिहीन चूर्ण एक एक तोला ; यह सब द्रव्य लोहेके खरलमें २ पहर खल करना। मात्रा चार रत्तीसे २ मासेतक। सहतके

साथ सेवन करनेसे महाश्वास पांचप्रकार कास और रक्तपित्तादि रोग निश्चय आराम होते हैं।

श्वासकुठार रस—पारा, गन्धक, मीठाविष, त्रिकटु, मिरच, चाभ और चीतामूल, इन सबका समभाग चूर्ण आदीके रसमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। आदीके रसमें देनेसे वातरक्तजनित श्वास, कास और स्वरभेद आराम होता है।

श्वासभैरवरस—पारा, गन्धक, विष, त्रिकटु, मिरच, चाभ और चीतामूल, इन सबका समभाग चूर्ण अदरखके रसमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान पानी। इससे श्वास, कास और स्वरभेद आराम होता है।

श्वासचिन्तामणि। लोहभस्म ४ तोले, गंधक २ तोले, अदरख २ तोले, पारा १ तोला, स्वर्णमाक्षिक १ तोला, मोती आधा तोला, सोना आधा तोला; यह सब द्रव्यको कण्टकारीका रस, बकरीका दूध और मुलेठीके काढ़ेकी भावना दे ४ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान सहत और बहेड़ेका चूर्ण। यह श्वास, कास और यक्ष्मारोगमें विशेष उपकारी है।

कनकासव। धतूरेका फल, पत्ता, जड़ और शाखा कूटा हुआ ३२ तोले, अडूसेके जड़की छाल ३२ तोले, मुलेठी, पीपल, कण्टकारी, नागेश्वर, शोंठ, बारंगी तालीशपत्र प्रत्येकका चूर्ण १६ तोले। धवईका फूल १ सेर, मुनक्का २॥ सेर, पानी १२८ सेर, चीनी २॥ सेर, सहत ६। सेर, यह सब द्रव्य एक पात्रमें रख मुंह बन्दकर एकमास बाद द्रव्यांश छान लेना; इससे सब प्रकारका श्वास, कास और रक्तपित्त आदि नाना प्रकारके रोग दूर होते हैं।

घी ४ सेर, दूध ८ सेर, पानी १६ सेर, कल्कार्थ चाभ, हरीतकी, पीपल, कुटकी, गंधतृण, पलाश, चीतामूल, शटी, सौवर्च्चल नमक, भूई-आमला, सेंधानमक, बेलकी गिरी, तालीशपत्र, जीवन्ती और बच, प्रत्येक २ तोले, हींग आधा तोला ; यथानियम औटाकर पीनेसे हिक्का, श्वास, शोथ, वातज अर्श:, ग्रहणी और हृदय पार्श्वशूल दूर होता है।

हिंस्राद्य घृत ।

स्वरभङ्ग ।

मृगनाभ्यादि अवलेह—कस्तूरी, छोटी इलायची, लौंग और वंशलोचन ; इन सबका चूर्ण घी और मधुमें मिलाकर चाटनेसे वाकस्तम्भ और स्वरभंग शान्त होता है।

चव्यादि चूर्ण—चाभ, अम्लवेतस, त्रिकटु, इमली, तालीश पत्र, जीरा, वंशलोचन, चीतामूल, दालचीनी और इलायची, यह सब द्रव्य समभाग पुराने गुड़में मिलाकर खानेसे, स्वरभंग, पीनस और कफज अरुचि आराम होता है।

कण्टकारी १२॥ सेर, पीपलामूल ६ सेर, चीता ३सेर २छटांक यह सब द्रव्य एकत्र १२८ सेर पानीमें औटाना ३२ सेर पानी रहते उतार कर छान लेना, तथा उसमें पुराना गुड़ ८सेर मिलाकर फिर औटाना, गाढ़ा होनेपर पीपलका चूर्ण ४ सेर, त्रिजातक (दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची) एक सेर, गोलमिरचका चूर्ण ८ तोले मिलाकर नीचे उतारना। ठण्ढा होनेपर आधा सेर मधु मिलाना।

निदिग्धिकावलेह ।

अग्निका बल विचारकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे स्वरभेद, प्रतिश्याय, कास और अग्निमान्द्य आदि रोग दूर होते हैं।

ताम्रकाश। अभ्रभस्म ८ तोलेको कण्टकारी, बरियारा, गोखुर, घृतकुमारी पीपलामूल, भंगरैया, अड़ूसा, बैरकापत्ता, आंमला, हल्दी और गुरिच प्रत्येकके आठ आठ तोले रसको अलग अलग भावना देकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे सब प्रकारका स्वरभंग, श्वास, कास, हुचकी आदि नानाप्रकारके रोग दूर होते हैं।

सारस्वत घृत। ब्राह्मीशाककी जड़ और पत्तेका रस १६ सेर, घी ४सेर। हल्दी, मालतीका फूल, कूठ, तिवड़ीकी जड़ और बड़ीहर्रे प्रत्येक का कल्क आठ आठ तोले; पीपल, विड़ंग, सैंधव, चीनी और बच प्रत्येक दो दो तोले इनको आंचपर औटाना। इसके पीनेसे स्वरविकृति, कुष्ठ, अर्श, गुल्म और प्रमेह आदि नानाप्रकारके रोग दूर हो स्मृतिशक्ति बढ़ती है। इसको ब्राह्मीघृत भी कहते हैं।

भृंगराजाद्य घृत—घी ४ सेर, भंगरैया, गुरिच, अड़ूसेकी जड़, दशमूल और कसौंदी (कासमर्द) इन सब द्रवोंका काढ़ा १६ सेर, पीपलका कल्क ४ सेर, एकत्र यथानियम पाककर ठण्ढा होनेपर ४ सेर सहत मिलाना। उपयुक्त मात्रा यह घी सेवन करनेसे स्वरभंग और कासरोग आराम होता है।

अरोचक।

यमानीषाड़व।—अजवाइन, इमली, सोंठ, अम्लवेतस, अनार और खट्टी बेर प्रत्येक दो दो तोले ; धनिया, सौवर्चल नमक, जीरा और दालचीनी प्रत्येक एक एक तोला, पीपल १००, गोलमिरच २००, चीनी ३२ तोले, यह सब द्रव्य एकत्र पीसकर आधा तोला माता सेवन करनेसे अरोचक रोग आराम होता है।

कलहंस।—सैजनकी बीज १८, गोलमिरच १०, पीपल २०, अदरख ८ तोले, गुड़ ८ तोले, कांजी ८ सेर और कालानमक ८ तोले एकत्र मिलाकर इसके साथ चातुर्जात चूर्ण ८ तोले मिलाना, इससे स्वरभंगमें भी विशेष उपकार होता है।

तिन्तीड़ी पानक। बीजशून्य इमली ५ पल, चीनी १० पल, पीसी धनिया ४ तोले, अदरख ४ तोले दालचीनी १ तोला, तेजपत्ता १ तोला, इलायची १ तोला, नागेश्वर १ तोला और पानी ६ सेर १० छटांक एकत्र मिलाना तथा थोड़ा गरम दूध मिलाकर छान लेना, फिर कपूर आदि सुगन्धि द्रव्य मिलाकर उपयुक्त मात्रामें प्रयोग करना।

रसाला।—खट्टी दही ८ सेर, चीनी २ सेर, घी आठ तोले, मधु आठ तोले, गोलमिरचका चूर्ण ४ तोले, सोंठ ४ तोले और चातुर्जातक प्रत्येक एक एक तोला एकत्र मिलाना। इसे भी कपूरादिसे सुवासित करना चाहिये।

सुलोचनाभ्र। अभ्रभस्म १ तोला, हीरक भस्म १ तोला ; आम, बेर, खसकी जड़, अनार, आंवला, चौपतिया, बड़ा-नीबू, प्रत्येक १० तोले, एकत्र खलकर

२ रत्ती बराबर गोली बनाना, उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे अरुचि, श्वास, कास, स्वरभेद, अग्निमान्द्य, अम्लपित्त, शूल, वमन, दाह अश्मरी, अर्श और दौर्बल्य आदि रोग दूर होते है।

वमन।

एलादि चूर्ण।—इलायची, लौंग, नागेश्वर, बैरके बीजकी गिरी, धानका लावा, प्रियंगु, मोथा, लालचन्दन और पीपल; प्रत्येक का चूर्ण समभाग एकत्रकर चीनी और सहतमें मिलाकर चाटना।

रसेन्द्र।—जीरा, धनिया, पीपल, सहत, त्रिकटु और रस-सिन्दूर समभाग खलकर उपयुक्त मात्रामें प्रयोग करना।

वृषध्वज रस।—पारा, गंधक, लोहा, मुलेठी, चन्दन, आंवला, छोटी इलायची, लौंग, सोहागा, पीपल और जटामासी, समभाग सरिवन और इक्षुके रसको अलग अलग सात सात दिन भावना देकर फिर बकरीके दूधमें एक पहर खल करना। मात्रा २ रत्ती की गोली बनाना, अनुपान सरिवनके साथ देना।

पद्मकाद्य घृत।—पद्मकाष्ठ, गुरिच, नीमकी छाल, धनिया और चन्दन इन सब द्रव्योंका काढ़ा और कल्कमें यथाविधि ४ सेर घी पाककर उपयुक्त मात्रा देनेसे वमन, अरुचि, तृष्णा और दाह आदि रोग दूर होते हैं।

तृष्णारोग।

कुमुदेश्वर रस।

ताम्र २भाग और वङ्ग १भाग एकत्र मुलेठीके काढ़ेकी भावना दे २ रत्ती मात्रा देना। अनुपान—चन्दन, अनन्तमूल, मोथा, छोटो इलायची और नागेश्वर प्रत्येक समभाग और सबके बराबर धानका लावा, १६ गुने पानीमें औटाना आधा पानी रहनेपर छानकर उसमें सहत और चीनी मिलाना। इस काढ़ेके अनुपानमें देनेसे तृष्णा और वमन रोग आराम होता है;

मूर्च्छा भ्रम और सन्यास।

सुधानिधि रस- रससिन्दूर और पीपलका चूर्ण एकत्र मिलाकर ४ रत्ती मात्रा सहतके साथ देना।

मूर्च्छान्तक रस—रससिन्दूर, स्वर्णमाक्षिक, स्वर्णभस्म, शिलाजीत और लौहभस्म सब द्रव्य समभाग, सतावर और बिदारीकन्दके रसकी भावना देकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। सतावरका रस और त्रिफला भिगायी पानी आदि वायुनाशक अनुपानमें देना।

अश्वगन्धारिष्ट।

असगन्ध ५० पल, तालमूली २० पल, मजीठ, बड़ीहर्र, हलदी, दारुहलदी, मुलेठी, रास्ना, बिदारीकन्द, अर्जुनछाल, मोथा और तेवड़ी प्रत्येक १० पल; अनन्तमूल, श्यामालता, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, बच,

चीतामूल प्रत्येक आठ आठ पल, यह सब द्रव्य १२ मन ३२ सेर पानीमें औटाना, ६४ सेर पानी रहनेपर उतारकर छान लेना, फिर उसमें धवईकाफूल १६ सेर, सहत ३७॥ सेर, त्रिकटु प्रत्येक २ पल ; दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येक ४ पल, प्रियङ्गु ४ पल और नागेश्वर २ पल, यह सब द्रव्य मिलाकर पात्रका मुह बन्दकर एक मास रखना ; फिर छानकर एक तोलासे ४ तोले तक मात्रा प्रयोग करना।

मदात्यय।

फलत्रिकाद्य चूर्ण—त्रिफला, तेवड़ी, श्यामालता, देवदारु, शोंठ, अजवाइन, अजमोदा, दारुहलदी, पांचोनमक, सोवा, वच, कूठ, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और एलबालुक, (एलवा) प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर अवस्थानुसार एक आनासे आठ आनेतक मात्रा ठण्ढे पानीसे देना।

एलाद्य मोदक। इलायची, मुलेठी, चीतामूल, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, रक्तशालि, पीपल, द्राक्षा, पिंडखजूर, तिल, जौ, विदारीकंद, गोखुरबीज, तेवड़ी और शतावर प्रत्येक समभाग समष्टीकी दूनी चीनी मिला यथाविधि मोदक बनाना। आधा तोला मात्रा धारोष्ण दूध या मूंगके जूसके अनुपानसे देना।

महाकल्याण वटिका—स्वर्ण, अभ्रक, पारा, गंधक, लोहा और मोती प्रत्येक समभाग, आंमलाके रसमें खलकर, १० रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान मक्खन और चीनी अथवा तिलका चूर्ण और सहतके साथ देना।

पुनर्नवाद्य घृत—घी ४ सेर, दूध ४ सेर, पुनर्नवा का काढ़ा १२ सेर और मुलेठी का कल्क एक सेर, यथाविधि पाक करना, उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे मदात्यय रोग दूर होकर वीर्य्य और ओजकी वृद्धि होती है।

बृहत धात्रीतैल। तिलका तेल ४ सेर; आंवला, शतावर और बिदारीकंद प्रत्येक का रस चार चार सेर, बकरीका दूध ४ सेर, बरियारा, असगंध, कुलथी, जौ और उरद प्रत्येकका काढ़ा चार चार सेर; कल्कार्थ—जीवनीयगण, जटामासी, मजीठ, इन्द्रवारुणी की जड़, श्यामालता, अनन्तमूल, शैलज, सोवा, पुनर्नवा, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, इलायची, दालचोनी, पद्ममूल, कलिकाफूल, बच, अगरू, हरीतकी और आंवला इन सबका कल्क एक सेर, यथाविधि पाक करना।

श्रृखासव। श्वेतचन्दन, गोलमिरच, जटामांसी, हलदी, दारुहलदी, चीतामूल, मोथा, खसकी जड़, तगरचंडी द्राचा, लालचन्दन, नागेश्वर, अम्बष्ठा, आमला, पीपल, चाभ, लौंग, एलवा और लोध प्रत्येक चार चार तोले कूटकर १२८ सेर पानीमें भिंगोना, फिर मुनक्का ६० पल, गुड़ ३७॥ सेर और धवईफूल १२ पल मिला पात्रका मुह बंदकर एक मासके बाद द्रव्यांश छान लेना। मात्रा एक तोलासे ४ तोलेतक अवस्थानुसार प्रयोग करना।

दाहरोग।

चन्दनादि काढ़ा—चन्दन, दवनपापड़ा, खसकी जड़, बाला, मोथा, कमलकी जड़, कमलका डंडा, सौंफ, धनिया, पद्मकाष्ठ और आंमला मिलाकर दो तोले, आधा सेर पानीमें औटाना एक पाव पानी रहनेपर छानकर सहत मिला पीनेको देना।

त्रिफलाद्य—त्रिफला और अमिलतासके गूदाके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे दाह, रक्तपित्त और पित्तशूल आराम होता है।

पर्पटादि—दवनपापड़ा, मोथा और खसकी जड़; इन सबका काढ़ा ठंढाकर पानेसे दाह और पित्तज्वर आराम होता हैं।

दाहान्तक रस—पारा ५ तोले और गंधक ५ तोले अर्व्वती नीबूके रसमें खलकर पानके रसकी भावना देना। फिर इस कज्जली को तांबेके पत्रमें लपेटना सूख जानेपर गजपुटमें फूंकना। भस्म हो जानेपर २ रत्ती मात्रा अदरखका रस और त्रिकटु चूर्णके साथ सेवन करनेसे दाह, सन्ताप और पित्तज मूर्च्छा शान्त होती है।

सुधाकर रस—रससिन्दूर, अदरख, सोना और मोतीका भस्म प्रत्येक समभाग, त्रिफला भिंगोये पानी और सतावरके रसकी सातबार भावना देकर एक रत्ती बराबर गोली बना छायामें सुखा लेना। उपयुक्त अनुपानमें देनेसे दाह, आमरक्त और प्रमेह रोग आराम होता है।

कांजिक तैल—तिलका तेल ४ सेर, ६४ सेर कांजीके साथ औटाकर मालिश करनेसे दाहज्वर आराम होता है।

उन्माद।

सारस्वत चूर्ण—कूठ, असगंध, सेंधानमक, अजवाईन, अजमोदा, जीरा, कालाजीरा, त्रिकटु, पाठा और शंखपुष्पी; प्रत्येक समभाग और सबके बराबर बचका चूर्ण ब्रह्मीशाक के रसकी ३ बार भावना दे सुखाकर चूर्ण करना। उपयुक्त मात्रा घी और सहतके अनुपानमें देना।

उन्माद गजांकुश। पारा २ तोले, गंधक २ तोले एकत्र मिलाकर लघु गजपुटमें फूंकना, फिर धतूरेकी बीज २ तोले, अभरक २ तोले, गंधक २ तोले और मीठाविष २ तोले उसमें मिलाकर ३ दिन पानीमें खल करना। एक रत्ती मात्रा वायुनाशक अनुपानमें देना।

उन्मादभंजन रस। त्रिकटु, त्रिफला, गजपीपल, विड़ंग, देवदारू, चिरायता, कुटकी, कंटकारी, मुलेठी, इन्द्रयव, चीतामूल, वरियारा, पिपलामूल, खसकी जड़, सैजनकी जड़, तेवड़ीमूल, इन्द्रवारूणी की जड़, वंग, चांदी, अभरख और मूंगा; प्रत्येक समभाग और सबके बराबर लोह एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना।

भूतांकुश रस। पारा, लोहा, चांदी, ताम्बा और मोती प्रत्येक एक एक तोला; हीरा दो मासे, हरिताल, गंधक, मैनसिल, तुतिया, तिलांजन, समुद्रफेन, रसांजन और पांचोनमक प्रत्येक एक एक तोला, यह सब द्रव्य भंगरैया, दन्तीका रस, और सीजके दूधमें खलकर एक गोला बनाना, सूखजानेपर गजपुटमें फूंकना। २ रत्ती मात्रा अदरखके

रसमें मिलाकर चटावे फिर ऊपरसे दशमूलके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना। तथा सर्व्वाङ्गमें सरसोंका तेल मालिश कर तितलौकी का बफारा लेना चाहिये।

चतुर्भुज रस।

रससिन्दूर २ भाग, सोना एक भाग, मैनसिल १ भाग, कस्तूरी एक भाग और हरताल एक भाग; एकत्र घीकुआरके रसमें एक दिन खलकर गोला बना ऊपरसे रेंड़का पत्ता लपेटकर ३ दिन धानमें रखना। फिर चूर्णकर २ रत्ती मात्रा सहत और त्रिफलाके चूर्णमें प्रयोग करना।

पानीय कल्याणक और क्षीरकल्याण घृत।

घी ४सेर; इन्द्रवारुणीकी जड़, त्रिफला, सम्भालुके बीज, देवदारु, एलवा, सरिवन, तगरचण्डी, हलदी, दारुहलदी, श्यामालता, अनन्तमूल, प्रियंगु नीलाकमल, इलायची, मजीठ, दन्तीमूल, अनारकी बीज, नागेश्वर, तालीशपत्र, हड़ती, मालतीफूल, विड़ंग, पिठवन, कूठ, लालचन्दन और पद्मकाष्ठ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; पानी १६ सेर यथाविधि पाक करना। मात्रा आधा तोलासे २ तोलातक। यही घी दूने पानी और चौगुने दूधमें औटा लेनेसे उसे क्षीरकल्याण घृत कहते हैं।

चैतस घृत—घी ४ सेर गम्भारीके सिवाय बाकी ८ दशमूल, रास्ना, रेंड़की जड़, बरियारा, मूर्व्वामूल और सतावर; प्रत्येक दो दो पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; इस काढ़ेका चौगुना दूध और पानीय कल्याणक के कल्क समूहके साथ यथाविधि पाक करना।

शिवाघृत।

घी ४ सेर; गीदड़का मांस ६। सेर, पानी ३२ सेर शेष आठ सेर और दशमूल ६। सेर, पानी ३२ सेर शेष आठ सेर; बकरीका दूध ४ सेर

मुलेठी, मजीठ, कूठ, लालचन्दन, पद्मकाष्ठ, बरियारा, बड़ीहर्र, आंवला, बृहती, तगरचंडी, विड़ंग, अनारकी बीज, देवदारु, दन्तीमूल, मखालुके बीज, तालीशपत्र, नागेश्वर, श्यामालता, इन्द्रवारुणी, की जड़, सरिवन, प्रियंगु, मालतीफूल, काकोली, क्षीरकाकोली, पद्म, नीलपद्म, हलदी, दारुहलदी, अनन्तमूल, मेदा, इलायची, एलवा और पिठवन; प्रत्येक का दो दो तोले कल्क; यथाविधि औटाना। यह उन्माद आदि वायुरोग में उपकारी है।

महापैशाचिक घृत। घृत ४ सेर; जटामासी, हरीतकी, भूतकेशी, स्थलपद्म या ब्रह्मीशाक, कवांचकी बीज, बच, त्रायमाना, जावित्री, काकोली, कुटकी, छोटी इलायची, बिदारीकंद, सौंफ, सोवा, गुग्गुलु, शतावर, आंवला, रास्ना, गंधरास्ना, गंधाली, बिछौटी और सरिवन सब मिलाकर एक सेर, पानी १६ सेर, घी यथाविधि औटाकर उन्माद और अपस्मार आदि रोगमें प्रयोग करना।

अपस्मार।

कल्यान चूर्ण—पंचकोल, मिरच, त्रिफला, कालानमक, सेंधा नमक, पीपल, विडंग, पूतिकरंज, अजवाइन, धनिया और जीरा; प्रत्येक समभाग एकत्र मिलाना, मात्रा आधा तोला अनुपान गरम पानी।

वातकुलान्तक—कस्तूरी, मैनसिल, नागकेशर, बहेड़ा, पारा, गंधक, जायफल, इलायची और लौंग प्रत्येक दो दो तोले एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। वायुनाशक अनुपानके साथ देना।

चण्डभैरव—पारा, तामा, लोहा, हरताल, गन्धक, मैनसिल और रसाञ्जन समभाग गोमूत्रमें खलकर, फिर दो भाग और गन्धक मिलाकर थोड़ी देर लोहेके पात्रमें औटाना। मात्रा दो रत्ती, अनुपान हींग, सौवर्चल नमक और कूठका चूर्ण मिलाकर २ तोले तथा गोमूत्र और घृत।

स्वल्पपञ्चगव्य घृत—गायका घी ४ सेर, गोबरका रस ४ सेर, गायकी खट्टी दही ४ सेर, गायका दूध ४ सेर, गोमूत्र ४ सेर, पानी १६ सेर यथाविधि औटाना। मात्रा आधा तोला।

बृहत् पञ्चगव्य घृत।

दशमूल, त्रिफला, हलदी, दारुहलदी, कुरैयाकी छाल, अपामार्गकी जड़, नीलवृक्ष, कुटकी, अमिलतास का फल, गुल्लरकी जड़, कूठ और जवासा प्रत्येक दो दो पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; बारङ्गी पाठा, त्रिकटु, तेवड़ी की जड़, इन्द्रजव बीज, गजपीपल, अरहर मूर्व्वामूल, दन्तीमूल, चिरायता चीतामूल, श्यामालता, अनन्तमूल, रोहितक, गन्धतृण और मयनफल प्रत्येकका दो दो तोले कल्क। गोबरका रस ४ सेर, गोमूत्र ४ सेर, गायका दूध ४ सेर और गौकी खट्टी दही ४ सेरके साथ गायकी घी ७ सात सेर यथाविधि औटाना।

महाचैतस घृत।

शनकी बीज, तेवड़ीकी जड़, एरण्डमूल, शतावर, रास्ना, पीपल और सैजनकी जड़, प्रत्येक दो दो पल, पानी ६४ सेर, शेष १६सेर। बिदारीकन्द, मुलेठी, मेद, महामेद, काकोली, क्षीरकाकोली, चीनी, पिंडखजूर, मुनक्का, शतावर, ताड़का गूदा, गोक्षुर और चैतस घृतके सब कल्कद्रव्य मिलाकर एक सेर, एकत्र यथाविधि पाक करना।

ब्राह्मीघृत—घी चार सेर, ब्राह्मीशाकका रस १६ सेर, कल्कार्थ,

बच, कूठ और चोरपुष्पी मिलाकर एक सेर; यथाविधि पाक करना।

पलङ्कषाद्य तैल—कल्कार्थ-गुग्गुलु, बच, बड़ीहर्र, बिछौटीकी जड़, अकवनकी जड़, सरसों, जटामांसी, भूतकेशी, ईशलाङ्गला, चोरपुष्पी, लहसन, अतीस, दन्ती, कूठ और गिड आदि मांस-भोजी पक्षीकी विष्टा, सब मिलाकर एक सेर और छागमूत्र १६ सेरके साथ, ४सेर तिलका तेल यथाविधि पाककर मालिश करना।

वातव्याधि।

रास्नादि काढ़ा—रास्ना, गुरिच, अमिलतास, देवदारु, रेंड़की जड़ और पुनर्नवा; इन सबके काढ़ेमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पीना।

माषबलादि—उड़द, बरियारा, केवांचकी जड़, गन्धतृण, रास्ना, असगन्ध और रेंड़की जड़, इन सबके काढ़ेमें हींग और सेंधानमक मिला नाकके रास्ते अथवा असमर्थ रोगीको मुखसे पिलाना।

कल्याणलेह—हलदी, बच, कूठ, पीपल, सोंठ, जीरा, अज-मोदा, मुलेठी और सेन्धानमक, इन सबका समभाग चूर्ण घी मिलाकर चाटना। मात्रा आधा तोला।

स्वल्प रसोनपिण्ड—छिलका निकाला तथा पीसाहुआ लहसन १२ तोले, हींग, जीरा, सेंधानमक, सौवर्चल नमक और त्रिकटु प्रत्येकका चूर्ण एक एक मासा, यह सब एकत्र खलकर मात्रा आधा तोला रेंड़के जड़के साथ देना।

रसको भावना दे ऊपर कही रीतिसे धानमें ३ दिन रख २ रत्ती वजनको गोली बनाना। अनुपान त्रिफलेका पानी और चीनी।

रससिन्दूर ८ तोले, अभ्रक २ तोले और सोना १ तोला; एकत्र घिकुआरके रसमें खलकर इसके साथ लोहा, चांदी, वङ्ग, असगन्ध लौंग, जावित्री और चीरकाकोली प्रत्येक आधा तोला मिलाना, फिर काकमाचीके रसमें खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान दूध या चीनीका शर्बत।

रसराज रस।

रससिन्दूर और अभ्रक प्रत्येक २ तोले, लोहा एक तोला और सोना आधा तोला एकत्र घिकुआरके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। अवस्था विचारकर वायुनाशक अनुपानके साथ देना। इससे प्रमेह, प्रदर, सूतिका आदि रोगोंमें भी उपकार होता है।

चिन्तामणि रस।

बृहत् वातचिन्तामणि—सोना ३ भाग, चांदी २ भाग, अभ्रक २ भाग, लोहा ५ भाग, मूंगा ३ भाग, मोती ६ भाग और रस-सिन्दूर ७ भाग; एकत्र घिकुआरके रसमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान विचारकर देना।

स्वल्प विष्णुतेल—तिलका तेल ४ सेर, गाय या बकरीका दूध १६ सेर; सरिवन, पिठवन, वरियारा, सतावर, रेंड़की जड़, बृहती, कण्टकारी, पोईकी जड़, गुलशकरी और झांटीमूल प्रत्येक के एक एक तोलाका कल्क, यथाविधि औटाकर वातज रोगमें प्रयोग करना।

तिलका तेल १६ सेर, सतावरका रस १६ सेर, दूध १६ सेर, पानी ३२ सेर। माषा, असगन्ध, जीवक ऋषभक, शठी, काकोली, चीरकाकोली,

बृहत् विष्णुतैल।

मुलेठी, सौंफ, देवदारु, पद्मकाष्ठ, शैलज, जटामासी, इलायची, दालचीनी, कूठ, बच, लालचन्दन, केशर, मजीठ, कस्तूरी, श्वेतचन्दन, रेणुका, सरिवन, पिठवन, मागौनी, माषौनी, कुन्दरखोटी, गठिला और नखी प्रत्यकके एक एक पलका कल्क; यथाविधि औटाकर सब प्रकारके वायुरोगोंमें प्रयोग करना।

नारायण तैल। तिलका तेल १६ सेर, शतावरका रस १६ सेर, दूध ६४ सेर बेल, गणियारी, श्योनाक, पाटला और नीम इन सबका छाल और गम्भारी, असगंध, वृहती, कण्टकारी, वरियारा, गुलशकरी, गोक्षुर और पुनर्नवा प्रत्येक १० पल, २५६ सेर पानी, शेष ६४ सेर रहे काढ़ा, तथा सोवा, देवदारु, जटामांसी, शैलज, बच, लालचन्दन, तगरपादुका, कूठ, इलायची, सरिवन, पिठवन, मागौनी, माषौनी, रास्ना, असगंध, सैंधव और पुनर्नवाकी जड़ प्रत्येकके दो दो पलका कल्क, गायका दूध ६४ सेर और शतावरका रस १६ सेर यथाविधि औटाना।

मध्यमनारायण तैल। तिलका तेल ३२ सेर; बेल, असगंध, वृहती, गोक्षुर, श्योनाक वरियारा, नीम, कंटकारी, पुनर्नवा, गुलशकरी, गणियारी, गंभारी और पाटला, इन सबका जड़ २॥ अढ़ाई सेर एकत्र १२ मन ३२ सेर पानीमें औटाना तथा ३ मन आठ सेर पानी रहते उतार लेना। बकरी या गायका दूध ३२ सेर सतावरका रस ३२ सेर; कल्कार्थ रास्ना, असगंध, सौंफ, देवदारु, कुठ, सरिवन, पिठवन, मागौनी, माषौनी, अगरु, नागेश्वर, सैंधानमक, जटामासी, हलदी, दारुहलदी, शैलज, लालचन्दन, कुठ, इलायची, मजीठ, मुलेठी, तगर पादुका, मोथा, तेजपत्ता, भंगरैया, जीवक, ऋषभक, काकोली,

चोरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेद, महामेद, बाला, बच, पलाशमूल, गठेला, श्वेतपुनर्नवा और चोरकांचको प्रत्येक दो दो पल, यथा-नियम औटाकर, सुगंधके लिये कपूर, केशर और कस्तूरी प्रत्येक एक एक पल मिलाना।

महानारायण तैल।

तिलका तैल ४ सेर, शतावर, सरिवन, पिठवन, शठी, बरियारा, रेंड़की जड़, कंटकारी, कंटकरैजा की जड़, गुलशकरी और भांटोमूल, प्रत्येक १० पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, गाय या बकरीका दूध ८ सेर, शतावरका रस २४ सेर; तथा पुनर्नवा, बच, देवदारु, सोवा, लालचन्दन, अगरु, शैलज, तगरपादुका, कूठ, इलायची, सरिवन, वरियारा, असगंध, सेंधव और रास्ना, प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क यथाविधि औटाना।

सिद्धार्थक तैल—तिलका तैल ४ सेर, शतावरका रस ८ सेर, दूध १६ सेर, आदीका रस ४ सेर, सोवा, देवदारु, जटामांसी, शैलज, वरियारा, लालचन्दन, तगरपादुका, कूठ, इलायची, सरिवन, रास्ना, असगंध, वराहक्रान्ता, श्यामालता, अनन्तमूल, पिठवन, बच, गंधतृण, सेंधानमक और शांठ मिलाकर एक सेरका कल्क यथानियम औटाना।

हिमसागर तैल।

तिलका तैल ४ सेर, शतावर, विदारीकन्द, सफेद कोंहड़ा, आंवला, सेमरकी जड़, गोखुर और केलेकी जड़, प्रत्येक का रस ४ सेर, नारियलका पानी ४ सेर, दूध १६ सेर; लालचन्दन, तगरपादुका, कूठ, मजीठ, सरलकाष्ठ, अगरु, जटामासी, मुरामासी, शैलज, मुलेठी, देवदारु, नखी, बड़ीहर्र, खटासी, पिड़िंशाक, कुन्दुरखोटी, नालुका सतावर, लोध, मोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर,

लौंग, जाविची, सौंफ, शठी, चन्दन, गठेला और कपूर प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; यथाविधि पाक करना। यह वायुरोगोंका श्रेष्ठ औषध है।

तिलका तेल ४ सेर, बरियारा १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; दशमूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; यह दो काढ़ा और मजीठ, लालचन्दन, कूठ, इलायची, देवदारु, शैलज, सेंधानमक, बच, काकोली, पद्मकाष्ठ, काकड़ाशिङ्गी, तगरपादुका, गुरिच, मोंगानी, माषोनी, सतावर, अनन्तमूल, श्यामालता, सोवा और पुनर्नवा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथारीतिसे औटाना। यह तेल विविध वायुरोगनाशक तथा क्षीण शुक्र पुरुष और क्षीणार्तवा स्त्रियोंके लिये विशेष उपकारी है।

वायुच्छायासुरेन्द्र तेल।

तिलका तेल ४ सेर, उरद, बरियारा, रास्ना, दशमूल, गन्धाली और सोवा; प्रत्येकका काढ़ा चार चार सेर, दही ४ सेर, दूध ४ सेर, लाहका रस ४ सेर, कांजी ४ सेर; शतावर और बिदारीकन्द प्रत्येकका रस दो दो सेर तथा सोवा, सौंफ, मिथी, रास्ना, गजपीपल, मोथा, असगंध, खसकी जड़, मुलेठी, सरिवन, पिठवन, और भूंईआंवला, प्रत्येक दो दो पलका कल्क यथारीति तेलमें मिलाकर औटाना।

माषबलादि तेल।

सैन्धवाद्य तैल—तिलका तेल ४ सेर, कांजी ३२ सेर; तथा सेंधानमक २ पल, शोंठ पांच पल, पिपलामूल २ पल, चितामूल २ पल और भेलावा २० का कल्क यथारीति औटाना, यह गृध्रसी आदि वातरोग नाशक है।

तिलका तेल ४सेर, गंधाली १०० पल, पानी ६४ सेर शेष

पुष्यराजप्रसारिणी तैल ।

१६ सेर, गाय या भैंसका दूध १६ सेर, पद्म और शतावर प्रत्येक का रस ४ सेर तथा सोवा, देवदारु, रास्ना, गजपीपल, गंधाली की जड़, जटामासी, भैलाविकी जड़ प्रत्येक दो दो पल ; यथाविधि औटाना। इससे कुब्ज, पङ्गु, गृध्रसी और अर्दित आदि वायुरोग तथा वात कफके रोग समूह दूर होते हैं।

महामाष तैल ।

तिलका तेल ४ सेर, उरद ४ सेर, दशमूल ६। सेर, बकरेका मांस १० पल, एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहते नीचे उतार लेना। उरद और बकरेके मांसको अलग पोटली बांधकर औटाना चाहिये। दूध १६ सेर तथा रेंडकी जड़, कंवाचकी जड़, सोवा, सेंधा, काला, सोवर्चल नमक, जीवनीयगण, मजीठ, चाभ, चीतामूल, कायफल, त्रिकटु, पीपलामूल, रास्ना, मुलेठी, देवदारु, गुरिच, कूठ, असगंध, बच और शठी प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर लकवा, अर्दित, कम्प, गृध्रसी, अववाहुक आदि वायुरोगोंमें प्रयोग करना।

वातरक्त ।

अमृतादि काढ़ा—गुरिच, शोठ और धनिया प्रत्येक दो दो तोले ; १६ गूने पानीमें औटाना ४ गूना पानी रहते छान लेना, और ८ तोले पिलाना।

वासादि—अडूसा, गुरिच और अमिलतास का फल, इन सबके काढ़ेमें आधा तोला रेंड़ीका तेल मिलाकर पिलाना।

नवकार्षिक—आंवला, हर्रा, बहेड़ा, नोमको छाल, मजीठ, बच, कुटको, गुरिच और दारुहलदो, प्रत्येक "५ रत्तोका एक मास।" इसो हिसाबसे एक कर्ष अर्थात् तेरह आना २ रत्तीभर ले १६ गूने पानीमें औटाना ४ गूना पानी रहते नीचे उतार ८ तोले मात्रा प्रयाग करना।

पटोलादि—परवरका पत्ता, कुटको, सतावर, त्रिफला और गुरिचके काढ़ेसे वातरक्त और तज्जनित दाह दूर होता है।

निम्बादि चूर्ण। नोमको छाल, गुरिच, बड़ोहर्र, आंवला और सोमराजो प्रत्येक एक एक पल, शोंठ, वायविड़ंग, कचवड़को जड़, पोपल, अजवाइन, बच जोरा, कुटको, खैरको लकड़ो, सैन्धव, जवाखार, हलदो, दारुहलदो, मोथा, देवदारू और कूठ प्रत्येक दो दो तोले, इन सबका चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आने मात्रा गुरिचके काढ़ेके अनुपानमें देनेसे आमवातका शोथ, पिलहो और गुल्म आदि रोग शान्त होते हैं।

कैशोर गुग्गुलु। ढोलो पोटलोमें बंधा हुआ महिषाक्ष गुग्गुलु २ सेर, त्रिफला २ सेर, गुरिच ४ सेर, एकत्र ८६ सेर पानीमें औटाकर ४८सेर पानो रहते उतार लेना। औटाते वक्त बोच बोचमें हिला देना उचित है। फिर छानकर पोटलोके गुग्गुलुमें घो मिलाकर उक्त काढ़ेमें मिला लोहेके बरतनमें औटाना, गाढ़ा होनेपर इसके साथ त्रिफलाके प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, त्रिकटुका चूर्ण १२ तोले, विड़ंग ४ तोले, तेवड़ीमूल २ तोले, दन्तीमूल दो तोले और गुरिच ८ तोले मिलाकर एक सेर घो मिलाना। चना भिंगाया पानी, गुरिचका काढ़ा अथवा दूधके अनुपानमें एक तोला मात्रा प्रयोग करना चाहिये।

रसाभ गग्गुलु।

गुरिच दो सेर पानी १६ सेर शेष ४ सेर, त्रिफला दो सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर ; यह दो काढ़ा एकत्र मिलाकर उसमें गुग्गुलु एक सेर, पारा, गंधक और लौहभस्म प्रत्येक ४ तोले तथा अभ्रक भस्म ८ तोले मिलाकर औटाना, गाढ़ा होनेपर त्रिकटु, त्रिफला, दन्ती-मूल, गुरिच, इन्द्रवारुणी की जड़, वायविड़ंग नागेश्वर और तेवड़ी की जड़ प्रत्येक दो दो तोले मिलाकर चलाना। मात्रा एक तोला अनुपान गुरिचका काढ़ा। यह वातरक्त और कुष्ठ रोगका श्रेष्ठ औषध है।

वातरक्तान्तक रस।

पारा, गंधक, लोहा, मोथा, मैनसिल, हरताल, शिलाजीत, वायविड़ंग, त्रिफला, त्रिकटु, समुद्रफेन, गदहपुरना, देवदारु, चीतामूल, दारुहलदी और श्वेत अपराजिता ; यह सब द्रव्यको त्रिफलाका काढ़ा और भङ्गरैयाके रसकी तीन तीन बार भावना देकर उरद बराबर गोली बनाना। यह औषध घी और नीमका पत्ता, फूल और छालके काढ़ेके अनुपानमें प्रयोग करना।

गुडूच्यादि लौह—गुरूचकी चीनी, त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद प्रत्येक एक एक तोला, लोहा १० तोले ; एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान गुरिचका काढ़ा या धनिया और परवरके पत्तेका काढ़ा।

महातालेश्वर रस।

हरिताल भस्म और गंधक प्रत्येक समभाग एकत्र मिला दोनोंके बराबर ताम्रभस्म मिलाना, फिर एक मिट्टीके कटोरेमें रख दूसरा कटोरा ढांप मिट्टीसे लेपकर बालुका यन्त्रमें फूंकना। मात्रा दो रत्ती अनुपान विशेषके साथ देनेसे वातरक्त, कुष्ठ, श्वित्र आदि पीड़ा

शान्त होती है। हरताल भस्म करनेकी विधि—हरताल ८ तोला, मीठाविष २ तोले, एकत्र स्फोटक (ढेरा) के रससे खलकर एक गोली बनाना, फिर एक हांड़ीमें १६ तोले पलाशका खार दे उपर वह गोला रखना तथा उसके ऊपरसे २४ तोले चिरचिड़ीका खार रखना, तथा हांड़ीके ऊपर एक ढकना ढांक मिट्टीसे लेपकर सुखा लेना और चुल्हेपर रख २४ घण्टे आंच लगाना। इससे हांड़ीके ढकनेके नीचे कपूर की तरह पदार्थ जम जायगा, उसीको हरिताल भस्म कहते हैं। २ रत्ती मात्रा हरिताल भस्म अनुपान विशेषसे साथ देनेसे वातरक्त, कुष्ठ, विस्फोट, विचर्चिका ; शोथ, श्लीपद, शूल, अग्निमान्द्य और अरुचि आदि रोग दूर होते हैं।

विश्वेश्वर रस । पारा १० तोले, गन्धक १० तोले, तूतिया १० तोले, मिठा विष ५ तोले, पलाश बीज ५ तोले और कटैली, कनैलकी जड़, धतूरा, हड़जोड़की लता, नीलवृक्ष, जटामांसी, दालचीनी, कुचिला और भेलावा प्रत्येक १० तोलेका एकत्र चूर्ण करना। मात्रा २ या ३ रत्ती सेवन करनेसे वातरक्त, ज्वर, कुष्ठ, अग्निमान्द्य, अरुचि और सब प्रकारके विषज रोग आराम होते हैं।

गुडूची घृत—घी ४ सेर, गुरिचका काढ़ा १६ सेर, दूध ४ सेर और गुरिचका कल्क एक सेर यथाविधि औटाना।

अमृताद्य घृत—घी ४ सेर, आंवलेका रस ४ सेर, पानी १२ सेर ; गुरिच, मुलेठी, मुनक्का, त्रिफला, शोंठ, बरियारा, अडूसा, अमिलतास, श्वेत पुनर्नवा, देवदारु, गोखुर, कुटकी, सतावर, पीपल, गाम्भारी फल, रास्ना, तालमखाना, एरण्ड, बिधारा, मोथा और नीलोत्पल, सब मिलाकर एक सेरका कल्क, यथाविधि पाक कर उपयुक्त मात्रासे अन्नादि भोज्यवस्तुके साथ सेवन करना।

तिलका तेल ४ सेर, गुरिच १०० पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर यह काढ़ा, दूध १६ सेर; असगंध, बिदारीकन्द, काकोली, क्षीरकाकोली, सफेद चन्दन, सतावर, गुलशकरी, गोखुर, बृहती, कण्टकारी, बायविड़ंग, त्रिफला, रास्ना, त्रायमाणा, अनन्तमूल, जीवन्ती, मेंठला, त्रिकटु, हाकुचबीज, थलकुड़ी, इन्द्रवारुणी की जड़, मजीठ, लालचन्दन, हलदी, मोवा और कातियानकी छाल प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना यह नस्य और मालिस करनेसे वातरक्त, कुष्ठ, प्रमेह, कामला, पाण्डु, विस्फोट, विसर्प तथा हाथ पैरकी जलन आराम होता है।

बृहत गुड़ची तैल।

सरसोंका तेल ४ सेर, गुरिच १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; गोमूत्र ४ सेर; गुरिच, सोमराजी की बीज, दन्तीमूल, कनेलकी जड़, त्रिफला, अनारकी बीज, नीमकी बीज, हलदी, दारुहलदी, बृहती, कण्टकारी, गुलशकरी, त्रिकटु, तेजपत्ता, जटामांसी, पुनर्नवा, पीपलामूल, मजीठ, असगंध, मोवा, लालचन्दन, श्यामालता, अनन्तमूल, कातियानकी छाल और गोबरका रस प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। इसे वातरक्त, कुष्ठ, व्रण और विसर्प आदि रोगोंमें प्रयोग करना।

महारुद्र गुड़ची तैल।

सरसोंका तेल ४ सेर, गुरिच २ सेर, पानी, १६ सेर, शेष ४ सेर; दूध ४ सेर, अडूसेका रस ४ सेर; पुनर्नवा, हलदी, नीमछाल, बेंगन, बृहती, दालचीनी, कटेली, करञ्ज, निर्गुण्डी, अडूसेकी जड़, चिरचिरी, परवरका पत्ता, धतूरा, अनारका छिलका, जयन्तीमूल, दन्तीमूल, और त्रिफला प्रत्येक ४ तोलेका कल्क, यथाविधि औटाना, फिर

रुद्र तैल।

कृष्णागुरु, शठी, काकोली, चन्दन, गेंठेला, नखी, खटासी, नागेश्वर, और कूठ, इन सब द्रव्योंसे यथाविधि गंधपाक करना। यह तेल मालिश करनेसे अस्थिमज्जागत कुष्ठ, हाथ पैरका घाव, पामा, विचर्चिका, कण्डू, मसूरिका, दाद और गात्रवैवर्ण्य आदि विविध रक्त और त्वकदोषजनित पीड़ा शान्त होती है।

महारुद्र तैल।

सरसोंका तेल ४ सेर, अडूसेके पत्तेका रस ४ सेर, गुरिच ८ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर यह काढ़ा; पुनर्नवा, हलदी, नीमछाल, वार्ताकू, अनारकी छाल, बृहती, कण्टकारी, नाटामूल, अडूसेकी छाल, निर्गुण्डी, परवरका पत्ता, धतूरा, चिरचिरीकी जड़, जयन्ती, दन्ती और त्रिफला प्रत्येक चार चार तोले, मिठाविष १६ तोले, त्रिकटु प्रत्येक तीन तीन पल, ४ सेर पानीसे यथाविधि औटाना। यह भी वातरक्त, कुष्ठ, व्रण और विविध चर्मरोग नाशक है।

महापिण्ड तैल।

सरसोंका तेल ४ सेर, गुरिच, सोमराजी और गंधाली प्रत्येक १२॥ सेर; अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर रखना। शिलारस, राल, निर्गुण्डी, त्रिफला, भांग, बृहतीमूल, काकोली, पुनर्नवा, चीतामूल, पीपलामूल, कूठ, हलदी, दारुहलदी, चन्दन, लालचन्दन, खटाशी, करञ्ज, सफेद सरसों, सोमराजी बीज, चक्रमर्द बीज, अडूसेकी छाल, नीमकी छाल, परवरका पत्ता, कौंचका बीज, असगंध, सरलकाष्ठ, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। इस तेलके मालिश करनेसे वातरक्तादि विविध पीड़ा शान्त होती है।

ऊरुस्तम्भ।

भल्लातकादि काढ़ा—भेलावा, गुरिच, सोंठ, देवदारू, हरीतकी, पुनर्नवा और दशमूल; यथाविधि इन सबका काढ़ा बनाकर पीनेसे ऊरुस्तम्भ रोग आराम होता है;

पिप्पल्यादि—पीपल, पीपलामूल और भेलावेकी जड़के काढ़ेमें सहत मिलाकर पीना। ये तीन द्रव्योंका कल्क भी सहतके साथ चटाया जासकता है।

गुञ्जाभद्रक रस—पारा १॥ तोला, गंधक ६ तोले, घुंघुची ३ तोले, जयपालका बीज आधा तोला; यह सब द्रव्य जयन्ती पत्र, जम्बीरी नीबू, धतूरेका पत्ता और काकमाचीके रसकी एक एक दिन भावना दे घीमें खलकर ४ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान हींग, सेंधानमक और सहत।

अष्टकट्वर तैल—सरसोंका तैल ४ सेर, दही ४ सेर, कट्वर अर्थात् दहीका मट्ठा ३२ सेर; पीपलामूल और सोंठ प्रत्येक दो दो पलका कल्क यथाविधि औटाना। यह तैल मालिश करनेसे ऊरुस्तम्भ और गृध्रसी रोग आराम होता है।

कुष्ठाद्य तैल—सरसोंका तैल ४ सेर; कूठ, नवनीतखोटी, बाला, सरलकाष्ठ, देवदारू, नागेश्वर, अजमोदा और असगन्ध मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर यथाविधि औटाकर सहतके साथ पीनेसे ऊरुस्तम्भ रोग विनष्ट होता है।

तिलका तैल ४ सेर, सैन्धव, कूठ, सोंठ, बच, बरंगी, मुलेठी, सरिवन, जायफल, देवदारू, सोंठ, शठी, धनिया, पीपल, कायफल, कूठ, अजवाइन,

महासैन्धवाद्य तैल।

अतीस, एरण्डमूल, नीलवृक्ष और नीलाकमल, सब मिलाकर एक सेर; कांजी १६ सेर; यथाविधि औटाकर पान, नस्य मर्द्दन करनेसे ऊरुस्तम्भ, आमवात और पक्षाघात आदि पीड़ा शान्त होती है।

आमवात।

रास्नापञ्चक—रास्ना, गुरिच, एरण्डमूल, देवदारु और सोंठ, यह पांच द्रव्योंको रास्नापञ्चक कहते हैं। यह सब प्रकारका आमवात नाशक है।

रास्नासप्तक—रास्ना, गुरिच, अमिलतासका फल, देवदारु, गोक्षुर, एरण्डमूल और पुनर्नवा इन सबको रास्नासप्तक कहते हैं। इसके काढ़ेमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे जङ्घा। ऊरु, त्रिक और पृष्ठ शूल आराम होता है।

रसोनादि कषाय—लहसन, सोंठ और निर्गुण्डीका काढ़ा आमवातका श्रेष्ठ औषध है।

महारास्नादि क्वाथ। रास्ना, एरण्डमूल, अड़ूसा, जवासा, शठी, देवदारु, बरियारा, मोथा, सोंठ, अतीस, हर्रा, गोक्षुर, अमिलतास, सौंफ, धनिया, पुनर्नवा, असगन्ध, गुरिच, पीपल, बिधारा, सतावर, बच, भिंटी, चाभ, बृहती और कण्टकारी; इन सब द्रव्योंमें रास्नाके सिवाय बाकी सब द्रव्य सम-भाग रास्ना दो भाग; आठ गुने पानीमें औटाना आठ भागका एक भाग पानी रहते उतार कर सोंठका चूर्ण मिलाकर पीना। अजमोदादि वटक और अलम्बुषाद्य चूर्णके अनुपानमें भी यह दिया जाता है। आमवात आदि वातवेदना इससे शान्त होती है।

हिङ्ग्वाद्य चूर्ण—हींग एक भाग, चाभ दो भाग, काला नमक ३ भाग, पीपल ५ भाग, जीरा ६ भाग और कूठ ७ भाग एकत्र चूर्णकर चार आनेभर मात्रा गरम पानी या उक्त काढ़ेके अनुपानसे देना।

अलम्बुषाद्य चूर्ण—मुण्डरी, गोखुर, गुरिच, बिधारेकी बीज, पीपल, सोंवड़ो, मोथा, वरूनमूल, पुनर्नवा, त्रिफला और सोंठ; प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा दहीका पानी, मट्ठा या कांजीके अनुपानमें देना, इससे पिलही, गुल्म, आनाह, अर्श और अग्निमान्द्य आदि पीड़ा आराम होती है।

वैश्वानर चूर्ण—सेंधानमक २ भाग, अजवाइन २ भाग, अजमोदा ३ भाग, सोंठ ५ भाग और हर्रा १२ भाग, एकत्र चूर्ण-कर गरम पानी या उक्त अनुपानमें प्रयोग करना। यह भी अलम्बुषादिकी तरह विविध रोग नाशक है।

अजमोदादि वटक। अजमोदा, गोलमिरच, पीपल, देवदारू, चीतामूल, सोवा, सैन्धव और पीपलामूल प्रत्येकका चूर्ण दो दो पल, सोंठ १० पल, बिधारेकी बीज १० पल, हर्रा पांच पल और सबके बराबर गुड़। पहिले गुड़में थोड़ा पानी मिलाकर औटाना चाशनी होनेपर सबका चूर्ण मिलाकर आधा तोला वजनकी गोली बनाना। अनुपान गरम पानी।

योगराज गुग्गुलु। चीतामूल, पीपलामूल, अजवाइन, काला जीरा, विड़ङ्ग, अजमोदा, जीरा, देवदारू, इलायची, चाभ, सेंधव, कूठ, रास्ना, गोखुर, धनिया, त्रिफला, मोथा, त्रिकटु, दालचिनी, खसकी जड़, जवाखार,

तालीशपत्र और तेजपत्ता प्रत्येकका समभाग चूर्ण और सबकी बराबर गुग्गुलु। पहिले गुग्गुलु घीमें अच्छी तरह मिलाना फिर सब चूर्ण मिला तथा थोड़ा घी मिलाकर मर्द्दन करना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम दूध या उक्त काढ़ा।

बृहत् योगराज गुग्गुलु।

त्रिकटु, त्रिफला, अम्बष्ठा, मोथा, हलदी, दारुहलदी, अजमोदा, बच, हींग, हीवेर, गजपीपल, छोटी इलायची, शठी, धनिया, काला नमक, सौवर्च्चल नमक, सेंधानमक, पीपलामूल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, समुद्रफेन, लोहा, राल, गोखुर, रास्ना, अतीस, शोंठ, जवाखार, अम्लवेतस, चीतामूल, कूठ, चाभ, महादा, अनार, एरण्डमूल, असगन्ध, तेवड़ी, दन्तीमूल, बैरके बीजकी गिरी, देवदारु, हल्दी, कुटकी, मूर्व्वामूल, त्रायमाणा, जवासा, विड़ङ्ग, बंगभस्म, अजवाइन, अडूसेकी छाल और अभरख भस्म प्रत्येकका चूर्ण समभाग; और सबके बराबर गुग्गुलु। घीमें मर्द्दन कर ऊपर कहे अनुसार तयार करना तथा पूर्व्वोक्त मात्रा और अनुपानसे प्रयोग करना।

सिंहनाद गुग्गुलु।

हर्रा, आंवला और बहेड़ा प्रत्येक चार चार सेर तथा सरसोंके तेलमें मर्द्दित एक सेर गुग्गुलुकी पोटली ९६ सेर पानीमें औटाना २४ सेर रहते नीचे उतार तथा छानकर इसी काढ़ेमें पोटलीका गुग्गुलु मिलाकर औटाना गाढ़ा होनेपर त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विड़ङ्ग, विछोटी की जड़, गुरिच, चीतामूल, तेवड़ी, दन्तीमूल, चाभ, सूरन, मानकन्द, पारा और गन्धक, प्रत्येक चार चार तोले; जयपाल बीज १००० एक हजार अच्छी तरह चूर्णकर उसमें मिलाकर हिलाना। मात्रा चार आनेभर अनुपान गरम

पानी या गरम दूध। इससे विरेचन हो आमवात आराम होता है।

लहसन १२॥ सेर, सफेद तिल आधा सेर; हींग, त्रिकटु, जवाखार, सज्जीखार, पांचोनमक, सोवा, कूठ, पीपलामूल, चीतामूल, अजमोदा, अजवाइन और धनिया प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल; चूर्ण एक पात्रमें रख उसमें २ सेर तिलका तेल २ सेर कांजी मिलाकर १६ दिनतक धानके राशिके भीतर रखना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम पानी। इससे श्वास, कास, शूल आदि पीड़ा शान्त होती है।

रसोनपिण्ड।

लहसन १०० पल, सफेद तिल ५० पल, गायके दहीका मट्ठा १६ सेर; त्रिकटु, धनिया, चाभ, चीतामूल, गजपीपल, अजमोदा, दालचीनी, इलायची और पीपलामूल, प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल, चीनी ८ पल, घी ८ पल, तिलका तेल ८ पल, कांजी २० पल, सफेद सरसो ४ पल, राई ४ पल, हींग दो पल, पांचोनमक प्रत्येक दो दो तोले, यह सब द्रव्य एकत्र धूपमें सुखाकर धान्यराशिमें १२ दिन रख देना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम पानी।

महारसोनपिण्ड।

आमवातारि वटिका—पारा, गन्धक, लोहा, ताम्बा, तुतिया, सोहागा और सैंधव प्रत्येक समभाग; सबका दूना गुग्गुलु, चतुर्थांश तेवड़ीका चूर्ण और चीतामूलका चूर्ण; यह सब द्रव्य घीमें मिलाकर मर्द्दन करना। चार आनेभरकी गोली। अनुपान त्रिफला भिंगोया पानी। यह औषध पाचक और विरेचक है।

वातगजेन्द्रसिंह—अदरख, लोहा, पारा, गन्धक, ताम्बा, सीसा, सोहागा, मीठाविष, सैंधव, लौंग, हींग और जायफल प्रत्येक एक

एक तोला, दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची, त्रिफला और जीरा प्रत्येक आधा तोला ; यह सब द्रव्य चिकुआरके रसमें मर्द्दन कर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे आमवात और अन्यान्य वायुविकार आराम होता है।

वृहत् सैन्धवाद्य तैल—रेंड़ीका तेल ४ सेर, सोंफका काढ़ा ४ सेर, कांजी ८ सेर, दही ८ सेर ; सैन्धव, गजपीपल, रास्ना, सोंवा, अजवाइन, सफेद राल, मिरच, कूठ, सोंठ, सौवर्चल नमक, काला नमक, बच, अजमोदा, मुलेठी, जीरा, कूठ और पीपल, प्रत्येक ४ तोले ; यथानियम औटाकर पान, अभ्यङ्ग और वस्तिकार्य्यमें प्रयोग करना।

प्रसारिणी तैल—रेंड़ीका तेल ४ सेर, १६ सेर गंधालीके रसमें औटाना ; आधा तोला मात्रा दूधमें मिलाकर पीनेसे आमवात और सब प्रकारके श्लैष्मिक रोग शान्त होते है।

पारा, गन्धक, नीमकी छाल और हरिताल प्रत्येक दो तोले, कांजीसे पीसकर कपड़ेके एक टूकड़ेमें लेपकर सुखा लेना फिर उसकी बत्ती बनाकर बत्तीके अग्रभागमें तेल लगाकर जलाना, तथा जलती हुई बत्तीपर थोड़ा थोड़ा तेल देते रहना, इस रीतिसे नीचेके पात्रमें जो तेलका बूंद गिरेगा उसीका नाम विजयभैरव तेल है। उक्त द्रव्योंमें एक भाग अफीम मिलाकर तेल तयार करनेसे उसे महाविजयभैरव तैल कहते हैं। यह तैल मालिश करनेसे सब प्रकारका वातरोग आराम होता हैं।

विजयभैरव तैल।

शूलरोग।

सामुद्राद्य चूर्ण—कटैला नमक, सेंधानमक, जवाखार, सज्जीखार, सौवर्चल नमक, साम्भर, कालानमक, दन्तीमूल और त्रिमकन्द प्रत्येक समभाग; और सबका चौगूना दही, दूध और गोमूत्र प्रत्येक समभाग एकत्र सब मिलाकर इसको आंचमें औटाना। चूर्णको तरह होजानेपर नीचे उतार लेना। मात्रा दो आने या चार आनेभर गरम पानीसे देना। इससे सब प्रकारका शूल आराम होता है।

शम्बुकादि गुड़िका—शम्बुक भस्म, शोंठ, पीपल, मिरच, सेंधव, काला, सौवर्चल, सामुद्र और औद्भिद लवण प्रत्येक समभाग, कलमीशाक के रसमें खलकर एक आनेभर की गोली बनाना। सवेरे या भोजनके वख्त यह गोली खानेसे परिणाम शूलमें आशु उपकार होता है।

नारिकेल क्षार—पानीभरा नारियलमें सेंधानमक भरना तथा उपरसे मिट्टीका लेपकर सुखा लेना, फिर कण्डेकी आंचमें उसे जला लेना, तथा नारियलके भीतरका नमक और गूदाके बराबर पीपलका चूर्ण एकत्र मिलाकर एक आनाभर मात्रा पानीके साथ लेनेसे परिणाम शूल आराम होता है।

तारामण्डूर गुड़—शोधित मण्डूर ८ पल, गोमूत्र १८ पल, गुड़ ८ पल, उपयुक्त पानीमें औटाना, पाक शेष होनेपर वायविड़ङ्ग चीतामूल, चाभ, त्रिफला और त्रिकटु प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल मिलाकर धीमी आंच देना, पानी सूख जानेपर नीचे उतार

स्निग्ध पात्रमें रखना। मात्रा एक तोला भोजनसे पहिले बीचमें वा पीछे सेवन करना।

शतावरी मण्डूर—मण्डूर चूर्ण ८ पल, सतावरका रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल, घी ४ पल, एकत्र यथारीतिसे औटाना तथा पिण्डकी तरह होजानेपर उतार लेना। भोजनके पहिले मध्य और शेषमें प्रत्येक बार एक आन भर मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल दूर होता है।

बृहत् शतावरी मण्डूर।

पहिले मण्डूर गरम कर त्रिफलाके काढ़ेमें डालकर शोधन करना, फिर वही मण्डूर ८ पल, दूध ८ पल, आंवलेका रस ८ पल और घी ४ पल एकत्र औटाना। पाकशेष होनेपर जीरा, धनिया, मोथा, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, पीपल और बड़ी हर्र; प्रत्येकका चूर्ण चार चार आनेभर मिलाना। शतावरी मंडूरकी तरह सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल और अम्लपित्त आराम होता है।

धात्रीलौह—आंवलेका चूर्ण ८ पल, लोहभस्म ४ पल, मुलेठी का चूर्ण २ पल सबको आंवलेके रसकी सातवार भावना देना, सूख जानेपर चूर्णकर मात्रा चार आनेभर अनुपान घी और सहत भोजनके पहिले, मध्य और अन्तमें सेवन करना।

औटाया हुआ धात्रीलौह।

कुटा हुआ यव तंडुल ४ पल, पानी १६ पल, शेष ४ सेर, सतावरका रस, आंवलेका रस या काढ़ा, दही और दूध प्रत्येक ८ पल, विदारीकन्द का रस, घी और इक्षुरस प्रत्येक ४ पल और शोधित मंडूर चूर्ण ६ पल एकत्र औटाना। पाकशेष होनेपर जीरा, धनिया, दालचिनी, तेजपत्ता, इलायची, गजपीपल, मोथा, बड़ीहर्र, लोहा, अभरख, त्रिकटु, रेणुक, त्रिफला, तालीशपत्र, नागेश्वर, कुटकी,

मुलेठी, रास्ना, असगन्ध और चन्दन प्रत्येक का चूर्ण दो दो तोले मिलाना तथा अच्छी तरह चलाकर नीचे उतार लेना। मात्रा चार आनेभर भोजनके पहिले, मध्य और अन्तमें जल या दूधके साथ सेवन करना।

आमलकी खण्ड। उबाला हुआ पका भतुवा ५० पल, २ सेर घीमें भूनकर फिर आंवलेका रस ४ सेर, भतुवेका पानी ४ सेर और चीनी ५० पल एकत्र मिलाकर छान लेना तथा इसी रसमें भूंजा हुआ भतुवा औटाना। पाक-शेष होनेपर उसमें पीपल, जीरा और सोंठ प्रत्येक का चूर्ण दो दो पल, मिरच का चूर्ण १ पल, तालीशपत्र, धनिया, दालचीनी, तेज-पत्ता, इलायची, नागेश्वर और मोथा प्रत्येक का चूर्ण दो दो तोले मिला ठण्ढा होनेपर एक सेर मधु मिलाना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम दूध। इससे सब प्रकारकी शूल और अम्ल-पित्त रोग आराम होता है।

नारिकेल खण्ड। पिसा हुआ पके नारियलका गूदा ८ पल आध पाव घीमें थोड़ा भून लेना। फिर कच्चे नारियलका पानी ४ सेर, चीनी आधा सेर एकत्र मिलाकर छान लेना। तथा इसी रसमें भूंजा हुआ नारियलका गूदा औटाना, पाकशेष होनेपर इसमें धनिया, पीपल, मोथा, वंशलोचन, जीरा और काला जीरा प्रत्येक आधा तोला, दारचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर प्रत्येक एक एक मासे मिलाना। मात्रा एक तोला अनुपान गरम दूध।

वृहत् नारिकेल खण्ड। शिलापिष्ट पके नारियलका गूदा ८ पल, ५ पल घीमें भूनना, फिर कच्चे नारियलका पानी १६ सेर चीनी एक सेर मिलाकर छान लेना।

इसी रसमें भूना हुआ नारियल और सोंठका चूर्ण ४ पल तथा दूध दो सेर मिलाकर धीमी आंचमें औटाना। पाकशेष होनेपर वंशलोचन, त्रिकटु, मोथा, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, धनिया, पीपल, गजपीपल और जीरा प्रत्येकका चूर्ण ४ तोले मिलाना। मात्रा आधा तोला, इससे शूल, अम्लपित्त, जीमतलाना और हृद्रोग आदि पीड़ा दूर हो बल, शुक्र आदि बढ़ता है।

नारिकेलामृत।

पिष्ट और वस्त्र निष्पीड़ित सुपक्क नारियलका गूदा ४ सेर, ४ सेर घीमें भूनना, फिर कच्चे नारियलका पानी ३२ सेर, गायका दूध ३२ सेर, आंवलेका रस ४ सेर, चीनी १२॥ सेर और सोंठका चूर्ण २ सेरके साथ एकत्र औटाना। पाकशेष होनेपर त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल; आंवला, जीरा, कालाजीरा, धनिया, वंशलोचन और मोथा; प्रत्येकका चूर्ण ६ तोले इसमें मिलाना। ठण्ढा होनेपर आधा सेर सहत मिलाना। यह परिणाम शूलका श्रेष्ठ औषध है।

हरीतकी खण्ड—त्रिफला, मोथा, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, अजवाइन, त्रिकटु, धनिया, सोंफ, सोवा और लौंग प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, तेवड़ी और सनायका चूर्ण दो दो पल, बड़ीहर्रका चूर्ण ८ पल, चीनी ३२ पल; यथाविधि औटाना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम दूध।

शूलगजकेशरी।

पारा दो तोले और गन्धक ४ तोलेकी कज्जली बना, अर्व्वती नीबूके रसमें खल करना, फिर एक छ तोले वजनके ताम्रपुटके मध्यभागमें वह कज्जलीका लेप करना, तथा एक हांड़ीमें पहिले थोड़ा सेंधानमक

देकर उपर वह ताम्रपुट रख उसके उपर भी थोड़ा सेंधानमक डालकर हांड़ीका मुह मिट्टीमे बन्द करना। गजपुटमें हांड़ी फूंककर दूसरे दिन ताम्रपुटको चूर्ण करना। इसको २ रत्ती मात्रा सेवन करनेसे कष्टसाध्य शूलभी आराम होत है। यह औषध सेवन कर हींग, शोंठ, जीरा, बच और गोलमिरचका चूर्ण आधा तोला गरम पानीसे लेना उचित है।

शूलवज्रिणी वटिका—पारा, गंधक और लोहा प्रत्येक चार चार तोले; सोहागा, हींग, शोंठ, त्रिकटु, त्रिफला, शठी, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, तालीशपत्र, जायफल, लौंग, अजवाइन, जीरा और धनिया प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला। यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें खलकर एक मासा वजनकी गोली बनाना। अनुपान बकरीका दूध या ठण्ढा पानी।

शूलगजेन्द्र तैल—तिलका तैल आठ सेर; एरण्डमूल, दशमूलका प्रत्येक द्रव्य पांच पांच पल, पानी ४५ सेर, शेष ११॥ सेर, जौ ८ सेर पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; दूध १६ सेर और शोंठ, जीरा, अजवाइन, धनिया, पीपल, बच, सेंधव और बेरका पत्ता प्रत्येक दो दो पलका कल्क यथाविधि औटाकर शालिश करना।

उदावर्त्त और आनाह।

नाराच चूर्ण—चीनी ८ तोले, तेवड़ी चूर्ण २ तोले और पीपल चूर्ण ४ तोले एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा भोजनके पहिले सहतमें मिलाकर चाटना।

गुड़ाष्टक—त्रिकटु, पीपलामूल, तेवड़ी, दन्ती और चीताभूल प्रत्येक समभाग; तथा समष्टीके बराबर गुड़में मिलाकर आधा तोला मात्रा सबेरे पानीके साथ देना।

वैद्यनाथ वटी—हरीतकी, त्रिकटु, और पारा प्रत्येक एक एक भाग और जायफल दो भाग शङ्खपुष्पीके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना।

बृहत् इच्छाभेदी रस। पारा, गंधक, सोहागा, गोलमिरच और तेवड़ी प्रत्येक सम-भाग, प्रतीस पारेका दूना और जयपाल की बीज पारेका ९ गूना एकत्र मदारकी पत्तेके रसमें खलकर कण्डेकी हलकी आंचपर औटा लेना, फिर एक रत्ती बराबर गोली ठण्ढे पानीसे देना। यह दवा सेवन कर जबतक गरम पानी न पीवे तबतक दस्त होगा, तथा गरम पानी पीतेही दस्त बन्द हो जायगा। पथ्य—दही और भात।

शुष्कमूलाद्य घृत—सूखी मूली, अदरख, पुनर्नवा, स्वल्प अथवा बृहत् पञ्चमूल और अमिलतासका फल प्रत्येक समभाग, यह सब द्रव्य मिलाकर ८ सेर ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानी रहते उतारकर छान लेना, इस काढ़ेमें ४ सेर घी औटाना। मात्रा एक तोला अनुपान गरम दूध और चीनी। इससे उदावर्त्त आराम होता है।

स्थिराद्य घृत—स्वल्प पञ्चमूल, पुनर्नवा, अमिलतासका फल और नाटाकरञ्ज प्रत्येक दो दो पल चौगूने पानीमें औटाना चतु-र्थांश पानी रहते उतार कर छान लेना, इस काढ़ेमें ४ सेर घी औटाना। यह भी पूर्ववत मात्रा प्रयोग करनेसे उदावर्त्त रोग आराम होता है।

गुल्मरोग।

हिङ्ग्वादि चूर्ण—हींग एक भाग, बच दो भाग, कालानमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हर्रा ६ भाग और कूठ १५ भाग एकत्र मिलाकर चार आने मात्रा गरम पानीसे सेवन करना।

बचादि चूर्ण—बच, हर्रा, हींग, सैंधानमक, अम्लवेतस, जवाखार और अजवाइन; प्रत्येक समभाग एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा गरम पानीसे सेवन करनेसे गुल्मरोग आराम होता है।

सामुद्रलवण, सैंधव लवण, कटैला नमक, जवाखार, सौवर्च्चल नमक, सोहागेका लावा और सज्जीखार

वज्रखार।

प्रत्येक समभाग; सीजका दूध और मदारके दूधको तीन तीन दिन भावना देकर सुखा लेना। फिर मदारका पत्ता लपेटकर एक हांड़ीमें रखना तथा हांड़ीका मुंह बन्दकर चुल्हेपर रख सब द्रव्य अन्तर्धूममें जलाना। यह खार ५ पल और त्रिकटु, त्रिफला, अजवाइन, जीरा और चीतामूल प्रत्येक एक एक तोला, एकत्र मिलाकर चार आनेभर या आधा तोला मात्रासे वाताधिक्य गुल्ममें गरम पानी, पित्ताधिक्यमें घी, कफाधिक्यमें गोमूत्र, त्रिदोषमें कांजी और उदावर्त्त, शोथ, अग्निमान्द्य और शोथादि रोगमें ठण्ढे पानीके अनुपानसे प्रयोग करना।

हीली पोटलीमें बंधा हुआ २५ हर्रा, दन्तीमूल २५ पल, चीतामूल २५ पल, पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर, इस काढ़ेमें २५ पल गुड़ मिलाकर उक्त हर्रा डालकर औटाना। पाकशेष होनेपर तेवड़ी का चूर्ण ४ पल, तिलका तेल ४ पल, पीपलका चूर्ण ४ तोले और सोंठका चूर्ण ४ तोले मिलाकर उतार लेना। ठण्ढा होनेपर सहत ४ पल, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले उसमें मिलाना। मात्रा एक हर्रा और आधा तोला गुड़। इससे विरेचन हो गुल्म, प्लीहा, शोथ, अर्श, हृद्रोग आदि पीड़ा दूर होती है।

दन्ती हरीतकी।

शठी, दन्तीमूल, चीतामूल, अड़हर, सोंठ, बच और तेवड़ीकी जड़, प्रत्येक एक एक पल, हींग ३ पल, जवाखार २ पल, अम्लवेतस २ पल; अजवाईन, जीरा, मिरच और धनिया प्रत्येक दो दो तोले तथा काला जीरा और अजमोदा प्रत्येक आधा तोला एकत्र नीबूके रसमें खलकर आधा तोला मात्राकी गोली बनाना। अनुपान गरम पानी। कफज गुल्ममें गोमूत्रके साथ, पित्तज गुल्ममें दूधके साथ, वातज गुल्ममें कांजीके साथ और रक्तज गुल्ममें गरम दूधके साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है।

काङ्कायन गुड़िका।

पञ्चानन रस—पारा, तुतिया, गन्धक, जयपाल बीज, पीपल और अमिलतासका गूदा समभाग सीजके दूधकी भावना देकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। आंवलेका रस या इमलीके पत्तेके रसके अनुपानमें देनेसे रक्तगुल्म आराम होता है।

पारा, गन्धक, हरिताल, ताम्बा, सोहागा और जवाखार प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, माथा, पीपल, सोंठ, मिरच, गजपीपल, बड़ीहर्रे, बच, और

गुल्म कालानल रस।

कूठ, प्रत्येक का चूर्ण एक एक तोला यह सब द्रव्य ; दवनपापड़ा, मोथा, सोंठ, चिरचिरी और अम्बष्ठाके काढ़ेकी भावना दे सुखाकर चूर्ण करना। मात्रा ४रत्ती बड़ीहर्र भिंगोये पानीमें देनेसे सबप्रकार का गुल्म आराम होताहै, यह वातगुल्मका उत्कृष्ट औषध है।

बृहत् गुल्मकालानल रस। अभरख, लोहा, पारा, गंधक, सोहागा, कुटकी, बच, जवाखार, सज्जीखार, सैंधव, कूठ, त्रिकटु, देवदारु, तेजपत्ता, इलायची, दालचीनी, और खैर ; प्रतेरकका समभाग चूर्ण ; जयन्ती, चीता और धतूरेके पत्तेके रसकी भावना दे ; ४ रत्ती बराबर गोली बनाना तथा सबेरे एक गोली पानी या दूधमें देनेसे पांच प्रकारका गुल्म, यकृत्, प्लीहा, उदर, कामला, पाण्डु, शोथ, हलीमक, रक्तपित्त, अग्निमान्द्य, अरुचि, संग्रहणी, तथा जीर्ण और विषम ज्वर आदि आराम होते हैं।

त्र्यषणाद्य घृत—घी ४ सेर, दूध १६ सेर ; त्रिकटु, त्रिफला, धनिया, विड़ङ्ग, चाभ और चीतामूलका कल्क यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा गरम दूधमें देनेसे वातगुल्म आराम होता है।

नाराच घृत—घी एक सेर ; चीतामूल, त्रिफला, दन्तीमूल, तेवड़ीमूल, कण्टकारी, सीजका दूध और विड़ङ्ग प्रतेरक दो दो तोलेका कल्क और पानी ४ सेर यथाविधि औटाना। गरम पानी या जांगल मांसके रसमें सेवन करनेसे वातगुल्म और उदावर्त्त रोग आराम होता है।

त्रायमाणाद्य घृत। घी एक सेर, त्रायमाणा ४ पल, पानी ४० पल शेष ८ पल ; आंवलेका रस एक सेर, दूध एक सेर और कुटकी, मोथा, त्रायमाणा, जवासा, भुई-

आंवला, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, लालचन्दन और नीलाकमल प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथारीति औटाना। इस घीके सेवन करनेसे पित्तगुल्म, रक्तगुल्म, विसर्प, पित्तज्वर, हृद्रोग और कमला आदि पीड़ा दूर होती है।

हृद्रोग।

ककुभादि चूर्ण—अर्ज्जुन छाल, बच, रास्ना, बरियारा, गुलशकरी, हर्रा, शठी, कूठ, पीपल और सोंठ, प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा गायके घीके साथ सेवन करना।

कल्याणसुन्दर रस—रससिन्दूर, अबरख, चांदी, तांबा, सोना और हिङ्गुल, प्रत्येक समभाग; एक दिन चीताके रसकी और ७ दिन हाथीसुंड़ाके रसकी भावना दे, एकरत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान गरम दूधमें देनेसे हृदगत रोग आराम होता है।

चिन्तामणि रस—पारा, गन्धक, अबरख, लोहा, वङ्ग और शिलाजीत प्रत्येक एक एक तोला; सोना चार आने और चांदी आठ आनेभर एकत्र चीताका रस, भंगरैयाका रस और अर्ज्जुन छालके काढ़ेकी सात सातबार भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बना छायामें सुखा लेना। गोङ्गंके काढ़ेमें यह देनेसे यावतीय हृद्रोग और प्रमेह रोग आराम होता है।

हृदयार्णव रस—पारा, गन्धक और ताम्रभस्म प्रत्येक समभाग; एकत्र त्रिफलाका काढ़ा और काकमाचीके रसकी एक

एक दिन भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाना। अर्ज्जुनछाल का रस या काढ़ेमें यह सेवन करनेसे हृद्रोग शान्त होता है।

विश्वेश्वर रस—सोना, अबरख, लोहा, वङ्ग, पारा, गंधक और वैक्रान्त प्रत्येक एक एक तोला, एकत्र कपूरके पानीकी भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे हृदय और फुसफुसकी विविध पीड़ा शान्त होती है।

श्वदंष्ट्राद्य घृत। घी ४ सेर; गोखुर, खसकी जड़, मजीठ, बरियारा, गम्भारी की छाल, गंधतृण, कुशमूल, पिठवन, ऋषभक और सरिवन, प्रत्येक एक एक पल, पानी १६ सेर शेष ४ सेर; दूध १६ सेर, कंवाच बीज, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीरा, सतावर, ऋद्धि, मुनक्का, चीनी, मुलहठी और मृणाल सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर मात्रा आधा तोला गरम दूधके साथ सेवन करनेसे यावतीय हृद्रोग उरःक्षत, क्षय, शोष, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र आदि पीड़ा शान्त होती है।

अर्ज्जुन घृत—४ सेर घी; अर्ज्जुन छाल ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; यह काढ़ा और अर्ज्जुन छालका कल्क एक सेर; यथाविधि औटाकर सब प्रकारके हृद्रोगमें प्रयोग करना।

मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात।

एलादि काढ़ा—इलायची, पीपल, मुलेठी, पत्थरचूर, रेणुका गोखुर, अडूसा और एरण्डमूलके काढ़ेमें शिलाजीत और चीनी

मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और अश्मरी रोग आराम होता हैं।

वृहत् धात्र्यादि काढ़ा—आंवला, मुनक्का, बिदारीकन्द, मुलेठी, गोक्षुर, कुशमूल, काली इक्षुमूल और हर्रोके काढ़ेमें आधा तोला चीनी मिलाकर पिलाना।

धात्र्यादि काढ़ा—आंवला, मुनक्का, बिदारीकन्द, मुलेठी और गोक्षुरके काढ़ेमें आधा तोला चीनी मिलाकर मूत्रकृच्छ्र आदि रोगमें सेवन कराना।

मूत्रकृच्छ्रान्तक रस—पारा, गन्धक और जवाखार एकत्र मिलाकर चीनी और मट्ठेके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका मूत्र-कृच्छ्र आराम होता हैं।

तारकेश्वर—पारा, गन्धक, लोहा, वङ्ग, अबरख, जवासा, जवाखार, गोक्षुर बीज और हर्रा समभाग, भतुवेका पानी, तृण-पञ्चमूलका काढ़ा और गोक्षुर रसको एक एक दफे भावना दे, एकरत्ती बराबर गोली बनाना, अनुपान सहत और गुल्लरके बीज का चूर्ण एक आनाभर।

वरुणाद्य लौह। वरुणछाल १६ तोले, आंवला १६ तोले, धवईका फूल ८ तोले, हर्रा ४ तोले, पिठवन २ तोले, लोहा २ तोले और अबरख २ तोले एकत्र मिलाकर एक आना मात्रा उपयुक्त अनुपानके साथ प्रयोग करना। यह मूत्रदोष निवारक, बलकारक और पुष्टिकर है।

कुशावलेह। कुश, काश, खस, काली ऊख और सरकण्ड प्रत्येकको जड़ १० पल, पानी ६४ सेर शेष ८ सेर; इस काढ़ेमें २ सेर चीनी मिलाकर औटाना। गाढ़ा होजानेपर नीचे उतारकर मुलेठी, कांकड़ीको

बीज, कोहड़ेकी बीज, खीरेकी बीज, वंशलोचन, आंवला, तेज-पत्ता, दालचीनी, इलायची, नागेश्वर, वरुणछाल, गुरिच और प्रियङ्गु; प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले उसमें मिलाकर रखना। मात्रा एक तोला अनुपान पानीके साथ देनेसे सब प्रकारका मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात अश्मरी और प्रमेह आदि पीड़ा दूर होती है।

सुकुमार कुमारक घृत।

पुनर्नवा १०० पल और दशमूल, शतावर, बरियारा, असगन्ध, तृणपञ्चमूल, गोखुर, सरिवन, गुलशकरी, गुरिच और सफेद बरियारा, प्रत्येक १० पल, एकत्र १२८ सेर पानीमें औटाना ३२ सेर पानी रहते उतार कर छान लेना, फिर इस काढ़ेमें ३२ सेर गुड़ और रेंड़ीका तैल ४ सेर मिलाना तथा मुलेठी, भदरख, मुनक्का, सेंधानमक और पोपल प्रत्येक १६ तोलेका कल्क और अजवाइन आधा सेरके साथ ८ सेर घी यथाविधि औटाकर भोजनके पहिले आधा तोला मात्रा सेवन करना। इससे मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, कटिस्तम्भ, मल-काठिन्य; लिङ्ग, पट्टा और योनिशूल, गुल्म, वायु और रक्तदुष्टि जन्य पीड़ा आदि दूर हो बलवृद्धि और शरीर पुष्ट होता है।

त्रिकण्टकाद्य घृत।

घी ४ सेर, गोखुर दो सेर, एरण्डमूल दो सेर, तृणपञ्चमूल २ सेर, प्रत्येकका अलग अलग औटाना। फिर सतावरका रस ४ सेर, भतुवेका रस ४ सेर और इक्षुरस ४ सेरके साथ औटाना। पाक शेष होनेपर गरम रहते ही छानकर उसमें दो सेर गुड़ मिलाना। मात्रा एक तोला अनुपान गरम दूध, इससे मूत्रकृच्छ्रादि पीड़ा शान्त होती है।

घी १६ सेर, दूध ६४ सेर; चीतामूल, अनन्तमूल, बरियारा,

चित्रकाद्य घृत। तगरपादुका, मुनक्का, इन्द्रवारुणी, पीपल, चित्रफला, (गुलशकरी) मुलेठी और आंवला प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। तथा ठण्ढा होनेपर छान लेना। फिर इसके साथ चीनी दो सेर और बंशलोचन दो सेर मिलाना। यह घी आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकारका मूत्रदोष, शुक्रदोष, योनिदोष और रक्तदोष दूर हो शुक्र और आयुकी वृद्धि होती है।

धान्यगोक्षुरक घृत—घी ४ सेर, धनिया और गोक्षुर चार चार सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; यह काढ़ा और गोक्षुर धनिया प्रत्येक आधा सेरका कल्क यथाविधि औटाकर मूत्राघातादि पीड़ामें प्रयोग करना।

घी ४ सेर, बिदारीकन्द, अडूसा, ऊखकी जड़, शर्बती नीबू, गन्धतृण, पाथरचूर, लताकस्तूरी, अकवन, गजपीपल, चीतामूल, पुनर्नवा, बच, रास्ना, बरियारा, गुलशकरी, कसेरू, मृणाल, सिङ्घाड़ा, भूंई-आंवला, सरिवन और शर, इक्षु, दर्भ, कुश और काशकी जड़ प्रत्येक दो दो पल; पानी ६४ सेरमें औटाना शेष १६ सेर। तथा सतावरका रस ४ सेर, आंवलेका रस ४ सेर, दूध ८ सेर; चीनी ६ पल; मुलेठी, पीपल, मुनक्का, गम्भारी, फालसा, इलायची, अवासा, रेणुका, केशर, नागेश्वर और जीवनीयगण प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाना। यह मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, हृद्रोग, शुक्रदोष, रजोदोष, योनिदोष और क्षय आदि रोगोंमें प्रयोग करना।

विदारी घृत।

शिलोद्भिदादि तैल—तिलका तेल ४ सेर, पुनर्नवा और सतावरका रस १६ सेर, पाथरचूर, एरण्डमूल और सरिवन

मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाना, आधा तोला मात्रा गरम दूधमें मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्रादि पीड़ा शान्त होती है।

तिलका तैल ४ सेर; फल, पत्ता और मूल सह गोखुर १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, खसकी जड़ १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, मट्ठा ४ सेर; तथा खसकी जड़, तगरपादुका, कूठ, मुलेठी, लालचन्दन, बहेड़ा, हर्रो, कण्टकारी, पद्मकाष्ठ, नीलाकमल, अनन्तमूल, बरियारा, असगंध, दशमूल, सतावर, विदारीकन्द, काकोली, गुरिच, गुलशकरी, गोखुर, सोंवा, सफेद बरियारा और सौंफ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर मूत्रकृच्छ्रादि रोगमें मर्द्दन करना।

उशीराद्य तैल।

अश्मरी।

शुण्ठ्यादि काढ़ा—सोंठ, गनियारी, पाथरचूर, सैजनछाल, बरुणछाल, गोखुर, हर्रो और अमिलतासका फल, इन सबके काढ़ेमें हींग, जवाखार और सेंधानमक मिलाकर पीनेसे अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र आदि पीड़ा आराम होती हैं।

बृहत् बरुणादि—बरुणछाल, सोंठ, गोखुर बीज, तालमूली, कुरथी और तृणपञ्चमूल, इन सबके काढ़ेमें चार आनेभर चीनी और चार आनेभर जवाखार मिलाकर पीनेसे अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, और बस्तिशूल आराम होता हैं।

पारा एकभाग और गन्धक दो भाग श्वेतपुनर्नवाके रसमें एक दिन खलकर एक हांड़ीमें रखना, तथा दूसरी हांड़ी ऊपरसे औंधीरख मिट्टीसे लेप करना, फिर एक गढ़ेमें हांड़ीको रख, ऊपर कण्डेकी आंच लगाना। पाक शेष होनेपर गुड़के साथ खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान इन्द्रवारुणीके जड़का काढ़ा अथवा कुरथीका काढ़ा, पथरी और वस्तिशूल रोगमें प्रयोग करना।

पाषाणवज्र रस।

पारा एक पल, गन्धक २ पल और शिलाजीत एक पल; एकत्र श्वेतपुनर्नवा, अडूसा और श्वेत अपराजिताके रसमें एक एक दिन खलकर सूख जानेपर एक भाण्डमें रख मुंह बन्द करना। दूसरी हांड़ीमें पानी देकर बीचमें वह भाण्ड लटकाकर आगपर रखना। फिर निकालकर भूंईआंवलेका फल, इन्द्रवारुणीकी जड़ और दूधके साथ एक एकबार खलकर २ रत्ती बराबर गोली दूध अथवा कुरथीके काढ़ेमें देना।

पाषाणभिन्न।

शोधित ताम्बा और बकरीका दूध समभाग लेकर एकत्र औटाना, दूध निःशेष होजानेपर ताम्बेके बराबर पारा और गंधक की कज्जली मिलाना; फिर निर्गुण्डीके पत्तेके रसमें एक दिन खलकर गोला बनाना तथा इस गोलेको एक प्रहर वालुका यन्त्रमें पाक करना। २ रत्ती मात्रा शर्बती नीबूके जड़का रस या पानीके अनुपानमें सेवन करनेसे पथरी और शर्करा रोग दूर होता है।

त्रिविक्रम रस।

घी ४ सेर, वरूणछाल ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर यह काढ़ा और कुरथी, सेंधानमक, विड़ङ्ग, चीनी, तगरपादुका, जवाखार, कोहड़ेकी

कुलत्थाद्य घृत।

बीज और गोक्षुर बीज, प्रत्येक एक पलका कल्क, यथाविधि औटाना; मात्रा एक तोला गरम दूधके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात दूर होता है।

वरुणाद्य घृत। घी ४ सेर; वरुणछाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, वरुणके जड़की छाल, केलेकी जड़, बेलकी छाल, पञ्चतृणमूल, गुरिच, शिलाजीत, कंकड़ीकी बीज, बांसकी जड़, तिलके लकड़ीका खार, पलाशका खार और जूहीकी जड़ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा प्रयोग करनेसे अश्मरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्रादि पीड़ा दूर होती है।

वरुणाद्य तैल—वरुणकी छाल, पत्ता, फूल और फल इसमेंसे जो मिले वह और गोक्षुर ये दो द्रव्योंके काढ़ेमें यथाविधि तैलपाक कर वस्ति और ब्रतस्थानमें मालिश करनेसे अश्मरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है।

प्रमेह।

एलादि चूर्ण—इलायची, शिलाजीत, पीपल और पत्थरचूर, इन सबका समभाग चूर्ण आधा तोला मात्रा चावल भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे प्रमेह जल्दी शान्त होता है।

मेहकुलान्तक रस। वङ्ग, अबरख, पारा, गंधक, चिरायता, पीपलामूल, त्रिकटु, त्रिफला, तेवड़ी, रसवत, विड़ङ्ग, मोथा, बेलकी गिरी, गोक्षुर बीज और अनारकी बीज प्रत्येक एक एक तोला, शिलाजीत ८ तोले; एकत्र जङ्गली कंकड़ीके रसमें मर्द्दनकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। बकरी

का दूध, आंवलेका रस और कुरथीका काढ़ा आदि अनुपानमें देनेसे प्रमेह मूत्रकृच्छ्रादि रोग शान्त होता है।

मेहमुद्गर वटिका।

रसाञ्जन, कालानमक, देवदारु, बेलकी गिरी, गोखुर बीज, अनार, चिरायता, पीपलामूल, गोखुर, त्रिफला और तेबड़ीकी जड़, प्रत्येक एक तोला, लौहचूर्ण ११ तोले और गुग्गुलु ८ तोले, एकत्र घीके साथ खलकर दो आनेभरकी गोली बनाना। अनुपान बकरीका दूध या पानी। इससे प्रमेह मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और अश्मरी आदि रोग आराम होता हैं।

वङ्गेश्वर—रससिन्दूर और वङ्ग समभाग पानीमें खलकर एक आनेभरकी गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ सब प्रकारके प्रमेह रोगमें प्रयोग करना।

वृहत् वङ्गेश्वर—वङ्ग, पारा, गंधक, रौप्य, कपूर और अभरख प्रत्येक दो दो तोले, सोना और मोती प्रत्येक आधा तोला, एकत्र कसेरूके रसकी भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ प्रयोग करनेसे प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और सोमरोग आदि पीड़ा दूर होती है।

सोमनाथ रस।

पालिधा रसमें सोधा हुआ हिङ्गुलोत्थ पारा २ तोले और घृतकुमारीके पत्तेके रसमें सोधा हुआ गंधक दो तोलेकी कज्जली बना, उसके साथ ८ तोले लोहा मिलाकर घिकुआरके रसमें खल करना। फिर उसमें अभरख, वङ्ग, रौप्य, खर्पर, स्वर्णमाक्षिक और स्वर्ण प्रत्येक एक एक तोला मिलाकर घिकुआर और खुलकुड़ीके रसकी भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाकर उपयुक्त अनुपानके साथ प्रमेह मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और बहुमूत्र रोगमें प्रयोग करना।

इन्द्रवटी—रससिन्दूर, बङ्ग और अर्जुनछाल प्रत्येक समभाग; एकत्र सेमरके मुसरीके रसमें एक दिन खलकर मासेभरकी गोली बनाना। सहत और सेमरके मुसलीके चूर्णके साथ सेवन करनेसे प्रमेह और मधुमेह दूर होता है।

स्वर्णवङ्ग।

पारा, नौसादर और गंधक प्रत्येक समभाग। पहिले वङ्ग आगपर गलाना फिर उसमें पारा देना, दोनो मिल जानेपर नौसादर और गंधक का चूर्ण मिलाकर खल करना। फिर एक कांचकी शीशीमें भर-कर शीशीको कपड़ मिट्टीकर सुखा लेना, तथा मकरध्वजकी तरह वालुका यन्त्रमें पाक करना। स्वर्णवर्णकी तरह उज्वल पदार्थ तयार होनेसे उसे स्वर्णवङ्ग जानना। उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे प्रमेह, शुक्रतारल्य आदि पीड़ा दूर हो बलवर्ण की वृद्धि होती है।

वसन्तकुसुमाकर रस।

सोना १ भाग, चांदी २ भाग; वङ्ग, सीसा और लोहा प्रत्येक तीन तीनभाग; अवरख, प्रवाल और मोती प्रत्येक चार चार भाग; यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर यथाक्रम गायका दूध, ऊखका रस, अडूसेकी छालका रस, लाहका काढ़ा, केले के जड़का रस, केले के फूलका रस, कमलका रस, मालतीफूलका रस और कस्तूरी; इन सब द्रव्योंकी अलग अलग भावना दे २रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान घी, चीनी और सहत। यह पुराने प्रमेहकी दवा है। चीनी और चन्दनके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्तादि रोगभी शान्त होता है।

प्रमेहमिहिर तैल।

तिल तैल ४ सेर, लाह ८ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; सतावरका रस ४ सेर, दूध ४ सेर, दही १६ सेर; सोया, देवदारु, मोथा, हलदी,

दारुहलदी, मूर्व्वामूल, कूठ, असगंध, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन रेणुका, कुटकी मुलेठी, रास्ना, तालमीमी, इलायची, बमनेठी, चाभ, धनिया, इन्द्रयव, करंज बीज, अगर, तेजपत्ता, त्रिफला, मालुका, बाला बरियारा, गुलशकरी, मजीठ, सरलकाठ, पद्मकाठ, लोध, सौंफ, बच, जीरा, खसकी जड़, जायफल, अडूसेकी छाल और तगरपादुका; प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; यथाविधि पाककर प्रमेह, विषम ज्वर और दाह आदि विविध पीड़ामें मर्द्दनार्थ प्रयोग करना।

सोमरोग।

तारकेश्वर रस—रससिन्दूर, लोहा, वङ्ग और अबरख, प्रत्येक समभाग सहतके साथ एक दिन खलकर मासिभरकी गोली बनाना। सहत और गुल्लरके बीजका चूर्ण एक आनेभर मिलाकर सेवन करनेसे बहुमूत्र रोग आराम होता है।

हेमनाथ रस—पारा, गंधक, सोना और स्वर्णमाक्षिक प्रत्येक एक एक तोला, लोहा, कपूर, प्रवाल, और वंग प्रत्येक आधा तोला, एकत्र अफीमके काढ़ेको, केलेके फूलके रसको और गुल्लरके रसको सात सात बार भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानमें देनेसे बहुमूत्र रोग आराम होता है।

बृहत् धात्री घृत।

घी ४ सेर, आंवलेका रस ४ सेर अभावमें २ सेर आंवला १६ सेर पानीमें औटाना ४ सेर पानी रहते उतार कर वही काढ़ा लेना। बिदारीकंदका रस ४ सेर, सतावरका रस ४ सेर, दूध ४ सेर, लघुपंचमूल

का काढ़ा ४ सेर ; तथा इलायची, लौंग, त्रिफला, कयेथ, बाला, सरलकाष्ठ, जटामांसी, केलेका जड़ और कमलकी जड़, प्रत्येक ६ तोलेका कल्क यथाविधि औटाना, तथा छानकर मुलेठी, तेवड़ी, जवाखार और बिधारेकी जड़, प्रत्येक का चूर्ण एक एक पल और चीनी ८ पल उसमें मिलाना। ठंढा होनेपर ८ पल मधु मिलाना। आधा तोलासे एक तोलातक मात्रा यह घी सेवन करनेसे ; बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और तृष्णा, दाह आदि शान्त होता है।

कदल्यादि घृत। घी ४ सेर, केलेका फूल १२॥ सेर, केलेकी जड़का रस ६४ सेर शेष १६ सेर यह काढ़ा; तथा लालचन्दन, सरलकाष्ठ, जटामासी, कदलीमूल, इला-यची, लौंग, हर्रा, आंवला, नीलोत्पल की जड़, सिंघाड़ेकी जड़, बड़, पीपर, गूलर, पाकड़, पियाल, वयसा, आम, जामुन, बेर, मौलसरीका फूल, महुआ, लोध, अर्जुन, कुंद, कुटकी, कदम्ब, शिरीष और पलास प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; यथाविधि औटाकर पूर्व्वोक्त मात्रा प्रयोग करनेसे बहुमूत्रादि यावतीय मूत्र-दोष दूर होते है।

शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग।

शुक्रमातृका वटी। गोक्षुरबीज, त्रिफला, तेजपत्ता, इलायची, रसवत, धनिया, चाभ, जीरा, तालीशपत्र, सोहागा और अनार की बीज, प्रत्येक १ तोले, गुग्गुलु २ तोले, पारा, अबरख, गंधक और लोहा, प्रत्येक ८ तोले ;

एकत्र अनारके रसमें खलकर ३ रत्ती मात्रा अनारका रस, बकरीका दूध या पानीके अनुपान में सेवन करनेसे शुक्रस्राव, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्रादि पीड़ा शान्त होती है।

चन्द्रोदय मकरध्वज।

जायफल, लौंग, कपूर और गोलमिरच प्रत्येक एक तोला, सोना दो आनेभर, कस्तूरी दो आनेभर, रससिन्दूर ४।० तोले; एकत्र खलकर ४ रत्ती बराबर गोली बनाना। मक्खन मिश्री या पानका रस आदि अनुपानके साथ यह औषध सेवन करनेसे विविध पीड़ा शान्त हो बलवीर्य्य और अग्निकी वृद्धि होती है।

पूर्णचन्द्र रस।

पारा ४ तोले, गंधक ४ तोले, लोहा ८ तोले, अबरख ८ तोले, चांदी २ तोले, बङ्ग ४ तोले, सोना, ताम्बा और कांसा प्रत्येक एक एक तोला; जायफल, लौंग, इलायची, दालचीनी, जीरा, कपूर, प्रियंगु और मोथा प्रत्येक दो दो तोले; यह सब द्रव्य एकत्र घिकुआरके रसमें खलकर त्रिफलाका काढ़ा और एरण्डमूलके रसकी भावना देना, फिर एरण्डके पत्ते में लपेटकर धान्यराशि में तीन दिन रखना। तीन दिन बाद चने बराबर गोली बनाना। पानके रसमें यह औषध सेवन करनेसे शुक्र, बल और आयु बढ़ता है, तथा प्रमेह, बहुमूत्र, ध्वजभंग, अग्निमान्द्य, आमवात, अजीर्ण, ग्रहणी, अम्लपित्त, अरुचि, जीर्णज्वर, हृत्शूल और विविध वायुविकार आराम होता है।

महालक्ष्मीविलास रस।

अबरख ८ तोले, गंधक ४ तोले, पारा ४ तोले, वंग २ तोले रौप्य १ तोला, स्वर्णमाक्षिक १ तोला, ताम्र आधा तोला, कपूर ४ तोले, जावित्री जायफल विधारेकी बीज और धतुरेकी बीज, प्रत्येक दो दो तोले

तथा सोना एक तोला; एकत्र पानके रसमें मर्द्दनकर २ रत्ती बराबरकी गोली बनाना। पानका रस अथवा उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे प्रमेह, शुक्रक्षय, लिंगशैथिल्य, सन्निपात ज्वर और यावतीय शुक्रज व्याधि निराकृत होती है। मुमूर्षु अवस्थामें जब शरीर शीतल होजाता है, उस वक्त इस औषध से विशेष उपकार होता है।

वटांकुर रस।

पारा एक तोला, गंधक २ तोले, सोना एक तोला, रौप्य आधा तोला, सीसा, ताम्बा, खर्पर और वंग प्रत्येक चार आनेभर; यह सब द्रव्य एकत्र बटांकुरके रसमें एक प्रहर, घिकुआरके रसमें एक प्रहर, खलकर मकरध्वजकी तरह पाक करना। पाकशेष होनेपर अनारके फूलकी तरह रंग होता है। २ रत्ती मात्रा पानके रसमें यह औषध सेवन करनेसे शुक्र, बल, पुष्टि, मेधा और कान्तिकी वृद्धि होती है तथा वलिपलित आदि रोग दूर होता है।

मन्मथाभ्र रस।

पारा, गंधक और अबरख प्रत्येक ४ तोले, कपूर और वङ्ग प्रत्येक एक एक तोला, ताम्बा आधा तोला, लोहा २ तोले और बिधारेकी बीज, जीरा, बिदारीकन्द, सतावर, तालमखाना, बरियारा, कवांच, अतीस, जावित्री, जायफल, लौंग, भांगकी बीज, सफेद राल, और अजवाइन प्रत्येक आधा तोला, एकत्र पानीके साथ मर्द्दनकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। यह गरम दूधके साथ सेवन करनेसे ध्वजभङ्गादि रोग आराम होता है।

मकरध्वज रस।

शोधित सोनेका पतला पत्तर एक पल, पारा एक पल और गंधक २४ पल; एकत्र लालरंगके कपास फूलके रसमें और घिकुआरके रसमें खलकर

मकरध्वजकी तरह फूंकना। फिर वही मकरध्वज एक तोला, कपूर, लौंग, मिरच और जायफल प्रत्येक ४ तोले, कस्तूरी ६ मासे एकत्र खलकर २ रत्ती मात्रा पानके रसमें सेवन करनेसे ध्वजभङ्गादि रोग दूर होता है।

अमृतप्राश घृत।

घी ४ सेर, छागमांस १२॥ सेर और असगन्ध १२॥ सेर, अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर रहते छानकर रखना। बकरीका दूध १६ सेर; बरियारेकी जड़, गोधूम, असगन्ध, गुरिच, गोखुर, कसेरू, त्रिकटु, धनिया, तालाङ्कुर, त्रिफला, कस्तूरी, कंवाच बीज, मेद, महामेद, कूठ, जीवक, ऋषभक, शठी, दारुहलदी, प्रियङ्गु, मजीठ, तगरपादुका, तालिशपत्र, इलायची, तेजपत्ता, दालचीनी, नागेश्वर, जातीपुष्प, रेणुका, सरलकाष्ठ, जावित्री, छोटी इलायची, नीलाकमल, अनन्तमूल, जीवन्ती, ऋद्धि, वृद्धि और गुग्गुल प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, तथा मूर्च्छाके लिये केशर ४तोले, यथाविधि औटाकर छान लेना फिर एक सेर चीनी मिलाकर आधा तोलासे एक तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे ध्वजभङ्ग, शुक्रहीनता, आर्त्तवहीनता और क्षीण रोगादि दूर होते है।

वृहत् अश्वगन्धा घृत।

घी ४ सेर, असगन्ध १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६; छागमांस २५ सेर, पानी १२८ सेर शेष ३२ सेर, दूध १२ सेर; तथा काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेद, महामेद, जीवक, ऋषभक, कंवाच की बीज, इलाबची, मुलेठी, मुनक्का मागोनी, माषोनी, जीवन्ती, पीपल, बरियारा, सतावर और बिदारीकन्द सब मिलाकर एक सेरका कल्क, यथाविधि औटाना पाकशेष होनेके थोड़ी देर पहिले एक दफे छानकर फिर औटाना। पाकशेष तथा ठण्ढा

होनेपर आधा सेर चीनी मिलाना। पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करनेसे उक्त रोग सब आराम होते हैं।

कामेश्वर मोदक।

कूठ, गुरिच, मेथी, मोचरस, बिदारीकन्द, तालमूली गोक्षुर, तालमखाना, सतावर, कसेरू, अजवाइन, धनिया, मुलेठी, गुलशकरी, तिल, सौंफ, जायफल, सैन्धव, बरंगी, काकड़ाशिंगी, त्रिकटु, जीरा, कालाजीरा, चीतामूल, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, पुनर्नवा, गज-पीपल, मुनक्का, शठी, कायफल, सेमरकी जड़, त्रिफला और कंवाच की बीज प्रत्येकका समभाग चूर्ण; समष्टीका चौथा हिस्सा अभ्रभस्म तथा समष्टीके दोभागका एकभाग भांगका चूर्ण, समष्टीके आठभाग का एकभाग गंधक और समष्टीकी दूनी चीनी; यह सबद्रव्य उपयुक्त घी और सहतमें मिलाकर मोदक बनाना। आधातोलासे २तोलेतक मात्रा गरमदूधकेसाथ सेवनकरनेसे वीर्य्यवृद्धि और वीर्य्यस्तम्भ होता है।

कामाग्निसन्दीपन मोदक।

पारा, गन्धक, अबरख, जवाखार, सज्जीखार, चीतामूल, पञ्च लवण, शठी अजवाइन, अजमोदा, वाय-विड़ङ्ग, और तालीशपत्र प्रत्येक दो दो तोले; जीरा, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, लौंग और जायफल, प्रत्येक ४ तोले; विधारेकी बीज और त्रिकटु प्रत्येक ६ तोले; धनिया, मुलेठी, सौंफ और कसेरू प्रत्येक ८ तोले; सतावर, बिदारीकन्द, त्रिफला, हस्तिकर्ण पलाशकी छाल, गुलशकरी, कंवाचकी बीज और गोक्षुर बीज प्रत्येक १० तोले; समष्टीके बराबर सबीज भांगका चूर्ण, तथा सर्व समष्टीके बरा-बर चीनी; उपयुक्त घी और सहत तथा २ तोले कपूर मिला-कर मोदक बनाना। मात्रा चार आनेभरसे १ तोलातक गरम दूधके साथ सेवन करनेसे अपरिमित शुक्र और मैथुनशक्ति वृद्धि

होती है तथा मेह, ग्रहणी, कास, अम्लपित्त, शूल, पार्श्वशूल, अग्निमान्द्य और पीनस आदि रोग दूर होते हैं।

मदनमोदक। त्रिकटु, त्रिफला, काकड़ाशिंगी, कूठ, सैन्धव, धनिया, शठी, तालीशपत्र, कायफल, नागेश्वर, मेथी, थोड़ा भूना हुआ सफेद और कालाजीरा प्रत्येक समभाग; सबके बराबर घीमें भूनी सबीज भांगका चूर्ण; एकत्र उपयुक्त घी और शहतमें मिलाना, फिर उसमें दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और थोड़ा कपूर मिलाकर सुगन्धित करना। यह मोदक चार आनेभरसे १ तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे शुक्र और रतिशक्तिकी वृद्धि तथा कास, शूल, संग्रहग्रहणी और वातश्लेष्मज पीड़ा शान्त होती है।

मदनानन्द मोदक। पारा, गंधक, लोहा, प्रत्येक एक एक तोला; अबरख ३तोले; कपूर, सैंधव, जटामांसी, आंवला, इलायची, शोंठ, पीपल, मिरच, जावित्री, जायफल, तेजपत्ता, लौंग, जीरा, कालाजीरा, मुलेठी, बच, कूठ, हलदी, देवदारु, हिजल बीज, सोहागा, बरंगी, शोंठ, नागेश्वर, कांकड़ाशिंगी, तालीशपत्र, मुनक्का, चीतामूल, दन्तीबीज, बरियारा, गुलशकरी, दालचीनी, धनिया, गजपीपल, शठी, बाला, मोथा, गंधाली, बिदारीकन्द, सतावर, अकवनकी जड़, कौंचका बीज, गोखुर बीज, बिधारेकी बीज और भांगका बीज प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, यह सब चूर्ण सतावरके रसमें खलकर सुखा लेना, फिर सब चूर्णके चार भागका एकभाग सेमरके मुसरीका चूर्ण, सेमरके मुसरीका चूर्ण मिले हुए सब चूर्णका आधा भांगका चूर्ण तथा सब चूर्णका दूनी चीनी। पहिले उपयुक्त बकरीके दूधमें चीनी मिलाकर औटाना आसन्न पाकमें चूर्ण मिलाना। पाकशेष

होनेपर दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, कपूर, सेंधव और त्रिकटु चूर्ण थोड़ा थोड़ा मिलाना। ठण्ढा होनेपर घी और सहत मिला रखो। मात्रा चार आनेभरसे आधा तोलातक दूधके साथ। इससे शुक्र और रतिशक्ति वृद्धि हो सूतिका, अग्निमान्द्य और कास आदि विविध रोग आराम होते हैं।

रतिवल्लभ मोदक।

चीनी दो सेर, सतावरका रस ४ सेर, भांगका काढ़ा ४ सेर, गायका दूध ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, घी ५ पल, भांगका चूर्ण ५ पल, आंवला, जीरा, कालाजीरा, मोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, कंवाच बीज, गुलशकरी, तालके गुठलीका अङ्कुर, कसेरू, सिंघाड़ा, त्रिकटु, धनिया, अबरख, वङ्ग, हर्रा, मुनक्का, काकोली, क्षीर-काकोली, पिण्डखजूर, तालमखाना, कुटकी, मुलेठी, कूठ, लौंग, सेंधव, अजवाइन, अजमोदा, जीवन्ती और गजपीपल, प्रत्येक दो दो तोले। एकत्र औटाना पाकशेष तथा ठण्ढा होनेपर सहत दो पल, थोड़ा कस्तूरी और कपूर मिलाकर मोदक तयार करना। पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करनेसे पूर्व्वोक्त उपकार होता है।

नागवलादि चूर्ण—पानका जड़, बरियारेका जड़, मूर्व्वा-मूल, जावित्री, जायफल, मुरामांसी, चिरचिड़ीकी जड़, काकोली, क्षीरकाकोली, कङ्कोल, खसकी जड़, मुलेठी और वच, प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा सोनेके आधा घण्टा पहिले दूधके साथ सेवन करनेसे वीर्य्यस्तम्भ होता है।

अकरकरादि वटिका।

बनतुलसीकी जड़, चोरकंचकी जड़, गोगुरूकी जड़, कसेरूकी जड़, जायफल, लौंग, विड़ङ्ग, गजपीपल, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, वंशलोचन, अनन्तमूल, तालमूली, सतावर, बिदारीकन्द

और गोक्षुर बीज, यह सब द्रव्य बबूलके गोंदमें खलकर एक माशा बराबर गोली बनाना। दूध अथवा सुरामंड अनुपानके साथ सेवन करनेसे वीर्य्यस्तम्भ और शुक्रवृद्धि होता है।

शुक्रवल्लभ रस—पारा, गंधक, लोहा, अबरख, चांदी, सोना, और स्वर्णमाक्षिक प्रत्येक आधा तोला, वंशलोचन दो तोले, भांगके बीज का चूर्ण ८ तोले ; एकत्र भांगके काढ़ेमें खलकर माशे बराबर गोली बनाना। अनुपान दूधके साथ सेवन करनेसे वीर्य्य-स्तम्भ और रतिशक्ति वृद्धि होती है।

कामिनीविद्रावन रस—अकरकरा, शोंठ, लौंग, केसर, पीपल जायफल, जाविती और लालचन्दन प्रत्येक दो दो तोले ; हिंगुल और गंधक प्रत्येक आधा तोला और अफीम ८ तोले ; एकत्र पानीके साथ मर्द्दनकर ३ रत्ती बराबर गोली बनाना। सोनेके पहिले दूधके साथ एक गोली सेवन करनेसे वीर्य्यस्तम्भ और रति-शक्ति बढ़ती है।

पा: शार तैल।

तिलका तेल, त्रिफलाका काढ़ा, लाहका काढ़ा, भंगरैया का रस, सतावरका रस, अतुवेका पानी, दूध और कांजी प्रत्येक ४ सेर। पीपल, हर्रा मुनक्का, त्रिफला, नीलाकमल, मुलेठी, क्षीरकाकोली प्रत्येक एक एक तोलाका कल्क यथाविधि औटाकर कपूर, नखी, कस्तूरी, गन्धाबिरोजा, जाविती, और लौंग प्रत्येक का चूर्ण ४ तोले मिलाना। यह वायु और पित्तजनित विविध रोग और शूल, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी आदि पीड़ा नाशक है।

श्रीगोपाल तैल।

तिलका तेल १६ सेर, सतावर का रस, अतुवेका पानी, और आंवलेका रस वा काढ़ा १६ सेर, असगंध, कटसरैया, और बरियारा प्रत्येक १००

पलका कल्क; अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर रखना। वृहत् पंचमूल, कंटकारी, मूर्व्वामूल केवड़े की जड़, नाटा करञ्ज की जड़ और पालिधा छाल प्रत्येक १० पल ६४ सेर पानी, शेष १६ सेर; असगंध, क्षीरकंचुकी, पद्मकाठ, कंटकारी, बरियारा, अगरु, मोथा, खटासी, शिलारस, अगरु, लालचन्दन, सफेद चन्दन, त्रिफला, मूर्व्वामूल, जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली, क्षीरकाकोली, मासोनी, माषोनी, जीवन्ती, मुलेठी, त्रिकटु, केशर, कस्तुरी, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, शैलज, नखी, नागरमोथा, मृणाल, नीलाकमल, खसकी जड़, जटामांसी, मुरामासी, देवदारु, बच, अनारका बीज, धनिया, कचूर, टौना, और छोटी इलायची, प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। यह तैल मालिश करनेसे यावतीय वायुरोग प्रमेह, शूल और ऊरुभंग आराम होता है।

मेदरोग।

अमृतादि गुग्गुलु—गुरिच एकभाग, छोटी इलायची दो भाग, विड़ंग ३ भाग, कुरैया ४ भाग, इन्द्रयव ५ भाग, हर्रा ६ भाग, आंवला ७ भाग और गुगुलु ८ भाग, एकत्र मधुके साथ मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे मेदोरोग और भगन्दरादि पीड़ा शान्त होती है।

नवकगुग्गुलु—त्रिकटु, चीतामूल, त्रिफला, मोथा, विड़ंग और गुग्गुलु समभाग एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे मेदोरोग, श्लेष्मादोष और आमवात आराम होता है।

त्र्यूषणादि लौह—त्रिकटु, भांग, चाभ, चीतामूल, काला नमक, औद्भिद लवण, सोमराजी, सैन्धव और सौवर्च्चल नमक प्रत्येक समभाग, समष्टीके बराबर लौहभस्म एकत्र मिलाकर ४ रत्ती मात्रा घी और सहतके साथ सेवन करनेसे मेदोरोग और प्रमेह आदि पीड़ा शान्त होती है।

तिलका तेल ४ सेर; तुलसी या कालीतुलसी का रस १६ सेर; त्रिफला, अतीस, मूर्व्वामूल, अडूसेकी छाल, नीमकी छाल, अमिलतासका गूदा, वच, छातिम छाल, हलदी, दारुहलदी, गुरिच, निर्गुण्डी, पीपल, कूठ, सरसों और सोंठ सब मिलाकर एक सेर का कल्क यथाविधि औटाकर पान, अभ्यङ्ग, नस्य और वस्तिकार्य्यमें प्रयोग करनेसे शरीर की स्थूलता और कंडू आदि पीड़ा दूर होती है।

त्रिफलाद्य तैल।

उदररोग।

पुनर्नवादि क्वाथ—पुनर्नवा, देवदारु, हलदी, कुटकी, परवर का पत्ता, हर्रा, नीमकी छाल, मोथा, सोंठ और गुरिच; इस काढ़ेमें गोमूत्र और गुग्गुलु मिलाकर पीनेसे उदर रोग, शोथ, कास, श्वास, शूल और पांडुरोग आराम होता है।

सामुद्राद्य चूर्ण—कटैला, सौवर्च्चल, सैन्धव लवण, जवाखार, अजवाइन, अजमोदा, पीपल, चीतामूल, सोंठ, हींग और काला नमक प्रत्येक समभाग; घी मिलाकर चार आनेभर मात्रा भोजन के पहिले ग्रासमें मिलाकर खानेसे वातोदर, गुल्म, अजीर्ण और अहची आराम होता है।

नारायण चूर्ण। अजवाईन, धनिया, कालाजीरा, सौंफ, पीपलामूल, अजमोदा, शठी, बच, सोया, जीरा, त्रिकटु, स्वर्णक्षीरी, चीतामूल, जवाखार, सज्जीखार पांचोनमक, और वायविड़ंग प्रत्येक एक एक भाग, कूठ दो भाग, तेवड़ी २ भाग, दन्तोमूल ३ भाग, इन्द्रायण दो भाग, वर्म्मकषा ४ भाग एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा मट्ठेके साथ सेवन करनेसे उदररोग, बेरके काढ़े से गुल्म रोगमें, मलभेदमें दहीके पानीके साथ, अर्शरोग में अनारके रसमें, उदर और मलद्वारके दर्दमें बेकल भिंगोये पानीके साथ तथा अजीर्ण अनाह आदि रोगोंमें गरम पानीके साथ सेवन करना।

इच्छाभेदी रस—सोंठ, गोलमिरच, पारा, गंधक और सोहागा प्रत्येक एक एक तोला, जयपाल ३ तोले एकत्र पानीके साथ खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान चीनीका शर्बत। जयपुत् चीनीका शर्बत पियोगी उतनही दफे दस्त होगा। पथ्य दहीका मट्ठा और भात।

नाराच रस—पारा, सोहागा, और गोलमिरच, प्रत्येक एक एक तोला, गंधक, पीपल और सोंठ प्रत्येक दो दो तोले, जयपाल बीज ८ तोले, एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। चावल भिंगोये पानीके साथ देनेसे उदर और गुल्मरोग आराम होता है।

पिप्पलाद्य लोह—पिपलामूल, अभ्रक, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिजात और सैन्धव प्रत्येक समभाग; और सबके बराबर लोह एकत्र पानीमें खलकर ३ रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ सब प्रकारके उदर रोगमें प्रयोग करना।

शोथोदरारि लोह—पुनर्नवा, गुरिच, चीतामूल, मुलहठी,

मागकन्द, सैजनकी जड़, हुड़हुड़की जड़ और अकवनकी जड़ प्रत्येक एक एक सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; इस काढ़ेमें लौहभस्म एक सेर, घी एक सेर, अकवनका दूध एक पाव, सेहुंड़का दूध आध सेर, गुग्गुलु एक पाव और पारा ४तोले, गन्धक ८तोले की कज्जली मिलाकर औटाना। पाकशेष होनेपर जयपालका बीज, ताम्रभस्म, कंकुष्ठ, चीतामूल, जंगली सूरण, शरपुंखा, पलाशबीज, चीरुई, तालमूली, त्रिफला, विड़ङ्ग, तेवड़ीमूल, दन्तीमूल, हुड़हुड़, गुलशकरीकी जड़, पुनर्नवा, हड़जोड़; इन सबका चूर्ण एक सेर। रोग और रोगीकी अवस्थानुसार मात्रा और अनुपान विचारकर प्रयोग करनेसे शोथ, उदर, पाण्डु, कामला, हलीमक, अर्श, भगन्दर और गुल्म आदि रोग दूर होता है।

महाबिन्दु घृत—घी दो सेर, सेहुंड़का दूध २ पल, कम्पि-ल्लक १ पल, सैन्धव ४ तोले, तेवड़ी १ पल, आंवलेका रस आध सेर और पानी ४ सेर; यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करानेसे उदर और गुल्मरोग आराम होता हैं।

चित्रक घृत—घी ४ सेर, पानी १६ सेर, गोमूत्र ८ सेर; चीतामूल ८ तोले और जवाखार ८ तोलेका कल्क यथा विधि औटाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे उदर रोग नाश होता है।

रसोन तैल। तेल ४ सेर; लहसन १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; त्रिकटु, त्रिफला, दन्ती, हींग, सेंधानमक, चीतामूल, देवदारु, वच, कूठ, लालसेजन, पुनर्नवा, सौवर्चल नमक, विड़ङ्ग, अजवाइन और गजपीपल प्रत्येक एक एक पल, तेवड़ीमूल १६ पलका कल्क; यथाविधि औटाकर

उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकारका उदर रोग, पार्श्वशूल, वायुका दर्द, क्रिमि, अम्लरुचि, उदावर्त्त और मूत्रकृच्छ्र आदि रोग शान्त होता है।

शोथ।

पथ्यादि काढ़ा—हरीतकी, हलदी, बरंगी, गुरिच, चीतामूल, दारुहलदी, पुनर्नवा, देवदारु और सोंठका काढ़ा पीनेसे सर्व्वांगगत शोथ नष्ट होता है।

पुनर्नवाष्टक—पुनर्नवा, नीमकी छाल, परवरका पत्ता, सोंठ, कुटकी, गुरिच, दारुहलदी और हरीतकी, इन सबका काढ़ा पीनेसे सार्व्वांगिक शोथ, उदररोग, पार्श्वशूल, श्वास और पाण्डुरोग शान्त होता है।

सिंहास्यादि काढ़ा—अडूसेकी छाल, गुरिच और कण्टकारी; इन सबके काढ़ेमें शहद मिलाकर पीनेसे शोथ, श्वास, कास, ज्वर और वमन दूर होता है।

शोथारि चूर्ण—मूसलीमूली, चिरचिरा, त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, विड़ंग, चीतामूल और मोथा, प्रत्येक समभाग; चार आनेभर मात्रा बेलके पत्तेके रसमें सेवन करनेसे शोथ और पांडुरोग आराम होता है।

शोथारि मण्डूर। गोमूत्रमें सातबार शोधा हुआ मण्डूर ८ पल, निर्गुण्डी, माणकन्द, आदी और जंगली सूरणके रसकी तीन तीनबार भावना दे, ७ सेर गोमूत्रमें औटावे, गाढ़ा होनेपर त्रिफला, त्रिकटु और चाभ प्रत्येकका

चूर्ण चार चार तोले मिलाकर उतार लेना। ठण्ढा होनेपर १६ तोले सहत मिलाना। उपयुक्त मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे सर्व्वदोषज और सर्व्वांगगत शोथ दूर होता है।

कंस हरीतकी।

दशमूल ८ सेर, पोटलीमें बंधाहुआ हर्रा १००, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, यह काढ़ा छानकर १२॥ सेर गुड़ मिलाकर छान लेना फिर १०० हर्रा इसमें औटाना। गाढ़ा होनेपर १० तोले त्रिकटु, जवाखार, दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येक दो दो तोले मिलाना। ठण्ढा होनेपर २ सेर सहत मिलाना। मात्रा एक हर्रा और एक तोला अवलेह गरम पानीके साथ सेवन करनेसे शोथ, उदर, प्लीहा, गुल्म और श्वास आदि रोग शान्त होता है।

त्रिकट्वादि लौह—त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, विड़ंग, कुटकी, चीतामूल, देवदारु, तेवड़ी और गजपीपल, प्रत्येकका सम-भाग चूर्ण, समष्टीका दूना लौह; एकत्र दूधमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। दूधके अनुपानमें देनेसे शोथ विनष्ट होता है।

शोथकालानल रस—चीतामूल, इन्द्रयव, गजपीपल, सेंधव, पीपल, लौंग, जायफल, सोहागा, लौहा, अबरख और पारा प्रत्येक दो दो तोले; एकत्र पानीमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान तालमखानेके जड़का रस, इससे ज्वर, कास, श्वास, शोथ, प्लीहा और प्रमेहरोग आराम होता है।

पञ्चामृत रस।

पारा एक तोला, गंधक एक तोला, सोहागेका लावा ३ तोले और मिरच ३ तोले एकत्र पानीके साथ खलकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना। आदीके रसमें सेवन करनेसे शोथ, जलोदर, शिरःशूल, पीनस,

ज्वरातिसार संयुक्त शोथ, गलग्रह और विविध श्लैष्मिक रोग शान्त होता है।

दुग्धवटी। मिठाविष १२ रत्ती, अफीम १२ रत्ती, लोहा पांच रत्ती और अबरख ६० रत्ती एकत्र दूधके साथ खल-कर दो रत्ती बराबर गोली बनाना, अनुपान दूध। दूधभात भोजन करनेसे शोथ, ग्रहणी, अग्निमान्द्य और विषम ज्वर आराम होता हैं। रोग आराम न होनेतक नमक खाना बन्द रखना।

तक्रमण्डूर। भांगका चूर्ण ४ तोले, लौहचूर्ण ४ तोले, बांसकी जड़, कृष्णागुरु, नीमकी छाल, विषताड़ककी जड़ और समुद्रफेन प्रत्येक दो दो तोले; तेजपत्ता, लौंग, इलायची, सोवा, सौंफ, मिरच, गुरिच, मुलेठी, जायफल, शोंठ और सेंधानमक, प्रत्येक एक एक तोला; सब एकत्र कर श्वेत पुनर्नवाके रसकी भावना दे बेरके गुठली बराबर गोली बनाना। केशुरियाका रस या मट्ठेके अनुपानमें सेवन करनेसे शोथ आराम होता हैं। पथ्य—मट्ठा और भात। नमक और पानी बन्द रखना।

सुधानिधि रस। धनिया, बाला, मोथा, शोंठ और सेंधव प्रत्येक एक एक तोला, मण्डूर १० तोले, एकत्र मर्द्दनकर गोमूत्र, केशुरियाका रस, श्वेतपुनर्नवाका रस, भीमराजका रस, निर्गुण्डीका रस और खुलकुड़ीके रसमें यथाक्रम १४ बार भावना देना। मात्रा ४मासे, मट्ठा या केशुरियाके रसके अनुपानमें सेवन करनेसे शोथ, ग्रहणी, पांडु, कामला, ज्वर और अग्निमान्द्य दूर होता है। पथ्य—मठ्ठा और भात। नमक और पानी मना है। प्यास लगेतो मठ्ठा पानी।

घी ४ सेर ; चीतामूल, धनिया, अजवाईन, अम्बष्ठा, जीरा, त्रिकटु, चैकल, बेलकीगिरी, अनारके फलकी छाल, जवाखार, पिपलामूल और चाभ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, पानी १६ सेर ; यथा विधि औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे शोथ, गुल्म, अर्श और मूत्रकृच्छ्र आदि रोग दूर होता है।

चित्रकाद्य घृत।

तिलका तेल ४ सेर, पुनर्नवा १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर ; त्रिकटु, त्रिफला, काकड़ाशिंगी, धनिया, कटफल, शठी, दारुहलदी, प्रियंगु, पद्मकाष्ठ, रेणुका, कूठ, पुनर्नवा, अजवाईन, कालाजीरा, इलायची, दालचीनी, लोध, तेजपत्ता, नागेश्वर, वच, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, सोवा, बाला, मजीठ, रास्ना और जवासा, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क ; यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे शोथ, पांडु, कामला, हलीमक, प्लीहा और उदर आदि रोग शान्त होता है।

पुनर्नवादि तैल।

तिलका तेल ४ सेर, सुखी मूलीका काढ़ा ४ सेर ; सैजनकी छाल, धतूरेका पत्ता, पालिधाकी छाल, पुनर्नवा, काकमाची, चालताकी छाल, पीपल, गजपीपल, कटफल, कूठ, काकड़ाशिंगी, रास्ना, जवासा, कालाजीरा, हलदी, करंज, नाटाकरंज, श्यामालता, और अनन्त मूल प्रत्येक ४ तोलेका कल्क। यथाविधि पाककर मालिश करनेसे सब प्रकारका शोथ, व्रणशोथ, अग्निमूल, श्वास, कामला और यावतीय श्लैष्मिक रोग आराम होता हैं।

वृहत् शुष्कमूलकाद्य तैल।

कोषवृद्धि।

अभरख, गंधक, पीपल, पांचोनमक, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, त्रिफला, हरताल, मैनसिल, पारा, अजवाईन, अजमोदा, सोया, जीरा, हींग, मेथी, चीतामूल, चाभ, बच, दन्तीमूल तेवड़ी, मोथा, शिलाजीत, लोहा, रसांजन, नीमकी बीज, परवरका पत्ता, और बिधारेकी बीज, प्रत्येक दो दो तोले, शोधित धतूरेकी बीज १००, एकत्र चूर्णकर ४ रत्ती मात्रा सेवन करनेसे यावतीय वृद्धि रोग श्लीपद और आमवात आदि रोग आराम होता है।

अक्षीणरीय।

पारा, गंधक, लोहा, बंग, ताम्बा, कांसा, हरिताल, तूतिया, शंखभस्म, कौड़ीभस्म, त्रिकटु, चाभ, त्रिफला, विड़ंग, बिधारेकी बीज, शठी, पिपलामूल, मञ्जिष्ठा, होवेर, बच, इलायची, देवदारु और पांचो नमक, प्रत्येक समभाग; हर्रोंके काढ़ेमें खलकर मासे बराबर गोली बनाना। पानी या हर्रा भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे अंत्रवृद्धि रोग आराम होता है।

वृद्धिबाधिका वटी।

वातारि—पारा दो भाग, गंधक दो भाग, त्रिफला तीन भाग, चीतामूल ४ भाग और गुग्गुलु ५ भाग, एकत्र रेड़ीके तेलमें मर्द्दनकर आधा तोला मात्राकी गोली बनाना। चादीका रस या तिलके तेलके साथ सेवन कर एरंडमूलके काढ़ेमें शोंठका चूर्ण मिलाकर पीना। रोगीके पीठमें रेड़ीका तेल मालिश कर सेंकदेना। विरेचन होनेसे स्निग्ध और उष्ण द्रव्य भोजन कराना। यह अंत्रवृद्धिका श्रेष्ठ औषध है।

घी ४ सेर; अडूसा, मुण्डरी, रेंड़की जड़, बेलका पत्ता, और कंटकारी प्रत्येक का रस चार चार सेर;

शतपुष्पाद्य घृत।

दूध ४ सेर; सोवा, गुरिच, देवदारु, लालचन्दन, हलदी, दारुहलदी, जीरा, कालाजीरा, बच, नागेश्वर, पिपरामूल, गुग्गुलु, दारचीनी, जटामांसी, कूठ, तेजपत्ता, इलायची, रास्ना, काकड़ासिंगी, चीतामूल, विड़ंग, असगंध, शैलज, कुटकी, सेन्धव, तमरपादुका, कुरैयाकी छाल और अतीस प्रत्येक दो दो तोले। यथाविधि औटाकर आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकार वृद्धिरोग और श्लीपद आदि रोग शान्त होता है।

गन्धर्व्वहस्त तैल—रेंड़ीका तैल ४ सेर; रेंड़का जड़ १२॥ सेर, सोंठ ८ तोले, जौ ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; दूध १६ सेर; रेंड़का जड़ ३२ तोले, अदरख २४ तोलेका कल्का। यथाविधि औटाकर दो तोले मात्रा गरम दूधके साथ पीनेसे अंत्र वृद्धि रोग आराम होता है। पथ्य—दूध और भात।

सैन्धवाद्य घृत—घोंघाके भीतरका मांस वगैरह निकालकर उसके भीतर गायका घी और घीका चौथा हिस्सा नमक भरकर सात दिनतक धूपमें रखना। यह घी मालिश करनेसे कोषवृद्धि रोग शान्त होता है।

गलगण्ड और गण्डमाला ।

काचनार गुग्गुलु ।

कचनारकी छाल ५ पल, शोंठ, पीपल और मिरच प्रतेरक एक एक पल, हर्रा, बहेड़ा और आंवला प्रतेरक आधा पल, वरुणछाल दो तोले, तेजपत्ता, इलायची, और दालचीनी प्रतेरक आधा तोला, तथा सबके बराबर गुगुल एकत्र मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे गलगंड, गण्डमाला, अपची और ग्रंथि आदि रोग शांत होता है। अनुपान थोड़ा गरम मुंडरीका काढ़ा, खैरका काढ़ा अथवा हरीतकीका काढ़ा ।

अमृताद्य तैल—तिलका तैल ४ सेर ; गुरिच, नीमकी छाल, खुलकुड़ी, कुरैयाकी छाल, पीपल, वरियारा, सफेद वरियारा और देवदारु सब मिलाकर एक सेर इन सब द्रव्योंको यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा पीनेसे गलगण्ड रोग आराम होता है।

तुम्बीतैल—सरसोंका तैल ४ सेर, पक्के तितलौकी का रस १६ सेर ; विड़ङ्ग, जवाखार, सैन्धव, बच, रास्ना, चीतामूल, त्रिकटु और हींग सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर नास लेनेसे गलगंड रोग आराम होता है।

छुछुन्दरी तैल—तिल तैल या सरसोंका तैल ४ सेर ; छुछुन्दर का मांस एक सेर, पानी १६ सेर और छुछुन्दरके मांसके ४ सेर काढ़ेके साथ यथाविधि पाककर मालिश करनेसे गंडमाला आराम होता है।

सिन्दूरादि तैल—सरसोंका तैल ४ सेर, केशुरियाका रस १६ सेर, चकवड़की जड़ आधा सेर, इनको आंचमें औटाना, पाकशेष

होनेपर मटिया सिन्दूर आध सेर मिलाना। यह तेल मालिश करनेसे गण्डमाला आराम होता है।

बिल्वादि तैल—तेलाकुचाकी जड़, करवीर और निर्गुण्डीका कल्क चौगूने पानीके साथ यथाविधि तिलका तेल पाककर नास लेनेसे गण्डमाला शान्त होता है।

निर्गुण्डी तैल—तिल तेल ४ सेर, निर्गुण्डीका रस १६ सेर, ईश लाङ्गलाके जड़का कल्क एक सेर; यथाविधि औटाकर नास लेनेसे गण्डमाला दूर होता है।

गुञ्जाद्य तैल—घुंघुची को जड़, कनैलकी जड़, बिधारेकी बीज, अकवनका दूध और सरसो इन सबके साथ चौगूने गोमूत्रमें क्रमशः १० बार तेल पाककर उसमें पीपल, पांचोनमक और मिरचका चूर्ण मिलाना। यह तेल मालिश करनेसे अपची और नाड़ीव्रण आदि आराम होता हैं।

चन्दनादि तैल—तिलका तेल ४ सेर, लालचन्दन, हरीतकी, लाह, वच और कुटकी, सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर; यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा पीनेसे, अपची रोग आराम होता हैं।

श्लीपद।

मदनादि लेप—मयनफल, नीलपद्म और सामुद्र लवण; यह सब द्रव्य भैंसके मकवनमें मिलाकर लेप करनेसे दाहयुक्त श्लीपद जल्दी शान्त होता है।

कणादि चूर्ण—पीपल, वच, देवदारु और बेलकी छाल प्रत्येक समभाग, सबके बराबर बिधारेकी बीज, एकत्र चूर्णकर

२ रत्ती मात्रा कांजीके साथ सेवन करनेसे श्लीपद आराम होता है।

पिप्पल्यादि चूर्ण—पीपल, त्रिफला, देवदारु, शोंठ और पुनर्नवा, प्रत्येक दो दो पल, बिधारेकी बीज १४ पल एकत्र मिला कर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे श्लीपद, वातरोग और अग्नि-मान्द्य आराम होता हैं।

कृष्णादि मोदक—पीपलका चूर्ण दो तोले, चीतामूलका चूर्ण ४ तोले, दन्तीमूल चूर्ण ८ तोले, हरीतकी १० तोले और पुराना गुड़ १६ तोले; यथाविधि मोदक बनाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे श्लीपदादि रोग शान्त होता है।

श्लीपद गजकेशरी—त्रिकटु, विष, अजवाइन, पारा, गन्धक, चीतामूल, मैनसिल, सोहागा और जयपाल प्रत्येक समभाग; यथाक्रम भीमराज, गोक्षुर, जामीर नीबू और अदरखके रसमें खलकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान गरम पानीके साथ सेवन करनेसे श्लीपद रोग आराम होता हैं।

नित्यानन्द रस—हिंगुलोत्थ पारा, गन्धक, ताम्बा, कांसा, वङ्ग, हरिताल, तूतिया, शङ्खभस्म, कौड़ीभस्म, त्रिकटु, त्रिफला, लौहा, विड़ङ्ग, पांचोनमक, चाभ, पीपलामूल, हीवेर, बच, शठी, अम्बष्ठा, देवदारु, इलायची, बिधारा, तेवड़ी, चीतामूल और दन्तीमूल प्रत्येक समभाग; हरीतकीके काढ़ेमें खलकर १० रत्ती बराबर की गोली ठण्ढा पानी अथवा हर्रे भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे श्लीपद, गलगण्ड और यावतीय ह्विरोग आराम होता हैं।

सोमेश्वर घृत—घी ४ सेर; दशमूलका काढ़ा, कांजी और दही प्रत्येक चार चार सेर; काली तुलसी, देवदारु, त्रिकटु,

त्रिफला, पांचोनमक, विड़ङ्ग, चीतामूल, चाभ, पीपलामूल, गुग्गुलु, ह्रीवेर, बच, जवाखार, अम्बष्ठा, शठी, इलायची और विधारा। प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क ; यथाविधि औटाकर आधा तोलासे दो तोलेतक माता सेवन करनेसे श्लीपद और गलगण्ड आदि रोग दूर होता है।

विड़ंगादि तैल—तिलका तेल ४ सेर ; विड़ंग, मिरच, अकवनकी जड़, शोंठ, चीतामूल, देवदारु, एलवा और पांचोनमक सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर ; यथाविधि औटाकर आधा तोला माता पान और शोथ स्थानमें मालिश करनेसे श्लीपदादि रोग शान्त होता है।

विद्रधि और व्रण।

वरुणादि घृत—वरुणछाल, झिंटी, सैजन, लालसैजन, जयन्ती, मेषशृङ्गी, डहरकरञ्ज, मूर्व्वा, गणियारी, कटसरैया, तेलाकुचा, अकवन, गजपीपल, चीतामूल, शतावर, बेलकी गिरी, मेढ़ाशृङ्गी, कुशमूल, हड़ती और कण्टकारी ; इन सब द्रव्योंके कल्कके साथ घी औटाकर सवेरे भोजनके वखत और शामको आधा तोला माता गरम दूधमें मिलाकर पीनेसे अन्तर्विद्रधि गुल्म, अग्निमान्द्य और उत्कट शिर:शूल दूर होता है।

करञ्जाद्य घृत—घी ४ सेर, डहरकरञ्जका कोमल पत्ता और बीज, मालती पत्र, परवरका पत्ता, नीमका पत्ता, हलदी, दारुहलदी, माम, मुलेठी, कुटकी, मजीठ, लालचन्दन, खसकी

जड़, नीलाकमल, अनन्तमूल और श्यामालता प्रत्येक दो तोले यथाविधि पाककर क्षत स्थानमें प्रयोग करना।

जात्याद्य घृत और तैल—जातीपत्र, नीमपत्ता, परवरका पत्ता, कुटकी, दारुहलदी, हलदी, अनन्तमूल, मजीठ, खसकी जड़, मोम तूतिया, मुलेठी और डहरकरञ्जकी बीज मिलाकर एक सेरका कल्क और १६ सेर पानीके साथ ४ सेर घी या तैल यथाविधि औटाकर घावमें लगानेसे, घावमेंसे पीप वगैरह निकालकर सुखा देता है।

विपरीतमल्ल तैल—सरसोंका तैल ४ सेर; सिन्दूर, कूठ, मिठाविष, हींग, लहसन, चीतामूल बालामूल और ईशलाङ्गला प्रत्येक एक एक पल; पानी १६ सेर; यथाविधि औटाकर यावतीय क्षतरोगमें प्रयोग करना।

व्रणराक्षस तैल—सरसोंका तैल आधा सेर, पारा, गन्धक, (कज्जली करलेना) हरताल, मटिया सिन्दूर, मैनसिल, लहसन विष और ताम्बा प्रत्येक दो दो तोले; एकत्र मिलाकर धूपमें रखना। इस तैलके लगानेसे नासूर, विस्फोट मांसवृद्धि, विचर्चिका और दाद आदि रोग शान्त होता है।

सर्जिकाद्य तैल—तैल ४ सेर, सज्जीखार, सेंधानमक, दन्तीमूल, सफेद अकवनकी जड़, नीलकाष्ठ और चिरचिरी की बीज सब मिलाकर एक सेर, गोमूत्र १६ सेर; यथाविधि औटाकर नासूर और खराब घावमें लगाना।

निर्गुण्डी तैल—तैल ४ सेर और निर्गुण्डी की जड़, पत्ता और डाल ४ सेर; एकत्र औटाकर पान, मर्द्दन और नास लेनेसे व्रणरोग और पामा, अपची आदि रोग दूर होता है।

सप्ताङ्ग गुग्गुलु—विड़ङ्ग, त्रिफला और त्रिकटु प्रत्येक सम-

भाग, तथा समष्टीके बराबर गुग्गुलु एकत्र घीके साथ मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे दुष्टव्रण नाड़ीव्रण और कुष्ठादि रोग शान्त होता है।

भगन्दर।

सप्तविंशति गुग्गुलु। त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विड़ंग, गुरिच, चीतामूल, शठी, इलायची, पीपलामूल, हौवेर, देवदारु, धनिया, भेलावा, चाभ, इन्द्रायण की जड़, हलदी, दारुहलदी, कालानमक, सौवर्च्चल नमक, सेंधानमक, जवाखार, सज्जीखार और गजपीपल, प्रत्येक एक एक तोला; समष्टीका दूना गुग्गुलु; एकत्र घीके साथ मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे भगन्दर, अर्श, श्वास, कास, शोथ और प्रमेह आदि रोग शान्त होता है।

नवकार्षिक गुग्गुलु—हरीतकी, आंवला, बहेड़ा और पीपल प्रत्येक दो दो तोले, गुग्गुलु १० तोले, एकत्र घीमें मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे भगन्दर, अर्श, शोथ गुल्मादि रोग शान्त होता है।

व्रणगजांकुश। हिंगुल, सौराष्ट्रमृत्तिका, रसांजन, मैनसिल, पुन्नाग पुष्प, पारा, गंधक, ताम्बा, लोहा, सेंधानमक, अतीस, चाभ, शरपोंखा, विड़ंग, अजवाईन, गजपीपल, मिरच, अकवनकी जड़, बरुणकी जड़, सफेद राल और हर्रा प्रत्येक समभाग उपयुक्त सरसोंके तेलमें मर्द्दनकर मासे बराबर गोली बनाना। अनुपान सहत, इससे भगन्दर और विविध दुःसाध्य व्रणरोग दूर होता है।

उपदंश।

वरादिगुग्गुलु—त्रिफला, नीमकी छाल, अर्ज्जुन, पीपल, खैर, शाल और अड़सा ; प्रत्येक का चूर्ण समभाग, तथा सबकी बराबर गुग्गुलु, एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे उपदंश रक्तदुष्टि और दुष्ट व्रण आराम होता है।

रसशेखर। पारा २ रत्ती और अफीम १२ रत्ती एकत्र लोहेके पात्रमें रख तुलसीके पत्तेके रसमें नीमके डंडेसे खल करना, फिर उसमें दो रत्ती हिंगुल मिला तथा तुलसीके पत्तेका रस मिला उसी डंडेसे मर्द्दन करना। फिर जावित्री, जायफल, खुरासानीअजवाईन और अकरकरा प्रत्येक ३२ रत्ती और सबकी दूना खैर मिलाकर तुलसी पत्तेके रसमें मर्द्दन करना। मटर बराबर गोली बनाना। रोज शामको एक गोली सेवन करनेसे उपदंश, गलित कुष्ठ और सब प्रकारका स्फोटक आराम होता है।

करंजाद्य घृत—घी ४ सेर, डहरकरंज की बीज, नीमका पत्ता, अर्ज्जुनछाल, शालकी छाल, जामुनकी छाल, बड़, गुल्लर, पीपर, पाकर और बेतसकी छाल सब मिलाकर एक सेर ; इन सबका काढ़ा यथाविधि औटाकर क्षतस्थान में लगानेसे उपदंश की दाह, घाव, पीप आदिका स्राव और लाली दूर होता है।

भूनिम्बाद्य घृत—घी ४ सेर, चिरायता, नीमका पत्ता, त्रिफला, परवरका पत्ता, डहरकरंज की बीज, जातीपत्र, खैरकी लकड़ी और आसन छाल प्रत्येक एक एक सेर ६४ सेर पानीमें

औटाना १६ सेर काढ़ा ; तथा उक्त सब द्रव्य एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर उपदंशमें प्रयोग करना ।

गांजो तैल—तिलका तैल ४ सेर ; गांजिया, विड़ंग, मुलेठो, दालचोनो, इलायचो, तेजपत्ता, नागेश्वर, कक्कोल, फल, अगरू, कुंकुम और लौंग सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानो १६ सेर ; यथाविधि पाककर प्रयोग करनेसे उपदंश आराम होता है ।

कुष्ठ और श्वित्र ।

मंजिष्ठादि काढ़ा—मजीठ, सोमराजो, चकवड़ को बोज, नोमको छाल, हरोतको, हलदो, आंवला, अड़ूसेका पत्ता, शतावर, बरियारा, गुलशकरो, मुलेठो, खुरक बोज, परवरका पत्ता, खसको जड़, गुरिच और लालचन्दन ; इन सबका काढ़ा कुष्ठ नाशक है ।

अमृतादि—गुरिच, एरण्डमूल, अड़ूसेको छाल, सोमराजो और हरोतको का काढ़ा कुष्ठ और वातरक्त नाशक है ।

पंच निम्ब—नोमका पत्ता, फूल, छाल, जड़ और फल इन सबका समभाग चूर्ण गोमूत्र अथवा दूधके साथ सेवन करनेसे कुष्ठ, विसर्प और अर्श आराम होता है ।

पंचतिक्तघृत गुग्गुल । घो ४ सेर ; नोमको छाल, गुरिच, अड़ूसेको छाल, परवरका पत्ता और कंटकारो प्रत्येक १० पल, पोटलोमें बंधा हुआ गग्गुलु ५ पल, पानो ६४ सेर, शेष ८ सेर छानकर वहो पोटलोका गुग्गुल इस काढ़ेमें मिलाकर घोके साथ औटाना । तथा अम्बष्ठा, विड़ंग, देवदारू,

गजपीपल, जवाखार, सज्जीखार, सोंठ, हलदी, सोवा, वाभ, कूठ, लताफटकी, मिरच, इन्द्रयव, जीरा, चीतामूल, कुटकी, भेलावा, बच, पीपलामूल, मजीठ, अतीस, त्रिफला और अजमोदा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। आधा तोला माचा सेवन करनेसे कुष्ठ, भगन्दर, नाड़ीव्रण और विषदोष आदि दूर होता है।

अमृतभल्लातक।

सोधा हुआ भेलावा ८ सेर, दो दो टुकड़ेकर ३२ सेर पानीमें औटाना ८ सेर पानी रहते छान लेना तथा ८ सेर घीमें यह काढ़ा औटाना। पाकशेष होनेपर ४ सेर चीनी मिला ७ दिन रख छोड़ना। चार आनेभर से आधा तोला माचा सेवन करनेसे कुष्ठादि रोगोंकी शान्ति और बलवीर्य्य आदि की वृद्धि होती है।

अमृतांकुर लौह।

पारा एक पल और गंधक एक पलकी कज्जली बना पत्थरके पात्रमें रखना तथा उसके ऊपर गरम ताम्बेका पत्तर दबाकर पर्प्पटीकी तरह करना। फिर वह कज्जली और लोहा एक एक पल, ताम्बा १ पल, भेलावेका रस १ पल, अबरख, एक पल, गुग्गुल १ पल और घी १६ पल, एकत्र ४ सेर त्रिफलाके काढ़ेमें औटाना। पाकशेष होने-पर हरेंका चूर्ण ४ तोले, बहेड़ेका चूर्ण ४ तोले और आंवलेका चूर्ण १२ तोले मिला देना। पहिले एक रत्ती माचा फिर सहने पर माचा बढ़ाना, यह औषध सेवन करनेसे कुष्ठ आदि रोग दूर होता है, तथा बल, वीर्य्य और आयु बढ़ता है। अनुपान,—घी और सहतमें मिलाकर नारियलका पानी अथवा दूधके साथ मिलाकर पीना चाहिये। यह दवा लौहपात्रमें लौहदण्डसे बनाना उचित है।

तालकेश्वर रस। दो मासे हरिताल को भतुवेका रस, त्रिफला भिंगोया पानी, तिलका तेल, घिकुआरका रस और कांजीको भावना देना। फिर गन्धक २ मासे और पारा दो मासेकी कज्जली उस हरितालमें मिलाना, तथा छाग दूध, नीबूका रस और घिकुआरके रसको तीन तीन दिन भावना देकर छोटी छोटी टिकरी बनाना। सूखजानेपर एक हांड़ीमें पलाशका खार रख उसके भीतर टिकरी रखकर १२ पहर आगमें रख ठण्ढा होनेपर निकाल लेना। दो रत्ती मात्रा उपयुक्त अनुपानके साथ कुष्ठादि रोगोंमें प्रयोग करना।

रसमाणिक्य। वंशपत्र हरिताल को भतुवेका रस और खट्टी दहीकी ३ बार या ७ बार भावना दे छोटा छोटा टुकरा करना, फिर एक सिकोरेमें रख दूसरा सिकोरा औंधाढ़ाक बेरका पत्ता और मिट्टीका लेप करना। फिर एक खाली हांड़ीके उपर वह सिकोरा रख हांड़ी चुल्हेपर रखना। हांड़ी लाल होजानेपर औषध बाहर निकाल लेना। इस रीतिसे हरताल माणिक की तरह चमकीला होगा। मात्रा २ रत्ती घी और सहतके साथ सेवन करनेसे वातरक्त, कुष्ठ, उपदंश और भगन्दर आदि रोग शान्त होता है। श्रीमहादेवजी की पूजाकर यह औषध सेवन करना उचित है।

पञ्चतिक्त घृत—घी ४ सेर; नीमकी छाल, परवरका पत्ता, कटैली, गुरिच और अडूसेकी छाल प्रत्येक १० पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर यह काढ़ा और त्रिफलाका कल्क एक सेर; यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा कुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, दुष्टव्रण और क्रिमि आदि रोगोंमें प्रयोग करना।

सरसोंका तेल ४ सेर; मटिया सिन्दूर, लालचन्दन, जटामांसी,

महासिन्दूराद्य तैल। वायविड़ङ्ग, हलदी, दारुहलदी, प्रियंगु, पद्मकाष्ठ, कूठ, मजीठ, खदिरकाष्ठ, बच, आलोपत्र, अकवनका पत्ता, तेवड़ी, नीमकी छाल, डहरकरञ्जकी बीज, मिठाविष, चुरक, लोध और चकवड़की बीज, सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर; यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे यावतीय कुष्ठरोग आराम होता हैं।

सोमराजी तेल—सरसोंका तेल १ सेर, पानी १६ सेर, सोमराजीकी बीज, हलदी, दारुहलदी, सफेद सरसो, कूठ, डहरकरञ्ज की बीज, चकवड़की जड़ और अमिलतासका पत्ता सब मिलाकर एक सेरका कल्क; यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे कुष्ठ, वातरक्त, फोड़ा और नासूर आराम होता हैं।

बृहत् सोमराजी तैल। सरसोंका तेल १६ सेर; सोमराजी और चकवड़ की बीज अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर अवशिष्ट रखना, गोमूत्र १६ सेर; तथा चीतामूल, ईशलाङ्गला, सोंठ, कूठ, हलदी, डहरकरञ्ज की बीज, हरताल, मैनसिल, हापरमाली, अकवन की जड़, करवीर की जड़, छतिवनकी जड़, गोबरका रस, खदिरकाष्ठ, नीमका पत्ता, गोलमिरच और कालकासुन्दा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; यथाविधि औटाकर कुष्ठादि रोगोंमें मालिश करना।

मरिचादि तेल—सरसोंका तेल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, मिरच, हरताल, मैनसिल, मोथा, अकवनका दूध, करवीरकी जड़, तेवड़ीकी जड़, गोबरका रस, इन्द्रायणकी जड़, कूठ, हलदी दारुहलदी, देवदारु और लालचन्दन प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क और मीठाविष ८ तोले यथाविधि औटाकर कुष्ठ और श्वित्र आदिमें मालिश करना।

सरसोंका तेल ४ सेर, छतिवनकी छाल, खुरका, गुरिच, नीमकी छाल, शिरीषकी छाल, घोड़नीम, जयन्ती पत्र, तितलौकी, इन्द्रायण और हलदी प्रत्येक १० पल, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; गोमूत्र १६ सेर, अमिलतासका पत्ता, भंगरैया, जयन्तीपत्र, धतूरेका पत्ता, हलदी, भांगकी पत्ती, चीताका पत्ता, खजूरका पत्ता, अकवनका पत्ता, सेहुंड़का पत्ता प्रत्येकका रस चार चार सेर; गोबरका रस ४सेर, माकाल, बच, ब्रह्मीशाक, तितलौकी, चीतामूल, घिकुआर, कुचिला, परवरका पत्ता, हलदी, मोथा, पीपलामूल, अमिलतास का गूदा, अकवनका दूध, कालकासुन्दाकी जड़, ईशमूल, आचमूल, मजीठ, कडुवा परवर, इन्द्रायणकी जड़, बिछौटीका पत्ता, कारञ्जमूल, हापरमाली, मूर्व्वामूल, छतिवनकी छाल, शिरीषकी छाल, कुरैयाकी छाल, नीमकी छाल, घोड़नीमकी छाल, गुरिच, हाकुच बीज, सोमराजी (२ भाग) चकवड़की बीज, धनिया, भीमराज, मुलेठी, जङ्गली सूरण, कुटकी, शठी, दारुहलदी, तेवड़ी की जड़, पद्मकाष्ठ, गेंठेला, अगरू, कूठ, कपूर, कायफल, जटामांसी, मूरामासी, इलायची, अडूसेकी छाल और खसकी जड़ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे यावतीय कुष्ठ, श्वित्र और गलगण्डादि रोग दूर होता है।

कन्दर्पसार तैल।

शीतपित्त।

हलदी ८ पल, घी ६ पल, गायका दूध १६ सेर, चीनी ६। सवा छ सेर, एकत्र पाक करना, पाकशेष में त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची,

हरिद्राखण्ड।

वायविड़ङ्ग, तेवड़ीमूल, त्रिफला, नागेश्वर, मोथा और लोहा प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल मिलाना। आधा तोलासे दो तोले- तक मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे शीतपित्त, उदर्द, कोठ और पाण्डु आदि रोग दूर होता है।

बृहत् हरिद्राखण्ड। हलदीका चूर्ण आधा सेर, तेवड़ीका चूर्ण ४ पल, हर्रका चूर्ण ४ पल, चीनी ५ सेर ; दारुहलदी, मोथा, अजवाइन, अजमोदा, चीतामूल, कुटकी, कालाजीरा, पीपल, शोंठ, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, वाय- विड़ंग, गुरिच, अडूसेके जड़की छाल, कूठ, हर्र, बहेड़ा, आंवला, चाभ, धनिया, लोहा और अबरख प्रत्येक एक एक तोला ; एकत्र सबको आंचमें औटाना ; आधा तोलासे एक तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे शीतपित्तादि पीड़ा और दाद आराम होती है।

आर्द्रक खण्ड—अदरखका रस ४ सेर, गायका घी दो सेर, गायका दूध ४ सेर, चीनी दो सेर ; पिपलामूल, मिरच, चीता- मूल, वायविड़ंग, मोथा, नागकेशर, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता और शठी प्रत्येक एक एक पल, यथाविधि औटाकर आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन करनेसे शीतपित्तादि रोग दूर होता है। यह यक्ष्मा और रक्तपित्त रोगमें भी उपकारी है।

अम्लपित्त।

—०—

अविपत्तिकर चूर्ण—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, कालानमक, वायविड़ङ्ग, इलायची और तेजपत्ता प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला

और चीनी ६४ तोला ; एकत्र मिलाकर चार आनेभर या आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे अम्लपित्त, मलमूत्र रोध और अग्निमान्द्य आदि रोग दूर होता है।

बृहत् पिप्पलीखण्ड।

पीपलचूर्ण आधा सेर, घी एक सेर, चीनी दो सेर, सतावरका रस एक सेर, आंवलेका रस दो सेर, दूध ८ सेर ; एकत्र यथाविधि औटाकर दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, हर्र, कालाजीरा, धनिया, मोथा, वंशलोचन और आंवला प्रत्येक दो दो तोले ; तथा जीरा, कूठ, सोंठ और नागेश्वर प्रत्येक एक एक तोला मिलाना, ठंढा होनेपर जायफलका चूर्ण, मरिचका चूर्ण और मधु प्रत्येक तीन तीन पल मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, वमनवेग, वमि, अरुचि, अग्निमान्द्य और क्षयरोग आराम होता है।

शुण्ठीखण्ड।

सोंठका चूर्ण आधा सेर, चीनी दो सेर, घी एक सेर, दूध ८ सेर, एकत्र यथाविधि औटाकर आंवला, धनिया, मोथा, जीरा, पीपल, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, कालाजीरा और हर्रा प्रत्येक १॥ तोला, मिरच और नागेश्वर प्रत्येक ॥) आनेभर मिलाना। ठंढा होनेपर मधु ४ पल मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल और वमन आराम होता है।

सौभाग्यशुण्ठी मोदक।

त्रिकटु, त्रिफला, दालचीनी, जीरा, कालाजीरा, धनिया, कूठ, अजवाईन, लोहा, अबरख, कांकड़ाशिंगी, कायफल, मोथा, इलायची, जायफल, जटामासी, तेजपत्ता, तालीशपत्र, नागेश्वर, गंधमात्रा, शठी, मुलेठी, लौंग और लालचन्दन, प्रत्येक समभाग, सबके बराबर

सोंठका चूर्ण, सोंठका चूर्णके साथ सब चूर्णको दूनी चोनी और समष्टीका चौगूना गायका घी यथाविधि औटाकर मोदक बनाना। आधा तोला मात्रा दूध या पानीके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल, अग्निमान्द्य, अरुचि और दौर्बल्य दूर होता है।

सितामंडूर।

पहिले मंडूर सातबार आगमें गरम कर गोमूत्रमें बुझाकर शोध लेना। शोधा हुआ मंडूरका चूर्ण १ पल, चीनी ५ पल, पुराना घी ८ पल, गायका दूध १६ पल; एकत्र यथाविधि औटाकर त्रिकटु, मुलेठी, इलायची, जवासा, बायविड़ङ्ग, त्रिफला कूठ और लौंगका चूर्ण प्रत्येक दो दो तोले मिलाना। ठंढा होनेपर २ पल मधु मिलाना। आधा तोला मात्रा भोजनके पहिले दूधके साथ सेवन करने से अम्लपित्त, शूल, वमि, आनाह और प्रमेह आराम होता है।

पानीयभक्त वटी।

त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, तेवड़ी और चीतामूल प्रत्येक दो दो तोले, पारा और गंधक आधा आधा तोला, लोहा, अभ्र और विड़ङ्ग चार चार तोले एकत्र त्रिफलाके काढ़ेमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। कांजीके अनुपानमें सबेरे सेवन करनेसे शूल, श्वास, कास और ग्रहणी दूर होता है।

क्षुधावती गुड़िका।

पारा, गंधक, लोहा, त्रिकटु, त्रिफला, बच, अजवाइन, सोवा, चाभ, जीरा और कालाजीरा, प्रत्येक एक एक पल, पुनर्नवा, मानकंद, पीपलामूल, इन्द्रयव, केशुरिया, पंचगुरिच, दानकुनीमूल, तेवड़ी मूल, जयन्तीमूल, हुड़हुड़मूल, रक्तचन्दन, भीमराज, चिरचिड़ीकी जड़, परवरका पत्ता और खुलकुड़ी, प्रत्येक चार चार तोले;

एकत्र अदरखके रसमें खलकर बेरके गुठली बराबर गोली बनाना। अनुपान कांजीके साथ सवेरे सेवन करनेसे अम्लपित्त, अग्निमान्द्य और अजीर्ण आदि रोग आराम होता है।

लीलाविलास रस—पारा, गंधक, अबरख, ताम्बा और लोहा प्रत्येक समभाग, एकत्र आंवलेका रस और बहेड़ेके काढ़ेकी तीन दिन भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। पुराने भतुवेका पानी, आंवलेका रस या दूधके साथ सेवन करनेसे अम्ल-पित्त, शूल, वमन और छातीकी जलन दूर होता है।

अम्लपित्तान्तक लौह—रससिन्दूर, ताम्बा और लोहा प्रत्येक एक एक तोला, हर्रका चूर्ण ३ तोले; एकत्र मिलाकर एक मासा अर्थात् दो आनेभर सहतके साथ चाटनेसे अम्लपित्त आराम होता है।

सर्व्वतोभद्र रस। लोहा, ताम्बा और अबरख प्रत्येक आठ आठ तोले, पारा दो तोले, गंधक २ तोले, स्वर्णमाक्षिक २ तोले, मैनसिल २ तोले, स्वर्णमाक्षिक २ तोले, गुग्गुलु दो तोले, विड़ंग, भेलावा, चीतामूल, सफेद अकवन की जड़, हस्तिकर्णपलाश की जड़, तालमूली, पुनर्नवा, मोथा, गुरिच, गुलशकरी, चकवड़की बीज, मुंडरी, भीमराज, केशुरिया, शतावर, बिधारेकी बीज, त्रिफला और त्रिकटु प्रत्येक चार चार मासे; यह सब द्रव्य एकत्र घी और सहतके साथ खलकर एक आनेभर मात्रा पानीके साथ सेवन करनेसे उपद्रवयुक्त अम्लपित्त, शूल, रक्तपित्त, अर्श, वातरक्त, अग्निमान्द्य, पांडु, कामला, श्वास, कास प्रभृति रोग शान्त होता है।

पिप्पली घृत—घी ४ सेर, पिपलका काढ़ा ८ सेर और पीपल का कल्क एक सेर; यथाविधि पाककर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे अम्लपित्त आराम होता है।

द्राक्षाद्य घृत—मुनक्का, गुरिच, इन्द्रयव, परवरका पत्ता, खसकी जड़, आंवला, मोथा, लालचन्दन, त्रायमाणा, पद्मकाष्ठ, चिरायता और धनिया सब मिलाकर एक सेरका कल्क, तथा १६ सेर पानीके साथ ४ सेर घी यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे अम्लपित्त, अग्निमान्द्य, ग्रहणी और कास आदि रोग दूर होता है।

श्रीविल्व तैल। तिलका तैल ४ सेर, बेलकी गिरी १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, आंवलेका रस ४ सेर, दूध ८ सेर, आंवला, लाह, हर्रा, मोथा, लालचन्दन, बाला, सरलकाष्ठ, देवदारु, मजीठ, सफेद चन्दन, कूठ, इलायची, तगरपादुका, जटामांसी, शैलज, तेजपत्ता, प्रियंगु, अनन्तमूल, बच, शतावर, असगंध, सोवा और पुनर्नवा सब मिलाकर एक सेरका कल्क; यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे अम्लपित्त, शूल, हाथ पैरकी जलन और सूतिका रोग आराम होता हैं।

विसर्प और विस्फोट।

अमृतादि कषाय। गुरिच, अडूसेके जड़की छाल, परवरका पत्ता, मोथा, छतिवनकी छाल, खदिरकाष्ठ, कृष्णवेतस की जड़, नीमका पत्ता, हलदी और दारुहलदी; इन सबका काढ़ा पीनेसे विविध विषदोष, विसर्प, कुष्ठ, विस्फोट, कंडू और मसूरिका दूर होती है।

नवकषाय गुग्गुलु—गुरिच, अडूसेकी छाल, परवरका पत्ता, नीमका पत्ता, त्रिफला, खदिरसार और अमिलतास; इन सबके

काढ़ेमें आधातोला गूगल मिलाकर पोनेसे विसर्प और कुष्ठ रोग आराम होता है।

पारा, अबरख, कान्तलौह भस्म, गन्धक और स्वर्णमाक्षिक, प्रत्येक समभाग; एकत्र जङ्गली कांकरोलके रसमें एक दिन खलकर जंगली कांकरोलमें भरना, तथा चारो तरफ मिट्टी लपेटकर गजपुटमें फूंकना। ठण्ढा होनेपर औषध बाहर निकाल लेना, तथा उसका दशवा हिस्सा मिठा विषका चूर्ण मिला २ रत्ती मात्रा पीपलका चूर्ण और सहतके साथ सेवन करनेसे विसर्प रोग आराम होता हैं। अवस्थानुसार मात्रा बढ़ा भी सकते हैं।

कान्ताभिषद रस।

वृषाद्य घृत—अडूसेकी छाल, खैरकी लकड़ी, परवरका पत्ता, नीमकी छाल, गुरिच और आंवला इन सबका काढ़ा ८ सेर, तथा कल्क १ सेरके साथ यथाविधि ४ सेर घी औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे विसर्प, कुष्ठ और गुल्मरोग आराम होता है।

पञ्चतिक्तक घृत—परवरका पत्ता, छतिवनकी छाल, नीमकी छाल, अडूसेकी छाल और गुरिच, इन सबका काढ़ा ८ सेर और त्रिफलेका कल्क एक सेरके साथ ४ सेर घी औटाकर पूर्व्ववत् मात्रा सेवन करनेसे विस्फोट विसर्प और कण्डू रोग आराम होता है।

करञ्ज तैल—सरसोंका तेल ४ सेर, डहरकरंज, छतिवनकी छाल, ईशलांगला, सेहुंड़ और अकवनका दूध, चीतामूल, भीमराज, हलदी और मिठाविष मिलाकर एक सेर, गोमूत्र १६ सेर; यथाविधि औटाकर प्रयोग करनेसे विसर्प, विस्फोट और विचर्चिका रोग दूर होता है।

मसूरिका।

निम्बादि—नीमकी छाल, दवनपापड़ा, अम्बष्ठा, परवरका पत्ता, कुटकी, अड़ूसेकी छाल, जवासा, आंवला, खसकी जड़, श्वेत चन्दन और लालचन्दन, इन सबके काढ़ेमें चीनी मिलाकर पीनेसे ज्वर और मसूरिका दूर होती है तथा जितनी गोटी एकदफे निकलकर बैठ जाती है वह फिर निकलती है।

ऊषणादि चूर्ण—मिरच, पीपलामूल, कूठ, गजपीपल, मोथा, मुलेठी, मूर्व्वामूल, बारंगी, मोचरस, वंशलोचन, जवाखार, अतीस, अड़ूसेकी छाल, गोखुर, बृहती और कण्टकारी, प्रत्येकका सम-भाग चूर्ण दो आनेभर मात्रा सेवन करनेसे मसूरिका, रोमान्ती, विस्फोट और ज्वर आराम होता है।

सर्व्वतोभद्र रस—सिन्दूर, अबरख, रौप्य, सोना और मैनसिल प्रत्येक समभाग, वंशलोचन २ भाग और सबके बराबर गुग्गुलु एकत्र पानीमें खलकर दो आनेभर मात्रा सेवन करनेसे मसूरिका आराम होती है।

इन्दुकला वटिका—शिलाजीत, लोहा और स्वर्ण प्रत्येक सम-भाग बनतुलसीके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह भी मसूरिका नाशक है।

एलाद्यरिष्ट।

इलायची ५० पल, अड़ूसेकी छाल २० पल, मजीठ, कुरैयाकी छाल, दन्तीमूल, गुरिच, हल्दी, दारु-हलदी, रास्ना, खसकी जड़, मुलेठी, शिरीष छाल, खैरकी लकड़ी, अर्ज्जुनछाल, चिरायता, नीमकी छाल, चीतामूल, कूठ और सौंफ; प्रत्येक दश दश पल, पानी

५१२ सेर घिव ६४ सेर, यह काढ़ा ठण्ढा होनेपर धवईका फूल १६ पल, मधु ६७॥ सेर, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, सोंठ, पीपल, मिरच, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, जटामांसी, मुरामासी, शैलज, अनन्तमूल और श्यामालता प्रत्येक आठ आठ तोले मिला मुह बन्दकर एक महीना रख देना। फिर छानकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे, रोमान्ति, मसूरिका, शीतपित्त, विस्फोट, भगन्दर, उपदंश और प्रमेह पिड़का आदि विविध रोग शान्त होता है।

क्षुद्ररोग।

चांगेरी घृत—घी एक सेर, चांगेरीका रस, सूखी मूलीका काढ़ा और खट्टी दही सब मिलाकर १६ सेर; तथा सोंठ और जवाखार प्रत्येक १० तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर सेवन करनेसे गुदभ्रंशका दर्द दूर होता है।

हरिद्राद्य तेल।

हलदी, दारुहलदी, मुलेठी, लालचन्दन, पुष्करिया, मजीठ, पद्मपुष्प, पद्मकाष्ठ, केशर और कयेथ, गाब, पाकुर और बड़ इन सबके पत्तेका कल्क और चौगूने दूधके साथ यथाविधि तेल पाककर मर्द्दन करनेसे युवानपिड़िका व्यङ्ग, नीलिका और तिलकालक आदि रोग दूर होता हैं।

कुङ्कुमाद्य तेल।

तिलका तेल आधा सेर, क्वाथार्थ—लालचन्दन, लाह, मजीठ, मुलेठी, खसकी जड़, पद्मकाष्ठ, नीलोत्पल, बड़कीसोर, पाकुरका टुसा, पद्मकेशर

और दशमूल प्रत्येक एक एक पल, पानी १६ सेर, शेष ४ सेर; मजीठ, महुआ, लाह, लालचन्दन और मुलेठी प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; बकरीका दूध एक सेर; यथाविधि औटाना पाकशेष होनेपर केशर ४ तोले मिलाकर लेप करनेसे पिड़िका, नीलिका और व्यंग आदि पीड़ा दूर हो मुखज्योति बढ़ती है।

द्विहरिद्राद्य तैल।—कडुवा तैल ४ सेर; हरदी, दारुहलदी, चिरायता, त्रिफला, नीमकी छाल और लालचन्दन प्रत्येक एक एक पलका कल्क; पानी १६ सेर यथाविधि औटाकर मस्तकमें लेप करनेसे अरूंषिका रोग दूर होता है।

त्रिफलाद्य तैल।—तिलका तैल ४ सेर, त्रिफलाचूर्ण, जटामासी, भंगरैया, अनन्तमूल और सैन्धवलवण मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे रूचि दूर होता है।

वह्नितैल।—चीतामूल, दन्तीमूल और घोषालता यह तीन द्रव्यके कल्कमें तैल पाककर कशस्टुस प्रयोग करना।

मालत्याद्य तैल।—तिलका तैल एक सेर, मालतीपत्र, करवीरकी जड़, चीतामूल, और डहरकञ्जकी बीज, प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क, पानी ४ सेर; यथाविधि औटाकर टाक और दारूणक रोगमें मालिश करना।

गुञ्जाद्य तैल।—सरसोंका तैल ४ सेर, छागमूत्र ८ सेर, गोमूत्र ८ सेर; सेहुंड़का दूध, अकवनका दूध, भंगरैया, ईशलांगला, मृणाल, घुंघुची, इन्द्रायणकी जड़, और सफेद सरसों प्रत्येक एक एक पल; यथाविधि औटाकर टाकमें मालिश करनेसे अति दुःसाध्य टाक भी आराम होता है।

यष्टिमध्वाद्य तैल।—तिलका तैल एक सेर, दूध ४ सेर, मुलेठी

८ तोले और आंवला ८ तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर नस्य लेने और मर्दन करनेसे केश और श्मश्रु पैदा होता है।

महानील तैल। तिलका तेल १६ सेर, बहेड़ेका काढ़ा ६४ सेर, आंवलेका रस ६४ सेर, हुड़हुड़ की जड़, कालीझिंटी, तुलसीका पत्ता, कृष्णशणकी जड़, भीमराज, काकमाची, मुलेठी और देवदारु, प्रत्येक १० पल; पीपल, त्रिफला, रसाञ्जन, पाण्डरीक, मजीठ, लोध, कृष्णागुरु, नीलोत्पल, आम्रकेशी, कृष्णकर्द्दम, मृणाल, लालचन्दन, नीलकाष्ठ, भेलावा, हीराकस, मल्लिकाफूल, सोमराजी, अशनछाल, लौहचूर्ण, कृष्णपुष्प, मदनछाल, चीतामूल, अर्जुनपुष्प, गाम्भारीपुष्प, आम्रफल, जामुन प्रत्येक पांच पांच पल; यथाविधि औटाकर थोड़ी देर धूपमें रख, फिर छानकर लौहके पात्रमें रखना। यह तैल नस्य, पान और मर्द्दनार्थ प्रयोग करनेसे शिरारोग और केशकी अकालपक्वता दूर होती है।

सप्तच्छदादि तैल। तिल तैल ४ सेर, छतिवनकी छाल, अडूसेकी छाल और नीमकी छाल प्रत्येक का काढ़ा १६ सेर, हलदी, दारुहलदी, हर्रा, आंवला, बहेड़ा, शोंठ, पीपल, मिरच, इन्द्रयव, मजीठ, खदिरकाष्ठ, जवाखार और सैन्धव मिलाकर एक सेरका कल्क, गोमूत्र १६ सेर, यथाविधि हलकी आंचमें औटाकर मालिश करनेसे पद्मिनीकण्टक चिप्प, कदर, व्यङ्ग, नीलिका और जालगर्द्दभ आदि पीड़ा दूर होती है।

कुंकुमादि घृत।—घी एक सेर, चीतामूलका काढ़ा ४ सेर; केशर हलदी, दारुहलदी और पीपल प्रत्येक ४ तोले यथाविधि औटाकर पान नस्य और मालिश करनेसे नीलिका युवानपिड़िका सिध्म और शिरोरोग आराम होता है।

घी ४ सेर, पीतझिंटी १२॥ सेर पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर ; शिरीष छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर ; पीपलामूल, चाभ, चीता-मूल, सोंठ, वायविड़ंग पांचोनमक, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, बिछौटी की जड़, मटियासिन्दूर और गेरूमिट्टी मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे न्यच्छ, नीलिका, तिलकालक, अंगुलिवेष्टक, पाददारी और युवानपिड़का दूर होती है ।

सर्षपर घृत ।

मुखरोग ।

दन्तरोगाशनि चूर्ण ।—जातीपत्र, पुनर्नवा, तिल, पीपल, झांटीपत्र, मोथा, बच, सोंठ, अजवाईन और हर्रे इन सबके सम-भाग चूर्णमें घी मिलाकर मुहमें रखनेसे दांतकी क्रिमि, कण्डू, शूल और दुर्गन्ध दूर होता है ।

दशनसंस्कार चूर्ण ।—सोंठ, हर्रे, मोथा, खेर, कपूर, सुपारी भस्म, मिरच, लौंग, दालचीनी प्रत्येक समभाग, तथा सबके बरा-बर सफेद मिट्टीका चूर्ण एकत्र मिलाकर दांत मलनेसे दन्त और मुखरोग दूर होता है ।

कालक चूर्ण ।—जाला, जवाखार, अम्बष्ठा, त्रिकटु, रसाञ्जन, चाभ, त्रिफला, लौहचूर्ण और चीतामूल एकत्र सहतमें मिलाकर मुहमें रखनेसे बालरोग तथा दन्त, जिह्वा और मुखरोग दूर होता है ।

पीतक चूर्ण ।—मैनसिल, जवाखार, हरिताल, सेंधानमक,

और दारुहलदी, इन सबके चूर्णमें सहत मिलाकर मुहमें धारण करनेसे कण्ठरोग दूर होता है।

पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, सोंठ, तालीशपत्र, इलायची, मिरच, दालचीनी, पलाशका खार, घण्टापाटलाका खार और जवाखार, यह सब द्रव्य दूने गुड़में औटाकर बेर बराबर गोली बनाना, तथा गोली सात दिन घण्टापारुलके खारमें रखकर मुहमे धारण करनेसे कंठरोग आराम होता है।

खारगुड़िका।

यवक्षारादि गुटी—जवाखार, लताफटकी या चाभ, अम्बष्ठा, रसाञ्जन, दारुहलदी और पीपल, यह सब द्रव्य सहतमें मिलाकर गुड़िका बना मुहमे रखनेसे गलरोग दूर होता है।

सप्तच्छदादि काढ़ा—छतिवनकी छाल, खसकी जड़, परवर का पत्ता, मोथा, हर्रा, कुटकी, मुलेठी, अमिल्तास और लालचन्दन, इन सबका काढ़ा पीनेसे मुखके भीतरका घाव आराम होता है।

पटोलादि काढ़ा—परवरका पत्ता, सोंठ, त्रिफला, इन्द्रायण की जड़, त्रायमाणा, कुटकी, हलदी, दारुहलदी, और गुरिचके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे या मुहमें धारण करनेसे मुखरोग दूर होता है।

खदिर वटिका—खैर १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, इस काढ़ेमें जाविची, कपूर, सुपारी, बकुलका पत्ता, और जायफल, प्रत्येक आठ आठ तोले मिलाकर गुड़िका बनाना। यह गुड़िका मुहमें धारण करनेसे दन्त, ओष्ठ, जिह्वा, तालु और मुखरोग दूर होता है।

खैर १२॥ सेर, बबूलकी छाल ३१। सेर, पानी २५६ सेर, शेष

इरम खदिर वटिका । ६४ सेर, यह काढ़ा छानकर फिर औटाकर गाढ़ा करना, तथा इलायची, खसकी जड़, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, बाला, प्रियङ्गु, तमालपत्र, मजीठ, मोथा, अगरू, मुलेठी, वराहक्रान्ता, त्रिफला, रसांजन, धवईका फूल, नागेश्वर, पुण्डरिया, गेरूमिट्टी, दारुहलदी, कटफल, पद्मकाष्ठ, लोध, बड़कीमोर, जवासा, जटामांसी, हलदी, रास्ना, शोंठ, दालचीनी प्रत्येक दो दो तोले ; कक्कोलफल, जायफल, जावित्री, और लौंग प्रत्येक आठ आठ तोले उसमें मिलाना। ठण्ढा होनेपर आधा सेर कपूर मिलाकर मटर बराबर गोली बनाना। यह गोली मुहमें धारण करनेसे ओष्ठ, जिह्वा, दन्त, और तालूगत रोग दूर होता है तथा मुख स्वादिष्ट और सुगन्ध, तथा दांत दृढ़ और जीभ साफ होता है।

बकुलाद्य तैल।—तिलतैल ४ सेर, मौलसरीका फूल, लोध, हड़जोड़, नीलझांटी, अमिलतासका पत्ता, बनतुलसी, साल और बबूल तथा असनकी छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर ; यह काढ़ा तथा उक्त सब द्रव्य मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर मुहमें धारण करनेसे तथा नास लेनेसे हिलता हुआ दांत मजबूत होता है।

कर्णरोग।

भैरव रस।—पारा, गन्धक, मीठाविष, सोहागेका लावा, कौड़ी भस्म और गोलमिरच का चूर्ण प्रत्येक समभाग आदीके रसकी भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना, अनुपान आदीके रसमें सेवन करनेसे कर्णरोग और अग्निमान्द्य आराम होता है।

इन्दुवटी—शिलाजीत, अबरख और लोहा प्रत्येक एक एक भाग, और सोनेका भस्म चार आनेभर एकत्र काकमाची, शतावर, आंवला और पद्मके रसकी भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। आंवलेका रस या काढ़ेके साथ सेवन करनेसे कर्णनादादि वातज पीड़ा और प्रमेह आराम होता है।

सारिवादि वटी। अनन्तमूल, मुलेठी, कूठ, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, प्रियंगु, नीलोत्पल, गुरिच, लौंग, हर्रा, आंवला और बहेड़ा, प्रत्येक सम-भाग, समष्टीके बराबर अबरख और अबरखके बराबर लोहा, एकत्र केशुरियाका रस, अर्जुन छालका काढ़ा, जौका काढ़ा, काकमाचीका रस और घुंघुचीके जड़के काढ़ेकी भावना दे दो रत्ती बराबर गोली बनाना। धारोष्ण दूध, शतावरका रस अथवा चन्दनके साथ सेवन करनेसे वातज कर्णरोग, प्रमेह और रक्तपित्त आराम होता है।

दीपिका तैल—महत् पञ्चमूलके आठ अङ्गुल लकड़ीमें अथवा देवदारु और सरलकाष्ठमें तेलसे भिंगोया रेशमी वस्त्र लपेटकर जलाना। उसमें से जो तेलका बुंद गिरेगा उसीको दीपिका तैल कहते हैं। यह तेल गरमकर कानमें डालनेसे तुरंत दर्द शान्त होता है।

दशमूली तैल—तिल तेल ४ सेर, दशमूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर यह काढ़ा तथा एक सेर दशमूलका कल्क यथा-विधि औटाकर कानमें डालनेसे बहिरापन दूर होता है।

क्षाराद्य तैल—नीम, करञ्ज अथवा सरसोंका तेल एक सेर, बकरीका दूध ४ सेर, तथा लहसन, आंवला और हरताल सब मिलाकर दो पलका कल्क, यथाविधि औटाकर कानमें डालनेसे कर्णस्राव बन्द होता है।

शम्बूक तैल—सरसोंके तेलमें घोंघेका मांस औटाकर कानमें डालनेसे कर्णनाली दूर होता है।

निशातैल—सरसोंका तेल एक सेर, धतूरेके पत्तेका रस ४ सेर तथा हलदी ८ तोले और गन्धक ८ तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर कानमें देनेसे कर्णनाली दूर होता है।

कुष्ठाद्य तैल—तिलका तेल एक सेर, छागमूत्र ४ सेर; और कूठ, बच, देवदारु, सोवा, सोंठ और सैन्धव सब मिलाकर १६ तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर कानमें देनेसे पूतिकर्ण दूर होता है।

नासारोग।

व्योषाद्य चूर्ण—त्रिकटु, चीतामूल, तालीशपत्र, इमली, अम्लवेतस, चाभ और कालाजीरा सब मिलाकर दो पल, इलायची, तेजपत्ता और दालचीनी मिलाकर ४ तोले, पुराना गुड़ ५० पल; एकत्र औटाकर ४ आनेभर मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे पीनस, श्वास, कास, अरुचि और स्वरभङ्ग आराम होता है।

शिग्रुतैल—सैजनकी बीज, बड़ती बीज, दन्तीबीज, त्रिकटु और सैन्धवका कल्क और बेलके पत्तेके रसके साथ यथाविधि तेल औटाकर नास लेनेसे पूतिनस्य रोग दूर होता है।

व्याघ्रीतैल—सरसोंका तेल १ सेर, पानी ४ सेर; तथा कण्टकारी, दन्तीमूल, बच, सेजनकी छाल, निर्गुण्डी, त्रिकटु, और सैन्धव मिलाकर १५ तोलेके कल्क; यथाविधि औटाकर नास लेनेसे पूतिनस्य दूर होता है।

पुराना गुड़ १२॥ सेर, चीतामूल ६। सवा छ सेर, पानी ५० सेर, शेष १२॥ सेर; गुरिच ६। सेर, पानी ५० सेर शेष १२॥ सेर; दशमूल प्रत्येक पांच पांच पल, पानी ५० सेर शेष १२॥ सेर; यह तीनो काढ़ा एकत्र मिलाकर उसके साथ गुड़ मिलाना तथा हर्रेका चूर्ण ८ सेर मिलाकर औटाना। पाकशेष में शोंठ, पीपल, मिरच, दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येक का चूर्ण दो दो पल और जवाखार ४ तोले मिलाना। तथा दूसरे दिन २ सेर सहत मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे पीनस, नासारोग, काम, चय और अग्निमान्द्य शान्त होता है।

चित्रक हरीतकी।

अबरख ८ तोले, पारा, गन्धक, कपूर, जावित्री और जायफल प्रत्येक चार चार तोले, बिधारेकी बीज, भांगकी बीज, विदारीकन्दकी जड़, सतावर, गुलशकरी की जड़, बरियारेकी जड़, गोखुर बीज, और (निचुल) ईजलकी बीज प्रत्येक दो दो तोले, एकत्र पानके रसमें खलकर ३ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान सहत और पानका रसमें यावतीय श्लेष्म विकारमें प्रयोग करना।

लक्ष्मीविलास।

करवीराद्य तैल—तिलका तैल एक सेर, लाल कनैलका फूल, जातीपुष्प, अशनपुष्प और मल्लिका पुष्प, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, पानी ४ सेर, यथाविधि औटाकर नास लेनेसे नासार्श रोग आराम होता है।

दुर्व्वाद्य तैल—चौगूने दूर्व्वाघासके रसमें तैल औटाकर नास लेनेसे नासारोग और रक्तस्राव बन्द होता है।

चित्रक तैल—तिलका तैल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, चीतामूल, चाभ, अजवाईन, कण्टकारी, करञ्जबीज, सेन्धानमक और

आकवनका दूध सब मिलाकर एकसेर का कल्क, यथाविधि औटाकर नास लेनेसे नासार्श दूर होता है ।

नेत्ररोग ।

हरीतकी, वच, कूठ, पीपल, मिरच, बहेड़ेके गुठलीका गूदा, शङ्खनाभि और मैनसिल, यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनाना । यह बत्ती सहतमें घिसकर आंखमें लगानेसे आंखकी खुजली, तिमिर, फूली, अर्व्वुद, अधिमांस, कुसुम और रात्र्यन्धता आदि रोग दूर हो दृष्टि प्रसन्न होता है ।

चन्द्रोदयवर्त्ती ।

वृहत् चन्द्रोदय वर्त्ती—रसांजन, इलायची, केशर, मैनसिल, शंखनाभि, सैजनकी बीज और चीनी ; एकत्र पानीके साथ खलकर वर्त्ती बनाना । पूर्व्ववत अंजन करनेसे पूर्व्वोक्त रोग दूर होता है ।

चन्द्रप्रभावर्त्ती—रसांजन, सैजनकी बीज, पीपल, सुलेठी, बहेड़ेके बीजका गूदा, शंखनाभि और मैनसिल, यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें पीसकर वर्त्ती बनाना, छायामें सुखाकर इस वर्त्तीका अंजन करनेसे यावतीय चक्षुरोग आराम होता है ।

त्रिफला, त्रिकटु, सैन्धव, सुलेठी, तूतिया, रसांजन, पुण्डरिया, वायविड़ंग, लोध और ताम्बा एकत्र पीसके पानीमें खलकर वर्त्ती बनाना । यह वर्त्ती नारी दूधमें घिसकर अंजन करनेसे तिमिर रोग, किंशुक फूलके रसमें घिसकर अंजन करनेसे आंखकी फूली और छाग दूधमें घिस कर अंजन करनेसे माड़ा दूर होता है ।

नागार्ज्जुनाञ्जन ।

विभीतकादि क्वाथ—बहेड़ा, हर्रा, आंवला, परवरका पत्ता, नीमकी छाल और अडूसेकी छाल, इन सबके काढ़ेमें गूगल मिलाकर पीनेसे चक्षुशूल, शोथ और आंखकी लाली दूर होती है।

बृहत् वासादि।

अडूसेकी छाल, मोथा, नीमकी छाल, परवरका पत्ता, कुटकी, गुरिच, लालचन्दन, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, दारूहल्दी, चीतामूल, शोंठ, चिरायता, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, श्यामालता और जौ सब मिलाकर ४ तोले, पानी दो सेर, शेष आधा पाव, सवेरे यह काढ़ा पीनेसे तिमिर, कंडू, फूली और अर्व्वुद आदि नेत्ररोग दूर होता है।

नयनचन्द्र लौह।

त्रिकटु, त्रिफला, कांकड़ाशिंगी, शटी, रास्ना, शोंठ, मुनक्का, नीलाकमल, काकोली, मुलेठी, बरियारा, नागेश्वर एकत्र त्रिफलेका काढ़ा, तिल तेल और भीमराजके रसकी भावना दे बैरकी गुठली बराबर गोली बनाना। त्रिफला भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे यावतीय नेत्ररोग शान्त होता है।

महात्रिफलाद्य घृत।

घी ४ सेर, त्रिफला दो सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, यह काढ़ा, तथा भंगरैयाका रस ४ सेर, अडूसेके पत्तेका रस ४ सेर अथवा अडूसेका काढ़ा ४ सेर, सतावरका रस ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, गुरिचका रस या काढ़ा ४ सेर, आंवलेका रस ४ सेर, तथा पीपल, चीनी, मुनक्का, त्रिफला, नीलाकमल, मुलेठी, क्षीरकाकोली, गुरिच और कण्टकारी सब मिलाकर एकसेरका कल्क, यथाविधि औटाकर भोजनके पहिले मध्यमें और पीछे आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकारका नेत्ररोग आराम हो बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती हैं।

शिरोरोग।

—०—

पारा, गंधक, लोहा और तेवड़ो प्रत्येक एक एक पल, गूगल ४ पल, त्रिफलाका चूर्ण दो पल, कूठ, मुलेठो, पोपल, शोंठ, गोक्षुर, वायबिड़ंग और दशमूल प्रत्येक एक एक तोला; एकत्र दशमूलके काढ़को भावना देना फिर घोमें खलकर ८ मासे बराबर गोलो बनाना। बकरीका दूध, पानो या सहतके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका शिरोरोग दूर होता है।

शिरःशूलाद्रिवज्र रस।

अर्द्धनाड़ी नाटकेश्वर—कौड़ीभस्म २४ तोले, सोहागेका लावा २॥ तोले, मिरच ४॥ तोले, मिठाविष २॥ तोले, एकत्र स्तनदूधमें खलकर नास लेनेसे शिरोरोग शान्त होता है।

चन्द्रकान्त रस—रससिन्दूर, अबरख, ताम्बा, लोहा और गंधक; प्रत्येक समभाग एकत्र सेहुंड़के दूधमें एकदिन खलकर मासे बराबर गोली बनाना। सहतके साथ सेवन करनेसे सूर्य्यावर्त्त आदि शिरोरोग दूर होता है।

घी १६ सेर, काढ़ेके लिये एक मोरका मांस अथवा ३ पल वजन दशमूल (प्रत्येक तीन तीन पल) वरियारा, रास्ना और मुलेठो प्रत्येक तीन तीन पल एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानो रहते उतार लेना। फिर दूध ४ सेर; तथा जीवक, ऋषभक, महामेद, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलेठी, मुगानी और माषोणी प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर पाक

मयूराद्य घृत।

तोला मात्रा सेवन करनेसे शिरोरोग आदि जर्द्धज रोग समूह और अर्द्धित रोग आराम होता है।

तिल तेल ४ सेर, छागदूध ४ सेर, भंगरैयाका रस १६ सेर; तथा रेंड़की जड़, तगरपादुका, सोवा, जीवन्ती, रास्ना, सैन्धव, दालचीनी, वायविड़ंग, मुलेठी और शोंठ प्रत्येक ६ तोले २ मासे और दो रत्ती का कल्क; यथाविधि औटाकर नास लेनेसे शिरोरोगकी शान्ति, तथा शिथिलकेश, दन्तादिकी दृढ़ता और दृष्टिशक्ति की वृद्धि होती है।

षड़बिन्दु तैल।

सरसोंका तेल १६ सेर, दशमूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, नीबूका रस १६ सेर, आदीका रस १६ सेर, धतूरेका रस १६ सेर; तथा पीपल, गुरिच, दारुहलदी, सोवा, पुनर्नवा सेंजनकी छाल, पीपल, कुटकी, करंज बीज, कालाजीरा, सफेद सरसों, बच, शोंठ, चीतामूल, शठी, देवदारु, बरियारा, रास्ना, हुड़हुड़, कटफल, निर्गुण्डीका पत्ता, अभ्र, गेरूमिट्टी, पीपलामूल, मुखीमूली, अजवाईन, जीरा, कूठ, अजमोदा और बिधारेकी जड़ प्रत्येक एक एक पल; यथाविधि औटाकर शिरमें मालिश करनेसे कफजन्य शिरोरोग और बदनमें मालिश करनेसे कफजन्य दर्द और शोथ दूर होता है।

महादशमूल तैल।

सरसोंका तेल १६ सेर, दशमूल, धतूरेका पत्ता, पुनर्नवा और निर्गुण्डीपत्र प्रत्येक १२॥ सेर, अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर अवशिष्ट रखना तथा अडूसेके जड़की छाल, बच, देवदारु, शठी, रास्ना, मुलेठी, मिरच, पीपल, शोंठ, कालाजीरा, कटफल, करंज

बृहत् दशमूल तैल।

बीज, कूठ, इमलीकी छाल, जंगली सेम और चीतामूल प्रत्येक आठ आठ तोले, यथाविधि औटाकर व्यवहार करनेसे शिरःशूल, कर्णशूल और नेत्रशूल दूर होता है।

अपामार्ग तैल—अपामार्ग बीज, त्रिकटु, हलदी, नकछिकनी का पत्ता, हींग और वायविड़ंग सब मिलाकर एक सेर और १६ सेर गोमूत्रके साथ यथाविधि ४ सेर तिल तैल औटाकर नास लेनेसे शिरको क्रिमिका नाश होता है।

स्त्रीरोग।

दार्व्यादि काढ़ा—दारहलदी, रसांजन, अडूसेके जड़की छाल, मोथा, चिरायता, बेलकीगिरी और भेलावा, इन सबके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे प्रदर रोग आराम होता है।

उत्पलादि कल्क—लालकमल की जड़, लालकपास की जड़, कमल की जड़, लालजिमिकन्द, मौलसरी की जड़, गंधमाला, जीरा और लालचन्दन; यह सब द्रव्य आधा तोला मात्रा चावल भिंगोया पानीमें पीसकर पीनेसे रक्तमूत्र, योनिशूल, कटिशूल और कुक्षिशूल दूर होता है।

चन्दनादि चूर्ण। लालचन्दन, जटामासी, लोध, खसकी जड़, पद्मकेशर, नागेश्वर, बेलकीगिरी, नागरमोथा, चीनी, बाला, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, शोंठ, अतीस, धवईका फूल, रसांजन, आम्रकेशी, जामुन की गुठली, मोचरस, नीलोत्पल, बराहक्रान्ता, छोटी इलायची, अनार का छाल; प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर आधा तोला

मात्रा सहत और चावल भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे प्रदर, रक्तातिसार, रक्तार्श और रक्तपित्त आराम होता है।

पुष्यानुग चूर्ण। पाठा, जामुनके गुठलीको गिरी, आमके गुठली की गिरी, पत्थरचूर, रसांजन, मोचरस, वराहक्रान्ता, पद्मकेशर, केशर, अतीस, मोथा, बेलको गिरी, लोध, गेरूमिट्टी, कटफल, मिरच, सोंठ, मुनक्का, लालचन्दन, स्योनाक छाल, इन्द्रयव, अनन्तमूल, धवईफूल, मुलेठी और अर्जुन छाल सबका समभाग चूर्ण, एकत्र मिलाकर दो आनेभरसे चार आनेभर मात्रा सहत और चावल भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे प्रदर, योनिदोष, अतिसार और अर्शरोग आराम होता है। पुष्यानक्षत्र में यह औषध प्रयोग और प्रस्तुत करना चाहिये।

प्रदरारि लौह—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, यह काढ़ा छानकर औटाना, गाढ़ा होनेपर वराहक्रान्ता, मोचरस, बारंगी, बेलकी गिरी, मोथा, धवईकाफूल, अतीस, अभ्रभस्म और लौहभस्म प्रत्येक का चूर्ण समभाग उसमे मिलाकर चार आनेभर मात्रा कुशमूल पीसे हुए पानीमे सेवन करनेसे प्रदर और कुक्षिशूल दूर होता है।

प्रदरान्तक लौह—पारा, गंधक, वंग, रौप्य, खपरिया और कौड़ीभस्म प्रत्येक आधा तोला, लोहा तीन तोले, एकत्र घीकुआर के रसमे एकदिन खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका प्रदर रोग आराम होता है।

अशोक घृत। गायका घी ४ सेर, अशोकमूल की छाल २ सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, अरवाचावल भिंगोया पानी ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, केशु-

रियाका रस ४ सेर; तथा जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली, क्षीरकाकोली, मागोनी, माषोणी, जीवन्ती, मुलेठी, पियाल सार अथवा पियाल बीज, फालसा, रसांजन, अशोकमूल, मुनक्का और सतावर प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर ठंढा होनेपर एक सेर चीनी मिलाना, इससे प्रदर और तज्जनित विविध उपद्रव दूर होता है।

शिवकल्याण घृत।

घी ४ सेर, गायका दूध १६ सेर; तथा कुमुदपुष्प, पद्म-काष्ठ, खसकी जड़, गोधूम, रक्तशालि, मार्गानी, क्षीरकाकोली, गांभारी फल, मुलेठी, बरियारीकी जड़, गुलशकरी की जड़, नीलाकमल, तालका पानी, बिदारीकंद, सतावर, सरिवन, जीरा, त्रिफला, खीरेकी बीज और केलेकाफूल प्रत्येक चार चार तोले पानी ८ सेर यथा-विधि औटाकर श्वेत प्रदरादिमें प्रयोग करना।

फलकल्याण घृत।

गायका घी ४ सेर, सतावरका रस ८ सेर, दूध ८ सेर; मजीठ, मुलेठी, कूठ, त्रिफला, चीनी, बरियारीकी जड़, मेदा, बिदारीकंद, असगंधकी जड़, अजमोदा, हलदी, दारुहलदी, हींग, कुटकी, लाल-कमल, कुमुदफूल, मुनक्का, काकोली, क्षीरकाकोली, श्वेतचन्दन और लालचन्दन प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि पाककर सेवन करनेसे योनिदोष, गर्भदोष और प्रदरादि रोग शान्त होता है। कल्क द्रव्यमें एक भाग लक्ष्मणाफूल देनेका उपदेश चिकित्सक लोग देते हैं।

फलघृत।

घी ४ सेर, सतावरका रस १६ सेर, तथा मजीठ, मुलेठी, कूठ, त्रिफला, शर्करा, बरियारा, मेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, असगंध, अज-

बाईन, हलदी, हींग, कुटको, नीलाकमल, कुमुदफूल, मुनक्का, चन्दन और सफेद चन्दन प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर सेवन करनेसे बन्ध्यादोष, मृतवत्सा, योनिदोष और योनिस्राव आदि दूर होता है।

कुमारकल्पद्रुम घृत। घी ४ सेर, छागमांस ६० सेर और दशमूल ६। सेर, पानी १०० सेर शेष २५ सेर; दूध ८ सेर, सतावरका रस ८ सेर, तथा कूठ, शठी, मेद, महामेद, जीवक, ऋषभक, प्रियंगु, त्रिफला, देवदारु, तेजपत्ता, इलायची, सतावर, गंभारीफल, मुलेठी, क्षीरकाकोली, मोथा, नीलाकमल, जीवन्ती, लालचन्दन, काकोली, अनन्तमूल, श्यामालता, सफेद बरियारीकी जड़, शरपोंका की जड़, कोहड़ा, बिदारीकंद, मजीठ, सरिवन, पिठवन, नागेश्वर, दारुहल्दी, रेणुक, लताफटकी की जड़, शंखपुष्पी, नीलदूब, बच, अगरु, दालचीनी, लौंग और केसर प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथा विधि ताम्बा या मिट्टीके पात्रमें औटाना, ठंढा होनेपर पारा, गंधक, अबरख दोदो तोले और सहत दो सेर मिलाना। आधा तोला मात्रा यह घी पीनेसे विविध स्त्रीरोग और गर्भदोष दूर होता है।

प्रियङ्ग्वादि तैल। तिलतैल ४ सेर, बकरीका दूध, दही और दारुहलदी का काढ़ा प्रत्येक चार चार सेर; प्रियंगु, पद्ममूल, मुलेठी, हर्रा, बहेड़ा, आंवला, रसवत, सफेद चन्दन, लालचन्दन, मजीठ, सोवा, राल, सैन्धव, मोथा, मोचरस, काकमाची, बेलकीगिरी, बाला, गजपीपल, पीपल, काकोली और क्षीरकाकोली सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर गंधपाक करना। यह तेल मालिश

करनेसे प्रदर, योनिव्यापद, ग्रहणी और अतिसार रोग आराम होता है। यह गर्भस्थापक का उत्तम औषध है।

गर्भिणीरोग ।

एरंडादि काढ़ा—रेंड़की जड़, गुरिच, मजीठ, लालचन्दन, देवदारु और पद्मकाष्ठ, इन सबके काढ़ेसे गर्भिणीका ज्वर दूर होता है।

वृहत् ह्रीवेरादि—बाला, श्योनाक छाल, लालचन्दन, बरियारा, धनिया, गुरिच, मोथा खसकी जड़, जवासा, दवनपापड़ा और अतीस इन सबका काढ़ा पीनेसे अतिसार, रक्तस्राव और सूतिका रोग दूर होता है।

लवङ्गादि चूर्ण।

लौंग, सोहागेका लावा, मोथा, धवईका फूल, बेलकीगिरी, धनिया, जायफल, सफेद राल, सोवा, अनारका छिलका, जीरा, सैन्धव, मोचरस, नीलाकमल, रसांजन, अबरख, वंग, वराहक्रान्ता, लालचन्दन, सोंठ, अतीस, काकड़ाशिंगी और बाला प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे गर्भावस्थाका संग्रहणी, अतिसार और आमरक्त आराम होता है।

गर्भचिन्तामणि रस—पारा, गंधक, लोहा प्रत्येक दो दो तोले अबरख ४ तोले, कपूर, वंग, ताम्बा, जायफल, जावित्री, गोखुर बीज, सतावर, बरियारा और सफेद बरियारा प्रत्येक एक एक तोला एकत्र पानीके साथ खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे गर्भिणीका ज्वर, दाह और प्रदर आदि आराम होता है।

गर्भविलास रस—पारा, गंधक और तूतिया प्रत्येक समभाग एकत्र नीबूके रसमें खलकर त्रिकटुके काढ़ेको ३ बार भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना, इसे गर्भिणीके ज्वरादि रोगमें प्रयोग करना।

गर्भपीयूषवल्ली रस—पारा, गंधक, सोना, लोहा, रौप्य, माचिक, हरताल, वंग और अबरख प्रत्येक समभाग एकत्र ब्राह्मी, अडूसा, भंगरैया, दवनपापड़ा और दशमूल, इन सबका रस या काढ़ेको सातबार भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह गर्भिणीके ज्वरादिमें देना।

इन्दुशेखर रस। शिलाजीत, अबरख, रससिन्दूर, प्रवाल, लोहा, स्वर्णमाचिक, और हरिताल प्रत्येक समभाग एकत्र भंगरैया, अर्जुनछाल, निर्गुण्डी, अडूसा, स्थलपद्म और कुरैयाके छालके रसकी भावना दे मटर बराबर गोली बनाना। इससे गर्भिणीका ज्वर, कास, श्वास, शिरःपीड़ा, रक्तातिसार, ग्रहणी, वमन अग्निमान्द्य, आलस्य और दौर्बल्य दूर होता है।

गर्भविलास तैल—तिलका तैल एक सेर ; बिदारीकन्द, अनारका पत्ता, कच्ची, हलदी, त्रिफला, सिंघाड़ेका पत्ता, जातीपुष्प, सतावर, नीलाकमल और पद्म सब मिलाकर १६ तोलेका कल्क ; यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे गर्भशूल और रक्तस्रावादि दूर हो पतनोन्मुख गर्भभी स्थिर होता है।

सूतिकारोग।

सूतिका दशमूल काढ़ा—सरिवन, पिठवन, वृहती, कंटकारी गोखुर, नीलाकमल की जड़, गंधालीकी जड़, सोंठ, गुरिच और मोथाका काढ़ा पीनेसे सूतिका ज्वर और दाह दूर होता है।

सहचरादि—पञ्चमूल, मोथा, गुरिच, गंधाली, सोंठ और बाला; इन सबके काढ़ेमें आधा तोला सहत मिलाकर पीनेसे सूतिका ज्वर और वेदना आराम होता है।

सौभाग्यशुण्ठी मोदक। कसेरू, सिंघाड़ा, पद्मबीज, मोथा, जीरा, कालाजीरा, जायफल, जावित्री, लौंग, शैलज, नागेश्वर, तेजपत्ता, दालचीनी, शठी, धवईफूल, इलायची, सोवा, धनिया, गजपीपल, पीपल, मिरच और सतावर प्रत्येक चार चार तोले, लोहा ८ तोले, सोंठका चूर्ण एक सेर, मिश्री ४० पल, घी एक सेर और दूध ८ सेर, यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे सूतिका जन्य अतिसार ग्रहणी आदि पीड़ा शान्त हो अग्निकी वृद्धि होती है।

जीरकाद्य मोदक। जीरा ८ पल, सोंठ ३ पल, धनिया ३ पल, सोवा, अजवाईन और कालाजीरा १ पल, दूध ८ सेर, चीनी ६। सेर, घी ८ पल; यथाविधि औटाकर त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, वायविड़ंग, चाभ, चीतामूल, मोथा और लौंग प्रत्येक एक एक पलका चूर्ण उसमें मिलाना। इससे सूतिका और ग्रहणी रोग दूर हो अग्निकी दीप्ति होती है।

सूतिकारि रस—पारा, गंधक, अबरख, ताम्बा, प्रत्येक समभाग एकत्र खुलकुड़ीके रसमें मर्द्दनकर छायामें सुखा उरद बराबर गोली बनाना। आदीके रसमें यह सेवन करनेसे सूतिकावस्थाका ज्वर, तृष्णा, अरुचि, अग्निमान्द्य और शोथ दूर होता हैं।

बृहत् सूतिकाविनोद रस—शोंठ एक भाग, मिरच दो भाग, पीपल ३ भाग, सैन्धव आधा भाग, जाविओ २ भाग और तूतिया २ भाग, एकत्र निर्गुण्डीके रसमें एक प्रहर खलकर, सहतके साथ सेवन करनेसे विविध सूतिका रोग दूर होता हैं।

सूतिकान्तक रस—पारा, गंधक, अबरख, स्वर्णमाक्षिक, त्रिकटु और मीठाविष, प्रत्येक समभाग, एकत्र मिलाकर ४ रत्ती मात्रा उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे सूतिकाजन्य ग्रहणी, अग्निमान्द्य, अतिसार, कास और श्वासरोग आराम होता हैं।

बालरोग।

भद्रमुस्तादि काढ़ा—नागरमोथा, हर्रा, नीम, परवरका पत्ता और मुलेठी, इन सबके काढ़ेमें थोड़ा सहत मिलाकर पिलानेसे बच्चोंका बुखार आराम होता हैं।

रामेश्वर—पारा, गंधक, स्वर्णमाक्षिक प्रत्येक एक एक तोला यथाक्रम केशुरिया, भंगरैया, निर्गुण्डी, पान, गुड़कंगनी, गिमा, हुड़हुड़, शालिंच और खुलकुड़ीके रसमें एक एक दिन भावना दे, उसमें आधा तोला गोलमिरच का चूर्ण और आधा तोला सफेद अपराजिताका चूर्ण मिलाना। सरसो बराबर गोली बना बालकोंके ज्वरादि रोगोमें प्रयोग करना।

बालरोगान्तक रस—पारा, गंधक प्रत्येक आधा तोला, स्वर्ण-माक्षिक २ मासे एकत्र लोहेके पात्रमें खलकर केशुरिया, भंगरैया, निर्गुण्डी, कालमाची, गिमा, हुड़हुड़, मालिंच और खुलकुड़ीके रसको एक एक: दश भावना देना, फिर सफेद अपराजिता की जड़ दो मासे और मिरच दो मासे मिलाकर सरसों बराबर गोली बनाना। यह बालकके ज्वर और कास आदि रोगोंमें उपयुक्त अनुपानके साथ प्रयोग करना।

कुमारकल्याण रस—रससिन्दूर, मोथा, सोना, अबरख, लोहा और स्वर्णमाक्षिक प्रत्येक समभाग; घिकुआरके रसमें खलकर मूंग बराबर गोली बनाना। बालकके उमरका विचार कर एक या आधी गोली दूध और चीनीमें मिलाकर सेवन करानेसे ज्वर, श्वास, वमन, सुखंडी, ग्रहदोष, स्तन नहीं पीना, कामला, अतिसार और अग्निविकृति आराम होता है।

दन्तोद्गदगदान्तक। पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, सोंठ, अजमोदा, अजवाईन, हलदी, मुलेठी, देवदारु, दारुहलदी, वायविड़ंग, बड़ी इलायची, नागेश्वर, मोथा, शठी, काकड़ासिंगी, कालानमक, अबरख, शंखभस्म, लोहा और स्वर्णमाक्षिक प्रत्येक समभाग पानीमें खलकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। यह पानीमें घिसकर दांतमें लगानेसे तथा उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करानेसे दन्तोद्गमका ज्वर, अतिसार और आक्षेप आदि रोग आराम हो दांत जलदी निकलता है।

लवङ्ग चतुःसम—जायफल, लौंग, जीरा और सोहागेका लावा प्रत्येक समभाग; एकत्र मिलाकर दो रत्ती मात्रा चीनी और सहतके साथ चटानेसे आमातिसार और तज्जनित शूल शान्त होता है।

दाड़िम्बचतुःसम—जायफल, लौंग, जीरा और सोहागेका लावाप्रत्येक समभाग; एकत्र अनार फलके भीतर भरकर पुटपाक करना। आधी रत्तीसे २ रत्तीतक मात्रा बकरीका दूध या पानीके साथ सेवन करानेसे बालकोंका उदरामय दूर होता है।

धातक्यादि चूर्ण—धवईफूल, बेलकोगिरी, धनिया, लोध, इन्द्रयव और बाला प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर दो रत्ती मात्रा सहतके साथ सेवन करानेसे बालकोंका ज्वरातिसार और वमन दूर होता है।

बालचतुर्भद्रिका चूर्ण—मोथा, पीपल, इलायची और काकड़ासिंगी प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर पूर्व्ववत् मात्रा सहतके साथ सेवन करनेसे ज्वरातिसार, श्वास, कास और वमन दूर होता है।

बालकुटजावलेह—कुरैयाके जड़की छाल ८ तोले पानी एक सेर, शेष एक पाव, यह काढ़ा छानकर फिर औटाना, गाढ़ा होनेपर अतीस, पाठा, जीरा, बेलकोगिरी, आमके गुठलीका गूदा, सोवा, मोथा और जायफल प्रत्येक का चूर्ण चार चार आनेभर उसमें मिलाना। यह एक आनाभर मात्रा चटानेसे बालक का आमशूल और रक्तभेद दूर होता है।

बालचाङ्गेरी घृत। घी ४ सेर, चौपतियाका रस ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, तथा कयेथ, त्रिकटु, सैन्धव, बराहक्रान्ता, उत्पल, बाला, बेलकोगिरी, धवईफूल और मोचरस सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर एक आनेभर मात्रा दूधमें मिलाकर पिलानेसे बालक का अतिसार और ग्रहणी रोग दूर होता है।

घी ४ सेर, कटेली, हड़ती, बारंगी और अडूसेकी छाल प्रत्येक का

कंटकारी घृत। रस या काढ़ा चार चार सेर, बकरीका दूध ४ सेर, तथा गजपीपल, पीपल, मिरच, मुलेठी, बच, पीपलामूल, जटामासी, चाभ, चीतामूल, लालचन्दन, मोथा, गुरिच, सफेद चन्दन, अजवाईन, जीरा, बरियारा, सोंठ, मुनक्का, अनारका छाल और देवदारू सब मिलाकर एक सेरका कल्क; यथाविधि औटाकर एक आनेभर मात्रा दूधके साथ सेवन करानेसे बच्चोंका श्वास, कास, ज्वर, अरुचि, शूल और कफकी शान्ति तथा अग्निकी वृद्धि होती है।

अश्वगंधा घृत—घी ४ सेर, तथा असगंधका कल्क एक सेर यथाविधि औटाकर पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करानेसे बालक पुष्ट और मोटा होता है।

कुमारकल्याण घृत। घी ४ सेर, कटैली ८ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, दूध १६ सेर; तथा मुनक्का. चीनी, सोंठ, जीवन्ती, जीवक, बरियारा, शठी, जवासा, बेलकीगिरी, अनारका छाल, तुलसी, सरिवन, मोथा, कूठ, छोटी इलायची, गजपीपल प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; यथाविधि औटाकर पूर्व्ववत् मात्रा सेवन करानेसे बालक का देह पुष्ट, अग्नि-वृद्धि और बल बढ़ता है।

अष्टमंगल घृत—घी ४ सेर, तथा बच, कूठ, ब्राह्मीशाक, सफेद सरसो, अनन्तमूल, सैन्धव और पीपल सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर; यथाविधि औटाकर पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करानेसे ग्रहावेशजनित पीड़ा दूर होती है।

वैद्यक-शिक्षा।

चतुर्थ-खण्ड।

विष-चिकित्सा।

विषके प्रकार और भेद—साधारणतः स्थावर और जङ्गम भेदसे विष दो प्रकार का होता है। उद्भिद विशेष का जड़, काष्ठ, पत्ता, फूल, फल, छाल, दूध, रस और सार तथा दारमुज और संखिया आदि धातुविष को स्थावर और प्राणीविषको जङ्गम विष कहते हैं।

स्थावर विषोंके भिन्न भिन्न लक्षण।

स्थावर विषमें विषका जड़, अयथा रीतिसे पेटमें जानेसे शरीरमें लाठीसे मारने की तरह दर्द प्रलाप और मोह उत्पन्न होता है। विषके पत्रसे शरीरमें कम्प और श्वास होता है। फलसे अंडकोष में शोथ, सर्व्वांग में जलन और आहार में अरुचि होती है। छाल, रस और सार विष खानेसे मुखमें दुर्गन्ध, बदनका रूखापन, शिरमें दर्द और कफस्राव होता है। दूधसे मुहसे फेन निकलना, शरीरमें भारीपन और दस्त होता है। धातुविषसे छातीमें दर्द, मूर्च्छा और तालुमे जलन होता है। ये सब प्रायः जल्दी प्राणनाशक नही है पर क्रमशः अस्वस्थता पैदाकर कालान्तरमे प्राण लेते है।

जंगम विषमें फनवाले सांपका काटा हुआ स्थान कृष्ण-वर्ण और वह मनुष्य वातजनित विविध पीड़ासे पीड़ित होता है। मंडली सर्प

जंगम विषके लक्षण।

अर्थात् गोहुअन सांपका काटा हुआ स्थान पीतवर्ण और कोमल शोथयुक्त तथा पित्तजनित विविध उपद्रव उपस्थित होता है। राजिल अर्थात् रंगीन और लम्बी रेखावाला सर्प काटनेसे काटे हुए स्थानमें कठिन, चटचटा और पांडुवर्ण शोथ पैदा होता है, तथा क्षतस्थानसे स्निग्ध और गाढ़ा रक्तस्राव और नानाप्रकारके कफजनित उपद्रव उपस्थित होते हैं।

अजीर्ण रोगी, पित्तविकारी, आतपार्त्त, बालक, वृद्ध, क्षुधार्त्त, क्षीण, क्षतरोगी, प्रमेह और कुष्ठ रोगी, गर्भिणी, कृश और दुर्बल व्यक्तिको सर्प काटनेसे थोड़ेही देरमें विपन्न हो जाता हैं।

पीपल वृक्षके नीचे, श्मशानभूमि में, देवके के टीलेपर, या चौराहेपर सांप काटेतो उस रोगीका जीना कठिन है। इसीतरह सवेरे, शामको और भरणी, आर्द्रा, मघा, अश्लेषा, कृत्तिकानक्षत्र में सर्प काटनेसे भी रोगीको मृत्यु निश्चय जानना।

सर्पदंशनकी सांघातिक अवस्था।

मर्मस्थानमें काटनेसे अथवा जिस रोगीके शरीर में अस्त्रसे काटनेपर भी खुन नहो निकलता अथवा लता आदिसे जोरसे मारनेपर भी दाग नहो पड़ता, किम्बा ठंढे पानीका छींटा देनेसे रोमांच नही होता, जिसका मुह टेढ़ा हो गयाहै, केश धरके खींचनेसे केश उठ आता है, गरदन झुक गयी है, हनु अर्थात् चहुआ बैठ गया है, काटे हुए स्थानमें लाल या काले रंगका शोथ हो, मुहसे लारकी धार निकलने लगी, अथवा मलद्वार या मुह दोनो रास्तेसे लार या खून निकले, ऐसे रोगीको चिकि ा विफल होती है। काटे

हुए स्थानमें चार दांत गड़े हुए चिन्ह दिखाई देतो वहभी असाध्य जानना।

बिच्छू काटनेसे अत्यन्त जलन और सूई गड़ानेको तरह दर्द होता है। तथा विष अति शीघ्र ऊर्द्ध शरीर में चढ़कर अन्तमे काटे हुए स्थानमें आकर रहता है। हृदय, नासिका, चक्षु और जिह्वा आदि स्थानोंमें काटनेसे काटे हुए स्थानसे घाव हो क्रमशः मांस गलकर गिरता है तथा रोगी दर्दको तकलीफसे व्याकुल हो मृत्यु मुखमें जा गिरता है। मेढ़क सिर्फ एक दांतसे काटता है, उसके काटनेसे रोगीको प्यास, निद्रा, वमन, वेदनायुक्त शोथ और फुंसरी पैदा होती है। मूषिकके शुक्रमें विष रहता है इससे उसका शुक्र शरीर में लगनेसे विषको क्रिया प्रकाश होती है। सिवाय इसके अन्य जातिके मुषिक भी काटनेसे विष फैलता है। मुषिक काटे हुए स्थानसे रक्तस्राव होता है, शरीर में गोल शोथ पैदा होते हैं तथा ज्वर, चित्तचाञ्चल्य, लोमहर्ष और सर्व्वाङ्ग में जलन होता है। किसी किसी मूषिकके काटनेसे मूर्च्छा, शरीरमें मुषिक की तरह काला शोथ, बधिरता, ज्वर, मस्तक भारी होना, शरीरको विवर्णता, मुखसे लार और रक्तस्राव होते देखा गया है। ऐसे मुषिक के काटनेसे रोगीका जीना कठिन है। लुता अर्थात् मकड़ेके काटे हुए स्थानसे रक्तस्राव और क्लेदयुक्त होता है। तथा त्रिदोषजनित ज्वर, अतिसार, दाह, फुड़िया, शरीरमें नील और पीतवर्ण गोल चकता, कोमल स्पर्श और गतिशील शोथ पैदा होता है। अन्यान्य जीवोंके काटनेसे जलन शोथ और दर्द आदि विषके लक्षण प्रकाशित होते हैं।

भिन्न भिन्न विषधर कीटके लक्षण।

पागल सियार या कुत्ता आदि जीवके काटनेसे घावसे काले

उन्मत्त शृगालादिके काटने का विष।

अंगका रक्तस्राव और स्पर्शशक्तिकी अल्पता होती है। ये विष शरीरमें अधिक दिनतक रहनेसे क्रमशः ज्वर होता है तथा अन्तमें रोगी पागलकी तरह होकर काटे हुए जीवकी तरह स्वर तथा उसके कार्य्यादिका अनुकरण कर मृत्युको प्राप्त होता हैं। तथा रोगी पानी या दर्पण में काटे हुए जीवको देखनेसे किम्बा पानी देखनेसे अथवा पानीका नाम सुननेसे भयप्राप्त होती, उसकी मृत्यु निश्चय जानना। पागल सियार आदिका विष बहुत दिनतक शरीर मे गुप्त रहकर एकाएकी प्रकुपित हो सांघातिक हो जाता है; काटनेके एक या दो वर्ष बादभी बहुतोंको उन्माद और जलत्रासादि लक्षण उपस्थित हो मृत्यु होते देखा गया है।

हीनवीर्य्य विष।

हीनवीर्य्य विष शरीरमें जानेसे, एकाएकी प्राणनाश नहीं होता, किन्तु कफके साथ मिलकर शरीर मे रहता है तथा क्रमशः मलकी तरलता, शरीर विवर्णता, मुखकी दौर्गन्ध, विरसता, पिपासा, भ्रम, वमन और स्वरकी विकृति ये सब लक्षण प्रकाश होते है। यह विष आमाशय में रहनेसे कफ और वातजनित नानाप्रकार के रोग पैदा होते है। पक्वाशयमें रहनेमे वायु और पित्तजनित रोग उत्पन्न होता है तथा केश और शरीरके लोम झड़ जाते है। रस धातुगत होनेसे आहार में अरुचि, अग्निमान्द्य, शरीरमे वेदना दुर्ब्बलता, ज्वर, वमनवेग, शरीरिक भारबोध, रोमकूप रोध, मुखकी विरसता तथा अकालमे, चर्म्मकी शिथिलता और केश सफेद होता है। रक्तगत होनेसे कुष्ठ, विसर्प, फुड़िया, फोड़ा, रक्तपित्त, न्यच्छ, व्यङ्ग आदि रोग पैदा होते है। मांसगत विषसे अधिमांस, मांसार्व्वुद, अर्श, अधिजिह्व और उपजिह्व आदि पीड़ा होत है। मेदो-

गत विषसे ग्रंथि, कोषवृद्धि, मधुमेह, स्थौल्य और अतिशय पसीना होता है। अस्थिगत होनेसे अध्यस्थि, अधिदन्त, हड्डीमे दर्द और कुनख आदि रोग पैदा होते है। मज्जागत विषमे अंधकार दर्शण, मूर्च्छा, भ्रम, सन्धिस्थान में भारबोध और नेत्राभिष्यन्द पैदा होता है। शुक्रगत में क्लीवता, शुक्राश्मरी और शुक्रमेह आदि रोग प्रकाश होता है। सिवाय इसके किसी किसीको ऐसे विषसे उन्माद भी होता है।

शरीरस्थित दूषित विष ठंढी हवा चलनेसे और बदरीले दिनोमें प्रायः कुपित होता है, उसवक्त पहिले निद्राधिक्य, शारीरिक गुरुता, शिथिलता, जृम्भा रोमांच और अंगमर्द्द आदि पूर्व्वरूप प्रकाश हो फिर सुपारी खानेकी तरह मत्तता, अपरिपाक, अरुचि, बदनमे दका चका गोल फुड़ियोंका निकलना, मांसक्षय, हाथ पैरमें शोथ, मूर्च्छा, वमन, अतिसार, श्वास, पिपासा, ज्वर और उदर वृद्धि आदि रोग प्रकाश होता है।

अहिफेन विष—अधिक अफीम खानेसे सर्व्वाङ्ग में अत्यन्त जलन, ब्रह्मरन्ध्र फटजानेकी तरह दर्द, सर्व्वाङ्गका टूटना, उदराध्मान, मोह और भ्रम आदि लक्षण प्रकाशित हो रोगीका मृत्यु होती है।

सर्पदंशन चिकित्सा।

हाथ या पैरमें सांप काटेतो तुरंत काटे हुए स्थानके चार अंगुल उपर मजबूत रस्सीसे कसकर बांधना। इससे रक्त संचालन बंद हो विष सब शरीरमें नहीं फैलता। फिर काटे हुए स्थानको चीरकर खून निकालना। मुखके किसी स्थानमें कोई प्रकारका घाव न होतो, चुसकर खून निकालना। यह न हो सकेतो शृंग लगाना या एक छोटी कटोरी या गिलास में स्पिरिट जलाकर वह गिलास घावके मुहपर रखकर दबाना, इससे खून निकल जायगा, फिर आंगमें

लोहा गरम कर घावको जलाना, हाथ पैरके सिवाय और स्थानोंमें बांधनेका सुबोता नहीं है, ऐसे स्थानमें सर्प काटतेही उस स्थानसे खून निकाल कर जलाना चाहिये इससे भी उपकार होनेकी आशा है। विष सब देहमें फैल जाय तो वमन कराना चाहिये, कालिया कांडाकी जड़का नास लेनेसे विशेष उपकार होता है। ईषलांगला की जड़ पानीमें पीसकर नास देना। नाक, आंख, जीभ और कंठरोध होनेसे वार्त्ताकु, शर्व्वती नीबू और लताफटकी आदि पीस कर नास देना। दृष्टिरोध होनेसे दारुहल्दी, गोलमिरच, पीपल, सोंठ, हलदी, कनैल, करंज और तुलसी बकरीके दूधमें पीसकर आंखमें अंजन करना। जयपाल बीजकी गूदीको नीबूके रसकी २१ बार भावना दे बत्ती बना रखना, यह बत्ती मनुष्यके लारमें घिसकर अंजन करनेसे सांपका काटा मनुष्य बेहोश हो जानेपर भी होशमें आता हैं। सेजनकी बीज को शिरीष फूलके रसकी सात दिन भावना दे नस्य अंजन और पानमें प्रयोग करनेसे सर्पविष शान्त होता है। तेवड़ीकी जड़, दन्तीमूल, मुलेठी, हलदी, दारहलदी, मजीठ, अमिलतासका गूदा, पांचोनमक और त्रिकटु यह सब द्रव्यका समभाग चूर्ण सहत में मिलाकर १५ दिनतक गौके सिंगमें रखना, फिर बाहर निकाल चार आनेभर अथवा अधिक मात्रा दूध, घी और सहतके साथ सेवन कराना। इसका लेप और नासभी विशेष उपकारी है।

फनवाला सांप काटेतो निर्गुण्डी की जड़, अपराजिता और हरफारौड़ी का काढ़ा पिलाना। मंडली सर्प काटे तो सहत मुलेठी, जीवक ऋषभक, चीनी गाम्भारी और बड़के टूसेका काढ़ा पिलाना। राजिल सर्प काटे तो मिरच, पीपल, सोंठ अतीस, कूठ, भील, रेणुक, कुंभी और कुटकीके काढ़ेमें सहत

मिलाकर पिलाना। गृहधूम, हलदी और कटसरैया की जड़के काढ़ेमें घी मिलाकर पीनेसे सब प्रकारका सर्पविष दूर होता है। हुड़हुड़की जड़, ८।१० गोलमिरच के साथ पानीमें पीसकर पीनेसे सर्पविष दूर होता है, यह दवा पीनेके थोड़ी देर बाद थोड़ी फिटकिरी मिलाया पानी पिलाना चाहिये, यदि वमन हो जाय तो विषका नाश नहीं हुआ समझना तब फिर वही औषध पिलाना चाहिये। हाथीसूंड की जड़ और भुईंचम्पेकी जड़ सेवन करनेसे भी सर्पविष दूर होता है।

वृश्चिक दंशन में। बिच्छू काटनेसे काटे हुए स्थानमें बार बार तार्पिनका तेल मालिश करना। किम्वा पत्थरका कोयला घिसकर लेप करना। गायका घी और सैन्धव लवण एकत्र गरम कर लेप करनेसे किम्वा गोमय गरम कर लेप करनेसे भी वृश्चिक विष दूर होता है। काली अरूई का लवाब मालिश करनेसे वृश्चिक विष दूर होता है। गुड़का चोटा लगानेसे भी वृश्चिक काटनेकी जलन दूर होता है। मेढ़क के विषमें पहिले खून निकालकर शरीष बीज सेहुंड़के दूधमें पीसकर लेप करना। मूषिकके विषमें भी पहिले खून निकालकर फिर गृहधूम, मजीठ, हलदी और सेंधानमक एकत्र पीस गरमकर लेप करना। अथवा अकवन की जड़ पीसकर लेप करना, या दालचीनी और सोंठ का समभाग चूर्ण गरम पानीके साथ सेवन करना। मकड़ेके विषमें लालचन्दन, पद्मकाष्ठ, खसकी जड़, पाटला, निर्गुण्डी, स्वर्णक्षीरी, कुंभी, शिरीष, बाला और अनन्तमूल, प्रत्येक समभाग, कूठ २ भाग एकत्र लिसोड़ा वृक्षके रसमें पीसकर लेप करना। अपराजिता, अर्जुनछाल, कूठ, लिसोड़ा, अश्वत्थ, बड़, पाकुर, गुल्लर और बेतसकको छाल, इन सबका काढ़ा पीनेसे मकड़ा और कीट

विष दूर होता है। कच्चे केलेका दूध रोज ३।४ बार लगानेसे मकड़ेका विष दूर होता है। कच्ची हलदी दूधमें पीसकर मर्द्दन करनेसे भी गरल दूर होता है। वच, हींग, बायविड़ंग, सेंधनमक, गजपीपल, पाठा, अतीस, सोंठ, पीपल और मिरच प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा सेवन करनेसे यावतीय कीटविष दूर होता है।

पागल कुत्ता और शियार काटेकी दवा।

पागल कुत्ता या शियारका काटा हुआ स्थान चीरकर खून निकालना फिर वह स्थान आग, क्षार या गरम घीसे जलाना। तथा रोगीको पुराना घी पिलाना अथवा धतुरेकी जड़ किम्वा कुचिला एक या दो रत्ती वजन खिलाना। श्वेतपुनर्नवा और धतुरेकी जड़ एकत्र सेवन कराना उपकारी है। पारा, गंधक, कान्तलौह प्रत्येक एक एक तोला, अवरख दो तोले यथाक्रम इन्द्रायण, ब्रह्मी ब्राह्मी, नीलाकमल, सतावर और कंवाचके रसकी एक एक बार भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाकर ठंढे पानीमें इसे सेवन कराना। कंड़ेकी राख अकवनके दूधमें भिगोकर धूपमें सुखा नास लेनेसे विशेष उपकार होता है। कुत्ता काटे हुए स्थानमें सेंहुड़के दूधमें शिरीषकी बीज घिसकर लेप करना। या चावल पीसकर उसके भीतर मेषलोम भरकर सेवन कराना।

विष, विषाक्त द्रव्य या अफीम खानेपर तुरंत कै कराना चाहिये।

विषाक्तद्रव्य भक्षण चिकित्सा।

तुतिया भिगोया पानी श्रेष्ठ वमनकारक है। विष कंठगत हो तो कच्चा कयेथ, चीनी और महतके साथ चटाना। आमाशयगत हो तो कुंभेका चूर्ण चीनी और सहत मिलाकर चटाना। पक्वाशयगत विषमें पीपल, हलदी, दारहलदी और मजीठ, गोलोचनके साथ पीसकर

पिलाना। रक्तगत विषमें लिसोड़ेकी जड़, छाल और फुनगी बेरकी जड़, छाल और फुनगी, किम्वा गुलर की जड़, छाल और फुनगी अथवा अपराजिताकी जड़, छाल और फुनगी का काढ़ा पिलाना। मांसगत विषमें खदिरारिष्ट सहतके साथ और कुरैया की जड़ पानीके साथ सेवन कराना। विष सर्व्वदेहगत होनेसे और कफका वेग अधिक हो तो बरियारा, गुलशकरी, मुलेठी, महुयेका फूल, कुंभी, पापल, सोंठ और जवाखार यह सब द्रव्य मखनमें मिलाकर बदनमें मालिश करना।

दूषिविषार्त्त रोगीको पहिले स्नेहपान करा वमन, विरेचन और शोधन कराना चाहिये। पीपल, खसकी जड़, जटामांसी, लोध, छोटी इलायची, सौवर्च्चल नमक, मिरच, वाला, बड़ी इलायची और स्वर्णगैरिक; इन सबके का में सहत मिलाकर पिलानेसे दूषित विष शान्त होता है।

मैनसिल, हरताल, मिरच, दारमुज हिंगुल, अपामार्गकी जड़, धतुरेकी जड़, कनैलकी जड़ और शिरीषकी जड़ प्रत्येक का समभाग चूर्ण को रुद्राक्ष और अपराजिताके रसमें १०० बार भावना दे मूंग बराबर गोली बनाना। यह गोली सेवन करानेसे सांपके काटेसे या विषपानजनित बेहोशी दूर होती है। इस औषधिका नाम भीमरुद्र रस है। तालमखानेकी जड़, छतिवनके जड़की छाल और कूठ प्रत्येक एक एक तोला, दारमुज दो आनेभर; यह सब द्रव्य भकावनके जड़के काढ़ेमे पीसकर सरसो बराबर गोली बनाना। कुलिकादि नामक इस गोलीको सेवन करनेसे विषसे अधमरा हुआ मनुष्यभी पुनर्जीवन पाता है। इस औषध से दुरारोग्य विषम ज्वरमें भी विशेष उपकार होता है। घी १ सेर, अपामार्गका

शास्त्रीय औषध।

रस ४ सेर तथा अनारका छिलका, कूठ, छोटी इलायची, काकड़ा-शिंगी, शिरीषमूलकी छाल, मिठाविष, बच, कोदारिया, कड़ूलिया, पालिधा छाल, लालचन्दन, कुंभी और मुरामासी सब मिलाकर एक पावका कल्क, पानी न दे खाली कल्क मिला घी औटाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे यावतीय विषदोष दूर होता है। यह भी विषम ज्वर नाशक है। इसको शिखरी घृत कहते हैं। घी ४ सेर, दूध १६ सेर, तथा हरीतकी गोलोचन, कूठ, अकवन का पत्ता, कमलकी जड़, बेतसमूल, मिठाविष, तुलसी का पत्ता और पद्मकेशर सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटा तथा छानकर ४ सेर शहत मिलाना। मृत्युपाशच्छेदी नामक यह घृतभी सब प्रकार का विषदोष निवारक है।

शिरोषछाल ६। सेर, पानी १२८ सेर शेष ३२ सेर, इस काढ़ेमें २५ सेर गुड़ मिलाकर उससे पीपल, प्रियंगु, कूठ, इलायची, नील की जड़, नागेश्वर, हलदी और शोंठ प्रत्येक का आठ आठ तोले चूर्ण मिलाना। एक महीना मुह बंदकर रखने बाद उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे विषदोष दूर होता है। इसको शिरीषारिष्ट कहते हैं।

विषकी चिकित्सा में जब रोगी के वातादि दोष और रस, रक्तादि धातु प्रकृतिस्थ हो, अन्नमें रुचि हो, स्वाभाविक रीतिसे मलमूत्र निकले, वर्ण, इन्द्रिय, चित्त और चेष्टा आदिमें प्रसन्नता दिखाई दे तब रोगी निर्विष हुआ है जानना।

पथ्यापथ्य—विष नष्ट हो जानेपर रोगीको थोड़ दिन पथ्यसे रखना अत्यन्त आवश्यक है। विषकी चिकित्साके समय अति लघु पथ्य खानेको देना। कभी सोने न पावे; निद्रा दूर करनेके लिये चाह काफी आदि पिलाना अच्छा है। पर विष दूर हो

जानेपर पुराने चावलका भात, घीकी तरकारी आदि और दूध खानेको देना। सड़नेपर बहती नदीमें स्नान करना अच्छा है। तेल, मछली, कुरथी, खट्टा और विरुद्ध द्रव्य भोजन तथा क्रोध, भय, परिश्रम और मैथुन अनिष्टकारक है।

दुर्गम अन्धकारादि स्थानमें कोई वस्तु गड़ जानेसे किसी जन्तुके काटनेकी आशंका होती है तथा इस आशंकासे ज्वर, छर्दी, मूर्च्छा, दाह, ग्लानि, मोह और अतिसार आदि उपस्थित होता है।

इस शंका विषमें रोगीको सान्त्वनाजनक और आनन्दजनक वाक्यादिसे सन्तुष्ट रखना। पूर्व्वोक्त सुपथ्य भोजन कराना और किसमिस, क्षीरकाकोली और मुलेठी का चूर्ण चीनी और सहत के साथ सेवन कराना। जीवन्ती, वार्त्ताकु, सुषनी, चुहाकानी, पथरी और परवर इन सबको शाक खानेसे शंकाविषमें विशेष उपकार होता है।

जलमज्जन और उद्बन्धनसे हुए मुमूर्षुकी चिकित्सा।

जलमज्जनमें कर्त्तव्य।

पानीमें डूबे हुए व्यक्तिको पानीसे तुरंत उठाना तथा उसका शरीर गरम और अंग शिथिल हो तो चिकित्सा करना, नहीतो चिकित्सा वृथा होती है। पहिले रोगीको उलटा टांगकर मुखसे पानी और लार निकालना। फिर श्वास ठीक करनेके लिये रोगीको एकबगल सोला कर तेज सुंघनी सुंघाना, किम्वा नौसादर और चूना एकत्र मिलाकर नाकके पास रखना इससे यदि श्वास प्रवर्त्तित न हो तो अंगुली, पक्षीका पंख या और कोई वस्तुसे नाकमें सुरसुरी देना, इससे छींक

या के हो श्वास निकाने आवेगी। ये सब क्रिया विफल होनेसे रोगी को औंधा सुलाकर छातीके नीचे एक तकिया रख ऊंचा करना तथा फिर एक बगल सुलाना और दोनो पांजर हाथसे दबाकर धरना। इसी तरह एक पल समयमें ७।८ बार करना। अथवा रोगीको चित्त सुलाकर पीठके नीचे तकिया रख थोड़ा ऊंचा करना तथा दूसरा आदमी रोगीका जीभ धरकर खींचे और आप रोगीके शिर-हाने बैठकर उसके दोनो हाथ बार बार उठाकर छातीपर रखे। रोगीकी जीभ न खींचकर उसके मुखमें फूंक दिलाना तथा आप वैसही दोनो हाथ बार बार उठाने और छातीपर रखनेसे भी चलेगा। शीघ्र शीघ्र बार बार यह प्रक्रिया करनेसे यदि श्वास चले तो रोगीका हाथ और पैर नीचेसे उपरको रखना तथा गरम बालूकी पोटलीसे हाथ पैर सेंकना।

उक्त क्रियासे रोगी होशमें आनेपर बहुत कम मात्रा सञ्जीवनी सुरा या ब्राण्डि शराब पानीमें मिलाकर पिलाना तथा जिससे सुखकी निद्रा हो ऐसा उपाय करना चाहिये। चिकित्सके अवखत रोगीके पास आदमी की भीड़ कदापि न रहे। रोगीके शरीरमें अच्छी तरह हवा लगे ऐसा उपाय करना आवश्यक हैं। कुछ ताकत और आराम होनेपर थोड़ा थोड़ा गरम दूध पिलाना। फिर ८।१० दिनतक परहेज और सुपथ्यसे रखना।

उद्बन्धनमें कर्त्तव्य।

उद्बन्धनसे हुआ मुमूर्षु व्यक्तिके गलेकी रस्सी जलदी काटकर पूर्व्वोक्त क्रियाओंसे श्वास प्रवर्त्तित करना, तथा गलेमें गरम घी आहिस्ते आहिस्ते मालिश करना। मुख और छातीमें बराबर ताड़के पंखेसे हवा करना। होशमें आनेपर पूर्व्ववत् सुरापान और आहारादि व्यवस्थाकर थोड़े दिनतक पथ्यसे रखना।

सर्द्दीगरमीकी चिकित्सा।

कारण और लक्षण।

बहुत देरतक धूपमें या आगके पास बैठना, किम्बा बहुत भीड़ में रहना अथवा अधिक चलना या मिहनत से थक जानेके बादही स्नान, जलपान किम्बा और कोई ठंढी क्रिया करनेसे पहिले बहुत प्यास और बार बार पिशाब की इच्छा होती है। फिर क्रमशः शरीर उष्ण आंखें लाल और आंखकी पुतली छोटी हो बड़े जोरसे बार बार छाती धड़कती है। नाड़ीका वेग पहिले तेज हो पीछे विषम और दुर्व्वल होता है श्वास जोरसे बार बार चलती है। तथा अन्तमें रोगी बेहोश होजाता है। इसको चलित भाषामें सर्द्दीगरमी कहते हैं, यह आशु प्राणनाशक है। इससे यह पीड़ा होतेही चिकित्सा आरम्भ चाहिये।

चिकित्सा।

रोगी बेहोश होतेही हवादार घरमें चित्त सुलाना। रोगीके पास बहुत आदमी की भीड़ होना अच्छा नहीं। शिर मुख और छाती में ठंढे पानीका छींटा देना। श्वास रोध होनेसे पूर्व्वोक्त उपायसे श्वास प्रवर्त्तित करना। जयपाल घटित औषध या कोई दूसरी तेज विरेचक दवासे विरेचन कराना अच्छा है पर वमनकारक औषध देनेसे अनिष्ट होगा। जल्दी होशमें न आनेसे सरसोंका तेल, सोंठ और लाल मिरचा पीसकर उसकी पट्टी गरदन पर लगाना। ये सब क्रियाओंसे रोगी होशमें आनेपर और श्वास प्रवर्त्तित होने पर ठंढा शर्बत और दूध पिलाना उचित है। रोगी दुर्व्वल होनेसे

पानी मिलाकर थोड़ी शराब पिलाकर सुलाना। अच्छी तरह आराम होनेपर हलका आहार खानेको देना। तथा ४।५ दिन तक विशेष सावधानीसे रखना चाहिये।

वृक्ष आदि ऊंचे स्थानसे गिरजानेपर अथवा पासही कहीं बज्रपातसे उसकी तेजो या डरसे अभिभूत हो बेहोश होनेपर भी सर्द्दीगरमी की तरह चिकित्सा करना।

आतप व्यापद् (धूप की लू) की चिकित्सा।

बहुत देरतक सूर्य्यकी प्रखर किरण शरीर में लगनेसे, तृष्णा, बदनका रूखापन, भ्रम, आंखे लाल होना, मूर्च्छा, नाड़ीके गतिकी विषमता, निश्वास प्रश्वास में कष्टबोध, हाथ पैरका खिंच जाना, वमन और मूत्रवेग आदि लक्षण तथा किसी किसीको बुखार भी होते देखा गया है। चलित भाषामें इसको "लू" लगना कहते हैं। इस रोगमें यदि रोगी हात पैर पटके, तथा हाथ पैर नीला हो जाय और नाड़ीकी गति रह रहकर लोप हो जाया करें तो उसकी जान बचना कठिन है।

लक्षण।

यह रोग उपस्थित होतेही बदनका कपड़ा तुरंत निकाल कर छायायुक्त, जनताशून्य और हवेदार घरमें रोगीको सुलाकर ताड़के पंखेसे हवा करना। बीच बीच में पंखेको पानीमें भिंगो लेना, इससे हवेके साथ छोटे छोटे पानीके बूंद शरीरमें पड़नेसे अधिक उपकार होता है। चन्दन मिलाया पानी बार बार थोड़ा थोड़ा पिलाना,

कर्त्तव्य।

एक सांससे अधिक पानी पिलानेसे भी अनिष्ट होता है। एकखंड वस्त्र ठंढे पानीमें भिगों निचोड़कर रोगीको ओढ़ाना। आराम होनेपर सहस्र धार या झरनेके नीचे स्नान कराना। मूर्च्छा होती एकखंड कम्बल या फलालेन गरम पानीमें भिंगो निचोड़कर उसके उपर तार्पिनके तेलका अच्छी तरह छीटा देना फिर गर्दनमें लपेट कर उसके उपर केलेका पत्ता या सूखा कपड़ा बांध देना। थोड़ी देर बाद रोगी होशमें आकर तकलीफ से व्याकुल होगा तब गर्दनकी पट्टी खोल डालना चाहिये। देह शीतल और नाड़ी व्यतिक्रम होनेसे स्वेद प्रदान और मृतसञ्जीवनी सुरा पिलाना चाहिये।

औषध प्रयोग।

चीनी १६ तोले, घिसा चन्दन १ तोला, बड़े नीबूका रस ८ तोले और सौंफका तेल आधा तोला यह सब द्रव्य दो सेर पानीमें मिलाकर थोड़ा थोड़ाकर पिलानेसे तकलीफ दूर होता है। त्रिफलाका पानी, मूर्च्छा रोगोक्त तैलसमूह इस रोग में व्यवहार करना उचित है।

शरीर अच्छी तरह आराम न होनेतक सावधानीसे रहना चाहिये। बल और पुष्टिकारक स्निग्ध और सारक अन्न पान भोजन करना उचित है।

तत्वोन्माद चिकित्सा।

लक्षण।

धर्म्म विषयों में रातदिन निविष्ट मनसे चिन्ता करनेसे वायु प्रकुपित हो एक प्रकार का रोग पैदा होता है उसे तत्वोन्माद कहते हैं। इस

रोगमें मूर्च्छा, मुर्देकी तरह अचल आखें, चक्षु उन्मीलित, स्पर्श-ज्ञानकी हानि आदि लक्षण उपस्थित हो रोगी मृतवत् गिर पड़ता है। किसीको वक्तृताशक्ति का प्रकाश, दाम्भिकता, उग्रता, आक्षेप, (हाथ पैर पटकना), हंसी, नाच, मत्तता और रोना आदि लक्षण प्रकाशित होता हैं। नाच गाना आदि चित्तोन्मादकारी घटना-ओंसे यह रोग अधिक बढ़ता है।

कर्त्तव्य। इस रोगमें बेहोश होनेपर मूर्च्छा, अपस्मार रोगोक्त उपायों से होशमें लाना। शतधौत घृत मर्द्दन और मूर्च्छा, वातव्याधि और उन्माद रोगोक्त औषध विचार कर प्रयोग करनेसे रोग शान्त हो जाता है। सफेद चन्दन, अनन्तमूल, श्यामालता, तालमूली, मुलेठी, कालानमक, बड़ी हर्र, आंवला, बहेड़ा, हलदी, दारुहलदी, नीलेकमल की जड़, नागेश्वर, जटामासी, तालमखाना, बाला, खसकी जड़, गेरूमिट्टी, बरियारा और कुंभी प्रत्येक समभाग का चूर्ण एकत्र कर आधा तोला मात्रा धारोष्ण दूधके साथ सेवन करनेसे तत्त्वोन्माद रोग शान्त होता है। सोना, मोती, पारा, गंधक, शिलाजीत, लोहा बंशलोचन और कपूर प्रत्येक समभाग; एकत्र त्रिफलेके काढ़ेकी भावना दे, एक रत्ती बराबर गोली बना छायामें सुखाना। इसे पानीमें घिसकर नास लेनेसे बेहोशी दूर होती हैं। रोज सतावर के रसमें एक गोली सेवन करनेसे क्रमशः रोग शान्त हो जाता हैं।

पथ्यापथ्य। पुराने चावलका भात, मूग और चनेकी दाल, जौ और गेहूंकी रोटी, तिल, धारोष्ण गायका दूध, घी, मखन, मिश्रीका शर्बत, पक्का पपीता, ईख आदि द्रव्य भोजन तथा बहते नदीमें स्नान, तैलमर्द्दन, विला-सिता, सदहृत्त प्रियजन और विश्वस्ता प्रियतमा युवती कामिनी

के साथ सर्व्वदा बातचीत आदि चित्तविनोदक क्रिया इस रोग में उपकारी है। इसके विपरीत आहार विहार अनुपकारक है।

ताण्डव वातव्याधि चिकित्सा।

निदान।

अतिरिक्त भय, क्रोध या हर्ष, आशाभंग, शारीरिक क्षमता कारक क्रिया समूह, निद्रा, विघात, बलक्षय, चोट लगना, क्रिमिदोष, मलबद्धता और स्त्रीयोंके ऋतु विपर्य्यय आदि कारणोंसे वायु कुपित हो ताण्डव रोग उत्पन्न होता है। इससे पहिले अकसर बांया हाथ फिर दहिने हाथ तिसके बाद दोनो पैर और फिर क्रमशः सब शरीर कांपता है। यह रोगाक्रान्त व्यक्ति मुट्ठिमें कोई वस्तु अच्छी तरह धर नही सकता, तथा हाथमे कोई वस्तु उठाकर खा नही सकता, सर्व्वदा बेचैन रहता है, बार बार अति विकृत मुखभङ्गी करता है और चलती वख्त पैर नचाता है। निद्रावस्था में इस रोगका कोई भी लक्षण अनुभव नही होता है।

कर्त्तव्य।

साधारणतः इस रोगमें मल परिष्कारक तथा अग्नि और बल वर्द्धक औषध प्रयोग करना चाहिये। क्रिमिदोष से यह रोग पैदा होनेसे आगे क्रिमिनाशक औषध प्रयोग करना चाहिये। रजोरोध से पीड़ा होनेपर पहिले रजःप्रवर्त्तक औषध देकर फिर रजोदोष निराकृत करना। श्यामालता, अनन्तमूल, मुलेठी, तेवड़ीमूल, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, और आंवला इन सबका काढ़ा पीनेसे ताण्डव रोगमें विशेष उपकार होता है।

इसके सिवाय वातव्याधि का हहत् छागलाद्य घृत आदि औषध और कुब्जप्रसारणी और महामाष तैल आदि व्यवहार करना चाहिये।

स्निग्ध, पुष्टिकर और बलवर्द्धक आहार इस रोगमें देना उपकारी है। वातव्याधि कथित पथ्य इस रोगमें देना चाहिये। परिश्रम त्याग, बहुत देरतक सोना और बहती नदीमें स्नान इस रोगमें हितकारी है।

स्नायुशूल चिकित्सा।

भिन्न भिन्न लक्षण।

छोटी छोटी शिरा समूहों को स्नायु कहते है, उसी स्नायु समूहमें शूलवत् तीव्र वेदना होनेसे उसे स्नायुशूल कहते हैं। यह रोग वायुजनित एकप्रकार शूल है, इसमें सिवाय दर्दके और कोई लक्षण नहो दिखाई देता। मस्तक, बाहु, पैर आदि स्थानोमें त्वकके नीचे यह दर्द होता है, गरज यह दर्द सर्व्वाङ्ग में होता है। स्थानभेद के अनुसार स्नायुशूल ३ प्रकार का है। मुखमण्डल के स्नायुशूल को अर्द्धभेद, मुखमण्डलके अर्द्धांशकी शूलको अर्द्धभेद और स्फिक् अर्थात् चूतड़में होनेसे उसे अओभेद कहते हैं। बलक्षय, रक्तक्षय, हृद्दोष, मस्तिष्क दोष, अजीर्ण और विविध दन्तरोगोंसे अर्द्धभेद नामक स्नायुशूल पैदा होता है; इससे ललाटके नीचेवाला अक्षिपुट, गाल, नासिका, ओष्ठ, जीभ, पार्श्व, अधर और दांतमें शूल और दाहलिये दर्द होता है। पहिले मुखके एक तरफ से उठकर मुहभर फैल जाता

है। गिले स्थानमें वास, शैत्यसेवन, वलक्षय, तथा विकृत वायु और पानी सेवन आदि कारणोंसे अर्द्धभेद पैदा होता है। इसमें मुखमण्डलके अर्द्धांश में तीव्र दर्द होता है। यह रोग अकसर बायें तरफ होता है। तथा मस्तकमें तीरसे छेदनेकी तरह मालूम होता है। बीच बीचमें आराम हो जानेसे यह रोग देरसे आराम होता है। युवावस्थामें इसका प्रादुर्भाव अधिक होता है, तथा पुरुषकी अपेक्षा स्त्री रोगी अधिक दिखाई देती है। मलरोध, परिश्रम, शीतसेवा, दुर्व्वलता, आमवात रोग, आर्द्रस्थान में वास और गर्भ विकृति आदि कारणोंसे अधोभेद नामक वायुशूल पैदा होता है। चुतड़, जांघसंधिके पीछे तथा कभी पैर और जंघेमें अधोभेद उपस्थित होता है। यह अकसर एक पैरमे दिखाई देता है। रातको और प्रौढ़ावस्था में इस रोगका प्रकोप अधिक होता है।

वायु अनुलोमक, वलवर्द्धक और अग्निजनक औषधादि इस रोग में उपकारी है। वातव्याधि अधिकार का

चिकित्सा।

कुब्जप्रसारणी, महामाष तेल मालिश, उरद उबालकर उसका सेंक, वातज वेदना निवारक प्रलेप और रेड़ीके तेलका जुलाब इस रोगमें विशेष उपकारी है। वृहत् छागलाद्य घृत भी विशेष उपकारी है। छोटी इलायची, बड़ी इलायची, खसकी जड़, सफेद चन्दन, श्यामालता, अनन्तमूल, मेद, महामेद, हलदी, दारुहलदी, गुरिच, शोंठ, हर्रा, आंवला, बहेड़ा और अज-वाईन प्रत्येक समभाग, सबके बराबर चांदी; सब एकत्र मिलाकर २ रत्ती मात्रा गायके घीके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका वायु-शूल और वातरोग दूर होता है। स्वर्णमाक्षिक, चांदी, लौह और रससिन्दूर प्रत्येक समभाग; एकत्र चीताके रसकी भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाना; रोज सबेरे त्रिफला भिंगोया

पानीके साथ सेवन करनेसे भी आराम होता है। वातव्याधि का पथ्यापथ्य इस रोगमें पालन करना चाहिये।

भग्न चिकित्सा।

रोग परिचय।

ऊंचे स्थानसे गिर पड़ना, पीड़न और अभिघात आदि नाना कारणोंसे अस्थि और अस्थिसन्धि भग्न होता है। एक सन्धिस्थल से दूसरे सन्धि-स्थलके बीचवाले एकखण्ड अस्थिको कांड और दो अस्थिके संयोग स्थलको अस्थिसन्धि कहते हैं। ऐसही स्थानभेदके अनुसार कांड-भग्न और अस्थिभग्न नामसे भग्नरोग दो भागमें विभक्त है।

भिन्न भिन्न अवस्था और प्रकारभेद।

सन्धिभग्न छ प्रकार, उत्पिष्ट, विश्लिष्ट, विवर्त्तिक, तिर्य्यग्गत, क्षिप्त और अधोभग्न। साधारणतः यह छ प्रकारके भग्नसे अङ्गका पसारना, आकुञ्चन और परिवर्त्तन के वख्त अत्यन्त दर्द होता है तथा भग्नस्थान छूनेसे भी अत्यन्त दर्द होता है। उत्पिष्ट नामक सन्धिभग्नमें दोनो हड्डी उत्पेषित हो जाती हैं इससे भग्नस्थान के दोनो तरफ शोथ हो जाता है और रातको दर्द अधिक बढ़ता है। विश्लिष्ट सन्धिभग्न में सन्धिस्थल शिथिल हो जाता है तथा सर्व्वदा अत्यन्त दर्द होता है और उत्पिष्ट भग्नकी तरह अन्यान्य लक्षण भी दिखाई देता है। सन्धि-विवर्त्तित अर्थात् विपरीत भावसे परिवर्त्तित होनेसे दोनो तरफ तीव्र दर्द होता है। तिर्य्यग्गत अर्थात् सन्धिस्थल टेढ़ी होनेसे भी दर्द होता है। सन्धि-स्थलसे अस्थि विक्षिप्त होनेसे शूलवत् दर्द और अधःक्षिप्त होनेसे

दर्द और सन्धिका विघटन अर्थात् अमिलन होता है। कांडभग्न साधारणत: १२ प्रकारका देखनेमें आता है। जैसे कर्कटक, अश्वकर्ण, विचूर्णित, पिच्चित, छल्लित, कांडभग्न, अतिपातित, मज्जागत, विस्फुटित, वक्र और छिन्न। अस्थि विश्लिष्ट हो मध्य-भाग ऊंचा और पार्श्वद्वय नीचा हो केंकड़ेके आकार का होता है इससे उसको कर्कटक भग्न कहते हैं। किसी स्थानको विपुल अस्थि बहिर्गत हो अश्वकर्ण की तरह ऊंची हो जाती है, इसको अश्वकर्ण भग्न कहते हैं। हड्डी चूर हो जानेसे उसे विचूर्णित भग्न कहते हैं। शब्द और स्पर्शसे हड्डीका चूर्ण होना मालूम होता है। अस्थि पेषित होनेसे उसको पिच्चित कहते हैं इसमें अत्यन्त शोथ होता है; हड्डीका थोड़ा अंश विश्लिष्ट अर्थात् छिल जानेसे उसको छल्लित भग्न कहते हैं। अस्थिमांसादि पदार्थसे सर्व्वथा अलग हो त्वकमें रहनेसे उसे विश्लिष्ट कांडभग्न कहते हैं। अतिपातित भग्नमें अस्थि छिन्न हो जाती है। अस्थिका अवयव अस्थिमें प्रविष्ट हो मज्जा निकलनेसे मज्जागत भग्न जानना। विस्फुटित भग्नमें अस्थि अल्प विदीर्ण हो जाती है। अस्थि वक्र होनेसे उसे वक्रभग्न कहते हैं। छिन्नभिन्न दो प्रकार; एक प्रकार के छिन्नसे अस्थि विदीर्ण हो लग्न हो जाती है, दूसरे प्रकारसे विदीर्ण हो दो भागमें विभक्त हो जाता है। ये १२ प्रकारके कांडभग्न से अंगकी शिथिलता, प्रबल शोथ, प्रबल दर्द भग्नस्थान दबानेसे शब्दोत्पत्ति, छूनेसे अत्यन्त दर्द, स्पन्दन, सूचीवेधवत् पीड़ा, शूलवत् वेदना और बैठने उठने आदि सब अवस्थामें तकलीफ होता है।

इसमें अस्थिभग्न और विभिन्न रहती है। तरुणास्थि मुड़ जाती है। नलकास्थि विदीर्ण होती है।

अस्थिपरिचय।

कपालास्थि दो भागमें विभक्त होती है

और रुचक तथा वलया नामक अस्थिभी कटजाती है। इसको प्रत्येक अवस्थाको भग्न कहते हैं। नाक, कान, आंख और गुह्य-देशकी अस्थिका नाम तरुणास्थि; जिस अस्थिमें छेद रहता है उसका नाम नलकास्थि; जानु, नितम्ब, स्कन्ध, गंड, तालु, शंख, वङ्क्षण और मस्तक के अस्थिको कपालास्थि, दन्तसमूहको रुचकास्थि तथा दोनो हाथ, पार्श्वद्वय, पृष्ठ, वक्ष, उदर, गुह्य और दोनो पैरकी टेढ़ी हड्डियाँ कोवलयास्थि कहते हैं।

साध्यासाध्य।

कपालास्थि टूटनेसे असाध्य जानना. सन्धिभग्नमें चिप्त और उत्पिष्टभग्न भी असाध्य है। असंयुक्त कपालास्थि का भग्न ललाटास्थि का चूर्ण तथा छाती, पीठ, शंख और मस्तक के चुड़ा स्थानका टूटना भी असाध्य है; भग्नाङ्ग व्यक्ति यदि वायु प्रकृतिका हो, रोग प्रतिकारमे यत्नशील न हो, आहार बंद हो गया हो, तथा ज्वर, आध्मान, मूर्च्छा, मूत्राघात और मलबद्धता आदि उपद्रवयुक्त हो तो वह भग्न कष्टसाध्य जानना। अस्थि एकबार सम्यक योजित होनेपर भी यदि वह अयथारीतिसे स्थापित न हो, सुन्यस्त होनेपर भी यदि यथानियम बांधी न जाय और अच्छी तरह बांधनेपर भी यदि वह अभिघातादि से फिर हिलकर टेढ़ी हो जाय तो फिर यह अवस्था दूर नही हो सकता अर्थात् वैसही रहजाता है।

कर्त्तव्य और चिकित्सा।

भग्नस्थानमें पहिले ठंढे पानीसे सीचनकर अवनत अस्थि उठाना और उन्नत अस्थि दबाकर स्वस्थान में ले जाना। फिर समान दो काठकी तख्ती दोनो तरफ रख कपड़ेसे न बहुत ढोला न बहुत कसकर बांधना। कारण बंधन ढोला होनेसे संयोग स्थिर नही रहता तथा कसकर बाधनेसे त्वक आदि स्थानोमें शोथ, दर्द और पाक होता है। बंधन

के ऊपर बड़, गुल्लर, पोपर, पाकड़, मुलेठी, अमड़ा, अर्ज्जुन, आम, कोशाम्र, पिड़िंशाक, तेजपत्ता, बड़ा जामुन, छोटा जामुन, पियाल, महुआ, कुटकी, वेतस, कदम्ब, बैर, रक्तलोध, लोध, सावरलोध, शल्लकी, भैलावा, पलाश और मेड़ाशृङ्गीके काढ़ेका पानी सींचना। अभावमें नौसादर भिंगोया पानी किम्बा ठण्ढे पानीसे बन्धनका कपड़ा तर रखना। अतिरिक्त दर्द होनेसे स्वल्प पञ्चमूलके साथ दूध औटाकर वही दूधसे सींचना। रोगकी अवस्थाके अनुसार अकसर बन्धन खोलकर फिर बांधना। साधारणत: शीत ऋतुमें सातदिनके अन्तर, शीत ग्रीष्म दोनो जब समान अवस्थामें रहता है, तब ५ दिनके अन्तर और ग्रीष्म ऋतुमें तीन दिनके अन्तरपर बन्धन बद-लना चाहिये। लहसन, सहत, लाह, घी और चीनी प्रत्येक सम-भाग एकत्र पीसकर आधातोला मात्रा रोज सेवन करना। अथवा बबूलके छालका चूर्ण चार आनेभर मात्रा महतके साथ चाटना। किम्बा पीतवर्ण कौड़ीभस्म २।३ रत्ती कच्चे दूधके साथ सेवन कराना। हाड़जोड़, लाह, गोधूम और अर्ज्जुन छाल प्रत्येक समभाग एकत्र पीसकर आधा तोला मात्रा दूध और घीके साथ सेवन करनेसे अस्थिसंयोगमें विशेष मदद पहुंचती है। अस्थि मिलजाने पर बन्धन खोलकर मजीठ और मुलेठी कांजीमें पीसकर उसका लेप करना। किम्बा शालि तण्डुल पीसकर उसमें घी मिलाकर प्रलेप देना। लाह, हाड़जोड़, अर्ज्जुनछाल, असगन्ध और गुलशकरी प्रत्येक एक एक तोला, गूगल ५ तोले एकत्र पीसकर लेप करना। अथवा बबूलके जड़की छालका चूर्ण तथा त्रिकटु और त्रिफलाचूर्ण प्रत्येक समभाग सबके बराबर गूगल एकत्र खलकर भग्नस्थानमें लेप करना। पुरानी बिमारी होनेपर माषतैल, कुब्जप्रसारिणी तैल और सूअरकी चर्बी मालिश करनेसे विशेष उपकार होता है।

पथ्यापथ्य—इस रोगमें मांस, मांसरस, दूध, घी, मटर और उड़दका जूस तथा अन्यान्य पुष्टिकर द्रव्य भोजन उपकारी है। अधिक लवण, कटु, क्षार, खट्टा और रुक्षद्रव्य भोजन, तथा कसरत, धूपमें बैठना और मैथुन भग्नरोगीको अनिष्टकारक है।

शीर्षाम्बु रोग चिकित्सा ।

अधिक शैत्य, संयोगविरुद्ध भोजन, अतिरिक्त मद्यपान, दूषित, वायु सेवन, दूषित जलपान, मस्तकमें आघात प्राप्ति और अन्त्रमें क्रिमिसञ्चय आदि कारणोंसे मस्तिष्कके आवरणमें क्रमशः पानी आकर, शिरोवेदना, आलोक दर्शण और शब्द सुननेसे चमक उठना, अल्पमूत्र आना, कालेरंगका कठिन मल आना, नाड़ी द्रुत-गति, त्वक रुखा और गरम, जामतलाना, चक्षुके तारेकी विकृति, क्रोधशीलता, मुखकी विवर्णता, निद्रावस्थामें दांत घिसना, ओष्ठ और नासिकामें कंडु, हाथ पैर पटकना, पक्षाघात, प्रलाप तथा चक्षु रक्तपूर्ण और रक्तवर्ण आदि नानाप्रकारके उपद्रव उपस्थित होते है। इसीको शीर्षाम्बु रोग कहते हैं। यह रोग अधिक उमरवालोंको अपेक्षा बालकों को अधिक होता है। खासकर बच्चोंके दांत निकलती वख्त यह रोग होनेकी सम्भावना रहती है। यह रोग अति कष्टसाध्य है। रोग प्रकाश होनेसे पहिले जिह्वा कफलिप्त, अधिक निद्रा, दुर्ब्बलता, दुर्गन्धयुक्त निश्वास निकलना और मलकी कठिनता आदि लक्षण दिखाई देता है।

इस रोगमें विरेचक, मूत्रकारक और रक्तपरिष्कारक औषध

कर्त्तव्य और चिकित्सा।

प्रयोग करना चाहिये। रोगीका शिर मुड़ाकर सर्व्वदा गरम पकड़ेसे ढांके रखना उचित है। मेहुड़के पत्तेका रस अथवा जयन्ती पत्तेके रसके साथ कालाजीरा, कूठ, गेरूमिट्टी, सफेद मिट्टी, लालचन्दन, समुद्र-फेन प्रत्येक समभाग तथा सबके बराबर भूजा हुआ चावल एकत्र पीस तथा थोड़ा गरमकर, दोपहर को मस्तकमें लेप करना, तथा सूखजानेपर निकाल डालना। दूधके साथ नारियलका तेल थोड़ा मिलाकर पिलानेसे विशेष उपकार होता है। रेवतचीनी, तेवड़ी की जड़, श्यामालता, हरीतकी, आंवला, शठी, अनन्तमूल, मुलेठी, मोथा, धनिया, कुटकी, हलदी, दारुहलदी, दालचिनी इलायची और तेजपत्ता, इन सबके काढ़ेमें जवाखार मिलाकर पीनेसे रोग शान्त होता है। गायका घी १ सेर, तथा केशर, अनन्तमूल, मुनक्का, जीवन्ती, हरीतकी, कालानमक, तेजपत्ता और परवरकी जड़ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; पानी ४ सेर यथाविधि औटा-कर उपयुक्त मात्रा दूधके साथ सेवन करनेसे यह रोग तथा अन्यान्य शिरोरोग भी आराम होता है। महादशमूल तैल, हृहत्‌शुष्क मूलादि तैल और नीचे लिखा तैल शिरमें मालिश करना। सरसो का तैल एक सेर, धतुरेकी बीज, धवईका फूल, मूर्व्वामूल, महुये की छाल, मुलेठी, कालानमक, शोंठ, नीलकी जड़, पीपल, काटफल, कुटकी और बाला; प्रत्येकका चूर्ण आधा आधा मात्रा मिलाकर एक पात्रमें रख मुह बन्दकर सात दिन रख देना। यह तैल शिरमें मालिश करनेसे शिर्षाम्बु रोग दूर होता है।

ये सब क्रियाओंसे पीड़ा दूर न होनेपर उपयुक्त चिकित्सक से कपालमें फस्त लेना चाहिये। हतकर्म्मा चिकित्सक के सिवाय किसी अनाड़ीसे फस्त लेनेसे अनिष्ट होनेकी सम्भावना है।

लघुपाक तथा पुष्टिकारक और सारक अन्नपान भोजन को देना। शीतल द्रव्य या कफवर्द्धक द्रव्य आहार और विहार अनिष्टकारक है।

रसायन विधि।

"यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्।"

रसायन संज्ञा—जिस औषधिके व्यवहार करनेसे स्वस्थव्यक्ति को बुढ़ापा और कोई रोगके आक्रमणका डर नहीं रहता, उसे रसायन कहते हैं। रसायन सेवन करनेसे आयु, स्मृतिशक्ति, मेधा, कान्ति, बल, स्वर आदि बढ़ता है और एकाएको कोई रोग आक्रमण नहीं कर सकता है।

सवेरे पानीका नास लेनेसे रसायन होता है। इससे पीनस, स्वरविकृति और कासरोग दूर होता है तथा दृष्टिशक्ति बढ़ती है। सूर्य्योदय से पहिले यथाशक्ति जलपान करनेसे वातज, पित्तज रोग दूर हो मनुष्य दीर्घायु होता है। नाकसे जलपान करनेसे और भी अधिक उपकार होता है। इसको ऊषापान कहते हैं। अजीर्ण रोगमें ऊषापान विशेष उपकारी है। असगंधका चूर्ण चार आनेभर मात्रा पित्तप्रधान प्रकृतिमें दूधके साथ, वायुप्रकृतिमे तेलके साथ, वात पैत्तिक प्रकृतिमें घीके साथ और वातकफ प्रकृतिमें गरम पानीके साथ १५ दिनतक सेवन करनेसे रसायन होता है तथा शारीरिक कृशता दूर होती है। विधारेके जड़के चूर्णको सातबार सतावरके रसकी भावना दे आधा तोला मात्रा घीके साथ एक

प्रकारभेद।

मास सेवन करनेसे, बुद्धि, मेधा और स्मृतिशक्ति बढ़ती है तथा वलिपलितादि रोग दूर होते है। हरीतकी वर्षातमें सैन्धवके साथ, शरत्काल में चीनीके साथ और ग्रीष्ममें गुड़के साथ सेवन करनेसे विविध रोगकी शान्ति हो रसायन होता है। इसका नाम हरीतकी रसायन या ऋतु हरीतकी है। पहिले हरीतकी का चूर्ण चार मानेभर माता सेवन आरम्भ करना फिर सहनेपर २ तोलेतक बढ़ाना चाहिये। सैन्धव, शोंठ और पीपलसे कम माता हरीतकी लेना चाहिये तथा दूसरा अनुपान हरीतकीके बराबर लेना उचित है।

क्रमागत एकवर्षतक रोज ५, ६, या १० पीपल, सहत या घीके साथ सेवन करनेसे रसायन होता है। पीपल को पलाशके खारके पानीकी भावना दे घीमें भूनकर रोज भोजनके पहिले वही पीपल रोज तीन, घी और महतके साथ सेवन करनेसे श्वास, कास, क्षय, शोष, हिक्का, अर्श ग्रहणी, पांडु, शोथ, विषम ज्वर स्वरभंग, पीनस और गुल्म आदि पीड़ा दूर हो आयु बढ़ती है। पहिले दिनका आहार पच जानेपर सवेरे एक हर्रा, भोजनके पहिले २ बहेड़ा और भोजनके बाद ४ आंवला सहत और घीके साथ एकवर्षतक सेवन करनेसे मनुष्य निरोग शरीरसे बहुत दिन तक जीवित रहता है। लोहेके नये पत्तरमें त्रिफलाका कल्क लेपकर एकदिन रखकर फिर वह कल्क निकालकर सेवन करना उत्तम रसायन है। विधारेकी जड़के चूर्णको ७ बार सतावरके रसकी भावना दे आधातोला माता घीके साथ सेवन करनेसे बुद्धि, मेधाकी वृद्धि तथा वलिपलित आदि दूर होते है। हस्तिकर्ण, पलाशके छालका चूर्ण घी और सहतके साथ रोज सवेरे खानेसे बल, वीर्य्य, इन्द्रियशक्ति और आयु बढ़ती है।

उक्त योगोंके सिवाय राजयक्ष्मा रोगोक्त "च्यवनप्राश" वसन्त-कुसुमाकर, पूर्णचन्द्र, महालक्ष्मीविलास, अष्टावक्र रस, मकरध्वज और चन्द्रोदय मकरध्वज आदि औषध यथाविधि सेवन करनेसे विविध रोगोंकी शान्ति हो उत्तम रसायन होता है।

सुपथ्य भोजन, परिमित निद्रा, उपयुक्त परिश्रम, नियमित स्त्री सहवास, सद्वृत्त अनुष्ठान, तथा इस पुस्तकके स्वास्थ्यविधि अधिकारोक्त उपदेश पालन करनेसे आजीवन निरोग शरीरसे तथा सुखसे जीवनयात्रा निर्व्वाह हो सकता हैं। निरोग शरीरके सिवाय धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चतुर्वर्ग में कोई भो अभीष्टसिद्ध नही होता ; इससे स्वास्थ्यरक्षा विषयसे, मनुष्य मात्रको मनोयोगी होना नितान्त आवश्यक है।

वाजीकरण विधि।

वाजीकरण संज्ञा।

आयुर्वेदका आंठवा अंग वाजीकरण है। जिस क्रियासें अश्वकी तरह अत्यधिक रतिशक्ति वर्द्धित हो उसे वाजीकरण कहते हैं। स्वभावत जिसमे रतिशक्ति कम है अथवा अतिरिक्त स्त्री सहवास किम्वा अथवा शुक्र क्षयादिसेजिनकी रतिशक्ति कम हो गई है, वाजीकरण औषध ऐसे मनुष्यको अवश्य खाना चाहिये। स्त्री सहवासका मुख्य उद्देश्य—सन्तानोत्पादन, रतिशक्तिकी हीनतासे यह उद्देश्य सफल नही हो सकता, सुतरां पुंस्हीन अवस्थामें विविध असुख भोगना पड़ता है। तथा शुक्रधातुही शरीरका सार पदार्थ है उससे शुक्र-क्षय होनेसे फिर धातुक्षय हो अकालमें शरीर नष्ट होनेकी सम्भा-

बना है। इसलिये बाजीकरण औषध सेवनसे क्षीण शुक्रका भरना नितान्त प्रयोजनीय है। साधारणतः घी, दूध, मांस आदि पुष्टिकर भोज्य पदार्थ उपयुक्त परिमाण आहार करनेसे ही बाजीकरण औषधका प्रयोजन कुछ पूरा होता है।

मधुर रस, पुष्टिकारक, बलबर्द्धक और तृप्तिजनक पदार्थको साधारणतः वृष्य या बाजीकरण आयुर्वेदने कहा हैं। तथा प्रियतमा और अनुरक्ता सुन्दरी युवती ही बाजीकरण का प्रधान उपादान कहकर अभिहित है।

उरदको घीमे भूनकर उसको खीर खानेसे शुक्रवृद्धि होता है।

शुक्रवृद्धिका उपाय।

गोक्षुर, ईक्षुरस, उदर कवाचको बीज और सतावर दूधके साथ सेवन करनेसे शुक्र और रतिशक्ति अत्यन्त बढ़ता है। कवांचको बीज या तालमखानाका चूर्ण किम्बा कांकड़ाशिंगीका चूर्ण धारोष्ण दूध और चीनीके साथ सेवन करनेसे शुक्र और रतिशक्ति बढ़ता है। विदारी कन्दका चूर्ण विदारीकंदके रसमें अथवा आंवलेका चूर्ण आंवलेके रसमे बार बार भावित कर घी और सहतके साथ सेवन करनेसे शुक्र बढ़ता है। २ तोले मुलेठीका चूर्ण घी और सहतके साथ सेवन करनेसे भी यथेष्ट शुक्रविद्धि होता है। टटका मांस या मछली घीमें भूनकर खानेसे शुक्र और रतिशक्ति बढ़ता है। गौरइया पक्षीका मांस भरपूर भोजनकर दूध पीनेसे रतिशक्ति अत्यन्त बढ़ता है। बकरेका अंडकोष दूधमें औटाना, तथा इस दूधमें तिल औटा चीनी मिलाकर सेवन करनेसे मनुष्य बहु स्त्री सहवास कर सकता है। दूध, घी, पीपल और सेधानमकके साथ बकरेका अण्डकोष पकाकर खानेसे शुक्र और रतिशक्ति बढ़ता है। मछली, हंस, मोर या मूरगी का अण्डा पानी मे उबाल घीमें भूनकर

खानेसे रतिशक्ति और शुक्र बढ़ता है। घीमें भूनी रोहू मछली और अनारके रसमें भिंगोया हुआ बकरेका मांस औटाकर भोजन करना फिर मांस रस पीना, इससे भी शुक्र और रतिशक्ति बढ़ता है। गौरइयाका मांस तितरपक्षीके मांसके काढ़ेमें, तितिरका मांस कुक्कुट मांसके काढ़ेमें, कुक्कुटका मांस मयूर मांसके काढ़ेमें और मयूर मांस हंस मांसके काढ़ेमें औटा तथा घीमें तलकर खट्टा रस विशिष्ट अथवा मधुर द्रव्य द्वारा मधुर रसविशिष्ट तथा एलादि सुगन्धि द्रव्य द्वारा सुगन्धित कर सेवन करनेसे शुक्र अत्यन्त बल बढ़ता है। इसके सिवाय शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग रोगाधिकारके औषधादि सेवन करनेसे बाजीकरण क्रिया सम्पन्न होती है।

विविध "टोटका" चिकित्सा।

बर्रैआदि। बर्रैया मधुमक्खी काटेतो पोईशाकका पत्ता, कित्सुमी गास या हाथीशुंडाके पत्तेका रस मर्द्दन करनेसे जलन शान्त होता है। तथा छोटी बेरकी जड़ या डंटेका रस मर्द्दन करनेसे भी विशेष उपकार होता है।

शुआकीट लगनेसे पहिले गुल्लरका पत्ता घिसकर उसका कांटा निकाल लेना फिर उस स्थानमें चुना लगाना। अपरिपुष्ट चावल पीसकर उसका लेप करनेसे भी विशेष उपकार होता है। हाथ पैरमें चुश्रोकीड़ा लगनेसे तेलाकुचाके पत्तेकारस मर्द्दन करनेसे आराम होता है।

आगसे जलना आदि—कोई स्थान आगसे जलनेपर तुरन्त गुड़के चोटेका लेप अथवा घिकुआरका रस, चुनेका पानी और

नारियलका तेल एकत्र मिलाकर लेप करनेसे जलन शान्त होता है तथा फफोला नहीं आता। आलु पीसकर उसका पतला लेप करनेसे भी विशेष उपकार होता है। कोई स्थान कट जानेसे या कुचलकर खून जानेसे दन्तीके नरम पत्तेका रस लगाकर बांधनेसे क्षतस्थान जुट जाता है और खून बन्द होता है तथा पकनेका डर नहीं रहता। टटका गोबर बांधनेसे भी खून बन्द हो घाव जुट जाता है। विषफोड़ेमें नीमकी सूखी छाल पानीमें चन्दनकी तरह घिसकर धतुरेके पत्तेमें लगाकर फोड़ेपर रख बांध देना, लगातार तीन दिन एसही बांधनेसे विषफोड़ा आराम होता है। फोड़ा होनेसे कदमके पत्तेकी शिरा निकालकर फोड़ेके बराबर तह रख आहिस्तेसे बांध देनेसे फोड़ा आराम होता है। अच्छी तरह पक जानेपर कदमका पत्ता और सेमलका काढ़ा एकत्र पीसकर लेप करनेसे आराम होता है। घुरघुरामें कीड़ा पड़ जानेसे सड़े मानका डण्डा और मखन एकत्र पीसकर लगा धूपमें बैठनेसे कीड़ा बाहर निकल घाव सूख जाता है। जातीफूलका पत्ता गायके घीमें भूंनकर गरम रहते रहते गलेके घावमें, मुखके घावमें और दांतकी जड़में लगानेसे तकलीफ दूर होता है। द्रोण-फूलके रसमें सहत और तिल एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे दांतका कीड़ा दूर होता है। टटके गोमूत्रमें नारियलका फूल पीसकर आंखके चारो तरफ लेप करनेसे आंख आना दूर होता है। रोज सवेरे तुलसीके पत्तेका रस एक तोला पीनेसे जीर्णज्वर, रक्तस्राव, रक्तामाशय, आमाशय और अजीर्ण दोष शान्त होते है। बिछौटीका नरम पत्ता रोज सवेरे और तीसरे पहरको टाकमें रगड़नेसे टाक दूर होता है। एक छटांक चन्द्रसूर या हालिम दाना आधा सेर पानीमें मिलाकर या औटाकर वह पानी एक

तोला मात्रा आधा घण्टाके अन्तरपर पिलानेसे हुचको दूर होती है, ओकड़ाका पत्ता नमकके साथ रगड़कर उसका रस मालिश करनेसे ज्वरके समयको शिरःपीड़ा और शिरका भारीपन दूर होता है। कालाजीरा सेहुंड़के पत्तेके रसमें पीसकर लेप करनेसे अथवा कालाजीरा और दालचीनी समभाग पानीमें पीसकर लेप करनेसे ज्वरकी शिरःपीड़ामें विशेष उपकार होता है। गुलटा का पत्ता नमकके साथ रगड़ उसका रस मालिश करनेसे भयानक शिरःपीड़ा दूर होती है। दालचीनी, तेजपत्ता, मूचकुन्द फूल, गुलटा सफेद सरसो, गोलमिरच, मुमब्बर और कालाजीरा प्रत्येक समभाग गुलटाके पत्तेके रसमें पीसकर थोड़ा गरम लेप करनेसे कष्ट-साध्य शिरोरोग दूर होता है। धतूरेके पत्तेके रसमें लालचन्दन घिसकर गाढ़ा होनेपर थोड़ी अफीम मिला २।३ बार लेप करनेसे अधकपारी दूर होती है। मलमूत्र बन्द होनेसे पथरीका पत्ता और सोरा पानीमें पीस पेडूमें लेप करनेसे मलमूत्र निकलता है। किसी स्थानसे गिर जानेसे अथवा पीड़नादि कारणोंसे हड्डीमें दर्द होनेसे टटका गोबर गरमकर लेप करना, चूना हलदी एकत्र गरम कर लेप करनेसे भी उपकार होता है। हाड़जोड़का पत्ता पीसकर लेप करनेसे विशेष उपकार होता है।

वैद्यक-शिक्षा।

पञ्चम खण्ड।

शारीरविज्ञान की सारबातें।

शरीरही चिकित्सा कार्य्यका प्रधान अङ्ग है; शारीरतत्त्व नहो जाननेसे प्रकृत चिकित्सा नहीं हो सकती। इसलिये इस ग्रन्थमें शारीरतत्त्वकी आलोचना भी करना उचित है। आयुर्वेद में शरीरविज्ञानके बारेमें जितने उपदेश पाये गये है, पहिले उन्होंके सार बातोंकी आलोचना की जाती हैं। इसके बाद प्रत्येक अवयवके अवलम्बनसे प्राच्य और प्रतीच्य दोनों मतोंका समन्वय कर विस्तारसे शारीरतत्त्वकी आलोचनाकी जावेगी।

पञ्चभूत या पञ्चेन्द्रिय।

आकाश, वायु, तेज, पानी और पृथिवी,—यह पञ्चमहाभूत; शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पांच इन्द्रियार्थ; चक्षु, कर्ण नासिका, जिह्वा और त्वक,—यह पांच ज्ञानेन्द्रिय; हाथ, पैर, गुह्य, उपस्थ और वागिन्द्रिय,—यह पांच कर्म्मेन्द्रिय; तथा मन, बुद्धि, अहङ्कार और जीवात्मा,—यही चौबीस तत्त्वोंके समष्टिभूत स्थूलपुरुष चिकित्सा कार्य्यका अधिष्ठान है; तथा इसी स्थूलपुरुषके उत्पत्तिके नियम और प्रत्येक अङ्गप्रत्यङ्गका विवरण शारीरतत्त्वका आलोच्यविषयहै।

शुक्रशोणित।

जिस स्त्रीका शोणित * और गर्भाशय अव्यापन्न है, उसके साथ ऋतुकालमें अव्यापन्न शुक्र पुरुषके सहवास से पुरुषका शुक्र स्खलित हो स्त्रीके

* शुक्र स्फटिक की तरह स्वच्छ, पीतवर्ण, द्रव, स्निग्ध, मधुररस, मधुगन्धयुक्त और मधुवत् हो उसीको अव्यापन्न शुक्र जानना और जो आर्त्तव-शोणित खरगोशके रक्तकी तरह किम्वा लाहके रसके तरह लालरंग तथा जिसका दाग कपड़ेपर धोनेसे बैठकर छूट जायतो उसीको अव्यापन्न शुक्रशोणित कहते हैं।

गर्भाशयमें प्रविष्ट और दोनोंका शोणित एकत्र मिलकर गर्भरूप धारण करता है। बारह वर्षसे पचास वर्षतक स्त्रीके योनिद्वारसे प्रत्येक मासमें रज निकलता है। इसी रजःस्रुतिकाल और ऋतुके पहिले दिनसे सोलह दिनतक को ऋतुकाल कहते हैं। इसमें प्रथम तीनदिन सहवास करना उचित नहीं है; इससे स्त्रीपुरुष दोनोंके अनिष्ट की सम्भावना है, यदि दैवात् उक्त तीनों दिनमें गर्भ धारण हो तो वह नष्ट या विकृत होता है। तीनरातके बाद चतुर्थ आदि युग्मरातकी सहवास करनेसे पुत्र और पञ्चमादि अयुग्म रातके सहवाससे कन्या उत्पन्न होती है। वस्तुतः शुक्रभागके आधिक्यसे पुत्र और शोणितभागके आधिक्यसे कन्या पैदा होती है, यही पुत्रकन्याके उत्पत्तिका प्रशस्त कारण है। शुक्रशोणित दोनोंके समान अंशमें नपुंसक पैदा होता है। स्त्रीपुरुषके विपरीत सहवाससे गर्भमें यदि पुत्र होय तो वह स्त्री-प्रकृति और कन्या हो तो वह पुरुषप्रकृति को प्राप्त होती है। शुक्र, शोणित और गर्भाशय की व्यापत्ति रहनेसे अथवा गर्भिणी की मनोवांछा पूर्ण न होनेसे किम्बा गर्भ किसी कारणसे आहत होनेसे पुत्रकन्या विकृताङ्ग होते हैं।

सहवासके बाद यदि स्त्रीके योनिसे शुक्रादि न निकले तथा

मासभेदसे गर्भलक्षण और परिणाम।

श्रान्तिबोध, ऊरुद्वय की अवसन्नता, पिपासा, ग्लानि और योनि स्पन्दन आदि लक्षण प्रकाशित हो तो स्त्रीको गर्भ रहा जानना चाहिये। गर्भोत्पत्ति होनेसे क्रमशः ऋतुरोध, मुखस्राव, अरुचि, सर्व्वदा अकारण वमनवेग, खट्टा खानेकी इच्छा, नाना उपभोग की इच्छा, लोमराजिका ईषत् उन्नत अक्षि पक्ष्मका सम्मि-लन, शरीर की अवसन्नता, स्तन का दाक्ष्णवर्णता, स्तनाग्र और ओष्ठ

अधरकी कृष्णवर्णता, पदद्वयमें शोथ और योनिद्वार की विस्तृति आदि लक्षण प्रकाशित होते है। द्वितीय मासमें मिश्रित शुक्र-शोणित किञ्चित गाढ़ा हो, पिण्डाकार, पेशीकी तरह अथवा अर्ब्बुदाकृति होता है। पिंडाकार होनेसे पुरुष, पेशो होनेसे स्त्री और अर्ब्बुदाकार होनेसे नपुंसक पैदा होता है। तृतीय मासमें अति सूक्ष्म सब इन्द्रिय और समस्त अङ्गावयव उत्पन्न हो दोनो हाथ, दोनो पैर और मस्तक यही पांच अवयवोंके पांच पिण्ड उत्पन्न होते है। चतुर्थ मासमें वही सब पिण्ड परिस्फुट होते है तथा गर्भ भी कुछ कठिन होता है, इससे गर्भिणीका शरीर अधिक भारी हो जाता है। पञ्चम मासमें गर्भका मन, मांस और रक्त पैदा होता है इससे गर्भिणी दुर्ब्बल हो जाती है। छठे मासमें गर्भकी बुद्धि, बल और वर्ण उत्पन्न होता है इसलिये गर्भिणी का बलवर्ण क्षय होता है, तथा गर्भिणी भी इसवक्त क्लान्त हो जाती है। सप्तम मासमें गर्भका अङ्गप्रत्यङ्ग स्पष्टरूपसे प्रकाशित होता है। गर्भिणी भी इस वख्त अत्यन्त क्लान्त हो जाती है। अष्टम मासमें गर्भ शरीरसे गर्भिणीके शरीरमें और गर्भिणीके शरीरसे गर्भ शरीरमें ओज पदार्थ सर्व्वदा आया जाया करता है; इससे गर्भिणी कभी हृष्ट और कभी ग्लानियुक्त होती है। अष्टम मासमें प्रसव होनेसे गर्भ या गर्भिणीमें से एककी मृत्यु होनेकी सम्भावना है। गर्भिणीका ओज गर्भ शरीरमें प्रविष्ट होनेसे यदि प्रसव हो तो गर्भिणीका और गर्भका ओज गर्भ शरीरमें प्रविष्ट होनेसे यदि प्रसव हो तो गर्भकी मृत्यु होती है। नवम माससे द्वादश मासतक प्रसवका काल है। गर्भाशय जरायु अर्थात् एक प्रकार पतले चमड़ेसे आवृत हो गर्भ गर्भिणीके पीठकी तरफ सम्मुख ऊर्द्धशिर और संकुचित हो गर्भ रहता है। अमरा नामक गर्भकी नाभीनाड़ी

गर्भिणीके हृदयस्थ रसवाहिनी नाड़ीके साथ संयुक्त रहनेसे गर्भिणी के आहार का रस उसी नाड़ीसे गर्भ शरीरमें जाता है। इसीसे गर्भके जीवनकी रक्षा और क्रमशः बढ़ती है। एकप्रकारके आच्छादनसे जरायुका मुख ढका रहने से तथा कफसे उसका कंठ भरा रहनेके कारण गर्भस्थ शिशु हास्य रोदनादि नहीं कर सकता। तथा पक्वाशय में वायु कम रहती है इससे मलमूत्र और अधोवायु निकल नहीं सकता। गर्भिणीके निश्वास प्रश्वास और निद्रा जागरण आदिके साथही उसकी भी क्रिया सम्पन्न होती है। प्रसवके पहिले जब प्रसव वेदना होती है उसवक्त गर्भस्थ बालक उलटकर उसका शिर योनिद्वार में उपनीत होता है। ऐसा न होनेसे प्रसवमें देर लगता है।

धातु।

सम्पूर्ण अङ्गप्रत्यङ्गादि परिपूर्ण चेतनायुक्त देहको शरीर कहते हैं, शरीर रक्षाके लिये जो द्रव्य खाया जाता है वह क्रमशः परिपाक हो रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्रधातु होता है। सुतरां इसीसे शरीरका रक्षा, वृद्धि, पुष्टि और स्थायित्व होता है। सुतरां पदार्थका पहिला पदार्थ रस, रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे शुक्र उत्पन्न होता है। रससे शुक्रतक एक एक धातुके बादवाला धातु परिणत होनेमें सात दिन लगते हैं। स्त्रियोंका आर्त्तव रक्तधातु रक्तसे पृथक है, वह रसका भेदमात्र है यह महीनेभर एकत्र हो मासके अन्तमें योनिद्वारसे निकल जाता है। गर्भावस्था में यह रक्त बन्द हो स्तनमें आजाता है और यहां दूध बनता है। इसीसे गर्भावस्थामें स्तनद्वय पीन और दुग्धयुक्त होते हैं।

गर्भाशयका शुक्रशोणित जब क्रमशः परिपक्व होता है, उसी

त्वक।

रक्त दूधमें मलाई की तरह शरीरके त्वक की उत्पत्ति होती है। त्वकसे शरीर जल वायु आदि शोषण, पसीना निकलना और देहके उष्माको रक्षा होती है। बाहरसे मांसके ऊपर तक क्रमशः सात त्वक है। बाहरका पहिला त्वक एक धानके १८ भागके एक भागको तरह पतला है; यही शरीरके रङ्गका आश्रय और इसोमें सिध्म और पद्मिनीकण्टक आदि रोग पैदा होते हैं। द्वितीय त्वक धानके सोलह भागका एक भाग पतला है; इसीमें तिलकालक न्यच्छ और व्यङ्ग आदि पीड़ाका अधिष्ठान है। तृतीय त्वक धान्यके द्वादशांशका एकांश है; चर्म्मदल अजगल्लिका और मशक आदि रोग इसीके आश्रयसे पैदा होते है। चतुर्थ त्वक धान्यके अष्टमांसका एकांश है; किलास और कुष्ठ आदि पीड़ाका यही अधिष्ठान है। पञ्चम त्वक धान्यके पांच भागका एक भाग; इसमें भी कुष्ठ और विसर्प रोग पैदा होता है। छठा त्वक धानको तरह मोटा है; ग्रन्थि, अपची, अर्व्वुद, श्लीपद और गलगण्ड आदि इसीका आश्रय लेता है। सप्तम त्वक दो धानको तरह मोटा होते है, भगन्दर विद्रधि और अर्श आदि रोग इसीके आश्रय से उत्पन्न होता हैं। साधारणतः त्वकका परिमाण इसी तरह है, पर ललाट और अङ्गुलि आदि स्थानोंका त्वक इससे भी कम पतला होता है।

एक धातुके बाद दूसरा धातु जहां आरम्भ होता है वहा दोनोके सन्धिमें तन्तुको तरह कफजड़ित बहुत पतला एकप्रकारका आवरण रहता है; आयुर्वेदमें उसे कला और भाषामें उसको झिल्लि कहते हैं।

धातुका स्थान।

त्वक, रक्त और मांस शरीरमें सर्व्वत्र रहता है; तथापि यकृत् और प्लीहा रक्तके यही दो प्रधान स्थान है। मेदधातु अन्य स्थानके सिवाय उदर

और पतली हड्डीमें अधिक रहता है। मज्जा मोटी हड्डीमें रहता है। शुक्र सर्व्वशरीरव्यापी है उसका कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं है। कामवेग से सब शरीरमें निकलकर लिङ्गद्वार से जब क्षरित होता है तभी दिखाई देता है। शुक्र पहिले सब शरीरसे निकलकर वस्तिद्वारके नीचे दो अङ्गुलके अन्तर पट दक्षिण भागमें एकत्र होकर फिर निकलता है।

शरीरकी अस्थिसंख्या।

शरीरकी अस्थिसंख्या चरक ऋषिके मतसे ३६०, सुश्रुतके मतसे ३०० और आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकोंके मतसे १४०। सुश्रुताचार्य्यके मतसे प्रत्येक हाथ पैरकी अङ्गुलियोंमें तीन तीन; पैर या हाथके तलवों, कूर्च्च, गुल्फ या मणिबन्ध, प्रत्येक हाथ और पैरके उक्त स्थानोंमें दश दश; पाद, पार्ष्णि और हस्तपृष्ठमें एक एक; जङ्घे में दो; जानुमें दो; ऊरूमें एक एक; केहुनोंके नीचेसे मणिबन्धतक दो दो; केहुनोमें एक; गुह्यमें एक; योनि या लिङ्गमें एक; नितम्ब में दो, त्रिकमें एक; प्रतेक पार्श्वमें ३६ कर ७२; पीठमें ३०; छातीमें आठ ८, दोनो चक्षुगोलक में एक एक कर दो २; ग्रीवामें ६ नव; कण्ठमें ४ चार; हनुद्वयमें दो २; दांतमें ३२ बत्तीस; नासिकामे, ३; तालुमें एक; ललाट, कान और शङ्ख—प्रतेक स्थानमें एक एक और मस्तमें ६छ है। अवयव और अवस्थानविशेषानुसार अस्थिमें नानाप्रकारकी विभिन्नता है। अस्थिसमूह पांच प्रकारमें विभक्त है—जैसे तरुण, कपाल, नलक, वलय और रुचक। नासिका, कर्ण, चक्षु और गुह्य अस्थिकी तरुणास्थि; जानु, नितम्ब, स्कन्ध, गण्ड, तालु, शङ्ख, वेक्षण और मस्तकके अस्थिको—कपालास्थि; दोनो हाथ, पार्श्वद्वयों की टेढ़ी अस्थिको वलायस्थि; छिद्रवालि अस्थिको नलकास्थि और दन्तसमूह को अस्थिको रुचकास्थि कहते

है। दन्त चार प्रकार—छेदन, शोवन, श्वग्र और पेषण। छेदन दन्त उपर ४ और नीचे ४ ; शोवन दन्त दो उपर और दो नीचे ; श्वग्रदन्त ४ उपर और ४ नीचे और पेषण दन्त छ उपर और छ नीचे।

अस्थिसंधि—अङ्गुली,, मणिबन्ध, गुल्फ, जानु, कूर्पर, कक्ष, वंक्षण, दन्त, स्कन्ध, गुह्य, योनि, नितम्ब, ग्रीवा, पृष्ठ, मस्तक, ललाट, हनु, ऊरु, कण्ठ, हृदय, नासा और कर्ण आदि स्थानोकी हड्डी परस्पर मिली हुई रहती है। इससे इसको अस्थिसंधि कहते हैं। संधिस्थानमें एक चिकना पदार्थ कफ मिला हुआ रहता है, इससे इच्छानुसार सङ्कुचित और विस्तृत होता है।

अस्थिसंधि सब २१० हैं ; जिसमे अङ्गुठेमें २ ; तथा अन्यान्य अंगूलियोंमें तीन तीन कर मोट ४८, गुल्फमें एक, जङ्घमें एक, वंक्षणमें एक, मणिबंधमें एक, केहुनीमें एक, कंधेमें एक, कमरमें ३, पीठमें २४, पार्श्वद्वयमें २४, छातीमें ८, गलेमें ८, गलेके नालीमें ३, हृदय, फुसफुस और क्लोम स्थानके निबंध नाड़ीमें १८, दन्तमूलमें ३२, कण्ठमें १, नेत्रवर्त्ममे २, प्रत्येक गाल, कान और शङ्खमे एक एक कर ६, हनुद्वयमें २, भौंके उपर दो, शङ्खके उपर दो, मस्तकके कपालास्थिमें ५ और बीचमें एक अस्थिसंधि है।

सूतकी तरह एक पतला पदार्थ समस्त शरीरमें फैला हुआ है, उसे स्नायु कहते हैं। इन्द्रियोंका अनुभव और अवयवोंका चलाना आदि कार्य्य स्नायुसे होता है। लताकी तरह पदार्थ को शिरा कहते हैं, इसीके भीतरसे रक्तादि प्रवाहित होताहै ये सब शिरायें मूल शिरा को शाखा प्रशाखा है। इसके सिवाय ४० मूल शिरा है। इसमें १० शिरा वायु, १० पित्त, १० कफ और १० रक्तवहन कहती है।

स्नायु, शिरा और धमनी।

सब शिराओंका मूलस्थान नाभि है। शिराकी तरह कई स्रोत और है, उसे धमनी कहते हैं। इसमें २ प्राणवहा, २ वातवहा, २ पित्तवहा, २ कफवहा, २ शब्दज्ञानवहा, २ निद्राकारक, २ जागरणकारक, २ अश्रुवहा, २ स्त्रीयोंकी आर्त्तव वहा, २ स्तन्य-वहा, २ पुरुषका शुक्रवहा, २ अन्नवहा, २ जलवहा, २ मूत्रवहा, २ मलवहा और बहुतेरी अपरिसंख्येय धमनी स्वेद वमन करती है। शरीरके लोमकूप सब धमनीका वहिर्मुख है। प्राणवहा और रसवहा धमनीका मूलभाग हृदय, अन्नवहाका मूलभाग आमाशय, जलवहाका मूलभाग तालू और क्लोम, रक्तवहाका मूल भाग यकृत् और प्लीहा, मूत्रवहाका मूलभाग वस्ति और लिङ्ग, मलवहाका मूलभाग पक्वाशय और गुह्य, शुक्रवहाका मूलभाग स्तन और अण्डकोष तथा आर्त्तवहाका मूलभाग गर्भाशय है।

स्नायु, शिरा और धमनीकी संख्या निर्दिष्ट नहीं हो सकती। कार्य्यानुसार जितनेकी उपलब्धि हुई है, केवल उसीकी संख्या निर्द्देश की गई है।

पेशी।

फीतेकी तरह एक प्रकारके पदार्थसे अस्थि, शिरा और स्नायु आदि आच्छादित रहता है, उसको पेशी कहते हैं। यह स्थानभेद के अनुसार मोटी, पतली, सूक्ष्म, विस्तृत, क्षुद्र, दीर्घ, कठिन, कोमल, मृदु, कर्कश आदि नानाप्रकार की होती है। शरीर का जो जो स्थान सङ्कुचित या चलाया जाता है उसी स्थानमें पेशी रहती है; इसकी भी संख्या अपरिमित है।

कण्डरा—पेशीके प्रान्तभागका नाम कण्डरा है; इससे आकुञ्चन प्रसारणादि कार्य्य सम्पादित होता है। कण्डराकी आकृति रस्सीकी तरह है। कण्डरा १६; इसमें ४ हस्तद्वयमें, ४ पदद्वय में, ४ ग्रीवामें और ४ चार पीठमें है।

जाल—शिरा, स्नायु, मांस और हड्डी ये चार पदार्थोंमें कोई एक पदार्थ जालकी तरह छिद्रयुक्त रहनेसे उसे जाल कहते हैं। प्रत्येक मणिबन्ध और गुल्फमें ऐसही प्रत्येक का जाल अर्थात् शिराजाल, स्नायुजाल, मांसजाल और अस्थिजाल रहता है।

मेरुदण्डके दोनो तरफ दो दो कर जो चार मांसमय रस्सीकी तरह पदार्थसे मेरुदण्ड आवद्ध हैं उसे रज्जु कहते हैं।

सेवनी—मस्तकमें पांच, लिङ्ग और अण्डकोषमें एक और जीभमें जो एक सिया हुआ स्थान दिखाई देता है; उसे सेवनी कहते हैं।

मर्म्मस्थान—शिरा, स्नायु, मांस, अस्थि और संधि ये सब जिस जगह परस्पर मिल जाती है उसको मर्म्मस्थान कहते हैं। मर्म्मस्थान सब १०७; इससे शिरामर्म्म ४१, स्नायुमर्म्म २७, मांस-मर्म्म ११, अस्थिमर्म्म ८, और संधिमर्म्म २० बीस है।

मर्म्मस्थानविभाग।

जिस शिरासे नाक, कान, आंख और जिह्वा आप्यायित होती है; तथा मस्तक के भीतर जहां ये सब शिराओंका मुख मिला हुआ है, वहां एक शिरामर्म्म चार अङ्गुल लम्बा है। मस्तकके बीचमें केशके आवर्त्तके भीतर शिरा और संधिके संयोगस्थलमें एक संधिमर्म्म है; उसका परिणाम आधा अङ्गुल। दोनो भौंके प्रान्तभागमें याने कान और ललाटके बीचमें डेढ़ अंगुलका एक अस्थिमर्म्म है। गुह्यद्वारके भीतर गुह्यनाड़ीमें चार अंगुलका मर्म्मस्थान है। इसे मांसमर्म्म कहते हैं। स्तनद्वयके बीच हृदयमें चार अंगुलका एक शिरामर्म्म है। नाभि, पृष्ठ, कटि, गुह्य, वंक्षण और लिङ्ग इन अङ्गोंके मध्यमें वस्ति है, वस्तिमें एक स्नायुमर्म्म है। नाभिके चारो तरफ चार अंगुलका एक शिरामर्म्म है। ये सब मर्म्मोंमें छेद करने या जोरसे चोट लगनेसे तुरन्त प्राण नष्ट होता है।

दोनो स्तनके नीचे छातीमें दो अंगुल बराबर दो शिरामर्म्म है, स्तनोंके उपर दो अंगुल बराबर दो मांसमर्म्म है, दोनो स्कंधकूटके नीचे और पार्श्वद्वयके उपर आधा अंगुल दो शिरामर्म्म और छातीके दोनो बगलको बात वहा नाड़ीमें आधा अंगुल बराबर दो शिरामर्म्म है उक्त मर्म्मोंको वक्षमर्म्म कहते है। ये सब मर्म्ममें चोट लगनेसे कालान्तरमें मृत्यु होती है। इसमेंसे शेषोक्त मर्म्ममें चोट लगनेसे कोष्ठमें वायुपूर्ण हो श्वास कास रोगसे मृत्यु होती है। मस्तकके पांच अस्थिसंधिको भी संधिमर्म्म कहते है। इसमें चोट लगनेसे उन्माद, भय और चित्तविभ्रम उपस्थित हो प्राणनाश होताहै। मध्यमांगुलीके समसूत्रमें और हाथ पैरके तलवेके मर्म्मस्थानमें चोट लगनेसे अत्यन्त दर्द हो अन्तमें मृत्यु होतीहै। अंगूठा और तर्ज्जनीके बीचवाले स्थानके शिरामर्म्ममें चोट लगनेसे कालान्तरमें आक्षेप रोग हो मनुष्य मृत्युको प्राप्त होताहै; अकसर इसमें जल्दी प्राणनाश होते देखा गयाहै। प्रत्येक प्रकोष्ठ और जङ्घाके बीचवाले दो अंगुलके मर्म्ममें चोट लगनेसे शोणित क्षय हो थोड़े दिनमें मृत्यु होतीहै। स्तनमूलसे मेरुदण्ड तक दोनो तरफ आधा अंगुल बराबर शिरामर्म्म विद्ध होनेसे अत्यन्त रक्तस्राव होकर कालान्तरमें मृत्यु होती है। दोनो जघन और दोनो पार्श्वके संधिवाले शिरामर्म्ममें चोट लगनेसे कोष्ठरक्तसे पूर्ण होकर कालान्तरमें मृत्यु होती हैं। मेरुदण्डके नीचे नितम्बके संधिस्थलके दोनो तरफ आधा अंगुल बराबर दो अस्थिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे रक्तक्षयहो रोगीको पांडुवर्ण या विवर्ण कर कालांतरमें जान लेता है। नितम्बके दोनो तरफ आधा अंगुल बराबर और दो अस्थिमर्म्म है, इसमें चोट लगनेसे कमरसे पैरके तलवेतक अर्द्धांगमें शोथ और दौर्ब्बल्य उपस्थित होता है।

चोट लगनेका फल।

वंचण और कन्धेके नीचे भी एक आधे अङ्गुलका शिरामर्म्म है, इसमें चोट लगनेसे पक्षाघात रोग पैदाहोता है। जानुद्वय के तीन अङ्गुल ऊपर आधे अङ्गुल बराबर एक स्नायुमर्म्म है, इसमें चोट लगनेसे अत्यन्त शोथ और दोनो पैर स्तब्ध होता है। जङ्घा और उरूके सन्धिमें दो अङ्गुलका एक सन्धिमर्म्म है इसमे चोट लगने से मनुष्य खञ्ज होता है। ऊरुद्वयके मध्य और केहुनीमे बगल तक बाहुके मध्यभाग में एक अङ्गुल बराबर एक शिरामर्म्म है, इसमे चोट लगनेसे रक्तक्षय हो दोनो हाथ पैर सूख जाते हैं। दोनो पैरका अंगुठा और उसके पासवाली अंगुलीके जड़के बीचमें अर्थात् पूर्व्वोक्त शिरामर्म्म के किञ्चित् ऊपर एक एक और उसके नीचे पैरके तलवेको तरफ एक एक स्नायुमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे पैर घूम-कर कांपने लगता है। वंचण और अण्डकोषके बीचवाले स्थानके दोनो तरफ एक अंगुलका एक एक स्नायुमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे मनुष्य क्लीव होता हैं अथवा उसका शुक्र क्षीण हो जाता हैं। दोनो केहुनोमें दो अंगुलका दो सन्धिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे हाथ सिकुड़ जाता हैं। कुकुन्दर अर्थात् नितम्ब कूपमें आधे अंगुलका सन्धिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे स्पर्शशक्तिका नाश और नीचेवाले अङ्गको क्रियामें हानि पहुंचती है। छाती और बगलके बीचमें एक अंगुलका स्नायुमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे पक्षाघात रोग पैदा होता है। दोनो कानके पीछे नीचेकी तरफ आधे अंगुलका एक स्नायुमर्म्म है उसमें चोट लगनेसे मनुष्य बहिरा होता है। मस्तक और ग्रीवाके सन्धिके दोनो तरफ आधे अंगुलका दो सन्धिमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे शिरःकम्प होता है। दोनो स्तनमें आधे अङ्गुलका दो स्नायुमर्म्म है; इसमें चोट लगनेसे दोनो हाथकी क्रिया लोप होती है। पीठके ऊपर जहां ग्रीवा और मेरुदण्ड की सन्धि है उसके

दोनो तरफ आधे अङ्गुलका एक एक अस्थिमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे दोनो हाथ शून्य और शोष होता है। दोनो आंखके प्रान्तभाग अर्थात् अपांगमें आधे अङ्गुलका दो शिरामर्म्म है इसमे चोट लगनेसे मनुष्य अन्धा और चोणदृष्टि होता है। कण्ठनालोके दोनो तरफ ४ धमनो है; इसमे दोको नोला और दोको मन्या कहते हैं; अर्थात् कण्ठनालोके दोनो तरफ दो नोला और ग्रीवाके दोनो तरफ दो मन्या है। यह चार धमनीमें चार शिरामर्म्म है प्रत्येकका परिमाण दो दो अङ्गुल है, इसमे चोट लगनेसे मनुष्य गूङ्गा और विकृत स्वर होता है तथा मुहके स्वाद शक्तिका लोप होता है।

नाकके छेदके भीतर आधे अङ्गुलका दो शिरामर्म्म है; इसमे चोट लगनेसे घ्राणशक्ति नष्ट होतो है। भौंके उपर और नीचे आधे अङ्गुलका दो सन्धिमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे दृष्टि चीणता और अन्ध रोग पैदा होता है। दोनो गुल्फमें दो अङ्गुलका दो सन्धिमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे अत्यन्त दर्द और खञ्जता पैदा होती है; मणिवन्धमे भी वैसही एक एक सन्धिमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे दोनो हाथको क्रिया लोप होतो है। गुल्फ-सन्धिके दोनो तरफ एक अङ्गुलका एक एक स्नायुमर्म्म है, इसमे चोट लगनेसे अत्यन्त दर्द और शोथ होता है।

दोनो शङ्खके उपर केशतक आधे अङ्गुलका दो स्नायुमर्म्म और भौंके बीचमें आधे अङ्गुलका एक शिरामर्म्म है। इसमे शल्य गड़ानेसे जबतक शल्य न निकाला जाय तबतक मनुष्य जीवित रहता है शल्य निकालतेही मृत्यु होती है।

उक्त मर्म्मोंमें जिसमे चोट लगतेही मृत्यु होना लिखा हैं, उसमे यदि ठीक बीचमें चोट न लगकर प्रान्तभागमे चोट लगतो

कालान्तरमें मृत्यु होती है तथा ठीक बीचमें चोट लगनेसे प्राण-नाश न हो केवल यन्त्रणाप्रद होता है। मर्म्मस्थान की सारी पीड़ा कष्टसाध्य है। इससे मर्म्मस्थानो को अच्छी तरह जानना चाहिये।

शरीर विभाग।

संक्षेपत: शरीर ६ भागमें विभक्त है; मस्तक, मध्य शरीर, दोनो हाथ और दोनो पैर। छातीसे नितम्ब तकको मध्य शरीर कहते हैं। इन्ही अवयवोंमें शरीरके प्रधान यन्त्र है। हृदयके बीचमें तीन अङ्गुलका हृदय नामक चेतना स्थान है। यहां शुद्ध रक्त और प्राणरक्त रहता है। इसमें चार गर्भप्रकोष्ठ है;—दो उपर और दो नीचे। रक्तवहा शिराद्वय शरीरका सब रक्त दहिने हृद्गर्भमें लाती है तथा क्रमश: उक्त चार प्रकोष्ठोंमें चालित हो विशुद्ध होता है। हृत्पिण्ड रातदिन आकुञ्चित और प्रसारित होता है; आकुञ्चित होतेही वहांका खून वेगसे धमनीके जड़में जाता है तथा धमनीके रास्तेसे सर्व्वांगमें फिरता है। हृदयको आकुञ्चन और प्रसारण क्रिया बन्द होतेही मृत्यु होती है। हृदयके बायें फुसफुस (श्वासयन्त्र) दहिने क्लोम (पिपासा स्थान) और नीचे वुक्क (यही अग्रमांस रोग होता है। तथा कण्ठसे गुदामार्गतक ३॥ साढ़े तीन व्याम दीर्घ एक अन्ननाड़ी कहीं फैली और कहीं सिकुड़ी हुई है। स्त्रियोंका अन्त्र ३ व्याम लम्बा है। उसीके कण्ठसे पहिला आमाशय फिर पित्ताशय या ग्रहणी तथा फिर पक्वाशय है; इसका दूसरा नाम मलाशय या उण्डूक। इसके नीचे गुह्यनाड़ी है। उदरके दहिने और बायें तरफ यकृत और प्लीहा—यही दो रक्ताशय है, लिङ्गके उपर वस्ति और मूत्राशय है। स्त्रियोंके योनीमें शङ्खावर्त्तकी तरह तीन आवर्त्त है; तथा इसीके तीसरे आवर्त्तमें गर्भाशय

है। गर्भाशयकी आकृति रोहित मछलीके मुखकी तरह अर्थात् बाहर सूक्ष्म और भीतर विस्तृत है।

यही सब आशयोंमें आमाशय कफका, पित्ताशय पित्तका और पक्वाशय वायुका अवस्थिति स्थान है। यह तीन दोष शरीरमें सर्व्वत्र और सर्व्वदा रहते है। ये तीन दोषोंमें वायु शरीरके यावतीय धातु और मलादि पदार्थको चलाता है। तथा वायुहोसे उत्साह, श्वास, प्रश्वास, चेष्टा, वेगप्रवृत्ति और इन्द्रिय समूहोंके कार्य्य सम्पादित होते है। वायु स्वभावतः रूक्ष, सूक्ष्म, शीतल, लघु, गतिशील, आशुकारी, खर, मृदु और योगवाही है। सन्धिभंग, अङ्गप्रत्यंगादि विक्षेप, मुदगलादिसे मारनेकी तरह या शूलकी तरह अथवा सूई गड़ानेकी तरह दर्द, सर्व्वांङ्गता अंगकी अवसन्नता, मलमूत्रादिका अनिर्गम और शोषण, अंगभंग, शिरादिका संकोच, रोमांच, कम्प, कर्कशता, अस्थिरता, सछिद्रता, रसादिका शोषण, स्पन्दन, स्तम्भ, कषायस्वाद और श्याव या अरुणवर्णता वायुके कार्य्य है। वायु प्रकुपित होनेसे यही सब लक्षण प्रकाश होते है।

वायुके कार्य्य।

पित्त स्वभावतः द्रव, तीक्ष्ण, पूति अपक्वावस्थामें नीलवर्ण पक्वावस्थामें पीतवर्ण, उष्ण और कटुरसपर विदग्ध होनेसे अम्लरस। सन्ताप, दाह, रक्त, पाण्डुया पीतवर्णता, उष्णता, पाक, स्वेद, क्लेद, पचन, स्राव, अवसाद, मूर्च्छा और मेदरोग आदि पित्तके कार्य्य है। पित्तप्रकुपित होनेसे रोग विशेषानुसार यह सब लक्षण प्रकाशित होते हैं।

पित्तके कार्य्य।

कफ स्वभावतः श्वेतवर्ण, शीतल, गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल विलम्ब से कार्य्यकारी और मधुर रस ; पर विकृत होनेसे लवणस्वाद होता है। स्निग्धता,

कफके कार्य्य।

कठिनता, शैत्य, श्वेतवर्णता, गौरव, कण्डू, स्रोतसमूहोंका रोध, लिप्तता, स्तैमित्य, शोथ, अपरिपाक, अग्निमान्द्य और अतिनिद्रा आदि कफके कार्य्य है। कफ कुपित होनेसे रोगविशेष में यह सब लक्षण प्रकाशित होते है।

वायुप्रकोप शान्ति।

बलवान जीवके साथ मल्लयुद्ध, अतिरिक्त व्यायाम, अधिक मैथुन, अत्यन्त अध्ययन, ऊंचे स्थानसे गिरना, तेज चलना, पीड़न या आघात-प्राप्ति; लङ्घन, सन्तरण, रात्रि जागरण, भारवहन, पर्य्यटन या अश्वादि यानमें अतिरिक्त गमन; मलमूत्र अधोवायु, शुक्र, वमन, उद्गार, छींक और अश्रुवेग धारण; कटु तिक्त, कषाय, रुक्ष, लघु और शीतल द्रव्य, शुष्कशाक, शुष्क मांस, मड़ुआ, कोदो, सामा और नीवार धान्य; मूग, मसूर, अड़हर, मटर और सेम आदि द्रव्य भोजन; उपवास, विषमाशन, अजीर्ण रहते भोजन और वर्षाऋतु, मेघागमकाल, भुक्तान्नके परिपाक का काल, अपराह्णकाल वायु प्रवाहका समय, यही सब वायुप्रकोप के कारण है। घृत तैलादि स्नेहपान, स्वेदप्रयोग, अल्प वमन, विरेचन, अनुवासन, (स्नेह पिचकारी); मधुर, अम्ल, लवण और उष्णद्रव्य भोजन, तैलाभ्यङ्ग, वस्त्रादि द्वारा वेष्टन, भयप्रदर्शन, दशमूल—क्वाथ का प्रषेक, पैष्टिक और गौड़िक मद्यपान, परिपुष्ट मांसका रस पान और सुखस्वच्छन्दता आदि कारणोंसे वायु शान्त होता है।

पित्तप्रकोपशान्ति।

क्रोध, शोक, भय और श्रमजनक कार्य्य, उपवास, मैथुन, कटु अम्ल, लवण, तीक्ष्ण, लघु और विदाही द्रव्य, तिलतैल, तिलकल्क, कुरथी, सरसों, तीसी, शाक, मछली, छागमांस, दही, दहीकीमलाई, तक्र-कूर्चिका, सौवीर, सुरा, अम्लफल और माखनयुक्त दहीका मट्ठा

आदि द्रव्य भोजन तथा शरत्काल, मध्याह्न, आधोरात और भुक्त-द्रव्यके परिपाकके वक्तमें पित्त प्रकुपित होता है। घृतपान मधुर और शीतल द्रव्य द्वारा विरेचन, मधुर, तिक्त और कषाय रसयुक्त भोज्य औषध सेवन, सुगन्ध, शीतल गन्ध सूङ्घना, कपूर, चन्दन, और खसका अनुलेपन ; चन्द्रकिरण सेवन, सुधाधवलित गृहमें वास, शीतल वायु सेवन, मधुर गीतवाद्य और वाक्य श्रवण, प्रियतम स्त्रीपुत्रके साथ कथोपकथन और आलिंगन तथा उपवन और पद्म कुमुदादि शोभित सरोवर तीरमें भ्रमण आदिसे पित्त शान्त होता है। इन्हो सब कारणोंसे रक्तका भी प्रकोप और शमन होता है।

कफप्रकोप शान्ति।

दिवानिद्रा, परिश्रम शून्यता, अधिक भोजन, अजीर्णमें भोजन, मधुर, अम्ल, लवण, शीतल, स्निग्ध, गुरु, चिकना, क्लेदजनक, यव, गेहूं, हायन और नैषध धान्य, उरद, वर्व्वटी, तिलपिष्टक, दही, दूध, पायस, खिचड़ी, गुड़, आनूप और जलचर जीवका मांस, चर्व्वी, मृणाल, पद्ममूल, सिंघाड़ा, ताड़, मधुर फल, लौकी, कच्चा भतुवा, पक्का केला आदि द्रव्य भोजन तथा शीतल द्रव्य सेवन, शीतकाल, वसन्तकाल, पूर्व्वाह्न, प्रदोष और आहारके बाद आदि कफ प्रकोपके कारण है। तीक्ष्ण वमन और विरेचन, मैथुन, शो:, जागरण, धूमपान, गण्डूष धारण, चिन्ता, परिश्रम, व्यायाम, पुराना मद्य-पान, तथा रूक्ष, उष्ण, मधुर, कटु, तिक्त और कषाय रसयुक्त द्रव्य भोजन आदि कारणोंसे कफ शान्त होता है।

गर्भधारण के समय पिता माताका शुक्रशोणित आदि वायु प्रभृति तीन दोषोंमें से जिस दोषका अनुबन्ध अधिक रहता है, मनुष्य स्वभावतः उसी प्रकृतिका होता है। तीनो दोष समान रहनेसे

समप्रकृतिका होता है। वातप्रकृति के मनुष्यगण रूक्ष, कृश, भग्नावयव, अव्यक्तावयव, अगम्भीर स्वर, जागरूक, चञ्चलगति, शीघ्र कार्य्यकारी, बहुप्रलापी, बहुशिराहत, थोड़े देरमें सामान्य कारणसे क्रोध आना, भीत, अनुरागी या विरागी, शीतसहन में असमर्थ, स्तब्ध, कर्कश केश, कर्कश श्मश्रु, कर्कश लोम, कर्कश नख, कर्कश दन्त, और कर्कशांग होते हैं। तथा चलती वख्त सन्धियोंमें चट चट आवाज होती है और बार बार आंखका निमेष गिरता है। पित्तप्रकृतिगण गरम सहने में असमर्थ, शुक्र और सुकुमार गात्र, गौरवर्ण मृदु और कपिलवर्ण, केशश्मश्रु और लोमयुक्त, ताम्रनख, रक्तनेत्र, तीक्ष्ण पराक्रम, तीक्ष्णाग्नि, अधिक भोजनशील, क्लेश सहनेमें अक्षम, द्वेषी, अल्प शुक्र, अल्प मैथुन और अल्प सन्तानजनक होते है। तथा मुख, कांख, मस्तक और अन्यान्य अवयवों में गन्ध रहता है। सर्व्वांगमें तिल, सेहुआ, खुजली आदि पैदा होते है, वलिपालित्य और टाक भी पित्तप्रकृतिवालेको शीघ्र पड़ता है। कफप्रकृतिगण स्निग्धांग, सुकुमार शरीर, उज्वल श्याम या गौरवर्ण, स्थिर शरीर, पुष्टांग, विलम्ब में कार्य्यकारक, प्रसन्न मुख, प्रसन्न दृष्टि, स्निग्ध स्वर, बलवान, तेजस्वी, दीर्घजीवी और अल्प क्षुधायुक्त होते है, तथा थोड़ेही कारण से क्रोधित नहीं होते है; शुक्र मैथुनशक्ति और सन्तति अधिक होती है। समधातु व्यक्तिगणोंके यह सब लक्षण मिले हुए होते है। इन सब मनुष्योंमें समधातुका मनुष्य प्रशंसनीय है।

———०———

वैद्यक-शिक्षा।

छठा खण्ड।

नरदेह-तत्त्व और जीव-विज्ञान।

ANATOMY & PHYSIOLOGY.

जिस शास्त्रमे जीवित अवस्थामें प्राणियोंके शरीरका यन्त्र और धातु समूहोंकी क्रिया अथवा प्रवर्त्तनादि जाना जाता है उसको जीव-विज्ञान कहते हैं। सामान्य तृणसे असामान्य मनुष्य तक सब इस विशाल जीव जगतके अन्तर्गत है। कारण देहकी सृष्टि, पुष्टि और क्षय आदि सभी कारण एकही प्रक्रियासे होती है। किन्तु उन सब विषयोंकी आलोचना करना इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है, यहां केवल मनुष्य जातिकी शरीरतत्व और जीवविज्ञान सम्बन्धीय प्रयोजनीय व्यापार समूहोंका अनुशीलन करना है, इस लिये इस ग्रन्थको मानवशरीरतत्व और जीव-विज्ञान कहा जा सकता हैं।

प्राण क्या है।

प्राण क्या है? यह एक कठिन प्रश्न है। जीवसृष्टिके आदि-कालसे वर्त्तमान समय तक इस प्रश्नका उपयुक्त उत्तर नहीं मिला है। भिन्न भिन्न कालोंमें भिन्न भिन्न वैज्ञानिक पण्डितोंने जीवतत्वकी आलोचना कर इस कठोर प्रश्नके बारेमें जो सब मत प्रकाश कर गये हैं उससे यह जाना जाता हैं कि मस्तिष्क, हृत्पिण्ड और श्वास यन्त्रके

अप्रतिहत स्वाभाविक कार्य्यही का नाम प्राण है। इस लिये उक्त तीन यन्त्रको "त्रिपद" कहते हैं। किन्तु अधिक सूक्ष्म विश्लेषणसे जाना जाता है कि जीवन को सिर्फ दो पैर फुस्फुस् और हृत्पिण्ड हैं; कारण केवल मस्तिष्कमें आघात अथवा उसके विक्रियासे मृत्यु कभी नहीं होती पर वही चोट अथवा विक्रिया फुस्फुस् या हृत्पिण्डमें होनेसे मृत्यु होती हैं।

हृत्पिण्डका कार्य्य—शोणित सञ्चालन और फुस्फुस्का प्रधान कार्य्य श्वास प्रश्वास है। शोणित सञ्चालन और श्वास प्रश्वास यह दोमें एक भी रहित होनेसे मस्तिष्क की क्रिया रहित होती है। किन्तु यदि किसी कृत्रिम उपायसे हृत्पिण्ड और फुस्फुस्का कार्य्य ठीक रखकर मस्तिष्क बाहर निकाल लिया जायतो जीव की मृत्यु नही होती है।

जीव क्या है ?

ऊपर कह आए हैं कि सामान्य तृणसे असामान्य मनुष्य तक सभी जीवपदवाच्य है। जीव जड़ और जङ्गम ऐसे दो श्रेणीमें विभक्त है। उद्भिदादि जड़ तथा चक्षुके अगोचर चलच्छक्तिविशिष्ट जीवाणुसे पूर्ण मनुष्य तक को जंगम कह सकते हैं। यही दो प्रकारके जीवोंकी सृष्टि, पुष्टि और नाश प्राय एकही क्रियासे होता है।

कोष वा सेल। (CELL)

जीव विज्ञानवित् पण्डितोंने बहुत खोजकर स्थिर किया है। कि जीवमात्रके देहमें असंख्य कोषों (CELL) की एक समष्टी है। यह सब कोष अति सूक्ष्म रीतिसे जीवनी शक्तिका एक एक आधार है। इन सबका आकार इतना छोटा है कि विना अनुवीक्षण यन्त्रसे दिखाई नही देता। आधुनिक वैज्ञानिकोंने इसका व्यास एक इञ्चका ६००० वां अंश स्थिर किया है। हड्डी,

मज्जा, मांस, मेद, शोणित आदि शरीरके सब धातु इसी कोषसे बनिया गया है।

नयनके अगोचर अति सूक्ष्म जीवानुरूप जीव जो जननीके जठरमें जन्म लेता है वह भी ऐसही एक कोषके सिवाय और कुछ नही है। परीक्षा करनेसे उक्त कोषमें एक प्रकार अर्द्धतरल पदार्थ दिखाई देता है उसको पलल या "प्रटोप्लाज्म्" कहते हैं। पलल स्वच्छ और वर्णविहीन क्षारमय पदार्थ जीवमात्रके अनुप्राणनीशक्ति इस पललमें निहित है।

पलल या "प्रटोप्लाज्म्"।
(Protoplasm.)

जड़ या जंगम जीवमात्रका शरीर असंख्य कोषोंकी समष्टी तथा उक्त कोषोंमें पलल नामक एकप्रकार अर्द्धतरल स्वच्छ पदार्थ और यह पलल जीवनीशक्तिका आधार स्थिर हुआ है। ऐसही शरीर उपकरणमें असंख्य जीवनीशक्ति है। जीवका देह जैसे असंख्य कोषकी समष्टी है वैसही जीवका जीवन भी क्षुद्र क्षुद्र पलल अर्थात् जीवनीशक्ति की समष्टी है। पहले कह आए है कि हृत्पिण्ड, फुस्फुस् और मस्तिष्कका अप्रतिहत स्वाभाविक कार्य्यही जीवन है। जबतक यह कार्य्य होता रहता है तभीतक जीवन भी रहता है तथा इस कार्य्यकी निवृत्ति होनेसे मृत्यु होती है।

मृत्यु क्या है?

साधारणकी धारणासे मृत्यु एकप्रकार; किन्तु वास्तवमे मृत्यु नानाप्रकार है। यही सब मृत्यु स्थानिक (Local) और सार्व्वांगिक (General) भेदसे दो भागमें विभक्त है। जीवदेहमें प्राय सर्व्वत्र प्रतिक्षणमें स्थानिक मृत्यु होती है। शरीरके भीतर और बाहरी त्वकमें सर्व्वदा असंख्य सेल अर्थात् कोष विनाश होते है तथा नये नये

मृत्यु दो प्रकार।

कोष पैदा हो स्थान अधिकार करता है। शोणितके लालकण समूहोंमें भी सर्व्वदा ऐसही परिवर्त्तन हुआ करता है। स्थानिक मृत्यु मनुष्यको सर्व्वदा दिखाई नहीं देता है तथा यह प्राणरक्षा में विशेष उपयोगी है।

कभी कभी स्थानिक मृत्यु विस्तृत स्थानमें फैलकर होते दिखाई देता है; किसी प्रकारकी चबकरी पीड़ा अथवा आघात लगनेसे शरीरके प्रभूत अंशकी मृत्यु होती है। शरीरका कोई अंश जल जानेसे अथवा किसी स्थानमें फोड़ा होनेसे शरीरका चमड़ा अल्प या अधिक नष्ट हो जाता है। स्नायु, पेशी, हड्डी, चमड़ा आदि शरीर उपादान की मृत्यु होनेसे वह फिर पैदा होता है।

स्थानिक मृत्यु।
(Local Death)

सार्व्वांगिक मृत्यु दो प्रकार, समग्र शरीर की मृत्यु और शरीरके उपादान समूहो की मृत्यु प्रथमोक्त मृत्युसे हृत्पिण्ड फुसफुस और मस्तिष्कके सम्पूर्ण कार्य्य की निवृत्ति को कहते हैं। दूसरी मृत्यु शरीरके समस्त विधान उपादान अर्थात् समस्त कोष समूहोकी जीवनशक्तिके सम्पूर्ण अपगम को कहते हैं। जीवकी मृत्यु होनेसे उसका समस्त शरीर पहिले मरता है; किन्तु शरीरके उपादान समूह शरीरके साथही नहीं मरते अकसर बहुत देरके बाद समस्त उपादानोकी मृत्यु होती हैं। इसलिये फांसी आदि प्राणदण्डसे दण्डित व्यक्तिगण की मृत्यु होनेके थोड़ी देर बाद भी उपयुक्त उत्तेजक पदार्थके संयोगसे उसके पेशीमण्डलमें सङ्कोच होता हैं, इस अवस्थामें मनुष्य मर जानेपर भी पेशीसमूह बहुत देरतक जीवित रहता हैं।

सार्व्वाङ्गिक मृत्यु।
(General Death)

मौलिक उपादान।

ELEMENTARY TISSUES.

जीव शरीर की अच्छी तरह परीक्षा करनेपर उसके मौलिक उपादान समूह दिखाई देते हैं। जिसकी संख्या चार प्रकार, (१) कौषिक, (२) संयोजक, (३) पैशिक और (४) स्नायविक; कोई २ शोणित और लसिका कोभी इसके साथ मिलाकर सब समेत पांच प्रकारके उपादान उल्लेख कर गये हैं।

पहले कह आये है कि जीव देहमें असंख्य कोषकी संख्यामात्र है। जो सब कोष त्वक, कफज और रसवाही भिल्लीको ढांके रखता है तथा जिससे शरीरके अपरापर अंशोंकी आकृति होती है उसीको कौशिककला कहते हैं। शरीरके ऊपरवाले चमड़ेका कौशिककला प्रधान उपादान है। यहांतक कि नख और केश त्वकमें भी कौशिक उपादान दिखाई देता है। इसके सिवाय नासारन्ध्र, मुखगह्वर, मलमार्ग और मूत्रमार्ग आदि प्रधान २ रन्ध्र तथा श्वासमण्डल, अन्नमण्डल, मूत्रन और जनन मण्डल के भीतर की ग्रन्थी समूहोंके नलमें भी यह भरपूर विद्यमान है।

संयोजक उपादान।

(CONNECTIVE TISSUES.)

प्रकृति और कार्य्य।

जिससे हड्डी, उपहड्डी, बन्धन, आदि शरीरके अंशोंको अपने २ स्थानमें निबहकर कङ्काल बनावे तथा स्नायु, पेशी और ग्रन्थि यन्त्रोंके गठन और आवरण कार्य्यमें सहायता करे उसको संयोजक उपादान कहते हैं। शरीरके सब अंश अपने२ स्थानसे अलग न होय अर्थात् उचित स्थानमें रहकर जीवनका उद्देश्य साधन करना ही संयोजक उपा-

दांतका प्रधान कार्य्य है। यह सब कार्य्यसाधन के लिये यह शरीर के सब धातुओंसे मिला हुआ रहता है।

संयोजक उपादान कठिन और कोमलभेदसे दो प्रकार का है। किन्तु श्रेणीविभाग के लिये सचराचर तीन प्रधान विभागमें विभक्त है। तान्तव, संयोजक उपादान, उपास्थि और अस्थि।

तान्तवसंयोजक उपादान।

यह विधानोपादान शरीरके प्राय: सभी कोमल अंशोंमें है। धमनी, पेशी, बंधनी, रज्जु या अध: त्वक, श्लैष्मिक झिल्लि, स्नायु और ग्रन्थि आदि आवरण, झिल्लि, तथा मस्तिष्क, प्लीहा और यकृत् आदि जो सब तन्तुवत्, कर्दमसदृश, श्वेत, पीत और रक्तवर्ण पदार्थ दिखाई देते हैं, उसीको तान्तव संयोजक उपादान कहते हैं।

उपास्थि। (CARTILEGE.)

पक्के नारियलके गूदाकी तरह जो सब अर्द्धकठिन, अर्द्धकोमल पदार्थ नाक, कान, अस्थिका प्रान्त, श्वासनाली आदि स्थानोंमें दिखाई देता है, उसको उपास्थि कहते हैं। महर्षि सुश्रुत उपास्थि को तरुणास्थि कहते हैं। उपास्थि हड्डीकी तरह कठिन नहीं होती। उपास्थि नानाप्रकार तथा श्वेत, पीत और स्थितिस्थापक है। शेषोक्त उपास्थि मूषिक, चमगीदड़ आदि प्राणियोंके कानमें दिखाई देती है।

अस्थि। (BONE.)

जीवदेह के कठिन पदार्थ को अस्थि कहते हैं। उपास्थिमें दो चार पार्थिव पदार्थ मिलानेसे हड्डी होती है। लवणका चूर्ण इसका प्रधान

उपादान।

उपादान है। यह दो उपादान निकाल लेनेसे हड्डोमें कठिनता नहो रहतो और अति कोमल हो जातो है।

मनुष्यदेहमें दोसौ से अधिक अलग अलग हड्डो दिखाई देती है, किन्तु विशेष विचार कर देखनेसे

संख्या।

जोवके सर्व्व अवस्था में अस्थिसंख्या बराबर नहो रहती। बाल्यावस्थामें बहुतेरा हड्डी अलग अलग रहती है, वह फिर बार्द्धक्यमें एकत्र मिलजातो है। देखिये, मेरुदण्डमें पहिले ३३ अलग अलग कशेरुका रहतो है; इससे ऊर्द्धांशको २४ कशेरुका जन्मभर वैसहो अलग अलग देखनेमें आतो है; बाको ९में ५ एकत्र मिलकर पृष्ठवंशके मूलमें मिलजातो है। शेष ४ को एक हड्डो हो जातो है, इसोको शङ्कावर्त्त कहते हैं। लड़कापनमें करोटोमें २२ अलग अलग हड्डो रहतो है; तथा जवानीमें इसको संख्या और भी बढ़जातो है और बुढ़ौतीमें फिर कम हो जातो है। छातोके दोनो तरफ १२ कर २४ पशुका यानें पञ्जरो है। इसमें अधिकांश उपास्थिसे छातोके हड्डोका सम्बंध है; यह सब पशुका पृष्ठवंश अर्थात् मेरुदण्डसे आरम्भ हो धनुक को तरह टेढो हो छातोके हड्डोमें मिलो हुई है। छातोके हड्डोके उपर कंधेके सामने और पोछे चक्र और अंस फलकास्थि नामसे दो दो कर चार हड्डियां है।

करोटोमें ८ हड्डो है; यथा—ललाटमें १ और दोनो पार्श्वके उपरो तरफ २ पार्श्वास्थि है। यह दोनो उपरको तरफ परस्पर मिलो हुई है। ऊर्द्धशिर: दोनो पार्श्वास्थिके नोचे दोनो पार्श्वमें दो शंखास्थि है। करोटोके जड़में और आगे एक शोषिरास्थि है। बाको दो करोटोके पोछे पार्श्वमें है।

अस्थिके कार्य्य।—शरीरके अवयवोंमें हड्डो हो प्रधान उपा-

दान है। हड्डी कठिन और हलकी अथच लघु है; इसीलिये उक्त कार्य्योंमें यह विशेष उपयोगी है। हड्डी जैसी कठिन और हलकी है वैसही यदि भारी होती तो शरीरांगणोंका चलना फिरना एक तरहसे रहित हो जाता। हड्डीके भीतरी कोमल यंत्र समूहोंको (मस्तिष्क, हृत्पिण्ड, यकृत् आदि) बाहरी आघातादि से रक्षा करता है। करोटी और पर्शुका आदि यदि कठिन न हो, कोमल होती तो सामान्य चोटसे हो जीवका प्राण-नाश होता। हड्डी कठिन होनेके सिवाय किसीकदर इससे स्थितिस्थापकता भी है। इसीलिये सहजमें नहीं टूटती, इसके सिवाय हड्डीसे भारी वस्तु उठाना, चलना, सिकोड़ना आदिमें भी विशेष सहायता मिलती है।*

दन्त।

दांत जिस उपादानसे बनाया गयाहै उसका नाम रद है। वही एक पदार्थ हड्डीकी तरह कठिनहै; इसीलिये दांतको अस्थि और संयोजक तंतुकी समश्रेणी कहकर एकत्र वर्णित किया है; दांतके अन्यान्य उपादान भी हड्डी ही की तरह है; इसीलिये यहां

* हिन्दू आयुर्वेद के मतसे नरकङ्काल में सब २४६ हड्डियां है।

सक्थिद्वय (दोनो निम्नशाखा)	६२	कदनकाण्डल	१४
बाहुद्वय (ऊर्द्ध्वशाखा) ...	६८	दोनो कान	६
छाती	१	जिह्वामूल	१
पृष्ठवंश	२६	आगमगण्डलास्थि	८
पर्शुका (पञ्जरी) ...	३२	दन्त	२
करोटीमें	८	मोट	२४६

दांतके विषयमें भी कुछ कहना है। हिन्दू आयुर्वेद शास्त्रमें दातको रुचकास्थि नामको आख्या है।

स्तनपायी अन्यान्य प्राणियोंकी तरह मनुष्य भी जीवनके दो निर्द्दिष्ट समयोंमें दोवार दांतसे सजाया जाता है,—प्रथम जब दांत निकलते है उसको अस्थाई या दूधके दांत कहते हैं। दूधके दांत टूटकर फिर दूसरे दांत जब आते है उसे स्थायी दन्त कहते हैं। स्थायी दांत टूटनेपर फिर नही आते है।

दांत चार प्रकार ;—छेदन, शोवन, हस्व और पेषण। उपर की पातोमें ४ और नोचेकी पातामें ४ को छेदन दन्त ; शोवन दन्त उपर दो और नोचे दो ; ह्रस्वदन्त उपर ४ और नोचे ४, और पेषण दन्त उपर छ और नोचे छ ; इसी तरह मोट ३२ दांत है।

दांत ठोक कौन वख्त निकालता है, इस विषयमें कुछ मतभेद दिखाई देता है ; किसी बालक को छ मास होनेसे पहिले ही दांत निकलता है, किसीको नवे महीने और किसीको १२वे महीने निकलता है। गरज मोटा ताजा सबल बालक को छठे महीने दांत निकलता है। इसीलिये हमारे देशमें छठे महीने अन्नप्राशन करनेकी विधि है। पूतना आदि पोड़ासे हड्डाके पुष्ट होनेमें वाधा पड़नेसे दांत निकलनेमें देर होता है।

प्रत्येक दांतमें सचराचर तोनभाग है ; यथा—अग्र, ग्रीवा और मूल। बाहर निकले हुए भागको अग्र, इसके नीचेवाले भागको ग्रोवा तथा इसके नोचेवालेको मूल कहते है। दांतका प्रधान उपादान रद नामक पदार्थ है। इसमें हड्डीको अपेक्षा थोड़ा आन्तव पदार्थ भी है। यह रद एकप्रकार अस्थिमय पदार्थसे मण्डित है, दांतकी उज्ज्वलता और मसृणता इसीसे साधित होती है। रदका जो अंश दन्तवेष्टके बाहरहै उसीसे यह उज्ज्वल पदार्थ दिखाई देता

है, तथा इसका अंश जो चक्षुके भीतर रहता है, वह भी एक कठिन पदार्थसे बना है। दांतके भीतर एक छोटा छेद है। इस छेदमें दो छोटा सुंह दन्तमूलके दो तरफ से निकला हुआ है। स्नायु और शोणित नाली सब यही दो मुखसे दांतके गर्भमें प्रविष्ट हुई है। इसीलिये दांतका गर्भ कोमल रहता है।

प्रौढ़मानव-शरीरकी अस्थिसंख्या।

बहुत खोज करनेपर मालूम हुआ है कि दन्त आदि कई छोटी छोटी अस्थिके सिवाय मनुष्य देहमें सब २०० हड्डी है। नीचे उसकी फिहरिस्त दी जाती है।

पृष्ठवंश ··· ··· ··· ···	२६
करोटी ··· ··· ··· ···	८
मुखमण्डल ··· ··· ···	१४
छाती और पञ्जरी आदि ··· ···	२६
ऊर्द्ध्वशाखा द्वय ··· ··· ···	६४
सक्थि या निम्न शाखाद्वय ··· ···	६२
मोट	२००

अस्थिसमूहोंके प्रकारभेद।

महर्षि सुश्रुतके मतसे हड्डी पांच प्रकार; यथा—कपाल, रुचक, तरुण, वलय और नलक। डाक्टरी मतसे भी हड्डी चार श्रेणीमें विभक्त है, यथा—दीर्घास्थि, खर्व्वास्थि, प्रशस्तास्थि और विविधाकार अस्थि समूह। सुश्रुत कहते हैं जानु, नितम्ब, स्कन्ध, गण्ड,

नरकङ्काल।
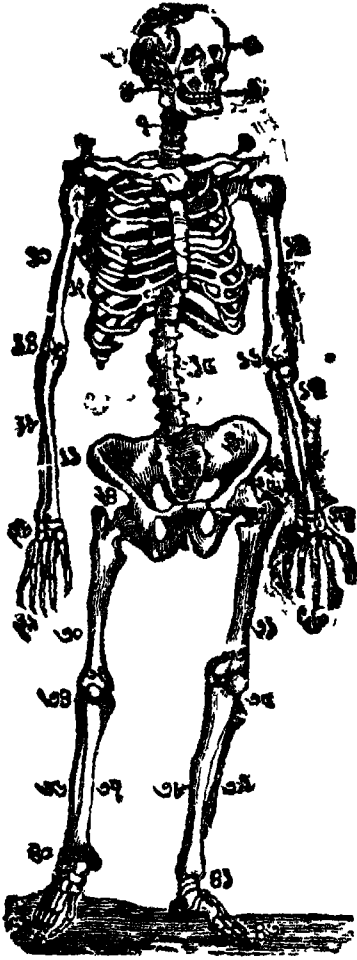
तालु, शङ्ख, और मस्तक में कपोल नामक हड्डियां है। दांतको रुचक अस्थि कहते हैं। नासिका, कर्ण, ग्रीवा और आंखके दोनो कोनोंमे तरुण अस्थि रहती है। तरुण हड्डियोंको अङ्गरेजोंमें कार्टिलेज (Cartilege) अर्थात् अधुना उपास्थि कहते हैं। वलय नामक हड्डिया पाणि, पाद, पार्श्व, पृष्ठ, उदर और छातीमें दिखाई देतीहै। अवशिष्ट स्थानो में नलक नामक हड्डिया रहती है। सुश्रुतोक्त तरुण हड्डी अर्थात् कार्टिलेज को छोड़ देनेसे केवल चारही प्रकार बाकी रहता है। सुतरां डाक्तरो शास्त्रोक्त चार प्रकार की हड्डी-योंके साथ इसकी समानता हो सकती है। किन्तु इनमें कौन दीर्घ और छोटी तथा कौन विविधाकार है इसका निर्णय करना कठिन है।

१। दीर्घास्थि—मनुष्य शरीरमें सब समेत ९० दीर्घास्थि है। इन्ही सब हड्डीयोंसे देहकी रचा होती है, तथा चलना फिरना, भारी वस्तु उठाना और उठना बैठना कार्य्य इसीसे होता है। इसमें प्रत्येक के मध्यमें अस्थिमज्जानाली और एक एक काण्ड है।

२। खर्व्वास्थि—सब समेत ३० है, देहके जिस अंशमें अधिक बल किन्तु कम सञ्चालन क्रिया की जरूरत है, यह हड्डी इन्हो सब स्थानोंमें रहती है।

३। प्रशस्त अस्थि—को संख्या ८ है। यह भीतरी यंत्र समूहों के चारो तरफ दीवालकी तरह घेरकर चोटसे रक्षा करती है।

४। विविधाकार अस्थिसमूह—को संख्या ३९ है। यह पृष्ठ-वंशास्थि, शङ्खावर्त्त शङ्खास्थि, शौषिरास्थि, कीलकास्थि और कशेरुका हड्डीयोंको श्रेणीके अन्तर्गत है।

हाथ और पांच अङ्गुली।
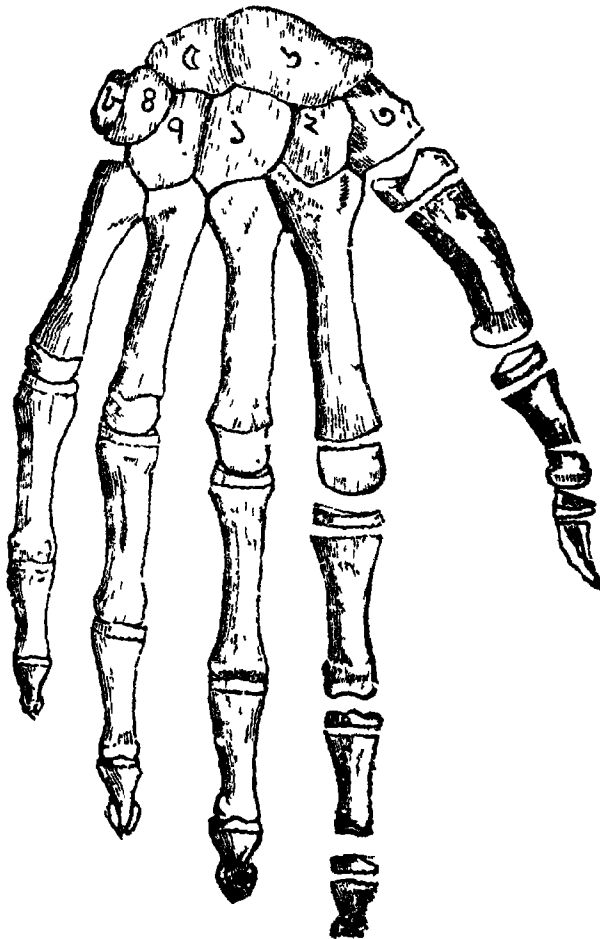
अस्थिसन्धि या जएण्टस्। (Joints)

उत्थान, गमनागमन, भारोत्तोलन आदि क्रिया जिससे बेखटके होती है उसको अस्थिसन्धि कहते हैं। अस्थिसन्धि तीन प्रकार में विभक्त की जाती है। (१) अचलसंधि, (२) आंशिक चलत् संधि, और (३) चलत् संधि।

अचलसन्धि और उसके भाग।

१। केवल नीचेवाली हनुसन्धिके सिवाय बाकी करोटी और मुखमण्डल तथा और सब संधिको अचल संधि कहते हैं। यह अचलसंधि ३ उपश्रेणीमें विभक्त है तथा इसमें सेवनी संधि ही प्रधान है। २ आरीके दांत परस्पर मिलानेसे जैसा दिखाई देता है, सेवनीसंधि भी ठीक वैसही दिखाई देती है। करोटीकी संधि भी ऐसही है।

२। आंशिक चलत् संधि—थोड़ी सञ्चलनशील है। कशेरुका और वस्तिके अधिकांश संधि इसी श्रेणीके अन्तर्गत है।

३। चलत् संधि—की चार प्रकार उपश्रेणी है; (क) कई चारो तरफ सञ्चलनशील संधि; यह संधि सब तरफ आवर्त्तित होती है। (ख) उदूखल संधि; यह संधि सब ऊखल की तरह गह्वरमें दूसरी हड्डीका गोलमुख प्रविष्ट हुआ रहता है। स्कन्धसन्धि और ऊरुसन्धि इसी श्रेणीके अन्तर्गत है। (ग) जानु-

महर्षि सुश्रुत कहते है :—

सन्धयस्तु द्विविधाश्चेष्टावन्तः स्थिराश्च।
शाखासु हन्वोः कट्याञ्च चेष्टावन्तस्तु संधयः।
शेषास्तु सन्धयः सर्व्वे विज्ञेयाहि स्थिरा बुधैः॥

अर्थात् सन्धि दो प्रकार, चेष्टावान और स्थिर। हाथ, पैर, हनु और कमरकी सन्धि चेष्टावान अर्थात् सचल, अवशिष्ट सन्धि को अचल जानना। हजारो वर्ष पहिले महर्षि सुश्रुत जो कहगये हैं, आधुनिक डाक्टरी मतके साथ उसका कितना सादृश्य है देखिये।

सन्धि, गुल्फसन्धि और कफोणिसन्धि दूसरे श्रेणीके अन्तर्निविष्ट है। (घ) आवर्त्तनशील संधि। इसके सिवाय प्रकोष्ठ और कोदन्त-संधि भी इसी श्रेणीके अन्तर्गत है।

देहकाण्ड के अस्थिसमूह।

१। पृष्ठवंशकी अस्थिसन्धि। यह सन्धि कशेरूका समूह के अस्थिका कोई कोई अंश और प्रवर्द्धनोंसे बनी है।

२। पार्श्वकपाल-अस्थिका संयोग।

३। पार्श्व-कपालके साथ आंखका संयोग।

४। हनुसन्धि।

५। कशेरूका समूहके साथ पर्शुका का संयोग। यह सब अचलसंधिकी बन्धनी इतनी दृढ़ है कि सहजमें उसको अलग नहीं किया जा सकता है।

६। उरोऽस्थिके साथ पर्शुका का संयोग।—इसमें एक अर्द्ध-चलत् और ६ चलत् सन्धि है, पर्शुका उपास्थि और वक्ष-अस्थिके किनारे की संधि।

७। वस्तिके साथ पृष्ठवंशास्थिका संयोग। यह सातप्रकारकी संधिके सिवाय छातीमें और एक प्रकार संधि है।

ऊर्द्धशाखा की सन्धिसमूह।

१। उरःअस्थिके साथ जत्रु अस्थिका संयोग। जत्रुका आभ्य-न्तरिक प्रान्त, छाती और प्रथम पर्शुका के उपास्थिके साथ यह संधि निर्म्मित है।

२। अंशफलकास्थि के साथ जत्रु अस्थिकी संधि।

३। अंशफलकास्थि की प्रकृत सन्धियां।

४। स्कन्धसंधि।

५। कफोणिसंधि।

६। कोदण्डास्थिके साथ प्रकोष्ठास्थिका संयोग।

७। मणिबन्धसंधि।

८। मणिबंधमें पंक्तिवत् अस्थिसमूहोंका संयोग।

निम्नशाखाकी संधिसमूह।

१। ऊरुसंधि।

२। जानुसंधि।

३। अग्रजङ्घास्थिके साथ अनुजङ्घास्थिका संयोग।

४। गुल्फसंधि।

५। प्रपदास्थिसमूहोंका संयोग।

६। अङ्गुलिसमूहोंका संयोग।

द्विविध सन्धि।

महर्षि सुश्रुत ने क्रियाविशिष्ट और स्थिर ऐसे दो भागमें संधियों को विभक्त किया है। हाथ पैर हनु, और कमर इन स्थानोंकी संधिको क्रियाविशिष्ट तथा बाकी को स्थिर कहते हैं। सब समेत २१० संधि है। जिसमें हाथ पैर में ६८, कोष्ठमें ५९, ग्रीवाके ऊपर ८३, प्रत्येक पदाङ्गुलिमें तीन तीन कर १२ और अङ्गूठेमें २ सब समेत १४; जानु, गुल्फ और वंक्षण में एक एक। प्रत्येक पैरमें १७ कर ३४ संधि है। दोनो बाहुमें ३४ संधि हैं। कमर और कपालमें ३, पृष्ठमें २४, दोनो पार्श्वमें २४, छातीमें ८, गरदनमें ८ और कण्ठमें ३ संधि हैं। नाड़ी, हृदय और क्लोममें १८ तथा दांतमें जितने दांत उतनोही संधि हैं। कण्ठमें एक, नाकमें एक,

नेत्रमें दो, गाल, कान और शङ्कमें एक एक, हनुमें दो, भौंके ऊपर दो, दोनो शङ्कमें दो, सिरके खोपड़ीमें ५ और मूहमें एक।

सन्धि आठ प्रकार।

उपरोक्त संधिया ८ प्रकार; यथा, कोर, प्रतर, उदूखल, सानुद्र, तुन्नसेवनी, वायसतुण्ड, मण्डल और शङ्खावर्त्त। अङ्गुलि, मणिबंध, जानु, गुल्फ और कूर्पर इन सब स्थानोंकी संधिको कोरसंधि कहते हैं। कांख, वंक्षण और दांतके संधिको उदूखल; कंधा, मलद्वार, योनि और नितम्बके संधिको सानुद्र, गरदन और पीठके संधिको प्रतर; मस्तक, कमर और कपालके संधिको तुन्नसेवनी; तथा दोनो हनुके संधियोंको वायसतुण्ड कहते हैं। कण्ठ, हृदय, नेत्र, क्लोम और नाड़ी की संधि, मण्डल नामसे अभिहित है।

पेशी समूह। (Muscles.)

प्रकृति और विभाग।

पेशिओंसे देह और देहके अंश सब सञ्चालित होते है। स्थिति स्थापक, किञ्चित् लालरंगके पतले तन्तु-मय पदार्थ को पेशी कहते हैं। इसमें बहुत पानी रहता है। पेशी दो श्रेणोमें विभक्त है। (१) इच्छा-नुग, और (२) स्वाधीन। अन्नवहा नाली, मूत्राशय, जननेन्द्रिय, धमनीकी दीवाल, विशेषकर शिरा और लसिका नाली समूहो की दीवाल आदि स्थानोमें स्वाधीन पेशी दिखाई देती है। बाकी स्थानोमें इच्छानुग पेशी रहती है।

पेशीसंख्या।

मनुष्यके देहमें प्राय चार सौ पेशी है; जिसमें करोटीके पेशीके बारेसे पहिले लिखता हूं। (१) ललाट और कपालके पीछेकी पेशीसे भौं, ललाट और मुखमण्डल की क्रिया प्रकाश होती है। (२) अक्षिपुट सङ्को-

लक पेशी ; इससे अक्षिपुट बन्द होता है। (३) भ्रूसङ्कोचक पेशी ; इससे भौं नीचे और भीतरके तरफ आकृष्ट होता है। (४) अक्षिपुटाग्र—आकर्षक पेशी ; यह अक्षिगोलक के उपर अश्रुग्रन्थिका छिद्र और अश्रुथाली को दवा रखती हैं। (५) एक पेशी उपर के अक्षिपल्लव को उठाती हैं। (६) और एक पेशी अक्षिगोलक के उपर हैं। (७) एक पेशी नीचेकी तरफ है। (८) एक पेशी भीतरके तरफ। (९) एक पेशी बाहरकी तरफ। (१०) अपर एक पेशी सामने और पीछे अक्षरेखामें घूमती है। (११) एक पेशी अक्षिगोलक के पीछे और बाहर घूमती है, तथा कनीनिका को अक्षिकोटर के बाहरी और उपरवाले कोनेमें ले जाती है।

इसके सिवाय नासिकामें तीन, ऊर्द्ध ओष्ठमें छ, अधरमें चार, हनुमें पांच, कानमे तीन, कानके भीतर चार, ग्रीवाके सर्व्वत्र तेतीस, तालुमें आठ, पीठमें सब समेत सात, आंतोंमें पांच, उदरमें छ, विटपमें आठ किन्तु स्त्रीके विटपमें सात, कंधेके ऊर्द्धशाखा और प्रगण्डमें पंदरह, प्रकोष्ठमें इक्कीस, हाथमें एगारह और सक्थि अर्थात् निम्नशाखामें बावन यही सब प्रधान पेशी है। इसके सिवाय और भी दोमी छोटो छोटो शाखाप्रशाखा पेशी है।

स्नायुसमूह। (Nerves,)

स्नायु क्या है ?—पेशी समूहोंसे शरीर अथवा शरीरके अङ्गप्रत्यङ्ग सञ्चालित होते है ; किम्वा अपने अपने कार्य्यसाधनमें समर्थ होते हैं। यह शक्ति स्नायुमण्डलसे पेशीको मिलती है। अर्थात् स्नायुके सहायतासे पेशी अपना काम करती है तथा हमलोग जैसे चलते, फिरते, उठते,

पेशी और स्नायु।

बैठते और काम कर सकते है। क्षुधा, तृष्णा, काम, क्रोध आदि वृत्ति और प्रवृत्ति आदि सब स्नायुके कार्य्य है। रूपदर्शन, शब्द श्रवण, गन्धग्रहण, रसास्वादन और स्पर्शज्ञान आदि सब कार्य्य स्नायुसे साधित होता है। मत्त मातङ्गकी तरह बलवान पुरुष विराट देह और विशाल हाथ पैरसे कुद फांद रहा है, उसके सिरमें मारतेही देखेगें की थोड़ेही देरमे ऐसा महावली पुरुष मिट्टीके गोलेकी तरह बेहोश हो जमीनपर गिर पड़ा है। यह दशा उसकी सिर्फ स्नायुमण्डल में चोट लगनेसे हुई है, यदि वह चोट थोड़ी हो तो थोड़ी देरमें होशमें आसकता है और यदि चोट जोरसे लगीतो मूर्च्छाके साथही साथ मृत्यु होती है। इससे स्पष्ट हुआ कि स्नायु-मण्डल ही जीवकी चेष्टा और चैतन्य का प्रधान यन्त्र है।

मस्तिष्क।

बनावट।

पहिले कह आये है, कि करोटी-गह्वरके हड्डीकी कठिन दीवारके भीतर मस्तिष्क है। ठीक अख-रोटके गूदेकी तरह इसके भीतर का हिस्सा दिखाई देता है। मस्तिष्क के चार प्रधान विभाग है, (१) वृहत् मस्तिष्क, (२) क्षुद्रमस्तिष्क, (३) सेतु या एक सफेद रङ्गका बन्धन और (४) मात्रका मूलाधार। इसके सिवाय इसमे ३ झिल्ली है जिससे यह चारो तरफ आच्छादित रहता है।

वजन।—पूरे उमरके व्यक्तिका मस्तिष्क प्राय डेढ़ सेर वजनका होता है। हाथी और ह्वेल मछली आदि प्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्यका मस्तिष्क भारी होता है। पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीका मस्तिष्क २॥ छटांक कम वजन होता है।

मस्तिष्कके चार भागोंमें वृहत् मस्तिष्क ही सबसे बड़ा है इसका वजन ४६ से ५२ औंस है। करोटी गह्वरके उपरि अंशमें इसका स्थान है। यह स्नायुमय पिण्डपदार्थ अंडेकी तरह होता है।

मस्तिष्क की तस्वीर।
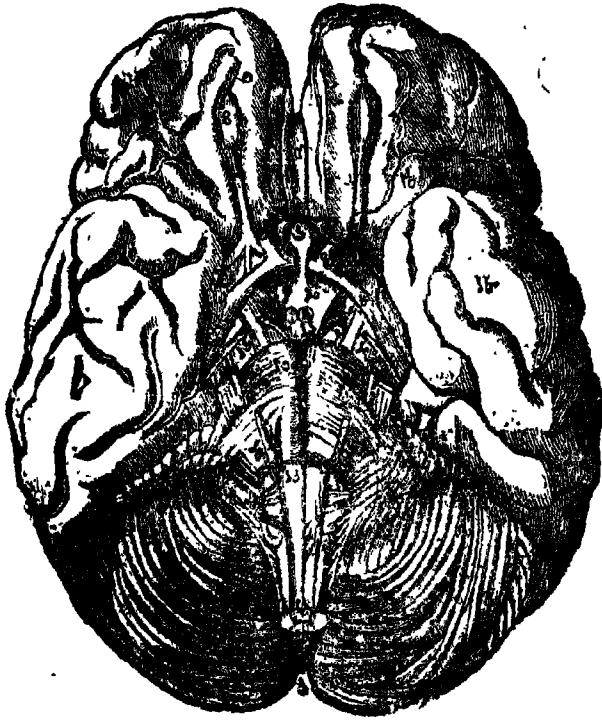
मेरुरज्जु।

कसेरुका प्रणालीके भीतरवाली स्नायुकी पोली नलीके पिण्डको मेरुरज्जु कहते हैं। यह तीन मज्जामय झिल्लीसे आच्छादित है; तथा वही तीन

झिल्ली और स्नायु।

भिन्नो अनेक अंशोंमें मस्तिष्कके भिन्नोसे मिली हुई है। मेरु-मज्जामे ३१ युग्म स्नायु उत्पन्न हुई है; इसीलिये यह स्नायु सब मेरुमज्जाजात स्नायु नामसे अभिहित है। कसेरुकाकेपाससे जो जो स्नायु निकला है, कशेरुका उसी उसी नामसे प्रसिद्ध है।

गरदनमे ८ स्नायु है। यह स्नायु जितनी नीचे गई है, आकार भी उसका उतनाही बढ़ता गया है।

पीठमें १२ स्नायु है। इसमे प्रथम स्नायु पीठके प्रथम और द्वितीय कशेरुका के मध्यभागसे और शेष स्नायु द्वादश संख्यक पृष्ठावलम्बी और प्रथम संख्यक कमरकी कशेरुका से उत्पन्न हुआ है।

कमरमें स्नायु १० दश,—प्रत्येक पार्श्वमें पांच पांच कर है। इसमें वहुतेरी नीचे वस्तितायतन की साहानुभूतिक स्नायुसे मिला हुआ है।

पूर्व्वोक्त त्रिविध स्नायुके सिवाय पृष्ठवंशमूलमें पांच और शङ्खावर्त्तमे एक स्नायु और है। यही दो प्रकार स्नायु यथाक्रम पृष्ठवंश-मूलीय और शङ्खावर्त्तीय स्नायु नामसे अभिहित है। उपर जितनी स्नायुका नाम कहा गया है, इन स्नायुओंके सिवाय क्षुद्र और वृहत् बहुतेरी स्नायु तथा साहानुभूतिक स्नायु नाम से और एक स्नायु है।

स्नायुसमूह।

(क) मस्तिष्कका सामना। (ख) मुखमण्डलकी स्नायु। (ग) पश्चात् मस्तिष्क और मातृका। (घ) कशेरुक मज्जा। (ङ) ऊर्द्ध

शाखाका स्नायु। (च) प्रकोष्ठकी स्नायु। (छ) मणिबन्ध और हाथ का स्नायु। (ज) अङ्गुली का स्नायु। (झ) छाती और पीठका
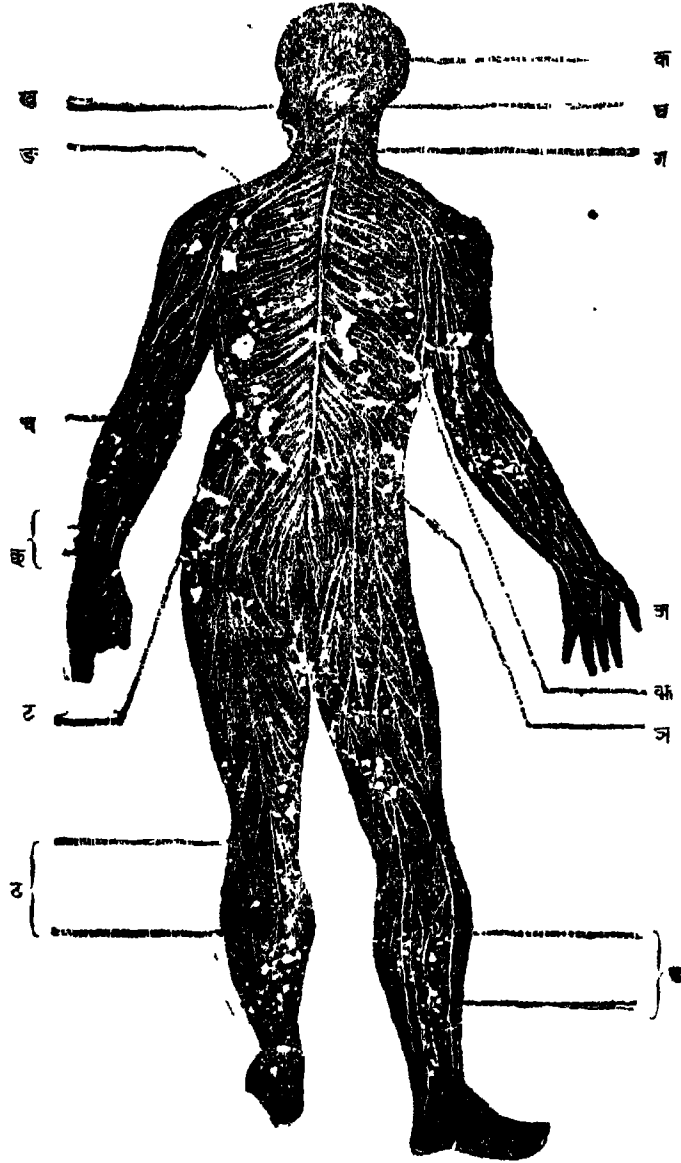
स्नायु। (ज) निम्न शाखा की स्नायु। (ट) उरुको स्नायु। (ठ) जानु और पैर की स्नायु।

बगल की तस्वीरमें शरीरके समस्त स्नायुविधान दिखाया गया है। मस्तिष्क के सम्मुख अंशमें मातृका मूलाधार और कशेरुका-मज्जा दिखाई देती है, तथा मस्तिष्क और कशेरुका-मज्जा से जितनी स्नायु निकल कर शरीर के नानास्थानों में व्याप्त हुई है, वह दिखाया गया है।

शरीर और मन।

पहिले कह आए हैं कि, शत मत्तमातङ्गके तुल्य बलवान व्यक्तिके मस्तिष्क में सामान्य चोट लगनेसे वह निर्जीव जड़ मांसपिण्डकी तरह जमीनपर गिर पड़ता है। इस अवस्थामें वह मूर्देकी तरह हो जाता है; पर सेवा करनेसे तुरन्त ही जाग उठता है; मानो उसको किसी तरह की कोई तकलीफ नही हुई थी। उत्कट मनोवेग अथवा विकट दुर्गन्धसे भी कोई कोई स्नायविक प्रकृतिवाले मनुष्य की ऐसही अवस्था हो जाया करती है। मनके साथ शरीरका कितना घना सम्बन्ध है, यह इससे जाना जाता है। तथा इससे यह भी स्पष्ट है कि शरीर अर्थात् पेशी सब मनके सम्पूर्ण आधीन है। पर थोड़ा विचार करनेही से यह बात भूल मालूम होगी। इसका कारण यह है कि मानलो कि किसीके पृष्ठवंश या पीठमें किसीने छूरी मारी अथवा गोली किया, इससे उसका मेरुदण्ड दो टूकड़े हो गया और बाकी यन्त्र सब ज्योंके त्यों है। तुम समझोगे कि वह अब नही बचेगा। यह न हो वह बच गया और उसके बाकी सब

दोनोंमें प्रदमे।

यन्त्र ठीक है। उसका मनभी पूर्व्ववत् है सिर्फ मेरुदण्ड कट जानेसे सोधा खड़ा होनेको शक्ति लोप हो गई है। सिर्फ यही नहीं उसके दोनो पैरको अनुभूति शक्ति भी नष्ट हो गई है, इसलिये वह इच्छानुसार नोचेका अङ्ग चलाने अथवा वहाके पेशो समूहोंका सङ्कोच और विस्तार नहीं कर सकता है। इससे मालूम होता है कि उक्त अवस्थामें नोचेके अङ्गोंके उपर मनको क्षमता नहीं रहती है।

मन कहा है।

विचारकर देखनेसे मालूम होता है कि मस्तिष्क ही सब प्रकार को अनुभूति शक्ति और मानसिक कार्य्य का आधार है तथा सब स्वेच्छानुग पेशो प्राय सर्व्वतोभावसे इसी मस्तिष्क के आधीन है। सुतरां मस्तिष्क ही मनका आधार है।

शोणित-सञ्चालन प्रणाली।

कार्य्य और परिचय।

जोवदेह कभो भी निष्क्रिय नहीं रहता ; जोव खुद क्रियाशून्य और निश्चिन्त मनसे बैठा रहनेपर भी शरीरयन्त्रके भीतर उसके नानाप्रकारके कार्य्य हरवख्त जारी है,—हृत्पिण्ड, फुसफुस, धमनी, शिरा, पाकस्थली, प्लीहा, यकृत आदि अपने अपने कार्य्यमें लगातार लगे हुए है। इन सब के कार्य्य क्रमशः दिखाया जायगा। पर इन सबके परिश्रम से प्रत्येक को सञ्चित शक्ति क्रमशः अपचय हो जाती है, कारण कार्य्यके होनेसे उसको शक्तिका भी थोड़ा अपचय होता ही है।

जिस शक्तिका एक दफे अपचय या चय हुआ, वह फिर शरीर यन्त्रसे पूर्ण नहीं होता। उसे बाहरी द्रव्यसे पूरा करना पड़ता है, बाहरी द्रव्यका नाम है भोजन। हमलोग जो कुछ खाते है वह पाकस्थली में जाकर शोणित, मलमूत्र आदिमें क्रमशः परिणत होता है। इसी शोणित से चय हुई शक्तिका फिर सञ्चय होता है तथा मलमूत्रादि शरीरके दूषित पदार्थोंको बाहर निकालते है। अतएव शोणित ही जीवकी शक्ति है। इसका रङ्ग लाल है, इससे सचराचर इसे रक्त कहते हैं।

शक्ति-सञ्चय।

शोणित क्या है? शोणित एक खारा और पतला पदार्थ है। इसमें जलीय, कठिन और वायव पदार्थभी मिला है। स्त्री और पुरुष तथा उमर और अवस्था भेदसे वही सब पदार्थ के परिणाम में प्रभेद हो जाता है। अर्थात् शोणित के १०० भागमें ७८ भाग पानी और २१ भाग सूखा कठिन द्रव्य दिखाई देता है। वायुमें यवाक्षार और खट्टा जितना है, ठीक उतनाही शोणित में पानी और कठिन पदार्थ हैं। अर्थात् शोणित में चार आने कठिन पदार्थ और बारह आने केवल पानी है, तथा इक्कीस भाग कठिन पदार्थ में १२ भाग सफेद और लाल कणिका है; बाकी ८ भागमें ६ भाग एल्बिउमैन नामक पदार्थ और तीन भाग लवण, वसा और शर्करा है। इसके सिवाय शरीरके भीतरकी शक्तिका चय हो जो सब पदार्थ शरीरके बाहर निकलते है; उसका कुछ अंश और फाइब्रिन नामक एक प्रकार तन्तु सदृश पदार्थका कुछ कुछ अंश शोणित में दिखाई देता है।

शोणित क्या है?

शोणितका प्रायः आधा हिस्सा वायव पदार्थ इसमें है; अर्थात्

वायव पदार्थ।

प्रति १०० हिस्से गाढ़े खूनमें कुछ कम ५० हिस्से गाढ़ा वायव पदार्थ हैं। यह वायव पदार्थ को अङ्गाराम्ल, अम्लजान और जवाखारजान कहते हैं। यही वायव पदार्थ बाहरी हवामें भी है। बाहरी वायुमें बारह आने यवाखार जान, चौथाई अम्लजान और अङ्गाराम्लका बहुत सामान्य लेशमात्र दिखाई देता है। पर शोणितमें वायव पदार्थ का परिणाम ऐसा नहीं है; शोणित में प्राय दश आने अङ्गाराम्ल और कुछ कम छ आने अम्लजान और बहुत कम जवाखारजान है।

पहिले कह आए है कि उमर, आहार, धातुप्रकृति, और स्त्री पुरुष भेदसे स्वस्थ अवस्था में भी शोणितके उपकरण समूहोंमें तारतम्य दिखाई देता है।

१। स्त्री पुरुष भेद। स्त्री जातिकी अपेक्षा पुरुषके शोणितमें लाल कणाका परिमाण बहुत बेशी है, इससे स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषमें गुरुत्व भी अधिक है।

२। ससत्त्वावस्था। गर्भिणीके शोणितमें लाल कणाका परिमाण कम रहता है, इसीलिये असत्त्वावस्था की अपेक्षा शोणित में गुरुत्व भी कम है।

३। वयस। गर्भस्थ बालक से दो महीनेतक के बालकके शोणित में कठिन पदार्थ विशेषकर लालकणाका परिणाम बहुत अधिक है। लड़कपन में यह कठिन पदार्थ नीचे बैठजाता है तथा यौवन और प्रवीण अवस्था में फिर उपरको उठ आता है। तथा बुढ़ौती में यह कम हो जाता है।

४। धातुप्रकृति। तामसिक प्रकृति या क्रोधी स्वभाववालेके शोणित में कठिन द्रव्य अर्थात् लालकणिका का परिमाण अधिकतर रहता है।

५। खाद्य। मांसाहारी की अपेक्षा शाकभोजीके शोणित में कम कठिन द्रव्य दिखाई देता है।

६। शोणित मोक्षण। फस्त लेनेसे शोणितके लालकणिका का परिमाण कम हो जाता है।

वर्ण और भिन्नता।

शरीरके सब स्थानोके शोणित का रङ्ग एकसा नही हैं; धमनीका रक्त शिराके रक्तकी तरह नही होता, तथा शिरामण्डल में भी सब जगह एकसा रक्त नही हैं। धमनीके शोणितका रङ्ग उज्ज्वल लाल; कारण इसमे अम्लजान अधिक है; शिरा-मण्डलका शोणित बैगनी रङ्ग; कारण उसमें अम्लजान कम हैं। इसके सिवाय धमनीका शोणित जितना जल्दी जम जाता है उतना जल्दी शिराका शोणित नही जमता। तथा फुसफुस, यकृत् और प्लीहाकी शिरायोंका शोणित भी और शिराओंके शोणित से भिन्न प्रकार है।

रक्तका परिमाण।

जीव शरीर में कितना रक्त है, इसका अभ्रान्त निर्णय करना अति कठिन है; तथापि बहुत विचार करने पर स्थिर हुआ हैं कि जीवके शारीरिक बोझके साथ रक्तका भी अनेक सम्बन्ध है। पण्डितगणोंने अनेक परिक्षाकर निर्णय किया हैं कि शरीरके समग्र भागके प्राय १।१२ से १।१४ भाग शोणित जीवके शरीरमें रहता है। मनुष्यका भी ठीक ऐसही है। पर अवस्था भेदसे कुछ तारतम्य दिखाई देता है। भरपूर भोजनके थोड़ी देर बाद शरीरके रक्तका जो परिमाण रहता है उपवास में उससे कुछ कम हो जाता है।

रक्तका उपादान।

रासायनिक उपकरणके सिवाय बाकी शोणितके जो सब प्रधान उपादान है, यहा उसका संक्षेप में थोरा लिखा जाता है। शोणित के चार प्रधान

उपादान है। जैसे (१) रस, (२) कस, (३) कणिका और (४) तन्तु। शोणितके पतले अंशमें जो कणिका सब तैरती है उसको रस कहते हैं। शोणितसे खूनका गाढ़ापन निकाल लेनेपर जो मैला पतला पदार्थ बाकी रहता है वही उसका कस है। कणिका दो प्रकार (१) श्वेत अथवा वर्णहीन (२) और लाल कणिका। स्वस्थ शरीर मे खूनकी सफेद कणिका की अपेक्षा लाल कणिका अधिक रहती है; कारण वही कणिका रक्तका सार पदार्थ है और इसीकी सत्तासे शोणित का रङ्ग लाल होता है।

रक्तका उद्भव।

लाल कणिका ही जब रक्तका प्रधान सार पदार्थ है, तब उसकी उत्पत्ति निर्णीत होनेही से रक्तका उद्भव स्थिरीकृत हो सकता है। कोई कोई कहते हैं, जीवकी पशु का अर्थात् पञ्जरास्थि समूहों के भीतर जो लाल रङ्गकी मज्जा है उसीमे से खूनके लालकण उद्भूत और परिपुष्ट होते है। कोई कहते है, प्लीहाके उपादान में लाल और वर्णहीन दोनो कणिका पैदा होती है। किसीका मतयों है कि सफेद कणिका सब दिन पाकर लाल कणिका का रूप धारण करती है। गरज इस विषय में अबतक कोई अभ्रान्त मत प्रचार नही हुआ है।

शोणित की क्रिया।

शोणित जैसा जीवका प्रधान साधन है, वैसही यह शरीर के बाहरी और भीतरी सब यन्त्रोंका जीवन स्वरूप है। कारण इससे सब क्रिया की कुशलता साधित होती है। जो स्नेह पदार्थ मस्तिष्क का प्रधान उपादान है वह शोणित से उत्पन्न होता है। शोणित हातोका गह्वर, अस्थिका झिल्लीजाल और मज्जा, मज्जाकी कोमलता, पेशीका तन्तु, पाकस्थली की पाचकाग्नि, मुखकी लार, यकृत् का

पित्त, वृक्कमें मूत्र, आंखमें आंसु, त्वकमें पसीना, मस्तकमें केश, और अङ्गुलियों में नख की योजना कर सबको परिपुष्ट भी रखता है।

शोणित-सञ्चालन।

शोणितका चलाचल।

पहिले कह आये हैं कि, शोणित ही जीवका मूल आधार है। खाया हुआ अन्न परिपाक हो शोणित होता है। तथा वह सारे शरीरमें व्याप्त हो रहता है और इसके चलाचल के लिये शरीरके समस्त अंशो में रास्ता या नाली है। वही नाली धमनी, शिरा आदि नामसे प्रसिद्ध है। वृक्षादि स्थावर जीव जैसे पृथिवी से रस आकर्षण कर जीवित रहता है, जङ्गम जीवगण जैसे पाकस्थलीसे अन्नसे रक्त संग्रह कर जीवन की रक्षा करते हैं। धमनी और शिरायें भी वैसही शरीरके सब अंशोमें शोणित लेजाकर शरीरको सजीव रखती है। इस नालीका शोणित शरीरके सब अंशोमें पानीकी तरह व्याप्त है।

सच पूछिये तो हृत्पिण्डही शोणितका प्रधान आधार है। हृत्पिण्ड से धमनी और धमनी से शिरामण्डल में प्रवाहित होता है। यहांसे फिर शोणित फुसफुससे होते हुए हृतपिण्ड में लौट आता है और हृतपिण्ड से फिर धमनी और शिरामें जाता है। इसी तरह शरीर यन्त्रोंमे शोणित बराबर चलता रहता है। शोणित के नाली में कोई द्रव्य रहनेसे शोणित प्रवाह में वह भी डोलता फिरता है। यदि वह पदार्थ दूषित हो तो मुहुर्त्तभर में सारे शरीर को दूषित कर डालता है। इसीलिये शरीर के चाहे जिस प्रान्तमे सांप काटनेसे थोड़ेही देरमें शोणित मण्डल विषाक्त हो मृत्यु आ घेरती है।

हृत्पिण्ड में शोणित बराबर चलता रहता है। इसके खुलनेसे

नाड़ी । शोणित इसमें सञ्चय होता है और प्रत्येक सङ्कोचनसे शरीरमें सर्व्वत्र चलता है। हृत्पिण्डके प्रतिसङ्कोचन से शोणितपूर्ण धमनी में जो शोणित तरङ्ग उत्पादित होता है उसीको नाड़ी कहते हैं।

हृत्पिण्ड और वृहत् रक्तनाली समूह ।

हृत्पिण्ड एक शून्य गर्भ अर्थात् पोला पेशिक यन्त्र है। यह छाती गह्वर के बांये और दहिने फुसफुस के मध्यमें स्थित हैं। इसके ऊपर झिल्लीका एक आवरण है, उसको हृदावरण कहते हैं। हृत्पिण्ड चार कक्षोंमें विभक्त है;—दक्षिण और वामकोष्ठ तथा दक्षिण और वाम उदर है। दक्षिण तरफ जो कोष्ठ है उसके पास और उदरके साथ उसका संयोग है तथा बाम उदरके साथ बाम कोष्ठका संयोग दिखाई देता है; किन्तु बांये तरफके दोनो कक्षसे दहिने तरफ-वाले दोनो कक्षसे प्रत्यक्ष संयोग नहीं है। बांये कक्षके धमनीसे शोणित प्रवाहित हो दक्षिणकक्षमें लौट आता है। शरीरके ऊर्द्ध और अधोदेशके कैशिक-नाली नामक अति छोटी छोटी शिरायोंसे परस्पर मिला हुआ है।

हृत्पिण्ड।

मनुष्य हृत्पिण्डकी लम्बाई प्राय ५ इञ्च, चौड़ाई साढ़े तीन ३॥ इञ्च और मोटाई अढ़ाई २॥ इञ्च है। जवान मनुष्यका हृत्पिण्ड ८से १० औंस भारी है। प्रौढ़ावस्था तक इसका वजन बढ़ताही जाता है तथा बुढ़ौती में कमना शुरू होता है।

आकार और वजन।

हृत्पिण्डके दहिने तरफ के फुसफुस धमनीसे शोणित फुसफुस में प्रवाहित होता है। तथा फिर फुसफुसके कैशिक नाली और शिरा समूहोंसे हृत्पिण्डके बांये तरफ लौट आता है। अतएव इससे स्पष्ट जाना जाता है कि शोणित दो रास्तेसे प्रवाहित होता है। इसमे एक छोटा और दूसरा बड़ा रास्ता है। हृत्पिण्डके दहिने तरफ से फुसफुसमें और वहांसे हृत्पिण्डके बांये तरफका छोटा रास्ता है। दूसरा हृत्पिण्डके बांये तरफ से प्रवाहित हो शोणित सारे शरीरमें

शोणितसञ्चालन।

सञ्चालित हो हृदयके दहिने तरफ लौट आता है—इसको बड़ा रास्ता कहते हैं। पर विशेष विचार कर देखनेसे शोणित सञ्चालन प्रणाली केवल एकही है; कारण समग्र शोणित-प्रवाह एक ही वख्त फुसफुस के भीतर से प्रवाहित होता है।
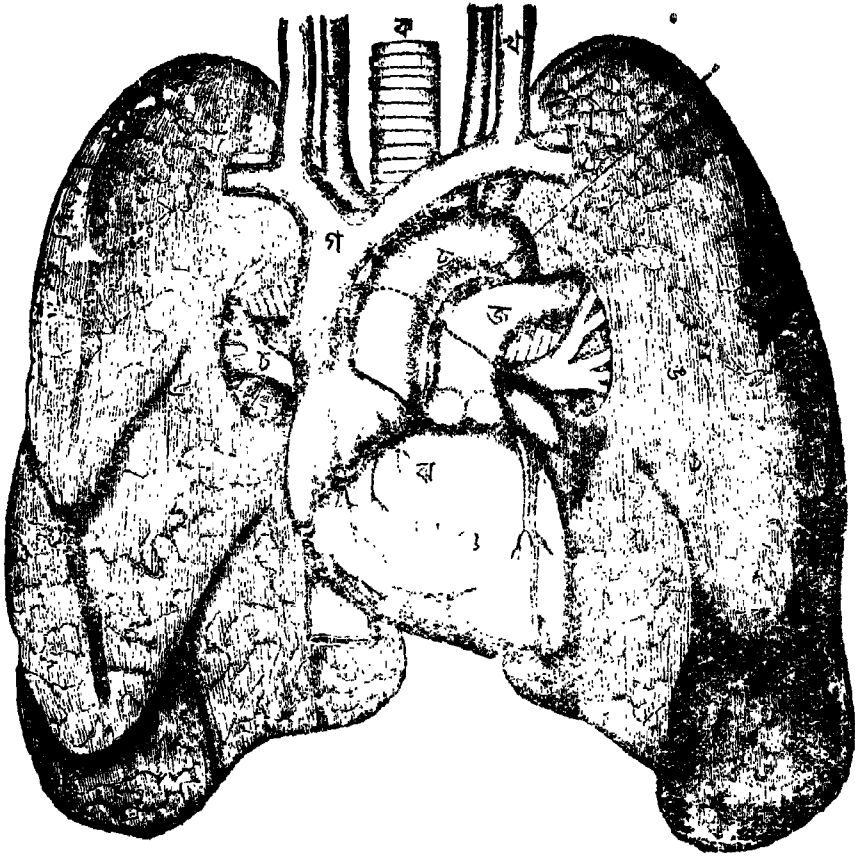
फुसफुस और हृत्पिण्ड।

पहिले कह आए हैं कि शोणित वामकोठमे वाम उदरमें और

बाम उदरसे सारे शरीरमें व्याप्त होता हैं।

हृत्कोष्ठके शोणितका परिमाण।

परीक्षासे जाना गया है कि प्रत्येक हृदयमें प्राय ४से ६ औंस तक शोणित रहता है। हृतकोष्ठमें इससे कम रहता है। हृत्पिण्डके प्रत्येक सङ्कोचन में भी वही परिमाण अर्थात् ४से ६ औंस तक शोणित शरीरमें सञ्चारित होता है। इसी तरह हृतपिण्डके प्रत्येक विस्फारण में उसी परिमाण से शोणित इसके कक्षमें आकर प्रवेश होता है।

इसी तरह हृत्पिण्ड बार बार सङ्कोचित और विस्फारित होता रहता हैं। इसी बार बार विस्फारण और

शोणित संचाप।

सङ्कोचनसे शरीर की काण्डरा, धमनी और शिरा प्रभृति शोणित नाली सब सर्व्वदा शोणितपूर्ण रहती है। इसी परिपूर्ण नालीसे हृत्पिण्ड जोरसे बार बार शोणित सञ्चालन करनेके समय उसकी दिवाल आहत और विस्फारित होती है। इसीको शोणित-सञ्चाप कहते हैं।

धमनी या आर्टरि।

जो सब नलाकार प्रणालीके भीतरसे होतेहुए हृतपिण्डके उदर से शोणित सारे शरीरमें सञ्चालित होता है, उसको धमनी या आर्टरि कहते हैं।

शरीर की प्राय सब धमनी दो प्रधान धमनीकी शाखा प्रशाखा हैं। यह दोमें एकका नाम आदिकाण्डरा

आदि काण्डरा।

हैं, यह हृतपिण्ड के बाम उदरसे उत्पन्न

हुई हैं। इसकी उत्पत्ति स्थानके पाससे ३ शाखा धमनी उत्पन्न हो मस्तक, ग्रीवा और ऊर्द्ध अङ्गोंमें फैली है। तथा इसके बाद आदि कण्डरा छाती और उदर मे प्रवेश हुई है। उदरसे उसकी दो शाखा उत्पन्न हो दोनो सक्थि तक फैली है। इसी दो धमनीसे दोनो सकथिका पोषण होता है।

दूसरी सबसे बड़ी धमनीका नाम फुसफुस धमनी है। यह हृत्पिण्डके दक्षिण उदरसे उत्पन्न हुई है। सिर्फ इसी एक धमनी से शैरिक रक्त प्रवाहित होता है। यह धमनी प्राय २ इञ्च लम्बी है। इससे शोणित हृत्पिण्डके दहिने तरफसे फुसफुस में जाता हैं। यह दक्षिण हृदय के एक विशेष अंशसे उत्पन्न हो ऊर्द्धगामी कण्डराके सामनेसे होते हुए उपर और पीछेकी तरफ गई है; और कण्डराके नीचे दो भागमें विभक्त हुई है। यही दो शाखाका नाम वाम और दक्षिण फुसफुस धमनी है।

फुसफुस धमनी।

बांये तरफ की फुसफुस धमनी दहिने तरफ से छोटी है। यह नीचेवाली कण्डराको अतिक्रम कर बांये फुसफुस के जड़तक गई है; फिर दो प्रशाखामें विभक्त हो फुसफुस के दो अंशोंमें छितर गई है।

वाम।

दहिनी फुसफुस धमनी बांये धमनीसे अधिक स्थूल और बड़ी है। यह ऊर्द्धगामी कण्डरा और महाशिरा के पीछे दक्षिण फुसफुस के जड़में जाकर दो प्रशाखा में विभक्त हुई है। यह दो प्रशाखामें एक नीचे और दूसरी उपर को गई है। नीचेवाली शाखा फुसफुसके निम्न प्रान्त में और ऊर्द्ध शाखा उसके बीचमें फैली हुई है।

दक्षिण।

कण्डरा सर्व्वदा साफ खूनसे पूर्ण रहता है और यही रक्त सारे

धमनीका मिलन।

शरीरमें सञ्चालित हो स्वास्थ्यको अव्याहत रखता है। धमनिओंका मूल अलग होने पर भी परस्पर मिला हुआ है। इसका यही मिलन विशेष मङ्गल कर है; कारण किसी पीड़ाके सबब एक धमनी काटनेसे अथवा कोई कारण से वह बन्द हो जानेसे उसी मिलन पथमें शोणित स्रोत प्रवाहित होता है। इसको औपान्तिक सञ्चालन कहते हैं।

धमनी सब प्राय शरीरके गभीर निरापद अंशमें रहती है।

संस्थिति।

इन सब स्थानोंमें एकाएकी दाव या चोट नही लगता। इन सबकी गति प्राय: सीधी और सर्व्वदा परस्पर मिली हुई है। प्राय सब धमनी साहानुभूतिक स्नायुसे वेष्टित है। यह सब स्नायु जालकी तरह धमनी से लिपटी हुई है। अति सूक्ष्म धमनी और कैशिक नाली भी इसी तरह स्नायुजाल से वेष्टित है।

आदि काण्डरा।

आदि-काण्डरा ही वैधानिक धमनी की जड़ हैं; इसलिये इस को मूल धमनी भी कहते हैं। इसका कुछ अंश छातीके गह्वर में और कुछ उदर गह्वर में है।

उत्पत्ति और भाग।

यह हृत्पिण्डके बांये उदर से उत्पन्न हो बांये फुसफुस तक फैली है। फिर मूल धमनी कशेरुका—स्तम्भके सामने निम्न-गामी हो उदर गह्वर तक नीचे उतर गई है। और चौथी कमर की कशेरुका के सामने दो भागमें विभक्त हुई है।

आदि काण्डराकी गोलाई।—यह तीन अंशमें विभक्त है। यह

तीन अंशके गति अनुसार उसका नामकरण हुआ है, यथा ऊर्द्ध-गामी, अनुप्रस्थ और निम्नगामी, गोलार्द्धके न्युज अंशमें बांये फुस-फुसका मूल और फुसफुस धमनी में शाखा भेद आदि दिखाई देता है।

ऊर्द्धगामी अंश।—प्रायः दो इञ्च दीर्घ है। वक्षास्थिके मध्यभाग के पीछेके अंशमें तृतीय पञ्जर वक्षास्थि के बराबर उठकर उपर की तरफ तीर्य्यक भावसे दक्षिण की तरफ गई है। और द्वितीय दक्षिण पञ्जर उपास्थिके ऊर्द्धप्रान्तके वक्षास्थिके पास खतम हुई है। शाखा दक्षिण और वाम हृदय-धमनी हृत्पिण्ड में व्याप्त है।

अनुप्रस्थ अंश।—द्वितीय दक्षिण पञ्जर उपास्थिके ऊर्द्धप्रान्त से आरम्भ हो फुसफुस मूलके उपर होते हुए पीछेकी तरफ कोर भावसे पीठकी कशेरुका तक गई है। इसकी दो शाखा है। प्रथम शाखाका कोई विशेष नाम नहो है; इसलिये इसको अनामिका कहते हैं। अनामिका १॥ डेढ़से २ इञ्च लम्बी है। यह अनुप्रस्थ अंशके आरम्भ स्थानसे उठी है और दक्षिण तरफ को गई है। इसको दो प्रशाखा है।

निम्नगामी अंश।—चतुर्थसे पञ्चम पीठकी कशेरुका तक फैली है।

इसके पहिले प्रमाणित हो चुका है कि, हृत्पिण्डसे रस बाहर हो धमनीके रास्तेसे सर्व्वांगमें फिरता है, और शिराके रास्तेसे हृत्पिडमें लौट आता है। यह शोणितका सञ्चालन हुआ। समस्त शरीर में भ्रमण करनेसे रक्त दुषित हो जाता है, तथा दुषित अवस्थाही में वृहत् शिरासे हृत्पिण्डके दक्षिण कोष्ठमें उपस्थित होता है। यहांसे दक्षिण हृदुदरमें आता है। तथा दक्षिण हृदुदरसे फुस-

शोणित शोधन।

फुस धमनी द्वारा फुसफुस में प्रवेश करता है। यहां अम्लजान वाष्प ग्रहण कर दूषित रक्तको साफ कर निर्दोष करता है। फुसफुसका शुद्ध शोणित फुसफुस के शिरासे हृत्पिण्डके वाम कोष्ठमें आता है। वामकोष्ठ से वाम उदर में और वहांसे आदि काण्डरा द्वारा सर्वत्र शरीर में सञ्चालित होता है। यह बृहत् धमनी व क्षुद्र धमनी समूहोंमे, धमनीसे छोटे छोटे केशिक नाली में केशिकनाली से शिरा समूहोंमें और वही सब शिरासे दूषित अवस्था में शोणित फिर हृत्पिण्ड में लौट आता है। जन्मसे मृत्युतक हृत्पिंडके सञ्चालन और विस्फारण से शोणित का यह चलाचल होता रहता है।

कपाट।

यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि रक्त हृत्पिंड के दक्षिण कोष्ठ से वाम कोष्ठको में और धमनी से शिराओं में प्रवेश करता है इसका क्या कारण? क्यों वह दक्षिण हृदुदर से वाम कोष्ठमें और शिरासे धमनी में जाता है? इसका विशेष कारण है। हृत्पिंड का कोष्ठ और उदरके मध्यभागमें एक एक कर दरवाजा है तथा इस दरवाजे में एक एक जोड़ा पेशीका किवाड़ है। यह किवाड़ इस ढङ्गसे बना है कि हृत्कोष्ठसे हृदुदर में रक्त जातेवक्त खुल जाता है तथा तुरन्त ही ऐसा बंद हो जाता है कि हृदुदर से शोणित किसी तरह हृत्कोष्ठ में नही आसकता। इसी तरह हृदुदरमें भी किवाड़ रहनेसे रक्त हृदुदर से फुसफुस धमनी में जातेही किवाड़ बन्द हो जाता है, तब रक्त किसी तरह धमनी से फुसफुस में नही आसकता है। प्राय हृत्कोष्ठ, वाम हृदुदर तथा वाम हृदुदर और आदि कांडरा में इसी तरहका किवाड़ दिखाई देता है। शिरा समूहोंमे किवाड़ है। यह किवाड़ ऐसे कौशलसे

बताया गया है कि रक्तशिरासे हृत्पिंड की तरफ आसके किन्तु हृत्पिण्ड से शिरामें किसी तरह न आसके।

कैशिक रक्तनाड़ी और शिरासमूह।

पहिले कह आए हैं कि धमनीके छोटे छोटे शाखायसे कैशिक नाली द्वारा शोणित शिरा समूहों में प्रवाहित होता है। केवल शिश्नकी रक्तनाली और जरायुका परिसव या फुसके सिवाय प्राय सर्व्वत्र ही यह वैचित्र्य दिखाई देता है। कहां किस अंशमें धमनीका शेष और कहां छोटी छोटी शिरायें आरम्भ हुई है, यह ठीक नहीं जाना जाता है। कारण यह शोणित नालीका व्यास सर्व्वत्र समान नहीं है; किन्तु कैशिक नालीमें ऐसा नहीं दिखाई देता,—इसमें आरम्भसे लेकर अवसान तक का व्यास एक समान है। यह एक इञ्ची का ५००० वा भाग होगा।

कैशिक नाली।

शरीरके प्राय सब अंश में कैशिक रक्तनाली दिखाई देती है, पर जितने यन्त्र अधिक सक्रिय है उनमे अधिक और जितने यन्त्र अल्प क्रियाविशिष्ट है उसमें कम देखनेमें आती है।

शिरायें सब कैशिक नालीसे उत्पन्न हुई हैं। इसका आकार पहिले बहुत पतला होता है पर कैशिक नालीसे पतला नही है। कैशिक नाली इससे भी पतली होती है। शिरायोंकी जड़ संकीर्ण होनेपर भी मूल शिराद्वय और हृदयके शिरायोंकी तरफ जैसे जैसे अग्रसर हुई है आकार भी उतनाही बढ़ता गया है।

शिरायें सब।

पहिले कह चुके हैं कि, हृत्पिण्डके कोटरकी तरह शिरायोंमें भी किवाड़ है; इसके रहनेसे रक्त विपरीत तरफ नहीं जासकता। निम्नशाखाकी शिरा समूहोंमें कपाटकी संख्या सबसे अधिक है। कपाट का आकार अर्द्धचन्द्राकार है। इसका न्युब्ज अंश शोणितस्रोत के प्रतकूलमें हैं। कई शिरायोंमें कपाट नहीं हैं।

कपाट।

श्वासक्रिया।

पूर्व्व अध्यायमें शोणित सञ्चालन-प्रणाली सम्बन्धीय समस्त प्रयोजनीय बातें कह चुके हैं। यहां शोणित क्या हैं, किस उपायसे कौन कौन यन्त्र या कौन कौन स्थानमें उत्पन्न होता है, तथा सारे शरीरमें प्रवाहित होते होते क्योंकर दूषित होता है, तथा वह दूषित रक्त फुसफुसमें आकर कैसे विशोधित होता है, इस विषय की आलोचना की जाती है। अब यह देखना चाहिये कि श्वासकार्य्य किस तरह होता है, श्वासकार्य्यका प्रधान यन्त्र फुसफुस कैसे बनाया गया है, उक्त कार्य्यमें यह कैसे मदद करता है, और कौन उपाय से फुसफुस शोणितको साफ करता है।

हृत्पिंड छेदित।
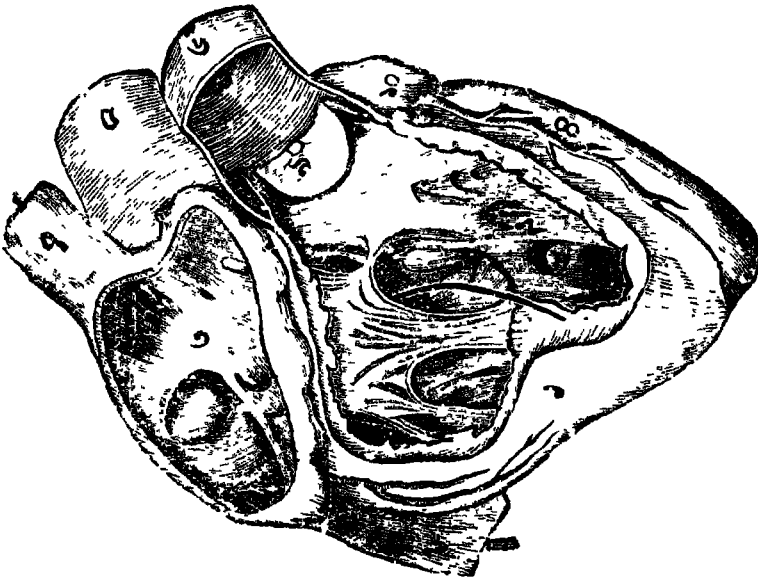
हृत्पिण्ड छेदित।

दक्षिण हृत्कोष्ठ और हृदुदर उन्मुक्त और अभ्यन्तर भाग प्रकाशकर दक्षिण और सम्मुख प्राचीरका कियदंश अन्तरित है।

१, दक्षिण हृदुदरका बाहरी अंश। २, उसका अभ्यन्तर। ३, दक्षिण हृत्कोष्ठका अभ्यन्तर। ४, वाम हृदुदरका बहिरंश। ५, आदि काण्डराका मूल। ६ फुसफुस धमनी। ७, प्रधान मूल शिरा। ८, अप्रधान मूल शिरा। ९, फुसफुस धमनीका अर्द्ध चन्द्राकार कपाट। १० वाम हृत्कोष्ठका एकांश।

दोनो फुसफुस।

दोनो फुसफुस स्पञ्जकी तरह सच्छिद्र तथा वक्षःगह्वर को ढाके हुए है। दोनाके मध्यमें हृत्पिण्ड और हरेक फुसफुस एक एक स्वतंत्र गह्वर में स्थित और श्लैष्मिक झिल्लामें आच्छादित है। इन झिल्लोंको फुसफुसावरण कहते हैं। प्रत्येक फुसफुस देखनेमें शुंडाकार है।

वजन और ह्रदन।

बांये फुसफुस को अपेक्षा दहिने फुसफुस को लम्बाई कम है; किन्तु यह कुछ चोड़ा तथा वजनमें भारो है। फुसफुसका विधानोपादान स्पंजको तरह शिथिल है। दोनो फुसफुस का वजन साधारणत: २॥ ढाई पौंडसे कुछ वेशो है। औरतोंका फुसफुस पुरुषको अपेक्षा वजनमें चौथाई हिस्सा कम होता है।

श्वासन ली।

मुख गह्वरके भीतर पोछेको तरफ दो छिद्र है, उसमें एकमें से खाया हुआ अन्न पाकस्थालीमें जाता है। इसको अन्नवहानाली कहते हैं और दूसरे से वायु फुसफुसमें प्रवेश करता है इसको श्वासनाली कहते हैं। इस नालोके मुखपर एक आच्छादन है. भोजनके वख्त यह श्वास-नालीका मुह बन्दकर रखता है। इसीलिये खाया हुआ द्रव्य उसमें

नहो जाकर अन्ननहा नालीमें जाता है। नासारन्ध्र भी इस छिद्रके पास तक फैला है इसीलिये मुखरन्ध्र और नासारन्ध्र दोनो छिद्रोंसे कोई वस्तु श्वासनाली में नहो जाती है।

श्वासनालीका अग्रभाग और सब स्थानोंकी अपेक्षा बड़ा है। इसमें पांच उपास्थि है, यहींसे कण्ठस्वर उत्पन्न होता है। मुखके पीछेसे आरम्भ हो गरदनके भीतर से होते हुए श्वासनाली वक्षगह्वर में प्रविष्ट हुई है। गलेके सामने हाथ लगानेसे श्वासनाली का अनुभव होता है। किसी पीड़ाके सबब श्वासरोध होनेसे शल्य चिकित्सक गलेके श्वासनालीमें छेद कर देते है। तथा इस छेदमे वायु प्रविष्ट हो श्वासकार्य्य सम्पन्न होता है। उपास्थि निर्म्मित अग्रभाग कण्ठ और तत्परवर्त्ती अंशको गलनाली कहते हैं। गलनाली ४से ४॥ इंची लम्बी। यह स्वाधीन पेशी और १६से २० तक उपास्थिसे बनी है। यह उपास्थि ठीक अङ्गुठी की तरह हैं। गलनाली छातीमें जाकर दो भागोंमें विभक्त हो दोनो फुसफुसमें प्रविष्ट हुई है। इसको वायुनाली भी कह सकते हैं। यह वायुनाली पहिले दो भाग, फिर चार भाग तथा क्रमशः आठ भाग इसी तरह अगन्य छोटी छोटी शाखा प्रशाखामें विभक्त हो फुसफुसके सर्व्वत्र छितराई हुई हैं। यह वायुनालीके स्थूल अंश सब उपास्थिसे बने हुए है, यह क्रमशः जैसे पतली होता गयी है वैसही इसके गठनमें पेशीने आकर उपास्थिका स्थान अधिकार कियाहै। गलनालीकी परिधि प्राय एक इंच; किन्तु यह विभक्त हो वायुनाली आकार से क्रमशः छोटेसे छोटे आकारमें जब फुसफुसमें विस्तृत हुई है तब इसका परिधि एक इंचके चालीस भागका एक भाग हुआ है।

लम्बाई और गठन।

फुसफुस और हृत्पिंड।

शिरा और नाली।

पहिले कह आए हैं, कि फुसफुसमें असंख्य वायुकोष है तथा उसके बीचवाले स्थानोंमें शिरा, कैशिक नाली, स्नायु और स्थितिस्थापक तन्तु है। दो वायुकोषके बीचमें कैशिक धमनी भी दिखाई देती है। कैशिकनाली के भीतर शोणित के दोनों तरफ वायु भरा हुआ वायुकोष है।

बाहरी वायुमें अम्लजान नामक जो वायव पदार्थ है, वही हम लोगोंका जीवन स्वरूप है, कारण इसी अम्लजान से शोणितका दोष दूरीकृत होता है। अम्लजान प्रश्वास द्वारा फुसफुस में जाकर उसके असंख्य वायुकोषों में प्रविष्ट हो खूनमें मिलजाता है। खूनको लाल कणिका अम्लजान शोषण करलेता है, फिर खून शरीरमें प्रवाहित हो दूषित होता है, तब उसमें द्वयम्ल अङ्गार वाष्पका परिमाण अधिक मिल जाता है। यह दूषित रक्त फुसफुस में फिर लौट आनेसे उसमेंका द्वयम्ल-अङ्गार वाष्पका परिमाण अधिक होनेसे वह निश्वास से निकल जाता है, इसलिये रक्तमें अम्लजानका भाग अधिक रहता है।

शोणित शोधन।

सचराचर युवावस्था में एक मिनिट में १४ से १८ दफे श्वास चलती है। प्रत्येक निश्वास में हम लोग प्राय २० घन इञ्चो वायु ग्रहण करते हैं; अतएव सारे दिन रात अर्थात् २४ घण्टेमें ५८६००० घन इञ्च वायु फुसफुस में प्रविष्ट होता है और वहांसे निकलता है; प्रत्येक घण्टेमे १५८४ इञ्च वायु ग्रहण और १३४६ घन इञ्च द्वयम्ल-अङ्गार वायुका परित्याग किया जाता है। युवाकी अपेक्षा बालक अधिक बार श्वास ग्रहण करता है। परिश्रम और आहारके बाद श्वास-कार्य्य किञ्चित तेज हो जाता है।

श्वाससंख्या।

खाद्य और परिपाक ।

जीवन धारण करनेके लिये किसी तरहका कुछ खाद्य अवश्य चाहिये। पहिले कह आए हैं कि जीवदेहमें प्रतिनियतही शक्तिका क्षय होता है। कोई काम न कर केवल आलसी की तरह निश्चिन्त मनसे रातदिन सोकर बितानेवालेकी भी शरीरके भीतरी शक्तिका क्षय होता रहता है। यही क्षय हुई शक्तिका अभाव पूरा करनेके लिये आहार की जरूरत पड़ती है।

खाद्य क्यों ? क्षुधा क्या ?

भोजनका प्रधान उद्देश्य—शरीर पोषण और शरीर पोषणका अर्थ—शरीर की क्षय हुई शक्तिका पूरण कर नई शक्तिका साधन है। अतएव शरीर पोषण के निमित्त क्षुधा चाहिये, और क्षुधाकी निवृत्तिके लिये पुष्टिकर खाद्य आवश्यक है। पुष्टिकर खाद्यके अभाव से पाकाशय में प्रबल वेगसे शोणित सञ्चारित होता रहता है, इससे उसकी गांठे फूल उठती हैं। साहानुभूतिक स्नायुमंडलकी ऐसी चेष्टासे मनमें जो उद्वेग होता है वही क्षुधा है। पाकस्थाली में खाद्यद्रव्य प्रविष्ट होतेही उसके ग्रन्थियोंमेंसे एक प्रकारका पाचक रस निकलता रहता है। इसी रसके सहारे भुक्तद्रव्य जीर्ण होता है।

क्षुधा क्यों ।

सभी जानते हैं कि पाकाशय में क्षुधा और कण्ठनाली में तृष्णा का उद्रेक होता है। पहिले कह आए हैं कि हम लोगोंके शोणितमें चार प्रधान

तृष्णा क्यों ।

उपादान है जिससे पानीका परिमाण सबसे अधिक है। परिश्रमादि से पानीका परिमाण कम होता है तब उस कमी को पूरा करनेके लिये मनमें जो उद्वेग होता है, वही तृष्णा है। शरीर रक्षाके लिये खाद्य जैसा आवश्यक है पानी भी वैसाही प्रयोजनीय है। इसीलिये हिन्दूशास्त्रमे पानीको जीवन कहा है।

क्षुधा और पाकाशय।

पीड़ा किम्वा और किसी कारणसे शरीरका बल अधिक कम हो जानेसे आहार की उत्कट इच्छा होती है; इसीलिये बहुमूत्र रोगीको क्षुधा अकसर प्रबल रहती है। क्षुधाके वक्त पाकाशय खाद्यद्रव्यसे पूर्ण होते ही क्षुधाकी शान्ति होती है। इससे स्पष्ट जाना जाता है कि पाकाशयके साथ क्षुधाका अति घनिष्ट सम्बन्ध है; किन्तु हरवक्त यह सम्बन्ध नहीं रहता कारण पाकाशय में खाद्यद्रव्य रहनेपर भी बहुतोंको अकसर क्षुधा लगती है। भुक्तद्रव्य जीर्ण हो शोषित न होनेतक अथवा कचा रहनेपर भी पाकस्थली मे रहता है। सुतरां इससे शरीरके शक्तिका पूरण नहीं होता इसी तरह पाकस्थली पूर्ण रहनेपर भी कई रोगोंमें क्षुधा लगते देखा गया है।

परिपाक।

अन्न मुखमें जातेही चहुधा उसको चर्व्वन करता है। इस विषय में जीभही प्रधान सहायक है। अन्न दांत से पिस जानेपर लारसे पिंडाकार होता है, फिर वह पिंडगलेकी नालीसे पाकस्थली मे जाता है तथा यहां पाचक रसके सहायतासे परिपक्व होता है, तिसके बाद अंतमें प्रवेश होता है। यहां पित्त, क्लोमरस और आंत्रिक रस उसके साथ मिलकर परिपाक होता है। यहां यह कहना जरूरी है कि पाकस्थली में जो अन्न परिपाक होता है वह प्राय शरीरके सब

अंशोमें शोषित हो शक्ति वृद्धि करता है। बाकी अन्न अंत्रमें शोषित हो जाता है। इसके बाद जो बाकी बचता है वह पूरीषहो मरलांत्र से शरीरके बाहर निकलता है। ऊपर जो कहा इससे स्पष्ट प्रतीत होगा कि सब समेत पांच रसोंसे भुक्त अन्नका परिपाक होता है। यथा लार, पाचक रस, पित्त, क्लोमरस और आंत्रिक रस। यही पांच रसके अभाव, आधिक्य अथवा और कोई विक्रिया होनेसे परिपाक में बाधा होती है

लाला रस।

लार निःसारक ग्रन्थियोंसे लार निकलता है। यह सब ग्रन्थि नानाप्रकार की है। तथा ओष्ठाधर, गंड, कोमलतालु, और जिह्वामूल की श्लैष्मिक झिल्लीके निम्नभाग में उक्त ग्रन्थि सब रहती है। दो स्नायु शाखा, यह सब ग्रन्थियोंपर फैली है इसी दो स्नायुसे इन सबका कार्य्य उत्तेजित होता है; इसीलिये कोई खट्टा पदार्थ देखनेसे मुंहसे लार निकलती है।

पाचक रस।

पाकस्थलीके भीतरी भागसे पाचक रस निकलता है। भुक्त अन्न पाकाशय में जातेही यह रस बाहर निकलता है। यह रस पानीकी तरह पतला, अर्द्ध स्वच्छ, गन्धहीन, और अम्लस्वाद विशिष्ट होता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व १००२ से १०११ तक है। सन्दर्शन से स्थिरीकृत हुआ है कि सारे दिनरात अर्थात् २४ घण्टेमें एक स्वस्थ युवा पुरुषको १०से २० पांइट तक पाचक रस निकलता है। इसमें खट्टापन रहनेके सबब इसका स्वाद खट्टा होता है।

पहिले जो पांच प्रकारके पाचक रसके बारमें कह आए हैं, उसमें अधिकांशके निकलने में और भुक्तद्रव्यके परिपाक कार्य्यमें निम्नलिखित पांच यंत्रविशेष से सहायता मिलती है; यथा—

पाकाशय, क्षुद्रान्त्र, बृहदन्त्र, क्लोमग्रन्थि और यकृत्। इन सबका ब्यौरा क्रमशः दिया जाता है।

पाकस्थाली।

पाकस्थाली अन्नवहा नाडियोंमें सबसे अधिक प्रशस्त है। यह उदर गह्वर में संस्थित है। इसका आकार सब जगह एकसा नहीं है। जो व्यक्ति जितना अधिक आहार करता है पाकस्थाली भी उसकी उतनी ही बड़ी होती है, पर मोटामोटा परिमाण करनेसे पाकस्थाली वायुसे विस्फारित करना पड़ता है। वायुसे विस्फारित पाकस्थाली की लम्बाई १०।११ इञ्च, गभीरता प्राय ४ इञ्च, और इसका वजन ४॥ औंस होता है। इसका आकार ठीक शूकरकी तरह है। बाया अंश स्फीत और दक्षिण अंश क्षुद्र और संकुचित, तथा सम्मुख प्रदेश न्युब्ज और ऊर्ध्वाभिमुख है। यह यकृत् का निम्नप्रदेश और उदर-प्राचीरके साथ मिला हुआ है। इसका पश्चात् प्रदेश निम्नाभिमुख है। यह प्रदेश अनुप्रस्थ बृहदन्त्रके ऊर्ध्व और सम्मुख में अवस्थित है। इसके पीछे क्लोमग्रंथि, वामवृक्क या मूत्रग्रन्थि और प्लीहा आदि अंश तथा मेरुदण्ड और संमुखस्थ बृहत् रक्तनाली सब संस्थित है।

स्थिति, भार और प्रसार।
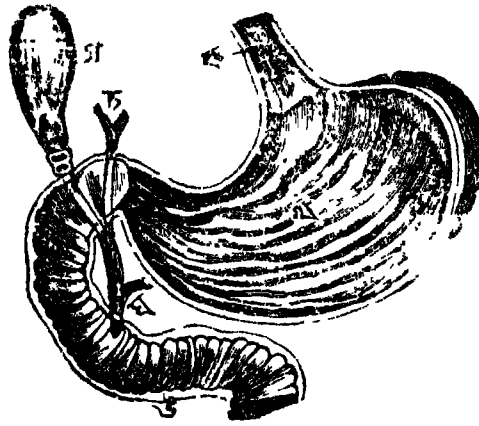
पाकस्थाली।

पहिले कह चुके हैं, कि पाकाशयसे पाचक रस निकलता है।

क्रिया। पाकस्थाली जब शून्य अथवा निष्क्रिय रहती है, तब उसमे से रस नहीं निकलता तब केवल कफसे इसके भीतर की प्राचीर आवृत रहती है। पर इसमें अन्न अथवा और कोई द्रव्य प्रविष्ठ होतेही पाकस्थली की शोणित-नाली वेगसे चलने लगती है तथा इस प्रचुर शोणित संस्पर्शसे कफकी झिल्ली लाल होजाती है। पाकस्थाली की ग्रन्थि सब साथही बहुत वेगसे रस देने लगती है। पाचक रस बाहर निकलतेही पाकस्थाली हिलने लगती है, इसी तरह ३।४ घण्टेमें भुक्त अन्न हजम होता है।

अन्त्रमण्डल।

अन्त्रमण्डल क्षुद्र और वृहत् भेदसे दो प्रकारका है। यह दो भागों

प्रकार। के भिन्न भिन्न दो अंश हैं यह केवल व्यास की विभिन्नता से दो भागमें विभक्त है।

जहां क्षुद्र अन्त्रका शेष और वृहदंत्रका आरम्भ हुआ है, वहां एक किवाड़ है। यह किवाड़ इस ढङ्गसे बना है कि क्षुद्र अंत्रसे अन्न विपाक का अवशेष वृहदंत्र में जा सके पर वृहदंत्रसे क्षुद्रांत्र में न आसके।

क्षुद्रांत्र। वर्णन करनेके सुबोतेके लिये यह तीन अंशोंमें विभक्त है। पूरी उमरवाले व्यक्तिका क्षुद्रांत्र २० फीट लम्बा होता है।

वृहदंत्र। पूरी उमरवाले व्यक्तिका वृहदंत्र ४से ६ फीट लम्बा रहता है। वर्णनके सुबोतेके लिये इसेभी तीन अंशोंमें विभक्त किया है;—यथा ऊर्द्धगामी, अनुप्रस्थ और निम्नगामी। सरलांत्र अपने निम्नांश में विस्फारित हो फिर संकीर्ण भाव धारण करता है तथा फिर विस्फारित हो मलद्वार में पर्य्यवसित हुआ है।

अन्त्रमें परिपाक।

दोनो प्रकारके अंत्रोंमें कई ग्रन्थि है। पहिले जिस आंत्रिक रसकी बात कह आए हैं, वह इसी ग्रन्थि-योंसे निकलता है। पाकस्थाली में परि-पाक और शोषणके बाद जो भुक्तद्रव्य बचता है वही अंत्रमूल में जाता है। वहां क्लोमग्रन्थि और यकृत्का रस तथा क्षुद्रांत्रके रससे परिपाक होता रहता है। घृत और चर्व्वी आदिका अधिकांश अंत्रमूल में परिपाक होता हैं।

स्थिति और विस्तार।

क्लोमग्रन्थि। क्लोमयंत्र देखनेमें एक गांठकी तरह है यह अंत्र-मूल की कोर अंशमें अवस्थित है। इसका एक मुह नलाकार अंत्रमूलके साथ मिला हुआ है। इसी नलसे इसका रस अंत्रके उक्त अंशमें जाता है। यह पाकाशयके पीछे और वृहत् रक्तनालियोंके सामने मेरुदण्डके उपर न्यस्त है।
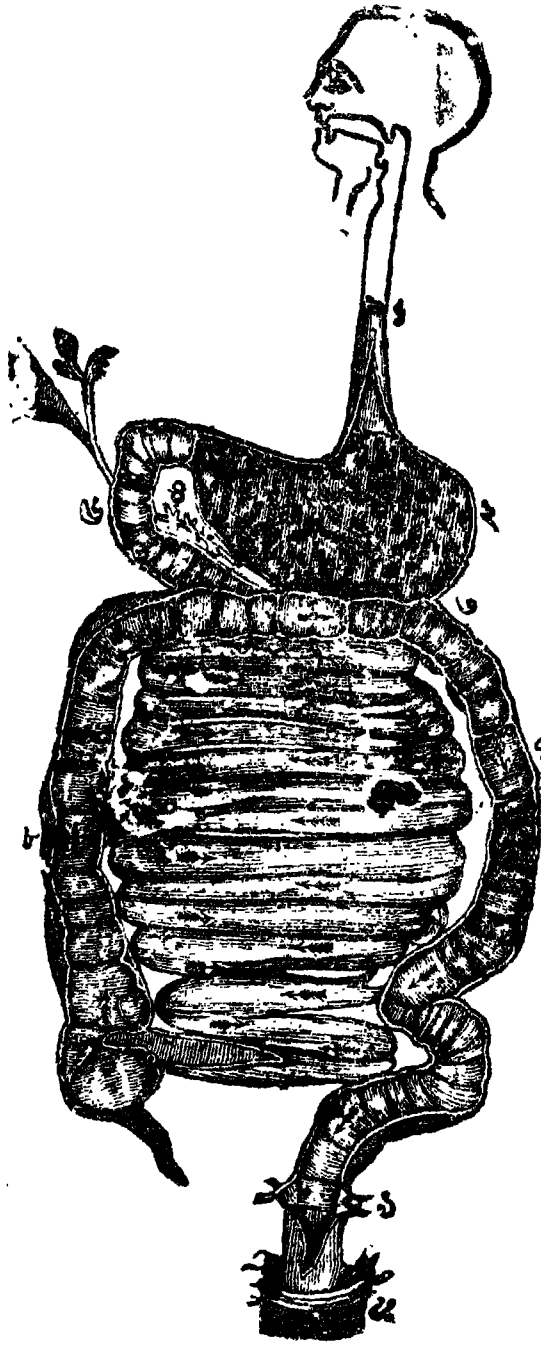
पाकस्थली और अन्नवहा नाली।

इसकी लम्बाई ६।८ इञ्च, गभीरता १से १॥ इञ्च, और स्थूलता १।२ से ३।४ इञ्च है तथा वजन २से ३॥ औंस। क्लोमयन्त्रसे जो रस निकलता है, अन्न परिपाक में उसकी विशेष जरूरत है। तैल घी और चर्व्वी आदि इसी रसके सहारेसे हजम होता है।
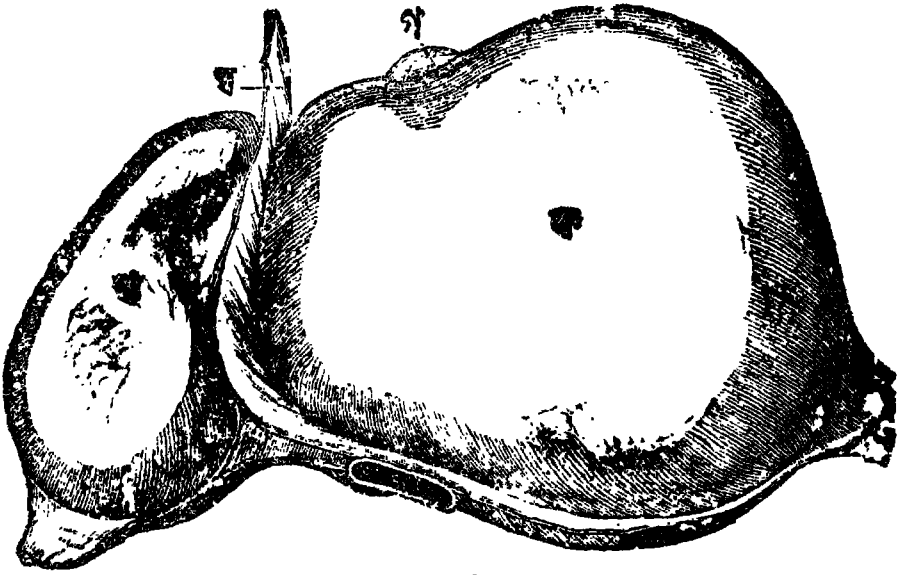
यकृत् का ऊर्द्ध प्रदेश।

क। यकृत का दक्षिण खण्ड। ख। वामखण्ड। ग। पित्त-नाली का मुख। घ। धमनी, ङ। रक्तनाड़ी।

यकृत एक ग्रन्थिमय यन्त्र है। यह ग्रन्थिमय और औदरीय यन्त्रोंमें सबसे बड़ा है तथा यह दक्षिण उदर का अधिकांश ढांके हुए है। इसका ऊर्द्ध प्रदेश न्युब्जाकार; निम्नप्रदेश में पाकाशय, अनुप्रस्थ में अंत्रमूल, अन्त्रांश और दक्षिण मूत्रपिण्डके ऊपर स्थित है। यकृत् सचराचर १०।१२ इञ्च प्रशस्त होता है। इसका जो अंश सबसे स्थूल है उसका परिमाण २॥ से ३। इञ्च और वजन ३।४ पाउण्ड होगा। यकृत् दो असम खण्डों में विभक्त है। इन दो अंशोंको वाम और

स्थिति और वजन।

दक्षिण खण्ड कहते हैं ये दोनो खण्ड परस्पर अविच्छिन्न भावसे संबद्ध है। इसके सामने और पीछे एक छेद है, ऊपर एक और बन्धनीके नीचे अनुलम्ब विदार है। पित्तको निकालनाही यकृत का प्रधान कार्य्य है इससे पित्तको परिपाक कार्य्यमें सहायता मिलती है।

प्रकृति।

पित्त। रक्ताभपीत या पीत अथवा सबुज रङ्गके पतले पदार्थ को कहते हैं। इसका स्वाद उत्कट तिक्त; गन्धहीन, इसका आपेक्षिक गुरुत्व १०२०, क्षारगुणविशिष्ट तथा हवा लगनेसे हरा रङ्ग होता है। मांसाहारी जीवका पित्त पीतवर्ण और शाकभोजी का पित्त हरिद्वर्ण होता है। यह एक यौगिक पदार्थ है। पित्त यकृत् से उत्पन्न हो अन्त्रमें जाता है; अथवा जब परिपाक कार्य्य बन्द रहता है तब वहांसे पित्तकोषमें आता है यहा क्रमश: संचित होता रहता है और जरूरत होनेपर वहांसे निकल जाता है।

पित्तकोष।

पित्तकोष ठीक अमरूद फलके तरह है यह यकृत् के नीचे लगा हुआ तथा उपरवृत्ति को भरे हुए रहता है। यह सामने और पीछे तीर्य्यकभावसे स्थित तथा इसका प्रशस्त अंश सामने, नीचे और दहिने तरफ है तथा इसका सङ्कीर्ण अंश अर्थात् ग्रीवा नीचेवाली दूसरी नाली में ग्रथित हुई है। इसकी लम्बाई ३।४ इंच; इसका प्रशस्त अंश प्राय १॥ इञ्च प्रशस्त है। पित्तकोष में प्राय: २॥ औंस पित्त रहता है।

पित्तका परिमाण।

यकृत् से दिनरात में कितना पित्त निकलता है वह नीचे लिखे अनुसार स्थिर हुआ है। यकृत् का वजन जितना रहता है २४ घण्टे में उतना ही पित्त निकलता है। पित्त बराबर निकलता रहता है। उपवास

में बन्द रहता है और आहार के बाद परिमाण अधिक हो जाता है। पित्तकोष में पथरी पैदा होनेसे अथवा और कोई कारण से पित्त अंत्रसे न निकले तो यह खूनको सुखाता है पित्तमिला शोणित शरीरमें फैलनेसे पांड़ुरोग होते देखा गया है।

क्रिया।

पित्तका प्रधान कार्य्य चर्व्वीको परिपाक करना है, किस उपायसे यह कार्य्य सम्पन्न होता है इस विषय में बहुत कुछ कह आये हैं। यहां संक्षेप में यही कहा जाता है कि पित्त भुक्तद्रव्यके साथ मिली हुई चर्व्वी आदि पदार्थ को गलाकर छोटा छोटा कण करता है। इससे वह पदार्थ बहुत जल्दी शरीर मे शोषित हो जाता है। पाकाशयके पाचक रसकी तरह इसमें भी पचननिवारणी शक्ति है; उस शक्तिके प्रभावसे यंत्रस्थ भुक्तद्रव्य समूह नही सड़ता। इसके सिवाय पित्तमें विरेचन शक्तिभी है।

प्लीहा।

वजन और आकार।

प्लीहा एक वृहत् यंत्र है। यह उदर गह्वर के वाम पश्चात् अंश में अवस्थित है। उसके दहिने पाकाशय का प्रशस्त अंश है। साधारणत: इसका आकार पिष्टकाकार रक्त घोर बैगनी आकार हरवख्त एकसा नही रहता, इसके भीतर खूनके कमी बेशीसे आकार भी घटता बढ़ता रहता है। साधारणत: इसकी लम्बाई ५ इंच, चौड़ाई ३।२ इंच और मोटाई ११॥ इंच और वजन ६।७ औंस होगा। बुढ़ौती में इसका आकार और वजन कम हो जाता है तथा सविराम और

कम्पज्वर में अधिक बढ़ता है यहांतक की कभी कभी कई पौंडतक बढ़जाता है।

सचराचर मनुष्यको एक प्लीहा रहती है किन्तु किसी २ वख़्त एक से अधिक अर्थात् छोटी छोटी कई प्लीहा दिखाई देती है। यह छोटी छोटी प्लीहा मूल प्लीहाके नीचेकी तरफ लगी हुई रहती है। इसका आकार मटर से लेकर अखरोट की तरह तक होता है।

संख्या।

प्लीहाका प्रकृत कार्य्य अभीतक स्थिर नहीं हुआ है। पर विशेष सन्दर्शन से स्थिर हुआ है कि भुक्त अन्नका परिपाक जैसे जैसे शेष होता रहता है प्लीहाका आकार भी उसी हिसाब से बढ़ता रहता है। थोड़ी देरके बाद फिर घटने लगता है। इसलिये बहुतेरे लोग अनुमान करते हैं कि भुक्तद्रव्य में अण्डलाल नामक जो पदार्थ रहता है वह अन्न परिपाक के वख़्त वहांसे अन्तरित हो प्लीहामें संचित होता है। इससे प्लीहा बढ़ती है तथा फिर शोणित में मिलनेसे प्लीहा कम जाती है। इसके सिवाय प्लीहामें खूनकी श्वेत और लाल कणिका की उत्पत्ति होती है।

क्रिया।

वृक्कद्वय (किड्निस् ।)

वृक्ककी संख्या दो। यह ग्रन्थिमय यंत्र देखने में ठीक बहुत बड़ी सेमके बीजकी तरह है। यह कमरके भीतर मेरुदण्डके दोनों तरफ रहता है। इसका रङ्ग गुलाबी, लम्बाई ४ इञ्च, चौड़ाई २॥ इञ्च और मोटाई

व्यञ्जन और आकार।

१। इश्च। पुरुषके हक्कका वजन प्राय ४॥ औंस, स्त्रीके हक्कका वजन पुरुषसे कुछ कम होता है।

हक्क या मूत्रपिण्ड से मूत्र उत्पन्न होता है। यह ऐसे कौशल से बना है कि, शोणित का जलीय अंश इससे परिस्रुत और इसमें आकर सञ्चित हो फिर मूत्राशय में जाता है। मूत्राशय मूत्रपूर्ण होतेही पिशाव की हाजत होती है।

क्रिया।

सारे दिनरात में एक सबल मनुष्य ५२॥ औंस अर्थात् प्राय डेढ़ सेर मूत्रत्याग करता हैं। अवस्था भेदसे इसमे तारतम्य दिखाई देता है। मूत्रसे रक्तका दूषित पदार्थ बाहर निकल जाता है, पसीनेसे भी यह कार्य्य साधित होता है। ग्रीष्मकाल में पसीना अधिक आता है इसमे मूत्रका परिमाण कम हो जाता है, तथा फिर शीतकालमें पसीना कमनेसे मूत्रका परिमाण बढ़ता हैं।

परिमाण।
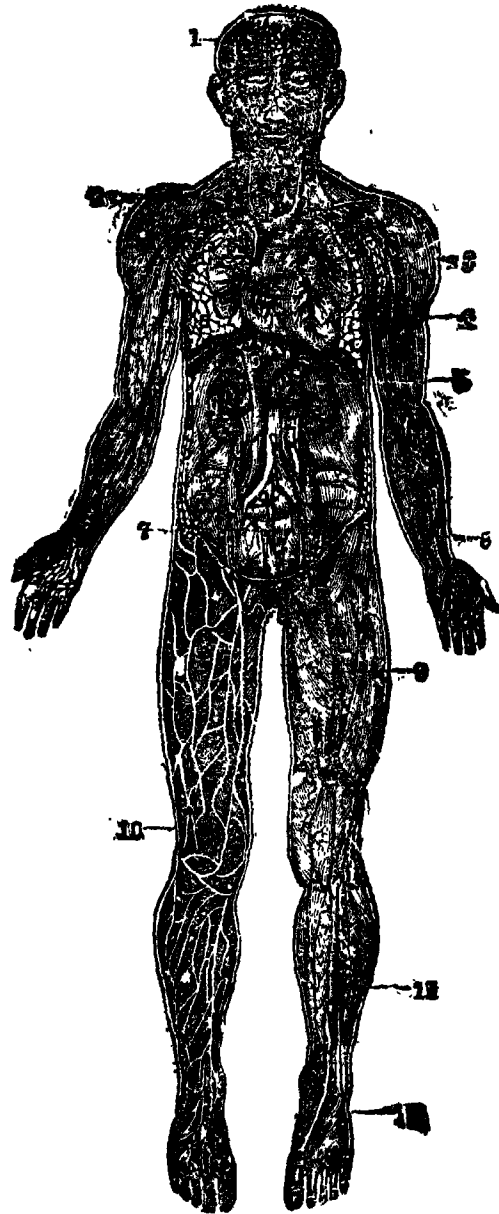
शरीरके भीतरी यंत्र और शोणितनाली समूह।

5, 6, वृक्काशय 7, मूत्राशय। बाकोंके बारेमें पहिले कहचुके हैं।

वैद्यक-शिक्षा।

सप्तम खण्ड।

धात्री-विद्या।

MIDWIFERY.

धात्रीविद्या क्या है?

जिस विज्ञान और शिल्पशास्त्र की सहायता से सगर्भावस्था या प्रसव के पहिले और प्रसवके वक्त तथा सूतिकावस्था में जननी और सन्तान के विषय की शिक्षा और उनके चिकित्सा कार्य्यमें पारदर्शिता लाभ होती है उसको धात्री-विद्या कहते हैं। प्रसवकाल में धात्रीकी सहायता एकान्त आवश्यक है; इसलिये इसका नाम धात्रीविद्या रखा गया है।

विकास्थि या वस्ति।

धात्रीविद्या में ज्ञानलाभ करनेवालों को पहिले वस्तिगह्वर और जननेन्द्रिय विषयों को सीखना चाहिये। इसीलिये यहां वही दो विषयों की आलोचना की जाती है। मेरुदण्ड और दोनो सक्थि अर्थात् दोनो अधःशाखाके बीचमें जो हड्डोका गह्वर है उसीको विकास्थि या वस्ति कहते हैं। यह चार हड्डियांसे बनी है। यह चार हड्डी पृष्ठवंशमूलीय शंखावर्त्त और दो अनामिका है। पहिली २ हड्डी वस्तिके पीछे और दो अनामिका हड्डी इसके सामने और बगलमे है।

वस्तिके दो दरवाजे है ; एक प्रवेश द्वार और दूसरा निर्गम द्वार। प्रवेश द्वार इसके उपरो अंशमें है इसका परिधि प्राय: १६ इंच होगा।

माप और परिमाण।

सन्तान भूमिष्ठ होनेसे पहिले इसो द्वारसे वस्तिगह्वर में जाता है। इसके तीन व्यास है ; (क) सामने और पीछे ; इसको लम्बाई ४। इञ्च, (ख) अनुप्रस्थ ; इसको लम्बाई ५। इञ्च ; और (ग) तिर्य्यक ; इसको लम्बाई ५ इंच है। वस्तिके निम्नांश को इसका निर्गम द्वार कहते हैं। इसका व्यास सामने और पोछे अनुप्रस्थ। पहिले को लम्बाई ५ इञ्च और दूसरे को ५। इञ्च होगी।

स्त्री-वस्थि।
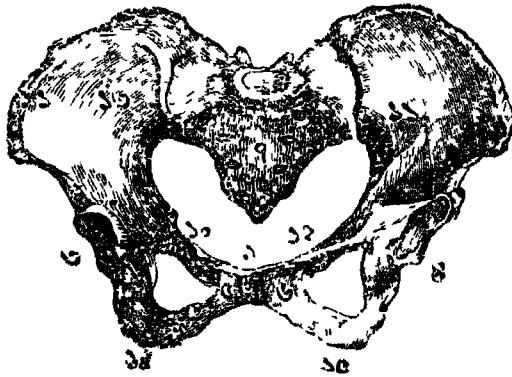
१, २, ३, ४ और ५, ६, वस्तिके भागत्रय, ७ पृष्ठवंशमूलीय अस्थि ; इसके नोचेवाली चूड़ा शंखावर्त्त ; ८ और १०—११, वाम तिर्य्यक व्यास ; १२—१३ दक्षिण तिर्य्यक व्यास ; दोनो व्यासके संयोगविन्दु से वाम और दक्षिण सूत्रपात में एक सोधी लकीर खींचने से अनुप्रस्थ व्यास होगा।

जननेन्द्रिय।

भावी विद्याका मूख्य आधार जननेन्द्रिय है, तथा जीव सृष्टिका प्रधान कारण भी इन्द्रियही है। जिसके उपयुक्त कार्य्यके अभाव से जीवकी सृष्टि नही होती उसको जननेन्द्रिय कहते हैं। जननेन्द्रिय का दूसरा नाम उपस्थ है। जननेन्द्रिय के सिवाय जीवोत्पत्तिका दूसरा उपाय नही है। जननेन्द्रिय का सङ्ग प्रतिज्ञा पूर्व्वक परित्याग करने से जीवोत्पत्ति बन्द होता है। इस यन्त्रकी बनावट अति विचित्र है; यह कैसे अपूर्व्व कौशल से बना है और इसके अङ्ग प्रत्यङ्गोका परस्पर सम्बन्ध और क्रियाविशेषकारिता शक्ति कैसा अनिर्व्वचनीय है कि जिसकी शक्तिमें ब्रह्माण्डके जीव सब अवश और मुग्धमानस हो पाशबद्ध बन्दर की तरह निरन्तर नाचता फिरता है। तथा इसीके प्रभाव से आनन्दप्रवाह, कर्म्मोत्साह, दया, क्षमा, शान्ति, दक्षिण्य, आस्तिक्य और मैत्री इस भूमण्डलमें नित्य विराजमान है। जननेन्द्रिय पुरुष और स्त्रीभेद से दो प्रकार है।

विवरण।

वस्तिकी दोनो अनामिका जहां परस्पर मिली है उसके उपर के प्रशस्त अंशको मेढ्रभूमि कहते हैं। शिश्न इसी स्थानमें अवस्थित है, यही सङ्गम साधन का प्रधान इन्द्रिय है। मूल, देह और मुण्ड ऐसे इसके तीन अंश है। मूलभाग दो प्रवर्द्धन से दोनो शाखा और एक बन्धनी से वस्तिके साथ संयुक्त है। उपरवाले भागकी लिङ्ग मुण्ड तथा मुण्ड और मूलके बीचवाले को लिङ्ग शरीर कहते है। शिश्न कई उत्थानशील तन्तुओंसे बना है। इस तन्तुके भीतर बहुतेरी

मेढ्र और मेढ्रभूमि।

छोटी छोटी रक्तनाली है। चैतन्य होतेही इन सब रक्तनालियों में शोणित बड़े वेगसे आवमान होता है, इसीसे शिश्न उत्तेजित होता है। लिङ्ग मुण्डवाला अनुप्रस्थ छिद्र प्रस्राव द्वार है। मूत्रनाली मूत्राशय से आरम्भ हो यहीं आकर खतम हुई है।

अण्ड दो ग्रन्थिमय यन्त्र है। यही दो यन्त्रोंसे पुरुष का शुक्र बनता है। यह मुष्क नामक दो चमड़े की थैलीमें निहित और वस्तिप्रदेश से रेतोरज्जु नामक दो रज्जु से लम्बित है। साधारणतः प्रत्येक अण्ड प्राय १॥ इञ्च दीर्घ है। इसका सम्मुख पश्चात् भाग १० इञ्च और अनुप्रस्थ अंश ३।४ से १ इञ्च होगा। वजन ३।४ से १ औंस। दो अण्डके बीचमें सचराचर एककी अपेक्षा दूसरा कुछबड़ा होता है।

अण्डकोष।

अण्डकोष में पुरुष का शुक्र बनता है, पश्चात्य शरीर-तत्त्ववित् पण्डित यह कहते हैं कि शुक्र यहांसे दोनो अण्डकोष के ऊपरवाली दो थैलीमें जाता है, यही दो थैली को शुक्रकोष कहते हैं, तथा इन्ही दो कोषोंमें पुरुषका शुक्र संग्रहीत होता है। शुक्र उज्ज्वल श्वेतवर्ण तरल पदार्थ तथा लसदार और इसमें एक प्रकार विचित्र गन्ध होती है। शुक्रमें एक प्रकार अगण्य सूक्ष्म जीव विद्यमान है। वह जीव प्राय १।५०० इंच लम्बा है। मैथुन कालमें शुक्रकोष से शुक्र प्रक्षेपक नालीसे यह निक्षिप्त होता है।

शुक्रकोष।

स्त्री-जननेन्द्रिय।

भग, भगांकुर, योनि, भगोष्ठ, जरायु, अण्डाधार आदि की समष्टी को जननेन्द्रिय कहते हैं। यह अन्तः और वाह्य ऐसे दो

भागों में विभक्त है। इसमे भग, भगांकुर, वृहदोष्ठद्वय, क्षुद्रोष्ठद्वय, कामाद्रि, प्रस्राव द्वार, सतीच्छद, योनि आदि बाह्य जननेन्द्रिय तथा अण्डाधार, डिम्बवाही दो नाली और जरायु यह तीन को अन्तर्जननेन्द्रिय कहते हैं। दोनो स्तनोके साथ यद्यपि जननेन्द्रिय का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है, तथापि यह दो उनके अन्तर्गत नहीं है।

कामाद्रि। भगके ऊर्द्धांश को कहते है। युवावस्था में यहां लोम पैदा होता है।

योनि। यह एक नलाकार गह्वर है। यह जरायुसे भगतक फैला है। इसका निम्नांश संकीर्ण और ऊर्द्धप्रसारित है। योनिके सामने मूत्राशय और प्रसव द्वार, पीछे मरलांत्र और विटप, दोनो तरफ प्रशस्त दो बन्धनी और उपर यह जरायुसे संयुक्त है।

दोनो वृहदोष्ठ योनिमुख के दोना तरफ स्थित है। इसका वहिर्देश त्वक और अभ्यन्तर भाग श्लेष्मिक झिल्लिसे आवृत है। शैशवावस्था में यह दो ओष्ठका भीतरी अंश परस्पर मिला रहता है। फिर पुरुष सङ्ग और सन्तान पैदा होनेसे अलग हो जाता है।

वृहदोष्ठद्वय।

क्षुद्रोष्ठद्वय। वृहदोष्ठद्वय के भीतर दोनो क्षुद्रोष्ठ है। दोनो तरफ के क्षुद्र ओष्ठ भग्नांकुर के पास आकर दो भाग में विभक्त हुआ है।

भग्नांकुर। उपर दोनो वृहदोष्ठका जहां सम्मिलन हुआ है उसके प्राय आध इंच नीचे भग्नांकुर है। यह शिश्नकीतरह उत्थान शील तन्तुओं से बना है तथा रतिकाल में उत्तेजित होता है।

प्रसव द्वारके नीचे योनिमुख है। शैशवावस्था में यह एक पतली झिल्लि से आवृत रहता है, उसको सतीच्छद कहते हैं। पुरुष संगसे सतीच्छद

सतीच्छद।

फट जाता है; किसी किसी का सतोच्छद इतना कड़ा होता है कि बिना काटे पुरुष सङ्ग नहीं कर सकता है।

विटप। यह योनिमुख के पीछे और मलद्वारके सामने यह करीब १॥ डेढ़ इञ्च लम्बा है।

स्त्री-जननेन्द्रिय—छेदित।
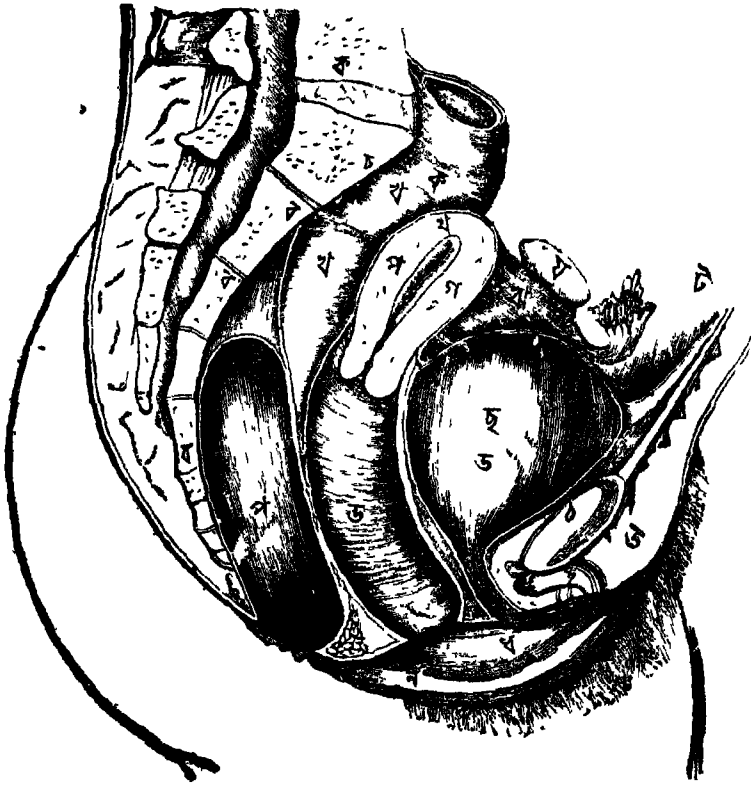
क, ख, ख, प, सरलांत्र। प, घ, ग, जरायु। ङ योनि नाली। ध, प्रस्राव-द्वार। न, क्षुद्रोष्ठ। ठ, भगांकुर। ट, मूत्रप्रणाली। छ, ङ, मूत्राशय। झ, प्रशस्त बन्धनी। य, अण्डाधार। क, ब, क, ब, शंखावर्त्त।

जरायू। यह ठीक बड़े अमरूद के तरह है। सामने और पीछेका अंश थोड़ा चिपटा तथा भीतर पोला है, इसीको गर्भाशय कहते हैं; पुरुष का शुक्र और स्त्रीके अण्ड संयोगसे इस यन्त्रमे भ्रूण उत्पन्न और क्रमश: पुष्ट हो प्रसवकालमें यहींसे बाहर निकलता है।

जरायु तीन अंशो में विभक्त है—ऊर्द्ध, मध्य और निम्न। इस का ऊर्द्धांश मुण्ड, मध्यांश देह और निम्नांश ग्रीवा नामसे अभिहित है। जरायु वस्ति-गह्वर में योनिके ऊर्द्धांश मे अवस्थित है तथा इसके दोनो तरफ दो बन्धनी इसको आवद्ध किये हुए है। इसके सामने मूत्राशय और पीछे सरलांत्र है। कुमारियों का जरायु १॥ इंच लम्बा तथा जिन्हे एकबार सन्तान प्रसव हुआ है उनका जरायु ३।४ इञ्च लम्बा होता है।

विभाग और विस्तार।

डिम्बवाही नाली। जरायुके उपरवाले दो कोनेसे यह दो नाली उत्पन्न हो किञ्चित् वक्रभावसे अण्डाधार तक विस्तृत है। हरेक नालीकी लम्बाई ३।४ इञ्च होगी। इसका भीतरी भाग पोला तथा नालीका शेषांश जालकी तरह बना हुआ है।

अण्डाधार। जरायुके दोनो पार्श्वको प्रशस्त दोनो बन्धनीके पीछे दो अण्डाधार है। यह देखनेसे ठीक अण्डेकी तरह है। प्रत्येक अण्डाधार प्राय दो इंच लम्बा पौन इंच चौड़ा और आध इंच मोटा है। ऋतुकाल में इसका आकार बढ़जाता है और गर्भावस्थामें दूना आकार हो जाता है। अण्डाधारके भीतर असंख्य अण्ड निहित है।

दोनो स्तन जननेन्द्रियके अन्तर्गत न होनेपर भी इन दोनोका घनिष्ट सम्बन्ध देखनेमें आता है; इसी लिये यहां उसके बारेमें थोड़ा लिखते

स्तनद्वय।

है। दोनो स्तन अर्द्ध गोलाकार, इसके ऊपरीभागमें क्षुद्र वर्त्तुला-
कार दो पदार्थ है ; इसीको ढूंची कहते है। दोनो स्तन छातीके
दोनो तरफ तृतीय, चतुर्थ, पंचम और षष्ट पंजरास्थि आवरणकर
उत्पन्न होता है। इसके भीतर बहुतेरी दूध निकालनेवाली ग्रन्थि
है। यौवनके प्रारम्भमें दोनो स्तन कठिन और छोटा रहता है ;
फिर उमर वृद्धिके साथ साथ इसका भी आकार बढ़ता रहता है ;
तथा गर्भावस्थामें अत्यन्त स्फारित और पीनोन्नत हो जाता है।
प्रसवके बाद स्तन शिथिल और झुक जाता है।

ऋतु और गर्भाधान।

ऋतु और गर्भाधान सम्बन्ध में हिन्दू और पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्रमें भिन्न भिन्न प्रकार विवरण दिखाई देता है। यह विवरण भिन्न होनेपर भी मूल विषयमें दोनोका सादृश्य है। इसीलिये यहां दोनो मतोंकी आलोचना करते हैं। हिन्दू आयुर्वेदकारोंमें सबसे अधिक इस विषयकी आलोचना महर्षि चरक और सुश्रुतने की है। यहां उनके ग्रन्थका वही अंश संग्रह किया जाता है।

हिन्दू और पाश्चात्य मत।

शुक्र। जो पदार्थ स्त्रीमें समाहित हो गर्भ पैदा करता है उसे पण्डितगण शुक्र कहते हैं। शुक्रमें वायु, अग्नि, भूमि और पानी यह चार महाभूतोंका अंश विद्यमान है तथा यह मधुरादि छः रसोंसे उत्पन्न होता है।

शुक्र, शोणित और जीव कुक्षिगत हो संयुक्त होनेहीसे उसको गर्भ कहते हैं। अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, पानी और भूमिके

विकृतिको गर्भ कहते हैं, यही गर्भ चेतनाका अधिष्ठान है। इसी चेतनाको गर्भकी छठी धातु कहते है। बाल्यावस्था अतिक्रम कर युवावस्था मे स्त्रियोंके अनेक भावोमें परिवर्त्तन दिखाई देता है। युवावस्थामें दोनो स्तन पीनोन्नत योनि विवर्द्धित और वस्ति-लोमसे व्याप्त होती हैं। जरायु कोषसे पतला और साफ रक्त निकलता है। इसी रक्तको आर्त्तव या पुष्प कहते है, चलित भाषामें इसको स्त्रीधर्म कहते हैं।

प्रति मासमें यह रक्त निकलता है। रक्त यदि शश रक्त या लाहके पानीकी तरह हो और वस्त्रादि में दाग न लगे तो निर्द्दोष रक्त जानना, यह रक्त ४।५ दिनतक स्थायी रहता है। इन सब नियमोंका व्यतिक्रम होनेसे रजोदुष्टि स्थिर करना। रोग शोक वर्जित पयिपुष्टांगी स्त्री की प्राय: बारह वर्ष अतिक्रम होनेसे रज:प्रवृत्ति होता है तथा यह पचास वर्षके बाद बन्द होता है। शरीरमें खराबी होनेसे पचास वर्षके भीतर ही रजो निवृत्ति हो जाता है। रज:प्रवृत्तिके पहिले दिनसे सोलहवें दिनतक को ऋतुकाल कहते हैं। यही काल गर्भ ग्रहणका उपयुक्त काल है। प्रकृतिभेदसे स्त्रियोंके ऋतु-कालमे भी हेरफेर होता है अर्थात् किसी किसी स्त्रीको सोलह दिनतक गर्भ ग्रहण को शक्ति नही रहती। सूर्य्य अस्त होनेसे जिस तरह पद्मिनी मूद्रित होती है, वैसही ऋतुकाल अतीत होनेसे नारीका जरायु सङ्कुचित हो जानेसे गर्भ ग्रहणकी शक्ति नही रहती। ऋतुकालमें स्त्रीगण अपेक्षाकृत अधिक सम्भोगाभि-लाषिणी होती हैं; यह वक्त प्रकृत रतिकाल है। ऊसर भूमिमें बीज डालनेकी तरह और वक्तका श्रृङ्गार निरर्थक होता है।

स्त्रीधर्म्म।

शुद्ध आर्त्तवा रमणीको ऋतुके पहिलेही दिनसे ब्रह्मचर्य्य रहना चाहिये। दिवानिद्रा, अञ्जन, अश्रु-

ऋतुमती।

पात, स्नान, अनुलेपन, तैलादि मर्द्दन, नखच्छेदन, धावन, अतिशय हंसना, बहुत बोलना, तेज आवाज सुनना, अवलेखन, वायु सेवन, और परिश्रम उनको त्यागना चाहिये। यह सब विधि पालन न करनेसे गर्भ नानाप्रकारसे दूषित हो जाता है तथा उस गर्भमें सन्तान पैदा होनेसे वह नाना-प्रकारके रोगोंसे पीड़ित रहती है। जिसका व्यौरा नीचे संक्षेपमें दिया जाता है।

ऋतुमतीके दिवानिद्रासे भावी सन्तान निद्राशील, अञ्जन लगानेसे अन्धा, अश्रुपातसे विकृति दृष्टि,

विशेष विशेष रोग।

स्नानानुलेपनसे दुःखशील, तैलादि मर्द्दनसे कुष्ठी, नख छेदनसे कुनखी, धावनसे चञ्चल, अधिक बोलनेसे प्रलापी उच्च शब्द सुननेसे बधिर, अवलेखनसे खलमति, वायुसेवन और श्रमसे उन्मत्त तथा अधिक हंसनेसे सन्तानको दांत, ओष्ठ, तालु और जीभ श्याववर्ण होते है। अतएव ऋतुमती स्त्री सर्व्वतोभावसे यह सब त्याग दें। ऋतुके तीन दिन उनको कुशासनपर सोना, करतल अथवा पत्तलमें हविष्यान्न भोजन और स्वामी सहवास बन्द करना चाहिये।

ऋतुमती स्त्री चौथे दिन स्नानकर सुन्दर और पवित्र वस्त्रा-लङ्कार धारण और स्वस्तिवाचन पूर्व्वक

ऋतुस्नाता।

सबसे पहिले भर्त्ताको दर्शण करें। स्वामी न उपस्थित हो तो सूर्य्यको देखना, इसका तात्पर्य्य यह है कि ऋतु स्नानकर रमणी जैसे पुरुषको देखेगी वैसेही सन्तान होगी। इसके बाद अब गर्भाधान।

गर्भाधान।

भर्ता एकमास ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन कर भार्य्याके ऋतुकालके चौथे दिन घी दूध और शालिधान्यका भात भोजन करे तथा भार्य्या एक मास ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन कर उस दिन तैल मर्द्दन अधिक उरदका द्रव्य भोजन करें, फिर भर्ता वेदादिमें विश्वास कर पुत्रकामी हो उसी रातको अथवा षष्ठ, अष्टम या द्वादश दिनको भार्य्यासे उपगत होवे। ऋतुकालके चौथे दिनसे बारवें दिनतक उत्तरोत्तर जितने दिन पर समागम हो सन्तान उतनीही सौभाग्यशाली, ऐश्वर्य्यशाली और बलशाली होती है। कन्याकी इच्छा हो तो पञ्चम, सप्तम, नवम या एकादश दिन गमन करना चाहिये। तेरहवें दिनका समागम अवैध है। यहां यह याद रखना आवश्यक है कि पुरुषाभिलाषिणी कामातुरा व्याधिहीना स्त्रीके साथ सञ्जात हर्ष, व्याधिहीन रतिज्ञ पुरुषका ऋतुकालमें संसर्ग होनेसे अपत्योत्पादन इच्छा फलवती होती है। कृष्ट जलसिक्त उपयुक्त गुणसम्पन्न क्षेत्रमें यथासमय में निर्दोष बीज वपन करनेसे जैसे उसमेंसे अङ्कुर निकलता है, वैसही अदोष योनिमें यथासमय अदोष शुक्र आहित होनेसे गर्भोत्पत्ति अवश्य होती है।

अभिगमन।

ऋतुकालका संसर्ग नानाप्रकारके अनर्थका निदान है। ऋतुके पहिलेदिन गमन करनेसे पुरुषका आयुक्षय होता है। उसमे यदि गर्भ हो तो गर्भस्राव हो जाता है। दूसरे दिन गमन करनेसे भी वैसही फल होता है, अथवा सूतिका गृहमें ही सन्तान मरजाती है। तीसरे दिन गमन करनेसे वही फल अथवा सन्तान अपूर्णाङ्ग या अल्पायु होती है। चौथे दिन गमन करनेसे सन्तान सम्पूर्णाङ्ग और दीर्घायु होती है। पर जबतक शोणित स्राव होता रहे तबतक बीज प्रविष्ट होनेसे

कोई फल नही होता। जैसे नदीके स्रोतमें कोई द्रव्य डालनेसे वह जाता है, बीजभी वैसेही गर्भकोषमें न जाकर प्रत्यावृत्त होता है। अतएव ऋतुकालके तीन दिन गमन नहो करना चाहिये। ऋतुका १२वां दिन बीत जानेसे फिर एक महीनेके बाद गमन करना उचित है। इस नियमसे सन्तान पैदा हो तो वह सन्तान रूपवान, महा बलवान, बुद्धिमान, आयुष्मान, पितृपरायण, धनवान और सत्पुत्र होती है।

वर्ण और चक्षु।

गर्भोत्पत्ति कालमें तेजोधातु अधिकांश जलधातुके साथ मिलनेसे गर्भ गौर वर्ण होता है; अधिकांश पार्थिव धातुके साथ मिलनेसे गर्भ कृष्णवर्ण होता है। अधिकांश पृथिवी और आकाश धातुके साथ मिलनेसे कृष्ण श्याम और अधिकांश जलीय और आकाश धातुके साथ मिलनेसे गौर श्याम होता है। कोई कोई कहते हैं कि गर्भावस्थामें गर्भिणी जिस रङ्गका द्रव्य आहार करती है, सन्तान भी वही रङ्गकी होती है। तेजदृष्टिशक्तिके साथ न मिलनेसे सन्तान जन्मान्ध होती है। तेज शोणितका आश्रय ले तो सन्तान रक्ताक्ष होती है। पित्तका आश्रय लेतो चक्षु पीतवर्ण; कफका आश्रय लेतो शुक्लाक्ष और वायुका आश्रय लेतो विकृताक्ष (टेरा) होती है।

गर्भस्राव और अकाल प्रसव।

जिस गर्भका शुक्रशोणित, आत्मा, आशय अर्थात् भ्रूणोत्पत्ति स्थान (जरायु क्षेत्र) और काल यह सब दोष वर्जित हो तथा गर्भिणीके आहार विहारमें कोई दोष न होतो वह अपुष्ट शुक्र-शोणित-सम्भूत गर्भ सर्व्वतोभावसे सब अवयव सम्पन्न हो प्रसूत होता है। अप्रजा अर्थात् अवन्ध्या स्त्रीको योनि या जरायु का दोष, मानसिक विविध

अशान्ति या क्लेश, शुक्र या शोणितकी खराबी, आहारादि का अत्याचार, अकाल योग किम्बा व्याधि आदिसे देरमें गर्भ धारण होता है। गर्भस्रावका विषय अति भयानक है, इसमे एक रहस्य है। रूक्षान्न पानादिसे गर्भाशय की वायु कुपित हो किसी किसी स्त्रीका ऋतुशोणित बन्द हो ठीक गर्भका लक्षण प्रकाश होता है। बहुतेरे लोग उसे गर्भ स्थिर करते हैं, पर थोड़े दिन बाद जब शोणित अधिक सञ्चय होता है तब अथवा अग्नि या सूर्य्य ताप, श्रम, क्रोध, शोक, अथवा उष्ण अन्नपानसे परिस्रुत हो जाता है।

पुत्र, कन्या और बहु सन्तान।

यदि बीज अर्थात् मिलित शुक्र शोणित में रक्तका भाग अधिक हो तो कन्या और शुक्रका भाग अधिक होतो पुत्र पैदा होता है कोई कोई कहते हैं कि चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम आदि युग्म दिनोंमें गमन करनेसे पुत्र और पंचम, सप्तम, नवम आदि अयुग्म दिवसमें कन्या पैदा होती है। वायु कुपित हो बीजको दो भागमें विभक्त करें तो यमज सन्तान होती है। इस दो भागमें यदि एक भागमें रक्त अधिक होतो कन्या और दूसरे भागमें शुक्र अधिक होतो पुत्र जन्मता है या दोनो भागो में रक्तका भाग अधिक हो तो दो कन्या और शुक्रका भाग अधिक होतो दो पुत्र होता हैं। अति प्रबल वायु जब बीजको कई विभागोंमें विभक्त करेतो बहु सन्तान प्रसव होती हैं। प्रकुपित वायुकर्तृक यदि बीज विषमांशमे विभक्त हो अर्थात् एक अंशमें अधिक बीज और दूसरे अंशमें कम तथा गर्भिणी यदि उपयुक्त आहार प्राप्त न हो और उसका कोई धातुका क्षय या अधिक स्राव होतो गर्भ सूखजाता है ;—इससे प्रसवके निर्दिष्ट समयसे अधिक दिनपर प्रसव होता हैं।

अब नपुंसकादिके जन्मका कारण लिखता हूं। उपरोक्त बीज में शुक्र और शोणितका भाग बराबर हो तो स्त्री या पुरुष चिह्नयुक्त सन्तान होती है। वायु कुपित हो गर्भस्थ प्राणीका शुक्राशय नष्ट करनेसे वह प्राणोपवनेन्द्रिय होता है। वायुकर्त्तृक गर्भस्थ प्राणीका शुक्राशय द्वार विघटित होनेसे संस्कारवाही सन्तान पैदा होती है। यदि पितामाता हीन बीज या अल्प बीज-विशिष्ट दुर्ब्बल और अहर्ष अर्थात् मैथुनमें अल्प हर्ष-विशिष्ट हो तो वह पुत्र या कन्या नरषण्ड या नारीषण्ड होते है। माताको मैथुनको अनिच्छा और पिताका बीज दुर्ब्बल हो तो सन्तान टेढो (वक्र) होती है। पिता माता ईर्षाभिभूत या मैथुनमें मन्द हो तो सन्तान ईर्षापरतन्त्र होती है। जिस पुरुषका दोनो कोष वायु और अग्निदोषसे नष्ट हो जाता है उसको वातिक षण्ड कहते हैं।

नपुंसक।

गर्भका शरीर माता आदिसे उत्पन्न होनेपर भी वह पांच महाभूतका विकार है, कारण जीवदेह पंच भूतात्मक है। किस महाभूतसे क्या उत्पन्न होता है, वह क्रमशः विवृत होगा। शब्द, श्रोत, लघुता, रूक्षता, और छिद्र यह सब आकाशमें उत्पन्न होता है। स्पर्शेन्द्रिय रूक्षता, श्वासप्रश्वास क्रिया, धातुव्यूह और शारीरिक चेष्टा वायुसे उत्पन्न है। रूप, दर्शनेन्द्रिय, प्रकाश, परिपाक और उष्णता यह सब अग्निसे उत्पन्न है। रस, रसेन्द्रिय, शैत्य, मृदुता, स्नेह, और क्लेद पानीसे उत्पन्न है। गन्ध, घ्राणेन्द्रिय, गुरुत्व, स्थैर्य्य, और मूर्त्ति यह सब पृथिवीसे उत्पन्न हैं। जगतमें जितने भाव है पुरुषमें वही सब भाव दिखाई देते हैं। पण्डितगण जगत् और पुरुषके भावका एकही रूप बताते हैं। इसी तरह तृतीय मासमें गर्भ और भी

विशेष विशेष इन्द्रिय।

कई अंग और अंगावयव एकहीबार उत्पन्न होते है। इसके सिवाय कालान्तरमें और भी कई भाव उत्पन्न होते हैं। दांत, स्तनोन्नति अधोलोम, श्मश्रु और कक्षलोम कालविशेषमें उत्पन्न होते है। बुद्धि, रूप, वाकशक्ति, शुक्र और गमन धावनादि भावोंकी उत्पत्ति भी क्रमशः होती हैं।

भ्रूणका क्रमस्फुरण।

गर्भको सब इन्द्रिय उत्पन्न होनेपर शिशुको अन्तःकरण का दर्द अनुभव करनेकी शक्तिका सञ्चार होता है। इन्हीं सबसे गर्भ स्पन्दित होता रहता है। इसको लोग सचराचर गर्भ यन्त्रणा कहते हैं। वास्तवमें इस दर्दके तरह भयङ्कर दर्द दूसरा नहीं है। इस-वक्त जीव गर्भ यातनासे व्याकुल हो भगवानकी स्तुति करता है। गर्भस्थ शिशुका हृदय माताका और मातोके हृदयके साथ शिशुका घना सम्बन्ध है। इसीलिये वृद्धगण गर्भको दैहृद्य कहते हैं। इस-वक्त गर्भिणीको गर्भके प्रतिकूल आहार विहारादि त्याग करना चाहिये कारण इसवक्त गर्भके प्रतिकूल कार्य्यादिसे गर्भका नाश या विकृति होनेका डर है।

इसवक्त इन्द्रियोंको कोई कोई विषय भोगको इच्छा होती है। यह इच्छा पूर्ण होनेसे सन्तान गुणवान और आयुष्मान होती है। किन्तु माताको यह इच्छा यदि पूरी न होतो गर्भस्थ सन्तान कुब्ज, खञ्ज, वामन, विकृताक्ष अथवा अन्ध होती है। अतएव गर्भावस्थामें स्त्रियोंको अभिलषित द्रव्य अवश्य देना उचित है।

चौथे महीनेमें गर्भ स्थिर होता है; इससे गर्भिणीका शरीर इसवक्त भारी हो जाता है। पांचवें महीने गर्भका मांस और

शोणित कुछ बढ़ता है। इसीलिये गर्भिणी पांचवें महीने बहुत दुबली हो जाती है। छठे महीने और महीनेकी अपेक्षा गर्भके भ्रुणका बल और वर्णका ह्रास होता हैं। सातवें महीने गर्भके सब भावोंकी वृद्धि हो गर्भिणीके आकारमें क्लान्ति दिखाई देती है। आठवें महीने गर्भ और माता रसवाहिनी शिरा समूहोंसे परस्परका ओज ग्रहण करते हैं। इसवक्त गर्भिणी बारबार ग्लानि युक्त मोटी ताजी होती है। ओजोधातुके अनवस्थितत्वसे यह विपद होनेकी सम्भावना है। इसीसे पण्डितगण अष्टम मासको गर्भका अहितकर निर्देश करते हैं। आठवां महीना पूरा हो नवे महीनेके पहिले दिनसे दशवें महीने तक प्रसवका मुख्यकाल है। इससे अन्यथा होना विकृति स्थिर करना।

गर्भस्राव और अकाल प्रसव।

पहिले कह आए हैं कि किसी तरह की सांघातिक पीड़ा होनेसे अकसर गर्भस्राव हो जाता है। गर्भाधानके बाद २८ हफ्ता पूर्ण होनेके पहिले भ्रुण निकलेतो उसे गर्भस्राव कहते हैं। इसके बाद शिशु भूमिष्ठ होनेसे प्रायः शिशु मरता नहीं है, इसे अकाल प्रसव कहते हैं। बहु प्रसविनी स्त्रीको गर्भस्राव अधिक होता है।

गर्भस्राव।

गर्भस्राव नाना कारणोंसे होता है ; जरायुके भीतरका रक्तस्राव हो तो गर्भ नहीं ठहरता। भ्रुणकी मृत्युभी गर्भस्रावका अन्यतम प्रधान कारण है। उपदंश, चेचक आदि पीड़ामें भी गर्भस्राव होता है। उत्कट

कारण।

परिश्रम या मानसिक अवसाद, अत्यधिक रमण, अधिक सुरापान, मांसविधाने विधोकारण, विषद्रव्य सेवन, गर्भके उपर अकस्मात् गुरुतर आघात, जरायु प्रदाह किम्बा स्थानच्युति आदि कारणोंसे भी गर्भस्राव को सम्भावना है।

उपर जितने कारणोंका उल्लेख किया गया है, उनमेंसे कोई कोई पूर्व्वप्रवर्त्तक और कोई कोई उत्तेजक कारण हो जाते हैं। पहिलेहीसे गर्भस्रावके लक्षण जिसमें रहते हैं, उसको थोड़ेही कारणसे गर्भस्राव हो जाता है। पर पूर्व्व प्रवणता न रहनेसे गर्भ सहजमें नष्ट नहीं होता।

लक्षण।

गर्भस्राव होनेसे पहिले जरायु सङ्कुचित होता है, तब गर्भिणीके पेटमे उत्कट दर्द होता है साथही इसके अथवा थोड़ो देर बाद जरायुसे शोणितस्राव होना आरम्भ होता है। शोणित कभी थोड़ा थोड़ा निकलता है इस दशामें गर्भिणीकी अवस्था सङ्कटापन्न हो जाती है। कभी पहिले दो तीन दिन थोड़ा थोड़ा शोणित निकलकर क्रमश: कमहो बन्द होजाता है। तब लोग समझते हैं कि गर्भिणी आराम हो गई, फिर एकाएकी शोणित दिखाई देता है। फलत: शोणितस्राव और दर्द यह दोनों गर्भस्रावके प्रधान लक्षण हैं। इन दो लक्षणोंमें एक भी दिखाई देनेसे चिकित्सा करना उचित है।

माता और शिशु।

गर्भावस्था गर्भिणीके हकमें बड़ा विषम काल है। भ्रूणका जन्म और क्रमस्फुरणसे लेकर जबतक भूमिष्ठ न हो तबतक गर्भिणीको विशेष सावधानीसे रहना चाहिये। सामान्य त्रुटि या अनियम, अथवा थोड़ा अत्याचारही गर्भिणी और साथही गर्भस्थ शिशुका स्वास्थ्य

नष्टकर सकता है। इसीलिये इस वक्त गर्भिणीका स्वास्थ्य ठीक रहे इस विषयमें विशेष दृष्टि रखना चाहिये। इससे केवल गर्भिणीका मङ्गल है सो नहीं गर्भस्थ शिशुका भी स्वास्थ्य अच्छा रहता है। शिशु जबतक गर्भमें रहता है तबतक माताके शोणितसे ही उसका पोषण होता है ; अर्थात् शोणित माताके शरीरसे सन्तानके शरीरमें जाकर उसकी जीवन रक्षा होती है। सुतरां इससे स्पष्ट जाना जाता है कि माताका शोणितही शिशुके जीवनशक्तिका एकमात्र प्रस्रवन है। वही प्रस्रवन दूषित होनेसे शिशुका स्वास्थ्य नष्ट और कहांतककि जीवन विपन्न होनेकी सम्भावना है इससे स्पष्ट जाना जाता है कि गर्भावस्थामें गर्भिणीका स्वास्थ्य ठीक रहनेसे गर्भस्थ शिशुका स्वास्थ्य ठीक रहेगा और उसके क्रमस्फुरण में कोई तरहकी बाधा नहीं होगी। गर्भिणीका स्वास्थ्य ठीक रखने में पथ्य, परिश्रम, निद्रा आदि कई एक विषयमें ध्यान रखना उचित है।

भोजन।

पहिले आहारके सम्बन्धमें कहते हैं ;—गर्भावस्थामें हलका और पुष्टिकर द्रव्य आहार करना उचित है। गर्भिणीका पथ्य जितना सुपाच्य और पुष्टिकर हो उतनाही अच्छा है। मांस, टटका पका फल-मूलसे विशेष उपकार होता है, हमारे देशमें सचराचर जो सब कन्दमूल मिलते हैं उसमें आलू, गोभी, बैगन, मटरकी छीमी ; बीट और केला, कमलानीबू, खरबूज, शरीफा, अमरूद, आम, जामुन आदि व्यवहार किया जा सकता है। मछली कम आहार करनेमें बाधा नहीं है, यदि कोई मांस बिना खाये न रहसके उनको थोड़ा मांस भी देना चाहिये। मांसाहारसे गर्भिणीका स्वास्थ्य नष्ट होनेकी सम्भावना है ; इससे जहांतक बने मांस न

खानाही अच्छा है। मरे प्राणीके मांससे गर्भस्थ शिशुका कोमल शरीर नहीं बन सकता; इसलिये शरीरतत्त्ववित् पण्डितोंने गर्भावस्थामें मांसाहार मना किया है। बहुतेरी स्त्रियां गर्भावस्थामें अधिक खट्टा खाती हैं, यह सर्व्वदा बन्द करना चाहिये। यदि बिना खट्टा खाये न रह सके तो थोड़ी पुरानी इमली आदि खट्टा खानेको देना चाहिये। पीनेके द्रव्यमें शुद्ध पानी और दूध पीना चाहिये। सब प्रकारका उत्तेजक पेय बन्द रखना; यहांतक कि यदि किसीको चाह पीना अभ्यास हो तो वहभी त्यागना चाहिये।

लघु आहार।

बहुतेरोंका यह ख्याल है कि गर्भिणीको जब अपने शरीरके सारांशसे गर्भस्थ शिशुकी रक्षा और पोषण करना पड़ता है तब उसका आहार बढ़ाना चाहिये। बहुतेरे इसके अनुसार कामकर भ्रूण और माताका नाना प्रकार अमङ्गल कर बैठते हैं। यह धारणा जैसी भ्रमसंकुल है वैसही अनिष्टकर है। इसीलिये गर्भावस्थामें परिमित आहार आवश्यक है; इससे माता और शिशु दोनोंके शरीरकी रक्षा और भ्रूणके स्फूर्ती साधनोपयोगी सब प्रयोजन सिद्ध होते हैं। अतएव गर्भिणीको लघु पुष्टिकर और परिमित द्रव्य भोजन देना।

पेय।

हमारे देशमें गृहस्थके स्त्रियोंमें सुरा आदि मादक द्रव्य सेवन को प्रथा नहीं है। पर पाश्चात्य देशीय बहुतेरी कुलकामिनी हरवख्त और कहांतक कि गर्भावस्थामें भी सुरापान करती है। इसीसे उनकी सन्तान प्रायही उन्मत्त और दुर्नीतिपरायण होती है। अतएव गर्भावस्थामें किसी तरहका मादक द्रव्य सेवन करना उचित नहीं है; और कहांतक कि चाह काफीतक पीना मना है। शुद्ध पानी और दूधही गर्भिणीका एकमात्र पेय है।

रात दिनमें ६ घण्टा और ८ घण्टा सोनेसे अपनेको स्वस्थ मानते हैं। सहज शरीरमें अनिद्रा और अतिनिद्रा दोनोंही जैसा अनिष्ट-कर है, गर्भावस्थामें यह और भी अनिष्टकर है। सचराचर इसे ८ घण्टातक सुनिद्रा होनेसे ही स्वास्थ्य ठीक रहता है, इससे अधिक निद्रासे शरीर खराब होनेका डर है।

मानसिक अवस्था।

निद्रा, आहार आदि व्यापारसे गर्भिणीको जैसा विशेष सतर्क रहना आवश्यक है, मानसिक अवस्थाके तरफ भी उनको वैसही दृष्टि रखना चाहिये। सबसे अधिक मानसिक शान्तिके लिये एकान्त आवश्यक है। चित्त स्थिर और मन सर्व्वदा शान्तिमय रहनेसे गर्भिणी और गर्भस्थ शिशु दोनोंका स्वास्थ्य ठीक रहता है। इसलिये भावीजननीको सर्वदा क्रोधादि रिपु और जिस कार्य्य या दृश्यसे मानसिक उद्वेग और उत्तेजना हो उससे दूर रहना चाहिये। गर्भिणीका आतंक, उद्वेग और उत्तेजनासे अकसर शिशुका विशेष अनिष्ट होता है। इन सब व्यापारोंसे माताके स्नायुमण्डल में हठात् प्रचण्ड-विप्लव होता है तथा साथही शिशुके स्नायुमण्डलमें भी उत्पन्न होता है। इसवक्त शिशुका मस्तिष्क और स्नायुमण्डल इतने जोरसे परिस्फुरण होने लगता है कि कोई प्रकारका इससे विकार होनेसे कोई कोई वक्त उसका प्रतिविधान भी नहीं हो सकता। गर्भिणीके अकस्मात् आतङ्क, क्रोध या और कोई रिपुके उत्कट उत्तेजनासे अकसर गर्भस्थ शिशुको मृगी और उन्माद आदि पीड़ा होते देखा गया है। अतएव गर्भावस्थामें रमणीको सर्व्वदा शान्त और निरुद्वेग रहना चाहिये। धर्म्मचिन्ता, धर्म्मकर्म्मका अनुष्ठान और आलोचना, अथवा धर्म्म पुस्तकादि पाठ करनेसे गर्भिणीका मन सर्व्वदा शान्तिरससे आप्लुत रहता है और उसके साथही

गर्भस्थ शिशुके मस्तिष्क में भी धर्म्मचिन्ताका बीज धीरे धीरे अंकुरित होता है। इसके सिवाय सुन्दर आलेख्य सन्दर्शन, श्रुतिसुखकार मनोहर सङ्गीत या स्वरलहरी श्रवण आदि कार्य्यभी गर्भिणीके हकमें विशेष हितकर है।

प्रसव-प्रक्रिया।

द्विविध प्रसव।

प्रसव दो प्रकार,—स्वाभाविक और अस्वाभाविक। सर्वाङ्गसे मस्तकस्वभावतः भारी हैं इससे प्रसव काल में सवराचर पहिले वही बाहर आता है। इसको स्वाभाविक प्रसव कहते हैं। यह २४ घण्टेमें सम्पन्न होता है। शिशुका माथा नीचे रहनेपर भी प्रसवको २४ घण्टा लगेतो उसे विलम्बित प्रसव जानना। तथा २४ घण्टेके पहिले प्रसव होनेसे उसे द्रुत-प्रसव कहते हैं।

वेदना।

प्रसवकार्य्यमें जरायुका संकोचन एकान्त आवश्यक है; जरायु सङ्कुचित न होनेसे गर्भस्थ सन्तान भूमिष्ठ नहो होती। जरायुके संकोचनसे जो एक प्रकारको दर्द होती है उसको प्रसव वेदना कहते हैं। प्रसव वेदना रह रहकर उठती है तिसपर भी माताको कितनी तकलीफ होती है; यदि वह दर्द लगातार निरवच्छिन्न होता रहता तो माता और गर्भस्थ शिशु दोनोका जीवन संकटापन्न होजाता। कारण प्रसवमे विलम्ब होनेसे प्राय ऐसाही अनिष्ट होता है।

द्विविध वेदना।

प्रसवके पहिले कभी कभी दो प्रकारका दर्द होता है; जरायु आपही संकुचित होनेसे जैसा दर्द होता है और जो जरायुके आधेयको क्रमशः प्रसव पथमें ले आता है, उसको प्रकृत वेदना कहते हैं।

प्रकृत वेदनाका आरम्भ पहिले धीरे धीरे मृदुभावसे होता है, फिर बढ़ते बढ़ते कुछ कम हो अन्तमें थोड़ी देरके लिये बंद हो जाता है। इसके बाद फिर दर्द तेज हो क्रम हो जाता है। जैसे जैसे दर्द उठताहै वैसही उसका निर्दिष्ट क्रमभी दिखाई देताहै। पर अप्रकृत वेदना ऐसी नहीं है;—इसका कोई निर्दिष्ट क्रमभी नहीं है। इससे जरायुका समस्त अंश संकुचित न हो उसका एक अंश मात्र संकुचित होता है। जरायुके किसी अंशमें घाव या रक्ताधिक्य होनेसे अथवा पाकस्थाली या यन्त्रके उत्तेजनासे जरायुका कोई अंश उत्तेजित होनेसे वहां भी यही अप्रकृत वेदना उठती है। पूर्ण गर्भमें सन्तान भूमिष्ठ होनेके कई दिन पहिले अप्रकृत वेदना सचराचर उठती है।

उपक्रम।

प्रकृत प्रसव वेदना प्रकाश होनेसे कई दिन पहिलेहो से गर्भिणीके शरीरमें कई एक लक्षण प्रतीयमान होने लगता है। इस समयमें जरायु अल्प अल्प संकुचित होने लगता है। प्रसव पथके कोमल तन्तु सब शिथिल होने लगताहै और जरायु इसी कारणसे आहिस्ते आहिस्ते नीचे आने लगता है। इस अवस्थाका प्रसवका उपक्रम कहते हैं।

तीन क्रम।

सचराचर प्रसवके तीन क्रम है; पहिले क्रममें जरायुका मुख बड़ा हो साथही संकोचन आरम्भ होताहै तथा जरायुके उर्द्धभागमें संकोचन आरम्भ हो क्रमशः नीचे आता है। द्वितीय क्रममें शिशु भूमिष्ठ होता है। जरायुमुखका पूरा विस्फारण इसी क्रममें आरम्भ हो शिशु निकलने पर उसकी समाप्ति होती है। इस क्रमके पहिले झिल्ली फटकर पतला फेनकी तरह एक प्रकार पदार्थ निकलता है इसवक्त जरायुका आकार कम हो आता है। शिशु भूमिष्ठ होनेपर तीसरा

क्रम आरम्भ होता है और खेरी बाहर होनेसे उसका शेष होता है। शिशु प्रसूत होनेके आधा घण्टा बाद खेरी निकलती है; किसी वक्त दूसरा क्रम शेष होतेही बाहर निकलती है।
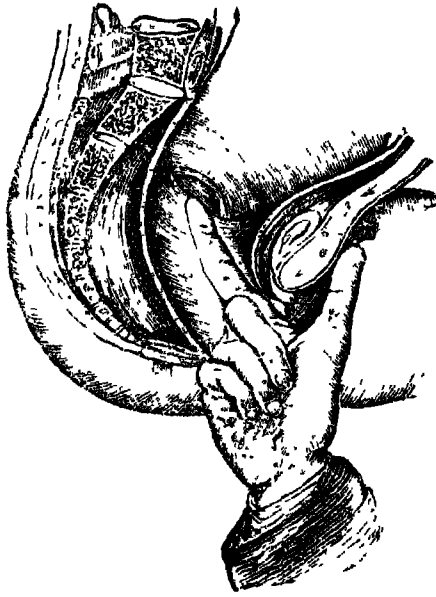
अपत्यपथमें सन्तान परीक्षा।

उत्तर वेदना।

शिशु भूमिष्ठ और खेरी निकल जानेसे जरायु संकुचित होता है, इस संकोचनसे अकसर दर्द होता है। इसीलिये इसको उत्तर वेदना कहते हैं। इस देशकी औरतें इसे पांतलहर का फिरना कहती हैं। यह दर्द अकसर प्रसवके कई घण्टे बाद उठता है; कभी यह क्रमागत २।३ दिनतक रहता है, इस दर्दसे प्रसूतीका अच्छा है, कारण प्रसवके बाद भी जरायुके भीतरका जमा हुआ रक्त आदि जो कुछ रहता है वह इस दर्दसे निकल जाता है।

विविध प्रसव।

पहिले कहचुके हैं, कि शिशुका मस्तकही अकसर पहिले प्रसव पथमें आता है। यही सहज प्रसव है कारण इसमे माता या शिशुको क्वचित्

कोई कष्ट होता है। अर्थात् शिशुका मस्तक माताके वस्तितटके तिर्य्यक व्यासद्वयके कोई एकमें समान्तर भावसे वस्तितटमें प्रविष्ट होता है। उसवक्त शिशुकी कपालास्थि माताके सामने अथवा पीछे रहती है। इसके बाद शिशुका मस्तक माताके वस्तिगह्वर में तिर्य्यक व्याससे उतरने लगता है; इसवक्त आवर्त्तन क्रियासे वह वस्तिके निर्गम द्वारके सम्मुख पश्चात् व्यासमें आकर उपस्थित होता है। इसके बाद वह थोड़ा फैलकर प्रसव-पथसे बाहर आता है।

शिरःप्रागवतरण।

मुख और ललाट।

शिशुका मस्तक पहिले न निकल कभी कभी इसका मुख बाहर आता है। किसी कारणसे पश्चात् कपालास्थि वस्तितटमें अवरुद्ध होनेसे माथेका विवर्त्तन नहीं होने पाता; इससे जरायुके संकोचनसे शिशुका मुखभी क्रमशः प्रसव पथसे उतरता आता है और अन्तमें बाहर गिर पड़ता है। कभी कभी मुखके बदले पहिले ललाट उतरता है; किसी कारणसे मस्तक उपयुक्त परिमाणसे विस्तृत नहीं होनेसे भी ऐसा होता है।

किसी किसी वक्त शिशुका माथा, मुख या ललाट आगे न उतर

वस्ति। वस्ति जंघा अथवा पैर निकले तो उसे वस्ति प्रागवतरण कहते हैं। इस प्रागवतरणसे शिशुको अपेक्षाकृत अधिक विपद होनेकी सम्भावना है; कारण आगे शिशुका निम्नांग अवतीर्ण होनेसे नाभिरज्जु के उपर दाब पड़नेसे शोणित संचालन बन्द होनेकी सम्भावना है। तथा शोणित संचालनमें बाधा पड़नेसे प्रायः शिशुकी मृत्यु होती है।
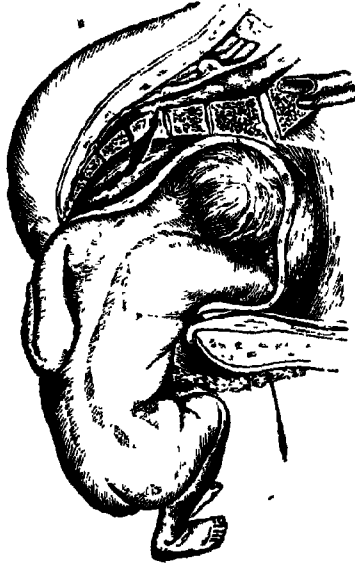
जानु-प्रागवतरण।

पार्श्वदेश। सब शरीरके बाद मस्तक निकलता है। भ्रूणका ऊर्ध्वांग या निम्नाङ्ग प्रसवपथमें न आकर कभी कभी इसके बगलमें आजाता है। इस अवस्थामें शिशुका कांधा पहिले निकलता है; या किसी वक्त केहुनी या हाथका पंजा आगे निकलता है। यह प्रसव अत्यन्त संकटमय है कारण इसमें माता और भ्रूण दोनोंके जानका डर रहता है।
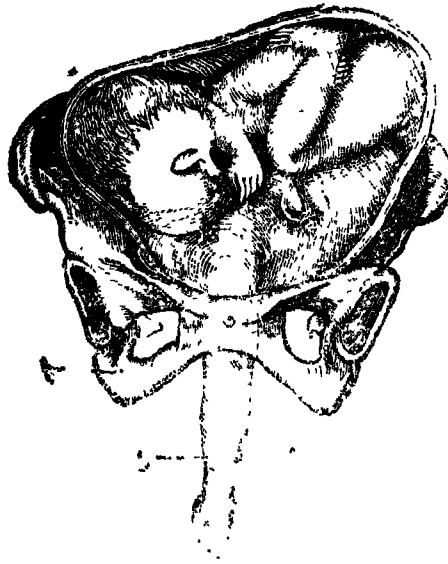
पार्श्वप्रागवतरण।

देखिये शिशुका दहिना हाथ निकल आया है।

१। शिशुका दहिना हाथ। २। मातृवस्तिकी दक्षिण बाहु। ३। वस्तिकी बाहुसंधि।

चिकित्सा।

ऊपर जितने प्रकारके प्रसव कष्ट आए हैं उसमें वस्ति और पार्श्वप्रागवतरण में विपद की सम्भावना है। बाकी दो प्रागवतरण की अपेक्षा पार्श्व-प्रागवतरण में शिशुका विपद अधिक होते देखा गया है। यहां शेषोक्त द्विविध प्रसवकी चिकित्साविधि लिखते हैं।

शिशुकी वस्ति पहिले प्रसव पथमें आती है वा नहीं सबसे पहिले इसका निर्णय करना चाहिये।

निर्णय।

उसका श्रोणिद्वय, उपस्थ आदि बाह्य जननेन्द्रिय अङ्गुलीसे मालूम होतो समझना कि वस्ति पहिले

उतर रही है। इस तरह उसका प्राग्वर्त्ती अंश निर्णीत होनेसे चिकित्सा करना चाहिये।

नाभिरज्जु रक्षा।

जिसवक्त शिशुको वस्ति पहिले निकले तथा प्रसव द्वारमें दिखाई देतेही चिकित्सक उसे अपने हाथसे धर लें। यदि पहिले पैर बाहर आवे तो चिकित्सक को सावधान होना चाहिये कारण इस अवस्थामें प्रसव पथ अच्छी तरह विस्फारित नहीं होने पाता और इसीसे शिशुका शिर जल्दी नहीं निकलता इसीलिये अकसर जान-पर नौबत आती है। इस दशामें शिशुके नाभिरज्जुमें दाब न पड़े इस विषयमें दृष्टि रखना आवश्यक है। शिशुके नाभिस्थलतक बाहर आनेपर मातृवस्ति जहां अधिक चौड़ी है वहीं रज्जु रखना।

हस्तद्वय।

नाभिस्थल बाहर होनेके बादही दोनो हाथ बाहर दिखाई देता है। यह न हो यदि शिशुके दोनो हात माथेपर उठ जाय तो भी सामनेसे शिशुका दोनो हाथभर नीचे उतारना। दोनो हाथ एक दफे न धर पिछला हाथ पहिले निकालना, फिर सामने का हाथ निकालना चाहिये।

मस्तक निर्गमन।

यदि सर्व्वाङ्ग निकलकर मस्तक अड़जायतो शिशुको तकलीफ अधिक बढ़जाती है। इस अवस्थामें शिशुके मुखमें हवा लगे इसलिये अङ्गुलीसे योनि को पश्चात् प्राचीर थोड़ी हटाकर मुंह बाहर करना तथा उदर प्राचीरमें हाथ रख जरायुको दबाना। इससेभी यदि जल्दी शिशुका माथा न निकले तो जरायु पर दाब दूसरेसे दिलाकर चिकित्सक शिशुके कपालके पीछे अङ्गुलीसे दबावें तो मस्तक जल्दी निकल आवेगा।

जानु प्रागवतरण।

दोनो कंधा आगे आता है फिर छाती विवर्त्तित होती है।

पार्श्वप्रागवतरण में अर्थात् जब शिशुका एक हाथ निकल आवे तब बाहरी उपायोंसे शिशुका मस्तक या वस्ति प्रसवपथ में घुमाकर लाना चाहिये। इसमे कृतकार्य्य न होनेसे चिकित्सक जरायुके भीतर एक हाथ डालकर शिशुका पैर निकालनेकी चेष्टा करें। यदि इससे भी भ्रूण बाहर न निकले तो शस्त्रसे काटकर प्रसव-कार्य्य सम्पादन करना चाहिये।

पार्श्व प्रागवतरण।

प्रसवमें बाधा।

नानाकारणोंसे प्रसवमें बाधा होती हैं, इन बाधाओंमें से कई प्रधान बाधाके बारेमें यहां लिखते हैं। जरायुकी ग्रीवा अत्यन्त दृढ़ होनेसे या उसका बाहरी मुख बंद हो जानेसे, किम्बा जरायु-ग्रीवामें किसी सबबसे घट्ठा पड़नेसे अथवा जरायु-मुखमें खराबघाव होवे तो जरायुका मुख सहजमें नहीं खुलता। तथा जरायुका मुख न खुलनेसे सन्तान अपत्यपथमें नहीं आसकती। इस अवस्थामें माता और शिशु दोनोका जीवन विपन्न हो जाता है।

जरायुका दोष।

जरायुमें किसी प्रकारका दोष न हो तो शिशु उसकेमुखसे निकल कर योनिमें आता है। इस अवस्थामें योनिमें कोई दोष हो तो उसमें से भी शिशु निकल नहीं सकता। अन्यान्य दोषोंसे योनिकी दृढ़ता अधिक विपज्जनक है। योनि नानाकारणोंसे दृढ़ होती है; उपदंशसे अथवा और कोई कारणसे घाव होनेपर योनि दृढ़ हो जाती है। तथा किसीके योनिकी प्राचीर स्वभावतः इतनी दृढ़ होती है कि सहजमें नहीं फैलती; इसीसे बालक निकल नहीं सकता।

योनिका दोष।

इसी तरह योनिद्वार और उसके पासवाले तन्तु समूहोंके विकृत अवस्थामें प्रसवमें प्रबल बाधा हो सकती है। वस्तिका विटप दृढ़ और भग-पुष्टमें शोथ होनेसे भी प्रसव प्रतिरुद्ध होनेकी सम्भावना है। इसके सिवाय माताकी वस्ति विकृत, संकीर्ण अथवा टेढ़ी होनेसे किम्बा वस्तिमें अर्व्वुद पैदा होनेसे भी प्रसव में बाधा होती है। मूत्राशय मूत्रपूर्ण और सरलान्त्र मलपूर्ण रहनेसे भी कभी कभी प्रसव प्रतिरुद्ध

अन्यान्य दोष।

हो जाता है। पर शेषोक्त दो बाधा बहुत सामान्य है। बाकी बाधायें बड़ी विषम है कारण सहज में उन सबका प्रतिकार नही होसकता।

शीर्षाम्बु।

कभी कभी भ्रूणके स्वाभाविक अवस्था दोषसे भी प्रसवमें घोर बाधा हो जाती है। इस प्रकारकी बाधाओंमें शीर्षाम्बुहीका उल्लेख करने योग्य है। भ्रूणके शिरमें अधिक पानी जमकर कभी कभी उसका आकार इतना बड़ा हो जाता है कि वह विकृत मस्तक किसी तरहसे जननीके प्रसव पथसे बाहर नही आसकता।

चिकित्सा।

योनिनालीमें घठ्ठा पड़ेतो उसे छूरीसे काटना चाहिये। विटप अत्यन्त दृढ़ हो तो उसके उपर सेंक देना उचित है। यदि इससे भी नरम न हो तो स्नेह द्रव्य मालिश कर अन्तमें छूरीसे कई जगह चीरदेना। भगपृष्ठ में शोथ हो तो उसमे कई एक छेद करना और उसमें अर्व्वुद हो तो पहिले उसे वस्तितटके उपर उठानेकी चेष्टा करना, तथा इससेभी कृतकार्य्य न होनेसे शंकुयन्त्रसे शिशुको बाहर निकाल लेना। यह कोशिश भी व्यर्थ हो जाय तो शस्त्रसे शिशुको काटकर प्रसव कार्य्य पूरा करना। वस्तिकी विकृति या संकीर्णता के सबब प्रसवमें बाधा हो तो, शंकुयन्त्र, विवर्त्तन, अकाल प्रसव-साधन, किम्बा मातृगर्भ विदारण करना चाहिये। शिशुके माथेमें पानी जमकर प्रसवमें बाधा होनेसे त्रिकूर्चक अस्त्रसे उसके माथेमें होशियारीसे छेदकर पानी बाहर निकालना अथवा शस्त्र प्रयोग से उसे तोड़कर प्रसव कार्य्य पूरा करना चाहिये।

अकालमें प्रसव।

जिसकी वस्ति विकृत अथवा संकीर्ण है उसको गर्भोत्पत्ति होना विशेष अमङ्गलका निदान है। इस लिये इस विषयमें पहिलेहीसे सतर्क होना चाहिये। गर्भ होतेही उसे अकालहीमें प्रसव कराना उचित है। इससे माता और शिशु दोनोंके जानकी रक्षा होती है; यदि यह काम असाध्य मालूम होतो गर्भके तरुण अवस्थाहीमें उसको नष्ट करना उचित है।

शंकुयंत्र या फर्सेप्स।

शंकु—बेड़ीकी तरह एकप्रकारके यंत्रको कहते हैं। महात्मा सुश्रुतने मूढ़गर्भ की चिकित्सामें शङ्कु-नामक यन्त्रके बारे जो लिखा है, वह प्राय: इसी प्रकारका था। आजकल जो शङ्कुयन्त्र व्यवहृत होता है वह विलायती है। विलायती शङ्कु दो प्रकार, छोटा और बड़ा। इसके प्रत्येक में एक एक फलक और मुट्ठी है। फलक लोहेका और मुठ्ठी काठकी है। मुठ्ठीके ऊपर एक खील है यही खील दो फलक को आवद्ध करनेसे एक जोड़ा शंकुयन्त्र होता है। बड़ी होशियारीसे इसे प्रयोग करना चाहिये।

शंकुयंत्र या फर्सेप्स।

(क) अधुना प्रचलित सिम्सनका फर्सेप्स।

(ख) „ „ जिगलका फर्सेप्स।

विकृत वस्ति।

जननीकी वस्ति नानाप्रकार से विकृत होती है। उसमेंसे कई एकके बारेमें नीचे लिखा जाता है।

(१) संकुचित वस्ति।—खर्व्वाकृति (नाटी) स्त्रीकी वस्ति सच-
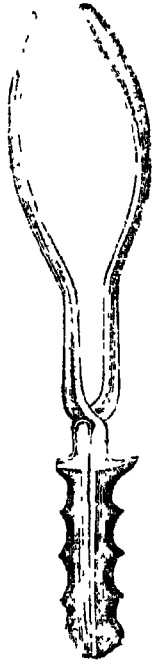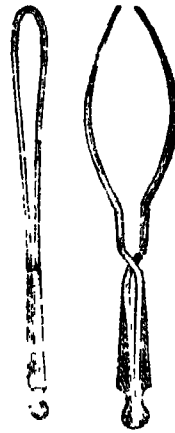
(क) (ख)

राचर ऐसही देखनेमें आती है शंकुचित वस्तिसे प्रसव में बाधा होती है तथा सन्तान सहजमें नहो निकलती है।

(२) विस्तृत वस्ति।—इस वस्तिका सर्व्वांश साधारण वस्ति की अपेक्षा बड़ा होता है; इसलिये प्रसव बहुत जल्दी होता है।

(३) शैशव वस्ति।—जिस स्त्रीकी वस्ति थोड़ेही उमरसे कठिन हो जाती हैं और अधिक उमरमें भी नही बढ़ती उसको शैशव वस्ति कहते हैं। इस तरह की वस्तिसे प्रसवमें विघ्न होता है।

(४) पौरुष वस्ति।—इस वस्तिका तट सचराचर स्वाभाविक, किन्तु इसका गह्वर गभीर और संकीर्ण तथा निर्गम पथका व्यास छोटा होता है।
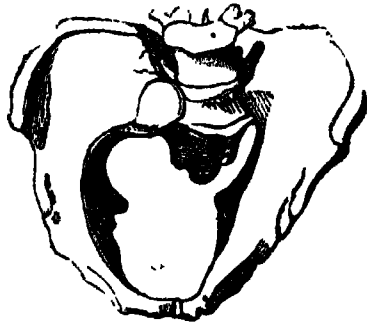
रिकेट या पूतनीग्रस्त वस्ति ।

(५) पूतनीग्रस्त वस्ति ।—रिकेट या पूतना रोगसे वस्तिमें एक प्रकार विकृति होती है। इसलिये वस्तितटका सम्मुख पश्चात् व्यास छोटा होता है। पृष्ठवंशमूलीय का कोर भाग बढ़ जानेसे और विटप शाखा पीछे हटजानेसे वस्तितटका आकार अङ्गरेजीके "8" अङ्कको तरह हो जाता है।

(६) भङ्गुर विकृत वस्ति। अस्थिका लवणांश कम हो जानेसे हड्डी कोमल और बेदम हो जाती है। अङ्गरेजीमें इसीका "अष्टीयो मेलेकिया" रोग कहते हैं। इस रोगके आक्रमणसे वस्ति बहुत विकृत हो जाती है।

(७) माकुवत् वस्ति ।—हड्डीके कोई कोई रोगसे पञ्चम कशेरुका अस्थि स्थानच्युत हो सामनेकी तरफ झुक जाती है। इससे वस्तितट का सम्मुख पश्चात् व्यास छोटा होजानेसे माकुरके आकारके तरह हो जाता है।

(८) संकीर्ण वस्ति ।—इस प्रकारकी वस्ति दोनो पार्श्वकी वस्तिबाहु भीतर के तरफ आजानेसे निर्गम-पथका अनुप्रस्थ व्यास छोटा हो जाता है। इस तरहकी विकृतिसे प्रसवमें भयानक बाधा होती है।

इसके सिवाय वस्तिप्राचीरमें अर्ब्बुद होनेसे, अथवा वस्ति-तिर्य्यकभावसे संकुचित हो तो उसेभी विकृत वस्ति जानना।

चिकित्सा।

वस्तिकी सामान्य विकृतिमें केवल स्वभावके उद्यमसे ही प्रसव कराना, यदि विकृति अधिक और गांरतर हो तो कृत्रिम उपायसे प्रसव कार्य्य सम्पादन करना चाहिये। इस दशामें अवस्थाभेदके अनुसार शंकुप्रयोग, विवर्त्तन, अकाल प्रसव साधन, अथवा कुक्षि-पाटन (सिजारियन् सेक्शन) यही चार प्रकारके उपायोंमें से कोई एक अवलम्बन करना चाहिये। ये चारो उपायोंको क्रमशः लिखते हैं। पाश्चात्य जगतके सुप्रसिद्ध प्रसव चिकित्सक लिश् मैन, विकृत वस्तिके किस अवस्थामें कौन उपाय अवलम्बन करना चाहिये, इस बारेमें जा संक्षिप्त नियम प्रगट करगये है यहां वहभी उद्धृत किया जाता है।

अनुप्रस्थ व्यास ४ इंचसे ३। इंच होनेसे शंकुप्रयोग आवश्यक।

"	३॥	" २॥। "	"	विवर्त्तन	"
"	३	" १॥ "	"	छेदन भेदन	
"	१॥ या इससे कममे कुक्षिपाटन				"

शंकु-प्रयोग।

शंकुप्रयोग के पहिले नीचे लिखी बातों पर दृष्टि रखना उचित है। शलाका और पिचकारीसे गर्भिणीका मूत्राशय तथा निम्नयन्त्र साफ करना चाहिये। जलथाली न फटे तो उसे फाड़ डालना और भ्रूणके माथे की सियन सब परिक्षा-कर शिशुका आसन निर्णय करना। शंकुप्रयोग करती बक्त अकसर बेहोश करना पड़ता है। इस विषयमें एक नियम पर दृष्टि रखनेसे सन्देह दूर होता है। भ्रूणका मस्तक वस्तिके

ऊपर हो तो बेहोश करना चाहिये ; यदि वह नीचे उतर आवे तो बेहोश करने की जरूरत नहीं है।

शंकुप्रयोगके समय प्रसूती को बायें तरफ सुलाना अच्छा है ; तथा उसका दोनो जंघा समेट पेटके ऊपर रख चौकी या उसके ऊपरवाले कठिन बिछौने के दक्षिण किनारेपर सुलाना। प्रसव सङ्कटापन्न होनेमें गर्भिणी को उतानी सुलानेमें सुबीता होता है।

प्रयोग में शयन।

शंकुके दोनो फलक गरम पानीमें तपाकर उसमें कार्ब्बलिक तेल अथवा कार्ब्बलिक भेसिलिन लगाकर प्रसवपथमें प्रवेश करना।

शंकुके दो फलको में से एक को ऊर्द्ध और दुसरे को निम्न फलक कहते हैं। बड़ो यंत्र का निम्न फलक पहिले और ऊर्द्धफलक पीछे से प्रवेश करना चाहिये। छोटे शंकुका दो में चाहे जो फलक प्रवेश कर सकते हैं। पीड़ा कम होनेपर ही शंकु धीरे धीरे प्रवेश करना उचित है तथा प्रसव पथके किसी स्थानमें अड़ जानेसे तुरन्त फलक निकाल लेना चाहिये ; तथा थोड़ी देर बाद फिर प्रवेश करना। दोनो फलक प्रविष्ट होजाने पर दोनो एकत्र कर सावधानी से खोल बन्द करना उचित है और खोल बन्द होनेपर आकर्षण और सञ्चालन आदि कार्य्य करना।

प्रवेशन।

खींचनाही शंकुका प्रधान कार्य्य है। सिर्फ दर्दके समय अपत्य पथके अक्षरेखा में भ्रूणका मस्तक धीरे धीरे खींचना चाहिये। जबतक शिशुका माथा वस्तितटके ऊपर रहे तबतक उसे नीचे और पीछे की तरफ खींचना। तथा वह नीचे आतेही तुरन्त पीछेकी

आकर्षण।

तरफ से सामने को खींचना ; अन्त में जब निर्गम द्वारके पास आवे तब शंकु ऊपर और सामने को खींचना चाहिये । इसी तरह शिशुका मस्तक शंकुसे विटपमे आजाने पर यदि देखें की दर्द जोरसे और नियमित हो रहा है तो खींचना बन्द कर प्रकृतिके ऊपर निर्भर करनेसे प्रसव आपही हो जाता है ।

प्रसव कार्य्यके सुबीते के लिये विलायत में नाना प्रकारके फर्सेप्स बनाया गया है ; जिसमे डेनमैन्, जिग्लर और सिम्सन् —यही तीन प्रसव चिकित्सक के बनाये फर्सेप्स अधिक प्रचलित है। यह त्रिविध शंकुमें जिग्लर का शंकु अधिक और सिमसन् का अधिकतर व्यवहृत होता है ।

फर्सेप्स आविष्कार होनेसे पहिले युरोप में भेकटिस् और फिलेट नामके दो प्रकारका यंत्र व्यवहृत होता था । आजकल इन दोनो का प्रयोग प्रायः उठगया है कहनेसे भी अत्युक्ति नही होगी ।

मूढ़गर्भ चिकित्सा ।

और

भ्रूणहन्तारक शस्त्रोपचार ।

गर्भ और प्रसव सम्बन्धीय समस्त प्रयोजनीय विषय आर्य्य ऋषिगणोंको विदित था । किस किस कारणोंसे गर्भ नष्ट होता है या प्रसवमें बाधा हो सकती है, बाधा कितने प्रकारकी है और बाधा विपत्ति होनेसे कौन उपायसे उन सब का प्रतिकार होता है, महर्षि सुश्रुत ने इसकी विस्तृत आलोचना की है । यहां उसे भी उद्धृत किया जाता है ।

निर्व्वचन।—गर्भ नष्ट हो प्रसव में बाधा होनेसे उसे मूढ़गर्भ कहते हैं।

मूढ़गर्भ चार प्रकार ;—कील, प्रतिखुर, बीजक, और परिघ।

प्रकार। बाहु, मस्तक और पैर उपरको तरफ तथा बाकी शरीर नीचेकी तरफ गठरीके आकारसे योनिमुखको रोध कर रखे तो उसे कील कहते हैं। एक हाथ, एक पैर और माथा निकलकर बाकी शरीर अटका रहने से प्रतिखुर कहते हैं। केवल एक हाथ और माथा निकले तो उसे बीजक जानना। और भ्रूण परिघ की तरह योनिमुख आवृत किये रहे तो उसे परिघ कहते हैं।

निदान। ग्राम्यधर्म्म, सवारीका पथश्रम, ठोकर लगना, गिरना, किसी तरह से चोट लगना, विपरीत भावसे शयन और उपवेशन, उपवास, मलमूत्र वेगधारण, रुक्ष, कटु और तिक्त भोजन, शाक या अतिशय खार भोजन, अतिशय वमन, विरेचन, दोलन, और गर्भपातन आदि कारणोंसे गर्भ नष्ट होता है।

निर्णय। गर्भका स्पन्दन आदि लक्षण लक्षित न होनेसे गर्भिणी का सब शरीर श्याव या पाण्डुवर्ण तथा श्वास में दुर्गन्ध और गर्भमें शूलवत् वेदना होनेसे गर्भस्थ सन्तान गर्भमें मरगयी है जानना।

चिकित्सा। मूढ़गर्भ रूप शल्यका उद्धार करना अति कठिन है। इसमें सचराचर उत्कर्षण, आकर्षण, स्थानापवर्त्तन, उत्कर्त्तन, भेदन, छेदन, पीड़न, ऋजुकरण और दारण,—यही नौ प्रक्रियाओंमें से एक की जरूरत पड़ती है। इनमे से भेदन, छेदन, और दारण यह त्रिविध कार्य्य

से भ्रूणके अङ्गप्रत्यङ्गोंका छेदन करना पड़ता है; बाकी ६ प्रक्रिया कर कौशल से सम्पादित होती है। महर्षि सुश्रुत कहते हैं कि गर्भस्थ शिशु जीवित रहनेसे कदापि यन्त्रसे दारण नहीं करना। कारण इससे जननी और सन्तान दोनोंके प्राण नाश होते हैं। सुश्रुत यन्त्र प्रयोग के पक्षपाती नहीं हैं। उनका मत यह है कि पहिले कर कौशल या औषधादि से मूढ़गर्भ निकालने की कोशिश करना; इस से कार्य्यसिद्धि न होने से यंत्र प्रयोग उचित है। अन्तर्मृत शिशुके अङ्गप्रत्यङ्गादि को छेदने के लिये सुश्रुत मण्डलाग्र * और वृद्धिपत्र यही दो प्रकार के यन्त्रको काममें लाने को कहते हैं। इनमें से मण्डलाग्र नामक यंत्रका व्यवहार उनके मतसे प्रशस्त है, कारण तीक्ष्णाग्र वृद्धिपत्र द्वारा जननीके अपत्य-पथमें आघात लगने का डर है।

पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान में मूढ़गर्भ या संकटापन्न प्रसव के चिकित्साके बारे में प्रायः इसीतरह का उपदेश है। इनके मतसे भ्रूणहन्तारक शस्त्रोपचार चार प्रकारका है; जैसे क्रेनियटमी, सिफालोट्रिप्सि, डिक्यापिटेशन और एभिसारेशण।

छेदन भेदन।

इस प्रक्रियासे भ्रूणका मस्तक चीर कर उसी छिद्रसे मस्तिष्क बाहर निकालना। मस्तिष्क निकाल-लेने से मस्तक का आकार छोटा हो जायगा; तब क्रोचेट और हुक आदि यंत्र से सन्तान को बाहर निकालना चाहिये। भ्रूण हन्तारक शस्त्रोपचार में सचराचर

---

* मण्डलाग्रं तु कर्त्तव्यं वृद्धिपत्रं विजानता।
वृद्धिपत्रं हि तीक्ष्णाग्रं नारीं हिंस्यात् कदाचन॥

सुश्रुत—चिकित्सास्थान, १५ अध्याय।

पांच यंत्र व्यवहृत होते है; जैसे पार्फोरेटर, क्रोचेट, भार्टिब्रेलहुक, क्रेनियटमी, फर्सेप्स और सिफेलोट्राइब।
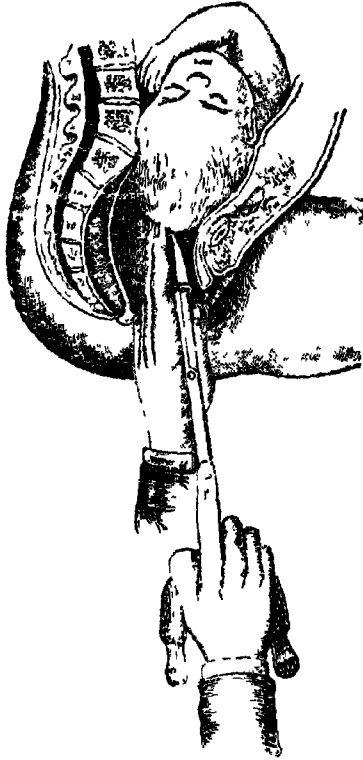
भेदन और छेदन प्रक्रिया।

पार्फोरेटर से भ्रूणको करोटी काटी जाती है।

पार्फोरेटर यंत्र में दो चोखा फलक है। इससे करोटी विदारित होती है। इसी लिये इसे पार्फोरेटर कहते हैं। इसे क्रेनियटमी—

पार्फोरेटर।

सिजार्स भी कहा जा सकता है। इसके दो फलक का बाहरी हिस्सा चोखा होनेसे करोटी को काट कर दोनो तरफ फैला देता है।

क्रोचेट देखने में ठीक ग्रड़सी की तरह है। पर यह खूब मज़-बूत और तीक्ष्णाग्र है। करोटीके बाहरी या भीतरी किसी कठिन अंशमें हुक लगा-कर बेट धर कर खींचना पड़ता है। इस यंत्रका व्यवहार बहुत कम है। मेटिं बेल हुक प्रायः क्रोचेट की तरह होता है।

क्रोचेट।
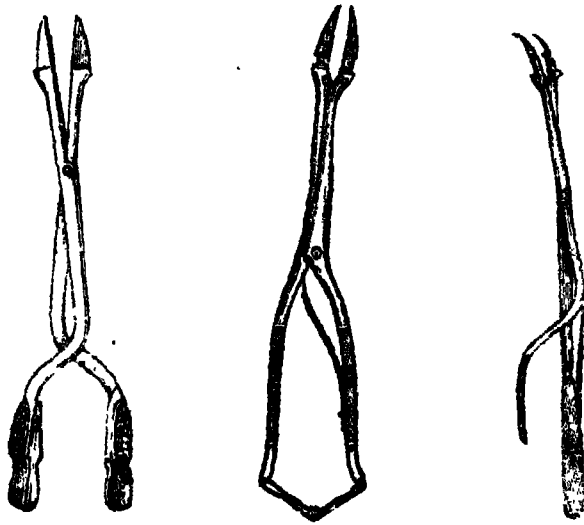
नानाप्रकारके पार्फोरेटर।

क्रेनियटमी फर्सेपस दो फलक से बनता है। तथा दोनो फलक के भीतरी तरफ आरी की तरह दांत रहता है। ऐसा दांत रहनेसे भ्रूणका मस्तक मजबूत धरने में आता है।

क्रेनियटमी फर्सेप्स।

सिफालोट्राइब भी दो कठिन फलकसे बनता है। इससे माथे का कई टुकड़ा कर सहज में बाहर किया जा सकता है। सिफालोट्राइब से जो काम होता है उसे सिफालोट्रिपसि कहते हैं।

सिफालोट्राइब।

किसवक्त क्रेनियटमी प्रयोग करना चाहिये, इसबारे में मत-भेद दिखाई देता है। पर भिन्न भिन्न मत का समन्वय साधन करनेसे केवल यही जाना जाता है कि साधारणत: जहां वस्तिका व्यास तीन इंच से लगा १॥ इंचसे भी कुछ अधिक है वहां क्रेनियट की जरूरत है। ठीक १॥ इंच हो तो सिजारियन सेकशन अर्थात् कुक्षिपाटन करना चाहिये।

अस्वाभाविक गर्भ।

एकसे अधिक भ्रूणका उद्भव, विकृत भ्रूणोत्पत्ति, अथवा जरायुके सिवाय अन्य स्थानमें गर्भोत्पत्ति होनेसे उसे अस्वाभाविक गर्भ कहते हैं।

एकाधिक भ्रूणोत्पत्ति।

दो, तीन, चार और कभी कभी पांच भ्रूण पैदा होता है। पर ऐसी घटना बहुत कम देखने में आती है। गड़ में ८० गर्भमें एक यमज सन्तान होती है, ७००० गर्भमें एक, तीन सन्तान उद्भूत होती है, चार या पांच सन्तानकी सम्भावना इससे भी कम है।

वहिर्जरायुज गर्भाधान।

(Extra-Uterine Gestation.)

जरायु-गह्वर के सिवाय अन्य स्थानमें भी अण्ड अनुप्राणित और परिस्फुरित हो सकता है। पर इस तरह का गर्भाधान क्वचित

देखने में आता है। पर सभ्यजगत में आजतक कितने अस्वाभाविक गर्भ हुए हैं उसका श्रेणी विभाग नीचे लिखा जाता है।

यमज सन्तान प्रसव।

१। नालीय या टिउब्याल ;—अण्डवहा (फेलोपियन) नली में अण्ड अनुप्राणित और परिस्फुरित होता है। तथा इसके दो प्रकार है। (क) जरायुप्राचीर और नलीके संयोग स्थल में अण्डको

संस्थिति। (ख) अण्डवहा नाली का झालरवाला मुख और अण्डाधार के भीतर अण्डकी संस्थिति।

२। औदरीय या एव्डोमिनैल ;—उदर गह्वरमें अण्डका निवेशन। इसके दो प्रकार। (क) प्राथमिक अनुप्राण के आरम्भसे उदर में निवेशन तक। (ख) द्वैतीयक अर्थात् नालीगर्भ नालीविदीर्ण हो जानेसे अण्डवहा से गर्भमें जाकर रहता है।

३। अण्डाधारीय या ओभेरियान ;—ओभेरी अर्थात् अण्डाधार के भीतर अण्डका अनुप्राणन, परिस्फुरण और निवेशन। इसके सिवाय विखण्डित जरायुके अपरिस्फुट शृङ्गमें अथवा किसी स्थालीमें अण्ड जानेके अनुप्राणित और परिस्फुरित होता है।

केवल एकके पैरसे कातीतक बाहर आया है ; दोनोका मस्तक प्रसवपथमें अटका है।

ये तीन प्रकारके अस्वाभाविक गर्भमें भी गर्भसूचक प्रायः सब लक्षण दिखाई देते हैं, पर ऐसे गर्भका निर्णय और चिकित्सा करना कठिन है। इस दशामें गर्भिणी और गर्भस्थ शिशुकी अवस्था अत्यन्त सङ्कटापन्न हो जाती है। इस लिये अस्वाभाविक गर्भ निर्णित् होते ही भ्रूणका प्राणनाश करना उचित है। पर इस समयका शस्त्रोपचार बहुत कठिन है, बहुदर्शी प्रसव-चिकित्सकके सिवाय और किसीको ऐसे कठोर कार्य्यमें हाथ लगाना उचित नहीं है ; कारण ऐसा करनेसे भ्रूणहत्या और स्त्रीहत्याकी पापमें लिप्त होना पड़ता है।

ऊपर कहे हुए उपाय समूहोंसे प्रसव साधन असम्भव जान पडे तो कुक्षिपाटन या सिजारियान् सेकशन करना चाहिये। किसी वक्त यह प्रक्रिया

कुक्षिपाटन।

बड़ी विपज्जनक थी, किन्तु आजकलके पाश्चात्य शल्य चिकित्साके

बहुत सहज और निरापद जान पड़ती है। ऐसे प्रक्रियासे गर्भिणीका उदर विदीर्ण कर, इसी पथसे भ्रूण निकालना चाहिये, इस उपायसे सजीव भ्रूण भी निकल सकता है, किन्तु इसमें माताको बड़ी विपदमें पड़ना पड़ता है। पहिले जमानेमें यही शस्त्र चिकित्साका प्रचार भारतमें था। सुश्रुत आदि कह गये हैं कि मूढ़गर्भ जीवित रहते घृताक्त हाथ योनिमें डालकर धात्री सन्तानको निकाले, गर्भ नष्ट होनेसे शस्त्रपण्डिता भयशून्या और लघुहस्ता धात्रीको योनिके भीतर शस्त्र प्रवेश करानेको कहना। सजीव गर्भमें शस्त्र प्रयोग करना चाहिये। भ्रूणका जो जो अङ्ग योनिसे संसक्त हो उसी अङ्गोंमें शस्त्र लगाकर निकालना चाहिये। शङ्कु अथवा युग्म शंकुसे मूढ़गर्भ खींचना चाहिये। आसन्न प्रसवा गर्भिणी वस्तमाने विपन्न हो यदि उसकी कुक्षि स्पन्दित होतो चिकित्सक को गर्भ विदारकर सन्तानका उद्धार करना चाहिये।

प्रस्तावना।

आयुर्वेद-चिकित्सापर जो साधारणका मनोयोग दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है, यह अवश्य बड़े आनन्दका विषय है। जिन सब असाधारण गुणोंके बलसे आयुर्वेद चिकित्सा सब चिकित्सासे श्रेष्ठ है, वही सब रहस्य जाननेके लिये लोग व्यग्र हो रहे हैं। पर आयुर्वेद शास्त्रके सब ग्रन्थ संस्कृत भाषामें रहनेके सबब दरिद्र भारतवासीको अर्थकरी विद्या अंगरेजी आदि सीखनेके बाद संस्कृत पढ़नेका अवसर नहीं मिलता; सुतरां लोग अपना मनोरथ पूरा करनेमें समर्थ नहीं होते हैं। साधारणके सुबीतेके लिये कई महात्माओंने कई एक सानुवाद आयुर्वेद ग्रन्थको प्रचारकर संस्कृत न जाननेवालोंको आयुर्वेद शिक्षाका सुबीता किया है। तथापि वर्त्तमान समयमें विविध ग्रन्थ अनुशीलनके लिये चाहिये जैसा अवकाश न रहनेके सबब उक्त ग्रन्थोंसे लोगोंका मनोरथ पूरा नहीं हो सकता। इधर बहुतेरे लोग हिन्दी भाषाके केवल एक ग्रन्थसे चिकित्सा शास्त्रको सब बातें जानना चाहते हैं; ऐसी पुस्तकके अभावसे लोगोंको प्रबल इच्छा चिकित्साशास्त्र जाननेकी पूरी न होनेसे दुःखित हो रहे हैं। तथा रोग-प्रवण भारतवासी प्रत्येक गृहस्थको चिकित्सा विषयमें व्युत्पत्ति होना भी एकान्त आवश्यक हो रहा है; कारण बहुतेरे चिकित्सकशून्य स्थानवासियोंको उपयुक्त चिकित्सकका अभाव और दरिद्रोंको चिकित्सापयोगी अर्थके अभावसे दारुण रोग यंत्रणा भोगकर अकालमें कालके कवरमें पड़ते दिखाई देता है।

मैंने यही सब बाते विचारकर प्रत्येक मनुष्य सहजमें चिकित्सा कर सकें इस आशासे "वैद्यक-शिक्षा" नामक यह पुस्तक तयार किया है। इसमें यथाक्रम स्वास्थ्यरक्षा, रोगपरीक्षा, सब रोगोंका निदान, लक्षण और प्रणाली, रोग विशेषमें औषधप्रयोग तथा पथ्यापथ्य, काढा, औषध, तेल, घृत, मोदक, मकरध्वज आदि बनानेकी विधि और धातु आदिका शोधन, मारण आदि विषय इसमें सन्निवेशित किया गया है। आयुर्वेद-शास्त्रके भिन्न भिन्न ग्रंथोंमें हरेक रोगोंपर बहुतेरी दवायें लिखी है, उनमें से जो जो दवायें प्राय सब चिकित्सकोंके द्वारा व्यवहृत होती है, तथा जो सब दवायें हमारे कुलपरम्परासे व्यवहार कर हजारों रोगियोंपर परिक्षाकर अव्यर्थ स्थिर हुई है ; इस ग्रन्थमें वही सब परीक्षित दवायें सन्निवेशित की गई है। अव्यवहृत या कदाचित व्यवहृत दवायें जान बूझकर त्याग की गई है, और कहांतककी साधारण व्यक्तिमात्र जिसमें केवल इसी पुस्तकके सहायतासे बिना किसीका उपदेश लिये चिकित्सा कर सके, तदुपयुक्त यह पुस्तक बनानेकी चेष्टा की गई है। अब गृहस्थ मात्र यदि चिकित्सामें व्युत्पत्ति लाभकर परिवारवर्ग और अपने शरीरको निरोग रख सकें तब यह परिश्रम सफल हुआ समझूंगा।

श्रीनगेन्द्रनाथ सेन कविराज।

सूचीपत्र ।

प्रथम खण्ड ।

स्वास्थ्यविधि ।

रोग-परीक्षा ।

नाड़ी परीक्षा ।

तापमान यन्त्र ।

मूत्रपरीक्षा ।

नेत्रपरीक्षा ।

अरिष्ट-लक्षण ।

रोग विज्ञान ।

ज्वर ।

प्लीहा।

यकृत्।

ज्वरातिसार।

अतिसार।

प्रवाहिका आमाशय रोग।

ग्रहणी रोग।

मेदोरोग।

उदर रोग।

शोथ रोग।

कोषवृद्धि।

गलगण्ड और गण्डमाला।

श्लीपद।

विद्रधि व्रण।

भगन्दर।

उपदंश और व्रध्न।

कुष्ठ और श्वित्र।

शीतपित्त।

अम्लपित्त।

विसर्प और विस्फोट।

नेत्ररोग।

शिरोरोग।

स्त्रीरोग।

गर्भिणी चिकित्सा।

सूतिका रोग।

स्तनरोग और स्तन्यदुष्टि।

धातु आदिको शोधन और मारण विधि।

जीर्ण और विषम ज्वरमें।

प्लीहा और यकृत्।

ज्वरातिसार ।

अतिसार ।

आमातिसारमें ।

वातातिसारमें ।

पित्तातिसारमें ।

कफातिसारमें ।

सान्निपातातिसारमें ।

शोकादिजातिसारमें।

पित्तकफातिसारमें।

वातकफातिसारमें।

वातपित्तातिसारमें।

पक्वातिसारमें।

ग्रहणी।

रक्तपित्त ।

राजयक्ष्मा ।

कासरोग ।

हिक्का और श्वास ।

कोषवृद्धि ।

गलगण्ड और गण्डमाला ।

श्लीपद ।

विद्रधि और व्रण ।

भगन्दर ।

उपदंश ।

कुष्ठ और श्वित्र ।

चतुर्थ खंड।

विष चिकित्सा।

जलमज्जन और उद्बन्धनसे हुए मुमूर्षुकी चिकित्सा।

सर्दीगर्मी चिकित्सा।

आतप व्यापद चिकित्सा।

तत्वोन्माद चिकित्सा।

ताण्डव वातव्याधि चिकित्सा।

स्नायुशूल चिकित्सा।

भग्नचिकित्सा।

शीर्षाम्बुरोग चिकित्सा।

रसायन विधि।

वाजीकरण विधि।

विविध टोटका।

वैद्यक-शिक्षा

पञ्चम खंड।

शारीर विज्ञानकी सारबातें।

वैद्यक-शिक्षा

षष्ठ खंड।

शरीरतत्त्व और जीवविज्ञान।

अस्थि।

पेशीसमूह।

स्नायुसमूह।

मस्तिष्क।

मेरुरज्जु।

शरीर और मन।

शोणित-सञ्चाल प्रणाली।

शोणित सञ्चालन।

धमनी या आर्टारि।

आदि कण्डरा।

वेदाङ्ग-शिक्षा।

सप्तम खंड।

धात्री-विद्या।

सूचीपत्र सम्पूर्ण ।

वर्णानुक्रमिक निर्घण्ट ।

शास्त्रीय औषध।

शास्त्रीय औषध।

फ।

शास्त्रीय औषध।

ब।

विषय	पत्राङ्क
वज्रक्षार	३९१
वार्लि और एराकट	३९१

शास्त्रीय औषध।

भ ।

शास्त्रीय औषध ।

ल ।

शास्त्रीय औषध ।

श ।

शास्त्रीय औषध।

ष।

शास्त्रीय औषध।

शास्त्रीय औषध।

शास्त्रीय औषध ।

सूचीपत्र सम्पूर्ण ।

द्वितीय संस्करणका विज्ञापन।

बड़े आनन्दका विषय है कि फिर वैद्यक-शिक्षाका द्वितीय संस्करण भी छप गया। प्रथम संस्करण को दो हजार प्रति जितनी जल्दी बिकी उतनी आशा हमें नहीं थी। अवश्य यह ईश्वरकी कृपा और ग्राहक अनुग्राहक गणोंकी सहायताका फल है। इस बार नये उत्साहसे वैद्यक-शिक्षाका द्वितीय संस्करण को चार हजार प्रति हमने छपवाया है। प्रथम संस्करणमें बहुत कुछ त्रुटि रह गई थी। इस बार उन त्रुटियोंको सुधारनेके साथ साथ कई नवीन और परीक्षित औषधियोंके योग अधिक दिये गये हैं। इसके सिवाय आयुर्वेदीय संस्कृत नामावलीका हिन्दी और बङ्गला भाषाका सर्वसाधारणके समझने लायक पुस्तकके अन्तमें एक निघण्ट दिया गया है।

अन्तमें पाठकोंसे सविनय निवेदन है कि यदि कोई त्रुटि या भूल रह गई हो तो कृपाकर सूचित करें जिसे हम तृतीय संस्करणमें सन्निवेषित करेंगे।

श्रीनगेन्द्रनाथ सेन कविराज।

दन्तधावन चूर्ण।

इस चूर्णके व्यवहारसे मसूड़ों की पीड़ा, पीब निकलना, मसूड़ों की कमजोरी और मुखसे बदबू आना आदि दांतकी सब बीमारियां दूर हो जाती हैं, और दांत मोती के समान चमकने लगते हैं। एक डिबियाका दाम ॥) आठ आने, डाकमहसूल और पाकिंग =) दो आने, भी० पी० में ॥=) ग्यारह आने।

कोषवृद्धिकी दवा।

इससे बुखार आदि उपद्रवों से युक्त अण्डकोष (फोता) वृद्धि अर्थात् एकशिरा रोग और उससे उत्पन्न हुआ क्लेश दूर होता है। यदि नश्तर से बचना चाहो तो इसके व्यवहार में देरी मत करो। यदि यह बीमारी एक वर्षसे ज्यादे दिनकी होतो दवा कुछ दिन ज्यादह व्यवहार करना चाहिये। दो डिबिया दवा और एक शीशी तेलका दाम १) रुपये, डाकमहसूल और पाकिंग ।=)।

श्वासारिष्ट।

इसके सेवन करते ही फायदा मालूम होता है। इससे सब प्रकारका श्वास, श्वासकष्ठता, (सांस लेनेमें तकलीफ होना) छातीपर बोझसा मालूम पड़ना, सांस न खींच सकना, मुह फीका रहना और अंगोंका टूटना, सब शरीर में पसीना आना हाथ पैर ठण्ढा होना, कफके संग खून गिरना आदि उपद्रव निश्चय दूर हो जाता है। १ शीशी दवा और १ डिबिया गोलियोंका दाम १॥) रुपया डाकमहसूल और पाकिंग ।=) भी० पी० में मंगाने से १॥=)।

दरजन का दाम १५) रुपये।

यकृदरि कषाय।

इसके व्यवहार से यकृत् का बढ़ना, यकृत का शूल, सूई से छेदनेके समान पीड़ा, ज्वर, मुह और आंखोंकी सफेदी, रुचि न आना, कामला, शरीर सूजना और अग्निमान्द्य आदि यकृत्से उत्पन्न रोग नाश हो कर यकृत् कर्मकी वृद्धि होती है।

एक शीशी दवा और १ डिबिया गोलियोंका दाम १) रुपया डाकमहसूल और पाकिंग ।=)।

क्षतारि घृत।

इस घी से सब प्रकारके जख्मोंका घाव, अधिक पारेके दोषका घाव और नासूर घाव ऐसा कठिन घाव जिसमें हड्डी नजर आती है आदि सब घाव जड़से दूर हो जाते हैं। १ डिबिया का दाम ॥) बारह आने डा० म० और पाकिंग =) भी० पी० से ॥=)।

अशोकारिष्ट।

इसके सेवन से ऋतुशूल रोग, महीना न होना, इसके सिवाय अधिक रक्त गिरना, श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर और मेह आदि रोग, रुधिर (आंव) का रक्त निकलना पेटकी पीड़ा, शरीर की दुर्बलता, और गर्भ न रहना आदि सब स्त्रीरोग दूर होकर जरायु इसकी गर्भधारणकी शक्ति होती है। मालूम होने से पीछे इसके सेवन करने से बिना समय प्राण नष्ट होने की शङ्का से छुट जाती है। ये सब रोग बिना समय महीना न होने हो से होता है। ठीक समय ऋतु होने से स्त्रियोंकी ये सब रोग होनेकी कुछ भी शङ्का नहीं रहती है। एक शीशी दवा और एक डिबिया गोलीका

दाम १॥) रुपया डा० म० और पार्किं ।✓) भी० पी० में मंगाने से १॥✓)। एक दरजन १५ रुपये।

नेत्रबिन्दु।

इससे आंख उठना, लाली, पीड़ा, पानी बहना, मांस बढ़ना, फुली, जाला, दूरकी चीज न देखना, आदि आंखों की सब बिमारी दूरहो जाती है। की शीशीका दाम एक रुपया डा० म० और पार्किं ।) ।

अर्शोहर वटिका।

इस गोलीको सेवन करने से बहिर्बलि, अन्तर्बलि, बवासीर की जलन, उसकी पीड़ा और खून बहना आदि शीघ्र दूर होजाता है।

एक डिबिया (४० गोलीवाली) का दाम १।) रुपया डा० म० और पार्किं ✓)।

कर्पूरारिष्ट।

इसके सेवनसे हैजा, अतिसार, पाखाना गिरना, रक्तातिसार और अजीर्ण आदि रोग दूर होजाते हैं। यह अर्क कपूर और क्लोरोडाईन आदि औषधियोंसे अधिक फलदायक है। यह हर समय घर और मुसाफिरीमें सङ्ग रखना चाहिये। हमारी इस दवा को प्रायः राजा, महाराजा और जमींदार व बड़े बड़े कारबार करनेवालों को दाम करनेके लिये मंगाते हैं। एक शीशी का दाम ।) आने डा० म० और पार्किं ।) ।

अश्वगन्धारिष्ट।

इस बड़ा उपकारी दवासे सूजाका दोष, प्रमेह आदि से शरीरकी क्षीणता, पुराना बुखार, मन्दाग्नि रक्त कम होना, नसोंकी कमजोरी, सिरका घूमना, कम देखना, कम सुनना और मूर्छा आदि अनेक रोग दूर होजाते हैं। यह अरिष्ट देशी यन्त्र द्वारा रसायनिक प्रक्रियासे तैयार होता है। एक शीशी का दाम १) रुपया, डा० म० और पार्किं ।✓), भी० पी० से १।✓)।

वातारिमर्द्दन तैल।

यह दवा दर्दकी जगह पर मलनेसे सब तरह का वायु अर्थात् हाथ, पैर, पीठ, पसुरी, कमर और जांघ आदिमें स्थित वायुकी पीड़ा दूर होजाती है। इसके मलनेसे बुढ़ापेका भी वातरोग दूर होजाता है। एक शीशी का दाम १) रुपया डा० म० और पैकिंग ।) भी० पी० से १।✓)।

सरलभेदी वटिका।

यानि जुल्लाब।

जिनका पेट अकसर साफ नहीं रहता, वे यह दवा खासकते हैं। इसके खानेसे सहज ही में भोजन कर बिना कष्ट पेट साफ होजाता है। यह विरेचनके लिये एक उत्तम देशी दवा है। एक डिबिया १० गोलियोंका दाम ॥) आठ आने, डा० म० और पैकिंग ✓)।

वासकारिष्ट।

इस औषधिसे सब तरह की खांसी, सर्दी, छातीकी पीड़ा, श्वासकष्टता, सांस लेनेमें तकलीफ, रुधिर युक्त खांसी (जिसमें थूकके सङ्ग खून गिरता है) रातको आने-वाला बुखार और उसके सबबसे पसीना

घाव आदि सब रोग शीघ्र दूर होजाते हैं। एक शीशीका दाम १) रुपया, डा० म० और पैकिंग ।), वी० पी० से १।~)।

शोणितशोधक।

याने कोढ़की अकसीर दवा।

आज तक कोढ़की कोई फलकी दवा नहीं निकली है। हमने बहुत परिश्रम से इस रोग की यह अव्यर्थ अर्थात् फलकी दवा निकाली है, इस दवासे बिगड़ा हुआ रुधिर शुद्ध हो जाता है और अशुद्ध रुधिर से हुई पैर था सब शरीरकी जलन, शरीरमें कहीं कहीं काले २ चकत्ते पड़ने, सूईसे छेदनेके समान पीड़ा, नाक और कान का जलना, शरीरमें घाव होना, उसकी पीड़ा और शरीर का रङ्ग बिगड़ना आदि आराम होता है। १५ दिनके खावक दो दफार की दवाका दाम ४) रुपये, डा० म० और पैकिंग ॥~)।

व्रणारि तैल।

इस तेलको घावपर लगानेसे सब प्रकारके बिगड़े हुये घाव अर्थात् नासूर, फुरफुरे, अर्श (बवासीर) भगन्दर बिना शोधा पारा खानेसे भया घाव आदि और भी सब प्रकारके कष्टसाध्य घाव, बालकों की खुजली आदि रोग शीघ्र दूर हो जाते हैं। यह घावका मानो काल है। एक शीशीका दाम ॥) बारह आने, डा० म० और पैकिंग ।) चार आने।

रतिविलास।

धातु दौर्बल्य और ध्वजभङ्गका

अव्यर्थ महौषध।

हमारी इस दवासे सैकड़ों रोगी धातु सम्बन्धीय रोगोंसे छूट गये हैं, जो लोग अनेक दवा खाकर भी अच्छे नहीं हुये हैं और निराश हो जीनेकी आशा छोड़ बैठे हैं उनसे विशेष अनुरोध करते हैं कि वे एकबार हमारी इस दवाको भी खाकर आजमावें। धातु सम्बन्धीय रोग आराम होनेके सिवाय इससे भूख बढ़ती है; नींद आती है और मस्तिष्क तथा आयुका बल बढ़ता है। दो हफ्तेके व्यवहार तैल और दो किस्मकी दो डिब्बी दवाओंके दाम ४) रुपये, डा० म० और पैकिंग ।~) आने।

पञ्चतिक्त कषाय।

पञ्चतिक्त कषायके सेवन से रोज आने-वाला बुखार, मलेरिया ज्वर, पैत्तिक ज्वर, पारीसे आनेवाला बुखार, जूड़ी, (जड़ैया) कापसिक्री (सिकड़ी) और मलव कुल बुखार, एक दिन में दोबार आनेवाला बुखार, अज्ञागत बुखार, प्लीहका बुखार, धातुओं में प्राप्त विषमज्वर, मुख और आंख आदिकी सफेदी, मुखका स्वाद खार होना, शरीर दुबला होना, बारबार कुनैन खानेसे दबाहुआ बुखार निःसन्देह दूर हो जाता है। यह दवा देशी जड़ी बुटीसे रासायनिक प्रक्रियासे बनाई गई है। एक शीशी दवा और एक डिबिया गोलीका दाम १) रुपया, डा० म० और पैकिंग ।~)।

अमृतधारी चूर्ण।

इससे बालकोंका अजीर्ण, अग्निमान्द्य, अतिसार और दांत निकलते समय की बिमारियां, बुखार आदि अनेक रोग दूर हो जाते हैं। इससे तकलीफ से निकलने वाला दांत सुखसे निकल आता है। एक शीशीका दाम १) रुपया, डा० म० और पैकिंग ।)।

प्रमेह बिन्दु।

(जगद्विख्यात सब प्रकार के सुजाक की अकसीर दवा।)

यह दवा से पिशाब की जलन, चरीपुले पानीके समान पिशाब होना, बार बार पिशाब होना, पीब और रुधिर मिला हुआ पिशाब होना, पिशाब से पीब चूनका आना, तथा धातका होना मस्तिष्क की कमजोरी सिर घूमना, शुक्रमेह, मधुमेह, धातुदौर्बल्य, लघुविकार, अधिक पिशाब होना, मूत्रकृच्छ, नया, पुराना और औप-सर्गिक प्रमेह, हाथ और पैर की जलन आदि बिमारी दूर होजाती है। खासकर यह धातुदुर्बलता की उत्तम दवा है। एक शीशी दवा और एक डिबिया गोली का दाम १।) डेढ़ रुपये, डा० म० और पैकिंग ।-), भी० पी० में मङ्गाने से १॥-)। १२ शीशी १५) डा० म० २॥)।

पञ्चतिक्त वटिका।

इससे खानेसे प्लीहा और यकृतयुक्त नया, पुराना बुखार, विषमज्वर, बारीसे आने वाला बुखार आदि सब प्रकारका बुखार बहुत जलदी दूर हो जाता है। बुखार दूर होने पर कुनैन खानेसे ताकत नहीं रहती, परन्तु पञ्चतिक्त वटिका में यह दोष नहीं है। इसलिये इसे सबकोई सुखसे खा सकते हैं। दाम १) रुपया, डा० म० और पैकिंग ≈). इसी महसूल में चार डिबिया तक आसकती है।

अग्निदीपक।

इसके खानेसे बहुत बढ़ा हुआ अग्नि-मान्द्य, अजीर्ण और उससे उत्पन्न हुआ पतला दस्त आना, पेट फूलना, खट्टी डकार आना आदि सब उपद्रव बहुत जलदी दूर हो जाते हैं; तथा अग्नितेज होकर मनुष्यको भोजन करने की इच्छा बढ़ती है; पीछे भोजन पचने पर साफ दस्त होनेसे शरीर सुखी होता है। एक शीशीका दाम १) रुपया, डा० म० और पैकिंग ।), भी० पी० से मङ्गाने से १।-)।

दद्रुनाशक चूर्ण।

दद्रुनाशक चूर्णसे सबप्रकारका दाद और खुजली आदिका शीघ्रही नाश होता है। इसमें पारा आदि कोई अशुद्ध धातु नहीं है और इसके लगानेसे दादमें किसी प्रकार की तकलीफ या जलन मालूम नहीं होती। १ शीशीका दाम ॥), डा० म० और पैकिंग ≈) भी० पी० ॥≈) आने।

केशकल्प।

बाल खिजाब अर्थात् सफेद बालोंको काले बनाने में यह खिजाब अकसीर है। इससे भ्रमरकी तरह सफेद बाल भौंरेकी

तरह और काला होता है। विलायती खिज़ाब लगाने से दूषित पदार्थ समूह केश-मूलमें बैठकर बहुत नुकसानी करता है। किन्तु हमारा खिज़ाब ऐसी रीतिसे बना है तथा किसी तरहकी खराब वस्तुका मेल न रहने के सबब हरेक को बिना संकोच इसके लगाने के लिये अनुरोध करते हैं; दो प्रकारकी शीशीका दाम १) डा० म० ॥)।

कर्णरोगान्तक तैल।

इस तैलके व्यवहार से कानमें खट खट शब्द होना, पीब बहना, जलन होना आदि कान की सब बिमारियां दूर हो जाती है, तथा बहरापन भी कुछ कमता है। १ शीशीका दाम ॥) आने, डा० म० और पेकिंग ।) आने।

बहुमूत्रान्तक रसायन।

इस दवाके सेवनसे बहुत थोड़े ही दिनोंसे बहुमूत्र आदि अनेक प्रकारके मेह रोग से उत्पन्न हुये मूत्रदोष और उससे उत्पन्न हुआ हाथ पैर की जलन आदि जितने प्रकारके उपद्रव हैं, वे सब नाश हो कर दिन दिन शरीर और मनकी शक्ति बढ़ती है। पन्द्रह दिनके लायक दो प्रकारकी दवा और एक प्रकारके तैलका दाम ५) रुपये, डा० म० और पेकिंग ॥)।

अमृतवल्ली कषाय।

यानि देशी सालसा।

हमारा यह सालसा पीनेसे सब प्रकार का घाव, उपदंश, दाद, सब प्रकारका चर्मरोग, पारद विकृति और सब तरह का पुराना और खराब घाव आराम होता है। अधिकन्तु इसके पीनेसे शारीरिक दौर्बल्य और दुबलापन आदि दूर हो शरीर मोटा ताजा और फुरतीला होता है। विदेशी सालसा की अपेक्षा यह विशेष उपकारी है। तथा यह सब मौसम में बूढ़ेसे लेकर दूध पीनेवाले बच्चे तक निर्विघ्न पीसकते हैं। १ शीशीका दाम १॥) डा० म० और पेकिंग ।≈) दस आने।

बृहत् अमृतवल्ली कषाय।

यदि आपके शरीर में उपदंशका विष फैल गया हो, बदन, हाथ और पैर में चकता चकता दाग पड़गया हो, या इस कठिन बिमारीसे तकलीफ भोगते भोगते जान भारी मालूम होती हो, डाक्टर वैद्यके पास जाते लज्जा मालूम होती हो तो हमको लिखिये—हम "बृहत् अमृतवल्ली कषाय" आपको भेजदेंगे—इससे आप थोड़े ही दिनमें निर्दोष आराम हो जायगे। उपदंश (आतशक) में "बृहत् अमृतवल्ली कषाय" मन्त्रकी तरह गुण दिखाता है। १ शीशीका दाम २) रुपये। डा० म० ।≈)।

लोमनाशक चूर्ण।

इस चूर्णको लगानेसे बिना उखाड़े और बिना मूंड़े ही सब बाल गिर पड़ते हैं और वह स्थान अर्थात् जहांके बाल गिरजाते हैं चिकना हो जाता है। खासकर बगल आदि कोमल जगहों में इसे निर्विघ्न लगा सकते हैं, १ शीशीका दाम ॥), ≈) तीन आने डा० म० में २ शीशी जाती हैं।

हिमांशुद्रव।

इस औषधिसे मुख आदि सब प्रकार की छोटी छोटी फुड़िया और जवानी में मुखपर की फुड़िया वगैरह दूर होकर शरीरका रंग सोनेके समान हो जाता है, तथा सेहुंआ, सीकदर वगैरः आदि चमड़े के रोग बहुत जलदी दूर हो जाते है; और शरीर की सुन्दरता, कोमलता, और कांति की वृद्धि हो शरीर से सुगन्धि आने लगती है। १ शीशीका दाम ॥✓) आने, डा० म० और पेकिंग ।) ।

सञ्जीवन खाद्य।

यह "सञ्जीवन खाद्य" लड़के और लड़कियों के पेट में अजीर्ण रोग होने पर भी उसे दूर करके नया खून पैदा करके बल बढ़ाता है। हमारे देशमें प्रायः सब लोग बालकों को साबू या आरारूट खिलाते हैं। परन्तु उन सबसे "सञ्जीवन खाद्य" खिलानेसे अधिक लाभ होता है। एक टिनके डिबियाका दाम १) एक रुपया, डा० म० और पेकिंग ✓), भी० पी० में मंगानेसे १✓)।

कुमुदासव।

यह महा उपकारी आसव पीनेसे मूर्छा, अपस्मार (मृगी), हिष्टीरिया, उन्माद (पागलपन), शिरघूमना और मस्तिष्ककी दुर्बलता आदि रोग दूर होता है। मूर्छा और मृगी में अनेक समय इस आसवके पीनेसे इसी बखत रोग दूर हो कर रोगी सुखी हो जाता है। एक शीशीका दाम ॥) आने, डा० म० और पेकिंग ।) चार आने।

कस्तुरीकल्प रसायन।

इस दवासे ज्वरविकार, नया पुराना अतिसार, विसूचिका (हैजा) आदि बड़े बड़े रोगोंके सिवाय पसीना आना, प्रलाप (बका बकना), बेहोशी, हिचकी, शरीर ठण्डा होना और नब्ज दबना आदि इनके प्राण नाश करनेवाले सब उपद्रव बहुत शीघ्र नाश हो कर थोड़े ही समयमें पीड़ा भी दूर हो जाती है। एक शीशीका दाम १) रुपया, डा० म० और पेकिंग ।) आने।

दुनियाभरमें मशहूर की खान

केशरञ्जन तैल।

केश ही मनुष्योंकी सुन्दरता प्रकाश करनेका विशेष साधन है, खासकर औरतोंकी खूबसूरती के लिये तो बालही मुख्य है। बड़ी बाल अब बिना समय अर्थात् अकालमें पक जाते है वा टाक होनेसे वा और किसी समय बाल गिर जानेसे मनुष्यका सबही रूप बिगड़ जाता है, तथा बालका रङ्ग बिगड़कर वा बाल नष्ट होकर बिना समय ही पकने लगता है। वा देखते ही देखते झड़जाता है, और मनुष्य बूढ़ा हो जाता है। हमने वैज्ञानिक उपाय से उन सब दोषोंको दूर करनेके लिये यह उत्तम तेल तयार किया है इसके लगानेसे बालोंकी कमी (गञ्ज) शिर घूमना, मस्तिष्क की दुर्बलता, सदा पीड़ा, धातु दौर्बल्य, शुक्र दोष और अधिक नशा पीनेसे समय शिरका दर्द, सुनने और देखने की शक्तिकी कमी बिना समय बाल पकना आदि शिरके सब रोग दूर होकर मस्तिष्क ठण्डा रहता है और आंखोंकी जोत बढ़ती है। अरज मानसिक रोगों में यह बहुत ही फायदे मन्द है इसलिये हमने इस तेलको बहुत ही, सुगन्धित

(खुशबूदार) बनाया है; जो सुन्दरता और सुख दोनोंकी रक्षा करना चाहते हैं वे इस तेलको लगाकर अधिक फायदा उठा सकते हैं।

एक शीशीका दाम १) रुपया, डा॰ म॰ और पैकिंग ।) आने। एक दरजनका दाम १०) रुपये डा॰ म॰ १।) रुपये।

प्रियदा वटिका।

अर्थात् स्वप्नदोष की अव्यर्थ महौषध।

इस बिमारीके पहले कभी कभी स्वप्ने हुआ जाया करता है, बहुत लोग इस हालत में इलाज करना जरूरी नहीं समझते मगर उन को याद रखना चाहिये कि उस हालतमें दवा न करने से यही बिमारी इतनी बढ़जाती है कि फिर हररोज रातको दो या चार बार अथवा उससे भी अधिक बार धातु गिरने लगता है; शरीर और मनकी दुर्बलता, किसी काम में उत्साह न रहना, सिर घूमना छातीमें दर्द होना, आखों के नीचे काला पड़ना, दम रुकना या बहुत दम होना आदि उपद्रव हो जाते हैं। हमारी "प्रियदा वटिका" इन रोगोंकी एक बहुत उत्तम दवा है। एक डिबिया शीशीका दाम १) रुपया, डा॰ म॰ और पैकिंग ।) आने, भी॰ पी॰ में मंगाने से १।) आने।

इसके सिवाय इस जगह आयुर्वेदीय सब प्रकार औषध, तैल, घृत, आसव, अरिष्ट जारित और शोधित धातुद्रव्य आदि तथा स्वर्णभस्म, कस्तुरी आदि सदा सस्ते दाम पर मिलते हैं। मुफस्सिल के रोगियों का पूराहाल आध आनेके टिकटके सहित चिट्ठीमें लिखने से बिनामूल्य व्यवस्था भेजी जाती है।

गवर्णमेण्ट मेडिकेल डिप्लोमाप्राप्त,

श्रीनगेन्द्रनाथ सेन वैद्यशास्त्री का

आयुर्वेदीय औषधालय।

१८।१ व १९ नं॰ लोवार चितपुर रोड, ड्रेटीबाजार, कलकत्ता।